विकास एवं पर्यावरण संबंधी अर्थशास्त्र तथा अंतर्राष्ट्रीय व्यापार

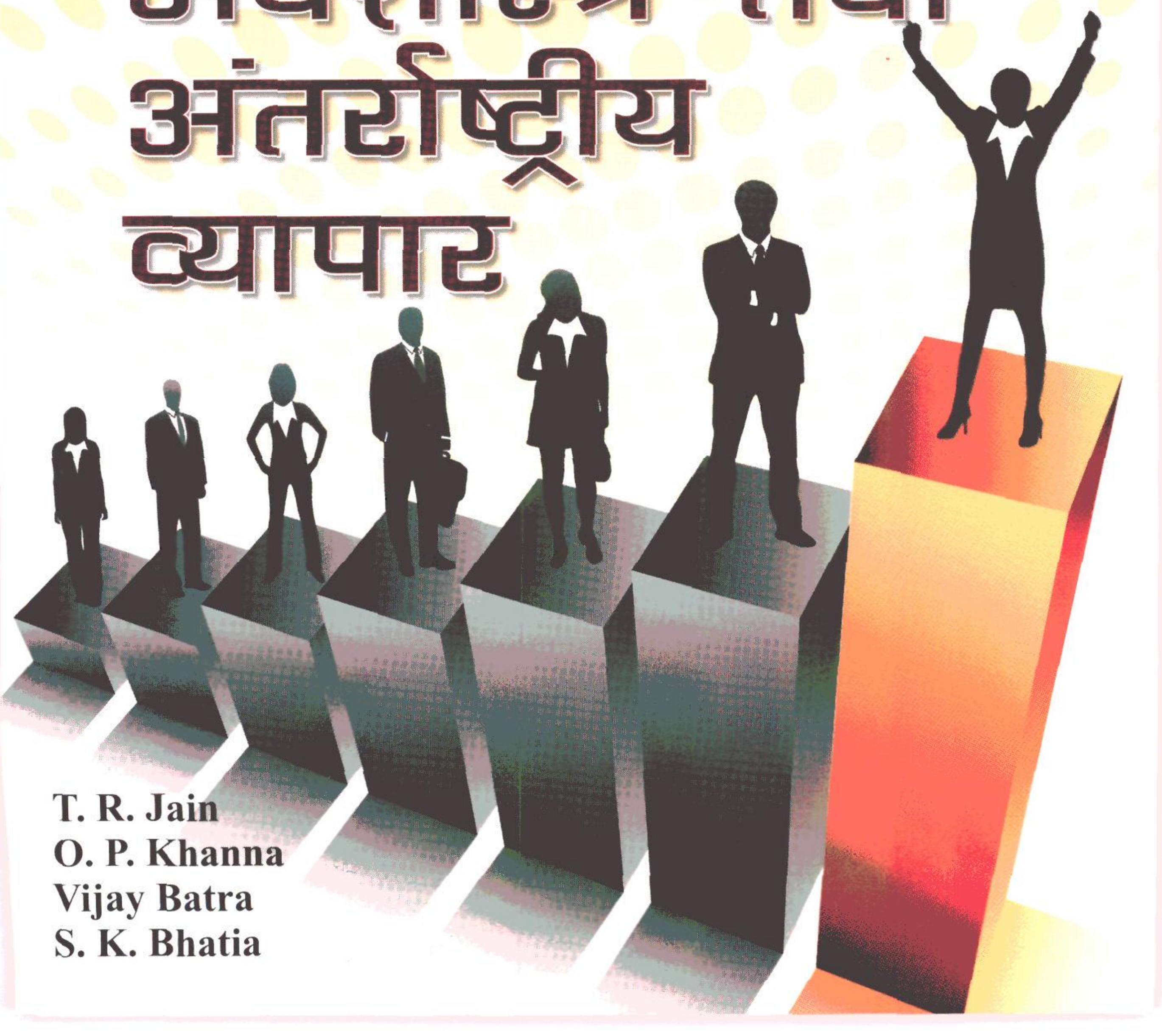

T. R. Jain
O. P. Khanna
Vijay Batra
S. K. Bhatia

Strictly according to the syllabus
prescribed by the
Kurukshetra & M.D. Universities
For Economics B.A. Part - III

विकास एवं पर्यावरण संबंधी अर्थशास्त्र तथा अंतर्राष्ट्रीय व्यापार

(DEVELOPMENT AND ENVIRONMENTAL ECONOMICS AND INTERNATIONAL TRADE)

T.R. Jain
Former Principal
S.A. Jain College
Ambala City

Dr. O.P. Khanna
M.A. Ph.D.
Former Head: Deptt. of Economics
Govt. D.S.D. College
Gurgaon

Vijay Batra
Head: Deptt. of Economics
D.A.V. College
Ambala City

S.K. Bhatia
M.A., M.Phill.
Deptt. of Economics
S.A. Jain College
Ambala City

VK publications
Educational Publishers

विकास एवं पर्यावरण संबंधी अर्थशास्त्र तथा अंतर्राष्ट्रीय व्यापार

(DEVELOPMENT AND ENVIRONMENTAL ECONOMICS AND INTERNATIONAL TRADE)

Every effort has been made to avoid errors or omissions in this publication. In spite of this, some errors might have crept in. Any mistake, error or discrepancy noted may be brought to our notice which shall be taken care of in the next edition. It is notified that neither the publisher nor the author or seller will be responsible for any damage or loss of action to anyone, of any kind, in any manner, therefrom.

For binding mistakes, misprints or for missing pages, etc. the publisher's liability is limited to replacement within one month of purchase by similar edition. All expenses in the connection are to be borne by the purchaser.

PRINTING HISTORY

Latest Edition : 2009-10

SYLLABUS COVERED

Kurukshetra and M.D. Universities

MEDIUM

HINDI (English Medium is also available)

PRICE

Rs Three Hundred Twenty Five Only (Rs 325/-)

ISBN

(13 Digit) : 978-81-87344-30-8
(10 Digit) : 81-87344-30-X

© Copyright reserved by the Publisher. All Rights reserved. No part of this book may be used or reproduced in any manner whatsoever without written permission from the publisher.

PUBLISHED BY

Vimla Kumari Jain

V.K. Publications

4323/3, Ansari Road, Darya Ganj,
New Delhi -2
Ph : 91-11- 23250105, 23250106
Fax: 23250141
H.O. Bazar Radha Kishan, Ambala City
Ph. : 91-171-2519448
Fax : 91-171-2519130
email: mail@vkpublications.com
www.vkpublications.com

COMPOSED BY

Rohit Jain For Laser Printers, Delhi

PRINTED AT

B.B.N. Printers, Delhi

Contents

1. आर्थिक संवृद्धि तथा विकास
(Economic Growth and Development) 3

2. आर्थिक विकास के निर्धारक तत्त्व
(Determinants of Economic Development) 22

3. आर्थिक विकास का माप
(Measurement of Economic Development) 31

4. निर्धनता का दुश्चक्र
(Vicious Circle of Poverty) 47

5. लुईस मॉडल
(Lewis Model) 58

6. सन्तुलित विकास
(Balanced Growth) 65

7. असन्तुलित विकास
(Unbalanced Growth) 80

8. लेबेन्सटीन का आवश्यक न्यूनतम प्रयत्न का सिद्धान्त
(Leibenstein's Critical Minimum Effort Thesis) 91

9. पर्यावरण – एक अनिवार्यता एवं विलासिता
(Environment – A Necessity and Luxury) 100

10. जनसंख्या – पर्यावरण संयोजन
(Population – Environmental Linkage) 115

11. पर्यावरण संबंधी वस्तुओं के संदर्भ में बाजार तन्त्र की विफलता
(Market Failure in Case of Environmental Goods) 131

12. सार्वजनिक पदार्थ के रूप में पर्यावरण
(Environment as a Public Good) 149

13. प्रदूषण: निवारण तथा नियन्त्रण
(Pollution: Prevention and Control) 158

14. पर्यावरण (संरक्षण) कानून की मुख्य विशेषताएँ
[Salient Features of Environment (Protection) Act] 178

15. धारणीय विकास
(Sustainable Development) 186

16. अन्तर्क्षेत्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार
(Inter-Regional and International Trade) 199

17. तुलनात्मक लागत का सिद्धान्त
(Theory of Comparative Costs) 211

18. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का आधुनिक सिद्धान्त या हैक्शर-ओहलिन सिद्धान्त
(Modern Theory of International Trade or Heckscher - Ohlin Theory) 224

19. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लाभ
(Gains from International Trade) 234

20. विदेशी व्यापार तथा आर्थिक विकास
(Foreign Trade and Economic Growth) 244

21. भुगतान शेष
(Balance of Payments) 256

22. विदेशी व्यापार गुणक
(Foreign Trade Multiplier) 279

23. अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष
(International Monetary Fund) 293

24. अन्तर्राष्ट्रीय पुनर्निर्माण तथा विकास बैंक या विश्व बैंक
(International Bank for Reconstruction and Development or World Bank) 311

25. विश्व व्यापार संगठन
(World Trade Organisation) 324

26. भारत के विदेशी व्यापार में 1991 से परिवर्तन
(Changes in India's Foreign Trade Since 1991) 346

27. भारत में भुगतान शेष की समस्या
(Problem of Balance of Payments in India) 380

University Question Papers

SYLLABUS

KURUKSHETRA AND M.D. UNIVERSITIES

DEVELOPMENT AND ENVIRONMENTAL ECONOMICS AND INTERNATIONAL TRADE

B.A. III

Paper - A

Time: 3 Hours | Max. Marks: 90

Note: The question paper will carry a maximum of 90 marks and it will consist of nine questions out of which the candidate would be required to attempt five questions. Each question will carry 18 marks. The first question will be compulsory and it will include objective type questions (10 marks) and short definitional type questions (8 marks) uniformly spread over both parts of the syllabus. The remaining 8 questions will include 2 questions from each of the four units and the candidate would be required to attempt one question from each unit.

Part-A (Development and Environmental Economics)

Unit - I

Economic growth and development; Determinants and Measurement of development; Vicious circle of poverty; Development with unlimited supply of labour (Lewis Model); Balanced and unbalanced growth; Critical minimum effort thesis (Leibenstein Theory).

Unit - II

Environment as a necessity and luxury; Population-environment linkage; Market failure in case of environmental goods; Environment as a public good; Prevention and control of pollution; Environmental legislation; Meaning, importance and indicators of sustainable development.

Part -B (International Economics)

Unit - III

Inter-regional and international trade; Comparative advantage theory; Heckcher-Ohlin theory; Gains from trade - their measurement and distribution; Trade as an engine of economic growth.

Unit - IV

Meaning of balance of payments equilibrium; Causes and effects of BOP disequilibrium and corrective measures; Foreign trade multiplier; Functions of IMF, World Bank and WTO; Changes in the composition and direction of foreign trade of India since 1991. Causes of persistent deficit in India's BOP and corrective measures.

विकास एवं पर्यावरण संबंधी अर्थशास्त्र तथा अंतर्राष्ट्रीय व्यापार

(DEVELOPMENT AND ENVIRONMENTAL ECONOMICS AND INTERNATIONAL TRADE)

1

आर्थिक संवृद्धि तथा विकास

(ECONOMIC GROWTH AND DEVELOPMENT)

■ 1. भूमिका (Introduction)

सभी प्रकार की अर्थव्यवस्थाओं में आर्थिक विकास अत्यंत ही महत्त्वपूर्ण है। अल्पविकसित देशों के लिए आर्थिक विकास इसलिए आवश्यक है क्योंकि ये देश, अपनी सामान्य निर्धनता, बेरोजगारी, पिछड़ापन तथा निम्न जीवन स्तर की समस्याओं का, इसकी सहायता से समाधान कर सकते हैं। इसके विपरीत, विकसित देशों के लिए भी आर्थिक विकास समान रूप से महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यह उन देशों को अपनी वर्तमान संवृद्धि दर को बनाए रखने में सहायता देता है। एडम स्मिथ (आधुनिक अर्थशास्त्र के पिता) से लेकर मार्क्स तथा केन्ज़ तक का आर्थिक विकास के अध्ययन की ओर ध्यान आकर्षित हुआ हो, परन्तु इन सभी का केंद्रण केवल उन समस्याओं के अध्ययन तक ही समित रहा जो प्रकृति से ही स्थैतिक (Static) थीं और जिनका संबंध मुख्य रूप से पश्चिमी यूरोपीय देशों से ही था। केन्ज़ीयन अर्थशास्त्र का मुख्य उद्देश्य विकसित देशों को मंदी (1930 की) से बाहर निकालने में सहायता देना था। परन्तु बीसवीं शताब्दी के चालीसवें दशक में और विशेषकर दूसरे विश्वयुद्ध (1939-42) के बाद ही अर्थशास्त्रियों ने अपने ध्यान को अल्पविकसित देशों की समस्याओं के विश्लेषण की ओर मोड़ा और विकास तथा संवृद्धि संबंधी सिद्धांत और मॉडल तैयार करने शुरू किए। एशियन तथा अफ्रीकन देशों के नेताओं ने अपने-अपने देशों में द्रुत आर्थिक विकास को प्रोन्नत करने की इच्छा प्रकट की और विकसित देशों की भांति यह महसूस किया कि **"किसी भी स्थान में निर्धनता सभी स्थानों की संपन्नता के लिए खतरा है"** (Poverty anywhere is a threat to prosperity everywhere)। इस कथन ने इस विषय के प्रति उनकी जागृति और पैदा कर दी।

यहाँ ध्यान देने वाली बात यह है कि अल्पविकसित देशों में व्यापक निर्धनता की समस्या को हल करने की धनी देशों की रुचि किसी मानवीय विचारधारा पर आधारित नहीं थी, बल्कि यह तो रूस और पश्चिमी देशों के बीच शीत युद्ध (Cold War) का परिणाम था। एक प्रकार से आर्थिक विकास दोनों — **सहायता देने वाले और सहायता प्राप्त करने वाले देशों** (Aid giving and aid receiving countries) के लिए इसलिए महत्त्वपूर्ण थी, क्योंकि दो व्यवसाय तथा विदेशी व्यापार को प्रोत्साहित करना चाहते थे। आर्थिक विकास की अंत:प्रेरणा (Urge for Economic Development) विकसित तथा अल्पविकसित दोनों देशों के लिए आवश्यक थी। परन्तु अब यह केवल अल्पविकसित देशों तक ही सीमित है। धनी देश आर्थिक संवृद्धि को बनाए रखने के लिए विकास कार्य इसलिए अपनाते हैं कि वे जीवन के उच्च स्तर का लाभ उठाते रहें और चक्रीय उतार-चढ़ाव (Cyclical Fluctuations) से बच सकें। इसके विपरीत निर्धन/अविकसित देश आर्थिक विकास पर केवल इसलिए बल नहीं देते कि वे अपनी बेरोजगारी, असमानता तथा निर्धनता की समस्याओं को ही हल कर सकें, बल्कि उनका यह प्रयास भी है कि वे आर्थिक प्रगति के उस उच्च स्तर (High Level of Economic Progress) को भी छू सकें जिसको धनी/विकसित देशों ने पहले से ही प्राप्त किया हुआ है।

■ 1.1 संवृद्धि और विकास (Growth and Development)

प्रत्येक देश की आर्थिक प्रगति (Economic Progress) के संदर्भ मे **'संवृद्धि'** तथा **'विकास'** शब्दों की एक महत्त्वपूर्ण भूमिका है। अल्पविकसित देशों के लिए ये शब्द इसलिए आवश्यक हैं क्योंकि इनके द्वारा वे सामान्य निर्धनता, बेरोजगारी, पिछड़ापन तथा निम्न जीवन स्तर संबंधी अपनी समस्याओं का समाधान ढूंढने में सफल हो सकते हैं। इसके विपरीत विकसित अर्थव्यवस्थाओं के लिए इनका महत्त्व इसलिए अधिक है क्योंकि इसके द्वारा वे अपनी आर्थिक विकास की वर्तमान दर को बनाए रख सकते हैं।

एक सामान्य व्यक्ति के लिए '**संवृद्धि**' तथा '**विकास**' शब्दों के बीच कोई अन्तर नहीं है। उसके लिए ये दोनों शब्द एक निश्चित अवधि में किसी प्रकार की **प्रगति** (Progress) को व्यक्त करते हैं। परन्तु अर्थशास्त्री इन दोनों शब्दों के अन्तर को स्पष्ट रूप से व्यक्त करते हैं।

■ 2. आर्थिक संवृद्धि (Economic Growth)

आर्थिक संवृद्धि से अभिप्राय आय अथवा उत्पादन में होने वाली दीर्घकालीन वृद्धि से है। आय अथवा उत्पादन के मूल्य में वृद्धि तब हो सकती है: (i) जब वस्तुओं तथा सेवाओं के उत्पादन में वृद्धि हो तथा वस्तुओं और सेवाओं की कीमतें स्थिर (Constant) रहें और (ii) जब वस्तुओं तथा सेवाओं की कीमतों में वृद्धि हो और वस्तुओं तथा सेवाओं का उत्पादन स्थिर (Constant) रहे। 'आर्थिक संवृद्धि' से अभिप्राय पहले प्रकार के उत्पादन के मूल्य (Value of Output) में वृद्धि से है अर्थात् वह मूल्य (Value) जो वस्तुओं तथा सेवाओं के उत्पादन में वृद्धि के फलस्वरूप संभव होता है, जबकि वस्तुओं तथा सेवाओं की कीमतें स्थिर रहती हैं। इस प्रकार की संवृद्धि को ही **वास्तविक संवृद्धि** (Real Growth) कहा जाता है। इसका तात्पर्य है देश में वस्तुओं तथा सेवाओं के प्रवाह में वृद्धि (It implies increase in the flow of goods and services)। यदि देश की जनसंख्या स्थिर (Constant) रहती है तब वास्तविक संवृद्धि का अर्थ है प्रतिव्यक्ति के लिए देश में वस्तुओं तथा सेवाओं की अधिक उपलब्धता।

■ परिभाषा (Definition)

प्रो. मायर के अनुसार, "आर्थिक संवृद्धि वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा किसी देश की प्रतिव्यक्ति वास्तविक आय में दीर्घकालीन वृद्धि होती है।" (Economic growth may be defined as the process whereby the real per capita income of the country increases over a long period of time – **Meier**)

प्रो. सालवाटोर के शब्दों में, "आर्थिक संवृद्धि वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा किसी देश की प्रतिव्यक्ति उत्पादकता निरन्तर बढ़ने के फलस्वरूप दीर्घकाल तक के लिए उस देश की प्रतिव्यक्ति वास्तविक कुल राष्ट्रीय आय उत्पाद में वृद्धि होती है अथवा प्रतिव्यक्ति उत्पादकता में निरन्तर वृद्धि होने से आय में दीर्घकालीन वृद्धि होती है।" (Economic growth has been defined as the process whereby a country's real per capita gross national product (GNP) or income increase over a sustained period of time through continuing increase in per capita productivity. – **Salvatore**)

प्रो. पीटरसन के अनुसार, "आर्थिक संवृद्धि से अभिप्राय है वस्तुओं तथा सेवाओं के प्रतिव्यक्ति वास्तविक उत्पादन में समय के साथ-साथ वृद्धि हो तथा अर्थव्यवस्था की वस्तुओं तथा सेवाओं की उत्पादन क्षमता में वृद्धि हो।" (Economic growth involves an increase in overtime in the per capital actual output of goods and services as well as an increase in the economy's capability to produce goods and services. – **Peterson**)

उपरोक्त परिभाषाओं के अनुसार आर्थिक संवृद्धि वह प्रक्रिया है जिसके फलस्वरूप देश में प्रतिव्यक्ति वस्तुओं तथा सेवाओं के उत्पादन, प्रतिव्यक्ति वास्तविक कुल राष्ट्रीय उत्पाद अथवा प्रतिव्यक्ति वास्तविक आय में दीर्घकालीन वृद्धि होती है। इस संदर्भ में निम्नलिखित बातों का स्पष्टीकरण आवश्यक है:

(i) वस्तुओं के परिमाण में होने वाली आकस्मिक वृद्धि (Occasional rise in the volume of output) को आर्थिक संवृद्धि नहीं कहा जा सकता। उदाहरण के लिए मान लो, किसी वर्ष, अच्छी वर्षा के कारण, कृषि उत्पादन में तो (उस विशेष वर्ष) वृद्धि हो जाती है, परन्तु आगामी वर्षों में कृषि उत्पादन कम हो जाता है तो इसे आर्थिक संवृद्धि नहीं कहा जाएगा। अतएव संवृद्धि की धारणा परिवर्तन के उस प्रवृत्ति पथ (Trend Path) को व्यक्त करती है जो समय के साथ-साथ वृद्धि की ओर अग्रसर हो, बेशक बीच में उत्पादन में थोड़ी-बहुत आकस्मिक गिरावट हो अथवा न हो।

(ii) उपरोक्त परिभाषाओं में आर्थिक संवृद्धि के केवल एक ही पक्ष अर्थात् प्रतिव्यक्ति आय का ही अध्ययन किया गया है। आर्थिक संवृद्धि को प्रभावित करने वाले अन्य तत्त्वों, जैसे आय का उचित बंटवारा, जीवन की गुणवत्ता, आर्थिक कल्याण आदि की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया है।

■ 3. आर्थिक विकास (Economic Development)

आर्थिक विकास की धारणा आर्थिक संवृद्धि की धारणा की तुलना में अधिक व्यापक है। आर्थिक विकास वह प्रक्रिया है जिसके फलस्वरूप प्रति व्यक्ति वास्तविक आय बढ़ने के साथ-साथ असमानता, निर्धनता, बेरोजगारी, अशिक्षा तथा बीमारी में कमी होती है। अर्थात् लोगों के **आर्थिक कल्याण** में वृद्धि होती है तथा उनका जीवन स्तर ऊंचा हो जाता है। **अतएव आर्थिक विकास से अभिप्राय है आर्थिक संवृद्धि तथा आर्थिक कल्याण।** (Thus economic development includes both Economic growth as well as economic welfare.)

आर्थिक विकास सम्बन्धी परिभाषाओं एवं अर्थ से संबंधित दो मुख्य दृष्टिकोण (Approaches) हैं:

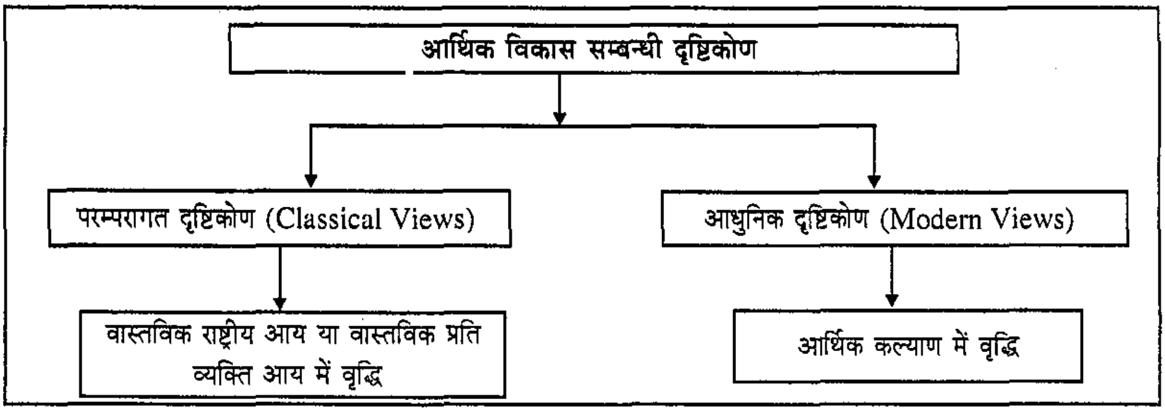

■ (I) परम्परागत दृष्टिकोण (Classical/Traditional View)

इस दृष्टिकोण के अनुसार आर्थिक विकास की परिभाषा राष्ट्रीय आय या प्रति व्यक्ति आय में होने वाली वृद्धि के रूप में की जाती है।

(A) राष्ट्रीय आय में वृद्धि सम्बन्धी परिभाषाएं (Definitions Regarding Increase in National Income)

(i) मायर तथा बाल्डविन के अनुसार, "आर्थिक विकास एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक अर्थव्यवस्था की वास्तविक राष्ट्रीय आय में दीर्घकाल में वृद्धि होती है।" (Economic Development is a process whereby an economy's real national income increases over a long period of time. – **Meier and Baldwin**)

(ii) पॉल एलबर्ट के अनुसार, "आर्थिक विकास किसी देश के द्वारा वास्तविक राष्ट्रीय आय में वृद्धि करने के लिये सभी उत्पादक साधनों का विदोहन है।" (Economic Development is the exploitation of all productive resources by a country in order to expand real income. – **Paul Albert.**) **संक्षेप में, आर्थिक विकास वह प्रक्रिया है जिसके फलस्वरूप देश की वास्तविक राष्ट्रीय आय में दीर्घकालीन वृद्धि हो रही है।**

(iii) प्रमित चौधरी के अनुसार, "आर्थिक विकास से अभिप्राय दीर्घकाल तक वस्तुओं तथा सेवाओं में होने वाली वास्तविक वृद्धि से है जिसे मूल्य वृद्धि के रूप में मापा जा सकता है।" (Economic development is an increase in real output of goods and services that is sustained over a long period of time, measured in terms of value added. – **Pramit Chaudhary**)

आलोचना (Criticism):

इस परिभाषा से ज्ञात होता है कि आर्थिक विकास वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा राष्ट्रीय आय में निरन्तर वृद्धि होती रहती है। परन्तु इस परिभाषा से यह ज्ञात नहीं होता कि प्रति व्यक्ति आय बढ़ रही है या कम हो रही है। एक देश की शुद्ध राष्ट्रीय आय के बढ़ने पर भी यदि जनसंख्या में वृद्धि उससे अधिक दर पर होगी तो प्रति व्यक्ति आय बढ़ने के स्थान पर कम हो जायेगी। इस स्थिति को आर्थिक विकास कहना उचित नहीं होगा। यदि हमारा उद्देश्य देश की केवल उत्पादन क्षमता या **स्तर की बचतों** (Economies of Scale) का ज्ञान प्राप्त करना है तो राष्ट्रीय आय उचित सूचक है तथा यह परिभाषा आर्थिक विकास की एक उचित परिभाषा मानी जा सकती है, परन्तु यदि हमारा उद्देश्य लोगों के जीवन स्तर का ज्ञान प्राप्त करना है तो यह परिभाषा आर्थिक विकास की उपयुक्त परिभाषा नहीं मानी जा सकती।

(B) प्रति व्यक्ति वास्तविक आय में वृद्धि सम्बन्धी परिभाषाएं
(Definitions Regarding Real Per Capita Income):

(i) सालवेटोर के अनुसार, **''आर्थिक विकास वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा किसी देश की प्रति व्यक्ति उत्पादकता निरन्तर बढ़ने के फलस्वरूप दीर्घकाल तक के लिये उस देश की प्रति व्यक्ति वास्तविक कुल राष्ट्रीय उत्पाद में वृद्धि होती है या प्रति व्यक्ति उत्पादकता में लगातार वृद्धि होने से आय में दीर्घकाल तक वृद्धि होती है।''** (Economic development has been defined as the process whereby a country's real per Capita Gross National Product (GNP) or income increases over a sustained period of time through continuing increase in per capita productivity. – **Salvatore**)

(ii) पैंगुइन शब्दकोष के अनुसार, **''आर्थिक प्रक्रिया किसी अर्थव्यवस्था की कुल तथा प्रति व्यक्ति वास्तविक आय में होने वाली वृद्धि की वह प्रक्रिया है जिसके साथ-साथ उस अर्थव्यवस्था की संरचना में भी मौलिक परिवर्तन होते हैं।''** (Economic development is the process of growth in the total and per capita real income of an economy accompanied by fundamental changes in the structure of economy. – **Penguin Dictionary of Economics**)

(iii) प्रो० पीटरसन के अनुसार, **''आर्थिक विकास से अभिप्राय यह है कि समय के साथ-साथ वस्तुओं तथा सेवाओं से प्रति व्यक्ति वास्तविक उत्पादन में वृद्धि हो तथा अर्थव्यवस्था की वस्तुओं तथा सेवाओं के उत्पादन करने की क्षमता में वृद्धि हो।''** (Economic development involves an increase over time in the per capita actual output of goods and services as well as an increase in the economy's capability to produce goods and services.
– **Peterson**)

प्रो० पीटरसन की परिभाषा से ज्ञात होता है कि आर्थिक विकास का सम्बन्ध प्रति व्यक्ति आय में होने वाली वृद्धि तथा उस वृद्धि के कारणों से है। आर्थिक विकास का अनुमान लगाने के लिये हमें केवल उस देश की कुल उत्पादन क्षमता में होने वाली वृद्धि तथा उपभोग को ही ध्यान में नहीं रखना चाहिए बल्कि जनसंख्या में होने वाली वृद्धि को भी ध्यान में रखना चाहिए।

(iv) प्रो. इरमा एडेलमैन के अनुसार, **''आर्थिक विकास वह प्रक्रिया है जिस से एक ऐसी अर्थव्यवस्था, जिसमें प्रति व्यक्ति आय की दर कम या ऋणात्मक हो उस अर्थव्यवस्था में बदल जाती है जिस में ऊंची दर पर प्रतिव्यक्ति आय में वृद्धि होना उस की स्थायी और दीर्घकालीन विशेषता बन जाती है।''** (Economic development is the process by which an economy is transformed from one whose rate of growth of per capita income is small or negative to one in which a significant self-sustained rate of increase of per capita income is a permanent long term feature.– **Irma Adleman**)

(v) पॉल बरान के अनुसार, **''आर्थिक वृद्धि को दीर्घकालीन प्रति व्यक्ति भौतिक वस्तुओं के उत्पादन की वृद्धि कह कर परिभाषित किया जा सकता है।''** (Economic growth may be defined as an increase over time in per capita output of material goods.– **Paul Baran**)

(vi) प्रो० मायर ने अपनी पुस्तक **"Leading Issues in Economic Development"** के प्रथम संस्करणों में आर्थिक विकास की परिभाषा इस प्रकार दी थी, **"आर्थिक विकास वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा प्रति व्यक्ति वास्तविक आय में दीर्घकाल में वृद्धि होती है।"** (We shall define economic development as the process whereby per capita income of a country increases over a long period of time.– **Meier**) परन्तु **प्रो० मायर** ने अपनी पुस्तक के 7वें नवीनतम संस्करण में आर्थिक विकास की परिभाषा में निम्नलिखित परिवर्तन किया है, उनके अनुसार, **"आर्थिक विकास वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा प्रति व्यक्ति वास्तविक आय में दीर्घकाल में वृद्धि होती है परन्तु इस शर्त के साथ कि एक निरपेक्ष निर्धनता रेखा से नीचे लोगों की संख्या में वृद्धि न हो, तथा आय का वितरण अधिक असमान न हो जाये।"** (Economic development may be defined as the process whereby the real per capita income of the country increase over a long period of time subject to the stipulations that the number of the people below an absolute poverty line does not increase and that the distribution of income does not become more unequal.– **Meier**)

इस परिभाषा के अनुसार आर्थिक विकास के तीन मुख्य तत्त्व हैं:

(i) **प्रक्रिया** (Process): इस परिभाषा में प्रक्रिया शब्द से अभिप्राय अर्थव्यवस्था में दीर्घकाल में होने वाले परिवर्तनों से है। इन परिवर्तनों का प्रभाव साधनों की पूर्ति और वस्तुओं की मांग को प्रभावित करने वाले तत्त्वों पर पड़ता है। साधनों की पूर्ति में होने वाले मुख्य परिवर्तन इस प्रकार हैं: (1) अतिरिक्त साधनों की खोज (2) पूंजी संचय (3) जनसंख्या में वृद्धि (4) उत्पादन की नई और उन्नत विधियां (5) श्रम की कार्यकुशलता में सुधार और (6) संस्थागत तथा संगठनात्मक संशोधन (Institutional and Organisational Modifications)। **पूर्ति में होने वाले परिवर्तनों के साथ-साथ मांग में भी परिवर्तन होते हैं** जैसे- (1) जनसंख्या का आकार और आयु रचना (2) आय का वितरण (3) उपभोक्ताओं की रुचि (4) अन्य संस्थागत और संगठनात्मक परिवर्तन। आर्थिक विकास के फलस्वरूप मांग और पूर्ति के स्वरूप में उपरोक्त बताए गए कई प्रकार के परिवर्तन होते हैं। ये परिवर्तन आर्थिक विकास के कारण और परिणाम दोनों ही हैं। आर्थिक विकास की सीमा इन परिवर्तनों की गति और समय पर निर्भर करती है। आर्थिक विकास एक गत्यात्मक (Dynamic) धारणा है। इसका अभिप्राय उत्पादन में होने वाली निरन्तर वृद्धि से है।

(ii) प्रति व्यक्ति वास्तविक आय (Real Per Capita Income): आर्थिक विकास का उद्देश्य प्रति व्यक्ति आय में होने वाली वृद्धि है। प्रति व्यक्ति आय का अनुमान राष्ट्रीय आय को जनसंख्या से भाग देने पर लगाया जा सकता है।

$$\textbf{प्रति व्यक्ति आय (Per Capita Income)} = \frac{\textbf{राष्ट्रीय आय (National Income)}}{\textbf{जनसंख्या (Population)}}$$

केवल राष्ट्रीय आय में होने वाली वृद्धि आर्थिक विकास का प्रतीक नहीं है। इसका कारण यह है कि यदि जनसंख्या में होने वाली वृद्धि दर राष्ट्रीय आय में होने वाली वृद्धि दर की तुलना में अधिक होगी तो प्रति व्यक्ति आय बढ़ने के स्थान पर कम हो जायेगी। अतएव आर्थिक विकास का अनुमान प्रति व्यक्ति आय में होने वाली वृद्धि के आधार पर लगाया जा सकता है। **वास्तविक आय से अभिप्राय किसी देश की मौद्रिक आय का स्थिर कीमतों पर लगाए जाने वाले अनुमान से है।**

$$R = \frac{Y}{P}$$

(यहां R = वास्तविक आय, Y = मौद्रिक आय, P = कीमत स्तर)

इसका अभिप्राय यह हुआ कि मौद्रिक आय में होने वाली वृद्धि आर्थिक विकास का वास्तविक सूचक नहीं है।

(iii) दीर्घकालीन (Long-Period): आर्थिक विकास की इस परिभाषा के अनुसार शुद्ध राष्ट्रीय आय में लगातार वृद्धि होनी चाहिये। अल्पकाल में यदि कुछ समय के लिये राष्ट्रीय आय में वृद्धि हो जाती है तो उसे आर्थिक विकास नहीं कहा जा सकता। उदाहरण के तौर पर, मान लीजिये यदि किसी वर्ष फसल बहुत अच्छी हो जाने के फलस्वरूप राष्ट्रीय आय में वृद्धि हो तो इस अस्थायी वृद्धि को

आर्थिक विकास नहीं समझा जाना चाहिये। इसी प्रकार **व्यापार चक्र** (Trade Cycles) की तेजी की अवस्था में राष्ट्रीय आय में होने वाली वृद्धि को भी आर्थिक विकास नहीं कहा जा सकता। आर्थिक विकास तो उसी अवस्था को कहेंगे जिसके अन्तर्गत कम से कम 25 वर्ष की अवधि तक राष्ट्रीय आय निरन्तर बढ़ती रहे।

(iv) निर्धनता तथा असमानता में वृद्धि नहीं होनी चाहिए (No Increase in Poverty and Inequality): इस परिभाषा के अनुसार आर्थिक विकास की स्थिति में प्रति व्यक्ति वास्तविक आय में इस प्रकार वृद्धि होनी चाहिए कि निर्धनता रेखा से नीचे लोगों की संख्या में वृद्धि नहीं होनी चाहिए। इसके साथ-साथ आय के वितरण की असमानता में भी वृद्धि नहीं होनी चाहिए। अतएव यह परिभाषा प्रति इकाई वास्तविक आय में वृद्धि के साथ-साथ उसके न्यायपूर्ण वितरण को भी आर्थिक विकास के लिए महत्त्वपूर्ण मानती है।

***आलोचना* (Criticism):**

आर्थिक विकास की प्रति व्यक्ति आय में होने वाली वृद्धि सम्बन्धी परिभाषा भी उचित नहीं मानी जाती। इस परिभाषा की निम्नलिखित कारणों से आलोचना की जाती है:

(i) ***प्रति व्यक्ति आय में होने वाला परिवर्तन भी आर्थिक विकास का उचित माप नहीं हो सकता।*** इसे एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। मान लीजिये भारत की राष्ट्रीय आय किसी वर्ष 4 गुना अधिक बढ़ जाती है। इसके साथ ही जनसंख्या भी उसी अनुपात में बढ़ जाती है। दूसरी ओर बर्मा की राष्ट्रीय आय में दो गुनी वृद्धि होती है तथा जनसंख्या भी दो गुना बढ़ जाती है। इसका अर्थ यह हुआ कि इन दोनों देशों की प्रति व्यक्ति आय नहीं बढ़ेगी। परन्तु इससे यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि इन दोनों में आर्थिक विकास नहीं हुआ है। वास्तव में भारत में आर्थिक विकास की दर बर्मा के आर्थिक विकास की दर से दुगुनी है। यद्यपि भारत में प्रति व्यक्ति आय में बर्मा की प्रति व्यक्ति आय की तरह कोई वृद्धि नहीं हुई है।

(ii) आर्थिक विकास की यह परिभाषा भी **संकुचित परिभाषा** है। इनमें आर्थिक विकास के केवल एक ही पक्ष अर्थात् प्रति व्यक्ति आय का ही अध्ययन किया गया है। आर्थिक विकास को प्रभावित करने वाले दूसरे तत्त्वों पर कोई ध्यान नहीं दिया गया है।

(iii) प्रति व्यक्ति आय में होने वाली वृद्धि से यह आवश्यक नहीं है कि जीवन स्तर ऊंचा हो जायेगा क्योंकि हो सकता है कि राष्ट्रीय आय का बंटवारा उचित रूप से न हो तथा धनी व्यक्ति अधिक धनी व निर्धन व्यक्ति अधिक निर्धन होते जायें। यह भी सम्भव है कि सरकार आय में होने वाली वृद्धि के अधिक भाग को देश की सुरक्षा पर खर्च कर दे अथवा राष्ट्रीय आय के अधिक भाग को बचत के रूप में रख लिया जाये।

■ II. आधुनिक दृष्टिकोण (Modern View)

आर्थिक विकास के आधुनिक दृष्टिकोण के अनुसार इसकी परिभाषा आर्थिक कल्याण के रूप में की जाती है। सन् 1970 के पश्चात् अर्थशास्त्री, यह विशेष रूप से महसूस करने लगे की प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि होने पर भी आर्थिक कल्याण में वृद्धि नहीं हुई है। इसलिये **आर्थिक विकास की परिभाषा आर्थिक कल्याण या लोगों की आधारभूत आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के रूप में की जानी** चाहिये। इस नई परिभाषा के अनुसार, आर्थिक विकास वह प्रक्रिया है जिसके फलस्वरूप निर्धनता, बेरोजगारी, आय की असमानता में कमी होती है। आर्थिक विकास की कुछ आर्थिक कल्याण सम्बन्धी परिभाषाएं इस प्रकार हैं:

(1) कोलिन क्लार्क के अनुसार, ''आर्थिक विकास से अभिप्राय आर्थिक कल्याण में होने वाली वृद्धि से है।'' (Economic development is simply an increase in economic welfare. – **Colin Clark**)

(2) प्रो॰ किन्डलबर्गर तथा हेरिक के अनुसार, ''आर्थिक विकास से अभिप्राय आर्थिक कल्याण में किये जाने वाले सुधारों से है। ये सुधार विशेष रूप से उन लोगों के लिये किये जाते हैं जिनकी आय न्यूनतम होती है। इनके द्वारा निर्धनता, अशिक्षा, बीमारी तथा जल्दी मृत्यु की बुराइयों को दूर किया जाता है।'' (Economic development is generally defined to include improvements in material welfare especially for the persons with the lowest incomes, diseases and early death. – **Kindlebarger and Herrick**)

(3) **ओकुन** तथा रिचर्डसन के अनुसार, **"आर्थिक विकास से अभिप्राय भौतिक कल्याण में होने वाले स्थाई दीर्घकालीन सुधार से है जो वस्तुओं तथा सेवाओं के बढ़ते हुए प्रवाह के रूप में प्रकट होते हैं।"** (Economic development may be defined as a sustained secular improvement in material well-being which we may consider to be reflected in an increas ng flow of goods and services. – **Oken and Richardson**)

(4) **गोलेट** ने आर्थिक विकास की आर्थिक कल्याण सम्बन्धी परिभाषा दी है। उनके अनुसार, **"आर्थिक विकास के विस्तृत अर्थ हैं: जीवन निर्वाह, स्वाभिमान एवम् स्वतन्त्रता।"** (The wider meaning of development is self-subsistence, self-esteem and freedom – **Goulet**) इस परिभाषा के सामान्य रूप से महत्त्वपूर्ण निम्न तीन पहलू हैं:

(i) जीवन निर्वाह (Self-subsistence): आर्थिक विकास वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा लोगों को निर्धनता के स्तर से ऊपर उठाया जाये तथा साथ ही साथ उनकी आधारभूत आवश्यकताओं को सन्तुष्ट किया जाये। किसी भी देश को तब तक विकसित नहीं कहा जा सकता जब तक वह अपने सभी निवासियों की रोटी, मकान, कपड़े, प्राथमिक शिक्षा और स्वास्थ्य की आधारभूत आवश्यकताओं को पूरी तरह सन्तुष्ट नहीं कर सके। आर्थिक विकास का पहला तत्त्व है लोगों के जीवन स्तर अर्थात् उनकी आय, भोजन के उपभोग स्तर, चिकित्सा सेवाओं, शिक्षा आदि को उपयुक्त प्रक्रिया द्वारा ऊंचा उठाना।

(ii) स्वाभिमान (Self-esteem): स्वाभिमान से अभिप्राय है आत्मसम्मान तथा स्वतंत्रता की भावना। यदि कोई अर्थव्यवस्था दूसरों द्वारा शोषित की जाती है तथा उसे दूसरों के साथ समान शर्तों पर व्यवहार करने का अधिकार नहीं है तो उसे विकसित नहीं माना जा सकता। अल्पविकसित देश स्वाभिमान के लिए विकास करना चाहते हैं। वे निम्नकोटि की आर्थिक अवस्था से सम्बन्धित दूसरों पर निर्भरता तथा गुलामी की भावनाओं को दूर करना चाहते हैं। अतएव आर्थिक विकास का दूसरा पहलू है ऐसी दशायें उत्पन्न करना जिनके फलस्वरूप लोगों के स्वाभिमान में वृद्धि हो। इसके लिए मानवीय सम्मान को विकसित करने वाली सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक संस्थाओं को स्थापित किया जाना चाहिए।

(iii) स्वतन्त्रता (Freedom): **स्वतन्त्रता से अभिप्राय है तीन बुराइयां अर्थात् निर्धनता, अज्ञानता, तथा गंदगी से मुक्ति।** (Freedom refers to freedom from three evils, homely, poverty ignorance and squalor) जिससे लोग अपने भविष्य का स्वयं निर्धारण कर सकें। कोई भी मनुष्य तब तक स्वतन्त्र नहीं माना जा सकता जब तक कि उसे चुनाव करने की स्वतन्त्रता नहीं है, वह निर्धनता रेखा से नीचे हैं, वह शिक्षित नही है, तथा उसे कोई हुनर नहीं आता। आर्थिक विकास से लोगों को चुनाव की स्वतन्त्रता मिलती है तथा उनकी आर्थिक स्थिति ठीक होती है। वे शिक्षित तथा हुनरमन्द बनते हैं। अतएव आर्थिक विकास का तीसरा पहलू है उपभोग वस्तुओं के उत्पादन में विभिन्नता लाना तथा चुनाव के क्षेत्र में विस्तार करना।

संक्षेप में, ए॰ पी॰ थिरलवाल के अनुसार, हम कह सकते हैं कि **"आर्थिक विकास वह स्थिति है (i) जिसमें आधारभूत आवश्यकताओं की सन्तुष्टि में सुधार होता है। (ii) जब देश की आर्थिक प्रगति उसके निवासियों के स्वाभिमान की भावना को बढ़ाने में काफी योगदान देती है (iii) जब भौतिक विकास के कारण लोगों के लिए चुनाव के क्षेत्र में विस्तार हो जाता है।"** (In short, we can say that development has occurred when there has been an improvement in basic needs, when economic progress has contributed to a greater sense of self-esteem for the country and individuals within it and when material advancement has extended the range of choice of individuals.– **A.P. Thirwal**)

संक्षेप में, आर्थिक विकास से अभिप्राय उस प्रक्रिया से है जिससे न केवल प्रति व्यक्ति आय में दीर्घकालीन वृद्धि होती है, बल्कि आय व धन के असमान वितरण में कमी होती है, आर्थिक कल्याण में वृद्धि होती है और अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक एवं संस्थागत परिवर्तन होते हैं।

निष्कर्ष (Conclusion): **प्रो॰ एम. पी. टोडारो** ने आर्थिक विकास की **गोलेट** (Goulet) द्वारा दी गई परिभाषा के आधार पर इसकी आधुनिक परिभाषा इस प्रकार दी है, **"आर्थिक विकास एक बहुपक्षीय प्रक्रिया है जिसके फलस्वरूप सामाजिक ढांचे,**

लोकप्रिय विचारधाराओं एवम् राष्ट्रीय संस्थाओं में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन होते हैं। इसके साथ-साथ आर्थिक संवृद्धि बढ़ती है, असमानता कम होती है तथा निरपेक्ष निर्धनता का उन्मूलन होता है।'' (Economic development is a multi-dimensional process involving major changes in social structures, popular attitudes, and *national institutions as well as the acceleration of economic growth, the reduction of inequality and* the eradication of absolute poverty. – **M.P. Todaro**)

डॉ० उमन (Dr. Omen) के अनुसार, **''आर्थिक विकास से अभिप्राय लोगों को निर्धनता, बेकारी, खराब स्वास्थ्य आदि अमानवीय तत्त्वों से ऊपर उठाकर अधिक मानवीय बनाना है। हम आर्थिक विकास की परिभाषा मानवीयकरण (Humanisation) के रूप में दे सकते हैं।''**

■ 4. आर्थिक विकास के तत्त्व (Elements of Economic Development)

उपरोक्त दृष्टिकोणों (Approaches) के अनुसार आर्थिक विकास के मुख्य तत्त्व चार हैं:

(1) प्रति व्यक्ति वास्तविक आय में वृद्धि (Rise in Real Per Capital Income): आर्थिक विकास का उद्देश्य प्रति व्यक्ति आय में होने वाली वृद्धि से है। प्रति व्यक्ति आय का अनुमान राष्ट्रीय आय को जनसंख्या से भाग देने पर लगाया जा सकता है।

$$\textbf{प्रति व्यक्ति आय (Per Capita Income)} = \frac{\textbf{राष्ट्रीय आय (National Income)}}{\textbf{जनसंख्या (Population)}}$$

वास्तविक आय से अभिप्राय किसी देश की मौद्रिक आय के स्थिर कीमतों पर लगाए जाने वाले अनुमान से है।

(2) दीर्घकालीन प्रक्रिया (Long-Run Process): प्रक्रिया शब्द से अभिप्राय अर्थव्यवस्था में दीर्घकाल में होने वाले परिवर्तनों से है। इन परिवर्तनों का प्रभाव साधनों की पूर्ति और वस्तुओं की मांग को प्रभावित करने वाले तत्त्वों पर पड़ता है। इनका संबंध संस्थागत तथा संरचनात्मक परिवर्तनों से है।

(3) आर्थिक कल्याण में वृद्धि (Increase in Economic Welfare): आर्थिक विकास की स्थिति में आर्थिक कल्याण में वृद्धि होनी चाहिये। प्रति व्यक्ति वास्तविक आय में इस प्रकार वृद्धि होनी चाहिए कि निर्धनता रेखा से नीचे रहने वाले लोगों की संख्या में वृद्धि नहीं हो। इसके विपरीत, निर्धनता रेखा से नीचे लोगों की संख्या में अवश्य कमी होनी चाहिए। इसके साथ-साथ, आय की असमानता में भी वृद्धि नहीं होनी चाहिए। वास्तव में **प्रो० मायर** (Meier) के अनुसार आर्थिक विकास की मुख्य विशेषताएं **निर्धनता उन्मूलन** (Alleviation of Poverty) या लोगों के जीवन स्तर में वृद्धि होना है। **कोलिन क्लार्क** का भी कहना है कि, **''आर्थिक विकास से अभिप्राय आर्थिक कल्याण में होने वाली वृद्धि से है।''**

> **निर्धनता रेखा क्या है?**
> यह वह रेखा है जो उन लोगों की पहचान करने के लिए खींची जाती है जिनके पास पर्याप्त मात्रा में भोजन, कपड़ा तथा मकान उपलब्ध नहीं है।

(4) संरचनात्मक, संस्थागत तथा तकनीकी परिवर्तन (Structural, Institutional and Technical change): विकास प्रक्रिया के द्वारा अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक, संस्थागत तथा तकनीकी परिवर्तन भी होने चाहिएं। उत्पादन एवं रोजगार के प्राथमिक क्षेत्र से माध्यमिक एवं **तृतीयक** (Tertiary) क्षेत्र में होने वाले परिवर्तन महत्त्वपूर्ण **संरचनात्मक परिवर्तन** (Structural Change) हैं। श्रम प्रधान तकनीक से पूंजी प्रधान तकनीक की ओर होने वाला परिवर्तन **तकनीकी परिवर्तन** (Technical Change) है। भूमि के स्वामित्व में अनुपस्थित भू-स्वामियों से भूमि का वास्तविक रूप से खेती करने वालों की ओर होने वाला परिवर्तन विकास क्रिया से संबंधित एक महत्त्वपूर्ण **संस्थागत परिवर्तन** (Institutional Change) है।

अतएव आर्थिक कल्याण में वृद्धि से अभिप्राय न केवल दीर्घकाल में वास्तविक प्रतिव्यक्ति में निरन्तर वृद्धि से है (जो 'संवृद्धि' की एक प्रतिरूप (Typical) विशेषता है) बल्कि इससे अभिप्राय आर्थिक कल्याण में वृद्धि से भी है (जो आय तथा धन की

असमानताओं में कमी तथा रोजगार के अधिक अवसरों के रूप में व्यक्त किया जाता है) और संवृद्धि की प्रक्रिया के साथ संरचनात्मक, संस्थागत तथा तकनीकी परिवर्तनों से भी है।

■ 5. धारणीय विकास (Sustainable Development)

वर्तमान विचारधारा में आर्थिक संवृद्धि एवं आर्थिक विकास की धारणाओं के अतिरिक्त एक अन्य धारणा अर्थात् **धारणीय विकास** का प्रयोग किया गया है। धारणीय विकास से अभिप्राय उस आर्थिक विकास से है, जो पर्यावरण (Environment) को बिना कोई हानि पहुंचाए किया जाता है। अतएव **प्रचलित दृष्टिकोण** के अनुसार आर्थिक विकास जनसंख्या की वर्तमान एवं भावी दोनों पीढ़ियों के लिए लाभदायक होना चाहिए। अन्य शब्दों में, धारणीय विकास से अभिप्राय विकास की उस प्रक्रिया से है जो भावी पीढ़ी की आवश्यकताओं को पूरी करने की योग्यता को बिना कोई हानि या क्षति पहुंचाए वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं को पूरा करती है। यह तभी संभव है जब देश के आर्थिक विकास के साथ-साथ पर्यावरण को कोई विशेष हानि नहीं पहुँचे।

नोट: धारणीय विकास की धारणा की विस्तार सहित व्याख्या आगे अध्याय 15 में की गई है।

■ 6. विकसित अर्थव्यवस्थाओं की विशेषतायें (Features of Developed Economies)

विकसित अर्थव्यवस्थाओं की मुख्य विशेषतायें निम्नलिखित हैं:

(1) अधिक प्रति व्यक्ति वास्तविक आय (More Per capita Real Income): विकसित अर्थव्यवस्थायें वे अर्थव्यवस्थायें हैं जिनकी प्रति व्यक्ति वास्तविक आय अधिक होती है। **वर्ल्ड एटलस** के अनुसार विकसित अर्थव्यवस्थाओं की प्रति व्यक्ति वार्षिक आय 9,000 डालर या उससे कुछ अधिक होती है, जो कि अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं की प्रति व्यक्ति आय से लगभग 30 गुना अधिक होती है।

(2) ऊंची वृद्धि दर (High Rate of Growth): विकसित अर्थव्यवस्थाओं की प्रति व्यक्ति वार्षिक आय ही अधिक नहीं होती बल्कि उसकी विकास दर भी अपेक्षाकृत अधिक होती है। 2006-07 तक विकसित देशों की वृद्धि दर औसतन 3.2 प्रतिशत थी जबकि अधिकतर अल्पविकसित देशों की केवल 2.5 प्रतिशत थी। विकसित देश अपनी अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर की निरन्तरता को बनाये रखने (Sustained Rise) में कामयाब रहते हैं।

(3) ऊंचा जीवन स्तर (High Standard of Living): विकसित देशों के लोगों का जीवन स्तर ऊंचा होता है। वे केवल अपनी भोजन, कपड़े तथा मकान की आवश्यकताओं को ही पूरा नहीं करते बल्कि आराम (Comforts) तथा विलासिता (Luxuries) की वस्तुओं का भी काफी सीमा तक उपभोग करने में सफल रहते हैं। उदाहरण के लिये यू. एस. ए. में, जो एक विकसित अर्थव्यवस्था है, प्रति हजार व्यक्ति 800 टी. वी. सेट, 2,122 रेडियो, 130 मोबाइल फोन है जबकि भारत जैसी अर्थव्यवस्था में इनकी संख्या क्रमशः 70, 130 तथा 0.1 है। विकसित देशों में प्रतिदिन प्रतिव्यक्ति लगभग 3,700 कैलोरी का उपभोग करता है जबकि अल्पविकसित देशों में केवल 2400 कैलोरी का उपभोग किया जाता है। विकसित देशों का मानवीय विकास सूचकांक सामान्यतः 0.8 से 0.9 होता है जबकि अल्पविकसित देशों का 0.3 से 0.4 होता है।

(4) पूंजी निर्माण की ऊंची दर तथा कम पूंजी-उत्पाद अनुपात (High Rate of Capital Formation and Low Capital-output Ratio): विकसित देशों में पूंजी निर्माण की दर अधिक होती है। इन देशों में लोगों की आय अधिक होती है। इसलिये उनमें बचत करने की क्षमता अधिक होती है। वे अपनी बचत को लाभप्रद कार्यों में निवेश करने में समर्थ होते हैं क्योंकि विकसित अर्थव्यवस्थाओं में निवेश की अधिक सुविधायें होती हैं। अधिक मात्रा निवेश किये जाने के फलस्वरूप पूंजी निर्माण की दर बढ़ती है। विकसित देशों में पूंजी निर्माण की दर 30 से 35 प्रतिशत तक की होती है। पूंजी निर्माण की दर अधिक होने के फलस्वरूप उत्पादन ऊंचे पैमाने पर होता है। उत्पादन बढ़ाने के दो उपाय हैं:

(i) पूंजी गहन (Capital Deepening): इस उपाय से अभिप्राय यह है कि देश के वर्तमान श्रमिकों में से प्रत्येक को अच्छी मशीनें दी जायें, उन्हें प्रशिक्षण दिया जाए तथा उनकी योग्यता में वृद्धि करने के प्रयत्न किये जायें। इसके फलस्वरूप राष्ट्रीय आय तथा प्रति व्यक्ति उत्पादकता में वृद्धि होगी।

(ii) पूंजी विस्तार (Capital Widening): इस उपाय से अभिप्राय यह है कि देश में अधिक श्रमिकों को रोजगार देने के लिए मशीनों तथा यन्त्रों का अधिक प्रयोग किया जाये। कई उद्योग जैसे - इस्पात, रसायन, इलैक्ट्रॉनिक्स आदि के लिए बहुत अधिक पूंजी की आवश्यकता होती है। पूंजी गहन तथा पूंजी विस्तार दोनों क्रियाएं साथ-साथ चलती हैं। इसके लिए पूंजी की बहुत आवश्यकता होती है। विकसित देशों में पूंजी अधिक मात्रा में उपलब्ध होने के कारण ये दोनों क्रियायें ही संभव हैं। विकसित देशों में **पूंजी-उत्पाद अनुपात** (Capital-Output Ratio) कम होता है। इसके फलस्वरूप इन देशों में पूंजी के कम निवेश से भी उत्पादन अधिक होता है अर्थात् पूंजी की उत्पादकता अधिक होती है।

(5) उन्नत मानवीय पूंजी (Developed Human Capital): विकसित अर्थव्यवस्थाओं में मानवीय पूंजी पूर्ण विकसित होती है। **मानवीय पूंजी से अभिप्राय है जनसंख्या के दिमागों तथा हाथों में निहित ज्ञान तथा हुनर।** (Human capital is the skill and knowledge embodied in the minds and hands of the population.) मानवीय पूंजी का तब निर्माण होता है जब लोगों को शिक्षा, स्वास्थ्य, ट्रेनिंग आदि की सुविधायें प्रदान करने के लिए निवेश किया जाता है। इस निवेश से भौतिक पूंजी में निवेश की तुलना में अधिक प्रतिफल प्राप्त होता है। मानवीय पूंजी के कई रूप हैं जैसे- **(i) श्रमिकों का अच्छा स्वास्थ्य तथा लम्बी आयु:** इसके फलस्वरूप श्रम की उत्पादकता में वृद्धि होती है उनकी **अनुपस्थिति** (Absence) कम होती है तथा उनकी बीमारी पर खर्च कम होने के कारण उनका स्तर ऊंचा होता है। विकसित अर्थव्यवस्थाओं में श्रमिक स्वस्थ्य होते हैं। **(ii) श्रमिकों की शिक्षा तथा प्रशिक्षण:** इसके फलस्वरूप श्रमिकों की कार्यकुशलता तथा उत्पादकता में वृद्धि होती है। वे आधुनिकतम मशीनों का भी उपयोग करने में समर्थ हो जाते हैं। इसके फलस्वरूप आधुनिकीकरण की प्रवृत्ति में वृद्धि होती है। विकसित अर्थव्यवस्थाओं में 90 प्रतिशत श्रमिक स्वस्थ होते है। **(iii) नवप्रवर्तन** (Innovation): मानवीय पूंजी का एक रूप श्रमिकों की नवप्रवर्तन करने की योग्यता में वृद्धि है। नवप्रवर्तन का अर्थ है नये आविष्कारों का प्रयोग। इसके फलस्वरूप उत्पादकता तथा उत्पादन क्षमता में वृद्धि होती है। उत्पादन लागत कम होती है तथा नई वस्तुओं का उत्पादन होता है। अतएव मानवीय पूंजी आर्थिक विकास की आधारशिला है। **शूल्ज** के अनुसार, "**मानवीय पूंजी** (Human Capital) **का विकास विकसित अर्थव्यवस्थाओं का सबसे महत्त्वपूर्ण लक्ष्य है।**"

(6) जनसंख्या की कम वृद्धि दर (Low Growth Rate of Population): विकसित अर्थव्यवस्थाओं में जनसंख्या की वृद्धि दर बहुत कम होती है। देश जनांकिकी (Demographic Transition) की चौथी अवस्था से गुजर रहे होते हैं। जनांकिकी परिवर्तन की चतुर्थ अवस्था में निम्न जन्म दर तथा निम्न मृत्यु दर के कारण जनसंख्या की वृद्धि दर निम्न स्तर पर स्थिर हो जाती है। (A low birth rate and low death rate, leading to stationary population growth at low rate.) यह **स्थिर जनसंख्या की अवस्था** (Stationary Population Stage) कहलाती है। इस अवस्था में आर्थिक विकास के परिणामस्वरूप लोगों का जीवन स्तर बहुत ऊंचा हो जाता है। शहरीकरण, औद्योगिकीकरण तथा शिक्षा प्रसार से लोगों के सामाजिक दृष्टिकोण में परिवर्तन आ जाता है। एक बच्चा होने के पश्चात् लोग बच्चों की तुलना में कार, फ्रिज, टेलीफोन इत्यादि सुविधाओं को प्राथमिकता देने लगते हैं। इस अवस्था में बच्चों के सम्बन्ध में लोगों की धारणा यह बन जाती है - एक आनन्द है, दो भीड़ है और तीन अव्यवस्थनीय (One happy, two crowd and three unmanageable)। इस अवस्था में जन्म दर एवं मृत्यु दर दोनों निम्न स्तर पर रहती हैं। इसके फलस्वरूप जनसंख्या निम्न स्तर पर लगभग स्थिर हो जाती है। उदाहरण के लिये, जर्मनी की जनसंख्या वृद्धि दर 0.3% इटली तथा यू. के. की जनसंख्या वृद्धि दर सिर्फ 0.2%; जापान की 0.3% यू. एस. एस. की 1.2% आयरलैण्ड की 0.8% और हंगरी में यह ऋणात्मक है।

(7) तकनीकी प्रगति (Technical Progress): विकसित देश तकनीकी दृष्टि से अत्यंत प्रगतिशील होते हैं। **लिप्सी** के अनुसार, "**तकनीकी प्रगति नवप्रवर्तन के कारण होती है। यह नई वस्तुओं, वर्तमान वस्तुओं के उत्पादन की नई विधियों तथा व्यावसायिक संगठनों के नये प्रकारों को प्रस्तुत करती है।**" (Technical progress is brought about by innovation which introduced new products, new ways of producing existing products and new forms of business organisation. – **Lipsey**) विकसित अर्थव्यवस्थाओं में तकनीकी प्रगति के फलस्वरूप उत्पादन के बाकी साधनों जैसे पूंजी के स्थिर रहने पर भी उत्पादन में वृद्धि होती है। जापान तथा जर्मनी के तीव्र आर्थिक विकास का मुख्य कारण वहां की वैज्ञानिक तथा तकनीकी की उन्नति है। औद्योगिक विकास तथा कृषि की उन्नति के लिये वैज्ञानिक अनुसंधान बहुत महत्त्वपूर्ण होते हैं। तकनीकी विकास के बिना देश का आर्थिक विकास तीव्र गति से नहीं हो सकता। **प्रो. शुम्पीटर** (Schumpeter) ने आर्थिक विकास के लिए नव-प्रवर्तनों

(Innovations) को बहुत आवश्यक माना है। विकसित देश के उद्यमी उत्पादन की नई तकनीकी का प्रयोग काफी सीमा तक करते हैं। तकनीकी प्रगति के कारण **उत्पादन सम्भावना वक्र** (Production Possibility Curve) ऊपर की ओर खिसक जाती है। इससे प्रकट होता है कि उत्पादन के साधनों के स्थिर रहने पर भी उत्पादन में वृद्धि हुई है।

(8) व्यावसायिक ढांचा (Occupational Structure): विकसित देशों में कार्यशील पूंजी का अधिक भाग **तृतीयक क्षेत्र** (Tertiary Occupation) या **द्वितीयक क्षेत्र** (Secondary Occupation) में लगा होता है। प्राथमिक क्षेत्र अर्थात् कृषि में कार्यशील पूंजी का बहुत कम भाग लगा होता है। परन्तु इन देशों की कृषि विकसित होती है। उदाहरणों के लिये यू. एस. ए. में केवल 4 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर निर्भर करती है। परन्तु कृषि के उन्नत होने के कारण वह केवल यू. एस. ए. की ही भोजन संबंधी आवश्यकता को पूरा नहीं करती बल्कि कृषि पदार्थों का निर्यात भी किया जाता है। इसके विपरीत भारत में 64 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर निर्भर करती है। परन्तु कृषि के पिछड़ेपन के कारण यह भारत की भोजन संबंधी आवश्यकता को कठिनाई से पूरा कर पाती है। **विकसित देशों में उद्योग बहुत विकसित होते हैं।** राष्ट्रीय आय का अधिक भाग उद्योगों से ही प्राप्त होता है।

(9) विकास प्रेरक आर्थिक एजेन्सियां (Growth Oriented Economic Agencies): विकसित देशों में विकास प्रेरक एजेन्सियां पर्याप्त मात्रा में पाई जाती है। तीव्र गति तथा न्यूनतम लागत पर आर्थिक विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए विकास प्रेरक आर्थिक एजेन्सियों का होना आवश्यक है। इनमें से कुछ प्रमुख एजेन्सियां हैं - बैंक, वित्तीय एवम् निवेश सम्बन्धी संस्थाएं, नियोजन संस्थाएं आदि। इन संस्थाओं के फलस्वरूप बचत को बढ़ावा मिलता है, निवेश को सही दिशा मिलती है तथा व्यावहारिक परियोजनाओं का निर्माण सुविधाजनक बन जाता है। संगठित तथा कार्यकुशल बैंकिंग व्यवस्था, संगठित मुद्रा बाजार तथा पूंजी बाजार दोनों ही पाये जाते हैं। इनके द्वारा उद्योग तथा कृषि आदि को अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन ऋण उचित ब्याज पर प्राप्त हो जाता है। सरकार भी कई प्रकार से आर्थिक विकास की महत्त्वपूर्ण एजेन्सी का कार्य करती है। सरकार का विकास के लिये आवश्यक **अद्योसंरचना** (Infrastructure) भारी और अधिक जोखिम वाले उद्योगों की स्थापना तथा कम कीमतों पर सार्वजनिक सेवायें उपलब्ध कराने में महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। सरकार की मौद्रिक तथा राजकोषीय नीतियां भी आर्थिक विकास की निर्धारक हैं। विकसित देशों की मौद्रिक नीतियां देश के आर्थिक विकास के अनुकूल होती हैं। इसका अभिप्राय यह है कि मुद्रा की पूर्ति आवश्यकता के अनुसार होती है तथा ब्याज की दर कम होती है। आर्थिक विकास के फलस्वरूप कीमतों में वृद्धि होती है। इसके लिये यह आवश्यक है कि कीमतों में होने वाली वृद्धि को एक सीमा तक ही रखा जाए, वास्तव में वित्तीय स्थिरता आर्थिक विकास का एक महत्वपूर्ण निर्धारक है। राजकोषीय नीतियों द्वारा बचत तथा निवेश के ढांचे को प्रभावित किया जाता है।

(10) उन्नत विदेशी व्यापार (Advanced Foreign Trade): विकसित अर्थव्यवस्थाओं का विदेशी व्यापार उन्नत होता है। इन अर्थव्यवस्थाओं के निर्यात अधिक होते हैं। उनकी तुलना में आयात कम होते हैं। इसलिये भुगतान सन्तुलन अनुकूल (Favourable Balance of Payments) होता है। विदेशी व्यापार के उन्नत होने के कारण इन देशों में उत्पादन अधिक होता है। उत्पादन अधिक होने के कारण रोजगार में वृद्धि होती है, लोगों का जीवन स्तर ऊंचा होता है तथा बाजार का विस्तार होता है। विकसित अर्थव्यवस्थाओं का संसार के निर्यात-आयात व्यापार में महत्वपूर्ण योगदान होता है। इन देशों के विदेशी मुद्रा के कोष भी अधिक होते हैं।

(11) विकसित प्राकृतिक साधन (Developed Natural Resources): विकसित अर्थव्यवस्था अपने प्राकृतिक साधनों का काफी सीमा तक प्रयोग करने में सफल रहती है। यू. एन. ओ. के अनुसार, **''प्राकृतिक साधन वह कोई भी वस्तु होती है जो मनुष्य को अपने प्राकृतिक पर्यावरण से प्राप्त होती है तथा जिसे वह किसी प्रकार से अपने लाभ के लिये प्रयोग कर सकता है।''** (A natural resource is anything found by man in his natural environment that he may in some way utilise for his own benefit. – **U.N.O.**) इसके अन्तर्गत भूमि, जलवायु, पानी, वन, खनिज पदार्थ, ऊर्जा के साधन जैसे - पेट्रोल, गैस आदि शामिल किये जाते हैं। **रिचर्ड टी. गिल** के अनुसार, **''प्राकृतिक साधनों का आर्थिक विकास को सीमित करने या प्रोत्साहित करने में निर्णायक महत्त्व है।''** देश की भूमि की प्रकृति तथा जलवायु पर कृषि तथा लोगों की कार्यक्षमता निर्भर करती है। देश के धरातल तथा जलमार्गों पर यातायात के विभिन्न साधनों का विकास निर्भर करता है। नदियों से सिंचाई, बिजली तथा परिवहन की सुविधायें प्राप्त होती हैं। वनों से ईंधन, इमारती लकड़ी, कई उद्योगों जैसे कागज, आदि को कच्चा माल प्राप्त होता है। पेट्रोल, कोयला, गैस आदि के रूप में ऊर्जा प्राप्त होती है। इसी प्रकार खनिज पदार्थों जैसे लोहा, तांबा, टीन, सोना, चांदी, जवाहरात आदि का

देश के औद्योगिक तथा आर्थिक विकास के लिये बहुत अधिक महत्त्व है। जिन देशों में प्राकृतिक साधन अधिक होते हैं वे देश अपना आर्थिक विकास आसानी से कर सकते हैं। आर्थिक दृष्टि से विकसित अधिकतर देश जैसे अमेरिका, ग्रेट ब्रिटेन, रूस, कनाडा आदि प्राकृतिक साधनों में काफी सम्पन्न हैं। परन्तु प्राकृतिक साधनों की उपलब्धता में परिवर्तन आता रहता है। वैज्ञानिक, तकनीकी विकास तथा नये आविष्कारों के फलस्वरूप नये साधनों का पता चलता है। उदाहरण के लिये **द्वितीय महायुद्ध** के पश्चात् अरब देश पेट्रोल के कुओं की खोज के द्वारा बहुत अधिक धनी बन सके हैं। परन्तु आर्थिक विकास के लिये केवल प्राकृतिक साधनों की उपलब्धता ही काफी नहीं है उनका उपयुक्त प्रयोग तथा विकास भी आवश्यक है। उदाहरण के लिए, अफ्रीका के कई देश प्राकृतिक साधनों की दृष्टि से बहुत धनी हैं। परन्तु अपने साधनों का उपयुक्त विकास तथा प्रयोग नहीं कर पाने के कारण वे अपना आर्थिक विकास नहीं कर पाये हैं। अतएव विकसित देश अच्छी तकनीकों के प्रयोग द्वारा अपने प्राकृतिक साधनों का उचित उपयोग करके अपने आर्थिक विकास की गति को तीव्र करने में सफल रहते हैं।

(12) बाजार का विस्तृत आकार *(Wider Size of the Market): विकसित अर्थव्यवस्थाओं में बाजार का आकार* विस्तृत होता है। बाजार के विस्तृत आकार के फलस्वरूप **श्रम विभाजन** तथा **विशिष्टीकरण** सम्भव हो जाता है। इनके फलस्वरूप कार्यकुशलता में वृद्धि होती है तथा साधनों की उत्पादकता बढ़ जाती है। बाजार के आकार के बड़े होने के कारण उत्पादन का पैमाना भी बढ़ता है। इसके फलस्वरूप कई प्रकार की आन्तरिक तथा बाहरी बचतें प्राप्त होती हैं। इनके फलस्वरूप उत्पादन की मात्रा बढ़ती है तथा उत्पादन लागत कम होती है। इसलिये उनमें बाजार का विस्तृत आकार आर्थिक विकास का महत्त्वपूर्ण निर्धारक होता है।

■ 7. आर्थिक विकास तथा आर्थिक संवृद्धि में अन्तर

(Difference between Economic Development and Economic Growth)

एक लम्बे समय तक आर्थिक विकास (Economic Development), आर्थिक संवृद्धि (Economic Growth), आर्थिक उन्नति (Economic Progress) तथा दीर्घकालीन परिवर्तन (Secular Change) आदि शब्दों का प्रयोग एक ही अर्थ में किया जाता रहा है। **प्रो. शुम्पीटर** ने 1911 में अपनी पुस्तक 'The Theory of Economic Development' में आर्थिक विकास तथा आर्थिक संवृद्धि शब्दों में अन्तर को स्पष्ट किया। इसके अतिरिक्त **श्रीमती उर्सला हिक्स, एलफ्रेड बोन, किण्डलबर्गर** आदि *अर्थशास्त्रियों ने भी इन शब्दों के अर्थ की भिन्नता को स्पष्ट किया है।* **रोबर्ट क्लावर** (Robert Clower) ने **लिबेरियन अर्थव्यवस्था** (Liberian Economy) से सम्बन्धित लिखी गई अपनी पुस्तक का नाम 'Growth without Development' रख कर यह स्पष्ट कर दिया कि किसी अर्थव्यवस्था में **संवृद्धि** (Growth) के होते हुए भी यह सम्भव है कि उसका विकास न हो। इसलिये अर्थशास्त्री इन दोनों धारणाओं में अन्तर करते हैं। इन दोनों धारणाओं में मुख्य अन्तर निम्नलिखित हैं:

(1) संकुचित तथा व्यापक धारणाएं (Narrow and Broad Concepts): आर्थिक संवृद्धि एक संकुचित धारणा है और यह एकपक्षीय धारणा है अर्थात् केवल राष्ट्रीय तथा प्रति व्यक्ति आय में होने वाली वृद्धि से सम्बन्धित है। इसके विपरीत आर्थिक विकास एक व्यापक धारणा है अर्थात् यह **बहुपक्षीय** है। इसका सम्बन्ध आय तथा **संरचनात्मक परिवर्तनों** दोनों से है। **प्रो० किन्डलबर्गर** के अनुसार, "**आर्थिक संवृद्धि का अर्थ अधिक उत्पादन से है जबकि आर्थिक विकास के अन्तर्गत अधिक उत्पादन और तकनीकी तथा संस्थागत प्रबन्धों में परिवर्तन दोनों आते हैं जिनसे उत्पादन और वितरण किया जाता है।**" (Economic growth means more output, while economic development implies both more output and changes in the technical and institutional arrangements by which it is produced and distributed. – **Kindleberger**) वास्तव में आर्थिक विकास एक अधिक व्यापक शब्द है। आर्थिक विकास की स्थिति में राष्ट्रीय आय के बढ़ने के साथ-साथ देश के आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक ढांचे में भी परिवर्तन होता है। उदाहरण के लिए, राष्ट्रीय आय में कृषि क्षेत्र का तुलनात्मक योगदान कम हो जाता है तथा उद्योगों और सेवाओं का तुलनात्मक योगदान बढ़ जाता है। **प्रो. ब्राइट सिंह** के अनुसार, "**आर्थिक विकास एक बहुपक्षीय प्रक्रिया है जिसमें केवल मौद्रिक आय में ही वृद्धि सम्मिलित नहीं होती है, बल्कि सामाजिक आदतों, शिक्षा, जन-स्वास्थ्य, अधिक अवकाश और वास्तव में उन सभी सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों में सुधार सम्मिलित है जो एक पूर्ण एवं सुखी जीवन का निर्माण करती हैं।**" (Economic development is a multi-dimensional phenomena, it

involves not only increase in money incomes, but also improvement in real habits, education, public health, greater leisure and infact all the social and economic circumstances that make for a fuller and happier life.– **Prof. Bright Singh**) इसके विपरीत संवृद्धि (Growth) की स्थिति में केवल राष्ट्रीय आय में वृद्धि सम्मिलित होती है तथा अर्थव्यवस्था के संरचनात्मक ढांचे में कोई परिवर्तन नहीं होता।

(2) संख्यात्मक तथा गुणात्मक परिवर्तन (Quantitative and Qualitative Changes): **प्रो० जे० के० मेहता** के अनुसार, "**विकास तथा संवृद्धि शब्दों का एक ही अर्थ नहीं होता।**" संवृद्धि शब्द **संख्यात्मक** (Quantitative) है तथा विकास शब्द **गुणात्मक** (Qualitative) है। **मायर** के अनुसार, **विकास प्रक्रिया** (Development Process) **में कई महत्त्वपूर्ण गुणात्मक परिवर्तन होते हैं जो उसे संवृद्धि से आगे ले जाते हैं।** यह गुणात्मक परिवर्तन उत्पादन के साधनों के कुशल कार्यकरण तथा उत्पादन तकनीक में सुधार के रूप में प्रकट होते हैं। आर्थिक विकास का सम्बन्ध उत्पादन में वृद्धि होने के साथ-साथ उसके उचित बंटवारे से भी है। यदि राष्ट्रीय आय का उचित वितरण नहीं किया जायेगा तो अर्थव्यवस्था में निर्धन लोगों के जीवन स्तर में कोई परिवर्तन नहीं होगा। इसलिये आर्थिक विकास वह क्रिया है जिसमें **विकास न्यायपूर्ण** (Growth with Justice) होता है जबकि **आर्थिक संवृद्धि** (Growth) का सम्बन्ध केवल राष्ट्रीय आय तथा प्रति व्यक्ति आय में होने वाली **बढ़ती हुई वृद्धि दर** (Higher Growth Rate) से है। इसका न्यायपूर्ण वितरण से कोई सम्बन्ध नहीं है। **ब्राइन्स** तथा **स्टोन** के अनुसार, "**आर्थिक संवृद्धि उस समय होती है जब अधिक वस्तुओं का उत्पादन किया जा सकता है। आर्थिक विकास से अभिप्राय है जीवन की गुणवत्ता, उपलब्ध वस्तुओं की गुणवत्ता तथा उत्पादन विधियों में सुधार।**" (Economic growth occurs when more goods can be produced. Economic Development entails improvements in the quality of life or in the qualities of goods available or in the ways production is organised. - **Bryns and Stone**)

(3) स्वाभाविक तथा अनियमित परिवर्तन (Spontaneous and Discontinuous Changes): **प्रो० शुम्पीटर** के अनुसार, "**विकास स्थिर अवस्था में होने वाला आकस्मिक तथा अनियमित परिवर्तन है जो पुरानी सन्तुलन अवस्था को सदैव के लिये परिवर्तित कर देता है। इसके विपरीत संवृद्धि दीर्घकाल में होने वाला क्रमिक तथा सतत परिवर्तन है जो बचत तथा जनसंख्या की दर में सामान्य वृद्धि के कारण उत्पन्न होते हैं।**" (Development is discontinuous and spontaneous changes in the stationary state which forever alters and displaces the equilibrium state previously existing, while growth is a gradual and steady change in the long-run which comes about by general increase in the rate of saving and population. – **Schumpeter**)। अतएव विकास शब्द का प्रयोग स्वाभाविक तथा अनियमित परिवर्तनों के लिए किया जाता है, इसके विपरीत संवृद्धि शब्द का प्रयोग निरन्तर तथा स्थिर परिवर्तनों के लिए किया जाता है।

(4) आय का वितरण (Distribution of Income): आर्थिक संवृद्धि में लोगों में होने वाले आय के वितरण को ध्यान में नहीं रखा जाता है। इसके फलस्वरूप आय में वृद्धि होने पर भी आय का वितरण असमान होने के कारण निर्धन लोगों की संख्या में वृद्धि हो सकती है। इसके विपरीत आर्थिक विकास में आय के वितरण को ध्यान में रखा जाता है। इस प्रकार की नीतियां अपनाई जाती हैं कि जिसके फलस्वरूप आय के वितरण की असमानता कम हो सके। इसके लिए आय का पुनर्वितरण धनी व्यक्तियों की ओर से निर्धन व्यक्तियों की ओर किया जाता है।

(5) अल्पविकसित देशों की समस्याओं से सम्बन्धित (Related to the Problems of Underdeveloped Countries): **श्रीमती उर्सला हिक्स** का यह विचार है कि विकास शब्द का यह प्रयोग अल्पविकसित देशों की समस्याओं का अध्ययन करने के लिए किया जाता है। इन देशों में विकास एवं अशोषित प्राकृतिक साधनों के उपयोग की सम्भावना होती है। जबकि **संवृद्धि (Growth)** शब्द का प्रयोग विकसित देशों की आर्थिक समस्याओं का अध्ययन करने के लिए किया जाता है। इन देशों के अधिकतर साधनों का पूर्ण उपयोग हो रहा होता है। (Development should relate to backward countries, where there is possibility of developing and using hitherto unused resources. The term growth is applicable to economically advanced countries, where most of the resources are already known and developed.

– **Mrs. Ursula Hicks**) अतएव आर्थिक विकास शब्द का प्रयोग अल्पविकसित देशों के अशोषित प्राकृतिक तथा मानवीय साधनों के पूर्ण विदोहन के लिए किया जाता है। इसके विपरीत आर्थिक संवृद्धि शब्द का प्रयोग विकसित देशों में पूर्ण रोजगार की स्थिति को कायम रखने के लिये किया जाता है। **प्रो० मैडिसन** का भी विचार है कि "**आय-स्तर का ऊंचा करना अमीर देशों में संवृद्धि कहलाता है तथा गरीब देशों में विकास कहलाता है।**" (The raising of income levels is generally called economic growth in rich countries and in poor ones it is called economic development. – **Maddison**) उपरोक्त विवरण को उदाहरण द्वारा स्पष्ट करना चाहें तो अमेरिका की आर्थिक प्रगति को संवृद्धि कहा जा सकता है जबकि रूस, एशिया तथा अफ्रीका की आर्थिक प्रगति, जो सुविचारित प्रयासों का परिणाम है, **आर्थिक विकास** कहा जा सकता है।

(6) **उत्पादकता में वृद्धि** (Increase in Productivity): आर्थिक संवृद्धि में उत्पादकता वृद्धि की अवहेलना की जाती है। उत्पादकता से अभिप्राय है प्रति हेक्टेयर भूमि या प्रति श्रमिक द्वारा किया जाने वाला उत्पादन। इसके विपरीत आर्थिक विकास की धारणा आवश्यक रूप से उत्पादकता वृद्धि से संबंधित होती है। इसके फलस्वरूप प्रति इकाई आगत (Input) से अधिक उत्पाद (Output) प्राप्त होता है।

(7) **विचारधारा में परिवर्तन** (Change in Outlook): आर्थिक संवृद्धि लोगों के जीवन की गुणवत्ता के लिए संस्थागत तथा आधुनिकता की विचारधारा में हुए परिवर्तन के बिना भी हो सकती है। इसके विपरीत आर्थिक विकास का संबंध लोगों की विचारधारा में परिवर्तन से है। लोग जीवन की गुणवत्ता की धारणा, संस्थागत तथा आधुनिकता की विचारधारा में होने वाले परिवर्तनों की प्रशंसा करने लगते हैं।

(8) **संरचनात्मक, संस्थागत और तकनीकी परिवर्तन** (Structural, Institutional and Technical Changes): आर्थिक संवृद्धि अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक, संस्थागत एवं तकनीकी परिवर्तन से स्वतंत्र होती है, इसके विपरीत आर्थिक विकास की अवधारणा संरचनात्मक, संस्थागत एवं तकनीकी परिवर्तन से आवश्यक रूप से संबंधित होती है।

संक्षेप में, हेरिक तथा किन्डलबर्गर, के अनुसार, "**आर्थिक संवृद्धि का अर्थ है अधिक उत्पादन। आर्थिक विकास से अभिप्राय केवल अधिक उत्पादन ही नहीं, वरन् पूर्व उत्पादित वस्तुओं की तुलना में विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन और इसके साथ-साथ वस्तुओं के उत्पादन और वितरण प्रणाली में तकनीकी तथा संस्थागत परिवर्तन।**" (Economic growth means more output. Economic development implies not only more output but also different kinds of output than were previously produced as well as changes in the technical and institutional arrangements by which output is produced and distributed. – **Herrick** and **Kindleberger**)

■ 8. आर्थिक संवृद्धि तथा आर्थिक विकास की धारणाओं में अन्तर

(Difference between the Concepts of Economic Growth and Economic Development)

आर्थिक संवृद्धि तथा आर्थिक विकास में मुख्य अन्तर निम्नलिखित हैं:

आर्थिक संवृद्धि **(Economic Growth)**	आर्थिक विकास **(Economic Development)**
(1) **संकुचित आर्थिक धारणा**: यह एक संकुचित आर्थिक धारणा है। इसका अर्थ केवल प्रति व्यक्ति वास्तविक आय या उत्पादन में वृद्धि है।	(1) **व्यापक आर्थिक धारणा**: यह एक व्यापक धारणा है। इसका अर्थ प्रति व्यक्ति वास्तविक आय या उत्पादन में वृद्धि के साथ-साथ आर्थिक कल्याण में होने वाली वृद्धि से है।
(2) **केवल संख्यावाचक आर्थिक धारणा**: आर्थिक संवृद्धि की धारणा संख्यात्मक है। इसका संबंध केवल प्रति व्यक्ति उत्पादन की दर से है।	(2) **संख्यात्मक तथा गुणात्मक आर्थिक धारणा**: आर्थिक विकास की धारणा संख्यात्मक तथा गुणात्मक दोनों प्रकार की धारणा है। इसका संबंध प्रति व्यक्ति उत्पादन की वृद्धि दर के साथ-साथ आर्थिक कल्याण से है।

(3) निरन्तर परिवर्तन: आर्थिक संवृद्धि शब्द का प्रयोग एक निरन्तर एवं स्थिर परिवर्तनों के लिए किया जाता है।	**(3)अनियमित परिवर्तन:** आर्थिक विकास शब्द का प्रयोग स्वाभाविक एवं अनियमित परिवर्तनों के लिए किया जाता है।
(4) आय के वितरण की अवेहलना: आर्थिक संवृद्धि में लोगों में होने वाले आय के वितरण को ध्यान में नहीं रखा जाता। अर्थात आय में वृद्धि होने पर भी आय का वितरण असमान होने पर निर्धन लोगों की संख्या में वृद्धि हो सकती है।	**(4) आय के वितरण को ध्यान में रखा जाता है:** आर्थिक विकास में आय के वितरण को ध्यान में रखा जाता है अर्थात इस बात का ध्यान रखा जाता है कि आय के वितरण की असमानता कम होनी चाहिए।
(5) विकसित देशों की प्रगति का केन्द्र-बिन्दु: आर्थिक संवृद्धि की धारणा का प्रयोग सामान्यत: विकसित देशों की आर्थिक प्रगति के लिए किया जाता है।	**(5) अल्पविकसित देशों की प्रगति का केन्द्र-बिन्दु:** आर्थिक विकास की धारणा का प्रयोग सामान्यत: अल्पविकसित देशों की प्रगति के लिए किया जाता है।
(6) उत्पादकता वृद्धि की अवहेलना: आर्थिक संवृद्धि में उत्पादकता वृद्धि (प्रति हेक्टेयर उत्पादन या प्रति श्रम उत्पादन) की अवहेलना की जा सकती है।	**(6) उत्पादकता वृद्धि से सम्बन्धित:** आर्थिक विकास की धारणा आवश्यक रूप से उत्पादकता वृद्धि से सम्बन्धित होती है। इसके फलस्वरूप, प्रति इकाई आगत (Input) से अधिक उत्पाद (Output) प्राप्त होता है।
(7) विचारधारा में परिवर्तन नहीं: आर्थिक संवृद्धि लोगों के जीवन की गुणवत्ता के लिए संस्थागत तथा आधुनिकता की विचारधारा में हुए परिवर्तन के बिना भी हो सकती है।	**(7) विचारधारा में परिवर्तन:** आर्थिक विकास का सम्बन्ध लोगों की विचारधारा में परिवर्तन से है। लोग जीवन की गुणवत्ता की अवधारणा, जैसे छोटे परिवारों से जीवन की गुणवत्ता उत्तम होती है, की प्रशंसा करने लगते हैं।
(8) संरचनात्मक, संस्थागत एवं तकनीकी परिवर्तन से स्वतन्त्र: आर्थिक संवृद्धि अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक, संस्थागत तथा तकनीकी परिवर्तन से स्वतन्त्र होती है।	**(8) संरचनात्मक, संस्थागत तथा तकनीकी परिवर्तन से सम्बन्धित:** आर्थिक विकास की अवधारणा संरचनात्मक, संस्थागत एवं तकनीकी परिवर्तन से आवश्यक रूप से सम्बन्धित होती है।

उपरोक्त पृष्ठों में हमने 'आर्थिक विकास' और 'आर्थिक संवृद्धि' में अन्तर को स्पष्ट किया है परन्तु इस अन्तर से कोई विशेष उद्देश्य पूरा नहीं होता। व्यावहारिक जीवन में इन दोनों शब्दों का एक ही अर्थ लिया जाता है। **पॉल बरान के अनुसार, "विकास और संवृद्धि के भाव किसी पुरानी और बेकार वस्तु से किसी नई वस्तु की ओर परिवर्तन को बतलाते हैं।"** (The mere notions of 'Development and Growth' suggest a transition to some thing that is new from something that is old that has outlived itself. – **Paul Baran**) इसलिए अच्छा यह होगा कि 'आर्थिक विकास' एवं 'आर्थिक संवृद्धि' शब्दों का प्रयोग उस परिवर्तन के लिए किया जाए जिससे कोई अर्थव्यवस्था आर्थिक उन्नति के पहले से ऊंचे स्तर को प्राप्त करती है।

■ 9. अल्पविकास की धारणा (Concept of Underdevelopment)

एक अल्पविकसित अर्थव्यवस्था वह अर्थव्यवस्था है जिसमें व्यापक निर्धनता पाई जाती है, विकसित अर्थव्यवस्थाओं की तुलना में जिसका आर्थिक निष्पादन (Economic Performance) **निम्नस्तर का है और जो उत्पादन सम्भावनाओं का अल्प प्रयोग कर पाई है।**

अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं की कोई एक समुचित परिभाषा देना सम्भव नहीं है। प्रो॰ सिंगर ने ठीक ही कहा है कि **"एक अल्पविकसित देश अफ्रीका में पाये जाने वाले पशु ज़िराफ (Giraffe) की तरह है जिसका वर्णन करना तो कठिन है, परन्तु यदि हम उसे देखें तो पहचान सकते हैं।"** (An under-developed country is like a Giraffe, difficult to describe but you know one when you see one. – **H.W.Singer**) विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने अल्पविकसित अर्थव्यवस्था की निम्नलिखित परिभाषायें दी हैं:

(1) यू॰एन॰ओ॰ के विशेषज्ञों के दल के अनुसार, **"हमने अल्पविकसित राष्ट्रों शब्द का प्रयोग उन देशों के अर्थ में किया है जिनकी प्रति व्यक्ति वास्तविक आय संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया और पश्चिमी यूरोप की प्रति व्यक्ति वास्तविक आय की तुलना में कम है।"** (We use the term underdeveloped countries to mean countries in

which per capita real income is low when compared with the per capita real income of the United States of America, Canada, Australia and Western Europe.– **U.N.O. Group of Experts**)

(2) **बायर और यामे के** अनुसार, "**अल्पविकसित देशों से सामान्यतः अभिप्राय उन देशों या क्षेत्रों से है जिनमें वास्तविक आय तथा प्रति व्यक्ति पूंजी का स्तर उत्तरी अमेरिका, पश्चिमी यूरोप तथा आस्ट्रेलिया की अपेक्षा कम या निम्न है।**" (The term underdeveloped countries usually refer loosely to countries or regions with levels of real income and capital per head of population which are low by standards of North America, Western Europe and Australia.– **Bauer and Yamey**)

(3) भारत की **पहली पंचवर्षीय योजना** के अनुसार, "**अल्पविकसित अर्थव्यवस्था वह है जहां पर एक ओर मानवीय शक्तियों का प्रयोग नहीं हुआ है या कम हुआ है और दूसरी ओर प्राकृतिक साधनों का प्रयोग भी नहीं हुआ है।**" (An underdeveloped economy is characterised by the co-existence in greater or less degree of unutilised or under-utilised manpower on the one hand and of unexploited natural resources on the other. – **First Five Year Plan**)

(4) **एम० पी० टोडारो**, "**अल्पविकसित अर्थव्यवस्था वह है कि जिसमें निम्न जीवन स्तर, नितान्त निर्धनता, निम्न प्रति व्यक्ति आय, निम्न उपभोग स्तर, घटिया स्वास्थ्य सेवाएं, ऊंची मृत्यु दर तथा जन्म दर और विदेशी अर्थव्यवस्थाओं पर निर्भरता है।**" (Underdeveloped economy is that economy in which there are low levels of living, absolute poverty, low per capita income, low consumption levels, poor health services, high death rates, high birth rates and dependence on foreign economies.– **M.P. Todaro**)

(5) **साइमन कुजनेट्स** के अनुसार, "**एक अल्पविकसित देश वह देश है जो अपनी बहुत बड़ी जनसंख्या को मनोरंजक जीवन स्तर प्रदान करने में असफल होता है और इसके फलस्वरूप उन्हें दुर्दशा और भौतिक वस्तुओं के अभाव का सामना करना पड़ता है।**" (An underdeveloped country is that country which fails to provide acceptable levels of living to large proportions of a country's population with resulting misery and material deprivations.– **Simon Kuznets**)

(6) **जैकब विनर** ने अल्पविकसित देशों की एक उचित परिभाषा देते हुए कहा है कि, "**अल्पविकसित देश वह देश है जिसमें अधिक पूंजी या अधिक श्रम या अधिक प्राकृतिक साधनों या इन सभी के प्रयोग द्वारा वर्तमान जनसंख्या के जीवन स्तर को ऊंचा उठाने की काफी सम्भावना है।**" (An underdeveloped country is a country which has good potential prospects for using more labour, capital or more available natural resources or all of those to support its present population on a high level of living. – **Jacob Viner**)

मूल्यांकन (Evaluation) : अल्पविकसित अर्थव्यवस्था की ये परिभाषायें आशावादी हैं तथा विकास की सम्भावनाओं के आधार पर अल्पविकास को परिभाषित करती है।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि अल्पविकसित अर्थव्यवस्था को परिभाषित करना, कोई सरल कार्य नहीं है, संक्षेप में, हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि "**अल्पविकसित अर्थव्यवस्था वह अर्थव्यवस्था है जिसकी प्रति व्यक्ति वास्तविक आय कम होती है तथा जीवन स्तर नीचा होता है। पूंजी निर्माण की कम दर तथा तकनीकी पिछड़ेपन के कारण मानवीय तथा प्राकृतिक साधनों की कुछ अधिक या कम सीमा तक अल्प उपयोग होता है। इसमें विकास की अच्छी सम्भावना होती है तथा जनता में अपने जीवन स्तर को ऊंचा उठाने के लिये पर्याप्त जोश होता है।**"

10. विकसित तथा अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं में अन्तर

(Difference between Developed and Underdeveloped Economies)

विकसित तथा अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं में अन्तर निम्नलिखित हैं:

अन्तर का आधार	विकसित अर्थव्यवस्था	अल्पविकसित अर्थव्यवस्था
1. प्रति व्यक्ति आय	प्रति व्यक्ति आय अधिक होती है। यह औसतन 9,000 डालर प्रतिवर्ष से अधिक होती है। अधिकतर लोग धनी होते हैं।	प्रति व्यक्ति आय कम होती है। यह औसतन 700 डालर से कम प्रतिवर्ष तक होती है अधिकतर लोग निर्धन होते हैं।
2. जीवन स्तर	जीवन स्तर ऊंचा होता है।	जीवन स्तर नीचा होता है।
3. आर्थिक असमानतायें	आर्थिक असमानताएं कम होती हैं।	आर्थिक असमानताएं अधिक होती हैं।
4. पूंजी तथा पूंजी-उत्पाद अनुपात	पूंजी निर्माण की दर अधिक होती है यह 25 प्रतिशत से 30 प्रतिशत तक होती है। पूंजी उत्पाद अनुपात कम होता है।	पूंजी निर्माण की दर कम होती है यह 10 प्रतिशत से 20 प्रतिशत तक होती है। पूंजी उत्पाद अनुपात अधिक होता है।
5. कृषि	कृषि पर निर्भरता 2 प्रतिशत से 5 प्रतिशत तक अर्थात् कम होती है। कृषि विकसित तथा उन्नत होती है।	कृषि पर निर्भरता 70 प्रतिशत से 80 प्रतिशत तक अर्थात् अधिक होती है। कृषि पिछड़ी हुई तथा अविकसित होती है।
6. विकास की गति	अर्थव्यवस्था गत्यात्मक होती है।	अर्थव्यवस्था अगत्यात्मक होती है।
7. प्राकृतिक साधन	प्राकृतिक साधनों का पूर्ण उपयोग किया जाता है।	प्राकृतिक साधनों का पूर्ण उपयोग नहीं हो पाता।
8. विदेशी व्यापार तथा ऋणग्रस्तता	व्यापार की शर्तें प्राय: अनुकूल होती हैं। निर्मित वस्तुओं के निर्यात तथा कृषि पदार्थों और कच्चे माल का आयात किया जाता है। विदेशी ऋणग्रस्तता कम होती है।	व्यापार की शर्तें प्राय: प्रतिकूल होती हैं। कृषि पदार्थों तथा कच्चे माल के निर्यात तथा तैयार माल का आयात किया जाता है। विदेशी ऋणग्रस्तता अधिक होती है।
9. उद्योग	उद्योग विकसित होते हैं।	उद्योग पिछड़े हुए होते हैं।
10. निर्धनता का दुश्चक्र	निर्धनता का दुश्चक्र नहीं पाया जाता है।	निर्धनता का दुश्चक्र पाया जाता है।
11. जनसंख्या की वृद्धि दर	जनसंख्या की वृद्धि दर प्राय: कम होती है। ये देश जनांकिकी की तीसरी या चौथी अवस्था में से गुजरते हैं। जनसंख्या कम होती है।	जनसंख्या की वृद्धि दर प्राय: अधिक होती है। ये देश जनांकिकी की पहली तथा दूसरी अवस्था में होते हैं। जनसंख्या अधिक होती है।
12. मानवीय पूंजी	मानवीय पूंजी निर्माण अधिक होता है। देश के लोगों का स्वास्थ्य अच्छा होता है। 90 प्रतिशत लोग शिक्षित होते हैं। श्रमिक प्रशिक्षित तथा कुशल होते हैं।	मानवीय पूंजी का निर्माण कम होता है। देश के अधिकतर लोग बीमार तथा अशिक्षित होते हैं। श्रमिक कम कार्यकुशल होते हैं।
13. बेरोजगारी	बेरोज़गारी कम होती है। यह अल्पकालीन तथा संरचनात्मक होती है। छिपी हुई बेरोजगारी नहीं पाई जाती।	बेरोज़गारी अधिक होती है। छिपी हुई बेरोज़गारी अधिक मात्रा में पाई जाती है। बेरोज़गारी दीर्घकालीन होती है।

14. उत्पादन तकनीक	उत्पादन तकनीक विकसित तथा उन्नत होती है। अनुसंधान तथा नव-प्रवर्तन की संभावनाएं अधिक होती हैं।	उत्पादन तकनीक पिछड़ी हुई होती है। अनुसंधान तथा नव-प्रवर्तन की सम्भावनाएं कम होती हैं।
15. सांस्कृतिक वातावरण	सांस्कृतिक वातावरण भौतिकवादी होता है। श्रम को महत्त्व दिया जाता है। लोगों की विचारधारा आधुनिक होती है।	सांस्कृतिक वातावरण आध्यात्मिकवादी होता है। श्रम को कम महत्त्व दिया जाता है। लोगों की विचारधारा पिछड़ी होती है।

प्रश्न (QUESTIONS)

■ I. वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

सभी प्रश्न अनिवार्य हैं (Attempt all the questions)

1. आर्थिक संवृद्धि वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा किसी देश की प्रति व्यक्ति वास्तविक आय में वृद्धि होती है (दीर्घकाल में, अल्पकाल में) (K.U. 2007)
2. संभावित संवृद्धि से अभिप्राय है (प्राप्य संवृद्धि, अप्राप्य संवृद्धि)
3. आर्थिक विकास से अभिप्राय उस प्रक्रिया से है जिसके द्वारा किसी देश की प्रति व्यक्ति वास्तविक आय तथा आर्थिक कल्याण में वृद्धि होती है (दीर्घकालीन, अल्पकालीन)
4. वास्तविक आय से अभिप्राय किसी देश की मौद्रिक आय पर लगाया गया अनुमान (स्थिर कीमतों पर, चालू कीमतों पर)
5. श्रम प्रधान तकनीक से पूंजी प्रधान तकनीक की ओर होने वाला परिवर्तन है (तकनीकी परिवर्तन, संरचनात्मक परिवर्तन) (K.U. 2007)
6. संवृद्धि एवं विकास है एक-दूसरे से (अलग न होने वाले तत्त्व, अलग होने वाले तत्त्व)
7. विकसित अर्थव्यवस्थाओं में जनसंख्या की वृद्धि दर है (ऊँची, नीची)
8. विकसित अर्थव्यवस्थाओं में विदेशी व्यापार है (अधिक विकसित, कम विकसित)
9. आर्थिक संवृद्धि शब्द का प्रयोग किया जाता है सामान्यतया (विकसित अर्थव्यवस्थाओं के लिए, अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं के लिए) (M.D.U. 2007)
10. अल्पविकसित अर्थव्यवस्था वह अर्थव्यवस्था है जिसमें होती है प्रति व्यक्ति वास्तविक आय कम और जीवन स्तर (नीचा, ऊँचा)
11. यदि जनसंख्या वृद्धि की दर राष्ट्रीय आय की दर से अधिक है तो प्रति व्यक्ति आय में (गिरने की संभावना है, बढ़ने की संभावना है) (K.U. 2008)
12. आर्थिक संवृद्धि शब्द का प्रयोग साधारणतः .... देश के लिए किया जाता है। (विकसित/अल्पविकसित) (M.D.U. 2009)

उत्तर (Answer): (1) दीर्घकाल में, (2) प्राप्य संवृद्धि, (3) दीर्घकालीन, (4) स्थिर कीमतों पर, (5) तकनीकी परिवर्तन, (6) अलग न होने वाले तत्त्व, (7) नीची, (8) अधिक विकसित, (9) विकसित अर्थव्यवस्थाओं के लिए, (10) नीचा, (11) गिरने की संभावना है, (12) विकसित।

■ II. लघु/परिभाषा रूपी प्रश्न (Short/Definitional Type Questions)

1. आर्थिक संवृद्धि की परिभाषा दें।
2. आर्थिक विकास की परिभाषा दें।
3. आर्थिक संवृद्धि तथा आर्थिक विकास में दो अन्तर बतलाएं। (K.U. 2005)
4. क्या संवृद्धि का अर्थ समय के अल्पकाल में होने वाले परिवर्तन से है?
5. वास्तविक तथा संभाव्य संवृद्धि में अन्तर बतलाएं।
6. वास्तविक राष्ट्रीय आय से क्या अभिप्राय है? (K.U. 2006)
7. विकसित अर्थव्यवस्थाओं की दो मुख्य विशेषताएं बतलाएं।
8. विकसित देशों में पूंजी निर्माण की दर ऊँची क्यों है?
9. अल्पविकास की धारणा की परिभाषा दें।
10. विकसित तथा अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं के दो मुख्य अन्तर बतलाएं।
11. वास्तविक राष्ट्रीय आय का क्या अर्थ है? (M.D.U. 2007)

■ III. निबन्ध रूपी प्रश्न (Essay Type Questions)

1. Explain the term Economic Development. What are its main features? How does it differ from economic growth? What are the factors which determine economic development?
   आर्थिक विकास से क्या अभिप्राय है? इसकी मुख्य विशेषताएं क्या हैं? यह आर्थिक संवृद्धि से कैसे भिन्न है? आर्थिक विकास की दर को निर्धारित करने वाले तत्त्व कौन-से हैं? (M.D.U. 2007)
2. What is economic development? What is the differences between developed and developing economies?
   आर्थिक विकास क्या है? विकसित तथा विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में क्या अन्तर है?
3. What are the main features of developed economies?
   विकसित अर्थव्यवस्थाओं की मुख्य विशेषताएं क्या हैं?
4. Discuss the concept of under-development. How does it differ from the concept of economic development?
   अल्पविकास की धारणा की व्याख्या करें। यह आर्थिक विकास की धारणा से किस प्रकार भिन्न है?
5. Distinguish between economic development and economic growth. What are the factors which determine economic development?
   आर्थिक विकास तथा आर्थिक संवृद्धि में क्या अन्तर है? कौन-से तत्व हैं जो आर्थिक विकास को प्रभावित करते हैं?
   (K.U. 2006, M.D.U., 2007)

2

आर्थिक विकास के निर्धारक तत्त्व

(DETERMINANTS OF ECONOMIC DEVELOPMENT)

■ 1. आर्थिक विकास के निर्धारक तत्त्व (Determinants of Economic Development)

अर्थशास्त्रियों ने आर्थिक विकास को प्रभावित करने वाले अधिकतर तत्त्वों का अध्ययन करने के बाद यह निष्कर्ष निकाला है कि कुछ आर्थिक तथा अनार्थिक तत्त्व ऐसे हैं जो किसी अर्थव्यवस्था के निर्धनता के दुश्चक्र को तोड़कर आर्थिक विकास की स्थिति प्राप्त करने के लिए *आवश्यक हैं। उन तत्त्वों को ही आर्थिक विकास के निर्धारक तत्त्व कहते हैं।* **केयरनक्रास** के अनुसार, **''विकास न तो केवल मुद्रा की प्रचुर मात्रा होने की बात है और न ही केवल एक आर्थिक घटना है। इसके अन्तर्गत सामाजिक व्यवहार के सभी पक्ष, कानून तथा व्यवस्था की स्थापना, व्यापार सम्बन्धी उचित लेन-देन, कर अधिकारियों से सम्बन्ध, परिवारों के परस्पर सम्बन्ध, यान्त्रिक औज़ारों से परिचय इत्यादि आते हैं।''** (Development is not just a matter of having plenty of money, *nor it is purely an economic phenomenon. It embraces all aspects of social behaviour, the* establishment of law and order. Scrupulousness in business dealings, including dealings with revenue authorities, relationships between the families, familiarity with mechanical gadgets and so on. – **Cairncross**) **डा॰ आर॰ टी॰ गिल** के अनुसार, **''आर्थिक विकास के निर्धारक तत्त्व अर्थव्यवस्था की उत्पादन क्षमता के** *आकार, संगठन तथा स्वभाव पर निर्भर करते हैं।''* (Determinants of economic development are based upon the size of production capacity, organisation and character of an economy. – **Dr. R.T Gill**) **प्रो. बायर** के शब्दों में, **''आर्थिक विकास के मुख्य निर्धारक हैं अभिवृत्ति, योग्यताएं, गुण, क्षमताएं तथा सुविधाएँ।''** (The main determinants economic growth are aptitude, abilities, qualities, capacities and facilities. – **Bauer**)

आर्थिक विकास के निर्धारक तत्त्वों को दो भागों में बांटा जा सकता है। एक सूत्र के रूप में इसे इस प्रकार लिख सकते हैं:

$$G = f(x + y)$$

यहाँ G = एक निश्चित अवधि में आर्थिक विकास; f = फलन; x = आर्थिक तत्त्व; y = अनार्थिक तत्त्व)

इसे पढ़ा जाएगा: G अर्थात् आर्थिक विकास $x + y$ का फलन है।

आर्थिक विकास के दो निर्धारक तत्त्व नीचे दिए गए हैं:

आर्थिक विकास के निर्धारक तत्त्व
(Determinants of Economic Development)

- **आर्थिक निर्धारक (Economic Determinants)**
- **अनार्थिक निर्धारक (Non-Economic Determinants)**

इनका विस्तृत अध्ययन निम्न प्रकार से किया जा सकता है:

■ 1.1 आर्थिक विकास या संवृद्धि के आर्थिक निर्धारक

(Economic Determinants of Economic Development or Growth)

प्रत्येक देश का आर्थिक विकास निम्नलिखित राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक तत्त्वों पर निर्भर करता है:

(1) प्राकृतिक साधन (Natural Resources): **प्रो० हेरोड, लुईस** आदि के अनुसार, प्रत्येक देश के आर्थिक विकास पर उस देश के प्राकृतिक साधनों का काफी प्रभाव पड़ता है। **प्रो०** लुईस के अनुसार, "**प्राकृतिक साधन विकास के पथ को निर्धारित करते हैं।**" (Natural resources determine the path of progress. – **A. Lewis**) यू० एन० ओ० के अनुसार, "**प्राकृतिक साधन वह कोई भी वस्तु है जो मनुष्य को अपने प्राकृतिक वातावरण में प्राप्त होती है तथा जिसे वह किसी प्रकार से अपने लाभ के लिये प्रयोग कर सकता है।**" (A natural resource is anything found by man in his natural environment that he may in some way utilise for his own benefit. – **U.N.O**) इसके अन्तर्गत भूमि, जलवायु, पानी, वन, खनिज पदार्थ, ऊर्जा के साधन जैसे- पेट्रोल, गैस आदि शामिल किये जाते हैं। **रिचर्ड टी. गिल** के अनुसार, "**प्राकृतिक साधनों का आर्थिक विकास को सीमित करने या प्रोत्साहित करने में निर्णायक महत्त्व है।**" **देश की भूमि** की प्रकृति तथा जलवायु पर कृषि तथा लोगों की कार्यक्षमता निर्भर करती है। **देश के धरातल** तथा जलमार्गों पर यातायात के विभिन्न साधनों का विकास निर्भर करता है। **नदियों** से सिंचाई, बिजली तथा परिवहन की सुविधायें प्राप्त होती हैं। **वनों** से ईंधन, इमारती लकड़ी, कई उद्योगों जैसे कागज आदि को कच्चा माल प्राप्त होता है। पेट्रोल, कोयला, गैस आदि के रूप में ऊर्जा प्राप्त होती है। इसी प्रकार **खनिज पदार्थों** जैसे लोहा, तांबा, टीन, सोना, चांदी, जवाहरात आदि का देश के औद्योगिक तथा आर्थिक विकास के लिये बहुत अधिक महत्त्व है। जिन देशों में प्राकृतिक साधन अधिक होते हैं वे देश अपना आर्थिक विकास आसानी से कर सकते हैं। आर्थिक दृष्टि से अधिकतर विकसित देश जैसे अमेरिका, ग्रेट ब्रिटेन, रूस, कनाडा आदि प्राकृतिक साधनों में काफी सम्पन्न हैं। परन्तु प्राकृतिक साधनों की उपलब्धता में परिवर्तन आता रहता है। वैज्ञानिक, तकनीकी विकास तथा नये आविष्कारों के फलस्वरूप नये साधनों का पता चलता है। उदाहरण के लिये **द्वितीय विश्वयुद्ध** के पश्चात् अरब देश पेट्रोल के कुओं की खोज के द्वारा बहुत अधिक धनी बन सके हैं। परन्तु आर्थिक विकास के लिये केवल प्राकृतिक साधनों की उपलब्धता ही काफी नहीं है उनका उपयुक्त प्रयोग तथा विकास भी आवश्यक है। उदाहरण के लिए, अफ्रीका के कई देश प्राकृतिक साधनों की दृष्टि से बहुत धनी हैं। परन्तु अपने साधनों का उपयुक्त विकास तथा प्रयोग नहीं कर पाने के कारण वे अपना आर्थिक विकास नहीं कर पाये हैं। अतएव अल्पविकसित देश अच्छी तकनीकों के प्रयोग द्वारा अपने प्राकृतिक साधनों का उचित उपयोग करके अपने आर्थिक विकास की गति को तीव्र कर सकते हैं।

(2) मानवीय साधन (Human Resources or Efficient Labour): आर्थिक विकास के महत्त्वपूर्ण निर्धारकों में देश के मानवीय साधनों का बहुत अधिक महत्त्व है। मानवीय साधनों के मुख्य रूप निम्नलिखित हैं:

(i) भौतिक श्रम (Physical Labour): भौतिक श्रम से अभिप्राय है श्रमिकों की संख्या तथा उनके कार्य के घण्टे तथा कार्य करने की **गहनता** (Intensity)। मानवीय साधनों के द्वारा ही श्रम तथा उद्यम प्राप्त होता है। यदि श्रमिक कुशल, परिश्रमी और अनुशासन में हैं तथा उद्यमी योग्य हैं तो आर्थिक विकास की दर बढ़ जायेगी। यदि किसी देश में प्राकृतिक साधनों की कमी है तो भी कुशल मानवीय साधन जिसे **मानवीय पूंजी** (Human Capital) भी कहते हैं, इस कमी को दूर करके देश में आर्थिक विकास की गति को तीव्र कर सकते हैं। जापान में लोहे की खानें नहीं हैं, स्वीडन में खनिज पदार्थ बहुत कम पाये जाते हैं तथा स्विटज़रलैंड पथरीला क्षेत्र है। परन्तु इन देशों में मानवीय साधनों का उचित उपयोग होने के कारण इनकी गणना संसार के विकसित देशों में होती है। जब किसी देश की जनसंख्या अधिक होती है तो उद्योगों, कृषि तथा दूसरे व्यवसायों के लिए सस्ते मजदूर मिल जाते हैं। इसके फलस्वरूप उस देश में उत्पादन लागत कम होगी, तथा निवेश अधिक हो सकेगा। यूरोप के लोगों ने एशिया, अफ्रीका आदि देशों में रबड़, चाय, गन्ने आदि के बागानों में इसलिये निवेश किया था कि इन देशों में मज़दूरी काफी सस्ती थी। प्रो० ए० ए० माउंट के अनुसार, "**कुछ अल्पविकसित देशों में पाई जाने वाली अधिक श्रम शक्ति महान आर्थिक सम्पत्ति है। इसका उचित उपयोग किये जाने से पूंजी निर्माण में सहायता मिलती है।**"

(ii) मानवीय पूंजी या कौशल निर्माण (Human Capital or Skill Formation): **मानवीय पूंजी से अभिप्राय है जनसंख्या के दिमागों तथा हाथों में निहित ज्ञान तथा हुनर।** (Human capital is the skill and knowledge embodied in the minds and hands of the population.) मानवीय पूंजी का तब निर्माण होता है जब लोगों की शिक्षा, स्वास्थ्य, ट्रेनिंग आदि की सुविधायें प्रदान करने के लिये निवेश किया जाता है। इस निवेश से भौतिक पूंजी में निवेश की तुलना में अधिक प्रतिफल प्राप्त होता है। मानवीय पूंजी के कई रूप हैं जैसे: (a) **श्रमिकों का अच्छा स्वास्थ्य तथा लम्बी आयु**: इसके फलस्वरूप श्रम की उत्पादकता में वृद्धि होती है उनकी **अनुपस्थिति** (Absence) कम होती है तथा उनकी बीमारी पर खर्च कम होने के कारण उनका जीवन स्तर ऊंचा होता है। (b) **श्रमिकों की शिक्षा तथा प्रशिक्षण**: इसके फलस्वरूप श्रमिकों की कार्यकुशलता तथा उत्पादकता में वृद्धि होती है। वे आधुनिकतम मशीनों का भी उपयोग करने में समर्थ हो जाते हैं। इसके फलस्वरूप आधुनिकीकरण की प्रवृत्ति में वृद्धि होती है। (c) **नवप्रवर्तन** (Innovation): मानवीय पूंजी का एक रूप श्रमिकों की नवप्रवर्तन करने की योग्यता में वृद्धि है। नवप्रवर्तन का अर्थ है नये आविष्कारों का प्रयोग। इसके फलस्वरूप उत्पादकता तथा उत्पादन क्षमता में वृद्धि होती है। उत्पादन लागत कम होती है तथा नई वस्तुओं का उत्पादन होता है। अतएव् मानवीय पूंजी आर्थिक विकास की आधारशिला है। **शूल्ज** के अनुसार, **"मानवीय पूंजी (Human Capital) का विकास हमारी आर्थिक प्रणाली का सबसे महत्त्वपूर्ण लक्ष्य है। इसके बिना निर्धनता से हमें मुक्ति नहीं मिल सकती।"**

(iii) कुशल उद्यमी तथा संगठन (Able Entrepreneurs and Organisation): **प्रो॰ बायर तथा यामी** के अनुसार, **"उद्यमी की लाभ के नये अवसरों को खोजने की, उन्हें लागू करने की योग्यता और इच्छा आर्थिक विकास के महत्त्वपूर्ण निर्धारक हैं।"** किसी देश का आर्थिक विकास उस देश के उद्यमियों तथा आर्थिक संगठन की कार्यकुशलता पर निर्भर करता है। उद्यमी व्यवसाय को स्थापित करते हैं तथा उनका कुशलतापूर्वक संचालन करते हैं। **शुम्पीटर** का यही विचार है कि किसी देश के आर्थिक विकास के लिये कुशल उद्यमियों का बड़ा महत्त्व है।

(3) भौतिक पूंजीगत साधन (Physical Capital Resources): मशीनें, यन्त्र, कारखाने, कच्चा माल, **आधारिक संरचना** (Infrastructure), भवन निर्माण आदि, भौतिक पूंजीगत साधन हैं। परम्परावादी अर्थशास्त्रियों जैसे - **एडम स्मिथ, जे॰ एस॰ मिल॰** तथा आधुनिक अर्थशास्त्रियों जैसे- **हैरोड, डोमर** आदि ने पूंजी निर्माण को आर्थिक विकास का सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व माना है। आर्थिक विकास के लिए पूंजी निर्माण की दर को बढ़ाना जरूरी है। इसके फलस्वरूप औज़ार, मशीनों आदि का स्टॉक जमा किया जा सकता है तथा **ऊंचे-पैमाने पर उत्पादन** (Large-Scale Production) किया जा सकता है। उत्पादन बढ़ाने के दो उपाय हैं:

(a) पूंजी गहनता (Capital Deepening): इस उपाय से अभिप्राय यह है कि देश के वर्तमान श्रमिकों में से प्रत्येक को अच्छी मशीनें दी जायें, उन्हें प्रशिक्षण दिया जाए तथा उनकी योग्यता में वृद्धि करने के प्रयत्न किये जायें। इसके फलस्वरूप राष्ट्रीय आय तथा प्रति व्यक्ति उत्पादकता में वृद्धि होगी।

(b) पूंजी विस्तारण (Capital Widening): इस उपाय से अभिप्राय यह है कि देश में अधिक श्रमिकों को रोज़गार देने के लिए मशीनों तथा यन्त्रों का अधिक प्रयोग किया जायेगा। कई उद्योग जैसे- इस्पात, रसायन, इलैक्ट्रॉनिक्स आदि के लिए बहुत अधिक पूंजी की आवश्यकता होती है। पूंजी गहन तथा पूंजी विस्तार दोनों क्रियाएं साथ-साथ चलती हैं। इसके लिए पूंजी की बहुत आवश्यकता होती है। **प्रो॰ कुजनेट्स** के अनुसार, **"पूंजी निर्माण आर्थिक उत्पादकता तथा विकास के लिए एक अनिवार्य शर्त है।"**

किसी देश में उत्पादन की वृद्धि पूंजी की वृद्धि दर पर निर्भर करती है। पूंजी की वृद्धि दर उत्पादन में बचत या निवेश के अनुपात तथा पूंजी के औसत उत्पादन की गुणा पर निर्भर करती है।

$$\frac{\Delta Y}{Y} = \frac{\Delta K}{K} = \frac{Y}{K} \times \frac{\Delta K}{\Delta Y}$$

$$\frac{\Delta Y}{Y} \text{(विकास की दर)} = \frac{\Delta K}{K} \text{(पूंजी की वृद्धि दर)}$$

$$= \frac{Y}{K} \text{(पूंजी का औसत उत्पादन} \left(\times \frac{\Delta K}{Y} \right) \text{उत्पादन में निवेश का अनुपात)}$$

(यहां Y = आय; ΔY = आय में परिवर्तन, K = पूंजी ΔK = पूंजी में परिवर्तन या निवेश)

उपरोक्त विवरण से ज्ञात हो जाता है कि विकास की वृद्धि दर को बढ़ाने के लिए पूंजी की वृद्धि दर बढ़ाना आवश्यक है। पूंजी निर्माण स्वचालित पद्धति है जो एक बार प्रारम्भ होने पर स्वयं क्रियाशील रहती है। बचत के द्वारा पूंजी निर्माण के साधन प्राप्त होते हैं। पूंजी निर्माण की दर निम्नलिखित तीन बातों पर निर्भर करती है:

(i) देश में वास्तविक बचत (Real Saving): बचत की दर, बचत करने की इच्छा तथा शक्ति पर निर्भर करती है। देश में बचत की दर बढ़ाने के लिये लोगों को बचत करने पर मजबूर किया जाता है। इसके लिये कई उपाय कार्य में लाये जाते हैं जैसे **घाटे की वित्त व्यवस्था** (Deficit Financing) आदि। **प्रो० नर्कसे** के अनुसार, गाँवों की छिपी हुई बेरोज़गारी (Disguised Unemployment) के कारण जो श्रमिक बेकार हैं उन्हें शहरों में कारखानों आदि पर लगाने से भी बचत में वृद्धि हो सकती है। पूंजी बचत के आन्तरिक साधनों के साथ-साथ विदेशी साधन भी काफी महत्त्वपूर्ण होते हैं। विदेशी कर्जे तथा सहायता के रूप में पूंजी प्राप्त की जा सकती है। आर्थिक विकास के लिये यह आवश्यक है कि राष्ट्रीय आय के कम से कम 20 प्रतिशत तक भाग को बचा कर पूंजी निर्माण में लगाया जाए। **प्रो० लुईस** (Prof. Lewis) का यह विचार ठीक ही है कि कोई भी देश इतना गरीब नहीं है कि वह 15 प्रतिशत या 20 प्रतिशत राष्ट्रीय आय की बचत न कर सके।

(ii) बचत या साधनों का एकत्रीकरण (Mobilisation of Savings or Resources): पूंजी निर्माण के लिये बचत या साधनों का एकत्रीकरण करके उनका निवेश करना भी आवश्यक है। साधनों का एकत्रीकरण वित्तीय संस्थाओं जैसे- बैंकों, सहकारी समितियों, संयुक्त पूंजी कम्पनियों आदि पर निर्भर करता है। आर्थिक विकास की दर कुशल वित्तीय संस्थाओं पर काफी सीमा तक निर्भर करती है।

(iii) निवेश (Investment): पूंजी निर्माण बचत और निवेश पर निर्भर करता है। बचत का देश की कृषि, उद्योगों तथा **आधारिक संरचना** (Infrastructure) में सन्तुलित ढंग से निवेश किया जाना चाहिये। आर्थिक विकास के लिये निवेश भौतिक साधनों के साथ-साथ मानवीय साधनों में भी किया जाना चाहिये। इसका अभिप्राय यह है कि मशीनों, इमारतों, यातायात तथा संचार के साधनों, बिजली, सिंचाई आदि के साथ-साथ शिक्षा, ट्रेनिंग, स्वास्थ्य आदि में भी निवेश किया जाना चाहिये।

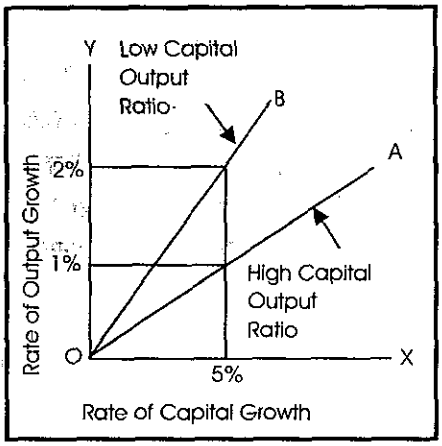

चित्र 1

पूंजी तथा उत्पादन के सम्बन्ध को रेखाचित्र नं० 1 की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है। चित्र 1 में OX - अक्ष पर पूंजी की वृद्धि दर तथा OY - अक्ष पर उत्पादन की वृद्धि दर दिखाई गई है। OA रेखा ऊंचे **पूंजी-उत्पाद अनुपात** (High Capital-Output Ratio) को प्रकट कर रही है। तथा OB रेखा नीचे **पूंजी उत्पाद अनुपात** (Low Capital-Output Ratio) को प्रकट कर रही है। रेखा OA से ज्ञात होता है कि यदि पूंजी में 5% की वृद्धि की जायेगी तो उत्पादन में 1% की वृद्धि होगी जबकि OB से ज्ञात होता है कि पूंजी में 5% की वृद्धि करने पर उत्पादन में 2% की वृद्धि होगी।

(4) पूंजी-उत्पाद अनुपात (Capital-Output Ratio): देश के आर्थिक विकास पर पूंजी-उत्पाद अनुपात का भी प्रभाव पड़ता है। **पूंजी-उत्पाद अनुपात का अर्थ है कि उत्पाद की एक इकाई उत्पन्न करने के लिए पूंजी की कितनी इकाइयों की आवश्यकता है।** (Capital-Output Ratio = $\frac{K}{Y}$, यहां

K = पूंजी, Y = आय या उत्पादन)। मान लीजिये पूंजी-उत्पाद अनुपात 3 : 1 है। इसका अर्थ है कि किसी वस्तु की एक इकाई का उत्पादन करने के लिए पूंजी की तीन इकाइयां चाहियें। आर्थिक विकास की विभिन्न अवस्थाओं तथा विभिन्न उद्योगों के लिये यह अनुपात विभिन्न होता है। कृषि तथा लघु उद्योगों में पूंजी उत्पादन अनुपात कम होता है। इसके विपरीत भारी इन्जीनियरिंग उद्योगों में पूंजी उत्पादन अनुपात ऊंचा होता है। पूंजी-उत्पाद अनुपात पर कई बातों का प्रभाव पड़ता है, जैसे पूंजी के उपयोग करने की कुशलता, निवेश का प्रकार तथा समन्वय, उद्योगों के संगठन की कुशलता आदि। किसी देश की आय वृद्धि की दर, निवेश की दर तथा पूंजी-उत्पाद अनुपात पर निर्भर करते हैं। आर्थिक विकास के लिए पूंजी उत्पाद अनुपात कम होना उचित है।

(5) बाजार का आकार (Size of the Market): आर्थिक विकास पर बाजार के आकार का भी प्रभाव पड़ता है। बाजार के विस्तृत आकार के फलस्वरूप ***श्रम विभाजन** तथा **विशिष्टीकरण*** *सम्भव हो जाता है।* इनके फलस्वरूप *कार्यकुशलता में वृद्धि होती है* तथा साधनों की उत्पादकता बढ़ जाती है। बाजार के आकार के बड़े होने के कारण उत्पादन का पैमाना भी बढ़ता है। इसके फलस्वरूप कई प्रकार की आन्तरिक तथा बाहरी बचतें प्राप्त होती हैं। इनके फलस्वरूप उत्पादन की मात्रा बढ़ती है तथा उत्पादन लागत कम होती है। *इसलिये बाजार का विस्तृत आकार आर्थिक विकास का महत्त्वपूर्ण निर्धारक होता है।*

(6) विकास प्रेरक आर्थिक एजेन्सियाँ (Growth Oriented Economic Agencies): तीव्र गति तथा न्यूनतम लागत पर आर्थिक विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये विकास प्रेरक आर्थिक एजेन्सियों का होना आवश्यक है। इनमें से कुछ प्रमुख आर्थिक एजेन्सियां हैं - **बैंक, वित्तीय एवम् निवेश सम्बन्धी संस्थाएं, नियोजन संस्थाएं** आदि। इन संस्थाओं के फलस्वरूप बचत को बढ़ावा मिलता है, निवेश को सही दिशा मिलती है तथा व्यावहारिक परियोजनाओं का निर्माण सुविधाजनक बन जाता है। अतएव आर्थिक विकास के लिये आवश्यक है कि देश में **संगठित तथा कार्यकुशल बैंकिंग व्यवस्था होनी चाहिये, संगठित मुद्रा बाजार तथा पूंजी बाजार दोनों होने चाहियें** *जिनके द्वारा उद्योग तथा कृषि आदि को अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन ऋण उचित ब्याज पर प्राप्त हो सकें।* **सरकार** भी कई प्रकार से आर्थिक विकास की महत्त्वपूर्ण एजेन्सी का कार्य करती है। सरकार का विकास के लिये आवश्यक **आधारिक संरचना** (Infrastructure) भारी और अधिक जोखिम वाले उद्योगों की स्थापना तथा कम कीमतों पर सार्वजनिक सेवायें उपलब्ध कराने में महत्त्वपूर्ण योगदान हो सकता है। *सरकार की **मौद्रिक तथा राजकोषीय नीतियां** भी आर्थिक विकास की निर्धारक हैं।* देश की मौद्रिक नीतियाँ देश के आर्थिक विकास के अनुकूल होनी चाहियें। इसका अभिप्राय यह है कि मुद्रा की पूर्ति आवश्यकता के अनुसार होनी चाहिए तथा ब्याज की दर कम होनी चाहिये। आर्थिक विकास के फलस्वरूप कीमतों में वृद्धि होती है। इसके लिये यह आवश्यक है कि कीमतों में होने वाली वृद्धि को एक सीमा के भीतर ही रखा जाए, वास्तव में वित्तीय स्थिरता आर्थिक विकास का एक महत्त्वपूर्ण निर्धारक है। राजकोषीय नीतियों द्वारा बचत तथा निवेश के ढांचे को प्रभावित किया जा सकता है।

(7) तकनीकी प्रगति (Technical Progress): किसी देश के आर्थिक विकास का एक मुख्य निर्धारक तत्त्व **तकनीकी प्रगति** है। *तकनीकी प्रगति एक बहुमुखी प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत नई तकनीक, नई मशीनें तथा अधिक कार्यकुशलता इत्यादि आते हैं।* **लिप्सी के अनुसार, "तकनीकी प्रगति नवप्रवर्तन के कारण होती है। यह नई वस्तुओं, वर्तमान वस्तुओं के उत्पादन की नई विधियों तथा व्यावसायिक संगठनों के नये प्रकारों को प्रस्तुत करती है।"** (Technical Progress is brought about by innovation through introducing new products, new ways of producing existing products and new forms of business organisations. – **Lipsey**) तकनीकी प्रगति के फलस्वरूप, उत्पादन के बाकी साधनों जैसे पूंजी के स्थिर रहने पर भी उत्पादन में वृद्धि होती है। जापान तथा जर्मनी के तीव्र आर्थिक विकास का मुख्य कारण वहाँ की वैज्ञानिक तथा तकनीकी उन्नति है। औद्योगिक विकास तथा कृषि की उन्नति के लिये वैज्ञानिक अनुसंधान बहुत महत्त्वपूर्ण होते हैं। तकनीकी विकास के बिना देश का आर्थिक विकास तीव्र गति से नहीं हो सकता। **प्रो॰ शुम्पीटर** (Schumpeter) ने आर्थिक विकास के लिए नव-प्रवर्तनों (Innovations) को बहुत आवश्यक माना है। किसी देश के उद्यमी उत्पादन की नई तकनीकी का प्रयोग किस सीमा तक करते हैं, इस पर उस देश का आर्थिक विकास काफी हद तक निर्भर करता है। तकनीकी प्रगति के कारण **उत्पादन सम्भावना वक्र** (Production Possibility Curve) ऊपर की ओर खिसक जाती है। इससे प्रकट होता है कि उत्पादन के साधनों के स्थिर रहने पर भी उत्पादन में वृद्धि हुई है। इसे रेखाचित्र 2 द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

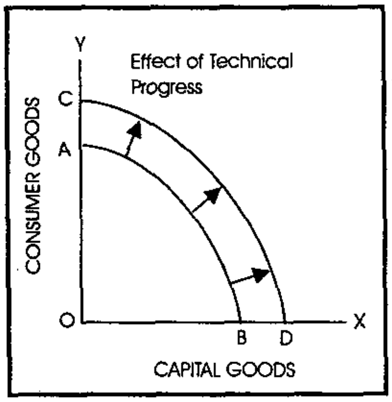

चित्र 2

रेखाचित्र 2 में OY अक्ष पर उपभोक्ता वस्तुयें तथा OX - अक्ष पर पूंजीगत वस्तुयें प्रकट की गई हैं। AB अर्थव्यवस्था की प्रारम्भिक उत्पादन सम्भावना वक्र है। इससे प्रकट होता है कि अर्थव्यवस्था अपने साधनों का प्रयोग करके उपभोक्ता वस्तुओं तथा पूंजीगत वस्तुओं के कौन-कौन से विभिन्न संयोगों का उत्पादन कर सकती है। यदि अर्थव्यवस्था के उत्पादन साधन सीमित रहते हैं परन्तु तकनीकी में प्रगति होती है तो उत्पादन सम्भावना वक्र ऊपर की ओर खिसक कर CD हो जायेगा। वक्र CD से ज्ञात होता है कि अर्थव्यवस्था उपभोक्ता वस्तुओं तथा पूंजीगत वस्तुओं के पहले से अधिक मात्रा वाले विभिन्न संयोगों का उत्पादन कर सकेगी।

तकनीकी प्रगति के कारण उत्पादन क्षमता में वृद्धि होती है। उत्पादन के साधनों का आदर्श प्रयोग संभव हो जाता है, बढ़िया किस्म के माल का उत्पादन होने लगता है, नई वस्तुओं का उत्पादन सम्भव हो जाता है तथा उत्पादन लागत कम हो जाती है। इनके फलस्वरूप आर्थिक विकास की दर में तीव्रता से न्यूनतम लागत पर वृद्धि संभव हो जाती है। तकनीकी प्रगति को अपनाने के लिये तकनीकी प्रशिक्षण की सुविधाओं को बढ़ाना तथा अधिक मात्रा में तकनीकी सेवायें भी उपलब्ध कराना आवश्यक हो जाता है।आजकल **बहुराष्ट्रीय कम्पनियां** (Multinational Corporations) कुशल उद्यम एवम् संगठन प्रदान कर रही हैं। आर्थिक विकास के लक्ष्य की प्राप्ति में इनका महत्त्वपूर्ण योगदान है।

(8) विकासात्मक नियोजन (Developmental Planning): अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास के लिये विकासात्मक नियोजन का बहुत अधिक महत्त्व है। विकासात्मक नियोजन वह **प्रक्रिया** (Process) है, जिसके अन्तर्गत एक केन्द्रीय योजना अधिकारी देश में उत्पादन के साधनों की उपलब्धि को ध्यान में रखते हुए एक निश्चित समय में निश्चित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये योजना बनाता है। इस योजना को सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र दोनों ही लागू करते हैं। विकासात्मक नियोजन के फलस्वरूप देश के साधनों का उचित उपयोग होता है तथा राष्ट्रीय आय में तीव्र गति से वृद्धि सम्भव होती है। विकासात्मक नियोजन की सफलता पर देश का आर्थिक विकास काफी सीमा तक निर्भर करता है।

(9) व्यावसायिक संरचना (Occupational Structure): किसी भी देश का व्यावसायिक संरचना/ढांचा उस देश के आर्थिक विकास को निर्धारित करने वाला एक आवश्यक तत्त्व है। जिस देश की कार्यशील जनसंख्या का अधिक भाग तृतीयक व्यवसाय (Tertiary Occupation) में लगा होगा वह देश आर्थिक दृष्टि से उन्नत होगा। इसके विपरीत जितना अधिक भाग प्राथमिक व्यवसाय (Primary Occupation) में होगा उतना ही वह देश आर्थिक दृष्टि से पिछड़ा हुआ होगा।

(10) अन्तर्राष्ट्रीय निर्धारक (International Determinants): संसार के अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास के लिए अन्तर्राष्ट्रीय तत्त्व जैसे- **विदेशी पूंजी, तकनीकी ज्ञान, अन्तर्राष्ट्रीय** व्यापार तथा **विदेशी निवेश** आदि महत्त्वपूर्ण निर्धारक हैं। संसार के लगभग सभी अल्पविकसित देश अपना आर्थिक विकास करने के लिये विकसित देशों से सहायता प्राप्त कर रहे हैं। विकसित देश कई प्रकार से अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास में सहायक हो सकते हैं। अल्पविकसित देशों में पाई जाने वाली पूंजी की कमी विकसित देशों के द्वारा ही पूरी की जाती है। ये देश तकनीकी ज्ञान, मशीनरी, उद्योगों और कृषि के विकास के लिये दूसरे आवश्यक तत्त्व प्रदान कर सकते हैं। अरब देशों जैसे - लीबिया, कुवैत, इराक आदि में पेट्रोलियम उद्योग का विकास विदेशी सहायता से ही सम्भव हो सका है। कई अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएं जैसे - **अन्तर्राष्ट्रीय बैंक** (I.B.R.D.), **अन्तर्राष्ट्रीय विकास संस्थान** (I.D.A.) आदि अल्पविकसित देशों को उनके विकास के लिए ऋण दिलाने में सहायता करती हैं, तकनीकी सहायता देती हैं तथा विदेशी मुद्रा की पूर्ति में सहायक होती हैं। अल्पविकसित देशों के सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक विचारों पर विकसित देश में होने वाले परिवर्तनों का काफी प्रभाव पड़ता है। वे अधिक **भौतिकवादी** (Materialists) बन जाते हैं तथा आर्थिक विकास के कार्यों में संलग्न हो जाते हैं।

■ 1.2 आर्थिक विकास के अनार्थिक निर्धारक

(Non-Economic Determinants of Economic Development)

आर्थिक विकास की प्रक्रिया एक जटिल प्रक्रिया है, यह आर्थिक तथा अनार्थिक दोनों प्रकार के निर्धारकों द्वारा निर्धारित की जाती है। **प्रो० काल्डोर** (Kaldor) के अनुसार, **''आर्थिक विकास की गत्यात्मकता का अध्ययन हमें आर्थिक तत्त्वों के विश्लेषण के अतिरिक्त मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक निर्धारकों की ओर ले जाता है।''** आर्थिक विकास के मुख्य अनार्थिक निर्धारक निम्नलिखित हैं:

(1) विकास की इच्छा (Desire for Development): यह एक सार्वभौमिक सत्य है कि विकास की इच्छा किए बिना विकास सम्भव नहीं है। देश के तीव्र गति से आर्थिक विकास के लिए यह आवश्यक है कि देश में सभी क्षेत्रों के लोग जैसे अध्यापक, राजनीतिज्ञ, श्रमिक संगठन, व्यापारी इत्यादि आर्थिक विकास के इच्छुक हों और उस के लिए कीमत चुकाने के लिए भी तैयार हों। इसी प्रकार सभी संगठन एवं संस्थाएं - सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक आदि भी आर्थिक विकास के लिए मन लगाकर प्रयत्न करें। **प्रो. केयरनक्रास** के अनुसार, **''विकास असम्भव है यदि यह लोगों के दिमाग में स्थान नहीं लेता।''** (Development is impossible if it does not take place in the minds of men. – **Cairncross**)

(2) शिक्षा का प्रसार (Spread of Education): आर्थिक विकास के लिए शिक्षा का प्रसार एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अनार्थिक तत्त्व है। **प्रो. वॉल्टर क्राज़** के अनुसार, **''शिक्षा आर्थिक उन्नति के लिए विचारों में क्रान्ति लाती है।''** (*Education brings revolutions in ideas for economic progress.*– **Walter Krause**) **प्रो. सिंगर** (Singer) के अनुसार, **''शिक्षा में निवेश केवल अधिक उत्पादक ही नहीं बल्कि इससे बढ़ते प्रतिफल से उत्पादन होता है। इस प्रकार शिक्षा, मानवीय पूंजी निर्माण एवं सामाजिक उन्नति में अग्रसर होने की भूमिका निभाती है, जिससे देश की उन्नति निर्धारित होती है।''**

(3) राजनीतिक निर्धारक (Political Determinants): किसी देश के आर्थिक विकास पर उस देश के राजनीतिक वातावरण का काफी प्रभाव पड़ता है। एक कुशल, ईमानदार तथा कल्याणकारी प्रशासन राष्ट्रीय विकास का मुख्य निर्धारक तत्त्व है। किसी देश में राजनीतिक स्थिरता जितनी अधिक होगी, लोगों का सरकार में उतना ही अधिक विश्वास बना रहेगा, विकास की दीर्घकालीन योजनायें बनाई जा सकेंगी तथा विकास की क्रिया बिना किसी बाधा के निरन्तर चलती रहेगी। यदि देश में शान्ति है तो व्यक्तिगत सम्पत्ति को प्रेरणा मिलेगी, पूंजी निर्माण अधिक हो सकेगा। सरकार की सार्वजनिक क्षेत्र (Public Sector) सम्बन्धी नीति पर भी आर्थिक विकास की दर निर्भर करती है। योग्य प्रशासन वाले देश में सामाजिक उपरिव्यय, सड़कों, रेलों, नहरों, बिजली आदि के उचित विकास द्वारा आर्थिक विकास की गति को और तीव्र किया जा सकता है।

(4) सामाजिक निर्धारक (Social Determinants): आर्थिक विकास का सामाजिक परिवर्तनों से घनिष्ठ सम्बन्ध है। सामाजिक संस्थाओं जैसे जाति-प्रथा, संयुक्त परिवार प्रणाली, उत्तराधिकारी के नियम आदि का आर्थिक विकास पर काफी प्रभाव पड़ता है। इन संस्थाओं में इस प्रकार के परिवर्तन किये जाने चाहियें जिससे आर्थिक विकास की गति तीव्र हो सके। समाज के उचित संस्थागत परिवर्तनों के फलस्वरूप पूंजी की पूर्ति बढ़ती है, उद्यम, वैज्ञानिक कुशलता तथा तकनीकी ज्ञान का विकास होता है। आर्थिक विकास के लिए यह आवश्यक है कि देश की जनता की विचारधारा में परिवर्तन होना चाहिये। लोगों के मन में आर्थिक विकास की तीव्र इच्छा जागृत होनी चाहिये। यदि अल्पविकसित देशों में लोग पुराने विचारों को त्याग कर नये विचार तथा नई तकनीकों को अपना सकें तो आर्थिक विकास तीव्र गति से हो सकेगा।

(5) धार्मिक निर्धारक (Religious Determinants): आर्थिक विकास के निर्धारण में लोगों के धार्मिक विचारों का बहुत महत्त्व है। यदि किसी देश के लोग भौतिक विकास को महत्त्व देते हैं, आर्थिक उन्नति को धर्म के विरुद्ध नहीं समझते। अपने भाग्य के सहारे ही नहीं रहना चाहते तथा अपने परिश्रम में विश्वास करते हैं तो देश का आर्थिक विकास तीव्र गति से होता है। **प्रो० लुईस** के अनुसार, **"कोई देश या तो धार्मिक अन्धविश्वास अपना कर अपनी आर्थिक हत्या कर सकता है या धार्मिक विश्वासों को इस प्रकार अपना सकता है कि जिससे उसका आर्थिक विकास तेज़ी से हो सके।''**

(6) विकास के लिए आशा एवं आकांक्षा (Hope and Aspiration for Development): आर्थिक विकास को एक ऐसी प्रक्रिया नहीं समझा जाना चाहिये जो अपने आप ही सम्भव हो जाती है। वास्तव में आर्थिक विकास पर इस बात का बहुत प्रभाव पड़ता है कि उस देश के लोग आर्थिक विकास की कितनी आशा व आकांक्षा रखते हैं। यदि किसी देश के लोग **भाग्यवादी** (Fatalists) हैं, वे अपनी निर्धनता को अपने भाग्य का फल मान लेते हैं तथा उसे दूर करने का प्रयत्न नहीं करते, तो आर्थिक विकास की अधिक सम्भावना नहीं होती। **प्रो० रिचर्ड गिल** ने इस सम्बन्ध में ठीक ही कहा है कि **आर्थिक विकास यान्त्रिक** (Mechanical) **प्रक्रिया नहीं है। यह विविध तत्त्वों को जोड़ देना मात्र ही नहीं है। यह आखिरकार एक मानवीय प्रयत्न है।**

(7) भ्रष्टाचार से मुक्ति (Freedom from Corruption): अल्पविकसित देशों में हर स्तर पर पाए जाने वाले भ्रष्टाचार के कारण करों की चोरी होती है। गलत लोगों को लाइसेंस दिये जाते हैं, जिसका औद्योगिक विकास पर बुरा प्रभाव पड़ता है। **प्रो० गुन्नर मिर्डल** का यह विचार है कि **"भ्रष्टाचार से मुक्ति अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास के लिये बहुत आवश्यक है।"**

(8) कानून और व्यवस्था की स्थिति (Position of Law and Order): किसी भी देश में शान्ति का वातावरण तथा कानून और व्यवस्था बनाए रखना आर्थिक विकास को सुनिश्चित करने के लिए महत्त्वपूर्ण तत्त्व हैं। देश को बाहरी आक्रमणों से बचाना और देश के अन्दर सार्वजनिक तथा निजी सम्पत्ति को सुरक्षा प्रदान करना सरकार की प्राथमिक जिम्मेदारी है। यदि देश में राज्यों की सीमाओं या भाषा के आधार पर झगड़े होते हैं या आतंकवाद बढ़ रहा हो तो देश का आर्थिक विकास सम्भव नहीं।

निष्कर्ष (Conclusion)

संक्षेप में, आर्थिक विकास का कोई एक निर्धारित निर्धारक नहीं है। **आर्थिक विकास देश के आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक तत्त्वों पर निर्भर करता है।** कई अर्थशास्त्रियों जैसे **रोबर्ट शैली, एडवर्ड** आदि ने इस सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण अध्ययन किये हैं। **प्रो० डैनसन** के अनुसार, आगे दी गई तालिका से ज्ञात हो जाता है, कि अमेरिका में 1929 से 1957 तक प्रति व्यक्ति घन्टे कार्य (Per Man Hour Work) उत्पादन में 2.3 प्रतिशत वृद्धि में विभिन्न तत्त्वों का योगदान रहा।

Table 1. Contribution of Various Sectors to Growth

Sectors of Growth	Contribution	Percentage of Total
Average Annual Growth in Output	2.3%	100%
1. Increase in Capital Per Worker	0.3%	13%
2. Increase in Education	0.7%	30%
3. Lower Hours of Work	0.3%	13%
4. Technical Progress and Other Factors	1%	44%

उपरोक्त तालिका से ज्ञात होता है कि पूंजी के फलस्वरूप उत्पादन में 13% तथा तकनीकी उन्नति और अन्य कारणों के फलस्वरूप 44% की वृद्धि हुई है। शिक्षा के फलस्वरूप 30% की वृद्धि हुई है। संक्षेप में, आर्थिक विकास के लिए आर्थिक तथा अनार्थिक कई प्रकार के तत्त्वों की आवश्यकता है। इन तत्त्वों के उचित समन्वय, तथा सरकार और देश की जनता की आर्थिक विकास की आकांक्षा के फलस्वरूप ही आर्थिक विकास की गति को तीव्र किया जा सकता है

प्रश्न (QUESTIONS)

I. वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

सभी प्रश्न अनिवार्य हैं। (Attempt all the Questions)

1. आर्थिक विकास की दर मुख्यतया निर्भर करती है (कम वित्तीय संस्थाओं पर, कुशल वित्तीय संस्थाओं पर)

2. उत्पादन तथा रोजगार बढ़ाने के लिए जब अधिक मशीनों और औजारों का प्रयोग किया जाता है तो इसे कहते हैं (पूंजी गहन पद्धति, पूंजी विस्तार पद्धति)
3. पूँजी-उत्पाद अनुपात बराबर है (k/y, y/k) (K.U. 2005)
4. तकनीकी विकास के फलस्वरूप उत्पादन सम्भावना वक्र सरकता है (ऊपर की ओर, नीचे की ओर) (K.U. 2006)
5. यदि लोग भाग्यवादी हैं तो आर्थिक विकास की संभावना है (अधिक, कम)

उत्तर (Answer): (1) कुशल वित्तीय संस्थाओं पर, (2) पूंजी विस्तार पद्धति, (3) k/y, (4) ऊपर की ओर, (5) कम।

■ II. लघु/परिभाषा रूपी प्रश्न (Short/Definitional Type Questions)

1. आर्थिक विकास के निर्धारक तत्त्व क्या हैं?
2. आर्थिक विकास के दो महत्त्वपूर्ण आर्थिक निर्धारक तत्त्वों का वर्णन करें।
3. आर्थिक विकास के दो महत्त्वपूर्ण अनार्थिक निर्धारक तत्त्वों का वर्णन करें।
4. बाजार का आकार किस प्रकार आर्थिक विकास को प्रभावित कर सकता है?
5. कौन-सी विकास प्रेरक आर्थिक एजेन्सियां आर्थिक विकास में सहायता प्रदान करती हैं?
6. कौन-सी अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएँ किसी देश के आर्थिक विकास में सहायता प्रदान करती हैं?

■ III. निबन्ध रूपी प्रश्न (Essay Type Questions)

1. Explain the term Economic Development. How does it differ from economic growth? What are the factors which determine economic development?
आर्थिक विकास की व्याख्या करें। आर्थिक संवृद्धि से यह किस प्रकार भिन्न है? आर्थिक विकास की दर को निर्धारित करने वाले तत्त्व कौन-से हैं? (K.U. 2006, M.D.U. 2007)
2. What is Economic Development? Discuss the factors that influence it.
आर्थिक विकास क्या है? उन तत्त्वों का वर्णन करें जो इसको प्रभावित करते हैं।

Or

What is Economic Development? What are its determinant factors?
आर्थिक विकास से क्या अभिप्राय है? उसके निर्धारक तत्त्व कौन-से हैं?
3. Give an account of economic and non-economic determinants of economic development.
आर्थिक विकास के आर्थिक तथा अनार्थिक निर्धारकों का ब्यौरा दीजिये।

Or

Define the term Economic Development. Discuss the important determinants of Economic Development.
आर्थिक विकास की परिभाषा दें। आर्थिक विकास के मुख्य निर्धारक तत्त्वों का वर्णन करो।

3

आर्थिक विकास का माप

(MEASUREMENT OF ECONOMIC DEVELOPMENT)

■ 1. आर्थिक और सामाजिक विकास के माप

(Economic and Social Measurement of Development)

विकास के मापों को दो भागों में बांटा जा सकता है: (i) विकास के आर्थिक माप, (ii) विकास के सामाजिक माप।

■ (i) विकास के आर्थिक माप (Economic Measurement of Development)

ये विकास के वे माप हैं जो दुर्लभ साधनों के इस प्रकार के प्रयोग से सम्बन्धित हैं जिससे लोग आय, उत्पादन तथा रोज़गार के एक ऊँचे स्तर को प्राप्त करते हैं। (These are those measure of development which relates to the use of scarce resources in a manner such that people achieve a high level of income, output and employment) विकास के मुख्य आर्थिक माप निम्नलिखित हैं:

(i) **उत्पादन का ऊंचा स्तर** (High Level of Output)

(ii) **रोज़गार का ऊंचा स्तर** (High Level of Employment)

(iii) **आय का ऊंचा स्तर** (High Level of Income)

(iv) **उत्पादकता का ऊँचा स्तर** (High Level of Productivity)

(v) **उत्पादन तथा रोज़गार, प्राथमिक क्षेत्र की तुलना में द्वितीयक तथा तृतीयक क्षेत्र में अधिक होने लगते हैं।** इन क्षेत्रों में विस्तार, विविधता एवम् इन क्षेत्रों की वस्तुओं और सेवाओं की मांग के विविधपूर्ण प्रतिमान से संबंधित विकास का क्षेत्र अधिक होता है।

■ (ii) विकास के सामाजिक माप (Social Measurement of Development)

विकास के सामाजिक माप वे माप हैं जो देश के सामाजिक ढांचे से सम्बन्धित हैं और एक देश के लोगों के ऊंचे सामाजिक स्तर को प्रकट करते हैं। (These are those measures of development which relates to social structure of the country and show high social status of the people of a country.)

विकास के सामाजिक सूचकों के अन्तर्गत निम्नलिखित को शामिल किया जाता है:

(i) **साक्षरता और शिक्षा का ऊँचा स्तर।** (ii) **जीवन की ऊँची आकांक्षा** — इसे जीवन की दीर्घता भी कहते हैं।

(iii) **आय और धन के वितरण में समानता** अर्थात् सामाजिक न्याय।

(iv) **पर्यावरण-संरक्षण** के पक्ष में लोगों के दृष्टिकोण में परिवर्तन।

(v) **लोग जीवन की ऊँची गुणवत्ता के प्रति अधिक जागरूक** हो जाते हैं इसलिए छोटे आकार के परिवारों को पसंद करने लगते हैं।

(vi) जीवन की अधिक उत्तम गुणवत्ता के लिए लोग **गांवों से शहरों की ओर पलायन करने लगते हैं।**

■ 1.1 राष्ट्रीय आय द्वारा माप (Measurement through National Income)

कई अर्थशास्त्रियों जैसे **साइमन कुजनेटस, ए० जे० यंगसन, मॉयर तथा वाल्डविन** आदि के अनुसार, आर्थिक विकास का माप राष्ट्रीय आय में होने वाली वृद्धि द्वारा किया जा सकता है। **साइमन कुजनेट्स** के अनुसार, **''आर्थिक विकास को मापने के उद्देश्य से हम उसकी परिभाषा या तो राष्ट्रीय आय में वृद्धि के रूप में दे सकते हैं या स्थिर कीमतों पर सम्पूर्ण जनसंख्या के द्वारा किये जाने वाले उत्पादन के रूप में कर सकते हैं।''** प्रो० **हिक्स** का यह विचार कि, **''किसी देश के आर्थिक विकास को मापने की *अच्छी विधि यह है कि राष्ट्रीय आय को वास्तविक वस्तुओं में परिवर्तित कर लिया जाये।''*** प्रो० **ए० जे० यंगसन** ने राष्ट्रीय आय में वृद्धि को आर्थिक विकास का महत्त्वपूर्ण मापक माना है। उनके अनुसार यदि किसी देश में आय में वृद्धि होती है तो इस अवस्था को आर्थिक विकास कहा जायेगा। प्रो० **पीगू** का भी विचार यह है कि आर्थिक विकास का माप राष्ट्रीय आय द्वारा ही किया जा सकता है। सैम्यूअलसन *का यह भी विचार है कि कुल उत्पादन (GNP) आर्थिक विकास का सबसे उत्तम अकेला मापक है।*

■ राष्ट्रीय आय द्वारा माप के पक्ष में तर्क
(Arguments in Favour of Measurement through National Income)

आर्थिक विकास को शुद्ध राष्ट्रीय आय के रूप में मापने के सम्बन्ध में निम्नलिखित तर्क दिये जाते हैं-

(i) **वास्तविक राष्ट्रीय आय में वृद्धि होने के फलस्वरूप प्रति व्यक्ति वास्तविक आय में वृद्धि होगी।** इसलिए राष्ट्रीय आय में होने वाली वृद्धि के द्वारा ही आर्थिक विकास का अनुमान लगाना उचित होगा।

(ii) यदि प्रति व्यक्ति आय में होने वाली वृद्धि को ही आर्थिक विकास का माप माना जाए तो यह कहना उचित नहीं होगा कि राष्ट्रीय आय में होने वाली वृद्धि आर्थिक विकास का प्रतीक होगी क्योंकि प्रति व्यक्ति आय में भी तभी वृद्धि होगी जब राष्ट्रीय आय में होने वाली वृद्धि दर जनसंख्या में होने वाली वृद्धि दर से अधिक होगी। यदि जनसंख्या में कोई वृद्धि नहीं होती तो राष्ट्रीय आय में होने वाली वृद्धि दर तथा प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि दर समान होगी।

(iii) यदि प्रति व्यक्ति आय को ही आर्थिक विकास का माप माना जायेगा तो भी जनसंख्या के कल्याण की समस्या का अनुमान नहीं लगाया जा सकेगा क्योंकि प्रो० **कुजनेट्स** के अनुसार, **''जनसंख्या द्वारा राष्ट्रीय आय को भाग देने से प्रति व्यक्ति आय मुद्रा के रूप मे मापी जाती है। इसलिये जनसंख्या के कल्याण का अनुमान नहीं लगाया जा सकता।''**

इस सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह आता है कि वास्तविक राष्ट्रीय आय $\frac{Y}{P}$ के स्तर या उसकी **वृद्धि दर** (Growth Rate) में से हम किसको आर्थिक विकास के मापदण्ड के रूप में महत्त्वपूर्ण मानते हैं। अधिकतर अर्थशास्त्री वास्तविक राष्ट्रीय आय में वृद्धि दर को आर्थिक विकास के मापदण्ड के रूप में अधिक महत्त्वपूर्ण मानते हैं।

■ राष्ट्रीय आय द्वारा माप के विपक्ष में तर्क
(Arguments Against Measurement through National Income)

आर्थिक विकास के राष्ट्रीय आय मापक की निम्नलिखित मुख्य सीमायें हैं:

(i) प्रो० **सैम्युअलसन** *के अनुसार कुल राष्ट्रीय आय के माप द्वारा आर्थिक विकास का अनुमान लगाना युद्धकालीन अर्थव्यवस्था* के लिये तो लाभदायक हो सकता है, परन्तु **आर्थिक कल्याण** के अनुमान के लिए प्रति व्यक्ति वास्तविक उत्पादन तथा उसके समान वितरण का अनुमान लगाना अधिक उचित होगा।

(ii) राष्ट्रीय आय के मापक द्वारा आर्थिक विकास के अनुमान लगाने की एक सीमा यह है कि आर्थिक विकास कुल राष्ट्रीय उत्पादन के मूल्य के साथ-साथ **उत्पादन के स्वरूप** (Composition) पर भी निर्भर करता है। यदि किसी देश में परमाणु बम या दूसरी प्रकार की भयंकर युद्ध सम्बन्धी सामग्री का उत्पादन बढ़ने से कुल राष्ट्रीय आय बहुत अधिक बढ़ जाए तो वह वृद्धि आर्थिक विकास की सूचक नहीं नहीं मानी जाएगी।

(iii) आर्थिक विकास का राष्ट्रीय आय द्वारा अनुमान लगाने के लिए यह भी ज्ञात होना आवश्यक है कि राष्ट्रीय आय कैसे उत्पन्न होती है। यदि राष्ट्रीय आय को उत्पन्न करने के लिये समाज को बहुत अधिक त्याग करना पड़ता है तो राष्ट्रीय आय आर्थिक विकास की सही सूचक नहीं होगी।

(iv) राष्ट्रीय आय का अनुमान लगाने में कई प्रकार की व्यावहारिक कठिनाइयां पैदा होती है जैसे अल्पविकसित देशों में वस्तु विनिमय प्रणाली के विस्तृत रूप से प्रचलित नहीं होने के कारण आय सम्बन्धी सही आंकड़ें नहीं मिलते। कीमतों में परिवर्तन होने के फलस्वरूप स्थिर कीमतों पर राष्ट्रीय आय का सही अनुमान लगाना कठिन होता है। **संक्षेप में, आर्थिक विकास के राष्ट्रीय आय सम्बन्धी मापक में उपयुक्त दोष होते हुए भी प्रो० मॉयर और वाल्डविन आदि के अनुसार आर्थिक विकास को मापने का राष्ट्रीय आय ही सबसे अच्छा मापदण्ड है।**

■ 1.2 विकास की प्रति व्यक्ति आय माप

(Per Capita Income as Measurement of Development)

सामान्यत: राष्ट्रीय आय एवं उसके विभिन्न रूप विकास के सूचक माने जाते हैं। वास्तव में परम्परावादी दृष्टिकोण में संवृद्धि और विकास में कोई अन्तर नहीं किया जाता था। इसलिए राष्ट्रीय आय के उत्पादन में होने वाली वृद्धि को संवृद्धि और विकास का सूचक माना जाता था। समय के साथ-साथ विकास के सूचक के रूप में राष्ट्रीय आय का स्थान प्रति व्यक्ति आय ने विकास के वास्तविक सूचक के रूप में ले लिया है। प्रति व्यक्ति आय को सकल आय की तुलना में एक उत्तम सूचक समझा जाने लगा क्योंकि इसके अन्तर्गत जनसंख्या के आकार में होने वाले परिवर्तन को भी ध्यान में रखा जाता है।

■ आर्थिक विकास का प्रति व्यक्ति आय माप

(Per Capita Income as Measurement of Economic Development)

प्रति व्यक्ति आय से अभिप्राय किसी देश के लोगों द्वारा अर्जित औसत आय से है। इसकी गणना किसी देश की राष्ट्रीय आय को उसकी जनसंख्या से भाग देकर की जाती है। प्रति व्यक्ति आय का अनुमान दो प्रकार की कीमतों पर लगाया जा सकता है (1) चालू वर्ष की कीमतों पर, या (2) किसी विशेष वर्ष की कीमत पर, जिसे आधार वर्ष कहा जाता है। अतएव प्रति व्यक्ति आय की दो धारणाएं हैं:

(i) मौद्रिक प्रति व्यक्ति आय (Monetary Per Capita Income): किसी देश की मौद्रिक प्रति व्यक्ति आय का अनुमान निम्नलिखित समीकरणों में से किसी एक का भी प्रयोग करके लगाया जा सकता है।

$$\text{मौद्रिक प्रति व्यक्ति आय (Monetary Per Capita Income)} = \frac{\text{चालू कीमतों पर राष्ट्रीय आय (National Income at Current Prices)}}{\text{कुल जनसंख्या (Total Population)}}$$

क्योंकि, एक वर्ष में राष्ट्रीय आय (National Income) = बाजार कीमतों पर अन्तिम वस्तुएं एवं सेवायें, (Market Value of Final goods and services) हम लिख सकते हैं कि

$$\text{मौद्रिक प्रति व्यक्ति आय (Monetary per capita Income)} = \frac{\text{बाज़ार कीमतों पर अन्तिम वस्तुएं और सेवायें (Market Value of Final Goods and Services)}}{\text{कुल जनसंख्या (Total Population)}}$$

चूंकि अन्तिम वस्तुओं और सेवाओं का बाजार मूल्य (Market value of Final Goods and Services) = $Q \times P$
यहां पर Q = वस्तुओं एवं सेवाओं की मात्रा (Quantity of goods and services), और

P = वस्तुओं एवं सेवाओं का मूल्य (Price of goods and services)

अतएव हम लिख सकते हैं;

मौद्रिक प्रति व्यक्ति आय
(Monetary per capita income) = $\dfrac{Q \times P}{\text{जनसंख्या (Population)}}$

मान लीजिए, जनसंख्या स्थिर रहती है, तो प्रति व्यक्ति मौद्रिक आय में तब वृद्धि हो सकती है जब या तो (Q) उत्पादन की मात्रा में वृद्धि हो या (P) उत्पादन की कीमत में वृद्धि हो। **यदि मौद्रिक प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि कीमत (P) में होने वाली वृद्धि के कारण होती है तो इससे केवल यह प्रकट होता है कि लोगों कि क्रय शक्ति कम हो गई है और इसलिए उनकी जीवन की गुणवत्ता भी कम हो जाती है। इसलिए, मौद्रिक प्रति व्यक्ति आय आर्थिक विकास का सही सूचक या माप नहीं है।**

कुल आय को कुल जनसंख्या से क्यों भाग दिया जाता है? या प्रति व्यक्ति आय क्यों ज्ञात की जाती है?

ऐसा इसलिए किया जाता है क्योंकि यदि दो देशों की कुल आय को उनकी जनसंख्या से क्रमशः भाग नहीं किया जाता तो *कम जनसंख्या वाले देश, जैसे कनाडा या कुवैत अधिक* जनसंख्या वाले देश, जैसे भारत की तुलना में निर्धन कहला सकते हैं। यही कारण है कि प्रति व्यक्ति आय, राष्ट्रीय आय (NNP) की तुलना में विकास का अधिक अच्छा सूचक है।
टिप्पणी: संवृद्धि और विकास के संदर्भ में प्रति व्यक्ति आय का अर्थ प्रायः प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय से लिया जाता है। यद्यपि प्रति व्यक्ति आय से अभिप्राय एक व्यक्ति की आय से है तथा यह प्रति व्यक्ति एक परिवार, शहर, जिले या राज्य का हो सकता है।

(ii) वास्तविक प्रति व्यक्ति आय (Real Per Capita Income): वास्तविक प्रति व्यक्ति आय का अनुमान कीमत को स्थिर रखकर लगाया जाता है। इसलिए वास्तविक प्रति व्यक्ति आय स्थिर कीमतों या आधार वर्ष (यह तुलना करने का वर्ष है) की कीमतों पर प्रति व्यक्ति आय भी कहलाती है। अतएव, **उस अवस्था में जिसमें जनसंख्या स्थिर रहती है वास्तविक प्रति व्यक्ति आय में तभी वृद्धि होगी जब सिर्फ 'Q' (वस्तुओं एवं सेवाओं की मात्रा) बढ़ती है।** स्थिर जनसंख्या की स्थिति में वस्तुओं और सेवाओं की मात्रा में वृद्धि होने से अभिप्राय यह है कि किसी देश की प्रति व्यक्ति जनसंख्या को वस्तुओं और सेवाओं की अधिक मात्रा उपलब्ध हो रही है।

एक विरोधाभास

जब प्रति व्यक्ति मौद्रिक आय बढ़ जाती है, तो भी उपभोग का स्तर (और इसलिए जीवन की गुणवत्ता) वास्तव में कम हो सकता है, ऐसा तब होता है जब मौद्रिक आय में, कीमत स्तर में वृद्धि होने के कारण, वृद्धि होती है, इसका कारण यह है कि जब कीमत स्तर बढ़ जाता है तो दी हुई मौद्रिक आय से वस्तुओं और सेवाओं की कम मात्रा खरीदी जा सकती है।

कीमत सूचकांक

कीमत सूचकांक से अभिप्राय आधार वर्ष की तुलना में चालू वर्ष के कीमत स्तर में होने वाले प्रतिशत परिवर्तन से है।
उदाहरणः यदि चालू वर्ष का कीमत सूचकांक 200 है तो इसका अर्थ होगा कि कीमत स्तर 100 प्रतिशत बढ़ गया है या आधार वर्ष के 100 की तुलना में यह दुगना हो गया है।

अतएव मौद्रिक प्रति व्यक्ति आय की तुलना में वास्तविक प्रति व्यक्ति आय आर्थिक विकास का अधिक अच्छा सूचक है। वास्तविक प्रति व्यक्ति आय का अनुमान निम्नलिखित ढंग से लगाया जा सकता है:

$$\textbf{वास्तविक प्रति व्यक्ति आय} \text{ (Real Per Capita Income)} = \frac{\text{मौद्रिक प्रति व्यक्ति आय}}{\text{चालू वर्ष का कीमत सूचकांक}} \times 100$$

या

$$\textbf{वास्तविक प्रति व्यक्ति आय} = \frac{\text{स्थिर कीमतों पर राष्ट्रीय आय}}{\text{जनसंख्या}}$$

■ 1.3 प्रति व्यक्ति वास्तविक आय सूचकांक के दो महत्त्वपूर्ण उपयोग

(Two Important Uses of Real Per Capita Income Index)

प्रति व्यक्ति वास्तविक आय सूचकांक के दो महत्वपूर्ण उपयोग निम्नलिखित हैं:

(i) भौतिक कल्याण का अनुमान (Estimation of Material Welfare): प्रति व्यक्ति वास्तविक आय सूचकांक समय के दो बिन्दुओं पर किसी देश के लोगों के भौतिक कल्याण का अनुमान लगाने में सहायक होता है। उदाहरण के लिए, किसी देश की वर्ष 2002 में वास्तविक प्रति व्यक्ति आय का अनुमान 50,000 रु. प्रति वर्ष लगाया गया है। तथा वर्ष 2004 में 1,00,000 रु. प्रति वर्ष लगाया गया है तो इससे स्पष्ट हो जाता है कि एक औसत देशवासी वर्ष 2004 में वर्ष 2002 की तुलना में दुगनी वस्तुओं और सेवाओं का उपभोग कर सकता है।

(ii) आर्थिक विकास के स्तर की तुलना (Comparison of Level of Development): वास्तविक प्रति व्यक्ति आय सूचकांक किसी देश के विभिन्न क्षेत्रों या संसार के विभिन्न देशों के आर्थिक विकास के स्तर की तुलना करने में सहायक होता है। किसी एक क्षेत्र में दूसरे की तुलना में प्रति व्यक्ति वास्तविक आय का ऊंचा होना इस बात का सूचक है कि उस क्षेत्र में अधिक मात्रा में वस्तुएं और सेवाएं उपलब्ध हैं। इसी प्रकार एक देश A की दूसरे देश B की तुलना में अधिक प्रति व्यक्ति वास्तविक आय से देश A में वस्तुओं और सेवाओं की उपलब्धता की अधिक मात्रा और ऊँचा जीवन स्तर प्रकट होता है।

> **चालू तथा स्थिर कीमतें**
>
> **चालू कीमतें** वस्तुओं और सेवाओं की वे कीमतें हैं जो उस वर्ष में प्रचलित होती हैं, जिसमें प्रति व्यक्ति आय का अनुमान लगाया जाता है।
>
> **स्थिर कीमतें** वस्तुओं और सेवाओं की वे कीमतें हैं जो आधार वर्ष में प्रचलित होती है। आधार वर्ष संदर्भ का वर्ष है। यह एक सामान्य वर्ष है जिसका चुनाव तुलना करने के लिए किया जाता है। आधार वर्ष के चरों का मान हमेशा 100 के रूप में लिया जाता है। (तुलनात्मक उद्देश्य के अध्ययन के लिए जैसे- कीमत तथा आय)।

> **ध्यान रखिए**
>
> अन्तर्राष्ट्रीय तुलना करते समय यह आवश्यक है कि तुलना किए जाने वाले देशों की प्रति व्यक्ति वास्तविक आय का अनुमान एक ही करेन्सी जैसे यूरोपियन देशों के लिए 'यूरो' (Euro) में लगाया जाए।

प्रति व्यक्ति वास्तविक आय, प्रति व्यक्ति मौद्रिक आय की तुलना में, आर्थिक विकास का अधिक उत्तम सूचक है। परन्तु कुछ ऐसी अवस्थाएं हैं जिनमें वास्तविक प्रति व्यक्ति आय भी आर्थिक विकास का अच्छा सूचक सिद्ध नहीं होता। इन अवस्थाओं का ज्ञान प्राप्त करने के लिए हमें प्रति व्यक्ति आय की आर्थिक विकास के सूचक के रूप में निम्नलिखित ढंग से सीमाओं का अध्ययन करना चाहिए।

1.4 आर्थिक विकास के सूचक के रूप में वास्तविक प्रति व्यक्ति आय की सीमाएं
(Limitations of Real Per Capita Income as an Index of Economic Development)

आर्थिक विकास के सही माप के रूप में वास्तविक प्रति व्यक्ति आय की सीमाएं अग्रलिखित हैं:

ध्यान रखिए

भारत में जनसंख्या वृद्धि उत्पादन वृद्धि से अधिक है। योजनाओं की अवधि में (1951 से) उत्पादन में लगभग आठ अंकों की वृद्धि हुई है। परन्तु जनसंख्या में बहुत तेजी से वृद्धि होने के कारण प्रति व्यक्ति उत्पादन में तीन अंकों से भी कम की वृद्धि हुई है। इसलिए यह आवश्यक है NNP_{FC} (राष्ट्रीय आय अथवा राष्ट्रीय उत्पाद) को देश की जनसंख्या से विभाजित किया जाए। केवल तब ही हम यह जान सकते हैं कि प्रति व्यक्ति वस्तुओं तथा सेवाओं की उपलब्धता में क्या वृद्धि हुई है अथवा नहीं, अध्ययन की अवधि में बेशक कुल उत्पादन में वृद्धि हुई हो।

(1) यह आय के वितरण की अवहेलना करती है (It Ignores Distribution of Income): आर्थिक विकास के सूचक के रूप में प्रति व्यक्ति आय की सबसे बड़ी सीमा इसकी गणितीय औसत की प्रकृति है। यह आय के वितरण के बारे में प्रत्यक्ष सूचना प्रदान नहीं करती। यदि किसी देश में आय का वितरण असमान है तो आय कुछ लोगों के हाथ में केन्द्रित हो जायेगी। इसके फलस्वरूप देश के थोड़े से लोग धनी हो जायेंगे परन्तु अधिकतर जनसंख्या निर्धन ही रहेगी, उनका जीवन स्तर ऊंचा नहीं होगा। अतएव आय का वितरण असमान होने पर उसमें होने वाली वृद्धि आर्थिक विकास का सूचक नहीं होगी।

(2) गैर बाज़ारी लेन-देन की अवहेलना (Ignores Non-Market Transactions): प्रति व्यक्ति आय का अनुमान लगाते समय कई वस्तुओं और सेवाओं को शामिल नहीं किया जाता जबकि उनके फलस्वरूप लोगों का जीवन स्तर ऊंचा होता है तथा आर्थिक विकास में वृद्धि होती है। उदाहरण के लिए, सांख्यिकी कठिनाइयों तथा आंकड़ों की कमी के कारण गृहणियों द्वारा अपने परिवारों को प्रदान की गई सेवाओं को प्रति व्यक्ति आय में शामिल नहीं किया जाता परन्तु उनका आर्थिक कल्याण में महत्वपूर्ण योगदान होता है। इसलिए प्रति व्यक्ति आय में होने वाली वृद्धि द्वारा आर्थिक विकास का केवल सीमित अनुमान ही लगाया जा सकता है।

(3) विभिन्न वस्तुओं तथा सेवाओं का आर्थिक विकास में भिन्न-भिन्न योगदान होता है (Contribution to Economic Development Differs from Product to Product): विभिन्न वस्तुओं का आर्थिक विकास में भिन्न-भिन्न योगदान होता है क्योंकि इनके फलस्वरूप आर्थिक कल्याण में समान रूप से वृद्धि नहीं होती। यह आवश्यक नहीं है कि प्रति व्यक्ति आय बढ़ने के फलस्वरूप आर्थिक कल्याण में भी उसी अनुपात में वृद्धि हो। वास्तव में, हथियार तथा अन्य युद्ध सामग्री के उत्पादन की तुलना में, कपड़ा, भोजन जैसी वस्तुओं के उत्पादन से आर्थिक विकास तथा आर्थिक कल्याण में अधिक वृद्धि होती है। **अतएव युद्ध सामग्री का उत्पादन अधिक होने के कारण प्रति व्यक्ति आय में तो वृद्धि होगी परन्तु आर्थिक कल्याण में वृद्धि नहीं होगी। इसलिए आर्थिक विकास में भी वृद्धि नहीं होगी।**

(4) हानिकारक वस्तुओं तथा सेवाओं के उत्पादन को शामिल किया जाता है (Inclusion of Harmful Goods and Services): प्रति व्यक्ति आय की गणना करते समय हानिकारक वस्तुओं जैसे शराब, सिगरेट आदि के उत्पादन को भी शामिल किया जाता है। इनके उत्पादन के फलस्वरूप प्रति व्यक्ति आय में तो वृद्धि होती है परन्तु लोगों के जीवन स्तर पर इनका बुरा प्रभाव पड़ता है। इसलिए आर्थिक विकास में वृद्धि नहीं होती। इसलिए यह आवश्यक नहीं है कि प्रति व्यक्ति आय की जिस अनुपात में वृद्धि होती है आर्थिक विकास में उसी अनुपात में वृद्धि हो।

(5) प्रदूषण में वृद्धि (Increase in Pollution): सामान्यत: वास्तविक प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि के साथ-साथ प्रदूषण में भी वृद्धि होती है। जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण तथा ध्वनि प्रदूषण से बचाव करने के लिए जो धन खर्च करना पड़ता है उसे प्रति व्यक्ति की

आय में से नहीं घटाया जाता। इसके फलस्वरूप प्रति व्यक्ति वास्तविक आय का अधिक अनुमान लगा लिया जाता है जबकि वास्तव में उसमें अपेक्षाकृत कम वृद्धि होती है। इसलिए यह आर्थिक विकास का सही माप नहीं है।

(6) विश्राम का महत्व (Significance of Leisure): लोगों के विश्राम करने की मात्रा भी उनके कल्याण का एक महत्वपूर्ण सूचक है। परन्तु प्रति व्यक्ति वास्तविक आय सूचकांक में आराम की मात्रा को शामिल नहीं किया जा सकता।

(7) कई अछूत मुद्दे (Various Untouched Issues): प्रतिव्यक्ति आय विकास का पर्याप्त माप नहीं है क्योंकि यह देश के सामाजिक मानवीय संस्थागत तथा नैतिक पक्षों से सम्बन्धित कई मुद्दों की ओर ध्यान नहीं देता।

अतएव प्रतिव्यक्ति आय आर्थिक विकास का एक पूर्ण माप नहीं है। परम्परागत अर्थशास्त्र में प्रतिव्यक्ति वास्तविक आय में वृद्धि को आर्थिक विकास का एक सम्पूर्ण सूचकांक (Overall Index) समझा जाता था। परन्तु हाल ही के वर्षों (1970 की दशाब्दी) में प्रतिव्यक्ति आय को विकास के माप के रूप में अतिरिक्त सूचकों (Additional Indicators) द्वारा अनुपूरक (Supplement) करने के प्रयास किए गए हैं ताकि उपरोक्त सीमाओं को कम किया जा सके। इन प्रयासों के संदर्भ में प्रतिव्यक्ति वास्तविक आय को आर्थिक विकास का प्रमुख माप या सूचक तो माना गया है परन्तु इसमें कुछ अतिरिक्त उपाय और जोड़ दिए गए हैं जैसे आय **की असमानता तथा निर्धनता की मात्रा में कमी लाना।**

सुधार के लिए सुझाव (Suggestions for Correction): प्रति व्यक्ति वास्तविक आय के माप की कमियों को सुधारने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए जा सकते हैं:

(i) प्रति व्यक्ति आय का स्तर तथा इसका वितरण दोनों ही सामान्य कल्याण की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। अतएव आर्थिक विकास को मापते समय दोनों आकारों (Dimensions) को ध्यान में रखना चाहिए। इस संदर्भ में अर्थशास्त्रियों ने एक नया माप विकसित किया है जिसे सामूहिक सूचकांक (Composite Index) कहा जाता है।

(ii) विश्राम का आनन्द (Enjoyment of Leisure) लेना भी सभी मानवीय क्रियाओं का एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है। इसलिए राष्ट्रीय आय के माप में विश्राम के मूल्य को जोड़ा जाना चाहिए ताकि कल्याण का यह एक बेहतर सूचक बन सके।

(iii) पर्यावरणीय कार्यक्षेत्र (Environment Front) पर प्रदूषित करने वाली क्रियाओं की सामाजिक लागत को राष्ट्रीय आय के माप में से घटा देना चाहिए। इस प्रकार किसी देश के आर्थिक विकास को मापते समय हम पर्यावरण सम्बन्धी बातों को ध्यान में रख सकते हैं।

(iv) राष्ट्रीय आय को मापते समय कुछ ऐसा उपकरण (Device) भी लागू करना चाहिए जिसके द्वारा वस्तुओं तथा सेवाओं **के गैर-बाजारी उत्पादन** (Non-marketed Production) के मूल्य को भी शामिल किया जा सके।

■ 1.5 जीवन का गुणवत्ता सूचकांक (Quality of Life Index)

वास्तविक प्रतिव्यक्ति आय की उपरोक्त कमियों को ध्यान में रखते हुए अर्थशास्त्री तथा नीति-निर्माता विकास अथवा कल्याण के माप या सूचक के रूप में इस सूचकांक के प्रयोग से बहुत अधिक सन्तुष्ट नहीं थे। इसके परिणामस्वरूप कई बुद्धिजीवियों एवं नीति-निर्माताओं ने विकास के आय-आधारित माप के त्यागने पर बल दिया। कई उन अन्य सामूहिक सूचकों को विकसित करने के अनेक प्रयास किए गए जो परम्परावादी आय-आधारित वास्तविक प्रतिव्यक्ति आय सूचकांक के विकल्प के रूप में कार्य कर सकें। इस दिशा में प्रमुख प्रयास उन सामूहिक (Composite) सूचकों को विकसित करना था जो विकास को **जीवन की गुणवत्ता** के संदर्भ में माप सकें। **जीवन की गुणवत्ता (जिसका अर्थ है लोगों में कल्याण का विचार)** कई तत्त्वों पर निर्भर करती है जैसे जीवन की आधारभूत आवश्यकताओं (भोजन, कपड़ा, आवास) की उपलब्धता, आय तथा धन के वितरण में समानता, शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वच्छ वातावरण,

राजनैतिक तथा सामाजिक अधिकार आदि। जीवन की गुणवत्ता के इनमें से कुछ सूचकों को लेकर पिछले कुछ वर्षों में एक ऐसे सूचकांक निर्माण करने के लिए अनेक प्रयत्न किए गए जिसे **'जीवन के गुणवत्ता सूचकांक'** (Quality of Life Index) का नाम दिया जा सके।

कई अध्ययनों ने अधिकांश जनसंख्या की **'आधारभूत जरूरत'** (Basic Need) के पूरा करने की आवश्यकता पर बल दिया है। इन अध्ययनों ने जीवन की गुणवत्ता को उस सीमा के रूप में लिया है जिसमें लोगों की आधारभूत जरूरतें पूरी की जा रही हैं। आधारभूत जरूरतों के विभिन्न सूचकों को भार (Weight) दे कर तथा उन्हें मिलाकर, इन अध्ययनों ने विकास का एक सामूहिक सूचकांक (Composite Index) विकसित किया है। सामूहिक सूचकांक तथा विकास के माप से सम्बन्धित इन अध्ययनों की व्याख्या हम निम्नलिखित दो प्रकार से करेंगे:

(i) जीवन का भौतिक गुणवत्ता सूचकांक (Physical Quality of Life Index - PQLI)

(ii) मानव विकास सूचकांक (Human Development Index - HDI)

■ 1.6 जीवन का भौतिक गुणवत्ता सूचकांक (Physical Quality of Life Index - PQLI)

जीवन की गुणवत्ता के विकास की दिशा में प्रतिपादन का प्रमुख प्रयास **मौरिस डी. मौरिस** (Morris D. Morris) ने वर्ष 1970 के अन्त में किया था। इसी प्रयास को ही जीवन के भौतिक गुणवत्ता सूचकांक के नाम से जाना जाने लगा। यह सूचकांक किसी देश की जीवन के गुणवत्ता के सूचकांक के रूप में निम्नलिखित तीन मदों को ध्यान में रखता है:

(i) जीवन प्रत्याशा (Life Expectancy): **जीवन प्रत्याशा से अभिप्राय नवजात शिशु के वर्षों की संख्या में जीवित रहने से है** (It refers to the number of years new born children would live)। यह एक सर्वमान्य सच्चाई है कि प्रत्येक व्यक्ति दीर्घ आयु तक जीवन का आनन्द लेना पसन्द करता है। अतएव् PQLI इस बात पर बल देता है कि प्रत्येक देश में ऊँची जीवन प्रत्याशा हो। जीवन प्रत्याशा बेहतर चिकित्सा सुविधाओं, बेहतर साफ-सफाई तथा बेहतर पोषण (Nutrition) द्वारा बढ़ाई जा सकती है। अंततः इस विश्लेषण में, उच्च जीवन प्रत्याशा आर्थिक विकास का परिणाम है।

(ii) शिशु मृत्यु (Infant Mortality): **शिशु मृत्यु से अभिप्राय बच्चों के जन्म एवं 1 वर्ष के बीच मृत्यु से है** (It refers to deaths among children between birth and 1 year of age) अर्थात् बच्चों/शिशुओं की कितनी संख्या 1 वर्ष की आयु प्राप्त करने से पहले मृत्यु हो जाती है। अन्य शब्दों में इसका अभिप्राय है एक वर्ष में 1,000 बच्चों के पीछे कितने बच्चों की मृत्यु हो जाती है। हम जानते हैं कि मनुष्य अमर (Immortal) नहीं है, जो भी जन्म लेता है वह मरता अवश्य है। परन्तु सामान्यतया यह अवश्य माना जाता है कि जो पैदा हुआ वह दीर्घ समय तक अवश्य जीवित रहे, उसकी मृत्यु शिशु (Infant) के रूप में न हो। PQLI इस बात पर बल देता है कि लोग कम बीमारी तथा कम शिशु मृत्यु के साथ अपना जीवन व्यतीत करना चाहते हैं।

(iii) साक्षरता (Literacy): **साक्षरता से अभिप्राय पढ़ने व लिखने की योग्यता से है** अर्थात् प्रति 100 लोगों के पीछे कितने लोग साक्षर या पढ़े लिखे हैं। साक्षरता के ऊँचे स्तर की आवश्यकता को सार्वभौमिक रूप से स्वीकार किया जाता है। शिक्षा द्वारा साक्षरता के स्तर में वृद्धि करके लोग जीवन में अधिक व अच्छे अवसर प्राप्त करना चाहते हैं। **साक्षरता की दर** (15 वर्ष की आयु और इससे ऊपर लोगों का वह प्रतिशत जो पढ़ व लिख सकता है) को अक्सर किसी देश के विकास की अवस्था के सूचकों में से एक सूचक के रूप में प्रयोग किया जाता है।

अतएव् PQLI यह प्रकट करता है कि सामान्य रूप से जीवन की गुणवत्ता में सुधार होगा और लोग आर्थिक विकास के फल का आनन्द तब प्राप्त कर सकेंगे जब जीवन प्रत्याशा अधिक होती है, शिशु मृत्यु दर गिरती है और साक्षरता दर बढ़ती है।

PQLI का निर्माण (Constraction of PQLI)

तीन सूचकों (Indicators) का सरल औसत (Simple Average) लेकर और प्रत्येक सूचक को समान भार (Weightage) देकर, एक सामूहिक PQLI का निर्माण किया जाता है। ये तीन सूचक निम्नलिखित हैं:

(i) जीवन प्रत्याशा सूचक (Life Expectancy Indicator - LEI)

(ii) शिशु मृत्यु सूचक (Infant Mortality Indicator - IMI)

(iii) आधारिक साक्षरता सूचक (Basic Literacy Indicator - BLI)

अतएव

$$PQLI = \frac{LEI + IMI + BLI}{3}$$

यहां ध्यान देने वाली बात यह है कि जीवन की गुणवत्ता के उपरोक्त तीनों सूचकों को विभिन्न चरों (Variables) के रूप में मापा जाता है। जीवन प्रत्याशा को वर्षों के रूप में, शिशु मृत्यु दर को प्रति 1,000 के रूप में और आधारिक साक्षरता दर को प्रतिशत के रूप में मापा जाता है। इसलिए इनको PQLI में सरलता से जोड़ा नहीं जा सकता। इन सूचकों के वास्तविक मूल्य को सामान्यकृत सूचकों (Normalised Indicators) में परिवर्तित करने की आवश्यकता होती है।

तालिका 1. तीनों सूचकों के अधिकतम तथा न्यूनतम मूल्य

सूचक	अधिकतम मूल्य	न्यूनतम मूल्य	रेंज (Range)
1. आधारिक साक्षरता दर	100	0	100 – 0 = 100
2. शिशु मृत्यु दर	229	9	229 – 9 = 220
3. जीवन प्रत्याशा 1 वर्ष पर	77	38	77 – 38 = 39

यहां ध्यान देने वाली बात यह है कि साक्षरता दर के मामले में प्राकृतिक उच्चतम सीमा (100) और न्यूनतम सीमा (0) है, परन्तु शिशु मृत्यु दर तथा जीवन प्रत्याशा में ऐसी कोई प्राकृतिक सीमाएं नहीं है। उदाहरण के लिए, आर्थिक विकास के साथ-साथ जीवन प्रत्याशा कई देशों में बढ़ी है। सन् 2003 में यह स्वीडन में 80 वर्ष थी। इसलिए अब अधिकतम जीवन प्रत्याशा 77 वर्ष की बजाए 80 वर्ष ली जा सकती है।

अतएव हमने देखा कि किस प्रकार तीनों सूचकों के वास्तविक मूल्य को उनके सामान्यकृत मूल्यों में परिवर्तित कर सकते हैं और इस प्रकार तीन घटक सूचक (Component Indices) प्राप्त कर सकते हैं। इन तीनों सूचकों को अभारित औसत (Unweighted Average) लेकर हम PQLI की गणना कर सकते हैं। इसको निम्नलिखित उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया गया है:

■ जीवन की भौतिक गुणवत्ता का मूल्यांकन (Evaluation of PQLI)

आर्थिक विकास को मापने के लिए प्रति व्यक्ति औसत आय के विकल्प अथवा पूरक के रूप में **जीवन के भौतिक गुणवत्ता सूचकांक** (PQLI) ने हाल ही के वर्षों में काफी ध्यान केन्द्रित किया है। इसके **मुख्य गुण** (Merits) निम्नलिखित हैं:

(i) निर्माण में सरल (Simple to Construct): PQLI का निर्माण सरल है और इसे समझना आसान है। इसकी सरलता के कारण हाल ही के वर्षों में अन्तर्राष्ट्रीय तुलनाओं में इसका प्रयोग व्यापक रूप से किया जा रहा है।

(ii) निर्धारकों की तुलना में परिणामों पर केन्द्रित (Concentrates on Results Rather than Determinants): PQLI उन सूचकों पर केन्द्रित है जो आर्थिक विकास के परिणाम हैं न कि आर्थिक विकास के निर्धारक। अन्य शब्दों में यह कल्याण (जैसे जीवन प्रत्याशा, साक्षरता) के प्रत्यक्ष मापों पर बल देता है न कि अप्रत्यक्ष मापों (जैसे कैलोरी का लेना, प्रति व्यक्ति डॉक्टरों की संख्या या स्कूल में पढ़ने में लगे वर्षों) पर।

(iii) जीवन की गुणवत्ता के सामान्य तथा स्वीकारक निर्धारक (Generally Accepted Determinants of Quality of Life): यह उन सूचकों पर हमारा ध्यान केन्द्रित करता है जिनको कल्याण तथा जीवन की गुणवत्ता के महत्त्वपूर्ण निर्धारक माना जाता है:

कमियाँ (Shortcomings): परन्तु PQLI की अनेक कमियाँ हैं, मुख्य कमियां निम्नलिखित हैं:

(i) केवल दो स्वास्थ्य सूचकों का प्रयोग (Uses only Two Health Indicators): PQLI केवल दो स्वास्थ्य सूचकों - जीवन प्रत्याशा और शिशु मृत्यु - का प्रयोग करता है जो इस धरती पर अन्तर्सम्बन्धित दिखाई देते हैं।

(ii) समान भार (Equal Weight): PQLI ने सभी तीनों सूचकों को समान भार दिया है। समान भार के औचित्य को समझना जरा कठिन है।

(iii) प्रकृति से सामूहिक (Aggregate in Nature): PQLI सम्पूर्ण देश के लिए जीवन का गुणवत्ता सूचकांक प्रस्तुत करता है। यह जन समूह में स्वास्थ्य तथा शिक्षा के लाभों के वितरण के बारे में बहुत कम कहता है। उदाहरण के लिए यह सूचकांक शहरी-ग्रामीण क्षेत्रों के बीच होने वाले लाभों के विभाजन के बारे में कुछ भी नहीं कहता।

(iv) केवल दो सूचकों पर बल (Emphasis on Two Indicators only): यह सूचकांक जीवन की गुणवत्ता के केवल दो वर्गों पर ही बल देता है, वे हैं जीवन की दीर्घअवधि (longevity of life) और लोगों के ज्ञान में वृद्धि। यह कल्याण कई अन्य महत्त्वपूर्ण वर्गों की अवहेलना करता है जैसे आय, रोजगार और सामाजिक तथा राजनैतिक स्वतन्त्रता।

■ 2. मानव विकास सूचकांक (Human Development Index-HDI)

मानव विकास सूचकांक की धारणा का प्रतिपादन, यूनाइटेड नेशन्स की एक एजेन्सी, **यूनाइटेड नेशन्स डेवलपमेंट प्रोग्राम** (United Nations Development Programme) ने सन् 1990 में अपनी पहली मानव विकास रिपोर्ट में किया था। तब से अब तक UNDP प्रतिवर्ष एक मानव विकास रिपोर्ट प्रस्तुत करती है। आने वाली सभी मानव विकास रिपोर्टों में इस रिपोर्ट का विस्तार एवं सुधार किया गया है। ये रिपोर्टें मानव विकास के कई पहलुओं की व्याख्या करती हैं। इसके अतिरिक्त ये विभिन्न देशों का मानव सूचकांक के स्तर पर श्रेणीकरण (Ranking) भी करती है। इन रिपोर्टों का केन्द्र बिन्दु **मानव विकास सूचकांक** (HDI) का निर्माण करना है।

■ 2.1 मानव विकास का अर्थ (Meaning of Human Development)

इससे पहले कि मानव विकास सूचकांक की धारणा की व्याख्या की जाए, यह बेहतर होगा कि हम पहले मानव विकास की धारणा का अर्थ समझ लें। **मानव विकास रिपोर्ट** (1997) के अनुसार, **"मानव विकास लोगों के चयनों की विस्तृत करने तथा प्राप्त हुए कल्याण के स्तर को बढ़ाने की प्रक्रिया है।"** (Human development is a process of widening people's choices as well as raising the level of well being achieved. - **Human Development Report**)। परम्परावादी अर्थशास्त्र में आर्थिक विकास केवल एक चुनाव (Choice) के विस्तार (Expansion) पर बल देता है और वह है आय। परन्तु मानव विकास की धारणा आय और विकास से आगे बढ़ कर सभी मानव चुनावों को कवर करता है जैसे आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक। विकास का उद्देश्य मानवीय चुनावों को बढ़ाना है। यह सही है कि चुनावों तथा कल्याण (Well-being) में विस्तार करने के लिए आय

प्राप्ति एक मुख्य साधन है। परन्तु मानव विकास की धारणा आय चयन तथा कल्याण से और आगे निकल जाती है। आय के अतिरिक्त कई और अन्य चुनाव भी हैं जैसे शिक्षा और साक्षरता, स्वास्थ्य, भौतिक पर्यावरण, राजनैतिक स्वतन्त्रता जैसे घूमने और बोलने की स्वतन्त्रता, लिंग-सम्बन्धित विकास, निर्णय-निर्माण तथा राजनैतिक शक्ति में आर्थिक सहभागिता। ये सभी चुनाव आम चुनाव की भांति महत्त्वपूर्ण हैं।

अतएव मानव विकास की धारणा मानव विकास के सभी पक्षों को लेती है। यह परम्परावादी धारणा की तुलना में विकास की विस्तृत धारणा है। यह आर्थिक विकास को मानव दशाओं को चारों ओर से सुधारने की दृष्टि से कार्य करती है। मानव विकास की धारणा लोगों को केन्द्रीय स्थल (Centre Stage) पर लाती है।

■ 2.2 मानव विकास के मुख्य विचारार्थ विषय (Main Propositions of Human Development)

मानव विकास के आवश्यक घटक एवं मुख्य विचारार्थ विषय निम्नलिखित हैं:

(i) केन्द्रस्थल (Centre Stage): विकास लोगों तथा उनके जीवन की गुणवत्ता का विकास के केन्द्र स्थल की दृष्टि से अवलोकन करता है। लोग वस्तुओं का उत्पादन करने के केवल यन्त्र ही नहीं बल्कि केन्द्र स्थल में भी अपना स्थान रखते हैं।

(ii) सभी क्रियाओं का अन्त (End of All Activities): मानवीय विकास सभी क्रियाओं का एकमात्र उद्देश्य है, जबकि आर्थिक विकास इस उद्देश्य को प्राप्त करने का केवल एक साधन है।

(iii) सभी चुनाव (All Choices): मानव विकास का उद्देश्य सभी चुनावों को विस्तृत करना है।

(iv) सभी पक्षों को लेना (Covering All Aspects): मानव विकास का सम्बन्ध केवल आम चुनावों से ही नहीं है बल्कि यह मानव विकास के सभी पक्षों को लेता है - चाहे वे आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक या राजनैतिक क्यों न हों। मानव विकास केवल अर्थव्यवस्था को ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण समाज को अपने घेरे में लाता है।

(v) समता (Equity): लोगों को समान अवसर प्राप्त होने चाहिए।

(vi) धारणीयता (Sustainability): अवसर प्राप्त करने की पहुँच (Access to opportunities) में न केवल वर्तमान पीढ़ी बल्कि भावी पीढ़ी को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए।

(vii) मानवीय क्षमताएं (Human Capabilities): मानव विकास का सम्बन्ध मानव क्षमताओं के विस्तार से है और उन क्षमताओं के पूर्ण उपयोग के सुनिश्चित करने से है।

■ 2.3 मानव विकास सूचकांक के सूचक/तत्त्व (Indicators of Human Development Index)

मानव विकास सूचकांक आर्थिक विकास के माप का **एक संयुक्त सूचकांक** है। इस धारणा के अन्तर्गत विभिन्न देशों के तीन सूचकों अर्थात् **जीवन अवधि, ज्ञान तथा आय** के आधार पर आर्थिक विकास का एक संयुक्त सूचकांक तैयार किया जाता है। अतएव मानव विकास सूचकांक का निर्माण निम्नलिखित तीन तत्त्वों के आधार पर तैयार किया जाता है:

(1) जीवन दीर्घता (Longevity): इससे प्रकट होता है कि एक मनुष्य कितने वर्ष जीवित रहता है। **जीवन दीर्घता से अभिप्राय है कि एक नवजात के कितने वर्ष तक जीवित रहने की सम्भावना है।** जीवन दीर्घता जितनी कम होती है आर्थिक कल्याण उतना ही कम होता है।

(2) ज्ञान या शिक्षा प्राप्ति (Knowledge or Educational Attainment): शिक्षा प्राप्ति से अभिप्राय है कि लोगों का शिक्षा स्तर कितना है। इसके अंतर्गत दो तत्व शामिल होते हैं:

(i) प्रौढ़ साक्षरता दर (Adult Literacy Rate): प्रौढ़ साक्षरता दर से अभिप्राय 15 वर्ष या उससे अधिक आयु के व्यक्तियों के उस अनुपात से है जो अपने प्रत्येक दिन के जीवन में सरल वाक्यों को समझकर पढ़ तथा लिख सकते हैं। अतएव प्रौढ़ साक्षरता दर का अनुमान लगाते समय केवल उन्हीं व्यक्तियों को शामिल किया जाता है जिनमें सरल वाक्यों को पढ़ने तथा लिखने, दोनों की योग्यता है।

(ii) सकल या संयुक्त नामांकन अनुपात (Gross or Combined Enrolment Ratio): शिक्षा के विभिन्न स्तरों अर्थात् **प्राथमिक** (Primary), **माध्यमिक** (Secondary) तथा **तृतीयक** (Tertiary) स्तरों के लिए नामांकित सभी छात्रों का अनुमान लगाया जाता है। **प्राथमिक** स्तर से अभिप्राय पांचवीं कक्षा तक की शिक्षा से है। **माध्यमिक** स्तर से अभिप्राय मिडिल तथा सेकेण्डरी स्तर की शिक्षा से है। **तृतीयक** स्तर से अभिप्राय कॉलेज तथा विश्वविद्यालय स्तर तक की शिक्षा से है। **सकल नामांकन अनुपात से अभिप्राय सभी विद्यार्थियों की संख्या तथा देश की कुल जनसंख्या के अनुपात से है।**

$$\text{सकल नामांकन अनुपात (GER)} = \frac{\text{शिक्षा के लिए नामांकित विद्यार्थियों की संख्या}}{\text{कुल जनसंख्या}}$$

ध्यान रखिए

मानव विकास सूचकांक में जीवन की प्रत्याशा या दीर्घता से अभिप्राय एक वर्ष की आयु पर जीवन की प्रत्याशा से है।

(3) आय या प्रति व्यक्ति वास्तविक सकल घरेलू उत्पादन या जीवन का स्तर (Income or Per Capita Real Gross Domestic Product or Standard of Living): प्रति व्यक्ति घरेलू उत्पाद द्वारा लोगों की क्रय शक्ति या वस्तुएं तथा सेवाएं खरीदने की शक्ति ज्ञात होती हैं।

$$\text{प्रति व्यक्ति वास्तविक सकल घरेलू उत्पाद} = \frac{\text{स्थिर कीमतों पर सकल घरेलू उत्पाद}}{\text{कुल जनसंख्या}}$$

■ 2.4 मानव विकास सूचकांक की संरचना (Construction of Human Development Index)

मानव विकास सूचकांक (HDI) अनुमान लगाने के लिए सामान्य औसत के तीन सूचकांकों को लेता है।

$$\text{मानव विकास सूचकांक} = \frac{\text{जीवन प्रत्याशा सूचकांक} + \text{शिक्षा प्राप्ति सूचकांक} + \text{प्रति व्यक्ति वास्तविक सकल घरेलू उत्पाद सूचकांक}}{3}$$

यूनाइटेड नेशन्स डेवलमेन्ट प्रोग्राम (U.N.D.P.) ने अभी तक 177 देशों के सूचकांक तैयार किए हैं। प्रत्येक देश को 0 से 1 के बीच अंक दिए जाते हैं। इनके आधार पर आर्थिक कल्याण का अनुमान लगाया जाता है।

निम्नलिखित तालिका 2 से विभिन्न देशों के मानव विकास सूचकांक स्पष्ट हो जाते हैं:

तालिका 2. मानव विकास सूचकांक (HDI)

देश	HDI-Rank	HDI-Value
1. नार्वे	1	0.956
2. आस्ट्रेलिया	3	0.957
3. श्रीलंका	93	0.755

4. चीन	81	0.768
5. इंडोनेशिया	108	0.711
6. भारत	**126**	**0.611**
7. पाकिस्तान	134	0.539
8. नेपाल	138	0.527
9. बांग्लादेश	130	0.530
10. मोजाम्बिक	168	0.390
11. नाईजर	177	0.311

(Source : Economic Survey 2007 and Human Development Report 2007)

उपरोक्त विवरण से ज्ञात होता है कि 177 देशों में भारत का स्थान 126वां है। मानव विकास सूचकांक की दृष्टि से पहले दो देश नार्वे तथा आस्ट्रेलिया हैं। मानव विकास सूचकांक **जीवन की गुणवत्ता** (Quality of Life) का महत्वपूर्ण सूचक है। इसका मूल्य जितना अधिक होता है आर्थिक विकास का स्तर उतना ही अधिक होता है।

संक्षेप में, मानव विकास सूचकांक आर्थिक विकास का एक महत्त्वपूर्ण सूचक है। इसके द्वारा प्रति व्यक्ति वास्तविक आय के अतिरिक्त आर्थिक कल्याण के महत्त्वपूर्ण तत्त्व जैसे जीवन प्रत्याशा, शैक्षिक योग्यता तथा प्रतिव्यक्ति वास्तविक आय के स्तर का भी ज्ञान प्राप्त होता है। **परन्तु यह भी आर्थिक विकास का पूर्ण सूचक नहीं है।** इसका कारण यह है कि यह सूचकांक आर्थिक विकास के केवल तीन तत्वों पर आधारित है तथा अन्य तत्वों जैसे पर्यावरण की स्वच्छता, शहरीकरण के स्तर, स्त्रियों की सामाजिक स्थिति आदि की अवहेलना करता है।

■ 3. आर्थिक विकास का सबसे अच्छा मापक (Best Measure of Economic Development)

आर्थिक विकास का सबसे अच्छा मापक कौन-सा है इस सम्बन्ध में कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं दिया जा सकता। इस समस्या का समाधान इस बात पर निर्भर करता है कि आर्थिक विकास को मापने का हमारा उद्देश्य क्या है? यदि हम आर्थिक कल्याण को समय के एक **निश्चित बिन्दु** (Point of Time) पर मापना चाहते हैं तो **आर्थिक विकास मापक** (MEW) अधिक सन्तोषजनक होगा। इसके विपरीत यदि हमारा उद्देश्य आर्थिक विकास का दीर्घकालीन अनुमान लगाना है तो **राष्ट्रीय आय** (National Income) मापक अधिक सन्तोषजनक माप होगा। यदि हमारा उद्देश्य विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं के आर्थिक विकास का तुलनात्मक अध्ययन करना है तो **जीवन का भौतिक गुण सूचकांक माप (PQLI) अधिक सन्तोषजनक माप होगा।**

वास्तव में, अधिकतर अर्थशास्त्रियों का यह विचार है कि कई सीमायें होने के बावजूद भी आर्थिक कल्याण का अभी तक सबसे सन्तोषजनक माप **वास्तविक राष्ट्रीय आय** की धारणा ही है। क्योंकि गैर-बाजारी तथा अप्राप्त पदार्थों के प्रदूषण के बारे में आंकड़े इकट्ठे करना कठिन तथा खर्चीला है। इसके साथ ही आराम के निहित मूल्य का निरंतर अनुमान लगाना भी कठिन है। अतः वास्तविक राष्ट्रीय आय ही आर्थिक विकास को मापने का एक सामान्य उपाय है। बेशक यह भी एक आदर्श माप नहीं है, फिर भी इसको निरन्तर आधार के रूप में बेहतर माप माना जा सकता है। **प्रो॰ आर॰ जी॰ लिप्सी** के अनुसार, **''भविष्य में आर्थिक विकास के मापकों में कितना परिवर्तन क्यों न हो वे पूरी तरह सकल राष्ट्रीय उत्पाद का स्थान नहीं ले सकेंगे।''** (Whatever changes there may be in future in the measures of economic development they can not fully replace gross National Product.
– Lipsey)

■ 3.1 अल्पविकसित देशों में आर्थिक विकास को मापने में कठिनाइयां (Difficulties in the Measurement of Economic Development in Underdeveloped Countries)

आर्थिक विकास के उपरोक्त मापों में राष्ट्रीय आय तथा प्रति व्यक्ति आय सम्बन्धी माप ही अधिक व्यावहारिक तथा उचित हैं परन्तु अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं में राष्ट्रीय तथा प्रति व्यक्ति आय को मापने से सम्बन्धित निम्नलिखित मुख्य कठिनाइयां हैं:

(1) सही मापदण्ड की कमी (Lack of Accurate Index of Measurement): आर्थिक विकास के माप के सही सूचक के सम्बन्ध में अर्थशास्त्रियों में मतभेद पाया जाता है। कुछ अर्थशास्त्री राष्ट्रीय आय को तथा कुछ प्रति व्यक्ति आय को आर्थिक विकास का मापदण्ड मानते हैं। कुछ अर्थशास्त्री आर्थिक विकास के माप के लिए जीवन स्तर, प्रति व्यक्ति बिजली, इस्पात, भोजन आदि के उपभोग में होने वाले परिवर्तनों के अध्ययन को महत्त्व देते हैं। आर्थिक विकास के उचित मापदण्ड के विषय में अर्थशास्त्री एक मत नहीं हैं। इसलिये आर्थिक विकास का सही माप करना सम्भव नहीं होता।

(2) अनार्थिक तत्त्वों की अवेलहना (It Ignores Non-Economic Factors): आर्थिक विकास पर केवल आर्थिक तत्त्वों का ही प्रभाव नहीं पड़ता बल्कि कई सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक तथा दूसरे अनार्थिक तत्त्व भी आर्थिक विकास पर प्रभाव डालते हैं। आर्थिक विकास का अनुमान लगाने के लिए इनका माप भी आवश्यक है परन्तु आर्थिक विकास का कोई भी मापदण्ड इन अनार्थिक तत्त्वों का ध्यान नहीं रखता है।

(3) अन्तर्राष्ट्रीय तुलना की कठिनाइयां (Difficulties of International Comparisons): आर्थिक विकास का कोई ऐसा सर्वमान्य मापदण्ड नहीं है जिससे अन्तर्राष्ट्रीय तुलना की जा सके। **कोलीन कलार्क** (Colin Clark) ने आर्थिक विकास की अन्तर्राष्ट्रीय तुलना के लिए सबसे पहले अन्तर्राष्ट्रीय इकाई की धारणा दी है, परन्तु इससे भी समस्या का पूरा हल नहीं निकलता।

(4) राष्ट्रीय आय तथा प्रति व्यक्ति आय के विषय में मतभेद (Controversy over National Income and Per Capita Income): अर्थशास्त्रियों में यह भी मतभेद पाया जाता है कि राष्ट्रीय आय अथवा प्रति व्यक्ति आय में से किस को आर्थिक विकास का मापदण्ड माना जाये। वास्तव में इन दोनों का ज्ञान आवश्यक है। मान लीजिए, दो देशों A तथा B की राष्ट्रीय आय एक समान दर पर बढ़ रही है। परन्तु यदि A देश की जनसंख्या B देश की जनसंख्या की तुलना में दुगुनी बढ़ जाती है तो A देश की प्रति व्यक्ति आय B देश की तुलना में केवल आधी ही बढ़ेगी। राष्ट्रीय आय के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचेंगे कि दोनों देशों का आर्थिक विकास एक ही दर पर हो रहा है परन्तु प्रति व्यक्ति आय के अध्ययन से हमारा निष्कर्ष यह होगा कि A देश के आर्थिक विकास की दर B देश की तुलना में आधी है। इसलिये आर्थिक विकास के माप के लिये राष्ट्रीय आय तथा प्रति व्यक्ति आय दोनों का ही अध्ययन आवश्यक है।

(5) जीवन स्तर को मापने में कठिनाइयां (Difficulties in the measurement of Standard of Living): कुछ अर्थशास्त्रियों के अनुसार आर्थिक विकास का माप जीवन स्तर में होने वाली वृद्धि के आधार पर किया जाना चाहिये। परन्तु इस धारणा से संबंधित कई कठिनाइयां हैं, जैसे एक तो यह कहना कठिन होगा कि कौन-सा जीवन स्तर ऊंचा है तथा कौन-सा जीवन स्तर नीचा है। दूसरे जीवन स्तर का सम्बन्ध आय के साथ-साथ कीमत स्तर से भी है। राष्ट्रीय आय तथा प्रति व्यक्ति आय में कोई परिवर्तन न होने पर भी कीमत स्तर के कम होने के फलस्वरूप जीवन स्तर ऊंचा हो सकता है। परन्तु यह स्थिति आर्थिक विकास की सूचक नहीं है इसलिये जीवन स्तर राष्ट्रीय आय का उचित मापदण्ड नहीं है।

(6) आंकड़े सम्बन्धी कठिनाइयां (Difficulties Concerning Statistics): आर्थिक विकास के माप के लिए राष्ट्रीय आय, प्रति व्यक्ति आय, प्रति व्यक्ति उपभोग आदि के सम्बन्ध में सही आंकड़ों की आवश्यकता है। परन्तु अल्पविकसित देशों में कई कारणों से सही आंकड़े उपलब्ध नहीं हो पाते। आंकड़ों के अभाव में राष्ट्रीय आय का सही अनुमान लगाना कठिन कार्य है।

संक्षेप में, मायर तथा बाल्डविन का यह मत उचित प्रतीत होता है कि आर्थिक विकास का विश्लेषण वास्तविक राष्ट्रीय आय में होने वाली वृद्धि तथा उसके फलस्वरूप प्रति व्यक्ति आय में होने वाले परिवर्तनों पर केन्द्रित रहता है। वास्तविक राष्ट्रीय आय में होने वाली वृद्धि के द्वारा आर्थिक विकास का माप करने के पश्चात् हम उसके जनसंख्या में होने वाले परिवर्तनों से तुलना करके प्रति व्यक्ति आय वास्तविक आय का अनुमान लगा सकते हैं। अत: प्रति व्यक्ति वास्तविक आय (Per Capita Real Income) आर्थिक विकास का सबसे उचित मापक माना जा सकता है।

प्रश्न (QUESTIONS)

■ I. वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

सभी प्रश्न अनिवार्य हैं (Attempt all the questions)

1. जीवन प्रत्याशा तथा दीर्घता शब्द हैं (समानार्थक, असमानार्थक)
2. उत्पादन तथा रोजगार का ऊँचा स्तर है (विकास का आर्थिक माप, विकास का सामाजिक माप)
3. साक्षरता तथा शिक्षा का ऊँचा स्तर है (विकास का आर्थिक माप, विकास का सामाजिक माप)
4. वास्तविक प्रति व्यक्ति आय का अनुमान लगाया जाता है 'P' (कीमत) को क्या मानकर (स्थिर, स्थिर नहीं)(K.U. 2006)
5. शिशु मृत्यु दर से अभिप्राय शिशुओं की उस संख्या से है जिनकी मृत्यु होती है प्रति वर्ष (M.D.U. 2009)
(प्रति 1,000 शिशु, प्रति 100 शिशु)
6. साक्षरता दर से अभिप्राय उन साक्षर व्यक्तियों की संख्या की दर से है जो
(प्रति 100 व्यक्ति, प्रति 1,000 व्यक्ति)
7. मानव विकास की धारणा में आते हैं (सभी मानव चुनाव, एक मानव चुनाव)
8. जीवन की गुणवत्ता एक देश में दूसरे देश की तुलना में अधिक उत्तम हो सकती है जबकि प्रतिव्यक्ति आय अपेक्षाकृत
(कम हो, अधिक हो)
9. अनेक देशों का मानवीय विकास सूचकांक का निर्माण करता है (UNDP, मानव विकास रिपोर्ट)

उत्तर (Answer): (1) असमानार्थक, (2) विकास का आर्थिक माप, (3) विकास का सामाजिक माप, (4) स्थिर, (5) प्रति 1,000 शिशु, (6) प्रति 100 व्यक्ति, (7) सभी मानव चुनाव, (8) कम हो, (9) UNDP ।

■ II. लघु/परिभाषा रूपी प्रश्न (Short/Definitional Type Quesions)

1. विकास के आर्थिक माप की परिभाषा दें।
2. विकास के सामाजिक माप की परिभाषा दें।
3. प्रति व्यक्ति मौद्रिक आय की परिभाषा दें।
4. प्रति व्यक्ति वास्तविक आय की परिभाषा दें।
5. क्या प्रति व्यक्ति आय आर्थिक विकास का सही माप है?
6. असमानता में वृद्धि के फलस्वरूप आर्थिक विकास में वृद्धि होती है या कमी?
7. जीवन प्रत्याशा सूचकांक से क्या अभिप्राय है?

8. मानव विकास सूचक क्या मापता है?
9. जीवन की दीर्घता की परिभाषा दें।
10. सकल नामांकन अनुपात की परिभाषा दीजिए।
11. जीवन की भौतिक गुणवत्ता (PQLI) के तीन अंग लिखिए।
12. क्रय शक्ति समता क्या है?
13. प्रति व्यक्ति मौद्रिक आय का सूत्र लिखिए। (M.D.U. 2008)
14. जीवन की भौतिक गुणवत्ता की संक्षिप्त व्याख्या कीजिए। (M.D.U. 2009)
15. वास्तविक प्रति व्यक्ति-आय तथा मौद्रिक प्रति-व्यक्ति आय में क्या अंतर है? (K.U. 2009)

■ III. निबन्ध रूपी प्रश्न (Essay Type Questions)

1. Define economic development. What in your opinion is the most satisfactory measure of economic development and why?
   आर्थिक विकास को परिभाषित करें। आपकी राय में आर्थिक विकास का सबसे सन्तोषजनक माप कौन-सा है और क्यों?
2. What do you understand by economic development? How is it measured?
   आर्थिक विकास से आपका क्या अभिप्राय है? इसे कैसे मापा जाता है?
3. Discuss the methods of measuring Economic Development.
   आर्थिक विकास को मापने की चर्चा करें।

   Or

   Identify the various methods of measuring economic development. Which method you consider best and why?
   आर्थिक विकास को मापने की विभिन्न विधियों की पहचान करें। किस विधि को आप सर्वोत्तम समझते हैं तथा क्यों?
4. Is per capita income a satisfactory measure of economic development? Mention the limitations of per capita income as a measure of economic development.
   क्या प्रति व्यक्ति आय आर्थिक विकास का सन्तोषजनक माप है? प्रति व्यक्ति आय की आर्थिक विकास के माप के रूप में क्या सीमाएँ हैं?
5. Explain the quality of life index as an indicator of economic development.
   आर्थिक विकास के सूचक के रूप में जीवन के गुणवत्ता सूचकांक की व्याख्या करें।
6. Explain human development index as an indicator of economic development.
   आर्थिक विकास के सूचक के रूप में मानव विकास सूचकांक की व्याख्या करें।
7. Explain the steps involved in the construction of human development index.
   मानव विकास सूचकांक के निर्माण के लिए आवश्यक कदमों की व्याख्या करें।
8. How is social measurement of development different from economic measurement of development? Substantiate your answer referering to some important economic and social indicators.
   विकास का सामाजिक माप किस प्रकार आर्थिक माप से भिन्न है? अपने उत्तर के पक्ष में कुछ महत्त्वपूर्ण आर्थिक व सामाजिक सूचक दें।
9. Differentiate between economic development and economic growth. Discuss various methods of measuring economic development.
   आर्थिक विकास तथा आर्थिक संवृद्धि में अंतर बताइए। आर्थिक विकास को मापने की विभिन्न विधियों की व्याख्या कीजिए। (K.U. 2008)

4

निर्धनता का दुश्चक्र

(VICIOUS CIRCLE OF POVERTY)

■ 1. भूमिका (Introduction)

अल्पविकसित देशों के आर्थिक पिछड़ेपन तथा उनकी निर्धनता के सम्बन्ध में कई सिद्धान्त प्रतिपादित किये गये हैं। इनमें से एक सिद्धान्त "**निर्धनता के दुश्चक्र**" (The Vicious Circle of Poverty) का सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त को मुख्य रूप से **प्रो॰ नर्कसे** ने अपनी पुस्तक "Problem of Capital Formation in Underdeveloped Countries" में प्रतिपादित किया था।

एक अल्पविकसित अर्थव्यवस्था के निर्धन होने के प्राथमिक कारणों में इतनी अधिक परस्पर निर्भरता पाई जाती है कि वे एक-दूसरे को शक्ति प्रदान करने के लिये चक्रीय रूप धारण कर लेते हैं। निर्धनता के कारणों के इस चक्र को ही **निर्धनता का दुश्चक्र** (Vicious Circle of Poverty) कहते हैं। अल्पविकसित देशों की इस विशेषता के आधार पर ही **प्रो॰ नर्कसे** का प्रसिद्ध कथन है कि, "**एक देश निर्धन इसलिए है क्योंकि वह निर्धन है।**" (A country is poor because it is poor.) इसका अभिप्राय है कि निर्धनता स्वयं ही ऐसी दशाएं उत्पन्न कर देती है कि अर्थव्यवस्था निर्धनता के चक्र में ही फंसी रहती है।

■ 2. निर्धनता के दुश्चक्र के अर्थ (Meaning of Vicious Circle of Poverty)

निर्धनता के दुश्चक्र से अभिप्राय है कि निर्धनता स्वयं ही निर्धनता को जन्म देती है अर्थात् निर्धनता का कारण तथा परिणाम स्वयं निर्धनता है। निर्धनता का दुश्चक्र एक ऐसी **वृत्ताकार** (Circular) क्रिया है जिसका प्रारम्भ भी निर्धनता है तथा अन्त भी निर्धनता है। **यह एक ऐसे रोगी के समान है जो अपनी शारीरिक कमजोरी के कारण रोगी है तथा रोगी होने के कारण शारीरिक रूप से कमजोर है।** इस सिद्धान्त के अनुसार, अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं में **प्रति व्यक्ति आय कम** होती है तथा जनसंख्या की वृद्धि दर अधिक होती है। प्रति व्यक्ति आय के कम होने के कारण एक ओर तो बचत कम होती है तथा दूसरी ओर मांग कम होती है। बचत कम होने के कारण निवेश के लिए कम साधन उपलब्ध होते हैं तथा मांग कम होने के कारण निवेश की प्रेरणा कम होती है। अतएव बचत तथा मांग की कमी के कारण **भौतिक तथा मानवीय निवेश** (Physical and Human Investment) कम होता है। इसके फलस्वरूप एक ओर प्रति श्रमिक पूंजी कम होती है तथा दूसरी ओर श्रमिक का स्वास्थ्य खराब रहता है तथा उसमें शिक्षा की कमी होती है। इनके फलस्वरूप श्रम की उत्पादकता कम होती है। उत्पादकता कम होने के कारण आय कम होती है तथा आय कम होने के कारण उत्पादकता कम होती है। इस प्रकार निर्धनता का यह दुश्चक्र जैसा कि चित्र नं॰ 1 द्वारा दिखाया गया है चलता रहता है।

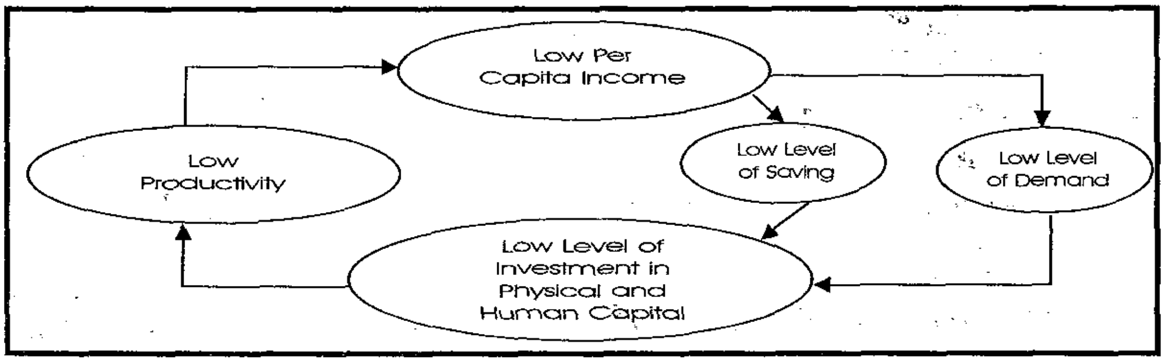

चित्र 1 निर्धनता का दुश्चक्र

प्रो० नर्कसे के अनुसार, **"निर्धनता के दुश्चक्र का अर्थ नक्षत्रमण्डल के समान शक्तियों का इस प्रकार से घूमना है कि वे परस्पर क्रिया-प्रक्रिया करती हुई निर्धन देश को निर्धनता की अवस्था में ही रखें।"** (It implies circular constellation of forces tending to act and react upon one another in such a way as to keep a poor country in a state of poverty. – **Nurkse**) **प्रो० नर्कसे** ने एक निर्धन व्यक्ति के उदाहरण द्वारा निर्धनता के दुश्चक्र के अर्थों को स्पष्ट किया है। उसके अनुसार, निर्धन मनुष्य को पर्याप्त भोजन नहीं मिलता, कम भोजन के कारण वह निर्बल हो जाता है, निर्बल होने के कारण उसकी कार्यकुशलता कम हो जाती है, इसके फलस्वरूप उसकी आय कम हो जाती है, अर्थात् वह निर्धन हो जाता है। निर्धन होने के कारण उसे पर्याप्त खाना नहीं मिलेगा तथा यह चक्र चलता रहेगा। एक देश के सम्बन्ध में इस प्रकार की स्थिति को सामान्यतः इस कथन से व्यक्त किया जा सकता है कि **"एक देश इसलिए निर्धन है क्योंकि वह निर्धन है।"** (A country is poor because it is poor) **प्रो० वाल्टर क्राज** के अनुसार, **"अल्पविकसित देशों के वातावरण के सम्बन्ध में दुश्चक्र शब्द से अभिप्राय कारण तथा परिणाम के उस आन्तरिक सम्बन्ध से है जो अल्पविकसित देश को उसकी कमियों से बांधे रखता है।"** (The term vicious circle as it applies to the environment in underdeveloped countries refers to an interrelationship of cause and effect that operates so as to keep the economy in its own shortcomings. – **Walter Krause**)।

प्रो. केन्ज ने इस विवाद को **'पहले मुर्गी या पहले अण्डा विवाद'** (Hen first or egg first controversy) कहा है। 1951 में विश्व स्वास्थ्य संगठन (W.H.O.) के अधिवेशन में **प्रो. विनस्लो** (Winslow) ने 'The cost of sickness and Price of Health' विषय पर बोलते हुए 'दुश्चक्र' शब्द को इस प्रकार स्पष्ट किया, **"निर्धनता एवं बीमारी से एक दुश्चक्र बना। पुरुष *और स्त्रियां इसलिए बीमार थीं कि वे लोग गरीब थे, वे इसलिए गरीब हो गये क्योंकि वे बीमार थे। वे और अधिक गरीब* इसलिए होते गए क्योंकि वे बीमार थे और उनको निरन्तर बीमारी का कारण उनकी गरीबी थी।"** (That poverty and disease formed a vicious circle. Men and women were poor, they became poorer because they were sick because they were sick, and sicker because they were poorer." – **Winslow**)

■ 3. निर्धनता के दुश्चक्र की विशेषताएं (Features of Vicious Circle of Poverty)

निर्धनता के दुश्चक्र की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं:

(1) निर्धनता का कारण तथा परिणाम स्वयं निर्धनता है।

(2) निर्धनता **वृताकार ढंग** (Circular Form) के एक बिन्दु से प्रारम्भ होकर, क्रिया-प्रक्रिया करती हुई उसी बिन्दु पर वापिस लौट आती है।

(3) निर्धनता का प्रभाव **संचयी** (Cumulative) होता है अर्थात् निर्धनता का अगला स्तर अपने पहले स्तर से भी अधिक घातक होता है।

(4) निर्धनता का दुश्चक्र एक ऐसी **निरन्तर प्रक्रिया** (Continuous Process) है जो सम्बन्धित तत्त्वों (Factors) को सदैव नीचे की ओर धकेलती है।

(5) निर्धनता के दुश्चक्र का आरम्भ एक **ऋणात्मक तत्त्व** (Negative Factor) अर्थात् कम आय से होता है। यह तत्त्व अगले ऋणात्मक तत्त्व का कारण भी है तथा परिणाम भी है।

■ 4. निर्धनता के दुश्चक्र के विभिन्न पक्ष (Different Aspects of Vicious Circle of Poverty)

निर्धनता के दुश्चक्र के मुख्य पक्ष निम्नलिखित हैं:

(1) दुश्चक्र का पूर्ति पक्ष अथवा कम बचत का दुश्चक्र (Supply Side of Vicious Circle or Vicious Circle of Low Saving): निर्धनता के दुश्चक्र के पूर्ति पक्ष से ज्ञात होता है कि अल्पविकसित देशों में लोगों की आय इतनी कम होती है कि वे बचत करके पूंजी निर्माण करने में असमर्थ होते हैं। प्रो० सैम्युअलसन के शब्दों में, **"अल्पविकसित अर्थव्यवस्थायें अपना सिर पानी के ऊपर नहीं उठा सकतीं क्योंकि उनका उत्पादन इतना कम है कि वे पूंजी निर्माण के लिए कुछ भी नहीं बचा सकती जिस से**

कि उनका जीवन स्तर ऊंचा उठ सके।' (They (the backward nations) cannot get their heads above water because their production is so low that they can spare nothing for capital formation by which their standard of living could be raised. – **Samuelson**) **प्रो॰ नर्कसे** ने निर्धनता के दुश्चक्र के पूर्ति पक्ष को इस प्रकार व्यक्त किया है कि "**अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं में बचत करने की शक्ति कम होती है। इसका कारण यह है कि इन अर्थव्यवस्थाओं में आय का स्तर नीचा होता है। वास्तविक आय का नीचा स्तर उत्पादकता की कमी को प्रकट करता है। उत्पादकता की कमी का कारण पूंजी निर्माण की कमी है। पूंजी निर्माण की कमी का कारण बचत की शक्ति का कम होना है। इस प्रकार यह चक्र पूरा हो जाता है।**" (On the supply side there is the small capacity to save, resulting from low level of national income. The low real income is a reflection of low productivity, which in turn is due largely to the lack of capital. The lack of capital is a result of the small capacity to save, and so the circle is complete. – **Nurkse**)

दुश्चक्र का पूर्ति पक्ष (Supply Side)

कम आय → कम बचत → कम निवेश → कम पूंजी निर्माण → कम उत्पादकता → कम आय . . . . . . →

निर्धनता के दुश्चक्र के पूर्ति पक्ष को आगे दिये गये रेखाचित्र नं॰ 2 के द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

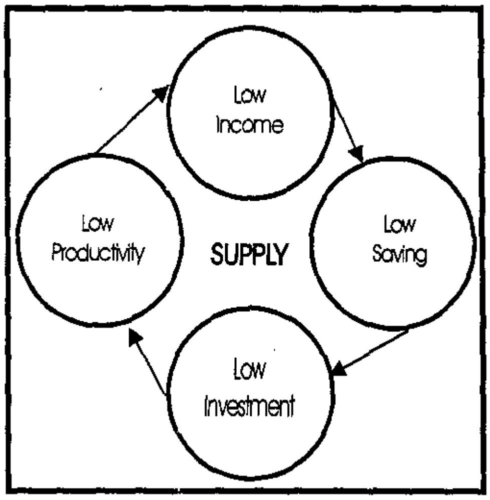

चित्र 2

रेखाचित्र नं॰ 2 से ज्ञात होता है कि अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाएं निर्धन होती हैं। निर्धनता का अर्थ वास्तविक आय का कम होना है। वास्तविक आय इसलिए कम होती है क्योंकि उत्पादकता कम होती है। उत्पादकता इसलिये कम होती है क्योंकि पूंजी की कमी होती है पूंजी की कमी का कारण निवेश का कम होना है, निवेश इसलिये कम होता है क्योंकि बचत कम होती है, बचत इसलिए कम होती है क्योंकि आय कम होती है। उपरोक्त विवरण से सिद्ध हो जाता है कि निर्धनता अथवा आय में कमी का एक मुख्य कारण बचत में होने वाली कमी है। इसके फलस्वरूप उत्पादन कार्यों में निवेश नहीं हो पाता। किसी व्यक्ति के पास बचत तभी होती है जब उसकी वास्तविक आय उपभोग से अधिक हो। अल्पविकसित देशों में समाज दो वर्गों में बंटा होता है एक निर्धन वर्ग दूसरा धनी वर्ग। उदाहरण के तौर पर, अधिकतर किसान निर्धन वर्ग में शामिल किये जा सकते हैं। कृषक वर्ग की आय बहुत कम होती है। इसका कारण यह है कि इन देशों में अधिकतर किसान जीवन निर्वाह खेती (Subsistence Farming) में लगे होते हैं, कृषि करने का ढंग पुराना एवं अकुशल होता है। अकुशल श्रम, छिपी हुई बेरोजगारी तथा श्रम की गतिहीनता के कारण श्रम की उत्पादकता भी कम होती है। ऐसी अवस्था में राष्ट्रीय उत्पादन का अधिकतर भाग उपभोग सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति में ही व्यय हो जाता है। इस प्रकार इन देशों में बचत का अभाव पाया जाता है। इसके फलस्वरूप निवेश कम होता है। निवेश कम होने के कारण पूंजी का निर्माण कम होता है। इसके फलस्वरूप उत्पादकता कम रहती है तथा आय के स्तर को कम बनाये रखती है।

यद्यपि इन देशों में समाज का धनी वर्ग बचत की स्थिति में होता है परन्तु यह वर्ग अपनी बचत का अधिकांश भाग निवेश करने के स्थान पर विलासिता तथा वैभवी वस्तुएं खरीदने पर खर्च कर देता है अर्थात् **प्रदर्शन प्रभाव** (Demonstration Effect) से प्रभावित रहता है। ये लोग विदेशी वस्तुओं को अधिक पसन्द करते हैं। इस प्रकार इनकी मांग में वृद्धि के फलस्वरूप भी देशी बाजार का

विस्तार नहीं हो पाता। वे अपनी बचत को निवेश करने की अपेक्षा भूमि, जायदाद, हीरे जवाहरात आदि पर खर्च कर देते हैं। किसी अर्थव्यवस्था में किये जाने वाला निवेश बचत पर ही निर्भर नहीं करता बल्कि निवेश की सुविधा तथा निवेश करने की इच्छा पर निर्भर करता है। इन देशों में मांग कम होने के कारण निवेश की सुविधाएं कम होती हैं। निवेश की मात्रा योग्य उद्यमियों पर भी निर्भर करती है। इन देशों में योग्य उद्यमियों की भी कमी होती है। योग्य उद्यमियों को नए उद्यम स्थापित करने में जोखिम उठानी पड़ती है तथा परिश्रम करना पड़ता है। धनी वर्ग का सामाजिक वातावरण ऐसा होता है कि जोखिम उठाने और सख्त परिश्रम की भावना को निरुत्साहित करता है। एक धनी जमींदार का लड़का परिश्रम करके नया उद्योग स्थापित करने की अपेक्षा मजदूरों से खेती का काम कराते रहना अधिक पसन्द करता है। इन देशों में हाथ से काम करने वाले तथा शारीरिक परिश्रम करने वाले व्यक्तियों को नीचे स्तर का व्यक्ति माना जाता है।

अल्पविकसित देशों में **मध्यम आय** वर्ग के लोग भी पाये जाते हैं। यह वर्ग व्यापार, व्यवसाय तथा विभिन्न प्रकार की सेवाओं के कार्य करना पसन्द करता है। इसके कई कारण हैं जैसे- (i) बड़े उद्योगों में निवेश करने के लिए पूंजी का अभाव (ii) संयुक्त पूंजी कम्पनियों का कम प्रचार (iii) औद्योगिक वित्त की कमी (iv) कुशल श्रमिकों की कमी (v) यातायात आदि **सामाजिक उपरि ढांचे** (Social Overhead) की कमी आदि। इस प्रकार इन देशों में बड़े स्तर के उद्योगों की स्थापना में कई प्रकार की रुकावटें होती हैं। इनके फलस्वरूप जो उद्यमी जोखिम उठाना भी चाहते हैं वे भी पूंजी की पूर्ति के अभाव में ऐसा नहीं कर पाते।

(2) निर्धनता के दुश्चक्र का मांग पक्ष अथवा कम मांग का दुश्चक्र (Demand Side of Vicious Circle of Poverty or Vicious Circle of Low Demand): निर्धनता के दुष्चक्र का दूसरा पक्ष मांग पक्ष है। **नर्कसे** के अनुसार, ***"निर्धनता के दुश्चक्र के मांग पक्ष का मुख्य कारण यह है कि इन देशों में निवेश की प्रेरणा कम होती है। निवेश की प्रेरणा कम होने का कारण यह है कि इन देशों के लोगों की क्रय शक्ति* (Purchasing Power) *कम होती है। क्रय शक्ति के कम होने के कारण लोगों की वास्तविक आय का कम होना है। आय में कमी इसलिए होती है क्योंकि उत्पादकता कम होती है। उत्पादकता इसलिए कम होती है क्योंकि पूंजी निर्माण कम होता है। पूंजी निर्माण के कम होने का कुछ सीमा तक कारण यह है कि निवेश करने की प्रेरणा कम होती है।"***

मांग पक्ष (Demand Side)

कम आय → कम मांग या कम क्रय शक्ति → कम निवेश → कम पूंजी निर्माण → कम उत्पादकता → कम आय →

रेखाचित्र नं॰ 3 से स्पष्ट होता है कि इन अर्थव्यवस्थाओं में आय की कमी होती है। आय में कमी होने के कारण मांग भी कम होती है। मांग कम होने के फलस्वरूप निवेश कम होता है इसके फलस्वरूप पूंजी की कमी रहती है, पूंजी की कमी के फलस्वरूप उत्पादकता कम होती है। उत्पादकता कम होने के कारण आय कम होती है। इस प्रकार मांग की कमी के फलस्वरूप निर्धनता का दुश्चक्र चलता रहता है। इन अर्थव्यवस्थाओं में लोगों के निर्धन होने के कारण मांग कम होती है। इसके फलस्वरूप बाजार का विस्तार कम होता है। बाजार में मांग की कमी होने के कारण निवेश प्रेरणा बहुत कम होती है। निवेशकर्ता बड़े पैमाने के उद्योग स्थापित नहीं कर पाते, इनके अभाव में उत्पादकता में वृद्धि नहीं होती तथा आय नहीं बढ़ती। प्रो॰ **नर्कसे** ने इस सम्बन्ध में कई उदाहरण दिए हैं जैसे-एक उद्यमी नये ढंग से जूता बनाने का एक आधुनिक कारखाना उस देश में स्थापित नहीं करेगा जहां के लोग निर्धनता के कारण जूते खरीदने में असमर्थ होंगे। इसी प्रकार चिली में यदि इस्पात का आधुनिक कारखाना स्थापित किया जायेगा तो वह तीन घण्टे में इतना उत्पादन कर लेगा कि उस देश के सारे वर्ष की मांग पूरी की जा सकें। अतएव प्रो॰ **नर्कसे** के अनुसार, **"अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं में मांग की दृष्टि से लोगों की क्रय शक्ति**

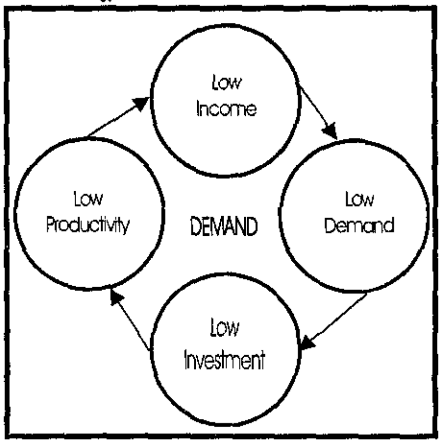

चित्र 3

कम होने के कारण निम्न उत्पादकता पाई जाती है।'' (In the under-developed economies, low productivity is found because of people's low purchasing power from the point of view of demand. – **Nurkse**) वास्तव में बाजार के सीमित आकार तथा निवेश के फलस्वरूप लाभ की कम सम्भावना के कारण ही अल्पविकसित देशों में विभिन्न प्रकार की वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन सम्भव नहीं हो पाता। अतएव् निवेश की मांग कम पाई जाती है। निवेश की मांग कम होने के कारण जो लोग बचत करते हैं वे उसका निवेश विदेशों में अथवा व्यापार आदि में करना पसन्द करते हैं। संक्षेप में, अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं में आय कम होने के कारण मांग कम होती है। मांग कम होने के फलस्वरूप निवेश प्रेरणा कम होती है, निवेश प्रेरणा कम होने के कारण निवेश कम होता है। इसके कारण पूंजी की कमी रहती है जिससे उत्पादकता पर बुरा प्रभाव पड़ता है, उत्पादकता कम होने के कारण आय कम होती है। इस प्रकार देश निर्धनता के दुश्चक्र में फंसा रहता है।

(3) पिछड़ेपन का दुश्चक्र (Vicious Circle of Backwardness): निर्धनता का दुश्चक्र आर्थिक तत्त्वों के पिछड़ेपन के फलस्वरूप भी उत्पन्न होता है। यह रेखाचित्र नं॰ 4 द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। अल्पविकसित देशों में आय की कमी के कारण अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में पिछड़ेपन की स्थिति उत्पन्न हो जाती है जो अर्थव्यवस्था को निरन्तर निर्धन बनाये रखती है। पिछड़ेपन के दुश्चक्र को चित्र नं॰ 4 द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है: रेखाचित्र 4 से ज्ञात होता है कि अल्पविकसित देशों में आय की कमी होती है। इसके फलस्वरूप एक ओर तो शिक्षा की कमी तथा लोगों के खराब स्वास्थ्य के कारण श्रम की उत्पादकता कम होती है। दूसरी ओर ऊंची जन्मदर के कारण श्रम की पूर्ति बढ़ जाती है परन्तु कम बचत तथा कम निवेश के कारण श्रम की मांग कम होती है। पूर्ति के श्रम की मांग से अधिक होने के कारण बेरोजगारी तथा अल्परोजगार की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। जनसंख्या का खराब स्वास्थ्य, शिक्षा की कमी, बेरोजगारी, अल्परोजगार आदि अर्थव्यवस्था के मानवीय साधनों के पिछड़ेपन के प्रतीक हैं। इसके फलस्वरूप श्रम की उत्पादकता में कमी होती है तथा प्रति व्यक्ति आय कम रह जाती है।

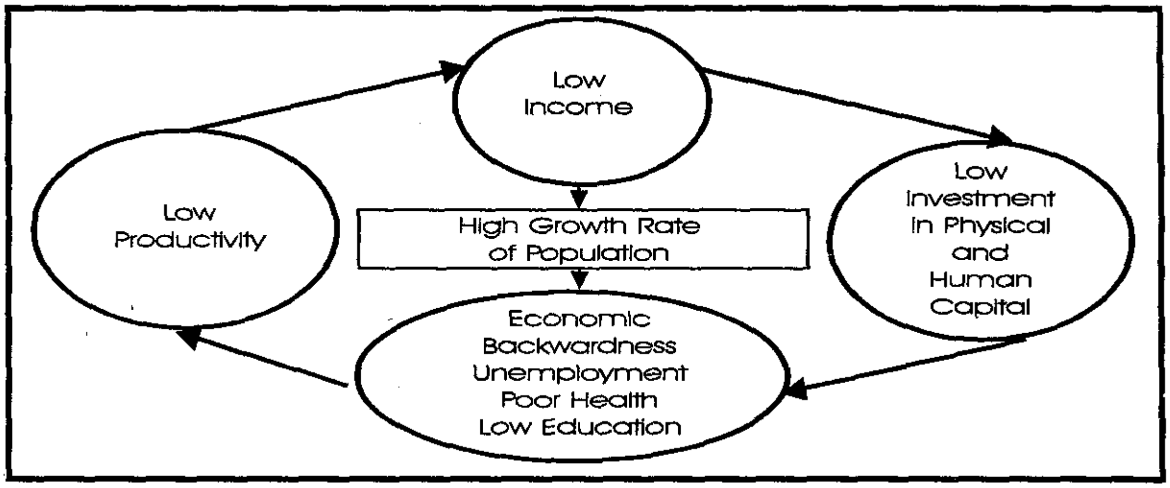

चित्र 4 पिछड़ेपन का दुश्चक्र

■ 5. निर्धनता के दुश्चक्र का मॉडल (Model of Vicious Circle of Poverty)

निर्धनता के दुश्चक्र को एक मॉडल के रूप में भी व्यक्त किया जा सकता है। इस मॉडल के अनुसार:

(1) आय, पूंजी निर्माण अथवा निवेश पर निर्भर करती है।

$$Y = f(I)$$

इसे पढ़ा जायेगा: आय (Y), निवेश (I), का फलन (f) है। निवेश के फलस्वरूप पूंजी निर्माण में वृद्धि होती है।

(2) निवेश बचत पर निर्भर करता है।

$$I = f(S)$$

इसे पढ़ा जायेगा: निवेश (I) बचत (S) का फलन (f) है।

(3) बचत आय पर निर्भर करती है।

$$S = f(Y)$$

इसे पढ़ा जायेगा: बचत (S), आय (Y) का फलन (f) है।

अतएव **''आय में होने वाली वृद्धि पूंजी पर निर्भर करती है तथा पूंजी में होने वाली वृद्धि बचत पर निर्भर करती है तथा बचत में होने वाली वृद्धि आय पर निर्भर करती है।''** (The growth of income depends on the growth of capital, the growth of capital depends on growth of savings and growth of savings depends on the growth of income.) **''निर्धनता के दुश्चक्र का मॉडल इस तथ्य पर आधारित है कि आय का निम्न स्तर, आय को बढ़ाने के लिए पूंजी निर्माण की जिस दर की जरूरत होती है, उसकी प्राप्ति में स्वयं ही एक बाधा है।''** (The model behind the theory of the vicious circle of poverty points to the notion that the low level of income itself prevents the capital formation required to raise income.) इस मॉडल से ज्ञात होता है कि अल्पविकसित देशों में विकास की दर **शून्य** (Zero) या बहुत कम क्यों होती है।

■ 6. निर्धनता के दुश्चक्र के कारण (Causes of Vicious Circle of Poverty)

निर्धनता के दुश्चक्र के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं:

(1) कम बचत (Low Saving): निर्धनता के दुश्चक्र का एक मुख्य कारण बचत की कमी है। बचत की कमी के कारण एक ओर निवेश की कमी होती है तथा दूसरी ओर निवेश प्रेरणा अर्थात् मांग की कमी होती है। निवेश की कमी के कारण पूंजी निर्माण कम होता है। इसके फलस्वरूप श्रम की उत्पादकता कम होती है तथा निर्धनता का स्तर कायम रहता है।

(2) *साधनों का अल्पशोषण* (Underutilisation of Resources): ***मायर तथा बाल्डविन*** *के अनुसार निर्धनता के* दुश्चक्र का मुख्य कारण मानवीय तथा प्राकृतिक साधनों का अल्प विदोहन है। अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं में **बाजार की अपूर्णताओं** (Market Imperfections) के तथा अन्य कारणों से साधनों का पूर्ण शोषण नहीं हो पाता।

(3) आर्थिक पिछड़ापन (Economic Backwardness): **प्रो० के० एन० भट्टाचार्य** के अनुसार, **''निर्धनता तथा *आर्थिक पिछड़ापन दो पर्यायवाची शब्द हैं।''*** एक देश *इसलिए निर्धन है क्योंकि वह अल्पविकसित है। वह अल्पविकसित इसलिए है* क्योंकि निर्धन है। वह अल्पविकसित बना रहता है क्योंकि उसके पास विकास को गति प्रदान करने वाले साधनों का अभाव होता है- जैसे उद्यमशीलता का अभाव, कुशल श्रमिकों की कमी, तकनीकी ज्ञान की कमी, खनिज पदार्थों की कमी आदि।

(4) विविध कारक (Miscellaneous Factors): अमेरिकन अर्थशास्त्री **गैलबर्थ** ने निर्धनता के दुश्चक्र के निम्न कारण बताए हैं (i) लोग इसलिए निर्धन हैं कि उन्हें निर्धन रहना पसन्द है। (ii) कुछ निर्धन देश प्राकृतिक रूप से निर्धन हैं (iii) कई देशों की निर्धनता औपनिवेशिक शोषण (Colonial Exploitation) के कारण है। (iv) निर्धनता वर्ग-शोषण का परिणाम है। (v) निर्धनता का कारण अपर्याप्त पूंजी है। (vi) अत्यधिक जनसंख्या निर्धनता का कारण है। (vii) गलत आर्थिक नीति निर्धनता का कारण है। *(viii) निर्धनता अज्ञानता के कारण होती है।*

■ 7. दुश्चक्र को तोड़ने की आवश्यकता (Need for Breaking the Vicious Circle)

निर्धनता के दुश्चक्र के उपरोक्त विवरण और अल्पविकसित देशों के अनुभव से यह प्रमाणित होता है कि यह "**निर्धनता का दुश्चक्र स्वत: सुधारक न हो कर स्वत: स्थायी है।**" (Vicious circle of poverty is not-self-correcting but self-perpetuating)। इसीलिए इसे 'दूषित' (Vicious) नाम दिया गया है। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि निर्धन देश हमेशा निर्धन ही बने रहेंगे। आज विकसित कहलाने वाले देश- इंग्लैण्ड, अमेरिका, फ्रांस इत्यादि भी कुछ दशकों पूर्व अल्पविकसित थे। एशिया में जापान और चीन आर्थिक प्रगति के श्रेष्ठ उदाहरण हैं। अन्य कई विकासशील देश निर्धनता के अभिशाप से मुक्ति पाने के लिए योजनाबद्ध प्रयास कर रहे हैं। इन विकासशील देशों के लिए निर्धनता के दुश्चक्र को प्रभावशाली ढंग से तोड़ना आवश्यक है।

■ 7.1 निर्धनता के दुश्चक्र का समाधान (Solution of the Vicious Circle of Poverty)

नर्कसे के अनुसार, "एक स्थिर व्यवस्था में शक्तियों का चक्रीय रूप में काम करना एक वास्तविकता है किन्तु सौभाग्य से यह चक्र अटूट नहीं है और यदि इसे एक बार किसी बिन्दु पर तोड़ दिया जाता है तो यही वास्तविकता कि सम्बन्ध चक्रीय है, विकास को संचयी बना देती है। इसलिए हमें इस चक्र को विषम कहने में संकोच करना चाहिए क्योंकि वह लाभपूर्ण बन सकता है।"

अल्पविकसित देशों को अपना आर्थिक विकास करने के लिये निर्धनता के दुश्चक्र से छुटकारा पाना आवश्यक है। अल्पविकसित देश निर्धनता के दुश्चक्र रूपी बाधा का समाधान निकाल सकते हैं। अल्पविकसित देशों को निर्धनता के दुश्चक्र का समाधान करने के लिये जनसंख्या की वृद्धि दर को कम करना चाहिये, उत्पादन तकनीक में सुधार करना चाहिये तथा बचत की दर को बढ़ाना चाहिये। निर्धनता के दुश्चक्र को तोड़ने की प्रक्रिया को निम्नलिखित चार्ट की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है:

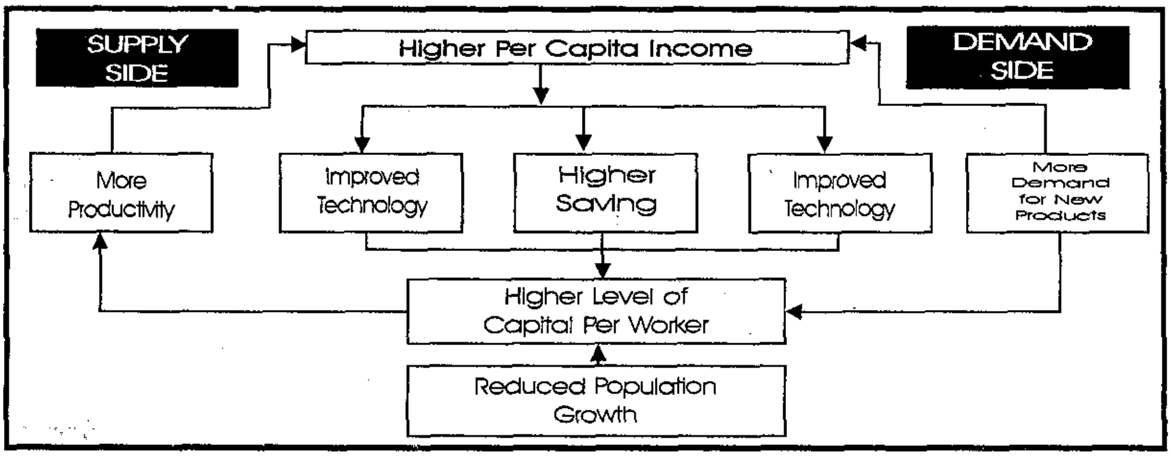

चित्र 5 Breaking the Vicious Circle of Poverty

इन समाधानों को भी हम दुश्चक्र के अनुकूल निम्नलिखित तीन भागों में बांट सकते हैं:

(A) पूर्ति सम्बन्धी दुश्चक्र का समाधान (Solution of the Vicious Circle of Supply)

अल्पविकसित देशों के पूर्ति सम्बन्धी दुश्चक्र को तोड़ने के लिये निम्नलिखित उपाय अपनाये जाने चाहियें:

(1) बचत में वृद्धि (Increase in Savings): बचत में वृद्धि की जानी चाहिए तथा उसका उत्पादन कार्यों में निवेश किया जाना चाहिए। बचत में वृद्धि करने के लिये अनावश्यक व्यय जैसे, रीति-रिवाज, शादी-विवाह आदि पर किये जाने वाले खर्च तथा शान-शौकत की वस्तुओं पर किया जाने वाला व्यय कम किया जाना चाहिये। अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं में **ऐच्छिक बचतों** (Voluntary Savings) की सम्भावनाएं कम होती हैं। अत: इस सम्बन्ध में सरकार के हस्तक्षेप की बहुत अधिक आवश्यकता होती है।

सरकार अपनी **राजकोषीय नीति** (Fiscal Policy) में परिवर्तन करके बचत की दर में वृद्धि करा सकती है। इसके लिए विलासिता की सामग्री पर अधिक कर लगा सकती है, *तथा लगान, किराया आदि से मिलने वाली आय पर प्रत्यक्ष कर की दर बढ़ा सकती है।* अत: **कर प्रणाली** (Taxation System) में आवश्यकतानुसार परिवर्तन करके उपभोग को कम करने में सफलता प्राप्त की जा सकती है। सरकार **अनिवार्य जमा योजनाएं** (Compulsory Deposit Schemes) अथवा **अनिवार्य ऋण योजना** (Compulsory Loan Scheme) के द्वारा भी बचत को एक सीमा तक एकत्रित (Mobilise) कर सकती है। **प्रो० नर्कसे** ने अल्पविकसित देशों में पाई जाने वाली छिपी हुई बेरोजगारी को भी बचत का एक सम्भव साधन बताया है। अल्पविकसित देशों में आर्थिक विकास की प्रारम्भिक अवस्था में **विदेशों से पूंजी** प्राप्त करके निवेश की दर को बढ़ाया जा सकता है।

(2) पूंजी निर्माण या निवेश में वृद्धि (Capital Formation or Increase in Investment): निर्धनता के दुश्चक्र को तोड़ने के लिये बचत करना ही पर्याप्त नहीं है। इस बचत का उचित ढंग से निवेश करना भी आवश्यक है। निवेश की अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन दोनों काल की योजनाओं में समन्वय किया जाना चाहिये। अल्पकाल में निवेश से, शीघ्र प्रतिफल प्राप्त करने के लिये कृषि सम्बन्धित क्षेत्रों जैसे सिंचाई, कृषि यन्त्र, खाद और उपभोक्ता पदार्थों आदि के उद्योगों में निवेश किया जाना चाहिए इसके फलस्वरूप जीवन की आवश्यक वस्तुएं उचित मात्रा तथा उचित मूल्य पर लोगों को मिल सकेंगी, इसका उनकी कार्यकुशलता पर अनुकूल प्रभाव पड़ेगा तथा उनका नैतिक बल बना रहेगा। अल्पकालीन निवेश योजनाओं के साथ-साथ दीर्घकालीन निवेश योजनाओं जैसे बहुउद्देशीय योजनाएं, इस्पात, रासायनिक पदार्थ आदि वस्तुओं का उत्पादन करने वाले **आधारभूत उद्योगों** (Basic Industries) की स्थापना *आदि पर भी उचित मात्रा में निवेश किया जाना चाहिये। अल्पविकसित देशों में निवेश को प्रोत्साहन देने के लिए उचित मौद्रिक तथा* बैंकिंग नीति बनाई जानी चाहिये जिससे लोगों को छोटी-छोटी बचत करने की प्रेरणाएं तथा सुविधाएं दोनों ही प्राप्त हों।

अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं में योजनात्मक ढंग से सार्वजनिक तथा निजी दोनों ही क्षेत्रों में निवेश अधिक मात्रा में किए जाने का प्रयत्न किया जाना चाहिये। अर्थशास्त्रियों में **निवेश रणनीति** (Strategy of Investment) के सम्बन्ध में मतभेद पाया जाता है। **रोडान** (Rodan) के अनुसार, ''अल्पविकसित देशों में निर्धनता के दुश्चक्र को तोड़ने के लिए यह आवश्यक है कि निवेश एक साथ *बहुत अधिक मात्रा में सामाजिक तथा आर्थिक उपरि लागतों में* ***एक बड़े धक्के*** (Big Push) के रूप में *किया जाना चाहिये।* **नर्कसे** के अनुसार इसके फलस्वरूप **सन्तुलित विकास** (Balanced Growth) सम्भव हो सकेगा। इसके विपरीत **हिरशमैन** का यह मत है कि निर्धनता के दुश्चक्र को तोड़ने के लिए **असन्तुलित विकास** (Unbalanced Growth) की विधि अपनाई जानी चाहिये। निवेश केवल चुने हुए क्षेत्रों में किया जाना चाहिये, जिसके फलस्वरूप विकास करने की प्रेरणा स्वयं ही मिलती रहेगी। संक्षेप में निर्धनता के दुश्चक्र के पूर्तिपक्ष के समाधान के लिये बचत की दर में वृद्धि करना तथा उसका उचित प्रकार से निवेश करना आवश्यक है। इसके लिए **विदेशी पूंजी** (Foreign Capital) की भी सहायता ली जा सकती है।

(B) मांग सम्बन्धी दुश्चक्र का समाधान (Solution of Vicious Circle of Demand)

अल्पविकसित देशों में निर्धनता के दुश्चक्र के **मांग पक्ष** के समाधान के लिये यह आवश्यक है कि **बाजार का विस्तार** (Wider Extent of Market) किया जाये, जिससे निवेशकर्ताओं को निवेश करने की प्रेरणा प्राप्त हो। **प्रो० नर्कसे** ने इस सम्बन्ध में **सन्तुलित विकास** (Balanced Growth) की नीति अपनाने का सुझाव दिया है। सन्तुलित विकास की नीति के अनुसार अर्थव्यवस्था के प्रत्येक क्षेत्र *अर्थात्* कृषि, उद्योग, *यातायात आदि में इस प्रकार निवेश किया जाना चाहिये कि एक क्षेत्र के उत्पादन की मांग* दूसरे क्षेत्र में की जा सके। इस प्रकार मांग में वृद्धि होने के फलस्वरूप बाजार का विस्तार होगा तथा निवेश को अधिक प्रेरणा प्राप्त होगी। **हिरशमैन, सिंगर, फ्लेमिंग** आदि अर्थशास्त्री सन्तुलित विकास की नीति को व्यावहारिक नहीं मानते हैं। उनके अनुसार **असन्तुलित विकास** (Unbalanced Growth) की नीति अधिक उपयोगी होगी। भारत जैसे अल्पविकसित देशों के उदाहरण से हमें ज्ञात होता है कि इन देशों में मांग बढ़ने की सम्भावना हर समय बनी रहती है, इसके लिये केवल मौद्रिक आय के बढ़ने की आवश्यकता है। अधिकतर **अल्पविकसित देशों में योजनात्मक विकास** (Planned Development) **की विधि को अपनाया गया है।** इसके अन्दर **सार्वजनिक क्षेत्र** में अधिक निवेश होने के फलस्वरूप देश में मुद्रा की पूर्ति बढ़ती है। लोगों की मौद्रिक आय बढ़ने से बाजार का विस्तार होता है। ये देश अपने निर्यात को बढ़ाकर विदेशी बाजार के विस्तार का भी प्रयत्न कर सकते हैं।

(C) पिछड़ेपन सम्बन्धी दुश्चक्र का समाधान (Solution of Vicious Circle of Backwardness)

अल्पविकसित देशों में आर्थिक विकास की मुख्य बाधा मानवीय शक्ति का पिछड़ापन है। मानवीय शक्ति की कुशलता में वृद्धि करने के लिये तथा पिछड़ेपन को दूर करने के लिये कई प्रकार के सुझाव दिये जा सकते हैं। इन देशों में शिक्षा, तकनीकी ज्ञान, प्रबन्धकीय ट्रेनिंग आदि का विस्तार किया जाना चाहिये। देश की जनता के स्वास्थ्य का सुधार किया जाना चाहिये जिससे कि उनकी कार्यकुशलता में वृद्धि हो। यातायात तथा संचार के साधनों का अधिक विकास किया जाना चाहिए। पिछड़ेपन सम्बन्धी दुश्चक्रों को दूर करने के लिए इन उपायों को अपना कर अल्पविकसित देशों में विकास की गति को बढ़ाया जा सकता है। **बाइरन्स** तथा **स्टोन** (Byrns and Stone) के अनुसार, "**अल्पविकसित देश निर्धनता के दुश्चक्र को तोड़ने के लिये कई कार्य कर सकते हैं। वे व्यापारिक कार्यों में सरकारी नियन्त्रण को कम कर सकते हैं तथा उनमें सुधार कर सकते हैं। आधुनिक कृषि तकनीक को अपनाने के लिये प्रोत्साहन दे सकते हैं। देश की अद्योसंरचना** (Infrastructure) **में सुधार कर सकते हैं जिससे श्रमिक आधुनिक कृषि तथा औद्योगिक तकनीकों को कुशलतापूर्वक अपना सकें। जनसंख्या वृद्धि को कम करने की नीतियां अपना सकते हैं तथा बचत को बढ़ा सकते हैं।**"

■ 8. निर्धनता के दुश्चक्र की आलोचनाएं (Criticisms of Vicious Circle of Poverty)

कई अर्थशास्त्री जैसे **हिरश्मैन, बायर, मिर्डल** आदि निर्धनता के दुश्चक्र सिद्धान्त की आलोचना करते हैं। इस सिद्धान्त की मुख्य आलोचनाएं निम्नलिखित हैं:

(1) अनुभव की दृष्टि से गलत (Empirically Wrong): आलोचकों के अनुसार यह सिद्धान्त अनुभव की दृष्टि से गलत है। यदि इस सिद्धान्त के निष्कर्ष सही होते तो संसार का कोई भी देश विकसित नहीं होता। आरम्भ में संसार के सभी देश अल्पविकसित थे। उदाहरण के लिए सन् 1800 तक हांगकांग एक चट्टान के रूप में था। इसमें प्राकृतिक साधनों का अभाव था। परन्तु आज हांगकांग संसार के सबसे अधिक धनी प्रदेशों में से एक है। संसार के अन्य देशों जैसे ताइवान, सिंगापुर, दक्षिणी कोरिया आदि की अर्थव्यवस्थाएं अल्पविकसित थीं। यहां लोगों की आय तथा बचत बहुत कम थी परन्तु अब ये अर्थव्यवस्थायें अपना विकास करने में सफल हो गई हैं।

(2) सरल व्याख्या (Simple Explanation): **बायर** के अनुसार निर्धनता के दुश्चक्र का सिद्धान्त अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं की प्रकृति की बहुत ही सरल व्याख्या है। इस सिद्धान्त की यह मान्यता गलत है कि किसी देश का आर्थिक विकास बचत तथा पूंजी निर्माण पर निर्भर करता है। वास्तव में आर्थिक विकास कई अन्य तत्त्वों जैसे कुशल उद्यमियों, प्रगतिशील संस्थाओं, सरकारी नीतियों, प्राकृतिक साधनों आदि पर भी निर्भर करता है। निर्धनता के दुश्चक्र का सिद्धान्त आर्थिक विकास को प्रभावित करने वाले कई महत्त्वपूर्ण तत्त्वों की अवहेलना करता है।

(3) बचत की आंशिक व्याख्या (Partial Explanation of Savings): निर्धनता के दुश्चक्र का सिद्धान्त इस बात की आंशिक व्याख्या करता है कि निर्धन देशों में बचत की दर कम होती है तथा कम ही रहती है। इसके बढ़ने की कोई सम्भावना नहीं होती क्योंकि कम बचत कम आय का परिणाम भी है तथा व्याख्या भी है। ये दोनों तत्त्व एक-दूसरे को निम्न स्तर पर बनाये रखने में सहायक होते हैं। परन्तु संसार के कई अल्पविकसित देशों जैसे भारत में बचत की दर 24 प्रतिशत है जो कई विकसित देशों से भी अधिक है। इसलिए यह सम्भव है कि अल्पविकसित देश निर्धन होते हुए भी बचत की दर को बढ़ाकर निर्धनता के दुश्चक्र को तोड़ने में सफल हो सकते हैं।

(4) विश्लेषणात्मक दृष्टि से गलत (Analytically Unsound): निर्धनता के दुश्चक्र का सिद्धान्त विश्लेषणात्मक दृष्टि से गलत है। इस सिद्धान्त का यह विश्लेषण उचित नहीं है कि आय के कम स्तर के फलस्वरूप आय की वृद्धि दर शून्य होती है अर्थात् **निर्धनता सदैव गतिहीनता को जन्म देती हैं** (Poverty always leads to stagnation)। परन्तु निर्धनता तथा गतिहीनता अलग-अलग धारणाएं हैं। आय के कम होने पर भी कई अन्य कारणों से आय की दर में वृद्धि हो सकती है जो अर्थव्यवस्था को गतिशील बना देती है।

(5) गलत नीति निर्धारण (Wrong Policy Presentation):- आलोचक इस सिद्धान्त द्वारा निर्धारित नीतियों की भी आलोचना करते हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार निर्धन देश अपना आर्थिक विकास तभी कर सकते हैं जब या तो वे विदेशी पूंजी प्राप्त करें या उनकी सरकार लोगों पर बहुत अधिक कर लगा कर पूंजी निर्माण के लिए धन एकत्रित करें। परन्तु जैसा कि बायर ने कहा है, कि **''एक देश जो बिना विदेशी सहायता के अपना विकास नहीं कर सकता उसके लिये विदेशी सहायता के द्वारा भी विकास करने की सम्भावना नहीं है।''** (A country which connot develop without external gift is altogether unlikely to do so with them.– **P.T. Bauer**)

(6) चक्रीय प्रक्रिया की अवास्तविक मान्यता (Unrealistic Assumption of Circular Process): मिर्डल (Myrdal) के अनुसार, इस सिद्धान्त की यह मान्यता अवास्तविक है कि कम आय - कम बचत - कम निवेश - कम उत्पादकता की चक्रीय प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है। यह प्रक्रिया ही निर्धन देश को निर्धन बनाये रखती है परन्तु वास्तविक जीवन में ऐसा नहीं होता। आय के कम होते हुए भी कई स्थितियों में विभिन्न तत्त्वों के कारण निवेश में वृद्धि हो सकती है। उदाहरण के लिये निर्धन अरब देशों को पेट्रोल की खोज ने धनी देश बना दिया। जर्मनी तथा जापान की युद्ध में विखण्डित अर्थव्यवस्थायें, लोगों की उद्यमशीलता तथा सरकारों की उचित नीतियों के कारण तीव्र गति से अपना आर्थिक विकास करने में समर्थ हो सकी।

संक्षेप में, निर्धनता के दुश्चक्र का सिद्धान्त तर्क, अनुभव एवम् विश्लेषण की दृष्टि से अल्पविकास की उचित व्याख्या नहीं मानी जा सकती। इस सिद्धान्त का केवल यह योगदान है कि इसने आर्थिक विकास के लिये बचत तथा पूंजी निर्माण के महत्त्व की व्याख्या की है।

प्रश्न (QUESTIONS)

■ I. वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

सभी प्रश्न अनिवार्य हैं (Attempt all the questions)

1. निर्धनता के दुश्चक्र का सिद्धान्त मुख्यत: विकसित किया था (नर्कसे ने, आर्थर ल्यूस ने)
2. निर्धनता का दुश्चक्र एक ऐसी वृत्ताकार क्रिया है जिसका आरम्भ भी निर्धनता है तथा अन्त (भी निर्धनता है, निर्धनता नहीं है)
3. निर्धनता के दुश्चक्र के सिद्धान्त का सम्बन्ध है मुख्यतया (अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं से, विकसित अर्थव्यवस्थाओं से)
4. निर्धनता के दुश्चक्र का एक मुख्य कारण है (कम बचत, अधिक बचत)
5. निर्धनता तथा आर्थिक पिछड़ापन है (समानार्थक शब्द, समानार्थक शब्द नहीं) (K.U. 2006)
6. निर्धनता के दुश्चक्र को कम करने के लिए बचतों को किसको कम करके बढ़ाना चाहिए (अनावश्यक व्यय, आवश्यक व्यय)
7. 'एक देश गरीब है क्योंकि वह गरीब है,' यह कथन किसका है? (नर्कसे, सैम्यूलसन) (M.D.U. 2007, K.U. 2009)

उत्तर (Answer): (1) नर्कसे ने, (2) भी निर्धनता है, (3) अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं से, (4) कम बचत, (5) समानार्थक शब्द, (6) अनावश्यक व्यय, (7) नर्कसे।

■ II. लघु/परिभाषा रूपी प्रश्न (Short/Definitional Type Questions)

1. निर्धनता के दुश्चक्र से क्या अभिप्राय है?
2. निर्धनता के दुश्चक्र के पूर्ति पक्ष की व्याख्या कीजिए। (K.U. 2008)

3. निर्धनता के दुश्चक्र के मांग पक्ष का वर्णन करें।
4. निर्धनता में दुश्चक्र के दो कारणों की व्याख्या कीजिए। (M.D.U. 2008)
5. निर्धनता के दुश्चक्र को तोड़ने के दो सुझाव दें।
6. बायर (Bauer) के निर्धनता के दुश्चक्र के बारे में क्या विचार है?

III. निबन्ध रूपी प्रश्न (Essay Type Questions)

1. Explain vicious circle of Poverty. Discuss its solution.
   निर्धनता के दुश्चक्र की व्याख्या कीजिए। इसके समाधान का वर्णन कीजिये। (K.U. 2005)
2. "A country is poor because it is poor." Discuss.
   "एक देश निर्धन है क्योंकि वह निर्धन है।" व्याख्या कीजिये।
3. Examine briefly the concept of vicious circle of poverty as propounded by Nurkse.
   नर्कसे द्वारा प्रतिपादित निर्धनता के दुश्चक्र की धारणा का संक्षिप्त वर्णन करें।
4. Explain the Vicious Circle of poverty relating to demand side and supply side. How are they proving hurdles in the way of economic development of underdeveloped countries?
   मांग तथा पूर्ति से सम्बन्धित गरीबी के दुश्चक्रों को समझाइये। वे दुश्चक्र अल्पविकसित देशों के विकास में कैसे बाधक हैं?
5. Show in figures two vicious circles of poverty relating to demand and supply side of capital as described by Prof. Nurkse.
   पूंजी की मांग और पूर्ति पक्ष से सम्बन्धित उन दो दुश्चक्रों को चित्र के माध्यम से बताइए जिनका वर्णन प्रो. नर्कसे ने किया है।
6. Explain vicious circle of poverty. How can the same be broken?
   निर्धनता के दुश्चक्र की व्याख्या करें। इसे कैसे तोड़ा जा सकता है? (K.U. 2005, 2007)

   Or

   What do you mean by vicious circle of poverty? Explain its solution.
   निर्धनता के दुश्चक्र से आप क्या समझते हैं? इसके समाधान की व्याख्या करें। (M.D.U., 2008)
7. "Path to economic development has been paved with vicious circle." Explain the statement.
   "आर्थिक विकास का मार्ग दुश्चक्रों से घिरा हुआ है।" इस कथन की व्याख्या कीजिए।

5

लुईस मॉडल
(LEWIS MODEL)

■ 1. भूमिका (Introduction)

अल्पविकसित देशों में अधिकतर **अदृश्य या छिपी बेरोजगारी** (Disguised Unemployment) पाई जाती है। छिपी बेरोजगारी का अभिप्राय यह है कि किसी कार्य को करने के लिए जितने व्यक्ति चाहिए उससे अधिक व्यक्ति काम पर लगे हुए हैं। यदि कुछ व्यक्तियों को काम पर से हटा दिया जाए तो कुल उत्पादन में कमी नहीं होगी। इस प्रकार इन श्रमिकों की **सीमान्त उत्पादकता** (Marginal Productivity) शून्य होती है। जैसे, एक हेक्टेयर खेत की जुताई करने के लिए केवल दो व्यक्तियों की आवश्यकता है। यदि उस खेत में पांच व्यक्ति काम पर लगे हुए हैं तो तीन व्यक्ति छिपी बेरोजगारी को व्यक्त करते हैं। अल्पविकसित देशों में छिपी या अदृश्य बेरोजगारी की समस्या बहुत गम्भीर है।

■ 2. लुईस का मॉडल (Lewis Model)

अल्पविकसित देशों में छिपी हुई बेरोजगारी को पूंजी निर्माण के लिए प्रयोग करने के लिए **प्रो० लुईस** ने एक मॉडल का प्रतिपादन किया था। इसे **लुईस का मॉडल** कहा जाता है।

प्रो० आर्थर लुईस ने अपने एक लेख 'Economic Development with Unlimited Supply of Labour' में अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास के सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण मॉडल का प्रतिपादन किया है। इस मॉडल के अनुसार अल्पविकसित देश अपनी असीमित श्रम शक्ति का प्रयोग पूंजी निर्माण के लिए करके आर्थिक विकास की गति को तीव्र कर सकते हैं।

अल्पविकसित देशों में पूंजी की कमी पाई जाती है। इन देशों में निवेश की दर 5 प्रतिशत से 10 प्रतिशत तक होती है जबकि आर्थिक विकास की उचित दर प्राप्त करने के लिए 15 से 20 प्रतिशत की निवेश दर आवश्यक है। इन अर्थव्यवस्थाओं में श्रम की पूर्ति असीमित होती है। श्रम की पूर्ति का उचित प्रयोग करके निवेश या पूंजी निर्माण की दर में वृद्धि की जा सकती है।

■ 3. मान्यताएं (Assumptions)

लुईस मॉडल निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है:

(i) अल्पविकसित देशों में जनसंख्या का घनत्व अधिक होने के कारण, वहां श्रम की पूर्ति असीमित है और बहुत से लोग छिपी हुई बेरोजगारी से पीड़ित हैं। इनकी **सीमान्त उत्पादकता** (Marginal Productivity) शून्य है।

(ii) मजदूरी के जीवन निर्वाह स्तर पर श्रमिकों की पूर्ति पूर्णतया लोचदार है।

(iii) अर्थव्यवस्था में **दोहरापन** (Dualism) पाया जाता है। इसका अभिप्राय यह है कि अर्थव्यवस्था में दो मुख्य क्षेत्र हैं: **(a) पूंजीवादी क्षेत्र** (Capitalistic Sector) तथा **(b) पिछड़ा प्राथमिक क्षेत्र** (Subsistence Sector) या निर्वाह क्षेत्र।

(iv) पूंजीवादी क्षेत्र में मजदूरी दर निर्वाह क्षेत्र की तुलना में अधिक होती है तथा प्राथमिक या निर्वाह क्षेत्र में यह दर कम होती है। जीवन निर्वाह क्षेत्र में मजदूरी दर निर्वाह स्तर पर मंद पड़ जाती (Stagnate) है।

(v) अकुशल श्रम के प्रशिक्षण तथा कुशलता बढ़ाने की लागत स्थिर रहती है।

(vi) पूंजीवादी क्षेत्र में उत्पादन का विस्तार अधिकतम लाभ प्राप्ति के सिद्धान्त पर आधारित है।

(vii) पूंजीवादी क्षेत्र पुनरुत्पादय (Reproducible) पूंजी (यह वह पूंजी है जिसका उत्पादन आवश्यकता अनुसार दोबारा या बार-बार किया जा सकता है) तथा मजदूरी श्रम (Wage labour) का प्रयोग करके कार्य करता है, जबकि निर्वाह क्षेत्र पुनरुत्पादय पूंजी का प्रयोग नहीं करता।

(viii) पूंजीवादी क्षेत्र की तुलना में निर्वाह क्षेत्र में प्रति व्यक्ति उत्पादन काफी कम है।

■ 4. विकास प्रक्रिया (Process of Growth)

प्रो० **लुईस** के अनुसार कई अल्पविकसित देशों में **श्रम की असीमित पूर्ति** (Unlimited Supply of Labour) पाई जाती है। श्रम की असीमित पूर्ति से अभिप्राय यह है कि इन देशों में तेजी से बढ़ रही जनसंख्या के कारण श्रम की पूर्ति उसकी मांग से अधिक होती है। इसके फलस्वरूप इन देशों में बेरोजगारी, अल्परोजगार तथा छिपी हुई बेरोजगारी की समस्या पाई जाती है। अल्पविकसित देशों में दो प्रकार के क्षेत्र पाये जाते हैं। (i) **पूंजीवादी क्षेत्र** (Capitalistic Sector): इस क्षेत्र में उत्पादकता, आय तथा पूंजी का स्तर ऊंचा होता है। (ii) **प्राथमिक या जीवन निर्वाह क्षेत्र** (Primary or Subsistence Sector): इस क्षेत्र में उत्पादकता, आय तथा पूंजी का स्तर कम होता है। श्रमिक की पूर्ति इतनी अधिक होती है कि उसकी **सीमान्त उत्पादकता** (Marginal Productivity) लगभग शून्य होती है। प्राथमिक क्षेत्र में श्रमिकों को केवल इतनी मजदूरी (Subsistence Wages) प्राप्त होती है कि वे अपना **जीवन निर्वाह** ही कर सकें। इसके विपरीत पूंजीवादी क्षेत्र में श्रमिकों को मजदूरी जीवन निर्वाह से काफी अधिक मिलती है। अन्य शब्दों में, **पूंजीवादी मजदूरी** (Capitalistic Wages) **जीवन निर्वाह मजदूरी** (Subsistence Wages) से अधिक होती है।

यदि प्राथमिक क्षेत्र से कुछ श्रमिकों को पूंजीवादी क्षेत्र में रोजगार दिया जाये तो ये श्रमिक जीवन निर्वाह मजदूरी से कुछ अधिक तथा पूंजीवादी मजदूरी से कुछ कम पर काम करने को तैयार होंगे। परन्तु इनकी सीमान्त उत्पादकता इनको दी जाने वाली मजदूरी से अधिक होगी। इसके फलस्वरूप उद्यमियों के लाभ में वृद्धि होगी क्योंकि उन्हें श्रमिकों की सीमान्त उत्पादकता से कम मजदूरी देनी पड़ेगी। **लुईस** ने उद्यमियों के लाभ में होने वाली इस वृद्धि को **पूंजीवादी आधिक्य** (Capitalistic Surplus) कहा है। उद्यमी इस आधिक्य का पुन: निवेश करेंगे। इसके फलस्वरूप पूंजी निर्माण होगा। इस प्रकार पूंजी निर्माण तथा आर्थिक विकास की यह प्रक्रिया तब तक चलती रहेगी जब तक श्रमिक पूंजीवादी मजदूरी से कम मजदूरी पर काम करने को तैयार होंगे। परन्तु एक सीमा के पश्चात् श्रमिक पूंजीवादी मजदूरी से कम पर काम करने के लिये तैयार नहीं होंगे। वे सीमान्त उत्पादकता के बराबर मजदूरी की मांग करेंगे। इसके फलस्वरूप उद्यमियों का आधिक्य या अतिरिक्त लाभ कम या समाप्त हो जायेगा। वे पूंजी निर्माण नहीं कर सकेंगे। इस प्रकार आर्थिक विकास की प्रक्रिया का अन्त हो जायेगा।

प्रो० **लुईस** ने इस स्थिति में यह सुझाव दिया है कि **खुली अर्थव्यवस्था** (Open Economy) में जब किसी देश के अन्तर्गत आर्थिक विकास की प्रक्रिया का अन्त हो जाता है तो उस देश के उद्यमियों के लिए दो उपाय हैं। (i) पहला उपाय तो यह है कि उन्हें अन्य अल्पविकसित देशों से बड़े पैमाने पर श्रमिकों का **आवास** (Migration) करना चाहिए। ये श्रमिक पूंजीवादी मजदूरी से कम दर पर काम करने को तैयार होंगे। इस प्रकार उद्यमियों के लाभ में वृद्धि होगी। वे अधिक निवेश कर सकेंगे। (ii) दूसरा उपाय यह है कि अन्य अल्पविकसित देशों को पूंजी का निर्यात किया जाये। इसके फलस्वरूप देश में निवेश कम होगा। देश में निवेश की कमी के कारण श्रमिकों की मांग कम हो जायेगी तथा वे कम मजदूरी पर भी काम करने को तैयार हो जाएंगे।

लुईस का यह भी मत है कि विकास की प्रक्रिया **बैंकों द्वारा दी जाने वाली साख** (Bank Credit) की सहायता से भी प्रारम्भ की जा सकती है। बैंक साख के विस्तार के कारण आरम्भ में **मुद्रा स्फीति** (Inflation) हो सकती है परन्तु कुछ समय पश्चात् उत्पादन में वृद्धि होने के कारण कीमतों में होने वाली वृद्धि समाप्त हो जायेगी तथा आर्थिक विकास की गति तीव्र हो जायेगी।

■ 5. लुईस के मॉडल की विशेषताएं (Features of Lewis Model)

प्रो० **लुईस** द्वारा उचित प्रतिपादित मॉडल में निम्नलिखित विशेषतायें पाई जाती हैं। **लुईस** के अनुसार अल्पविकसित देश अपनी असीमित श्रम शक्ति का पूर्ण उपयोग करके विकास कर सकते हैं। इसके लिए उन्होंने अपने मॉडल में अग्रलिखित सुझाव दिये हैं:

(1) श्रमिकों का एकत्रीकरण (Mobilisation of Labour): अल्पविकसित देशों को अपनी असीमित श्रम शक्ति का एकत्रीकरण **जीवन निर्वाह क्षेत्र** (Subsistence Sector) से (जहां उनकी सीमान्त उत्पादकता शून्य होती है) पूंजीवादी क्षेत्र में (जहां उनकी सीमान्त उत्पादकता काफी अधिक होती है) करना चाहिए। इसके लिए **लुईस** ने कई सुझाव दिये हैं:

(i) उन व्यक्तियों को पूंजीवादी क्षेत्र में रोजगार देना चाहिए जो अल्परोजगार या **छिपी हुई बेरोजगारी** (Disguised Unemployment) से पीड़ित हैं।

(ii) महिला श्रमिकों को भी पूंजीवादी क्षेत्र में रोजगार दिया जाना चाहिए।

(iii) देश की जनसंख्या बढ़ने के कारण श्रम शक्ति में जो वृद्धि होती है उसे भी पूंजीवादी क्षेत्र में रोजागार दिया जाना चाहिए।

परन्तु उपरोक्त बताये गये सभी श्रमिक **अकुशल** (Unskilled) होते हैं जबकि पूंजीवादी क्षेत्र में **कुशल** (Skilled) श्रम की आवश्यकता होती है। इसके लिए लुईस का यह सुझाव है कि देश में श्रमिकों के **प्रशिक्षण** (Training) की उचित व्यवस्था की जानी चाहिए। प्रशिक्षण के कारण श्रमिक कुशल बन सकेंगे तथा पूंजीवादी क्षेत्र में रोजगार प्राप्त कर सकेंगे।

(2) पूंजीवादी आधिक्य (Capitalistic Surplus): अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में जब उद्यमी पूंजीवादी क्षेत्र में निवेश करते हैं तो श्रम की मांग बढ़ती है। पूंजीवादी क्षेत्र में श्रमिकों की पूर्ति जीवन निर्वाह क्षेत्र से होने लगती है। जीवन निर्वाह क्षेत्र में श्रमिकों को केवल जीवन निर्वाह मजदूरी प्राप्त होती है जो उनकी **औसत उत्पादकता** के बराबर होती है। जब श्रमिक पूंजीवादी क्षेत्र में काम करने आयेंगे तो निम्नलिखित कारणों से जीवन निर्वाह स्तर से अधिक मजदूरी मांगेंगे:

(i) जीवन निर्वाह क्षेत्र या प्राथमिक क्षेत्रों में से श्रमिकों के हस्तांतरण होने पर कुल उत्पादन में कोई कमी न होने के कारण उस क्षेत्र में बचे हुए श्रमिकों की औसत उत्पादकता बढ़ जाने के कारण उनकी वास्तविक आय बढ़ जाती है। इसलिए पूंजीवादी क्षेत्र में जाने वाले श्रमिक भी अधिक वास्तविक आय के इच्छुक होते हैं। वे जीवन निर्वाह से अधिक मजदूरी की मांग करते हैं।

(ii) पूंजीवादी क्षेत्र का विकास होने के कारण प्राथमिक क्षेत्र की उत्पादकता भी बढ़ती है इसलिए श्रमिक अधिक मजदूरी की मांग करते हैं।

पूंजीवादी क्षेत्र में आने वाले श्रमिकों को जीवन निर्वाह मजदूरी से कुछ अधिक मजदूरी देनी पड़ती है। **लुईस** के अनुसार पूंजीवादी मजदूरी जीवन निर्वाह मजदूरी से लगभग 30% अधिक होती है, परन्तु इन मजदूरों की सीमान्त उत्पादकता भी अधिक होती है इसलिए उद्यमियों को जीवन निर्वाह मजदूरी से कुछ अधिक मजदूरी देने पर भी लाभ प्राप्त होता है। लुईस इस लाभ को **पूंजीवादी आधिक्य** (Capitalistic Surplus) कहते हैं। पूंजीवादी या उद्यमी इस आधिक्य का निवेश कर देते हैं। इसके फलस्वरूप श्रमिकों की और अधिक मांग की जाती है। पूंजीवादी मजदूरी पर श्रमिकों की पूर्ति पूर्णतया लोचदार होती है इसलिए श्रमिक मजदूरी की वर्तमान दर पर ही काम करने के लिए तैयार हो जाते हैं। श्रमिकों की पूर्ति बढ़ने पर पूंजीवादी आधिक्य में और अधिक वृद्धि होती है। उद्यमी वर्ग पूंजीवादी आधिक्य को फिर निवेश करके श्रमिकों की और अधिक मांग करते हैं। इसके फलस्वरूप उत्पादन बढ़ता है। रोजगार के स्तर में वृद्धि होती है तथा आर्थिक विकास की दर तीव्र हो जाती है। लुईस के सिद्धान्त की आर्थिक विकास प्रक्रिया को रेखाचित्र नं॰ 1 द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

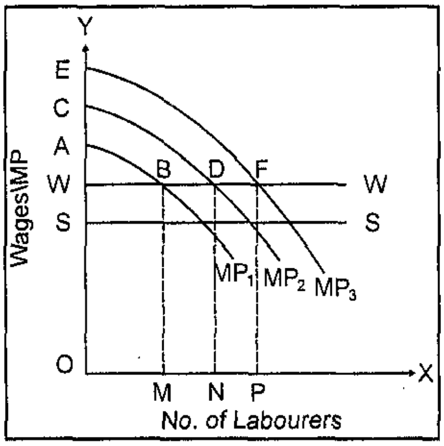

चित्र 1

चित्र नं॰ 1 में OX रेखा श्रम की पूर्ति तथा OY रेखा मजदूरी की दर को प्रकट करती है। WW रेखा पूंजीवादी मजदूरी की दर को तथा SS रेखा जीवन निर्वाह मजदूरी की दर को प्रकट कर रही है। रोजगार के विभिन्न स्तरों पर AMP_1, CMP_2 तथा EMP_3, CN, EP मजदूरों की **सीमान्त उत्पादकता** (Marginal Productivity) वक्र हैं। जब OM श्रमिकों को रोजगार पर लगाया जायेगा तो उन्हें OWBM पूंजीवादी मजदूरी देनी पड़ेगी। OM श्रमिकों की सीमान्त उत्पादकता OABM है। इसलिए OM श्रमिकों को रोजगार प्रदान करने से उद्यमी को OABM–OWBM = WAB का **पूंजीवादी आधिक्य** (Capitalistic

Surplus) प्राप्त होगा। उद्यमी इस WAB आधिक्य का निवेश कर देगा। इसके फलस्वरूप श्रमिकों की मांग बढ़कर ON हो जायेगी। ON श्रमिकों को रोजगार देने से WCD आधिक्य प्राप्त होगा। इस लाभ को भी निवेश करने से श्रमिकों की मांग बढ़कर OP हो जायेगी। OP श्रमिकों को रोजगार देने से उद्यमी को WEF के क्षेत्रफल के बराबर आधिक्य या लाभ प्राप्त होंगे। इस प्रकार आर्थिक विकास की प्रक्रिया चलती रहेगी। **लुईस** के अनुसार, **''यदि स्थिर वास्तविक मजदूरी पर असीमित मात्रा में श्रम उपलब्ध हो तथा लाभ का निवेश किया जाता रहे तो राष्ट्रीय आय के साथ-साथ लाभ और पूंजी निर्माण बढ़ते जायेंगे।''**

(3) बैंक साख द्वारा पूंजी निर्माण (Capital Formation through Bank Credit): **आर्थर लुईस** के अनुसार अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में, लाभ के अतिरिक्त, बैंक साख द्वारा भी पूंजी निर्माण किया जा सकता है। बैंक साख द्वारा आरम्भ में कीमतों में वृद्धि अर्थात् मुद्रास्फीति (Inflation) हो सकती है। इसका कारण यह है कि बैंक साख का निवेश पूंजीगत पदार्थों के उत्पादन में किये जाने के फलस्वरूप श्रमिकों की आय बढ़ जाती है परन्तु उपभोग पदार्थों के उत्पादन में वृद्धि न होने के कारण उनकी कीमतें बढ़ जाती हैं परन्तु यह मुद्रास्फीति अल्पकालीन होती है। थोड़े समय पश्चात् जब पूंजीगत पदार्थों के द्वारा उपभोग वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि होगी तो कीमतें गिरनी आरम्भ हो जायेंगी। राष्ट्रीय आय के बढ़ने से सरकार को भी करों के रूप में अधिक आमदनी प्राप्त होगी। इसलिए इन्हें **घाटे की वित्त व्यवस्था** (Deficit Financing) नहीं करनी पड़ेगी। अतएव **लुईस** के अनुसार बैंक साख द्वारा पूंजी निर्माण करने के फलस्वरूप जो मुद्रास्फीति होती है वह **स्वयं समाप्त** (Self Liquidating) हो जाती है।

(4) विकास प्रक्रिया का अन्त (End of Growth Process): **लुईस** के अनुसार आर्थिक विकास की प्रक्रिया अनिश्चित काल तक नहीं चल सकती। आर्थिक विकास की इस प्रक्रिया का कई कारणों से अन्त हो जाता है जैसे (i) जब बेरोजगारी समाप्त हो जाने के बाद श्रमिकों की मांग बढ़ती है तो मजदूरी की दर बढ़ जाती है। (ii) जीवन निर्वाह क्षेत्र में जनसंख्या का दबाव कम होने के कारण मजदूरी की दर बढ़कर पूंजीवादी क्षेत्र के बराबर हो जाती है। इस स्थिति में पूंजीवादी क्षेत्र को अतिरिक्त मजदूर प्राप्त करने के लिए मजदूरी की दर बढ़ानी पड़ेगी। इसके फलस्वरूप **पूंजीवादी आधिक्य** (Capitalistic Surplus) बहुत कम या समाप्त हो जायेगा।
(iii) निर्वाह क्षेत्र में उत्पादन की नई तकनीकें अपनाई जाने के कारण मजदूरों की सीमान्त उत्पादकता में वृद्धि हो जाती है। इसके फलस्वरूप मजदूर अधिक मजदूरी की मांग करते हैं। (iv) पूंजीवादी क्षेत्र का निर्वाह क्षेत्र से अधिक तीव्र गति से विकास होने के कारण अनाज की कीमतें बढ़ जायेंगी। इसके फलस्वरूप व्यापार की शर्तें निर्वाह क्षेत्र के पक्ष में हो जायेंगी। इस क्षेत्र के श्रमिक पूंजीवादी क्षेत्र में जाने के लिए अधिक मजदूरी की मांग करेंगे। (v) पूंजीवादी क्षेत्र में **श्रमिक संगठनों** (Trade Unions) के दबाव के कारण मजदूरी की दर में वृद्धि करनी पड़ेगी।

उपरोक्त कारणों से पूंजीवादी क्षेत्र का **आधिक्य** (Surplus) जो अल्पविकसित देशों में श्रम की असीमित पूर्ति के कारण उत्पन्न हो जाता है, समाप्त हो जाता है। इसके फलस्वरूप पूंजी निर्माण की दर कम हो जाती है तथा आर्थिक विकास की प्रक्रिया रुक जाती है।

(5) खुली अर्थव्यवस्था (Open Economy): **लुईस** का मॉडल खुली अर्थव्यवस्था में भी लागू होता है। **लुईस** के अनुसार जब किसी अर्थव्यवस्था में उपरोक्त कारणों के फलस्वरूप आर्थिक विकास की प्रक्रिया रुक जाती है तो निम्नलिखित दो उपायों द्वारा विकास की प्रक्रिया को बनाये रखा जा सकता है:

(i) श्रमिकों का प्रवास (Migration of Labourers): अन्य अल्पविकसित देशों से बड़े पैमाने पर श्रमिकों का प्रवास किया जाना चाहिए, ये श्रमिक कम मजदूरी पर काम करने को तैयार होंगे। इसके फलस्वरूप **पूंजीवादी आधिक्य** (Capitalistic Surplus) प्राप्त होगा। इसका निवेश करने से आर्थिक विकास की दर बढ़ जायेगी। परन्तु इस उपाय के लागू करने में एक व्यावहारिक कठिनाई यह है कि श्रमिकों के बड़े पैमाने पर प्रवास करने से सामान्य मजदूरी दर कम हो जायेगी। ऊंची मजदूरी वाले देशों की ट्रेड यूनियनें मजदूरी दर में होने वाली कमी का विरोध करेंगी तथा दूसरे देशों से किये जाने वाले श्रमिकों के प्रवास पर प्रतिबन्ध लगाने के लिए आन्दोलन करेंगी।

(ii) पूंजी का निर्यात (Export of Capital): दूसरे देशों को पूंजी का निर्यात किया जाना चाहिए। इसके फलस्वरूप देश में अचल पूंजी की कमी हो जाने के कारण श्रम की मांग कम हो जायेगी। श्रम की मांग कम होने के कारण देश में मजदूरी की दर कम हो जायेगी।

उपरोक्त विवरण से सिद्ध हो जाता है कि अल्पविकसित देश, दूसरे देशों के साथ श्रम के आयात तथा पूंजी के निर्यात द्वारा आर्थिक विकास की प्रक्रिया को जारी रख सकते हैं।

■ 6. आलोचना (Criticism)

आर्थर लुईस *द्वारा प्रतिपादित आर्थिक विकास के सिद्धान्त की मुख्य आलोचनायें निम्नलिखित हैं:*

(1) सीमित क्षेत्र (Limited Scope): इस सिद्धान्त का क्षेत्र सीमित है क्योंकि यह सिद्धान्त अल्पविकसित देशों में श्रम की असीमित पूर्ति की मान्यता पर आधारित है। परन्तु कई अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं जैसे दक्षिणी अफ्रीका तथा लैटिन अमेरिका में श्रम की पूर्ति असीमित नहीं होती है। इसलिए यह सिद्धान्त उन अर्थव्यवस्थाओं में लागू नहीं होता है।

(2) श्रम की गतिशीलता आसान नहीं होती (Mobility of Labour is not Easy): अल्पविकसित देशों में निर्वाह क्षेत्र से पूंजीवादी क्षेत्र में श्रम की गतिशीलता आसान नहीं होती। *अल्पविकसित देशों में एक ओर जाति और धर्म बन्धनों के कारण व्यावसायिक* गतिशीलता कम होती है। दूसरी ओर भाषा, खानपान, आवास की समस्या, उत्साह की कमी, स्थान व वातावरण से लगाव आदि के कारण भौगोलिक गतिशीलता भी कम रहती है।

(3) स्थिर जीवन निर्वाह मजदूरी सम्भव नहीं है (Constant Subsistence Wages is not Possible): **लुईस** के मॉडल की यह मान्यता भी उचित नहीं है कि जीवन निर्वाह क्षेत्र में श्रमिकों को मिलने वाली मजदूरी जीवन निर्वाह के बराबर स्थिर रहेगी *तथा उसमें कोई वृद्धि नहीं होगी। वास्तव में, आर्थिक विकास के फलस्वरूप जीवन निर्वाह क्षेत्र में श्रमिकों का दबाव कम होने के कारण* उनकी औसत तथा सीमान्त उत्पादकता बढ़ जाती है तथा वे अधिक मजदूरी की मांग करते हैं। जीवन निर्वाह क्षेत्र में मजदूरी बढ़ने से पूंजीवादी क्षेत्र में भी श्रम की मजदूरी बढ़ेगी तथा पूंजी का आधिक्य प्राप्त ही नहीं होगा।

(4) कुशल श्रमिकों की कमी (Lack of Skilled Workers): **लुईस** का यह निष्कर्ष भी उचित नहीं है कि अल्पविकसित देशों में अकुशल श्रमिकों को प्रशिक्षण देकर आसानी से कुशल बनाया जा सकता है, इसलिए श्रम की अकुशलता को वे आर्थिक विकास के लिए *कोई बड़ी बाधा नहीं मानते थे। परन्तु वास्तव में अकुशल श्रमिकों को प्रशिक्षण देकर कुशल बनाना कोई सरल कार्य नहीं है।* इसके लिए काफी समय तथा धन की आवश्यकता होती है। अतएव अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास में कुशल तथा प्रशिक्षित श्रमिकों का अभाव एक बड़ी कठिनाई है।

(5) उद्यमियों का अभाव (Lack of Entrepreneurs): लुईस के मॉडल की यह मान्यता भी उचित नहीं है कि अल्पविकसित देशों में उद्यमी पर्याप्त संख्या में होते हैं। इसलिए असीमित श्रम शक्ति का पूर्ण प्रयोग किया जा सकता है। वास्तव में *अल्पविकसित देशों में योग्य उद्यमियों का अभाव पाया जाता है।* इनके *अभाव में* आर्थिक विकास की प्रक्रिया तेजी से नहीं हो पाती।

(6) निवेश गुणक का क्रियाशील न होना (Investment Multiplier is not Operative): इस मॉडल की यह मान्यता भी उचित नहीं है कि अल्पविकसित देशों में उद्यमी अपने लाभ को निवेश करते हैं। इसलिए **निवेश गुणक** (Investment Multiplier) क्रियाशील होता है। परन्तु वास्तव में जैसा कि **डॉ० वी. के. आर. वी. राव तथा प्रो० ए. के. दास गुप्ता का मत है कि अल्पविकसित देशों में निवेश गुणक क्रियाशील नहीं होता। निवेश गुणक के क्रियाशील न होने के कारण श्रम का पूर्ण उपयोग नहीं हो पाता।**

(7) सीमान्त उत्पादकता शून्य नहीं होती (Marginal Productivity is not Zero): **प्रो० सेन, शुल्टज** आदि के अनुसार लुईस के मॉडल की यह धारणा भी गलत है कि जीवन निर्वाह क्षेत्र में श्रम की सीमान्त उत्पादकता शून्य होती है। वास्तव में सीमान्त उत्पादकता शून्य नहीं होती है। इसलिए यह अनुमान लगाना कठिन हो जाता है कि कृषि में कितने लोग छिपे रूप से बेरोजगार हैं।

(8) धन की असमानता (Unequal Distribution of Wealth): **कुजनेटस** (Kuznets) ने इस मॉडल की आलोचना करते हुए *कहा है कि यह मॉडल धन की असमानता को प्रोत्साहित करता है।* परन्तु वास्तव में यह आवश्यक नहीं है कि धन की असमानता के कारण धनी वर्ग अपने धन को उत्पादन कार्यों में निवेश करके पूंजी निर्माण करे। अल्पविकसित देशों में अधिकतर धनी वर्ग अनुत्पादक कार्यों में अपने धन को खर्च कर देते हैं। इसके फलस्वरूप धन की असमानता के होते हुए भी इन देशों का आर्थिक विकास नहीं हो पाता।

(9) मुद्रास्फीति स्वयं विनाशक नहीं होती (Inflation is not Self Liquidating): **प्रो० ओलीवर्स** (Prof. Olivers) के अनुसार लुईस के मॉडल की यह धारणा भी उचित नहीं है कि मुद्रास्फीति स्वयं नाशक होती है। वास्तव में भारत जैसे अल्पविकसित

देशों के उदाहरण से ज्ञात होता है कि जब एक बार मुद्रास्फीति आरम्भ हो जाती है तो उस पर नियन्त्रण करना कठिन हो जाता है। इसका कारण यह है कि इन देशों में संरचनात्मक कठिनाइयों के कारण उत्पादन उतनी आसानी से नहीं बढ़ता जितनी शीघ्रता से इन देशों में मुद्रास्फीति फैलती है।

(10) कुल मांग की अवहेलना (Aggregate Demand Neglected): लुईस ने अपने मॉडल में कुल मांग की अवहेलना की है। लुईस के मॉडल की यह धारणा है कि पूंजीवादी क्षेत्र द्वारा जितना भी उत्पादन होता है उसका या तो पूंजीवादी क्षेत्र द्वारा उपभोग कर लिया जाता है या उसका निर्यात कर दिया जाता है। परन्तु यह वास्तविकता नहीं है। वास्तव में पूंजीवादी क्षेत्र द्वारा उत्पादित वस्तुओं की जीवन निर्वाह क्षेत्र द्वारा भी मांग की जाती है। यदि जीवन निर्वाह क्षे के द्वारा की जाने वाली मांग कम हो जाती है तो कुल मांग कम हो जायेगी तथा विकास प्रक्रिया रुक जायेगी।

(11) पूंजीवादी क्षेत्र द्वारा ही बचत नहीं होती (Saving is not only done by Capitalistic Sector): लुईस के मॉडल की यह धारणा भी वास्तविक नहीं है कि अल्पविकसित देशों में केवल पूंजीवादी क्षेत्र ही बचत करता है। इन देशों में घरेलू क्षेत्र तथा सरकारी क्षेत्र द्वारा भी काफी मात्रा में बचत की जाती है। इसलिए आर्थिक विकास की प्रक्रिया केवल पूंजीवादी क्षेत्र पर ही निर्भर नहीं करती है।

(12) एकपक्षीय सिद्धान्त (One Sided Theory): यह एक पक्षीय सिद्धान्त है क्योंकि लुईस कृषि क्षेत्र में विकास की संभावना को ध्यान में नहीं रखता। अतिरिक्त श्रम के हस्तांतरण होने के कारण जब औद्योगिक क्षेत्र का विकास होता है तब खाद्यान्न एवं कच्चे माल की मांग में भी वृद्धि होगी, इससे कृषि क्षेत्र का भी विकास होगा।

(13) अकुशल कर प्रशासन (Inefficient Tax Administration): लुईस का यह मानना, कि बढ़ती हुई आय स्वयं कर के क्षेत्र में आ जाएगी, सही नहीं है। क्योंकि अल्पविकसित देशों में कर प्रशासन इतना कुशल और विकसित नहीं है कि इसके द्वारा कर एकत्रित करके पूंजी निर्माण की दर को बढ़ाया जा सके।

(14) कौशल निर्माण एक गंभीर समस्या (Skill formation a Serious Problem): लुईस के अनुसार अकुशल श्रम का पाया जाना कोई बहुत बड़ी कठिनाई नहीं है क्योंकि श्रम को प्रशिक्षण द्वारा कार्यकुशल बनाया जा सकता है। परन्तु अल्पविकसित देशों में श्रम को कार्यकुशल बनाना आसान नहीं है क्योंकि उनको शिक्षित एवं प्रशिक्षित करने में काफी समय लग सकता है।

संक्षेप में, लुईस के आर्थिक विकास के मॉडल में कई दोष हैं परन्तु लुईस के मॉडल के द्वारा आर्थिक विकास की स्पष्ट व्याख्या की गई है। इस मॉडल में जनसंख्या वृद्धि, मुद्रास्फीति, अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग, पूंजी निर्माण, तकनीकी प्रगति आदि तत्वों का उपयोगी विश्लेषण किया गया है। यह सिद्धांत इस बात को भी व्यक्त करता है कि अल्पविकसित देशों में श्रम के आधिक्य तथा पूंजी की कमी के कारण किस प्रकार पूंजी निर्माण कम रहता है।

प्रश्न (QUESTIONS)

■ I. वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

सभी प्रश्न अनिवार्य हैं (Attempt all the questions)

1. छिपी बेरोजगारी प्रमुख विशेषता है (अल्प विकसित देशों की, अधिक विकसित देशों की)
2. छिपी बेरोजगार में श्रमिकों की सीमान्त उत्पादकता होती है (शून्य, शून्य नहीं) (K.U. 2005)
3. अल्पविकसित देशों में मजदूरी के जीवन निर्वाह स्तर पर श्रम की पूर्ति होती है (पूर्णतया लोचदार, पूर्णतया बेलोचदार)
4. लुईस के अनुसार अधिकतर अल्पविकसित देशों की मुख्य विशेषता है (श्रम की असीमित पूर्ति, श्रम की सीमित पूर्ति)
5. अल्पविकसित देशों के प्राथमिक क्षेत्र की विशेषता है (ऊँची उत्पादकता, निम्न उत्पादकता)

6. प्राथमिक क्षेत्रों में श्रमिकों को जीवन निर्वाह मजदूरी मिलती है जो बराबर होती है उनकी (सीमान्त उत्पादता के, औसत उत्पादकता के)
7. लुईस मॉडल सुझाव देता है श्रमिकों का जीवन निर्वाह क्षेत्र से एकत्रीकरण होता है (पूंजीवादी क्षेत्र की ओर, समाजवादी क्षेत्र की ओर)
8. जीवन निर्वाह क्षेत्र से पूंजीवादी क्षेत्र की ओर श्रम की गतिशीलता (आसान नहीं है, आसान है)
9. छिपी बेरोजगारी एक ऐसी स्थिति है, जिसमें किसी कार्य को करने के लिए जितने व्यक्तियों की आवश्यकता होती है, उससे उस कार्य में लगे व्यक्ति होते हैं (अधिक, कम) (K.U. 2008)

उत्तर (Answer): (1) अल्पविकसित देशों में, (2) शून्य, (3) पूर्णतया लोचदार, (4) श्रम की असीमित पूर्ति, (5) निम्न उत्पादकता, (6) औसत उत्पादकता के, (7) पूंजीवादी क्षेत्र की ओर, (8) आसान नहीं है, (9) अधिक।

■ II. लघु/परिभाषा रूपी प्रश्न (Short/Definitional Type Questions)

1. लुईस मॉडल क्या प्रस्तुत करता है?
2. छिपी बेरोजगारी से क्या अभिप्राय है? (K.U. 2006. M.D.U. 2007)
3. अल्पविकसित देशों में कौन से दो क्षेत्र पाए जाते हैं?
4. पूंजीवादी क्षेत्र की क्या विशेषताएँ हैं?
5. जीवन निर्वाह क्षेत्र की क्या विशेषताएं हैं?
6. 'पूंजीवादी आधिक्य' से क्या अभिप्राय है?
7. श्रमिकों के प्रवास (Migration) के बारे में लुईस का क्या कहना है?
8. क्या जीवन निर्वाह क्षेत्र से पूंजी क्षेत्र की ओर श्रम की गतिशीलता सरल है?
9. क्या प्राथमिक क्षेत्र में छिपी बेरोज़गारी की सही संख्या जान पाना संभव है?
10. दोहरी अर्थव्यवस्था किसे कहते हैं? (M.D.U. 2008)

■ III. निबन्ध रूपी प्रश्न (Essay Type Questions)

1. Explain in brief Lewis Theory of using labour surplus for capital formation in underdeveloped countries.
   अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में पूंजी निर्माण के लिये श्रम आधिक्य का प्रयोग करने वाले लुईस मॉडल की व्याख्या करें।
2. How can unlimited supply of labour can be utilised for economic development?
   आर्थिक विकास के लिये श्रम की असीमित पूर्ति का उपयोग कैसे किया जा सकता है?

   Or

   How unlimited supply of labour can become a source of economic development?
   श्रम की असीमित पूर्ति आर्थिक विकास का स्त्रोत कैसे बन सकती है? (K.U. 2009)
3. Discuss and critically evaluate the Lewis Model of development.
   लुईस के विकास मॉडल की चर्चा तथा आलोचनात्मक मूल्यांकन करें।
4. Mention the major features of Lewis Model of unlimited supply of labour.
   लेबर की असीमित पूर्ति के लुईस मॉडल के मुख्य लक्षण बतायें।
5. Discuss and critically evaluate The Lewis Theory of Development
   विकास के लुईस सिद्धान्त की व्याख्या तथा आलोचनात्मक मूल्यांकन करें।

6

सन्तुलित विकास
(BALANCED GROWTH)

■ भूमिका (Introduction)

अल्पविकसित देशों को निर्धनता के दुश्चक्र से छुटकारा प्राप्त करने के लिए काफी मात्रा में निवेश की आवश्यकता होती है। परन्तु अर्थशास्त्रियों में निवेश की **व्यूह रचना** (Strategy of Investment) के सम्बन्ध में मतभेद पाया जाता है। कुछ अर्थशास्त्रियों जैसे **रोडान, नर्कसे** तथा **लुईस** आदि के अनुसार इन अर्थव्यवस्थाओं को अपने आर्थिक विकास के लिये सभी क्षेत्रों में एक साथ निवेश करके **सन्तुलित विकास** करना चाहिये, परन्तु कुछ अर्थशास्त्रियों के अनुसार जैसे **हिरशमेन, सिंगर, फ्लेमिंग** आदि इन अर्थव्यवस्थाओं को किसी एक क्षेत्र में अधिक निवेश करके **असन्तुलन** की स्थिति उत्पन्न करनी चाहिये। इस असन्तुलन के फलस्वरूप दूसरे क्षेत्रों में निवेश की प्रेरणा होगी। अतएव् **आर्थिक विकास की व्यूह रचना** (Strategy of Economic Development) से सम्बन्धित दो सिद्धान्त हैं:

(1) **सन्तुलित विकास का सिद्धान्त** (Theory of Balanced Growth)

(2) **असन्तुलित विकास का सिद्धान्त** (Theory of Unbalanced Growth)

सन्तुलित विकास के सिद्धान्त के अनुसार आर्थिक विकास के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिये अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में एक साथ निवेश किया जाना चाहिये जिससे सन्तुलन स्थापित हो सके। इसके विपरीत, असन्तुलित विकास के सिद्धान्त के अनुसार अर्थव्यवस्था के किसी विशेष भाग जैसे उद्योगों या कृषि में निवेश करना चाहिये। इसके फलस्वरूप असन्तुलन उत्पन्न होगा। यह असन्तुलन अन्य क्षेत्रों में निवेश को प्रोत्साहन देगा। इस प्रकार आर्थिक विकास के उद्देश्य को प्राप्त किया जा सकेगा। इस अध्याय में हम सन्तुलित विकास के सिद्धान्त का अध्ययन करेंगे।

■ 1. सन्तुलित विकास के अर्थ (Meaning of Balanced Growth)

सन्तुलित विकास के सिद्धान्त का प्रतिपादन सबसे पहले **फ्रेडरिक लिस्ट** (Fredrick List) ने किया था। **लिस्ट** के अनुसार, विकास की वह युक्ति ही महत्त्वपूर्ण होती है जिसके द्वारा कृषि, उद्योगों तथा वाणिज्य में सन्तुलन स्थापित हो सके। सन् 1928 में **आर्थर यंग** (Arthur Young) ने इस धारणा का प्रतिपादन किया और कहा कि विभिन्न उद्योगों में परस्पर निर्भरता पाई जाती है। इसलिये सभी का एक साथ विकास किया जाना चाहिए। इस धारणा का समर्थन **रोजन्स्टीन रोडान** (Rosenstein Rodan) ने अपने एक लेख 'Problems of Industrialisation of Eastern and South Eastern Europe' में किया था। **प्रो॰ नर्कसे, प्रो॰ लुईस तथा सीटोवास्की** ने इस धारणा की विभिन्न आधारों पर विवेचना की है। वास्तव में, अर्थशास्त्रियों ने सन्तुलित विकास के विभिन्न अर्थ दिये हैं। **किन्डलबर्गर** के अनुसार, **''सन्तुलित विकास के इतने अधिक अर्थ हैं कि इन सभी के लुप्त होने का खतरा उत्पन्न हो जाता है।''** (Balanced growth has so many meanings that it is in danger of losing them all.– **Kindleberger**)।

■ 2. सन्तुलित विकास सिद्धान्त की परिभाषा (Definition of Theory of Balanced Growth)

सन्तुलित विकास सिद्धान्त की कुछ मुख्य परिभाषायें निम्नलिखित हैं:

(1) पाल स्ट्रीटन के अनुसार, **"सन्तुलित विकास से अभिप्राय है कि जहाँ कहीं भी कई महत्त्वपूर्ण निवेश सम्बन्धी निर्णय अपनी सफलता के लिये एक दूसरे पर निर्भर करते हैं, वहां उपभोक्ता की मांग के ढांचे तथा विभिन्न उद्योगों की एक दूसरे के उत्पादन के लिये मांग के अनुरूप, कई उद्योगों में एक साथ निवेश करना आवश्यक हो जाता है।"** (Balanced growth means wherever several non infinitesimal investment decisions depend for their success on each other, simultaneous investment in a series of industries, in conformity with the pattern of consumers' demand and of different industries' demand for each other's products is required. - **Paul Streeten**)

(2) प्रो॰ लुईस के अनुसार, **"सन्तुलित विकास से अभिप्राय यह है कि, अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों का एक ही साथ विकास होना चाहिये जिससे कि कृषि और उद्योगों में, आंतरिक उपभोग और निर्यात के लिए उत्पादन में, उचित सन्तुलन स्थापित हो सके। सभी क्षेत्रों का एक साथ विकास किया जाना चाहिए।"** (Balanced growth means that all sectors of economy should grow simultaneously so as to keep a proper balance between industry and agriculture, and between production for home consumption and production for exports. The truth is that all sectors should be expanded simultaneously. -**Lewis**)

(3) रेडावे (Reddaway) के अनुसार, **"सन्तुलित विकास का अभिप्राय अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में सन्तुलन प्राप्त करना है। अर्थात् (a) उपभोग और उत्पादन के ढांचे में सन्तुलन (b) उपभोग वस्तु क्षेत्र और पूंजी वस्तु क्षेत्र में सन्तुलन तथा (c) उत्पादन प्रणाली में सन्तुलन।"**

(4) हिगिन्स के अनुसार, **"सन्तुलित विकास का अर्थ है एक ही साथ विभिन्न उद्योगों में पूंजी का निवेश करना।"** (Balanced growth implies simultaneous capital investments in a number of different industries. **-Higgins**)

वास्तव में, **सन्तुलित विकास का अभिप्राय यह है कि अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों का एक साथ समन्वित विकास किया जाना चाहिये जिससे विभिन्न क्षेत्रों के उत्पादन को बाज़ार प्राप्त हो सके।** (Balanced growth means that there should be simultaneous and harmonious development of different sectors of the economy so that the products of different sectors may find a ready market.)

■ 3. सन्तुलित विकास सिद्धान्त का आधार (Basis of the Theory of Balanced Growth)

सन्तुलित विकास की धारणा राष्ट्रीय आय की मांग और पूर्ति दोनों पर निर्भर करती है। इसका अभिप्राय यह है कि देश का आर्थिक विकास तब ही हो सकता है जब मांग और पूर्ति दोनों पक्षों को एक साथ विकसित किया जाये।

(1) पूर्ति पक्ष (Supply Side): एक अल्पविकसित देश में पूर्ति अर्थात् राष्ट्रीय उत्पादन कम होता है। इसका कारण यह है कि इन देशों में आय के कम होने के कारण बचत कम होती है। बचत कम होने के फलस्वरूप निवेश कम होता है तथा उत्पादकता कम होती है। उत्पादकता के कम होने के कारण आय कम होती है।

कम आय → कम बचत → कम निवेश → कम उत्पादकता → कम आय

अतएव पूर्ति बढ़ाने के लिए यह आवश्यक है कि निवेश को बढ़ाया जाये परन्तु निवेश तभी बढ़ेगा जब उद्यमियों को निवेश की प्रेरणा प्राप्त होगी, अर्थात् उनका उत्पादन बिक जायेगा और उन्हें लाभ प्राप्त होगा। इसलिये यह आवश्यक हो जाता है कि कई उद्योग एक साथ स्थापित किये जायें। अतएव पूर्ति पक्ष की ओर से सन्तुलित विकास की धारणा यह है कि विकासशील अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों

को एक ही साथ विकसित करना चाहिये ताकि विकास में कठिनाई उत्पन्न न हो। उदाहरण के लिए, कृषि, उद्योग, आन्तरिक व्यापार, विदेशी व्यापार, परिवहन आदि का एक साथ ही विकास होना चाहिए। प्रो० लुईस के अनुसार, "**अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्र एक दूसरे से उचित प्रकार से सम्बन्धित होकर विकसित होने चाहियें, नहीं तो उनका विकास बिल्कुल नहीं हो सकेगा।**" (The various sectors of the economy go with the right relationship to each other or they can not go at all. - **Lewis**)

(2) **मांग पक्ष** (Demand Side): अल्पविकसित देशों में आय कम होने के कारण लोगों की क्रय शक्ति कम होती है इसलिए मांग कम होती है मांग कम होने के कारण निवेश की प्रेरणा कम होती है, अर्थात्

कम आय → कम क्रय शक्ति → कम निवेश → कम उत्पादकता → ------

इन देशों में मांग को बढ़ाने के प्रयत्न किये जाने चाहिए। मांग पक्ष की ओर से सन्तुलित विकास की धारणा यह है कि बहुत से उद्योगों को एक ही साथ विकसित करना चाहिए ताकि सभी एक - दूसरे के ग्राहक बन सकें और सभी का माल बिक सके। इस सम्बन्ध में **रोजस्टीन रोडान** ने एक उदाहरण दिया है। उनके अनुसार यदि एक जूते बनाने का कारखाना स्थापित किया जाता है। इस कारखाने से सम्बन्धित सभी व्यक्तियों को आय प्राप्त होगी। परन्तु वे सारी आय जूते खरीदने पर ही खर्च नहीं करेंगे। वे दूसरे उद्योगों की वस्तुएं भी खरीदेंगे। इसी प्रकार यदि एक ही दिशा में विकास किया जाये तो वह सफल नहीं होगा। इसके विपरीत, एक ही साथ अनेकों उद्योगों को साथ-साथ विकसित करने में यह कठिनाई दूर हो सकती है। इसलिए प्रो० **नर्कसे** का कहना है कि, "**अधिकतर उद्योग जो जनता के उपभोग के लिए उत्पादन करते हैं, पूरक उद्योग होते हैं और एक-दूसरे को उत्साहित करते हैं। 'संतुलित विकास' का पक्ष अन्तत:'संतुलित भोजन' की आवश्यकता पर आधारित है**" (Most Industries catering for mass consumption are complementary in the sense that they provide a market for, and thus support each other. The case for 'Balanced growth' rests on the need for a 'balanced diet.' - **Nurkse**)

■ 4. सन्तुलित विकास से सम्बन्धित विभिन्न दृष्टिकोण

(Different Views regarding Balanced Growth)

सन्तुलित विकास के **औचित्य** (Justification) से सम्बन्धित तीन मुख्य विचारधारायें निम्नलिखित हैं:

(1) सन्तुलित विकास सम्बन्धी रोडान के सिद्धान्त की व्याख्या

(Explanation of Rodan's Theory of Balanced Growth)

रोजन्स्टीन रोडान का यह विचार है कि अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं को आत्मनिर्भर बनाने के लिए बड़े पैमाने पर निवेश किया जाना आवश्यक है। इस विचारधारा के अनुसार सन्तुलित विकास सिद्धान्त से सम्बन्धित दो निम्नलिखित प्रमुख विचारधारायें हैं:

(1) **निवेश का पैमाना** (Scale of Investment): इस विचारधारा के अनुसार बाजार के पूर्ति तथा मांग पक्ष दोनों से सम्बन्धित उत्पादन प्रक्रिया की **अविभाज्यताओं** (Indivisibilities) की समस्या के समाधान के लिये ऊंचे पैमाने पर निवेश किया जाना आवश्यक है। इस विचारधारा का प्रतिपादन **प्रो० रोजन्स्टीन रोडान** (Rosenstein Rodan) ने **बड़े धक्के के सिद्धान्त** (Theory of Big Push) के रूप में किया है। रोडान के एक लेख 'Notes on Big Push' (1957) के अनुसार, **पूर्ति पक्ष** से सम्बन्धित अविभाज्यताओं का सम्बन्ध **सामाजिक उपरि पूंजी** (Social Overhead Capital) से है। विभिन्न **बाहरी बचतों** (External Economies) का लाभ उठाने के लिये एक साथ कई क्रियाओं (Activities) में निवेश करना आवश्यक है। **मांग पक्ष** से सम्बन्धित अविभाज्यताओं से अभिप्राय बाजार के छोटे आकार द्वारा आर्थिक क्रियाओं की लाभदायकता तथा वांछनीयता को सीमित करने से है। अतएव इस विचारधारा के अनुसार सन्तुलित विकास से अभिप्राय है **पूर्ति तथा मांग की अविभाज्यताओं की बाहरी बचतों का लाभ उठाने के लिये कई क्रियाओं में ऊंचे पैमाने पर निवेश किया जाना।** रोडान के अनुसार, "**सन्तुलित विकास का अर्थ है, परस्पर सम्बन्धित उद्योगों में एक साथ निवेश करना। ये एक दूसरे के उत्पादन के लिये बाजार का निर्माण करेंगे।**" (Balanced growth means investment in mutually supporting industries, which would create the

market for each other's products. - **Rodan**)। इसके फलस्वरूप विभिन्न उद्योग एक दूसरे के उत्पादन की मांग करके बाजार का विस्तार करेंगे। इसके फलस्वरूप ही देश का औद्योगिकीकरण सम्भव हो सकेगा। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए निवेश **भारी मात्रा** (*Big Push*) *में किया जाना चाहिये। सन्तुलित विकास के कारण उद्योग अपनी अविभाज्यताओं (Indivisibilities)* का लाभ उठा सकेंगे। सन्तुलित विकास के कारण सीमान्त उत्पादकता तथा **निजी सीमान्त उत्पादकता** में कमी होगी तथा **बाहरी बचतें** (External Economies) प्राप्त होंगी। सन् 1943 में प्रकाशित अपने एक लेख ''Industrialisation of Eastern and South Eastern Europe'' में जूता बनाने वाली फैक्टरी का उदाहरण देते हुये यह तर्क दिया था कि बाजार का आकार सीमित होने के कारण इस फैक्टरी का अत्यंत कुशल प्रबंध होने के बावजूद भी मांग के प्रभाव में यह सफल नहीं हो पाई। अतएव आर्थिक विकास के लिये यह आवश्यक है कि विभिन्न **उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन** करने वाले कई उपभोक्ता उद्योगों की एक साथ स्थापना की जाये। ये फैक्टरियां इस प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन करेंगी जिन्हें विभिन्न फैक्ट्रियों में काम करने वाले मजदूर खरीद लेंगे तो उनकी मांग तथा पूर्ति बराबर हो जायेगी।

विकास का मार्ग एवम् निवेश का ढांचा (Path of Development and Pattern of Investment)

सन्तुलित विकास की दूसरी विचारधारा के अनुसार सन्तुलित विकास से अभिप्राय विकास के उस मार्ग तथा निवेश के उस ढांचे से है जो अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों के परस्पर सम्बन्धित सन्तुलित विकास के लिये आवश्यक है। (Balanced growth theory refers to the path of economic development and the pattern necessary to keep the different sectors of the economy in a balanced growth relation to each other.) इस विचारधारा के अनुसार यह सन्तुलन चार प्रकार का हो सकता है:

(i) कई प्रकार के उपभोक्ता वस्तुओं से उत्पादन से सम्बन्धित उद्योगों का एक साथ विकास (Balanced Growth of different kind of Consumer Goods Industries)।

(ii) उपभोक्ता वस्तु उद्योगों तथा सामाजिक और आर्थिक उपरि पूंजी का सन्तुलित विकास (Balanced Growth of consumer goods industries and social and economic overhead capital)।

(iii) उपभोक्ता वस्तु उद्योगों, पूंजीगत वस्तु उद्योग तथा सामाजिक और आर्थिक उपरि पूंजी का सन्तुलित विकास (Balanced Growth of consumer Goods industries, capital goods industries and social and economic overhead capital)।

(iv) कृषि तथा औद्योगिक क्षेत्रों का सन्तुलित विकास (Balanced Growth of Agricultural and Industrial sectors)।

प्रो० नर्कसे ने इस विचारधारा का समर्थन करते हुये यह तर्क दिया है कि अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं के विकास में दो बड़ी बाधायें हैं, **(1) मांग का निर्धनता दुश्चक्र** (*Vicious Circle of poverty on the demand side*) तथा दूसरे **(2) पूर्ति का निर्धनता दुश्चक्र** (Vicious circle of poverty on the supply side.) **इन दोनों दुश्चक्रों को तोड़ने के लिए विभिन्न प्रकार के उद्योगों में एक साथ समन्वयपूर्ण निवेश किया जाना चाहिये।** इस प्रकार का विकास ही सन्तुलित विकास कहलाता है। (Balanced growth means simultaneous investment in a number of industries so that vicious circle of poverty can be broken.)

लुईस के अनुसार, आर्थिक विकास के लिये घरेलू तथा विदेशी व्यापार का सन्तुलन होना चाहिये।

रोजन्स्टीन रोडान (Rosenstein Rodan) ने सन्तुलित विकास अर्थात् कई उद्योगों में एक साथ निवेश करने से सम्बन्धित अपने दृष्टिकोण के पक्ष में तीन प्रकार की अविभाज्यताओं का तर्क प्रस्तुत किया है। रोडान के अनुसार अविभाज्यताओं को **बाहरी बचतें** (External Economies) प्राप्त होती हैं: बाहरी बचतें वे बचतें हैं जो अविभाज्यता के कारण विभिन्न उद्योगों का एक साथ विकास

होने के फलस्वरूप सारी अर्थव्यवस्था को प्राप्त होती हैं। इन बचतों के फलस्वरूप निजी उद्यम प्रोत्साहित होता है। देश में निवेश की मात्रा बढ़ती है तथा आर्थिक विकास की सम्भावना बढ़ जाती है। बाहरी बचतों के लिए अविभाज्यता तीन प्रकार की हो सकती है:

(i) उत्पादन फलन अथवा सामाजिक उपरि पूंजी की पूर्ति की अविभाज्यता (Indivisibility in the Production function or in the supply of social overhead Costs): अल्पविकसित देशों में उपभोक्ता तथा पूंजीगत पदार्थों के उद्योग स्थापित करने से पहले सामाजिक उपरि पूंजी अर्थात् यातायात, शक्ति के साधन, संचार, सिंचाई के साधनों का निर्माण आवश्यक है। सामाजिक उपरि पूंजी उपलब्ध कराने वाले उद्योगों का न्यूनतम स्तर भी काफी बड़ा होता है। इसलिये इनकी स्थापना पर अधिक मात्रा में निवेश करना आवश्यक है। यदि किसी देश में रेलवे की स्थापना करनी है तो एक-दो शहरों के मध्य में अथवा कुछ दूरी में रेल लाईन बिछाने से काम नहीं चलेगा इसके लिए तो एक न्यूनतम निवेश एक साथ अवश्य ही करना पड़ेगा। ये सामाजिक उपरि पूंजी वाले उद्योग कई कारणों से अविभाज्य होते हैं जैसे - (a) यह समय के रूप में अविभाज्य है अर्थात् प्रत्यक्ष रूप से उत्पादक निवेश करने से पहले इनमें काफी मात्रा में निवेश करना आवश्यक है। (b) इनमें प्रयोग की जाने वाली मशीनों की तकनीकी तथा दूसरे कारणों से काफी अधिक आयु होती है। (c) इस पूंजी की **फलन अवधि** (Gestataion Period) अधिक होती है। तथा (d) सामाजिक उपरि पूंजी के निर्माण एक साथ कई प्रकार के कार्यों जैसे सड़कों, रेलों, शक्ति के साधनों, सिंचाई व्यवस्था में लगाने आवश्यक होते हैं। इन अविभाज्यताओं के कारण सामाजिक उपरि पूंजी के निर्माण में अल्पविकसित देशों को कुल निवेश का 30% से 40% तक निवेश करना पड़ता है। इन अविभाज्यताओं के फलस्वरूप बाकी उद्योगों को बाहरी बचतें प्राप्त होती हैं। एक देश का औद्योगिकीकरण जैसे-जैसे बढ़ता जाता है सामाजिक उपरि पूंजी का उपयोग बढ़ता जाता है तथा देश में लागतें कम होती जाती हैं। सामाजिक उपरि पूंजी की अविभाज्यता तथा उसके द्वारा बाहरी बचत प्राप्त करने के लिए निवेश को **अधिक मात्रा** में एक 'बड़े धक्के' के रूप में करना आवश्यक हो जाता है।

(ii) मांग की अविभाज्यता (Indivisibility of Demand): अल्पविकसित देशों में मांग की अविभाज्यता पाई जाती है। इसका अभिप्राय यह है कि विभिन्न उद्योगों के निवेश के निर्णय एक दूसरे पर निर्भर करते हैं तथा फिर अलग-अलग निवेश निर्णय काफी अनिश्चित होते हैं क्योंकि अलग-अलग निवेश करने से उनकी वस्तुओं की मांग पूर्ति के बराबर न होने का डर बना रहता है। **प्रो॰ रोडान** ने इसे एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। मान लीजिए, एक बन्द अर्थव्यवस्था में छिपी बेरोज़गारी की अवस्था में 100 मजदूर हैं। इन्हें रोजगार देने के लिए एक जूता फैक्टरी खोल दी जाती है। इसके फलस्वरूप इन मज़दूरों को अतिरिक्त आय प्राप्त होगी। यदि ये मजदूर इस सारी अतिरिक्त आय को जूते खरीदने में ही खर्च कर देते हैं तब तो जूता फैक्टरी का सारा उत्पादन बिक जाएगा और उद्यमी को जूता फैक्टरी स्थापित करने में कोई हानि नहीं उठानी पड़ेगी।

परन्तु यह सम्भव नहीं है कि जूता फैक्टरी में काम करने वाले मजदूर अपनी सारी आय जूते खरीदने में ही खर्च कर देंगे। उन्हें दूसरी वस्तुओं की आवश्यकता होगी। इसलिये जूतों की मांग, पूर्ति से कम होगी तथा उद्यमी जूता उद्योग स्थापित करने का जोखिम नहीं उठायेगा। इसके विपरीत, यदि देश में 1,000 मजदूर बेरोज़गार हैं। उन्हें रोज़गार देने के लिए एक साथ 10 फैक्टरियों की स्थापना की जाती है। ये फैक्टरियां इस प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन करेंगी, जिन्हें विभिन्न फैक्टरियों में काम करने वाले मजदूर खरीद लेंगे तो इनकी पूर्ति तथा मांग बराबर हो जायेगी। उद्यमियों को मांग के विषय में किसी प्रकार की अनिश्चितता नहीं रहेगी। वे 10 फैक्ट्रियों में एक साथ निवेश करना पसन्द करेंगे। इस उदाहरण से सिद्ध होता है कि उद्योगों की स्थापना अलग-अलग करने की अपेक्षा एक साथ करना अधिक आवश्यक होता है। इसलिये अल्पविकसित देशों में ऊंचे पैमाने पर अधिक मात्रा में निवेश अधिक लाभदायक सिद्ध होगा। इसके फलस्वरूप मांग में वृद्धि होगी तथा उद्यमियों की मांग की अविभाज्यता के कारण बाहरी बचतें प्राप्त हो सकेंगी।

(iii) बचत की पूर्ति में अविभाज्यता (Indivisibilities of Supply of Savings): बड़े धक्के या प्रबल प्रयास (Big-push) के सिद्धान्त के पक्ष में यह भी तर्क दिया जाता है कि अल्पविकसित देशों में न्यूनतम ऊंची मात्रा के निवेश के लिये ऊंची मात्रा में बचत की आवश्यकता होती है। इसके लिये अधिक आय की आवश्यकता होती है। अल्पविकसित देशों में आय का स्तर कम होता है। आय के स्तर को बढ़ाने के लिए पहली अवस्था में अधिक मात्रा में निवेश करना आवश्यक है। इसके कारण जो आय बढ़ेगी वह दूसरी अवस्था में बचत की सीमान्त दर बढ़ाने में सहायक होगी। इस प्रकार बचत का अधिक आय सापेक्ष होना तीसरी अविभाज्यता है। रोडान ने इस समस्या का वर्णन इस प्रकार किया है, **''न्यूनतम निवेश की एक ऊंची मात्रा के लिये बचत की मात्रा अधिक होनी**

चाहिये जिसे निम्न आय वाले अल्पविकसित देशों में प्राप्त करना कठिन होता है। इस दुश्चक्र से निकलने के लिये यह आवश्यक है कि पहले आय में वृद्धि को प्राप्त किया जाये तथा ऐसी व्यवस्था की जाये जिससे दूसरी अवस्था में सीमान्त बचत दर औसत बचत दर से काफी ऊंची रहे।''

संक्षेप में, रोडान के अनुसार, उपर्युक्त तीन प्रकार की अविभाज्यताओं के फलस्वरूप अल्पविकसित देशों में एक साथ अधिक मात्रा में निवेश की आवश्यकता होती है। यह निवेश एक साथ कई पूरक उद्योगों की स्थापना, सामाजिक उपरि पूंजी के निर्माण तथा बचत की दर में वृद्धि करने के लिए आवश्यक होता है। इसके फलस्वरूप बाहरी बचतें प्राप्त होती हैं। इन बचतों के कारण उद्योग में **बढ़ते प्रतिफल का नियम** (Law of Increasing Returns) लागू होता है। इसके फलस्वरूप विकास की दर में वृद्धि होती है।

(2) नर्कसे के सन्तुलित विकास सिद्धान्त की व्याख्या
(Explanation of Nurkse's Theory of Balanced Growth)

प्रो० नर्कसे ने सन्तुलित विकास के सिद्धान्त की स्पष्ट एवम् उचित व्याख्या की है। उसके अनुसार अल्पविकसित देशों के विकास में सबसे बड़ी बाधा **निर्धनता का दुश्चक्र** है। निर्धनता के दुश्चक्र से ज्ञात होता है कि अल्पविकसित देशों में आय कम होती है। आय कम होने के कारण बचत कम होती है। बचत कम होने पर निवेश कम होगा। इसके फलस्वरूप उत्पादन कम होगा। उत्पादन कम होने से आय कम होगी। आय कम होने से वस्तुओं की मांग कम होगी, अर्थात् मण्डियों का आकार छोटा होगा। इसके फलस्वरूप निवेश की प्रेरणा नहीं मिलेगी।

नर्कसे के अनुसार, **''निवेश प्रेरणा इसलिए कम हो सकती है क्योंकि लोगों की क्रय शक्ति कम है, जो कि उन की वास्तविक आय कम होने के कारण है। उत्पादकता का निम्न स्तर उत्पादन में पूंजी के कम उपयोग का परिणाम है, जिस का कारण अंशत: निवेश प्रेरणा की कमी है।''** अतएव अल्पविकसित देशों में पाये जाने वाले निर्धनता के दुश्चक्र को तोड़ने के लिए आवश्यक है कि मांग तथा पूर्ति दोनों में सन्तुलन स्थापित किया जाये।

नर्कसे के अनुसार, निर्धनता के दुश्चक्र को तोड़कर आर्थिक प्रगति के लक्ष्य को सन्तुलित विकास द्वारा निम्नलिखित प्रकार से प्राप्त किया जा सकता है:

(i) मांग की पूरकता (Complementarity of Demand): **नर्कसे** के अनुसार, मांग का विस्तार सन्तुलित विकास के द्वारा ही किया जा सकता है। जिस प्रकार शरीर का विकास करने के लिए सन्तुलित आहार की आवश्यकता है उसी प्रकार आर्थिक विकास के लिए सन्तुलित विकास की आवश्यकता है। इसका अभिप्राय यह है कि एक साथ कई प्रकार के विभिन्न उद्योगों की स्थापना की जानी चाहिये जिससे विभिन्न उद्योगों में लगे हुए लोग एक दूसरे के ग्राहक बन जायें। इसके विपरीत यदि केवल किसी एक ही उद्योग में निवेश किया जायेगा तो मांग कम होने के कारण उद्योग सफल नहीं हो सकेगा। वह उद्योग अपने सारे उत्पादन की मांग स्वयं नहीं कर सकेगा। उस उद्योग में काम करने वाले व्यक्ति अपनी सारी आय केवल उसी उद्योग के उत्पादन को खरीदने में ही खर्च नहीं करेंगे। **रोडान ने जूतों** (Shoes) के उद्योग का उदाहरण दिया है।

मान लीजिए, यदि सारे देश की पूंजी जूतों के उद्योग में लगा दी जाये तो उस देश के सारे लोग अपनी आय जूते खरीदने पर व्यय नहीं करेंगे। बल्कि दूसरी आवश्यक वस्तुएं खरीदने पर भी व्यय करेंगे जिनको वे जूते बेचकर प्राप्त कर सकते हैं। परन्तु यदि अर्थव्यवस्था के शेष क्षेत्रों में उत्पादन में वृद्धि न हो रही हो तो लोगों की क्रय शक्ति पहले जितनी ही बनी रहेगी। जूतों का उत्पादन तो होगा, मगर मांग नहीं होगी क्योंकि दूसरे लोगों की आय में वृद्धि नहीं हुई है। वे जूते नहीं खरीद सकेंगे। इस प्रकार जूतों का उद्योग नहीं चल सकेगा। इस उदाहरण से यह सिद्ध होता है कि अल्पविकसित देशों में निर्धनता के दुश्चक्र को तोड़ने के लिए एक ही साथ कई उद्योगों में पूंजी लगाने से सन्तुलित विकास सम्भव हो सकता है। इससे एक तरफ तो उत्पादन में वृद्धि होगी और दूसरी ओर बाजार का आकार बढ़ेगा। **नर्कसे** के अनुसार, **''अल्पविकसितता की समस्या के समाधान से यह प्रतीत होता है कि विभिन्न उद्योगों में एक साथ सन्तुलित स्तर पर निवेश किया जाना चाहिए जिससे अधिक उत्पादकता, अधिक पूंजी तथा सुधरी हुई तकनीकों के साथ काम करने वाले व्यक्ति एक दूसरे के ग्राहक बन सकें।''**

जब निवेश एक साथ कई उद्योगों में किया जायेगा तो इससे बहुत से व्यक्तियों की, जिन्हें विभिन्न उद्योगों में रोजगार दिया जाता है आय बढ़ेगी। वे एक-दूसरे की बनाई हुई वस्तुएं उपभोग के लिए खरीदेंगे। वे एक दूसरे के ग्राहक बन जायेंगे। इस प्रकार पूर्ति बढ़ने के साथ-साथ मांग भी बढ़ेगी। बाजार के आकार का विस्तार होगा। इसके फलस्वरूप पूंजी निर्माण होगा तथा निर्धनता के दुश्चक्र को तोड़ा जा सकेगा।

नर्कसे ने **मांग की पूरकताओं** (Complementarity of Demand) को सन्तुलित विकास का आधार माना है। उनके शब्दों में, **''जब व्यापक रूप से एक साथ बहुत से उद्योगों में पूंजी निवेश किया जाता है तो मार्किट का कई गुना अधिक विस्तार हो जाता है। अनेक पूरक उद्योगों में अधिक और अच्छे औजारों से काम करने वाले व्यक्ति एक दूसरे के उपभोक्ता बन जाते हैं। अधिकतर उद्योग जो उपभोक्ता पदार्थ बनाते हैं एक दूसरे के पूरक होते हैं क्योंकि वे एक दूसरे के लिए मांग उत्पन्न करते हैं और एक दूसरे के सहायक सिद्ध होते हैं। विभिन्न उद्योगों में पूरकता मनुष्य की आवश्यकताओं की विभिन्नता अथवा अनेकता के कारण पैदा होती है। इस प्रकार सन्तुलित विकास के सिद्धान्त के पक्ष में तर्क सन्तुलित आहार की आवश्यकता पर आधारित हैं।''** अतएव मांग की पूरकताओं के आधार पर सन्तुलित विकास आर्थिक प्रगति के लक्ष्य को प्राप्त करने में सहायक होगा।

(ii) सरकार द्वारा हस्तक्षेप (Intervention by the Government): **नर्कसे** का यह विचार है कि यदि देश में प्रगतिशील निजी उद्यमकर्ता तथा उद्योगपति मौजूद हैं तो उन्हें निवेश करने को प्रेरित किया जा सकता है तथा सरकार का सन्तुलित विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने में बहुत ही सीमित योगदान होता है।

(iii) बाहरी बचतें (External Economies): सन्तुलित विकास के फलस्वरूप **बाहरी बचतें** (External Economies) प्राप्त होती हैं। बाहरी बचतें वे हैं जो नये उद्योगों की स्थापना तथा वर्तमान उद्योगों के विस्तार के कारण अन्य उद्योगों को प्राप्त होती हैं। उद्योगों को ये बचतें अन्य उद्योगों की स्थापना तथा मार्किट के आकार तथा मांग में वृद्धि के रूप में प्राप्त होती हैं। वास्तव में, बाहरी बचतों के कारण उत्पादन पर बढ़ते हुए प्रतिफल का नियम लागू होता है। इसके फलस्वरूप लागत कम होती है। वस्तु की मांग बढ़ती है तथा आर्थिक विकास की प्रक्रिया तीव्र हो जाती है।

(iv) विकास की तीव्र वृद्धि दर (Accelerated Rate of Growth): सन्तुलित विकास के फलस्वरूप आर्थिक विकास की दर में तेजी से वृद्धि होती है। **प्रो० मायर** के अनुसार, **''सन्तुलित विकास कठिनाइयों से निकलने का एक साधन है। विकास की दर बढ़ाने का उस समय एक मात्र उपाय है जब व्यापार के विस्तार तथा विदेशी पूंजी के रूप में विकास के बाहरी साधन कार्यशील नहीं रहते हैं।''** नर्कसे के अनुसार, **''सन्तुलित विकास के फलस्वरूप नये उद्योगों की स्थापना होती है। ये उद्योग स्वयं एक दूसरे के लिए मांग का निर्माण कर लेंगे। इस प्रकार विकास की गति तीव्र हो जायेगी। नर्कसे** के शब्दों में, **''उत्पादन की विभिन्न शाखाओं में निवेश की नई लहर बाजार का अधिक विस्तार कर सकती है तथा अल्पविकास के स्थिर सन्तुलन के बन्धनों को तोड़ सकती है।''** (A wave of new investment in different branches of production can enlarge the total market and break the bonds of the stationary equilibrium of under development. - **Nurkse**)

संक्षेप में, **नर्कसे, लुईस** आदि अर्थशास्त्रियों के अनुसार सन्तुलित विकास के द्वारा **अल्पविकास सन्तुलन** (Underdevelopment Equilibrium) अथवा निर्धनता के दुश्चक्र को तोड़ा जा सकता है।

(3) सन्तुलित विकास सम्बन्धी लुईस के दृष्टिकोण की व्याख्या
(Explanation of Lewis' Theory of Balanced Growth)

आर्थर लुईस ने सन्तुलित विकास के पक्ष में दो निम्नलिखित तर्क दिये हैं:

(i) सन्तुलित विकास के अभाव में एक क्षेत्र में कीमतें दूसरे क्षेत्र की कीमतों से अधिक हो सकती हैं। इसके फलस्वरूप उस क्षेत्र को परेशानियां उठानी पड़ सकती हैं। घरेलू बाजार में व्यापार की प्रतिकूल शर्तों के फलस्वरूप उन्हें भारी हानि उठानी पड़ सकती है। इसके फलस्वरूप उनमें निवेश नहीं किया जायेगा। तथा उनका विकास रुक जायेगा सन्तुलित विकास के कारण सभी क्षेत्रों की तुलनात्मक कीमतों में समानता बनी रहेगी तथा सभी क्षेत्रों का विकास होता रहेगा।

(ii) जब **अर्थव्यवस्था** का विकास होता है तो विभिन्न क्षेत्रों में कई प्रकार के **अवरोध** (Bottle necks) उत्पन्न हो जाते हैं। परन्तु आर्थिक विकास के साथ-साथ लोगों की आय में भी वृद्धि होती है। आय में वृद्धि होने के कारण उन वस्तुओं की मांग बढ़ती है, जिनके लिये **आय की मांग लोचशील** (Demand is Income elastic) होती है। यदि इन वस्तुओं का उत्पादन नहीं बढ़ता तो कई अवरोध उत्पन्न हो सकते हैं। **सन्तुलित विकास के फलस्वरूप उत्पादन, मांग की आय लोच लोच के अनुसार, संभव हो सकेगा। इसके फलस्वरूप विभिन्न क्षेत्रों में अवरोध उत्पन्न नहीं होंगे।**

यदि कृषि तथा औद्योगिक क्षेत्रों में एक साथ उत्पादन बढ़ाना सम्भव नहीं हो तो घरेलू तथा विदेशी व्यापार के सन्तुलन की **रणनीति** (Strategy) अपनानी चाहिये। यदि उद्योगों का विकास नहीं होने पाता तो कृषि उपज का निर्यात् तथा औद्योगिक वस्तुओं का आयात किया जाना चाहिये। इसके विपरीत, यदि उद्योगों का विकास होता है परन्तु कृषि क्षेत्र का विकास नहीं होता तो औद्योगिक वस्तुओं का निर्यात तथा कृषि पदार्थों का आयात किया जाना चाहिये। परन्तु एक अल्पविकसित देश के लिये विदेशी व्यापार पर निर्भरता हानिकारक हो सकती है क्योंकि सामान्यत: व्यापार की शर्तें उनके लिए प्रतिकूल होंगी। इसलिये **लुईस** विदेशी व्यापार पर निर्भरता के पक्ष में नहीं थे। उनके अनुसार घरेलू क्षेत्र में ही सन्तुलित विकास की **रणनीति** (Strategy) अपनाई जानी चाहिये। **लुईस** के अनुसार अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों का एक साथ विकास होना चाहिये, जिससे उद्योगों तथा कृषि, घरेलू उपभोग के लिये उत्पादन तथा निर्यातों के लिये उत्पादन में सन्तुलन बना रहे।

■ 5. विभिन्न क्षेत्रों में सन्तुलन (Balance among Different Sectors)

सन्तुलित विकास के लिए आवश्यक है कि महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों का साथ-साथ विकास किया जाये। अर्थव्यवस्था के महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों का सन्तुलित विकास निम्नलिखित विवरण से स्पष्ट हो जाता है:

(i) कृषि और उद्योगों के विकास में सन्तुलन (Balance between Agriculture and Industries): प्रत्येक देश के आर्थिक विकास के लिए उद्योग और कृषि दोनों ही आवश्यक हैं। कृषि के विकास के फलस्वरूप उद्योगों को सहायता मिलती है क्योंकि उन्हें कच्चा माल मिलता है, और बढ़ती हुई जनसंख्या को भोजन प्राप्त होता है। कृषि क्षेत्र के विकास के फलस्वरूप जो भी बचत होगी उसे पूंजी निर्माण के लिए दूसरे क्षेत्रों में लगाया जा सकता है। यह ही नहीं बल्कि किसानों की आय में वृद्धि होने के फलस्वरूप उद्योगों द्वारा उत्पादित वस्तुओं की मांग भी बढ़ेगी। **प्रो० नर्कसे** ने कृषि के विकास के फलस्वरूप प्राप्त **आधिक्य** (Surplus) को दो भागों में बांटा है: (a) **बाजार योग्य आधिक्य** (Marketable Surplus): इस आधिक्य का प्रयोग किसान अपने जीवन-स्तर को ऊंचा उठाने के लिए करते हैं। *(b)* ***निवेश योग्य आधिक्य*** *(Investable Surplus): इसका प्रयोग निवेश में वृद्धि करने के लिए किया जाता है।* कृषि विकास के फलस्वरूप दोनों आधिक्य प्राप्त होते हैं। जापान, रूस आदि देशों के औद्योगिक विकास में कृषि क्षेत्र का बहुत महत्त्व रहा है।

औद्योगिक विकास का भी कृषि क्षेत्र के विकास पर प्रभाव पड़ता है। उद्योगों के विकास के फलस्वरूप एक ओर तो ग्रामीण क्षेत्र की अधिक जनता को रोजगार प्राप्त होता है, दूसरी ओर लोगों की आय में वृद्धि होती है, जिसके फलस्वरूप खेती पर जनसंख्या का भार कम हो जाता है। कृषि के विकास के लिए उद्योगों में यन्त्रों और रासायनिक खाद का उत्पादन होता है। इस प्रकार कृषि तथा उद्योगों का विकास एक दूसरे के लिए सहायक सिद्ध होता है, अतएव् इन दोनों का साथ-साथ विकास किया जाना चाहिये।

(ii) मानवीय पूंजी और भौतिक पूंजी के विकास में सन्तुलन (Balance between Human and Physical Capital): अल्पविकसित देशों में मानवीय पूंजी और भौतिक पूंजी के विकास में सन्तुलन होना चाहिए। मानवीय पूंजी में निवेश के फलस्वरूप लोगों में सामान्य तथा तकनीकी शिक्षा का प्रसार होता है। उनके स्वास्थ्य तथा कार्यकुशलता में वृद्धि होती है। श्रम की कार्यकुशलता में वृद्धि होती है। श्रम की कार्यकुशलता बढ़ने के कारण उत्पादकता में वृद्धि होती है। इसके फलस्वरूप आय तथा रोजगार में वृद्धि होती है। आय तथा रोजगार बढ़ने के कारण प्रभावपूर्ण मांग बढ़ती है, मांग बढ़ने के कारण निवेश में वृद्धि की जाती है। निवेश के बढ़ने से भौतिक पूंजी बढ़ती है। भौतिक पूंजी बढ़ने के फलस्वरूप उत्पादन तथा रोजगार की क्षमता बढ़ती है। इसके फलस्वरूप मानवीय पूंजी में अधिक निवेश करना सम्भव होता है। वास्तव में, आर्थिक विकास, पूंजी निर्माण तथा **कौशल निर्माण** (Skill Formation) दोनों पर ही निर्भर करता है। भौतिक पूंजी में निवेश करके पूंजी निर्माण तथा मानवीय पूंजी में निवेश करके कौशल निर्माण किया जा सकता है। अतएव मानवीय तथा भौतिक पूंजी दोनों का ही साथ-साथ विकास किया जाना चाहिये।

(iii) आन्तरिक तथा विदेशी व्यापार में सन्तुलन (Balance between Domestic trade and Foreign Trade): सन्तुलित विकास के सिद्धान्त के अनुसार आन्तरिक तथा विदेशी व्यापार में सन्तुलन होना चाहिए। आन्तरिक व्यापार का विकास करने से वस्तुओं तथा सेवाओं के प्रवाह में वृद्धि होगी जबकि विदेशी व्यापार के विकसित करने से आर्थिक विकास के लिए आवश्यक विदेशी विनिमय प्राप्त हो सकेगा। एक अल्पविकसित देश में आन्तरिक तथा विदेशी व्यापार एक दूसरे के विकास में सहायक सिद्ध होते हैं। आन्तरिक व्यापार के विकास के फलस्वरूप **बेचने योग्य आधिक्य** (Marketable Surplus) उत्पन्न होता है, इस आधिक्य के निर्यात करने से विदेशी व्यापार में वृद्धि होती है। विदेशी व्यापार में वृद्धि होने के फलस्वरूप मशीनों तथा कच्चे माल के आयात अधिक किये जा सकते हैं। इनका आयात अधिक किये जाने से **उत्पादन क्षमता** में वृद्धि होती है तथा आन्तरिक व्यापार बढ़ता है। परन्तु अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं को अपनी आयात-निर्यात नीति ऐसी बनानी चाहिए कि जिसके फलस्वरूप विदेशी व्यापार की हानियों से बचा जा सके तथा उसके लाभ अधिक उठाये जा सकें।

सन्तुलित विकास के लिये सरकार का योगदान
(Role of Government in the Balanced Growth)

सन्तुलित विकास के लिये सरकार के योगदान के सम्बन्ध में अर्थशास्त्रियों में मतभेद पाया जाता है। **नर्कसे** के अनुसार सन्तुलित विकास के लिये सार्वजनिक क्षेत्र के स्थान पर निजी क्षेत्र का अधिक महत्त्व है। सरकार सन्तुलित विकास के लिये बहुत ही सीमित योगदान दे सकती है। परन्तु **लुईस** तथा **स्ट्रीटन** (Streeten) के अनुसार सन्तुलित विकास के लिये सरकार बहुत महत्त्वपूर्ण योगदान कर सकती है। मिश्रित अर्थव्यवस्थाओं में सरकार सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार द्वारा तथा निजी क्षेत्र को प्रोत्साहित करके सन्तुलित विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने में सहायक हो सकती है। सरकार का **सामाजिक उपरि लागत** (Social Overhead Costs) के क्षेत्र तथा **प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओं** (Direct Productive Activities) दोनों में महत्त्वपूर्ण योगदान हो सकता है।

■ 6. सन्तुलित विकास का सिद्धान्त -एक दृष्टि में (Theory of Balanced Growth - At a Glance)

(1) सन्तुलित विकास का अर्थ है कि अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों का सन्तुलित विकास, जिससे विभिन्न क्षेत्रों के उत्पादन की मांग तथा पूर्ति में सन्तुलन रहे।

(2) सन्तुलित विकास का यह अर्थ नहीं है कि सभी उद्योगों का विकास एक ही दर पर होता रहे। कुछ उद्योगों का विकास दूसरों की तुलना में कम या अधिक दर पर हो सकता है।

(3) सन्तुलित विकास के सिद्धान्त के अनुसार केवल उद्योगों में ही विशाल पैमाने पर निवेश नहीं करना चाहिये बल्कि उद्योग तथा कृषि दोनों क्षेत्रों में इस प्रकार निवेश किया जाना चाहिये कि दोनों का ही सन्तुलित विकास हो सके।

(4) इस सिद्धान्त के अनुसार अर्थव्यवस्था के घरेलू तथा विदेशी दोनों क्षेत्रों का सन्तुलित विकास किया जाना चाहिये।

(5) यह सिद्धान्त **मांग** की दृष्टि से प्रभावपूर्ण मांग तथा पूरक मांग को उत्पन्न करने तथा **पूर्ति** की दृष्टि से विभिन्न उद्योगों के बीच सन्तुलन बनाये रखने की आवश्यकता पर जोर देता है।

(6) सन्तुलित विकास से बाहरी बचतें प्राप्त होती हैं और बाज़ार का भी विस्तार होता है।

(7) **नर्कसे** ने निजी उद्यमों (Private Enterprises) की सहभागिता (Participation) को अधिक महत्त्व दिया है।

(8) अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं में निर्धनता के दुश्चक्रों को तोड़ने के लिए पूंजी के उचित प्रयोग पर बल दिया है।

■ 7. सन्तुलित विकास के लाभ (Advantages of the Balanced Growth)

सन्तुलित विकास के अल्पविकसित अर्थव्यवस्था को निम्नलिखित लाभ प्राप्त हो सकते हैं:

(1) **विस्तृत बाजार** (Large Size of Market): **प्रो॰नर्कसे** के अनुसार, सन्तुलित विकास के फलस्वरूप देश में पूर्ति के साथ मांग बढ़ जायेगी। इसके फलस्वरूप बाजार का क्षेत्र विस्तृत होगा। बाजार के विस्तार से होने वाले सारे आर्थिक लाभ सन्तुलित विकास के फलस्वरूप प्राप्त होंगे।

(2) **बाहरी बचतें** (External Economies): *सन्तुलित विकास के फलस्वरूप उद्योगों को बाहरी बचतें प्राप्त होंगी।* यह बचतें उद्योगों के बढ़ जाने के कारण बाजार का विस्तार होने के फलस्वरूप प्राप्त होती हैं। यह बचतें दो प्रकार की होती हैं (a) **क्षैतिजीय** (Horizontal Economies) तथा (b) **उदग्रीव बचतें** (Vertical Economies)।

(a) **क्षैतिजीय** बचतें (Horizontal Economies): ये बचतें उस समय प्राप्त होती हैं जब उपभोग पदार्थ बनाने वाले उद्योगों की स्थापना की जाती है। किसी उपभोक्ता वस्तु के उद्योग की स्थापना के फलस्वरूप दूसरे उपभोक्ता वस्तुओं के उद्योगों की स्थापना होने लगती है। इस कारण कई उद्योगों में निवेश करने से सभी उद्योगों के लिए बाजार का विकास हो जाता है तथा सभी को क्षैतिजीय बचतें प्राप्त होती हैं।

(b) **उदग्रीव बचतें** (Vertical Economies): इस प्रकार की बचतें उस समय होती हैं जब पहले **आधारभूत उद्योगों** (Basic Industries) का विकास किया जाता है। इसके कारण कम महत्त्वपूर्ण उद्योगों का विकास अपने आप ही होने लगता है। इस *प्रकार के विकास से प्राप्त बचतों को उदग्रीव बचतें कहा जाता है।*

(3) **श्रम का अधिक उत्तम विभाजन** (Better Division of Labour): सन्तुलित विकास के फलस्वरूप उत्पादन का पैमाना बढ़ जाता है। श्रम का अधिक अच्छा विभाजन होने लगता है। इसलिए यह जरूरी है कि अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं का सन्तुलित विकास किया जाये। इससे उत्पादन प्रणाली का अच्छा और अधिक प्रयोग किया जा सकेगा। इसके फलस्वरूप नये आविष्कारों को प्रोत्साहन मिलेगा।

(4) **पूंजी का उचित प्रयोग** (Better Use of Capital): सन्तुलित विकास के फलस्वरूप पूंजी का अधिक उचित प्रयोग सम्भव होगा। इसके फलस्वरूप देश का आर्थिक विकास अधिक तीव्र गति से होगा। देश में बचत को प्रोत्साहन मिलेगा। विदेशी पूंजी का उचित प्रयोग किया जा सकेगा।

(5) **विकास की तीव्र गति** (Rapid Rate of Development): इस सिद्धान्त के अनुसार देश के सारे क्षेत्रों जैसे कृषि, *उद्योग सामाजिक उपरि लागत अर्थात् सड़कों, बिजली, सिंचाई, मानवीय पूंजी, विदेशी व्यापार और आन्तरिक व्यापार आदि का* सन्तुलित विकास किया जाना चाहिए। इस विधि के फलस्वरूप विकास में तीव्र गति से वृद्धि होती है। कृषि और उद्योगों में सन्तुलन स्थापित होता है।

(6) **निजी उद्यम को प्रोत्साहन** (Encouragement to Private Enterprises): **प्रो॰ नर्कसे** के सन्तुलित विकास की व्याख्या में निजी उद्यमी प्रणाली को अधिक महत्त्व दिया है। जब देश के सभी क्षेत्रों का आर्थिक विकास होगा तो निजी उद्यमियों का महत्त्व बढ़ जायेगा। वे देश के आर्थिक विकास में अधिक योगदान दे सकेंगे। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि सन्तुलित विकास की धारणा में सरकार को कोई महत्त्व नहीं दिया गया है।

(7) **निर्धनता के दुश्चक्र को तोड़ना** (Breaking of Vicious Circle of Poverty): **प्रो॰ नर्कसे** के सन्तुलित विकास के सिद्धान्त के अनुसार निवेश करने से एक ही बार कई उद्योगों की स्थापना हो सकेगी। प्रत्येक उद्योग दूसरी वस्तुओं के उद्योगों की मांग *को बढ़ाने में सहायक होगा। इस तरह* **'से'** *(Say)* **के बाजार नियम** *की धारणा कि* ***''पूर्ति अपनी मांग स्वयं ही उत्पन्न कर लेती है।''*** ठीक सिद्ध होगी इसलिए **नर्कसे** का यह विचार है कि **यदि समस्त अर्थव्यवस्था का सन्तुलित विकास किया जाये तो निर्धनता का दुश्चक्र तोड़ने में मदद मिल सकती है।**

(8) अन्तर्राष्ट्रीय विशिष्टीकरण को प्रोत्साहन (Encouragement to International Specialisation): **प्रो० नर्कसे** के अनुसार दीर्घकाल में अन्तर्राष्ट्रीय विशिष्टीकरण बाजार के आकार पर निर्भर करता है। सन्तुलित विकास के कारण बाजार के आकार और उत्पादकता दोनों में वृद्धि होगी, जिसके फलस्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय विशिष्टीकरण में भी वृद्धि होगी। सभी देशों को इसके लाभ प्राप्त होंगे।

(9) सामाजिक उपरि लागत का विकास (Development of Social Overhead Costs): सन्तुलित विकास का एक लाभ यह भी है कि इसके फलस्वरूप सामाजिक उपरि लागत जैसे: यातायात के साधनों, बिजली, सिंचाई आदि का भी विकास होगा। इसका कारण यह है कि अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में निवेश करना तभी लाभप्रद होगा जब देश में यातायात तथा शक्ति के साधन मौजूद होंगे। इसलिए सरकार को सामाजिक उपरि लागत का विकास करना पड़ेगा।

संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि सन्तुलित विकास का सिद्धान्त इस बात पर निर्भर करता है कि निवेश कई क्षेत्रों में एक साथ किया जाना चाहिए, क्योंकि अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्र एक दूसरे पर निर्भर करते हैं।

■ 8. सन्तुलित विकास के सिद्धान्त की आलोचना

(Criticism of the Theory of Balanced Growth)

सन्तुलित विकास के सिद्धान्त की कुछ अर्थशास्त्रियों जैसे **फ्लेमिंग** (Fleming), **सिंगर** (Singer), **हिरशमैन** (Hirschman), **कुरीहारा** (Kurihara) आदि ने काफी आलोचनाएं की हैं। सन्तुलित विकास की मुख्य आलोचनाएं निम्नलिखित हैं:

(1) अवास्तविक या साधनों की कमी की अवहेलना (Unrealistic or Ignores Scarcity of Resources): **प्रो० सिंगर, फ्लेमिंग, हिरशमैन,** आदि के अनुसार सन्तुलित विकास की धारणा एक अवास्तविक धारणा है। यह धारणा एक सिद्धान्त के रूप में तो उचित है परन्तु इसे वास्तव में लागू करना कठिन है। इस धारणा के अनुसार एक अल्पविकसित देश को आर्थिक विकास के लिए कई क्षेत्रों में एक साथ निवेश करना चाहिए। परन्तु यह तब ही हो सकता है जब देश में काफी पूंजी और कुशल श्रमिक उपलब्ध हों। अल्पविकसित देशों में इन दोनों की कमी होती है। इसलिए **प्रो० सिंगर** का यह विचार है कि, **"यदि एक अल्पविकसित देश इस सिद्धान्त के अनुसार निवेश करने में सफल हो जाता है तो यह अल्पविकसित ही नहीं कहा जा सकता।"** वास्तव में, सन्तुलित विकास के सिद्धान्त का यह सुझाव तो उचित है कि कई उद्योगों में एक साथ निवेश किया जाना चाहिए, परन्तु इसे व्यावहारिक रूप में लागू करना कठिन है। **सिंगर** ने ठीक ही कहा है कि अल्पविकसित के लिए **'बड़ा सोचो'** (Think Big) की सलाह देना तो अच्छा है परन्तु **'बड़ा काम करो'** (Act Big) की सलाह देना बेवकूफी है। ('Think Big' is a sound advice to underdeveloped countries but 'Act big' is unwise counsel.- **Singer**) इसका कारण यह है कि इतना अधिक निवेश करने के लिए बहुत अधिक साधनों की आवश्यकता है जबकि अल्पविकसित देशों में विकास के लिए उपयुक्त साधनों की कमी पाई जाती है।

(2) आयोजन की आवश्यकता की अवहेलना (Ignores the need of Planning): सन्तुलित विकास सिद्धान्त के अनुसार अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में एक साथ निवेश करना आवश्यक है। परन्तु **प्रो० नर्कसे** ने इस कार्य के लिए **आयोजन** (Planning) तथा सरकार के योगदान को उचित महत्त्व नहीं दिया है। वास्तव में, एक केन्द्रीय योजना अधिकारी तथा सरकार के सहयोग के बिना इतना अधिक निवेश उचित प्रकार से करना सम्भव नहीं होगा। अतएव सन्तुलित विकास निजी क्षेत्र पर नहीं छोड़ा जा सकता। यह योजनात्मक अर्थव्यवस्था में ही सम्भव हो सकता है।

(3) बाहरी हानियां (External Diseconomies): सन्तुलित विकास के सिद्धान्त के अनुसार एक उद्योग के विस्तार के फलस्वरूप दूसरे उद्योग की वस्तुओं की मांग और इस उद्योग को **बाहरी बचतें** (External Economies) प्राप्त होंगी। परन्तु **फ्लेमिंग** ने इस धारणा की आलोचना करते हुए कहा है कि एक उद्योग के विस्तार के फलस्वरूप उत्पादन के साधनों की मांग बढ़ेगी। जिसके कारण उत्पादन लागत बढ़ जायेगी। उत्पादन लागत बढ़ने के परिणामस्वरूप वस्तुओं की कीमतें बढ़ेंगी, उनकी मांग बढ़ने की अपेक्षा कम हो जायेगी तथा उद्योगों को बाहरी बचतों के स्थान पर **बाहरी हानियां** (External Diseconomies) उठानी पड़ेंगी।

(4) प्रारम्भिक अवस्था से विकास (Development from a Scratch): सन्तुलित विकास का सिद्धान्त इस धारणा को मान कर चलता है कि अल्पविकसित देश बिल्कुल प्रारम्भिक अवस्था से ही विकास शुरू करते हैं। परन्तु यह वास्तव में ठीक नहीं हैं। प्रत्येक अल्पविकसित देश में कोई न कोई विकास योजना अवश्य लागू रहती है। इन आर्थिक योजनाओं में निवेश किया जाता है, परन्तु

ये योजनाएं **असन्तुलित** (Unbalanced) होती हैं। यदि सन्तुलित विकास के सिद्धान्त के अनुसार, निवेश किया जाये तो असन्तुलन और बढ़ जायेगा इसका कारण यह है कि यदि सन्तुलित विकास के सिद्धान्त के अनुसार, सभी क्षेत्रों में एक समान निवेश किया जायेगा तो जिन क्षेत्रों में पहले से ही निवेश किया जा चुका है उनमें दूसरे क्षेत्रों की अपेक्षा निवेश अधिक हो जायेगा। इस प्रकार विभिन्न क्षेत्रों में निवेश का अन्तर कम होने की अपेक्षा और अधिक बढ़ जाएगा। इसलिए यह सिद्धान्त उचित नहीं है।

(5) आर्थिक विकास का सिद्धान्त नहीं है (Not a Theory of Economic Development): **प्रो० हिरशमैन** के अनुसार, सन्तुलित विकास का सिद्धान्त आर्थिक विकास का सिद्धान्त नहीं है। इस सिद्धान्त के अनुसार अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में पाए जाने वाले पिछड़े हुए क्षेत्रों पर एक आधुनिक औद्योगिक क्षेत्र लाद दिया जाएगा। **प्रो. हिरशमैन** के अनुसार, ''**यह विकास नहीं है और यह किसी पुरानी चीज पर नई चीज का आरोपित किया जाना भी नहीं है। यह तो पूर्ण रूप से विकास का एक दोहरा प्रारूप है।**'' (This is not growth, it is not even grafting of something new over something old; it is a perfectly dualistic pattern of development.- **Albert Hirshman**)इस प्रकार एक **दोहरी अर्थव्यवस्था** (Dual Economy) का जन्म होगा। परन्तु इसे आर्थिक विकास नहीं कहा जा सकता क्योंकि आर्थिक विकास में एक स्थिर तथा पिछड़ी हुई अर्थव्यवस्था को एक नई तथा आधुनिक अर्थव्यवस्था में बदला जाता है।

(6) विकसित तथा अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में एक ही नीति का प्रयोग (Same Policy for Developed and Under-developed Countries): सन्तुलित विकास के सिद्धान्त की इसलिए भी आलोचना की जाती है कि इस सिद्धान्त ने विकसित देशों के लिए उपयुक्त नीति को अल्पविकसित देशों में लागू करने का प्रयत्न किया है। **प्रो० सिंगर** के अनुसार, "**सन्तुलित विकास का सिद्धान्त गलत नहीं बल्कि इस दृष्टि से असामयिक है कि दुश्चक्र को तोड़ने की बजाय यह निरन्तर विकास की अवस्था पर लागू होता है।**'' सन्तुलित विकास के लिए बहुत अधिक साधनों की आवश्यकता है। ये साधन विकसित देशों में तो मिल सकते हैं, परन्तु अल्पविकसित देशों में ये साधन बहुत कम मिलते हैं। विकसित देशों में उद्योग-धन्धों, मशीनों, उद्योगों का प्रबन्ध, उपभोग की पहले जैसी आदतें बने रहने पर भी मांग में कमी होने के कारण मन्दी की अवस्था उत्पन्न हो जाती है परन्तु अल्पविकसित देशों में मन्दी की अवस्था, मांग की कमी के कारण नहीं, बल्कि साधनों की कमी के कारण होती है। **प्रो० हिरशमैन** ने ठीक ही कहा है कि, ''**सन्तुलित विकास का सिद्धान्त, अल्पविकसितता के लिए, उस इलाज को लागू किया जाना है जो वास्तव में अल्परोजगार के लिए उपयोगी है।**''

(7) इतिहास के द्वारा समर्थित नहीं (Not Supported by History): यदि हम अमेरिका, इंग्लैंड, जापान आदि देशों के आर्थिक इतिहास का अध्ययन करें तो हम इस निष्कर्ष पर पहुंचेंगे कि इन देशों में आर्थिक विकास असन्तुलित ढंग से हुआ है। उदाहरण के लिए, इंग्लैंड में सबसे पहले कपड़ा उद्योग और जापान में लोहे तथा इस्पात उद्योग का विकास किया गया। इन उद्योगों के विकास के कारण दूसरे उद्योगों का विकास हुआ। इसलिए इतिहास इस बात का साक्षी है कि किसी देश को अपना आर्थिक विकास करने के लिए एक ही साथ सारे आर्थिक क्षेत्रों जैसे कृषि, उद्योग, यातायात आदि का सन्तुलित विकास करना आवश्यक नहीं है। **पाल स्ट्रीटन** के अनुसार, ''**ऐतिहासिक दृष्टि से यह सन्तुलित विकास नहीं था बल्कि दुर्लभतायें तथा बाधायें थीं जिन्होंने अविष्कारों के लिये प्रेरणा प्रदान की तथा इंग्लैण्ड और संसार की अर्थव्यवस्थाओं में क्रान्ति ला दी और इन आविष्कारों ने फिर दुर्लभतायें उत्पन्न कीं**''

(8) उत्पादन के साधनों की दुर्लभता (Scarcity of Factors of Production): सन्तुलित विकास के सिद्धान्त के अनुसार आर्थिक विकास के लिए कई प्रकार के उद्योगों की स्थापना की जानी चाहिए। यह तभी सम्भव हो सकता है जब उत्पादन के साधन जैसे पूंजी, श्रम, भूमि आदि काफी मात्रा में मिलते हों। परन्तु जब उत्पादन के ये साधन कम मात्रा में मिलते हैं तो उनको प्राप्त करने के लिए उद्योगों में परस्पर प्रतियोगिता बढ़ जाती है। इसके फलस्वरूप इनकी कीमतें बढ़ जाती हैं। **प्रो० फ्लेमिंग** के अनुसार, ''**सन्तुलित विकास का सिद्धान्त यह मानता है कि उद्योगों में पूरकता** (Complementarity) **का सम्बन्ध है। परन्तु उत्पादन के साधनों में होने वाली कमी के कारण यह सम्बन्ध प्रतियोगिता में परिवर्तित हो जाता है।**'' इस प्रकार अल्पविकसित देशों का विकास होना कठिन हो जाता है।

(9) कीमतों में वृद्धि (Inflation): कई अर्थशास्त्रियों के अनुसार यदि अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास के लिए सन्तुलित विकास की धारणा को लागू किया जायेगा तो उत्पादन के साधनों की कमी होने के कारण लागत मूल्य बढ़ जायेगा। इसके फलस्वरूप कीमतों में काफी वृद्धि होगी। कीमतों में होने वाली यह वृद्धि मुद्रा स्फीति की ऐसी अवस्था धारण कर लेती है, जिस पर नियन्त्रण करना कठिन हो जाता है। इसका आर्थिक विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

(10) तुलनात्मक लागत के सिद्धान्त के विरुद्ध (Against the Theory of Comparative Costs): अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के तुलनात्मक लागत के सिद्धान्त के अनुसार किसी देश को केवल उन वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन करना चाहिए जिनमें उसको दूसरी वस्तुओं के उत्पादन से अधिक तुलनात्मक लाभ होता है, तथा उन वस्तुओं का निर्यात करके अपनी आवश्यकता की दूसरी वस्तुओं का विदेशों से आयात कर लेना चाहिए। इस धारणा के अनुसार प्रत्येक देश में कुछ उद्योगों का अधिक विस्तार होगा तथा कुछ उद्योगों की स्थापना ही नहीं की जायेगी। अतएव यदि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के तुलनात्मक लागत सिद्धान्त के अनुसार उद्योगों को स्थापित करने की योजना बनाई जाये तो सन्तुलित विकास सम्भव नहीं हो सकेगा।

(11) उद्योगों के पूरक होने की अवास्तविक मान्यता (Unrealistic Assumption of Complementarity of Industries): सन्तुलित विकास के सिद्धान्त की यह मान्यता वास्तविक नहीं है कि अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में विभिन्न उद्योग एक दूसरे के परस्पर परिपूरक होते हैं। वास्तव में, विकास की प्रारम्भिक अवस्था में विभिन्न उद्योग एक-दूसरे के पूरक न होकर प्रतियोगी होते हैं। इसके फलस्वरूप उत्पादन लागत बढ़ने, आर्थिक प्रेरणाओं के घटने तथा अपव्ययों के अधिक होने की सम्भावना बनी रहती है। **फ्लेमिंग के अनुसार, "सन्तुलित विकास का सिद्धान्त यह मानकर चलता है कि उद्योगों के बीच सम्बन्ध अधिकांशतः पूरक होते हैं। परन्तु व्यवहार में साधनों की पूर्ति की सीमितता इस सम्बन्ध को अधिकांश रूप से प्रतियोगी बना देती है।"**

संक्षेप में, विकास की वह नीति अधिक उचित होगी जिसके अनुसार उपलब्ध साधनों का केवल उन योजनाओं में निवेश किया जाये जो अर्थव्यवस्था को बाजार तथा मांग में होने वाले विस्तार के द्वारा अधिक लोचदार तथा विस्तार के अधिक योग्य बना सके। **सिंगर** ने ठीक ही कहा है, **''अल्पविकसित देशों की परिस्थितियों के लिये सामने से प्रहार की अपेक्षा छापामार युद्ध कला अधिक उपयोगी है।''** (Guerilla tactics are more suitable for the circumstances of underdeveloped countries than a frontal attack. - **Singer**)

प्रश्न (QUESTIONS)

■ I. वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

सभी प्रश्न अनिवार्य हैं (Attempt all the questions)

1. सन्तुलित विकास के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था (नर्कसे ने, सिंगर ने)
2. सन्तुलित विकास के अर्थ में सन्तुलन है (सभी क्षेत्रों में, दो क्षेत्रों में)
3. रोडान के अनुसार अविभाज्यताओं के प्रकार हैं (तीन, चार)
4. सन्तुलित विकास का सिद्धान्त बाजार के छोटे आकार को किसका मुख्य कारण मानता है (अल्पविकास का, विकास का)
5. सन्तुलित विकास किसके लिए उपयुक्त है (अल्परोजगार, पूर्ण रोजगार)
6. सन्तुलित विकास के फलस्वरूप बाहरी बचतें (उपलब्ध होंगी, नहीं उपलब्ध होंगी)

7. नर्कसे के अनुसार सन्तुलित विकास के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए, निजी उद्यमियों की तुलना में, सरकार का अंशदान है (सीमित, असीमित)
8. लुईस के अनुसार सन्तुलित विकास की रणनीति अपनाई जानी चाहिए (केवल घरेलू क्षेत्र में, केवल विदेशी क्षेत्र में)
9. सन्तुलित विकास के सिद्धान्त की आलोचना किसने की है (हिरशमेन ने, आर्थर लुईस ने) (M.D.U. 2007, 2008)

उत्तर (Answer): (1) नर्कसे ने, (2) सभी क्षेत्रों में, (3) तीन, (4) अल्पविकास का, (5) अल्परोजगार, (6) उपलब्ध होंगी, (7) सीमित, (8) केवल घरेलू क्षेत्र में, (9) हिरशमेन ने।

■ II. लघु/परिभाषा रूपी प्रश्न (Short /Definitional Type Questions)

1. What is meant by balanced growth?
   सन्तुलित विकास से क्या अभिप्राय है?
2. Write a note on complementarity of demand.
   मांग की पूरकता पर एक टिप्पणी लिखें।
3. Mention two main advantages of Balanced Growth.
   सन्तुलित विकास के दो मुख्य लाभों का वर्णन करें।
   Or
   Attempt two arguments in favour of Balanced Growth.
   सन्तुलित विकास के पक्ष में दो तर्क दें।
4. Mention two criticisms of Balanced Growth.
   सन्तुलित विकास की दो आलोचनायें दीजिए।
5. Write short note on Rodan's explanation of Balanced growth or on indivisibilities.
   'रोडान' के सन्तुलित विकास या अविभाज्यताओं के सिद्धान्त पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखें।
6. Write a note on Lewis's explanation of balanced growth.
   सन्तुलित विकास के 'लुईस' के सिद्धान्त पर टिप्पणी लिखें।
7. Attempt two characteristics of theory of balanced growth.
   सन्तुलित विकास के सिद्धान्त की दो विशेषताएं लिखिये।
8. Write a short note on Role of government in balanced growth.
   सन्तुलित विकास में सरकार की भूमिका पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखें।

■ III. निबन्ध रूपी प्रश्न (Essay Type Questions)

1. Examine the theory of balanced growth. Does this theory suit an underdeveloped economy?
   सन्तुलित विकास के सिद्धान्त की व्याख्या करें। क्या यह सिद्धान्त एक अल्पविकसित अर्थव्यवस्था के अनुकूल है?
2. What is the theory of balanced growth? What are its shortcomings as a strategy of the development of an underdeveloped country?
   सन्तुलित विकास के सिद्धान्त से क्या अभिप्राय है? एक अल्पविकसित देश के विकास की रणनीति के रूप में इसकी कौन-सी कमियां हैं?

3. Explain the theory of balanced growth. How far is it suitable for India?
   सन्तुलित विकास के सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए। यह भारत के लिए कहां तक उपयुक्त है?
   (K.U. 2006, M.D.U. 2007)
4. Discuss balanced growth strategy of economic development.
   आर्थिक विकास की सन्तुलित विकास व्यूह रचना की विवेचना करें।
5. Explain Nurkse's theory of balanced growth.
   'नर्कसे' के सन्तुलित विकास के सिद्धान्त की व्याख्या करें।

7

असन्तुलित विकास
(UNBALANCED GROWTH)

■ 1. भूमिका (Introduction)

अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास के लिये कुछ अर्थशास्त्रियों जैसे **प्रो० हिरशमैन** (Hirschman), **रोस्टोव** (W.W.Rostow), **फ्लेमिंग** (Fleming), **सिंगर** (Singer) आदि ने असन्तुलित विकास का सिद्धान्त विकसित किया है। असन्तुलित विकास से अभिप्राय है कि अल्पविकसित अर्थव्यवस्था को अपना विकास करने के लिये सभी क्षेत्रों में एक साथ निवेश न करके केवल कुछ चुने हुये महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में निवेश किया जाना चाहिये। इसका कारण यह है कि एक तो अल्पविकसित देशों के पास इतने साधन नहीं होते कि सभी क्षेत्रों में एक साथ निवेश किया जा सके दूसरे, यदि अर्थव्यवस्था का जानबूझकर असन्तुलन किया जाये तो यह आर्थिक विकास का सबसे अच्छा तरीका है। **प्रो० हिरशमैन** के अनुसार, ''**एक पूर्व निर्धारित योजना के अनुसार अर्थव्यवस्था का जानबूझ कर असन्तुलित किया जाना आर्थिक विकास करने का सबसे अच्छा तरीका है।**'' (A deliberate unbalancing of the economy in accordance with the predestined strategy is the best way to achieve economic growth. – **Hirschman**)

■ 2. असन्तुलित विकास का अर्थ (Meaning of Unbalanced Growth)

असन्तुलित विकास से अभिप्राय है कि अर्थव्यवस्था के केवल कुछ चुने हुये उद्योगों या क्षेत्रों में निवेश किया जाये। अर्थात् सभी क्षेत्रों में एक साथ निवेश नहीं किया जाना चाहिये। अर्थव्यवस्था के केवल कुछ चुने हुये क्षेत्रों में निवेश किये जाने से कच्चे माल की कमी, बिजली की कमी, कई प्रकार की बाधाओं जैसे- कीमत वृद्धि आदि के रूप में असन्तुलन उत्पन्न होगा तथा निवेश के नये-नये अवसर उत्पन्न होंगे। इनमें निवेश करने से अन्य क्षेत्रों में असन्तुलन होगा तथा निवेश के अन्य नये अवसर उत्पन्न होंगे। इस प्रकार अर्थव्यवस्था विकास के मार्ग की ओर अग्रसर होती रहेगी। अतएव इस सिद्धान्त के अनुसार आर्थिक विकास असन्तुलनों की एक शृंखला के द्वारा होता है। इसलिये हमें इन असन्तुलनों को बनाये रखना चाहिये। यदि अर्थव्यवस्था के कुछ क्षेत्रों में निवेश किया जाये तो उनसे सम्बन्धित उद्योगों का भी विकास होगा और उनमें निवेश बढ़ेगा। **रोस्टोव** के अनुसार, ऐतिहासिक दृष्टिकोण से विकसित देशों की आर्थिक संवृद्धि इसी प्रकार हुई है। यदि अमेरिका की अर्थव्यवस्था की 1850 तथा 1950 की स्थिति की तुलना की जाये तो ज्ञात होगा कि कई क्षेत्रों में विकास हुआ है परन्तु सभी क्षेत्रों में समान दर से विकास नहीं हुआ है। पहले कुछ क्षेत्रों में विकास हुआ जिसके फलस्वरूप जो असन्तुलन उत्पन्न हुआ उसे ठीक करने के लिये अन्य क्षेत्रों का विकास हुआ। इस प्रकार, असन्तुलनों की शृंखला के फलस्वरूप अर्थव्यवस्था सन्तुलित विकास से असन्तुलित विकास की ओर अग्रसर होती रही।

■ 3. परिभाषा (Definition)

टोडारो के अनुसार, ''**असन्तुलित विकास से अभिप्राय है अर्थव्यवस्था में जानबूझ कर महत्त्वपूर्ण असन्तुलन उत्पन्न करना। ये असन्तुलन अनिरन्तर गति उत्पन्न करते हैं जो अर्थव्यवस्था को बढ़ती हुई विकास वक्र पर ले जाते हैं।**'' (Unbalanced growth implies imbalances in the economy. These imbalances constitute discontinuous movements, which push the economy on the rising growth curve. – **Todaro**)

हिरशमैन के शब्दों में, "**असन्तुलित विकास से अभिप्राय है कि सामान्यता, विकास नीति के असन्तुलनों को समाप्त करने की बजाय उन्हें जीवित रखना चाहिये। एक प्रतियोगितात्मक अर्थव्यवस्था में लाभ तथा हानियां इस प्रकार के असन्तुलनों के लक्षण हैं। यदि अर्थव्यवस्था को आगे बढ़ते रहना है तो विकास नीति का काम तनाव, गैर आनुपातिकाओं तथा असन्तुलनों को बनाये रखना होगा।**" (In general, development policy must keep alive rather than eliminate the disequilibrium of which profits and losses are symptoms in a competitive economy. If the economy is to be kept moving ahead, the task of development policy is to maintain tensions, disproportions and disequilibrium. – **Hirschman**)

■ 4. असन्तुलित विकास की व्याख्या (Explanation of the Theory of Unbalanced Growth)

प्रो॰ **हिरशमैन** ने अपनी पुस्तक 'Strategies of Economic Development' में इस सिद्धान्त की व्याख्या करते हुए कहा है कि अर्थव्यवस्था को सुनिश्चित रूप से असन्तुलित बनाना ही आर्थिक विकास का सबसे अच्छा तरीका है। अल्पविकसित देशों में उत्पादन के साधनों की कमी रहती है। इसलिए पहले केवल कुछ महत्त्वपूर्ण उद्योगों को ही स्थापित करना चाहिये। इसके फलस्वरूप निवेश के नये अवसर मुख्य रूप से दो कारणों से उत्पन्न होंगे:

(i) बाहरी बचतें (External Economies): **प्रो॰ हिरशमैन** के अनुसार, असन्तुलित विकास के फलस्वरूप बाहरी बचतें प्राप्त होती हैं। उदाहरण के लिए, उद्योग 'A' का विकास होने के फलस्वरूप इस प्रकार की **बाहरी बचतें** (External Economies) प्राप्त होंगी जिनके कारण उद्योग 'B' का विकास सम्भव हो सकेगा। इसी प्रकार उद्योग 'B' के विकास के फलस्वरूप जो बाहरी बचतें होंगी वे उद्योग 'C' के लिए उपयुक्त होंगी। इस प्रकार विकास की शृंखला निरन्तर चलती रहेगी। विकास के प्रत्येक पग पर स्थापित नया उद्योग, एक ओर पिछले विस्तार के फलस्वरूप उत्पन्न बाहरी बचतों का लाभ उठाता है और दूसरी ओर किसी दूसरे उद्योग के लिए स्वयं ही बाहरी बचतें उत्पन्न करता है। इस प्रकार विकास की प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है।

(ii) पूरकताएं (Complementarities): **तकनीकी पूरकता** (Technical Complementarity) से यह अभिप्राय है कि वस्तु 'A' के उत्पादन में वृद्धि करने के फलस्वरूप वस्तु 'B' की सीमान्त लागत कम हो जाएगी अथवा उसकी मांग बढ़ जाएगी। असन्तुलित विकास के कारण किसी एक उद्योग के विकास के फलस्वरूप दूसरे उद्योग को तकनीकी पूरकता प्राप्त होगी अर्थात् उसके उत्पादन की मांग में वृद्धि होगी तथा उसके विकास को प्रोत्साहन प्राप्त होगा। **प्रो॰ हिरशमैन** के अनुसार, असन्तुलित निवेश के फलस्वरूप बाहरी बचतों तथा तकनीकी पूरकता के कारण जिस प्रकार दूसरे क्षेत्रों में निवेश को प्रोत्साहन मिलता है उसके कारण आर्थिक विकास की दर तीव्र हो जाती है।

इस तरह सारी अर्थव्यवस्था का तेजी से विकास हो सकेगा। प्रो॰ **हिरशमैन** के अनुसार, "**आर्थिक विकास असन्तुलित वृद्धि के पक्ष का अनुसरण करता है। इसके अनुसार तकनीकी प्रेरणाओं तथा अनिवार्यताओं के फलस्वरूप ही अन्त में सन्तुलन की स्थापना की जाती है। आर्थिक विकास का मार्ग अव्यवस्थित होता है और परेशानियों, कुशलता, सुविधाओं के अभाव तथा कठिनाइयों से भरपूर है।**" प्रो॰ हिरशमैन के अनुसार, निवेश को दो भागों में बांटा जा सकता है:

(a) सामाजिक उपरि पूंजी (Social Overhead Capital or SOC): **सामाजिक उपरि पूंजी से अभिप्राय उन आधारभूत सेवाओं से है जिनके बिना प्राथमिक, माध्यमिक तथा टरश्यरी उत्पादक क्रियाएं सफल नहीं हो सकती।** (Social overhead capital is deemed as comprising those basic devices without which primary, secondary and teritary activities can not function.) । इनके अन्तर्गत सड़कें, सिंचाई, बिजली, परिवहन के साधन, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि पर किए जाने वाले निवेश को शामिल किया जाता है। सामाजिक उपरि पूंजी का विकास प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओं में निजी निवेश को प्रोत्साहित करेगा।

(b) प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाएं (Direct Productive Activities or DPA): **प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाएँ वे क्रियाएं हैं जिनमें किए गए निवेश के फलस्वरूप अन्तिम उत्पादन में वृद्धि होती है।** उदाहरण के लिए, उद्योगों तथा कृषि आदि में किया गया निवेश प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओं के अन्तर्गत आता है।

(iii) आदर्श स्थिति की प्राप्ति (Obtaining ideal Situation): असन्तुलित विकास के सिद्धान्त को लागू करने से विकास कार्यक्रमों को तीव्र गति प्राप्त होती है। हिरशमैन के अनुसार, ''**एक आदर्श स्थिति तब पैदा होती है जब एक असन्तुलन ऐसे विकास को पैदा करता है जिस के परिणामस्वरूप फिर उसी प्रकार का असन्तुलन उत्पन्न होता है और यह क्रम निरन्तर चलता रहता है।**'' (An ideal situation is obtained if one disequilibrium calls forth a development move which in turn leads to similar disequilibrium and so on ad infinitum.- **Hirschman**) **प्रो. सिंगर** भी असन्तुलित विकास की इस नीति का समर्थन करते हैं।

■ 5. असन्तुलन प्रक्रिया (The Unbalancing Process)

अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं में साधनों की कमी होने के कारण **सामाजिक उपरि पूंजी** (SOC) **तथा प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओं** (DPA) को एक साथ नहीं बढ़ाया जा सकता। इन देशों में या तो सामाजिक उपरि पूंजी को बढ़ाया जा सकता है या प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओं को बढ़ाया जा सकता है।

अतएव **प्रो० हिरशमैन** के अनुसार असन्तुलन दो प्रकार का हो सकता है:

(1) सामाजिक उपरि पूंजी द्वारा असन्तुलन या SOC की अतिरिक्त क्षमता द्वारा विकास

(Unbalancing the Economy with SOC or Development Via Excess Capacity of SOC)

प्रो० हिरशमैन के अनुसार यदि **सामाजिक उपरि पूंजी** (SOC) को बढ़ा दिया जाएगा तो बाहरी बचतें उत्पन्न होंगी। इसके फलस्वरूप **प्रत्यक्ष उत्पादन क्रियाओं** (DPA) में भी निवेश को प्रोत्साहन मिलेगा। उदाहरण के लिए, सस्ती बिजली से लघु तथा कुटीर उद्योगों का विकास होगा। सिंचाई की सुविधाओं का विकास होने से कृषि का विकास हो सकेगा। इस प्रकार सामाजिक उपरि पूंजी (SOC) में पर्याप्त निवेश द्वारा असन्तुलन उत्पन्न कर दिया जाता है तो परिणाम स्वरूप उत्पादक क्रियाओं में निवेश अधिक होने लगता है तथा अर्थव्यवस्था का तीव्र गति से विकास होने लगता है। हिरशमैन ने इस प्रक्रिया को SOC की अतिरिक्त क्षमता के माध्यम से विकास (Development Via Excess Capacity of SOC) कहा है। आर्थिक विकास की **रणनीति** (Strategy) का तरीका यह होना चाहिये कि SOC को बढ़ावा देकर अर्थव्यवस्था को असन्तुलित बनाया जाये ताकि आगे चलकर DPA में निवेशों को प्रोत्साहन (Incentive) मिल सके। SOC के बढ़ाने से **बाहरी बचतें** प्राप्त होती हैं तथा उत्पादन लागत कम हो जाती है। इसके फलस्वरूप DPA अर्थात् कृषि, उद्योग तथा व्यापार को अप्रत्यक्ष रूप से सहायता प्राप्त होती है। **हिरशमैन** ने स्वयं कहा है कि, **"सामाजिक उपरिव्यय मदों में निवेश का समर्थन इसलिये नहीं किया जाता कि इससे उत्पाद पर कोई प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है यह तो वास्तव में प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओं (DPA) को आगे बढ़ाने का एक निमन्त्रण है। अतएव् DPA निवेश के लिये SOC निवेश का होना एक आवश्यक शर्त है।**'' (Investment in SOC is advocated not because of its direct effect on final output but because it permits and in fact an invitation to DPA to come in some SOC. Thus SOC investment is required as a pre-requisite of DPA. – **Hirschman**)

(2) प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओं द्वारा असन्तुलन या SOC की कमी के द्वारा विकास

(Unbalancing the Economy with DPA Or Development Via Shortage of SOC)

अर्थव्यवस्था में असन्तुलन प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओं में पहले निवेश करके भी पैदा किया जा सकता है। यदि DPA में पहले निवेश किया जाता है तो सामाजिक ऊपरी सुविधाओं के अभाव में उत्पादन की लागतें बढ़ जायेंगी। इसके फलस्वरूप राजनीतिक दबाव बढ़ेगा तथा SOC में भी निवेश करना पड़ेगा। इस प्रक्रिया को '**S O C में कमी के माध्यम से विकास**' (Development Via shortage of SOC) कहा जायेगा।

संक्षेप में, **हिरशमैन** के अनुसार, अर्थव्यवस्था को असन्तुलित करके ही विकास किया जा सकता है यह तब ही सम्भव होता है जब **(i) सामाजिक उपरि पूंजी** (Social Overhead Capital SOC) में या **(ii) प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओं** (Direct Productive Activities; DPA) में निवेश किया जाये। पहली प्रक्रिया में बाहरी बचतों के फलस्वरूप होने वाली **लाभ आशंसाओं**

(Profit Expectations) के कारण SOC से DPA में निवेश की वृद्धि होती है तथा दूसरी प्रक्रिया में **राजनीतिक दबाव** (Political Pressure) के कारण DPA से SOC में निवेश की वृद्धि होती है। हिरशमैन के अनुसार SOC होने में पहले किये जाने वाली निवेश की प्रक्रिया निरन्तर तथा बाधा रहित होती है। यह स्वयं बढ़ावा देने वाली (Self Propelling) होती है। इसके विपरीत, DPA में पहले किये जाने वाले निवेश की प्रक्रिया में बाधायें उत्पन्न हो सकती हैं क्योंकि इसके फलस्वरूप SOC की कमी होने लगती है तथा जब तक राजनीतिक दबाव प्रभावपूर्ण नहीं होता, SOC के निवेश में वृद्धि नहीं होने पाती।

6. विकास का पथ (Path of Development)

असन्तुलित विकास के पथ को रेखाचित्र नं॰ 1 द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। चित्र नं॰ 1 में OX अक्ष पर SOC में नई पूंजी के निवेश को तथा OY अक्ष पर DPA में नई पूंजी के निवेश को दिखाया गया है। AA,BB,CC, सम उत्पाद वक्र हैं जो SOC तथा DPA की उन विभिन्न मात्राओं को प्रकट कर रही हैं जिनसे किसी विशेष समय में एक समान कुल राष्ट्रीय उत्पादन मिलता है। प्रत्येक ऊंचा वक्र अपने से नीचे वक्र की तुलना में अधिक उत्पादन को प्रकट कर रहा है। विकास के क्रम को या तो SOC में पहले निवेश करके या DPA में पहले निवेश करके स्पष्ट किया जा सकता है।

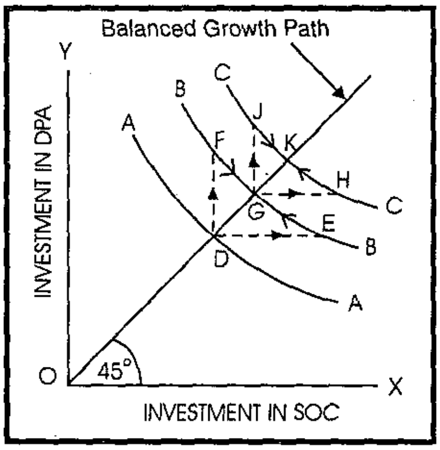

चित्र 1

इसका कारण हिरशमैन ने यह दिया है कि अल्पविकसित देशों में SOC तथा DPA दोनों का विस्तार नहीं किया जा सकता। इसलिए अल्पविकसित देश या तो पहले SOC में निवेश को चुन सकते हैं और असंतुलन पैदा कर सकते हैं या DPA में पहले निवेश करके SOC में असन्तुलन पैदा कर सकते हैं। पहली विधि को SOC की अतिरिक्त क्षमता द्वारा विकास (Development via Excess Capacity of SOC) और दूसरे को **SOC की कमी द्वारा विकास** (Development Via Shortage of SOC) कहा जाता है। इस प्रकार विकास प्रक्रिया की व्याख्या दो प्रकार से की जा सकती है।

(i) SOC की अतिरिक्त क्षमता द्वारा विकास (Development Via Excess Capacity of SOC): इस क्रम में विकास तब संभव होता है जब SOC का यातायात, ऊर्जा आदि में आधारिक संरचना की लागत को कम करता है। यह DPA में निवेश को प्रोत्साहित करता है। यह चित्र 1 से (DPA से SOC तक निवेश) प्रकट होता।:

यदि SOC में पहले निवेश किया जायेगा तो अर्थव्यवस्था विकास के DEGHK क्रम को अपनायेगी। जब निवेश SOC में D से E तक बढ़ेगा तो उनके फलस्वरूप DI A में किये जाने वाले निवेश में D से F तक वृद्धि होगी तथा G बिन्दु पर अर्थव्यवस्था सन्तुलन की स्थिति में होगी। बिन्दु G एक ऊंची समउत्पाद वक्र BB पर है। इसका अर्थ यह हुआ कि अर्थव्यवस्था में उत्पादन की मात्रा में वृद्धि हुई है। यदि SOC में बिन्दु H तक अधिक निवेश किया जायेगा तो DPA में निवेश G से J तक बढ़ेगा तथा सन्तुलन CC वक्र के K बिन्दु पर स्थापित होगा। बिन्दु K एक ऊंची समउत्पाद वक्र CC पर है। यह वक्र उत्पादन के ऊंचे स्तर को प्रकट कर रहा है। इसे SOC की अतिरिक्त क्षमता द्वारा विकास कहा जायेगा।

(ii) SOC की कमी द्वारा विकास (Development Via Shortages of SOC): इस क्रम में विकास तब होता है जब निवेश पहले DPA में किया जाता है। DPA का विस्तार SOC पर दबाव बनाता है। यह चित्र 1 से स्पष्ट हो जाता है।

यदि DPA में पहले निवेश किया जायेगा तो विकास का पथ DFGJK होगा। जब DPA बिन्दु D से F तक बढ़ेगा तो SOC बिन्दु E तक बढ़ेगी तथा सन्तुलन BB वक्र पर G बिन्दु पर स्थापित होगा। सन्तुलन की यह स्थिति अधिक उत्पादन को प्रकट कर रही है। यदि DPA, बिन्दु G से J तक बढ़ेगी तो SOC, G से H तक बढ़ेगा तथा सन्तुलन CC वक्र के K बिन्दु तक निर्धारित होगा। इसे कमियों द्वारा विकास कहा जायेगा। DGK **सन्तुलित विकास के पथ** (Balanced Growth Path) को प्रकट कर रही है।

■ 6.1 अग्रगामी तथा पश्चगामी संयोजन (Forward and Backward Linkages)

प्रो० हिरशमैन के अनुसार, अर्थव्यवस्था में सन्तुलन बनाये रखना आर्थिक विकास के लिये आवश्यक है। परन्तु प्रश्न यह है कि हम किन-किन क्षेत्रों तथा किन परियोजनाओं पर निवेश करें जिनसे उत्पन्न होने वाला असन्तुलन हमें विकास की ओर अधिक तेजी से ले जा सके। इसका निर्णय करने के लिए हमें यह ज्ञात होना चाहिये कि अर्थव्यवस्था के विभिन्न उद्योगों का आपसी संयोजन किस प्रकार का है। अर्थव्यवस्था के विभिन्न उद्योगों में पाए जाने वाले आर्थिक **संयोजन (Linkages)** को दो भागों में बांटा जा सकता है:

(1) **पश्चगामी संयोजन या कच्चे माल से सम्बन्धित प्रभाव** (Backward Linkages or Effects Related to Raw Materials): **पश्चगामी संयोजन प्रारम्भिक अवस्था में निवेश को प्रोत्साहित करती है** (It may encourage investment in earlier stages of production)। किसी उद्योग के विकास के फलस्वरूप उन उद्योगों का भी विकास होता है जो उस उद्योग के लिए कच्चा माल तैयार करते हैं। इसे एक उदाहरण से स्पष्ट किया जा सकता है। एक इस्पात बनाने का कारखाना स्थापित करने से कच्चे लोहे, और कोयले तथा दूसरी वस्तुओं की मांग बढ़ जायेगी। उनका अधिक उत्पादन किया जाने लगेगा। इसे **कच्चे माल से सम्बन्ध प्रभाव या अधोगामी संयोजन** (Backward Linkages) कहा जायेगा।

(2) **अग्रगामी संयोजन या निर्मित माल से सम्बन्धित प्रभाव** (Forward Linkages): **अग्रगामी संयोजन आगामी अवस्थाओं में निवेश को प्रोत्साहित करता है।** (It may encourage production in subsequent stages of production.) जब किसी उद्योग में निर्मित उत्पादन दूसरे उद्योग के कच्चे माल के रूप में प्रयोग में लाया जाता है तो इसे निर्मित माल से संबंधित प्रभाव या अग्रगामी संयोजन कहते हैं। इसको भी एक उदाहरण से स्पष्ट किया जा सकता है। इस्पात के कारखाने खुलने के कारण मशीन बनाने, यन्त्र बनाने और यातायात के सामान बनाने के कारखाने भी खोले जायेंगे। इन कारखानों में इस्पात, कच्चे माल के रूप में प्रयोग होगा। इस प्रभाव को **निर्मित माल सम्बन्धी प्रभाव या अग्रगामी संयोजन** (Forward Linkages) कहा जायेगा। **हिरशमैन** के अनुसार, पहले उन उद्योगों का पता लगाना चाहिये जिनका कुल संयोजन (Total Linkages) प्रभाव अधिकतम हो। अधिकतम संयोजन प्रभाव वाली योजनायें अलग-अलग देशों में अलग-अलग समय पर अलग-अलग हो सकती हैं। परन्तु हिरशमैन के अनुसार लौह तथा इस्पात उद्योग का कुल संयोजन सबसे अधिक होता है। परन्तु हिरशमैन के अनुसार अल्पविकसित देशों में सामान्यतया संयोजन की कमी पाई जाती है। इसलिये इन देशों में **अन्तिम उद्योग पहले** (Last Industries First) स्थापित किये जाने चाहिये। **अन्तिम उद्योगों से अभिप्राय उन उद्योगों से है जिनमें तैयार माल विदेशों से आयात किया जाता है तथा देश में उनका केवल रूपांतरण** (Converting), **पुर्जों का जोड़ना** (Assembling) **तथा उनका मिश्रण** (Mixing) किया जाता है। अन्तिम उद्योगों को **आयात परिवृति उद्योग** (Import Enclave Industries) भी कहा जाता है। इन उद्योगों के उत्पादन की मांग समय के साथ-साथ इतनी बढ़ जाती है कि इनका घरेलू उत्पादन लाभदायक हो जाता है।

■ 7. असन्तुलित विकास के सिद्धान्त की विशेषताएं (Features of the Theory of Unbalanced Growth)

असन्तुलित विकास के सिद्धान्त की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं:

(1) इस सिद्धान्त के अनुसार आर्थिक विकास की दर को तेजी से बढ़ाने के लिए पहले **कुछ महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में निवेश** किया जाना चाहिये।

(2) यह सिद्धान्त **प्रोत्साहन और दबाव** पर आधारित है क्योंकि एक विशेष क्षेत्र में काफी निवेश होने पर दबाव और प्रोत्साहन के कारण दूसरे उद्योगों का अपने आप विकास हो जाता है।

(3) यह सिद्धान्त **बड़े धक्के या प्रबल प्रयास के सिद्धान्त** (Theory of Big Push) को स्वीकार करता है। परन्तु यहाँ धक्के का प्रयोग असन्तुलन उत्पन्न करने के लिये किया जाना चाहिये।

(4) यह सिद्धान्त **इतिहास की वास्तविक जानकारी** पर आधारित है।

(5) यह सिद्धान्त **सामाजिक उपरि पूंजी** (Social Overhead Capital) के निर्माण के लिए **सार्वजनिक क्षेत्र** (Public Sector) को काफी महत्त्व देता है।

■ 8. असन्तुलित विकास के सिद्धान्त के गुण (Merits of the Theory of Unbalanced Growth)

इस सिद्धान्त के मुख्य गुण निम्नलिखित हैं:

(1) **वास्तविक सिद्धान्त** (Realistic Theory): यह सिद्धान्त एक वास्तविक सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त के अनुसार एक अल्पविकसित देश अपने कम साधनों का उचित प्रयोग कर सकता है। इस सिद्धान्त में विकासवादी योजना के सभी पहलुओं पर विचार किया गया है। इस सिद्धान्त के अनुसार उन उद्योगों की स्थापना को अधिक महत्त्व दिया जाना चाहिये, जिनके **कुल संयोजन** (Total Linkages) अधिकतम होते हैं।

(2) **आधारभूत उद्योगों को अधिक महत्त्व** (More Importance to Basic Industries): इस सिद्धान्त में आधारभूत उद्योगों में विकास को अधिक महत्त्व दिया गया है। इसके फलस्वरूप उपभोग वस्तुओं के उद्योग के स्थापित होने में सहायता मिलती है।

(3) **ऊंचे पैमाने के उत्पादन की बचतें** (Economies of Large Scale Production): असन्तुलन विकास की व्यूह रचना को लागू करने से कई प्रकार की **बाहरी बचतें** (External Economies) प्राप्त होती हैं। जबकि भारी और आधारभूत उद्योगों की स्थापना को अधिक महत्त्व दिया जाता है तो उनकी स्थापना के फलस्वरूप दूसरे उद्योगों की स्थापना में सहायता प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त **पूंजीगत उद्योगों में निवेश किये जाने के फलस्वरूप** रोज़गार तथा आय में वृद्धि होती है। इसके परिणामस्वरूप बाजार का विस्तार होता है, सभी उद्योगों को बाहरी बचतें प्राप्त होती हैं।

(4) **नये आविष्कारों को प्रोत्साहन** (Encouragement to New Inventions): असन्तुलित विकास के कारण कई प्रकार की कठिनाइयां और बाधाएं सामने आती हैं। इनको दूर करने के लिए नये आविष्कारों की जरूरत पड़ती है। इसलिए असन्तुलित विकास के द्वारा आविष्कारों को प्रोत्साहन मिलता है।

(5) **आत्मनिर्भरता** (Self Reliance): असन्तुलित विकास के फलस्वरूप अर्थव्यवस्था को अल्पकाल में ही आत्मनिर्भरता के लक्ष्य को प्राप्त करने में सहायता प्राप्त होती है। इसका कारण यह है कि **प्रमुख क्षेत्र** (Leading Sectors) में अधिक निवेश करने से उनका तीव्र गति से विकास होता है। इसके फलस्वरूप आत्मनिर्भरता के लक्ष्य को प्राप्त करने में सहायता मिलती है।

(6) **आर्थिक आधिक्य** (Economic Surplus): असन्तुलित विकास के फलस्वरूप अर्थव्यवस्था में आर्थिक आधिक्य होता है। इसका कारण यह है कि इस प्रणाली में पूंजीगत उद्योगों की स्थापना पर अधिक से अधिक धन व्यय किया जाता है। इसके फलस्वरूप कई सहायक उद्योगों की स्थापना होती है। इस प्रकार निवेश का **गुणक प्रभाव** (Multiplier Effect) बढ़ता जाता है। यदि उपभोग का स्तर स्थिर रहे तो अर्थव्यवस्था में आय, उत्पादन तथा रोज़गार में कई गुणा वृद्धि होती जाती है।

(7) **अल्पकालीन रणनीति** (Short-Term Strategy): असन्तुलित विकास की रणनीति अल्पकाल में ही लागू होने लगती है। इसलिए इसके फलस्वरूप अल्पकाल में ही उत्पादन, रोजगार आदि में वृद्धि होने लगती है। इस सिद्धान्त के अनुसार कम से कम समय में अधिक से अधिक विकास होता है।

(8) **साधनों का उपयुक्त उपयोग** (Better use of Resources): असन्तुलित विकास के फलस्वरूप सीमित साधनों का उपयुक्त उपयोग संभव होता है। इसका कारण यह है कि इन देशों में पूंजी की कमी होती है। यदि सीमित मात्रा में उपलब्ध पूंजी का थोड़ी-थोड़ी मात्रा में सभी क्षेत्रों में निवेश कर दिया जायेगा तो पूंजी का उचित उपयोग नहीं हो पायेगा। सीमित साधनों का सर्वोत्तम उपयोग तभी माना जा सकता है जब उससे मिलने वाला प्रतिफल पर्याप्त हो और यह केवल असन्तुलित विकास के अन्तर्गत ही संभव हो सकता है।

(9) **आधारिक संरचना का विकास** (Development of Infrastructure): किसी देश के आर्थिक विकास के लिये आधारिक संरचना जैसे यातायात, संचार, जलशक्ति, विद्युत, सिंचाई आदि का बहुत अधिक महत्त्व है। चूंकि असन्तुलित विकास के अन्तर्गत **सामाजिक ऊपरी पूंजी** (SOC) के रूप में पर्याप्त निवेश किया जाता है इसलिये अद्योसंरचना का उचित विकास संभव होता है।

संक्षेप में, प्रो० मायर के अनुसार **कोई भी अल्पविकसित देश असन्तुलन से नहीं बच सकता चाहे वह इसे पसन्द करे या न करें। इसलिये असन्तुलित विकास की नीति को अपनाना ही अच्छा होगा।**

■ 9. असन्तुलित विकास के सिद्धान्त की आलोचनाएं
(Criticisms of the Theory of Unbalanced Growth)

पाल स्ट्रीटन आदि अर्थशास्त्रियों ने इस सिद्धान्त की निम्नलिखित मुख्य आलोचनाएं दी हैं:

(1) **असन्तुलन की अपूर्ण व्याख्या** (Incomplete Explanation of Disequilibrium): **प्रो० मायर** के अनुसार, इस सिद्धान्त से यह तो ज्ञात होगा कि असन्तुलन पैदा किया जाना चाहिये परन्तु यह महत्त्वपूर्ण प्रश्न नहीं है कि असन्तुलन पैदा किया जाये या नहीं, बल्कि यह देखना है कि असन्तुलन की **आदर्श मात्रा** (Optmum degree) क्या है तथा शीघ्र विकास के लिये **'कहां'** तथा **'कितना'** असन्तुलन पैदा किया जाये तथा विकास को तेज करने के लिये **'विकास बिन्दु'** (Growth Points) कौन से हैं। यह सिद्धान्त इन प्रश्नों के उत्तर देने में असमर्थ रहा है।

(2) **मुद्रा स्फीति की सम्भावना** (Possibility of Inflation): यह सिद्धान्त भारी उद्योगों के विकास को अधिक महत्त्व देता है। इन उद्योगों की स्थापना तथा इनका उत्पादन आरम्भ होने में काफी समय लग जाता है। इसके फलस्वरूप देश में मुद्रा की पूर्ति तो बढ़ जाती है परन्तु उपभोक्ता उत्पादन न बढ़ने के कारण कीमत स्तर बढ़ जाता है। अतएव् इस विधि के कारण मुद्रा स्फीति की सम्भावना बढ़ जाती है।

(3) **साधनों का बेकार रहना** (Wastage of Resources): असन्तुलित विकास में कुछ ही क्षेत्रों का अधिक विकास किया जाता है इसलिए जब तक पूरक उद्योगों का विकास न हो साधन बेकार पड़े रहते हैं। इस प्रकार असन्तुलन के कारण साधनों का उचित प्रयोग नहीं हो पाता है।

(4) **बाधाओं का वर्णन नहीं किया गया** (No Mention of Obstacles): **पाल स्ट्रीटन** (Paul Streeten) के अनुसार इस सिद्धान्त में केवल यह बतलाया गया है कि अर्थव्यवस्था के असन्तुलित होने के कारण आधारभूत उद्योगों की स्थापना के फलस्वरूप अन्य उद्योगों को प्रोत्साहन मिलता है। परन्तु यह नहीं बतलाया गया कि इनकी स्थापना में कौन सी बाधाएं आती हैं। यह ध्यान रखना चाहिए कि विकास की आरम्भिक अवस्था में आधारभूत तथा भारी उद्योगों को स्थापित करना अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं के लिए कोई सरल काम नहीं है। इन उद्योगों की स्थापना में कई प्रकार की आर्थिक, सामाजिक तथा संगठनात्मक बाधाएं उत्पन्न हो सकती हैं। परन्तु यह सिद्धान्त इन बाधाओं का समाधान करने के विषय में कोई सुझाव नहीं देता। **पाल स्ट्रीटन** के शब्दों में, **"यह सिद्धान्त विकास की प्रेरणा पर तो ध्यान देता है परन्तु असन्तुलित विकास के फलस्वरूप जो बाधाएं आती हैं उनकी अवहेलना करता है।"**

(5) **अनिश्चितता में वृद्धि** (Increase in Uncertainty): इस सिद्धान्त के अनुसार आर्थिक विकास की सफलता विदेशी व्यापार और विदेशी पूंजी की सहायता पर निर्भर है। विदेशी पूंजी पर निर्भरता के कारण अनिश्चितता बढ़ जाती है, क्योंकि विदेशी सहायता कई बार उचित मात्रा तथा उचित समय पर प्राप्त नहीं हो पाती है।

(6) **असन्तुलन आवश्यक नहीं है** (Imbalance is not Necessary): कई अर्थशास्त्रियों के अनुसार तकनीकों, अविभाज्यताओं, अनुमानों की कमियों तथा मांग एवं पूर्ति के लोच के स्वभाव के कारण अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं में स्वाभाविक रूप से ही असन्तुलन उत्पन्न होते रहते हैं। अत: इसके लिए देश में असन्तुलन की स्थिति उत्पन्न करना आवश्यक नहीं है।

(7) **असन्तुलन की मात्रा के विवेचन का अभाव** (Neglect of the Degree of Unbalance): पाल स्ट्रीटन के अनुसार इस सिद्धान्त से यह ज्ञात नहीं होता कि विभिन्न क्षेत्रों में कितना असन्तुलन होना चाहिये। असन्तुलन किन क्षेत्रों में किया जाना चाहिये तथा कितनी मात्रा में किया जाना चाहिये।

(8) **आधारभूत सुविधाओं का अभाव** (Lack of Basic Facilities): असन्तुलित विकास के लिये यह आवश्यक है कि कुछ आधारभूत सुविधाएं जैसे- कच्चे माल की पूर्ति, तकनीकी ज्ञान, शक्ति, यातायात के विकसित साधन, बाजार का विस्तार आदि

उपलब्ध होने चाहिए। परन्तु अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं में सामान्यत: ये सुविधाएं उपलब्ध नहीं होती। इसके फलस्वरूप असन्तुलित विकास के कार्यक्रम को लागू नहीं किया जा सकता।

(9) **स्थानीयकरण की हानियां** (Disadvantages of Localisation): असन्तुलित विकास से प्राप्त बाहरी बचतों के कारण आधारभूत उद्योगों के एक ही स्थान पर केन्द्रित होने की प्रवृत्ति पाई जाती है। परन्तु यह प्रवृत्ति उत्पादन के साधनों की गतिशीलता को हतोत्साहित करती है। असन्तुलित विकास के कारण स्थानीयकरण की अन्य हानियां भी उत्पन्न होने लगती हैं।

(10) संयोजन प्रभाव का दोषपूर्ण विश्लेषण (Defective Analysis of Linkage Effect): संयोजन प्रभाव का विश्लेषण दोषपूर्ण है। इसका कारण यह है कि यह विश्लेषण अल्पविकसित देशों से सम्बन्धित आंकड़ों पर आधारित नहीं है। इन देशों में आर्थिक तथा सामाजिक उपरि पूंजी के अभाव में संयोजन प्रभाव काफी कमजोर हो सकता है।

(11) कृषि क्षेत्र की अवहेलना (Ignores Agricultural Sector): असन्तुलित विकास का सिद्धान्त कृषि क्षेत्र के विकास की अवहेलना करता है। अल्पविकसित देशों के लिये कृषि क्षेत्र का बहुत अधिक महत्त्व है। इसके विकास के अभाव में अर्थव्यवस्था का विकास संभव नहीं है। कृषि क्षेत्र के अल्पविकसित होने से औद्योगिक क्षेत्र के विकास पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

(12) समाजवादी देशों में कम महत्त्व (Less importance in Socialist Countries): समाजवादी देशों में इस सिद्धान्त का कम महत्त्व है। इन देशों में विकास सम्बन्धी निर्णय सरकार द्वारा लिए जाते हैं। इसलिए बाज़ार की शक्तियों का निवेश में कोई महत्त्व नहीं है।

संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि असन्तुलित विकास का सिद्धान्त भी आर्थिक विकास का पूर्ण सिद्धान्त नहीं है। **पाल स्ट्रीटन** के अनुसार, "**असन्तुलित विकास के तरीके**" अपनाने से पहले यह जानना जरूरी है कि (i) असन्तुलन की जरूरत क्यों है? (ii) असन्तुलन किस क्षेत्र में किया जाये? (iii) असन्तुलन कितनी मात्रा में किया जाये? (iv) असन्तुलन की वास्तविक सीमा क्या है?

■ 10. सन्तुलित तथा असन्तुलित विकास की तुलना

(Balanced Growth Theory Versus Unbalanced Growth Theory)

आर्थिक विकास के लिए ये दोनों सिद्धान्त महत्त्वपूर्ण हैं। वास्तव में ये दोनों सिद्धान्त यह मानते हैं कि निर्धनता के दुश्चक्र को तोड़ने के लिए निवेश ऊंचे पैमाने पर किया जाना चाहिये। सन्तुलित विकास सिद्धान्त के अनुसार यह निवेश अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में एक साथ किया जाना चाहिए। इसके विपरीत, असन्तुलित विकास सिद्धान्त के अनुसार यह निवेश पहले केवल कुछ चुने हुए क्षेत्रों में किया जाना चाहिए। **वास्तव में प्रत्येक अर्थव्यवस्था में असन्तुलन पाया जाता है। परन्तु इसका अन्तिम उद्देश्य सन्तुलन को प्राप्त करना होता है।** संक्षेप में, कहा जा सकता है कि **सन्तुलन की धारणा** असन्तुलित विकास के सिद्धान्त के लिए उतनी ही महत्त्वपूर्ण है जितनी सन्तुलित विकास के लिए है। सन्तुलित तथा असन्तुलित विकास के सिद्धान्त में कई असमानताएं भी पाई जाती हैं।

(1) असमानताएं (Dissimilarities):

सन्तुलित तथा असन्तुलित विकास सिद्धान्तों की मुख्य असमानताएं निम्नलिखित हैं:

(1) सन्तुलित विकास का उद्देश्य अर्थव्यवस्था में सभी क्षेत्रों का एक साथ समान रूप से विकास करना है, इसके विपरीत, असन्तुलित विकास का उद्देश्य अर्थव्यवस्था के प्रमुख क्षेत्रों का एक-एक करके विकास करना है।

(2) सन्तुलित विकास का लक्ष्य, विभिन्न क्षेत्रों में **सन्तुलन** स्थापित करके विकास की गति को तीव्र करना है। इसके विपरीत, असन्तुलित विकास का लक्ष्य **असन्तुलन** स्थापित करके विकास की गति को तीव्र करना है।

(3) सन्तुलित विकास की विधि द्वारा आर्थिक विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए बहुत अधिक निवेश की आवश्यकता होती है। इसके विपरीत, असन्तुलित विकास के लिये अपेक्षाकृत कम निवेश की आवश्यकता है।

(4) सन्तुलित विकास की तकनीक एक **दीर्घकालीन** (Long Term) तकनीक है। इसके विपरीत, असन्तुलित विकास की तकनीक एक **अल्पकालीन** (Short Term) तकनीक है।

(5) सन्तुलित विकास के सिद्धान्त के अनुसार आर्थिक विकास के मार्ग में मुख्य बाधा बाजार का सीमित आकार है। इसके विपरीत, असन्तुलित विकास के सिद्धान्त के अनुसार आर्थिक विकास के मार्ग में मुख्य बाधा निवेश सम्बन्धी उचित निर्णयों का अभाव है।

(2) समानताएं (Similarities):

आर्थिक विकास के इन दोनों सिद्धांतों में कुछ समानताएं भी पाई जाती हैं:

(1) सरकार के योगदान की अवहेलना (Ignores the Role of the Government): इन दोनों सिद्धान्तों में आर्थिक विकास की प्रक्रिया में सरकार के योगदान पर प्रकाश नहीं डाला गया है। अल्पविकसित राष्ट्रों का सन्तुलित विकास केवल निजी उद्यमियों द्वारा सम्भव नहीं होता। इसके लिए राज्यों द्वारा निर्देशन तथा नियोजन आवश्यक है। **प्रो० हिरशमैन** यह तो मानते हैं कि यदि निजी उद्यमी, उद्योगों की स्थापना में रुचि नहीं लेते तो सरकार को स्वयं उन उद्योगों की स्थापना करने के बाद उन्हें निजी उद्यमियों को सौंप देना चाहिये। परन्तु वास्तव में, असन्तुलित विकास के लिये भी आर्थिक क्षेत्र में सरकार के हस्तक्षेप की अन्त तक आवश्यकता पड़ती रहेगी।

(2) साधनों की बेलोचदार पूर्ति (Inelastic Supply of Factors): इन दोनों सिद्धान्तों की यह मान्यता भी वास्तविक नहीं है कि साधनों की पूर्ति लोचदार है। अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं में साधनों की पूर्ति बेलोचदार होती है। इसके फलस्वरूप कई प्रकार की बाधाएं उत्पन्न होती हैं। इन बाधाओं के विषय में इन दोनों सिद्धान्तों ने कोई मत प्रकट नहीं किया है।

■ 11. विकास की कौन-सी पद्धति अधिक श्रेष्ठ है?

(Which is the Better Strategy of Development)

वास्तव में, यह कहना बहुत ही कठिन है कि विकास की इन दोनों पद्धतियों में कौन-सी श्रेष्ठ है। इन दोनों पद्धतियों के कुछ गुण तथा कुछ दोष हैं। इनमें से कोई भी पद्धति पूर्ण नहीं है। इन दोनों का लक्ष्य तीव्र आर्थिक विकास करना है। अन्तर केवल यह है कि विकास प्रक्रिया का स्वरूप क्या होना चाहिये। **साधनों की कमी के कारण असन्तुलित विकास की आवश्यकता है जबकि बाजार की अपूर्णताओं के कारण सन्तुलित विकास की आवश्यकता है।** अतएव **पाल स्ट्रीटन** (Paul Streeten) का कहना है कि सन्तुलित तथा असन्तुलित विकास के सिद्धान्त के बीच चुनाव सम्बन्धी विवाद उत्पन्न करना एक निरर्थक विचार है। ये दोनों पद्धतियां, सही अर्थों में प्रतियोगी न होकर एक दूसरे की पूरक हैं। इसलिये इन दोनों पद्धतियों में चुनाव करने की अपेक्षा इनसे सम्बन्धित उपयोग की चर्चा करना अधिक उपयोगी होगा।

अल्पविकसित देशों में साधनों की कमी होने के कारण पहले असन्तुलित विकास के मार्ग को अपनाना पड़ता है। इसके फलस्वरूप जब पूंजी तथा अन्य साधनों की मांग बढ़ जाती है तो सन्तुलित विकास की पद्धति को अपनाया जा सकता है। इस प्रकार असन्तुलन तथा सन्तुलन के दोनों तरीके अल्पविकसित अर्थव्यवस्था को आर्थिक विकास के ऊंचे स्तर पर ले जाने के लिये आवश्यक हैं। अतएव आर्थिक विकास के लिए सन्तुलित तथा असन्तुलित विकास दोनों प्रकार की विधियों की आश्यकता है। **प्रो० बी० पी० भट्ट** के अनुसार, **''सन्तुलन का विचार असन्तुलन विकास सिद्धान्त के लिये उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना असन्तुलन का विचार सन्तुलित विकास के लिए महत्त्वपूर्ण है।''**

अन्त में, हम हिग्गन्स के अनुसार, यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि **''यह महत्त्वपूर्ण है कि सन्तुलित विकास शब्द का विकास की एक तकनीक तथा विकास के लक्ष्य के रूप में अन्तर किया जाये। हिरशमैन के असन्तुलित विकास का अन्तिम लक्ष्य भी किसी एक प्रकार का सन्तुलन प्राप्त करना है। जब हम एक बार यह निर्धारित कर लेंगे कि हमारा संबंध 'इस या उस' से नहीं है तो हम सन्तुलित या असन्तुलित विकास की बात करना बन्द कर देंगे। इनके स्थान पर अर्थव्यवस्था के प्रमुख क्षेत्रों के कार्यात्मक सम्बन्ध की बात करेंगे।**

■ 12. भारत के लिये आर्थिक विकास की व्यूह रचना

(Strategy of Economic Development for India)

भारत के लिये आर्थिक विकास की सन्तुलित या असन्तुलित व्यूह रचना में से कौन-सी अपनाई गई है यह द्वितीय योजना की रूपरेखा से स्पष्ट हो जाता है। इस संबंध में **प्रो० महालनोबिस** ने द्वितीय योजना की रूपरेखा तैयार करते हुये अपनी पुस्तक **'टाक्स**

ऑन प्लैनिंग' (Talks on Planning) में स्पष्ट किया था कि भारत के लिये सभी क्षेत्रों में समान रूप से विकास कर पाना संभव नहीं है। भारत को सबसे पहले भारी तथा आधारभूत उद्योगों जैसे भारी मशीन उद्योग, इस्पात उद्योग आदि की स्थापना करनी चाहिये। यह योजना वास्तव में **असन्तुलित विकास** (Unbalanced Growth) की योजना थी। परन्तु इसके फलस्वरूप उपभोग वस्तुओं का उत्पादन कम हुआ तथा कीमत स्तर में वृद्धि हुई। इसलिये भारत के लिये असन्तुलित विकास की पद्धति को अपनाना सफल नहीं हुआ। यही कारण है कि भारत की कई योजनाओं में सभी क्षेत्रों में सन्तुलित विकास पर जोर दिया गया परन्तु यह पद्धति भी कारगर सिद्ध नहीं हो सकी। इसलिये **आठवीं योजना में आर्थिक तथा सामाजिक आधारिक संरचना** (Economic and Social Infrastructure) के विकास को काफी अधिक महत्त्व दिया गया। सार्वजनिक क्षेत्र के कुल व्यय का लगभग 70 प्रतिशत व्यय इनके विकास पर करने का लक्ष्य था। इसलिये पुन: असन्तुलित विकास की पद्धति को अपनाया गया है। नौवीं तथा दसवीं योजना में विकास की दोनों पद्धतियों को फिर से अपनाया गया है। इन योजनाओं की रणनीति यह है कि देश में प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि दर को बढ़ाने के साथ-साथ निर्धनता, बेरोजगारी तथा असमानताओं को भी कम किया जाए। इस प्रकार इस रणनीति में आर्थिक विकास की दर को बढ़ाने (अर्थात् असन्तुलित विकास) तथा असमानताओं को कम करने (अर्थात् सन्तुलित विकास) की नीति में कोई टकराव नहीं है।

प्रश्न (QUESTIONS)

I. वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

सभी प्रश्न अनिवार्य हैं (Attempt all the questions)

(1) असन्तुलित विकास के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया (नर्कसे ने, हिरशमैन ने)

(2) असन्तुलित विकास का अर्थ है निवेश किया जाना चाहिए (केवल चुने हुये उद्योगों में, सभी उद्योगों में)

(3) हिरशमैन के अनुसार असन्तुलित विकास के कारण उदय होती है (बाहरी बचतें, बाहरी हानियाँ)

(4) SOC का सम्बन्ध है (यातायात से, उद्योग से)

(5) DPA का सम्बन्ध है (कृषि से, शक्ति से)

(6) किसी उद्योग के विकास के फलस्वरूप उन उद्योगों का भी विकास होता है जो उस उद्योग के लिए कच्चा माल तैयार करते हैं, तब इसे कहा जाता है (अधोगामी सहलग्नता, अग्रगामी सहलग्नता)

(7) जब किसी उद्योग में निर्मित उत्पादन दूसरे उद्योग के कच्चे माल के रूप में प्रयोग में लाया जाता है, इसे कहा जाता है (अग्रगामी सहलग्नता, अधोगामी सहलग्नता)

(8) सामाजिक ऊपरी पूंजी के निर्माण के लिए असन्तुलित विकास का सिद्धान्त अधिक महत्त्व देता है (सार्वजनिक क्षेत्र को, निजी क्षेत्र को)

(9) असन्तुलित विकास के कारण आविष्कार होते हैं (प्रोत्साहित, निरुत्साहित)

(10) भारत की दूसरी पंचवर्षीय योजना ने कौन-सी व्यूह रचना अपनाई (सन्तुलित विकास की, असन्तुलित विकास की) (K.U. 2005)

(11) सन्तुलित तथा असन्तुलित विकास की दोनों रणनीतियां एक-दूसरे की पूरक हैं (प्रतियोगी नहीं, प्रतियोगी भी)

(12) ....विकास के सिद्धांत का प्रतिपादन हिरशमैन ने किया था (संतुलित, असंतुलित) (K.U. 2008)

उत्तर (Answer): (1) हिरशमैन ने, (2) केवल कुछ चुने हुए उद्योगों में, (3) बाहरी बचतें, (4) यातायात से, (5) कृषि से, (6) अधोगामी सहलग्नता, (7) अग्रगामी सहलग्नता, (8) सार्वजनिक क्षेत्र को, (9) प्रोत्साहित, (10) असन्तुलित विकास की, (11) प्रतियोगी नहीं, (12) असंतुलित।

II. लघु/परिभाषा रूपी प्रश्न (Short/Definitional Type Questions)

1. Explain the concept of unbalanced growth with the help of a diagram.
   एक रेखाचित्र की सहायता से असन्तुलित विकास की धारणा की व्याख्या करें।
2. Discuss two main features of the theory of unbalanced growth.
   असन्तुलित विकास के सिद्धान्त की दो मुख्य विशेषताओं का वर्णन करें।
3. Attempt two difference between balanced and unbalanced growth theory.
   सन्तुलित एवं असन्तुलित विकास सिद्धान्त में दो अन्तर बताइये। (M.D.U. 2008)
4. Show the path of development in the course of unbalanced growth.
   असन्तुलित विकास के दौरान विकासपथ का वर्णन करें।
5. What is meant by forward and backward linkages?
   अग्रगामी तथा पश्चगामी संयोजन के क्या अर्थ हैं?
6. Give two main merits of the theory of unbalanced growth.
   असन्तुलित विकास के सिद्धान्त के दो मुख्य गुणों का वर्णन करें।
7. Mention two criticisms of the theory of unbalanced growth.
   असन्तुलित विकास के सिद्धान्त की दो आलोचनाओं का वर्णन करें।

III. निबन्ध रूपी प्रश्न (Essay Type Questions)

1. Explain the theory of unbalanced growth. What are its drawbacks?
   असंतुलित विकास के सिद्धान्त की व्याख्या कीजिये। इसकी क्या कमियां हैं?
2. Critically evaluate the theory of Unbalanced Growth.
   असंतुलित विकास के सिद्धान्त की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए। (K.U. 2009)
3. Distinguish between balanced growth and unbalanced growth. Which of them is more suited to backward economies?
   सन्तुलित तथा असन्तुलित विकास में अन्तर बताइए। अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं के लिए इन दोनों में से कौन-सी पद्धति अधिक उपयुक्त है?
4. Explain the strategy of unbalanced growth. Distinguish between 'balanced' and 'unbalanced' growth strategies. Which of these strategies have been adopted in India?
   असन्तुलित विकास की व्यूह रचना की व्याख्या करें। सन्तुलित तथा असन्तुलित विकास पद्धतियों में अन्तर बताइये। भारत में इनमें से कौन-सी पद्धति अपनाई गई है?
5. Explain the concept of unbalanced growth with the help of a diagram. Give its criticism.
   असन्तुलित विकास की व्यूह रचना का एक रेखाचित्र की सहायता से वर्णन कीजिए। इसकी आलोचना कीजिए। (K.U. 2007)
6. Bring out a case for and against unbalanced growth.
   असन्तुलित विकास के पक्ष व विपक्ष में तर्क दें।

8

लेबेन्सटीन का आवश्यक न्यूनतम प्रयत्न का सिद्धान्त

(LEIBENSTEIN'S CRITICAL MINIMUM EFFORT THESIS)

■ 1. भूमिका (Introduction)

प्रो० हारवे लेबेन्सटीन (Prof. Harvey Leibenstein) ने अपनी पुस्तक "Economic Backwardness and Economic Growth" में अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास के सम्बन्ध में **''आवश्यक न्यूनतम प्रयत्न''** सिद्धान्त (Critical Minimum Effort Theory) का प्रतिपादन किया है। यह सिद्धान्त उन अल्पविकसित देशों जैसे भारत, इन्डोनेशिया आदि की अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित है जिनमें जनसंख्या का आधिक्य पाया जाता है। इन देशों में निर्धनता का दुश्चक्र पाया जाता है जिससे इन देशों में प्रतिव्यक्ति निम्न आय सन्तुलन बना रहता है। इस स्थिति से मुक्ति पाने के लिए एक मात्र उपाय न्यूनतम मात्रा में निवेश का किया जाना है ताकि प्रतिव्यक्ति आय का स्तर बढ़ सके और अर्थव्यवस्था में सतत विकास (Sustained Development) की स्थिति बनी रहे। **लेबेन्सटीन** का कहना है कि प्रत्येक अर्थव्यवस्था **'झटकों'** (Shocks) और **प्रोत्साहनों** (Stimulants) से घिरी रहती है। **झटकों** के फलस्वरूप अर्थव्यवस्था में प्रतिव्यक्ति आय के कम होने की प्रवृत्ति प्रकट होती है, जबकि **प्रोत्साहनों** में इसको बढ़ाने की प्रवृति पाई जाती है। कुछ देश इसलिए अल्पविकसित हैं क्योंकि उनमें प्रोत्साहनों का आकार (Magnitude) कम और झटकों का आकार अधिक होता है। इसलिए आर्थिक विकास के लिए आवश्यक है कि आवश्यक न्यूनतम प्रयास द्वारा झटकों के आकार को कम किया जाए और प्रोत्साहनों को बढ़ाया जाए। बेशक यह सिद्धान्त **बड़े धक्के** (Big Push) की भांति ही है परन्तु व्यापकता और श्रेष्ठता की दृष्टि से यह उससे कहीं अधिक श्रेष्ठ है।

■ 2. सिद्धान्त की व्याख्या (Explanation of the Theory)

'आवश्यक न्यूनतम प्रयत्न सिद्धान्त' के अनुसार अल्पविकसित देशों के दीर्घकालीन विकास के लिए अर्थव्यवस्था में कम से कम इतना निवेश अवश्य किया जाये कि जिससे अर्थव्यवस्था आर्थिक विकास के मार्ग पर स्वयं चलती रहे। **लेबेन्सटीन** के अनुसार अल्पविकसित देशों को आर्थिक दुश्चक्रों (Vicious Circles) से निकालने का एक मात्र उपाय यह ही है। इन देशों में यद्यपि श्रम तथा पूंजी की मात्रा में परिवर्तन होते रहते हैं परन्तु जनसंख्या में तीव्र गति से वृद्धि होने के कारण प्रति व्यक्ति आय पहले जैसी बनी रहती है। इस अवस्था से निकलने के लिये कुछ **न्यूनतम आवश्यक** प्रयत्नों की आवश्यकता है जो प्रति व्यक्ति आय को उस स्थिति तक बढ़ा दें कि जहां से विकास की क्रिया स्वयं जारी रहे। प्रो० **लेबेन्सटीन** के अनुसार, **''यदि सतत विकास की अवस्था को प्राप्त करना है तो यह आवश्यक है कि आरम्भ में किया जाने वाला प्रयत्न अथवा प्रयत्नों की संख्या एक निश्चित न्यूनतम स्तर से अधिक होनी चाहिये। इसका अभिप्राय यह है कि प्रति व्यक्ति आय को बढ़ाने वाले सभी प्रयत्न आर्थिक रूप में सफल नहीं हो सकेंगे। इनमें से कुछ इस कार्य के लिये बहुत कम सिद्ध होंगे।''** (If sustained development is to be generated, it is necessary that the initial effort or initial series of efforts must be above a certain minimum magnitude. That is to say, not all efforts to raise per capita income lead to economic development. There are some that are too small to do so. – **Leibenstein**)

अतएव लेबेन्सटीन के अनुसार एक निश्चित मात्रा में विकास स्तर को पहले प्राप्त करना होगा, तब ही अर्थव्यवस्था में विकास की गति आयेगी, जिससे स्वयं स्फूर्ति विकास उत्पन्न हो सकेगा। प्रो० **लेबेन्सटीन** के अनुसार इस सिद्धान्त का अभिप्राय यह है कि "**अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में कई कारणों से वास्तविक राष्ट्रीय आय में सतत वृद्धि की दर** (Sustained real income growth) **प्राप्त करने के लिए एक निश्चित न्यूनतम स्तर से अधिक निवेश की आवश्यकता है। निवेश की इस मात्रा के बिना वास्तविक राष्ट्रीय आय की निरन्तर वृद्धि नहीं हो पाती। इस न्यूनतम मात्रा से अधिक निवेश को ही आवश्यक न्यूनतम प्रयत्न** (Critical Minimum Effort) **कहा जाता है।**" (A sufficiently large minimum effort is necessary at the *outset if the necessary minimum growth is to be achieved.* **–Leibenstein**) *अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं* के दीर्घकालीन आर्थिक विकास के लिये यह आवश्यक है कि इन अर्थव्यवस्थाओं में जो निवेश किया जाये वह इतनी निश्चित मात्रा में हो कि अर्थव्यवस्था को पर्याप्त स्फूर्ति मिल सके। अल्पविकसित देशों में यद्यपि श्रम तथा इसकी पूर्ति की मात्रा में परिवर्तन होते हैं परन्तु जनसंख्या में तेज गति से वृद्धि होने के कारण प्रति व्यक्ति आय पहले जैसी बनी रहती है। इस स्थिति से अर्थव्यवस्था को निकालने के लिये *न्यूनतम आवश्यक प्रयत्नों की आवश्यकता होती है जो प्रति व्यक्ति आय को ऐसे स्तर तक बढ़ा दे कि जहां से निरन्तर विकास की* क्रिया जारी रह सके। **लेबेन्सटीन** का यह विचार है कि "**आर्थिक विकास के लिए आवश्यक न्यूनतम निवेश एक समय में ही करना आवश्यक नहीं है। यह न्यूनतम निवेश धीरे-धीरे कुछ वर्षों की अवधि में भी किया जा सकता है।**"

■ 3. आवश्यक न्यूनतम प्रयत्न की आवश्यकता (Need for Critical Minimum Effort)

प्रो० **लेबेन्सटीन** के अनुसार, न्यूनतम प्रयत्न की आवश्यकता मुख्य रूप से निम्नलिखित **कारणों** से होती है:

(i) कई संसाधन इस प्रकार के होते हैं कि उनको छोटी-छोटी मात्राओं में लगाया नहीं जा सकता। यदि ऐसा किया भी जाता है तो **बाहरी बचतें** (External Economies) प्राप्त नहीं हो सकती हैं।

(ii) यदि देश का सन्तुलित विकास करना है तो न्यूनतम आवश्यक प्रयत्न आवश्यक हैं। सन्तुलित विकास के लिये देश की पुरानी मान्यताओं एवं दृष्टिकोणों को समाप्त करके आधुनिकीकरण का प्रसार आवश्यक है, इसके लिये न्यूनतम आवश्यक मात्रा में निवेश जरूरी है।

(iii) प्रत्येक अर्थव्यवस्था में दो प्रकार की शक्तियां या तत्त्व क्रियाशील रहते हैं। एक तो कुछ **प्रोत्साहन देने वाले या उत्तेजक तत्त्व** (*Stimulants*) होते हैं। *ये तत्त्व व्यवस्था में गत्यातमकता (Dynamism) लाते हैं और प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि करते हैं।* दूसरे तत्त्व **पीछे धकेलने वाले तत्त्व या झटके** (Shocks) होते हैं जो व्यवस्था में रुकावट बनते हैं। अल्पविकसित देशों में सामान्यत: पहले प्रकार के तत्त्व कम तथा दूसरे प्रकार के तत्त्व अधिक सक्रिय व प्रभावशाली होते हैं। अतएव आय घटाने वाले तत्त्वों की तुलना में आय को प्रोत्साहित करने वाले तत्त्वों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिये। इन्हें प्रोत्साहित करने के लिये न्यूनतम मात्रा में निवेश करना जरूरी है।

(iv) **लेबेन्सटीन** का कहना है कि आर्थिक विकास के लिए पुरानी मान्यताओं, आस्थाओं, विचारों तथा रीति-रिवाजों को तोड़ना आवश्यक है। आवश्यक न्यूनतम प्रयत्न से निवेश कम करने पर ये संस्थागत रुकावटें नहीं टूटतीं क्योंकि **पुराने मूल्य और परम्पराओं** (Old Values and Traditions) को बदलने में अधिक समय लगता है। उन पर तो अचानक और वह भी बड़ी मात्रा में हमला करना चाहिए ताकि "**हर नया परिवर्तन स्वयं किसी नए परिवर्तन को जन्म दे**" (That each change should itself breed more change)।

(v) कभी-कभी विकास के फलस्वरूप ही विकास-बाधक तत्त्व उत्पन्न हो जाते हैं, जैसे आय में थोड़ी वृद्धि होने पर मृत्यु दर घटती है परन्तु जनसंख्या बढ़ने लगती है। आय में वृद्धि इतनी अधिक होनी चाहिए कि जन्म दर कम हो जाए। यह तभी संभव है जब निवेश 'आवश्यक न्यूनतम प्रयत्न' के रूप में किया जाए।

(vi) चूंकि विकास के साथ-साथ पूंजी-उत्पाद अनुपात (Capital-output Ratio) घटता जाता है, इसलिए यदि निवेश आवश्यक न्यूनतम मात्रा में किया जाए तो यह अधिक घटेगा और आर्थिक विकास की गति तेज होगी।

■ 4. रेखाचित्र द्वारा स्पष्टीकरण (Diagrammatic Clarification)

आवश्यक न्यूनतम प्रयत्न के सिद्धान्त को निम्नलिखित रेखाचित्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। रेखाचित्र नं॰ 1 में आवश्यक न्यूनतम प्रयत्न के सिद्धान्त को स्पष्ट किया गया है।

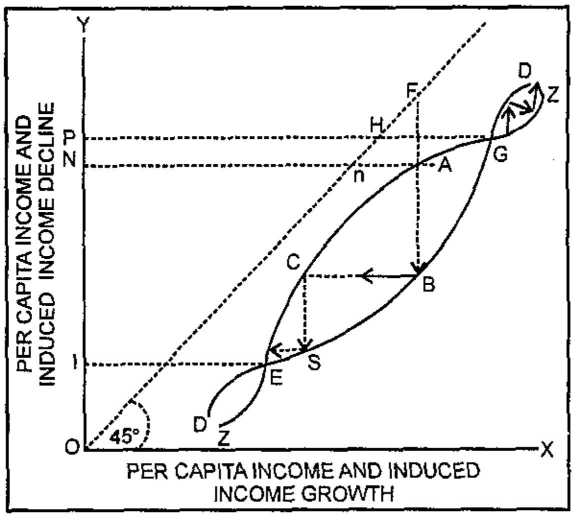

चित्र 1

(1) OX रेखा पर प्रति व्यक्ति आय (Per Capita Income) तथा प्रेरित आय विकास (Induced Income Growth) को प्रकट किया गया है तथा OY रेखा पर प्रतिव्यक्ति आय और प्रेरित आय पतन या कमी (Induced Income Declines) को प्रकट किया गया है।

(2) 45° रेखा OF उन सब बिन्दुओं को प्रकट करती है जिन पर आय में होने वाली प्रेरित वृद्धि तथा प्रेरित कमी बराबर है।

(3) ZZ रेखा आय बढ़ाने वाले तत्त्वों (Stimulants) को तथा DD रेखा आय को कम करने वाले तत्त्वों (Shocks) को प्रकट करती है।

(4) IE आय स्तर पर जीवन निर्वाह आय OI है अर्थात् बिन्दु E पर DD और ZZ वक्र एक दूसरे के बराबर हैं। इसका अभिप्राय यह है कि बिन्दु E पर प्रति व्यक्ति आय बढ़ाने वाले तत्वों (Stimulants) तथा प्रति व्यक्ति आय कम करने वाले तत्वों (Shocks) के बीच संतुलन है।

(5) यदि आय स्तर, संतुलन स्तर OI से बढ़कर ON हो जाता है, तो अर्थव्यवस्था एक बार फिर वापिस अपने जीवन निर्वाह आय स्तर पर पहुँच जाएगी। क्योंकि इस आय स्तर पर, आय में वृद्धि करने वाली शक्तियों (Stimulants) की अपेक्षा आय को कम करने वाली शक्तियाँ (Shocks) अधिक प्रभावपूर्ण होती है। चित्र में बढ़ाने वाले तत्व (Stimulants) आय को nA तक बढ़ाते हैं और कम करने तत्व (Shocks) आय में FB की कमी करते हैं। यह स्पष्ट है कि FB, nA की अपेक्षा अधिक है। अतः अर्थव्यवस्था ABCS मार्ग की दिशा में नीचे की ओर मुड़ेगी, जब तक यह जीवन निर्वाह संतुलन स्तर बिंदु E पर नहीं पहुँच जाती है।

(6) इस समस्या के हल के लिये राष्ट्रीय आय में इतनी वृद्धि करनी चाहिये कि राष्ट्रीय आय में वृद्धि करने वाली शक्तियों (Stimulants) की दर कमी करने वाली शक्तियों (Shocks)की दर से बढ़ जाये। यह दर OP से अधिक होनी चाहिये।

(7) अर्थव्यवस्था में यदि न्यूनतम आवश्यक मात्रा में प्रारम्भिक निवेश इतना कर दिया जाये कि प्रति व्यक्ति आय OP हो जाये तब आय बढ़ाने वाली शक्तियां आय को HG स्तर तक बढ़ा देंगी। तो हम आर्थिक दुश्चक्र से निकल जायेंगे। G बिन्दु के पश्चात् आय में सतत वृद्धि होती जायेगी।

उपरोक्त रेखाचित्र से सिद्ध हो जाता है कि यदि प्रारम्भिक निवेश आवश्यक न्यूनतम निवेश से अधिक है तो राष्ट्रीय आय स्वयं बढ़ती जायेगी। इस प्रकार अल्पविकसित देशों में **'अर्द्ध-स्थैतिक सन्तुलन'** (Quasi Static Equilibrium) को तोड़ा जा सकता है, यह तभी संभव है जब **उत्तेजक तत्त्वों** का आकार **पीछे धकेलने वाली** शक्तियों से अधिक है। **लेबेन्सटीन** के अपने शब्दों में, **''जब आय-वर्द्धक शक्तियों को आय-घटाने वाली शक्तियों से अधिक उत्तेजित किया जाता है तब ही आवश्यक न्यूनतम प्रयत्न होता है और अर्थव्यवस्था विकास के मार्ग पर अग्रसर होती है।''** (It is only when the income-raising factors are stimulated beyond the income-depressing factors that critical minimum is reached and the economy would be on the path of development. – **Leibenstein**)। कहने का भाव यह है कि अल्पविकसित देशों में निर्धनता के

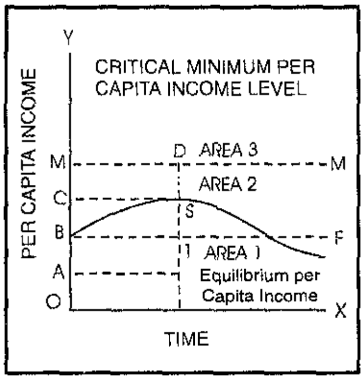

चित्र 2

दुश्चक्र को तोड़ने के लिए एक आवश्यक न्यूनतम प्रयत्न की आवश्यकता बनी रहती है और **अर्थव्यवस्था में आत्म-स्फूर्ति बनाने के लिए प्रति व्यक्ति आय का न्यूनतम स्तर प्राप्त किया जाना आवश्यक है।**

लेबेन्सटीन का यह विचार भी था कि यदि अल्पविकसित देश का वर्तमान *आय स्तर इस न्यूनतम आवश्यक प्रयत्न से कम है तो विकास केवल तब ही हो* सकता है जब अर्थव्यवस्था से बाहर अर्थात् **विदेशी सहायता के रूप में बड़ी मात्रा में अर्थव्यवस्था को निवेश का इन्जेक्शन दिया जाये।** यदि एक बार में एक बड़ी मात्रा में निवेश न किया जा सके तो समयानुसार छोटी-छोटी किस्तों में भी *निवेश किया जा सकता है।* परन्तु *विदेशी सहायता का इन्जेक्शन इस प्रकार लगाया* जाना चाहिये कि प्रथम इन्जेक्शन का प्रभाव समाप्त होते ही दूसरा इन्जेक्शन लगा दिया जाये। इसी तत्त्व को रेखाचित्र नं० 2 द्वारा स्पष्ट किया गया है। रेखाचित्र नं० 2 में OX अक्ष पर समय तथा OY अक्ष पर प्रति व्यक्ति आय को प्रकट किया गया है। *यदि प्रथम बार में ही इतनी आवश्यक न्यूनतम मात्रा में ही निवेश कर दिया जाये कि* प्रति व्यक्ति आय बढ़कर OM हो जाये तो अर्थव्यवस्था आर्थिक निर्धनता के जाल से निकल जायेगी और निरन्तर आर्थिक विकास की प्रक्रिया आरम्भ हो जायेगी। परन्तु यदि अर्थव्यवस्था के पास एक ही मुश्त में निवेश करने के साधन पर्याप्त न हों तो वह निवेश रूपी इन्जेक्शन दो अवस्थाओं में लगा सकती है:

(1) पहली अवस्था में इन्जेक्शन इतना पर्याप्त होना चाहिये कि प्रति व्यक्ति आय बढ़कर OB हो जाये।

(2) दूसरी अवस्था में इन्जेक्शन इतनी मात्रा में लगाया जा सकता है कि प्रति व्यक्ति आय बढ़कर SD (CM) हो जाये। **लेबेन्सटीन** यह मानते हैं कि एक बड़े इन्जेक्शन के स्थान पर निवेश के दो छोटे-छोटे इन्जेक्शन यदि उचित समय के अन्तर पर लगाये जायें तो वे अधिक प्रभावशाली सिद्ध होंगे।

■ 5. जनसंख्या की अवस्थाएं तथा न्यूनतम आवश्यक प्रयत्न

(Stages of Population and Minimum Critical Efforts)

प्रो० लेबेन्सटीन ने अल्पविकसित देशों में जनसंख्या की वृद्धि के सम्बन्ध में **लागत लाभ विश्लेषण** (Cost Benefit Analysis) *का प्रतिपादन किया है। उनके अनुसार अल्पविकसित देशों में बच्चा उत्पन्न होने से प्राप्त* **लाभ** *(benefit)* **उसकी लागत** (Cost) से अधिक होती है, क्योंकि इन देशों में बच्चे पालने पर अधिक खर्च नहीं होता। एक निर्धन व्यक्ति को केवल बच्चे के जीवन निर्वाह पर खर्च करना पड़ता है तथा उनका बच्चा बहुत कम आयु से ही काम करने लगता है। इसके विपरीत एक धनी व्यक्ति को बच्चे की उच्च शिक्षा तथा ऊंचे जीवन स्तर के लिये काफी धन खर्च करना पड़ता है। लेबेन्सटीन के अनुसार एक बच्चा तीन प्रकार के लाभ प्रदान करता है।

(1) **बच्चा एक उपभोग वस्तु** (Consumption Good) है। इसका अभिप्राय यह है कि बच्चा, अपने मां बाप की प्यार करने या बच्चा खिलाने की आवश्यकता को पूरा करता है।

(2) **बच्चा एक उत्पादक एजेन्ट** (Production Agent) है। वह स्वयं धन पैदा करके अपने परिवार का पालन पोषण करता है। अल्पविकसित देशों में यह काम कम आयु का बच्चा भी करता है।

(3) **बच्चा सुरक्षा का साधन** (Source of Security) है। *इसका अभिप्राय यह है कि बच्चा बुढ़ापे का सहारा है।*

प्रो० लेबेन्सटीन *का यह विचार है कि अल्पविकसित देशों में एक अतिरिक्त बच्चे का पैदा होना,* **लाभ और लागत सिद्धान्त** (Cost Benefit Analysis) के आधार पर निर्धारित होता है और यह ही जनसंख्या की वृद्धि दर को निर्धारित करता है इस तथ्य को रेखाचित्र नं० 3 द्वारा प्रकट किया जा सकता है।

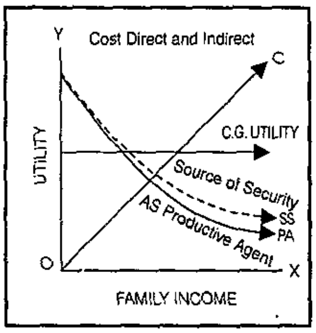

चित्र 3

चित्र (3) में (i) लागत रेखा OC ऊपर की ओर उठ रही है। इससे सिद्ध होता है कि बच्चों के जन्म के साथ लागत बढ़ती जाती है। (ii) C.G. उपभोग रेखा, OX अक्ष के समानान्तर है। इससे प्रकट होता है कि उपभोग वस्तु के रूप में प्रत्येक बच्चा समान सुख देता है। (iii) उत्पादक एजेन्ट (PA) तथा सुरक्षा साधन वाली रेखायें (SS) नीचे की ओर झुकी हुई हैं। इससे सिद्ध होता है कि प्रत्येक नये बच्चे के साथ उसका महत्त्व कम होता जाता है।

उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर **प्रो० लेबेन्सटीन** ने यह निष्कर्ष निकाला था कि **अल्पविकसित देशों में प्रत्येक व्यक्ति की आय के बढ़ने पर जन्म दर कम होगी। प्रो० लेबेन्सटीन** के शब्दों में, **"बिना आर्थिक विकास के कोई भी प्रत्यक्ष तरीका जन्म दर को कम नहीं कर सकता।"** जनसंख्या वृद्धि दर प्रति व्यक्ति आय के स्तर का **प्रत्यक्ष फलन** (Function) है। इनके सम्बन्धों को चार अवस्थाओं में प्रकट किया जा सकता है:

(1) कम आय की अवस्था (Stage of Low Income): जब आय का स्तर बहुत कम अर्थात् जीवन निर्वाह स्तर के बराबर होता है तो जन्म तथा मृत्यु दर दोनों अधिक होती हैं। इस अवस्था में जनसंख्या में वृद्धि नहीं होती या कम होती है।

(2) बढ़ती हुई आय की अवस्था (Stage of Increasing Income): आर्थिक विकास की प्रारम्भिक अवस्था में जब प्रति व्यक्ति आय बढ़ने लगती है तो मृत्यु दर कम होने लगती है, परन्तु जन्म दर में कमी नहीं होती। इसलिये इस अवस्था में जनसंख्या की वृद्धि दर बहुत अधिक होती है। इस अवस्था में बच्चों का उत्पादन (अर्थात् जन्म) उत्पादन एजेण्ट तथा सुरक्षा **लाभ** (Benefit) के रूप में माता-पिता के लिए अधिक होता है।

(3) अधिक आय की अवस्था (Stage of High Income): जब अर्थव्यवस्था में आर्थिक विकास की दर बढ़ने के कारण प्रति व्यक्ति आय काफी तेजी से बढ़ने लगती है तो एक अतिरिक्त बच्चे की उपयोगिता (सुरक्षा तथा भावनात्मक संतुष्टि को स्रोत के रूप में तथा उत्पादक एजेंट के रूप में भी) कम होने लगती है। इससे मृत्यु दर कम होने के कारण जन्म दर भी कुछ कम होने लगती है। जनसंख्या की वृद्धि दर भी कम होने लगती है।

(4) बहुत अधिक आय की अवस्था (Stage of Very High Income): विकसित तथा धनी देशों में जहां प्रति व्यक्ति आय बहुत अधिक होती है, मृत्यु तथा जन्म दर दोनों ही बहुत कम हो जाती हैं। इसके फलस्वरूप जनसंख्या की वृद्धि दर बहुत कम हो जाती है।

संक्षेप में, प्रारम्भ में प्रति व्यक्ति आय में होने वाली वृद्धि जनसंख्या की वृद्धि दर को बढ़ाती है। किन्तु ऐसा केवल एक सीमा तक ही होता है। इसके पश्चात् प्रति व्यक्ति आय में होने वाली वृद्धि के साथ-साथ जन्म दर और मृत्यु दर कम होने लगती है। इसका अभिप्राय यह है कि एक सीमा के पश्चात् आर्थिक विकास की दर बढ़ने पर जनसंख्या की वृद्धि दर कम होती जाती है।

■ 6. न्यूनतम आवश्यक प्रयत्नों के पक्ष में तर्क

(Arguments in favour of Critical Minimum Efforts)

लेबेन्सटीन ने न्यूनतम आवश्यक प्रयत्न के पक्ष में निम्नलिखित तर्क दिये जाते हैं:

(1) अल्पविकसित देशों में दो प्रकार के तत्त्व पाये जाते हैं- एक **आय बढ़ाने वाले तत्त्व** (Income Increasing Forces) जैसे निवेशकर्ता, उद्यमी, बचतकर्ता, आविष्कारक आदि, इन्हें **उत्तेजक तत्त्व** (Stimulant Forces) भी कहा जाता है। दूसरे **आय कम करने वाले तत्त्व** (Income Depressing Forces) जैसे जनसंख्या में वृद्धि, आन्तरिक हानियां, प्रदर्शनकारी प्रभाव, संरचनात्मक रुकावटें आदि। इन्हें **पीछे धकेलने वाले या आघात तत्त्व** (Shocks) भी कहा जाता है। अल्पविकसित देशों में **उत्तेजक तत्त्वों** (Stimulants) की अपेक्षा **पीछे धकेलने वाले या आघात तत्त्व** (Shocks) अधिक शक्तिशाली होते हैं। इनके प्रभाव को खत्म

करने के लिये आवश्यक न्यूनतम प्रयत्न की आवश्यकता होती है। अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं में प्रति व्यक्ति आय पर विपरीत प्रभाव डालने वाली निम्न प्रवृत्तियाँ क्रियाशील रहती हैं (i) नवीन ज्ञान तथा विचारों का विरोध, (ii) परिवर्तन के विरोध में श्रम द्वारा की गई कार्यवाहियाँ, (iii) निजी तथा सामाजिक संस्थाओं द्वारा अनुत्पादक प्रकृति के व्यय में वृद्धि, (iv) जनसंख्या वृद्धि के फलस्वरूप पूंजी की अपेक्षा श्रम में होने वाली वृद्धि। आर्थिक विकास पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले इन तत्त्वों को **प्रभावहीन** (Neutralise) करने के लिए काफी मात्रा में न्यूनतम आवश्यक प्रयत्न की आवश्यकता है।

(2) **लेबेन्सटीन** के अनुसार अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में आर्थिक विकास का कार्य **विकास एजेन्ट्स (Growth Agents) के द्वारा किया जाता है। इनमें उद्यमी** (Entrepreneur), **निवेशकर्ता** (Investors), **बचतकर्ता** (Savers) तथा **नवप्रवर्तक** (Innovators) आदि शामिल होते हैं। इन विकास एजेन्टों का विस्तार मुख्य रूप से दो प्रकार की प्रेरणाओं पर निर्भर करता है:

(a) **शून्य राशि प्रेरणायें** (Zero-sum Incentives): इन प्रेरणाओं का केवल **वितरणात्मक प्रभाव** (Distribution Effect) होता है। देश के उत्पादन तथा आर्थिक विकास पर इनका प्रभाव नहीं पड़ता। इनके द्वारा राष्ट्रीय आय में वृद्धि नहीं होती।

(b) **धनात्मक राशि प्रेरणाएं** (Positive-sum Incentives) इनका सम्बन्ध **उत्पादन क्रियाओं** (Production Activities) से होता है। इसके फलस्वरूप राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है।

अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में लोग अधिकतर ऐसी क्रियाओं में लगे रहते हैं जिनका संबंध शून्य राशि प्रेरणाओं से होता है। दूसरे प्रकार की क्रियाएं बहुत कम पाई जाती हैं; इसलिये अल्पविकसित देशों में **शून्य राशि प्रेरणाओं** (Zero-sum Incentives) को कम करके **धनात्मक राशि प्रेरणाओं** (Positive sum-Incentives) को बढ़ाना आवश्यक है। ऐसा न होने पर राष्ट्रीय आय में वृद्धि नहीं होगी। इसलिए **न्यूनतम आवश्यक मात्रा में प्रयत्न** (Critical Minimum Effort) करना आवश्यक हो जाता है। **प्रो० लेबेन्सटीन** के शब्दों में, **"अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले प्रभावों को दूर करने के लिये, जिनके कारण एक देश आर्थिक पिछड़ेपन की अवस्था में बना रहता है, न्यूनतम आवश्यक मात्रा में ऐसे प्रयत्न किए जाने चाहियें, जिनसे धनात्मक राशि प्रेरणाओं तथा शून्य राशि प्रेरणाओं के बुरे प्रभाव दूर किये जा सकें।"** (To overcome these influences which keep the economy in a state of economic backwardness a sufficiently critical minimum effort is required to sustain a rapid rate of economic growth which should stimulate a positive-sum Incentives and create forces for counteracting zero-sum Incentives.– **Leibenstein**)

(3) **उत्पादन के कई साधन अविभाज्य** (Indivisible) होते हैं। यदि उनकी पूर्ण क्षमता का प्रयोग नहीं किया जायेगा तो **आन्तरिक हानियां** (Internal Diseconomies) उत्पन्न होंगी। ऐसी अवस्था में फर्मों के **कुशल** (Efficient) होने के लिये एक न्यूनतम आकार से बड़ा होना अनिवार्य है। इसलिये यह आवश्यक हो जाता है कि आन्तरिक हानियों से बचाव करने के लिये एक आवश्यक न्यूनतम प्रयत्न अर्थात निवेश किया जाना चाहिये। इसके फलस्वरूप सारी अर्थव्यवस्था का विकास होगा तथा **बाहरी बचतें** (External Economies) प्राप्त होंगी।

जनसंख्या में होने वाली वृद्धि आय बढ़ने के कारण नहीं होती। वह तो चिकित्सा आदि की सुविधाओं के कारण मृत्यु दर (Death Rate) कम हो जाने के कारण होती है।

■ 7. आलोचना (Criticism)

लेबेन्सटीन का सिद्धान्त, **रोजन्सटीन रोडान के बड़े धक्के** (Big Push) के सिद्धान्त से बहुत कुछ मिलता-जुलता है परन्तु यह अधिक व्यावहारिक है क्योंकि ''बड़े धक्के के सिद्धान्त'' के अनुसार बड़ी मात्रा में निवेश एक साथ कई उद्योगों में किया जाना चाहिये। अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं में पूंजी की कमी के कारण ऐसा सम्भव नहीं हो पाता। **'न्यूनतम आवश्यक प्रयत्न'** के सिद्धान्त की भी निम्नलिखित आलोचनायें की जाती हैं:

(1) **जन्म दर और मृत्यु दर में सम्बन्ध** (Relationship between Birth Rate and Death Rate): **प्रो० लेबेन्सटीन** ने जनसंख्या में होने वाली वृद्धि तथा आय में उचित सम्बन्ध स्थापित नहीं किया है। उनके अनुसार अल्पविकसित देशों में प्रारम्भ में

न्यूनतम आवश्यक प्रयत्न के पहले की अवस्था से आय बढ़ने के फलस्वरूप जनसंख्या की दर में वृद्धि होती है। परन्तु वास्तव में जनसंख्या में होने वाली वृद्धि आय बढ़ने के कारण नहीं होती। वह तो चिकित्सा सुविधाओं की अधिक उपलब्धता के कारण **मृत्यु दर** (Death Rate) कम हो जाने के कारण होती है।

(2) **अनार्थिक तत्त्व** (Non-economic factors): प्रो० लेबेन्सटीन का यह विचार उचित नहीं है कि न्यूनतम आवश्यक प्रयत्न की अवस्था के पश्चात् आय बढ़ने के कारण जन्म दर कम हो जाने से जनसंख्या कम होने लगती है। वास्तव में अल्पविकसित देशों में जनसंख्या की वृद्धि पर कई प्रकार के सामाजिक, धार्मिक तथा दूसरे अनार्थिक (Non-Economic) तत्त्वों का प्रभाव पड़ता है। प्रो० लेबेन्सटीन ने इन तत्त्वों तथा परिवार नियोजन के अध्ययन को कोई महत्त्व नहीं दिया है।

(3) **मौद्रिक नीति और राजकोषीय नीति की उपेक्षा** (Neglect of Monetary Policy and Fiscal Policy): न्यूनतम आवश्यक सिद्धान्त की इसलिये भी आलोचना की जाती है क्योंकि इस सिद्धान्त में निवेश की मात्रा तथा आय के स्तर को निर्धारित करने वाली **राजकोषीय** (Fiscal) तथा मौद्रिक नीतियों का वर्णन नहीं किया गया है।

(4) **बन्द अर्थव्यवस्था** (Closed Economy): लेबेन्सटीन का सिद्धान्त एक **बन्द अर्थव्यवस्था** (Closed Economy) पर लागू होता है। इसमें राष्ट्रीय आय पर विदेशी व्यापार, विदेशी पूंजी तथा अन्तर्राष्ट्रीय शक्तियों के पड़ने वाले प्रभाव की उपेक्षा की गई है। परन्तु अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास पर विदेशी व्यापार आदि का बहुत प्रभाव पड़ता है।

(5) **राजकीय प्रयासों की अवहेलना** (Neglect of State Role): **लेबेन्सटीन** ने जन्म दर को कम करने में सरकार के प्रयत्नों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया है। कोई भी अल्पविकसित देश इस बात की प्रतीक्षा नहीं कर सकता कि प्रति व्यक्ति आय न्यूनतम जीवन स्तर से अधिक हो ताकि जन्म दर अपने आप कम होनी शुरू हो जाये।

(6) **समय-तत्त्व की अवहेलना** (Neglect of Time Factor): **लेबेन्सटीन थीसिस** का यह दोष है कि यह समय-तत्त्व की उपेक्षा करता है जो कि सतत् प्रयासों के लिये अत्यावश्यक होता है। आत्म-स्फूर्ति को सुनिश्चित करने के लिये संस्थागत तथा उत्पादक ढाँचे में आधारभूत परिवर्तन करना अनिवार्य होता है और ये परिवर्तन तभी लाये जा सकते हैं जबकि समय पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो।

(7) **आधारभूत मान्यता का दोषपूर्ण होना** (Unfounded Basis): **लेबेन्सटीन** मॉडल की यह मान्यता सही नहीं है कि यदि प्रारम्भिक निवेश न्यूनतम आवश्यक आकार से कम रहा है तो जनसंख्या में वृद्धि हो जायेगी। **प्रो० मिन्ट** के मतानुसार यह बात तो आय व जनसंख्या के बीच प्रत्यक्ष सह-सम्बन्ध स्थापित करने जैसी है जिसे कि प्रयोगों द्वारा सिद्ध करना सम्भव नहीं हो सकता।

संक्षेप में, **'न्यूनतम आवश्यक प्रयत्न सिद्धान्त'** अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास का एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है।

प्रश्न (QUESTIONS)

■ I. वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

सभी प्रश्न अनिवार्य हैं (Attempt all the questions)

1. आवश्यक न्यूनतम प्रयत्न के सिद्धान्त का प्रतिपाद ________ ने किया। (लेबेन्सटीन, नर्कसे)
(K.U. 2006, 2009)

2. अल्पविकसित देशों में निर्धनता के दुश्चक्र को तोड़ने के लिए प्रारम्भिक आवश्यकता है
(न्यूनतम निवेश की, समय सम्बन्धित निवेश की)

3. निवेश के न्यूनतम स्तर को कहा जाता है (न्यूनतम आवश्यक प्रयत्न, आवश्यक मुख्य प्रयत्न)

4. लेबेन्सटीन के अनुसार आर्थिक प्रणाली में गत्यात्मकता देने वाली शक्तियों को कहा जाता है
(उत्तेजक तत्त्व, आशंसाएं)

5. लेबेन्सटीन के अनुसार, किसी अर्थव्यवस्था में रुकावट पैदा करने वाली शक्तियों को कहा जाता है (पीछे धकेलने वाले तत्त्व, बाधाएं)

6. लेबेन्सटीन का कहना है कि आय के अधिक स्तर पर जन्म दर की प्रवृत्ति होती है (घटने की, बढ़ने की)

7. वह अवस्था जिसमें मृत्यु दर तथा जन्म दर दोनों निम्न स्तर पर होते हैं उस अवस्था को कहा जाता है (बहुत अधिक आय की अवस्था, बढ़ती हुई आय की अवस्था)

उत्तर (Answer): (1) लेबेन्सटीन, (2) न्यूनतम निवेश की, (3) न्यूनतम आवश्यक प्रयत्न, (4) उत्तेजक तत्त्व, (5) पीछे धकेलने वाले तत्त्व, (6) घटने की, (7) बहुत अधिक आय की अवस्था।

■ II. लघु/परिभाषा रूपी प्रश्न (Short/Definitional Type Questions)

1. What is meant by critical minimum efforts?
   न्यूनतम आवश्यक प्रयत्न से क्या अभिप्राय है?
2. What is the need of critical minimum efforts?
   न्यूनतम आवश्यक प्रयत्न की क्या आवश्यकता है?
3. Write short notes on Stimulants and Shocks.
   आय बढ़ाने वाले तथा आय पीछे धकेलने वाले तत्त्वों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखें।
4. Give the arguments in favour of critical minimum effort.
   न्यूनतम आवश्यक प्रयत्न के पक्ष में तर्क दें।
5. Give two criticisms of critical minimum effort thesis.
   न्यूनतम आवश्यक प्रयत्न के सिद्धान्त की दो आलोचनाएं दें। (K.U. 2006)
6. What are stimulants?
   उत्तेजक तत्त्वों से क्या अभिप्राय है?
   Or
   Define stimulants.
   उत्तेजक तत्त्व को परिभाषित कीजिए। (M.D.U. 2008, 2009)
7. What are Shocks?
   पीछे धकेलने वाले या आघात तत्त्वों से क्या अभिप्राय है?
8. According to Leibenstein what type of utility a child offers to the parents?
   लेबेन्सटीन के अनुसार एक बच्चा माता-पिता को कौन-सी उपयोगिता प्रदान करता है?
9. Draw the diagram of critical minimum efforts thesis.
   आवश्यक न्यूनतम प्रयत्न सिद्धान्त का रेखाचित्र बनाइए। (K.U. 2007, M.D.U. 2008)

■ III. निबन्ध रूपी प्रश्न (Essay Type Questions)

1. Explain the theory of Critical Minimum Efforts?
   न्यूनतम आवश्यक प्रयास के सिद्धान्त की व्याख्या करें।
2. What is the need of Critical Minimum Efforts?
   न्यूनतम आवश्यक प्रयास की क्या आवश्यकता है?
3. State and explain the doctrine of Critical Minimum Effort. What are its shortcomings?
   न्यूनतम आवश्यक प्रयत्न के सिद्धान्त की व्याख्या करें। इसकी क्या कमियां हैं? (K.U. 2005)

Or

Explain Leibenstein critical minimum efforts thesis about economic development. Also discuss its limitations.

आर्थिक विकास के लेबेन्सटीन के आवश्यक न्यूनतम प्रयत्न सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए। इसकी सीमाएं भी बताइए।

(K.U. 2008)

4. Give main criticisms or limitations of Critical Minimum Efforts.

   न्यूनतम आवश्यक प्रयत्न के सिद्धान्त की मुख्य आलोचनाएं या सीमाएं दें।

5. Explain the strategy of critical minimum efforts with the help of a diagram.

   एक रेखाचित्र की सहायता से न्यूनतम आवश्यक प्रयत्न के सिद्धान्त की व्याख्या करें।

6. What is the role of shocks and stimulants to achieve economic development?

   आर्थिक प्रगति को उपलब्ध कराने में उत्तेजक तत्त्वों (Stimulants) और आय को कम करने वाले या आघात तत्त्वों (Shocks) का क्या महत्त्व है?

7. Explain the relationship between population growth and per capita income.

   जनसंख्या वृद्धि तथा प्रतिव्यक्ति आय के सम्बन्ध की व्याख्या करें।

8. Explain Leibenstein's Critical Minimum Efforts theory about economic development.

   आर्थिक विकास के लेबेन्सटीन के न्यूनतम प्रयास सिद्धान्त की व्याख्या करें। (M.D.U. 2008)

9

पर्यावरण - एक अनिवार्यता एवं विलासिता

(ENVIRONMENT - A NECESSITY AND LUXURY)

■ 1. भूमिका (Introduction)

प्रत्येक जीवित प्राणी के लिए पर्यावरण का बहुत अधिक महत्व है। पर्यावरण को अंग्रेजी भाषा में Environment कहते हैं। 'Environment' शब्द को फ्रांसीसी शब्द 'Environir' से लिया गया है जिसका अर्थ है 'घेराव' (To surround)।

अन्य शब्दों में, पर्यावरण से अभिप्राय उन सभी बाहरी परिस्थितियों एवं प्रभावों के समूह से है जो जीवन को प्रभावित करते हैं तथा जिनके कारण इस धरती पर जीवों का विकास एवं जीवित रहना (Survival) संभव होता है। वर्तमान समय में **पर्यावरण**, अर्थशास्त्र के एक महत्त्वपूर्ण अंग के रूप में उभर रहा है।

पर्यावरणीय तथा संसाधन अर्थशास्त्र (Environmental and Resource Economics), अथवा **पर्यावरणीय अर्थशास्त्र** (Environmental Economics) **अर्थशास्त्र की एक नवीन एवम् विकासशील शाखा है। पर्यावरणीय अर्थशास्त्र का सम्बन्ध मुख्यतया पर्यावरण पर पड़ने वाले अर्थव्यवस्था के प्रभाव से, तथा पर्यावरण के अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले प्रभाव** (Implication) **से है और आर्थिक क्रिया का नियमन करने के उस उपयुक्त उपाय से है जिसके द्वारा पर्यावरणीय, आर्थिक तथा अन्य सामाजिक पदार्थों के बीच सन्तुलन की व्यवस्था को प्राप्त किया जा सकता है।** (Environmental economics is primarily concerned with the impact of the economy on the environment, the implication of the environment on the economy and the appropriate way of regulating economic activity so that balance is achieved among environmental, economics and other social goods.)

पर्यावरणीय समस्या का सार (Essence) **अर्थव्यवस्था - उत्पादक का व्यवहार** (Producer Behaviour) और **उपभोक्ता की इच्छाएं** (Consumer Desires) है। यदि अर्थव्यवस्था एवम् पर्यावरण के प्रति हमारा दृष्टिकोण सजग नहीं होगा तो इसका परिणाम यह होगा कि इससे **संसाधन समाप्ति** (Resource Exhaustion) तथा **पर्यावरण अवनति** (Environmental Degradation) की समस्या बनी रहेगी तथा उसके समाधान के लिये आर्थिक प्रणाली (Economic System) को कई अन्य मार्ग एवं उपाय ढूँढने पड़ेंगे।

■ 1.1 पर्यावरण – अर्थ एवं परिभाषा

(Environment - Meaning and Definition)

(1) **इल्लस्ट्रेटड ऑक्सफोर्ड शब्दकोश** (Illustrated Oxford Dictionary) के अनुसार, "**पर्यावरण से अभिप्राय उन भौतिक घेराव, दशाओं, परिस्थितियों आदि से है जिनमें कोई व्यक्ति रहता है।**" (Environment refers to the physical surroundings, conditions, circumstances, etc. in which a person lives. –**Illustrated Oxford Dictionary**)

(2) **फिलिप्स कौनसाइज एनसाइक्लोपीडिया** के अनुसार, "**पर्यावरण का अर्थ है- किसी जीव का भौतिक एवं जैविक घेराव। पर्यावरण से अभिप्राय सभी निर्जीव (अजैवीय) तत्त्वों जैसे तापमान, भूमि-मिट्टी, वातावरण तथा विकिरण और सजीव (जैवीय) जीवों जैसे पौधे, सूक्ष्म-जीव तथा पशु से है।**" (Environment means physical and biological

surroundings of an organism. The environment covers non-living (abiotic) factors such as temperature, soil, atmosphere and radiation, and also living (biotic) organisms such as plants, micro-organisms and animals. – **Philips Concise Encyclopaedia**)

(3) **पर्यावरण (संरक्षण) कानून 1986** के अनुसार, "**पर्यावरण के अन्तर्गत जल, वायु और भूमि को तथा जल, वायु, भूमि, मनुष्यों और अन्य जीवित प्राणियों, पौधों, सूक्ष्म जीवों तथा सम्पत्ति में पाए जाने वाले अन्तर्सम्बन्ध को शामिल किया जाता है।**" (Environment includes water, air and land and the inter-relationship which exists among and between water, air, land and human beings and other creatures, plants, micro-organisms and property. – **Environment (Protection) Act, 1986**)।

पर्यावरण की उपरोक्त परिभाषा के व्यापक अर्थ हैं क्योंकि इसमें भौतिक एवं सजीव (Physical and Living) दोनों पर्यावरण शामिल हैं।

(4) **पार्क** के शब्दों में, "**पर्यावरण उन परिस्थितियों का एक समूह है जो किसी स्थान पर किसी भी समय किसी मनुष्य को घेरे रहता है।**" (Environment is a sum total of conditions which surround a man at a given point in space and time. – **Park**)

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि पर्यावरण (i) भौतिक (अजैवीय) तथा (ii) जैविक (जैवीय) दो मुख्य तत्वों का समूह है। **अजैवीय तत्त्वों** (Abiotic Elements) में अन्तरिक्ष (Space), भूमि-आकृति, जलसमूह (समुद्र आदि), जलवायु, मिट्टी, चट्टानें, खनिज सम्पत्ति आदि शामिल होते हैं। इसके विपरीत **जैवीय तत्त्वों** (Biotic Elements) में न केवल मनुष्य (अपने सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवहार सहित) ही शामिल होता है बल्कि सभी पौधे, जानवर, सभी प्रकार के जीव-जन्तु भी शामिल होते हैं। जैवीय तथा अजैवीय दोनों तत्त्व एक न अलग होने वाले, **परस्पर अन्तर्क्रिया पर निर्भर है तथा आपस में मिलकर एक दूसरे को प्रभावित करते हैं और पर्यावरण का निर्माण करते हैं।**

अतएव जैवीय, अजैवीय परिवेश तथा ऊर्जा, सभी मिल कर पारिस्थितिक तन्त्र का निर्माण करते हैं। (Eco-system consists of the living organisms, the non-living surroundings and the energy.)

■ 2. पर्यावरण की विशेषताएँ (Characteristics of Environment)

पर्यावरण की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं:

(1) **कुल योग** (Sum Total): किसी भी समय बिन्दु पर किसी स्थान का पर्यावरण उस स्थान के सभी सजीव जीव (Living Organisms) एवं निर्जीव परिवेश (Non-living Surroundings) का कुल योग होता है।

(2) **तीन मूल घटक** (Three Basic Components): जीवोम (Biome), आवास (Habitat) तथा ऊर्जा किसी पर्यावरण संरचना के तीन मूल घटक होते हैं।

(3) **उचित संगठित तन्त्र** (Well Organised Systems): पर्यावरण एक ऐसा उचित संगठित तन्त्र है जिसमें परस्पर अन्तर व्यवहार (Mutually Interacting) तथा उत्तम रूप से एकीकृत (Well Integrated) तत्त्व (Elements) पाए जाते हैं।

(4) **जटिल अन्तर्व्यवहार** (Complex Interactions): पर्यावरण के विभिन्न तत्त्वों तथा उनके घटकों (Components) के बीच जटिल अन्तर्व्यवहार पाया जाता है। उदाहरण के लिए, भौतिक पर्यावरण के विभिन्न तत्त्व जैसे भूमि, मिट्टी, जलवायु आदि एक-दूसरे को प्रभावित करने के साथ-साथ पर्यावरण के विभिन्न घर को जैसे पेड़-पौधे, जानवर, जीव-जन्तु, मनुष्य आदि को भी प्रभावित करते रहते हैं और उनसे स्वयं भी प्रभावित होते हैं।

(5) **पूर्ण क्रियान्वन प्रणाली** (Perfect Functioning System): पर्यावरण एक पूर्ण क्रियान्वन प्रणाली है जिसमें चक्रीय क्रिया प्रणाली (Cyclic Mechanism) अर्थात् जल-चक्र (Water Cycle), ऊर्जा चक्र, जैवीय-भू-रसायनिक (Bio-geochemical) चक्र आदि एक श्रृंखला के रूप में परस्पर सम्बन्धित है।

(6) सौर ऊर्जा (Solar Energy): पर्यावरण के सम्पूर्ण तन्त्र को क्रियाशील रखने के लिए सौर ऊर्जा एक आधारभूत शक्ति स्रोत है।

(7) खुला तन्त्र (Open System): पर्यावरण एक खुला तन्त्र है जिसमें द्रव्य (Matter) तथा ऊर्जा (Energy) का आगमन तथा बहिर्गमन अर्थात् आना-जाना होता रहता है।

(8) निजी उत्पादकता (Own Productivity): पर्यावरण तन्त्र की अपनी उत्पादकता होती है। यह जैव पदार्थ (Organic Matter) को जन्म देता है। परन्तु इसकी विकास की दर ऊर्जा की उपलब्धता एवं मात्रा पर निर्भर करती है।

(9) पारिस्थितिक सन्तुलन (Ecological Balance): पर्यावरण तन्त्र आमतौर पर स्वयं उस समय तक **पारिस्थितिक सन्तुलन** बनाए रखता है जब तक कि इसके किसी एक या अधिक नियन्त्रक कारक (Factor) में कोई रुकावट न आ जाए।

■ 3. पर्यावरण के घटक (Components of Environment)

पर्यावरण के मुख्य घटक तीन हैं:

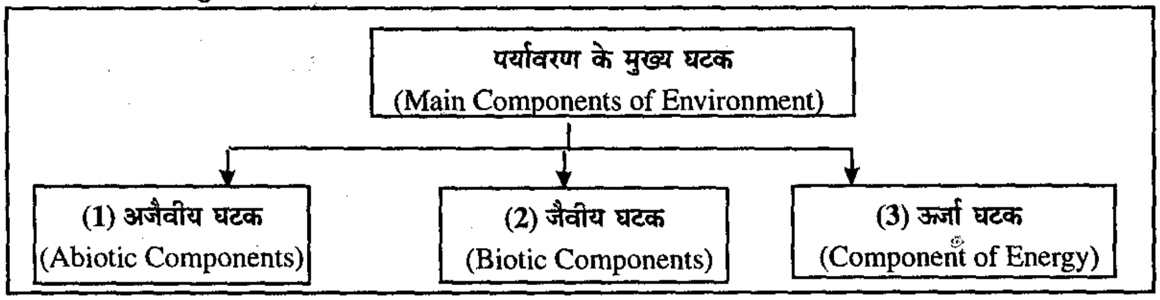

(1) अजैवीय घटक (Abiotic Components): अजैवीय घटक से अभिप्राय समस्त पृथ्वी ग्रह (Planet) की ऊपरी तथा निचली सतह से है। इसके तीन तत्त्व (Elements) हैं:

(a) भू-स्थल (Lithosphere): ऊपर की मिट्टी (Top Soil) या धरती (Earth) के **ठोस पदार्थ** (Solid Matter) और भूमि के नीचे इसके सभी घटक, जैसे खनिज पदार्थ व कच्चे धातु (Metallic Ores), को **भू-स्थल** (Lithosphere) कहते हैं।

(b) जल स्थल (Hydrosphere): समुद्र, नदियों, जलाशयों, झीलों, नमी वाली भूमि आदि में जल एवं पहाड़ों पर बर्फ (Ice and Snow), आदि को **जलस्थल** (Hydrosphere) कहते हैं।

(c) वातावरण (Atmosphere): हमारे चारों ओर गैस का सम्मिश्रण (Gaseous Mixture) अर्थात् नाइट्रोजन, ऑक्सीजन तथा भाप (Water Vapour) आदि हैं, इसे **वातावरण** (Atmosphere) कहते हैं।

अतएव जीवन के लिए **भूमि, जल तथा वायु** तीन अति आवश्यक तत्त्व हैं। **भूमि** (Soil): सभी प्रकार के खाद्य एवं खनिज पदार्थों का एक मात्र स्रोत है। **वातावरण** (Atmosphere): जैविक जीवन (Organic life) के लिए गैस का मुख्य स्रोत है। **समुद्र:** तरल जल (Liquid Water) के मुख्य स्रोत हैं। जिस क्षेत्र में ये तीनों तत्त्व पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं, वह क्षेत्र जीवन के लिए बहुत ही उपयोगी, उपजाऊ एवं सुखकर हो जाता है।

(2) जैवीय घटक (Biotic Components): जैवीय घटक को निम्नलिखित श्रेणियों (Categories) में विभाजित किया जाता है:

(a) पेड़-पौधे (Plants): ये मुख्य रूप से मिट्टी पोषक (Soil nutrients), जल तथा सूर्य की रोशनी पर निर्भर करते हैं।

(b) जानवर/जीव-जन्तु (Animals): इनमें सभी प्रकार के जानवर, रेंगने वाले जन्तु (Reptiles), चूहा, गिलहरी (Rodent), कीड़े (Insects), पक्षी तथा मछलियां शामिल होते हैं।

(c) मनुष्य (Man): मनुष्य भी जीव-जन्तु श्रेणी का ही एक भाग है, परन्तु इसकी गणना एक अलग समूह (Group) में की जाती है क्योंकि इसमें अपनी योग्यता एवं क्षमता के आधार पर प्रकृति को तकनीकी प्रयोग (Technology) द्वारा सुधारने का गुण पाया जाता है।

(d) सूक्ष्मजीव (Micro-Organisms): इसमें वे बहुत छोटे-छोटे जीव आ जाते हैं जो आँखों को नजर तो नहीं आते परन्तु फिर भी ये सजीव हैं जैसे बैक्टीरिया (Bacteria) और फंगी (Fungi) आदि।

इन सबमें पेड़-पौधों की अपनी एक अलग विशेषता (Unique Property) यह है कि ये अपने भोजन का उत्पादन, मिट्टी (Soil), जल तथा सूर्य के प्रकाश द्वारा स्वयं कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त सभी प्रकार के जैविक पदार्थ (Organic Matter) आदि की प्राकृतिक चक्रीय शृंखला भी इन्हीं पेड़-पौधों द्वारा गतिशील रह पाती है। अत: यदि पेड़-पौधे न हों तो किसी भी प्रकार का जैविक जीवन सम्भव नहीं हो पाएगा। इसी वजह से पेड़-पौधों को जीव-मंडलीय पर्यावरण (Biospheric Environment) का सबसे उत्तम उप-तन्त्र (Sub-system) कहा गया है।

(3) ऊर्जा (Energy): जैविक जीवन के प्रजनन (Generation) एवं भरण-पोषण के लिए ऊर्जा का महत्त्व बहुत अधिक है। ऊर्जा में **सौर ऊर्जा** (Solar energy) तथा **भू-तापीय ऊर्जा** (Geo-thermal energy) शामिल होती है, परन्तु सौर ऊर्जा पर्यावरण के लिए ऊर्जा का मुख्य स्रोत है। यदि धरती को इसकी आपूर्ति निरन्तर और बहुत (Abundant) मात्रा में न हो, तो यहाँ जीवित रहना कठिन है।

■ 4. पर्यावरण - एक अनिवार्यता (Environment - A Necessity)

अनिवार्यता से अभिप्राय मनुष्य की उन जरूरतों (Requirements) **से है जिनकी पूर्ति** (fulfilment) **जीवित रहने तथा कार्यकुशलता बनाए रखने के लिए आवश्यक है।** अन्य शब्दों में, ये ऐसी जरूरतें (Needs) हैं जिनकी सन्तुष्टि इस धरती पर जीवित रहने के लिए एक आवश्यकता है।

अनिवार्यताओं में साधारणतया हम **ताजा हवा, जल, भोजन, वस्त्र, ऊर्जा, आवास** (Shelter) आदि शामिल करते हैं। अनिवार्यताएं वे भरण-पोषण आधार (Supporting Base) हैं जो जीवन के लिए आवश्यक हैं। आज के जीवन में पर्यावरण एक अनिवार्यता बन चुका है। पर्यावरण के साथ मनुष्य की विभिन्न क्रियायें जुड़ी हुई हैं। चूंकि प्राकृतिक पर्यावरण हमें ऊर्जा, जल, वातावरण आदि कई अनिवार्य एवं आवश्यक पदार्थ उपलब्ध कराता है, इसलिए अर्थव्यवस्था की प्रत्येक आर्थिक क्रिया इस पर निर्भर है और इससे निकट रूप से जुड़ी हुई है।

प्रो. ए. पी. थरलवाल के अनुसार, **"जीवन को कायम रखने तथा उत्पादन को आगत** (Inputs) **प्रदान करने के लिए पर्यावरण जीवनीशक्ति है।"** (The environment is vital to supporting life and providing inputs to production. - **A. P. Thirlwall**)। अल्पविकसित देशों में निर्धन वर्ग अपनी आजीविका के लिए तथा अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए प्राकृतिक पर्यावरण पर ही मुख्यतया निर्भर हैं। विकसित देशों में भी पर्यावरण की भूमिका बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण है। पर्यावरण के प्रभाव एवं महत्त्व का अनुभव हम अपने जीवन के प्रत्येक चरण में करते हैं।

हमारा जीवन न केवल आसपास वाले भौतिक वातावरण द्वारा प्रभावित होता है बल्कि बहुत दूर स्थित घटकों (Components) से भी काफी प्रभावित होता है। उदाहरण के लिए, (a) **जैविक जीवन** (Organic Life) को सबसे अधिक प्रभावित करने वाली **शक्ति सौर ऊर्जा** (Solar Energy) है। **चांद** भी भूमि स्थित जैविक जीवन को प्रभावित करता है। (b) इसी प्रकार **गैस** भी, पृथ्वी को सूर्य-ऊर्जा के हानिकारक प्रभावों से बचाकर जैविक जीवन को संभव एवं सुविधाजनक बनाती है। (c) **पृथ्वी पर्पटी** (Earth's Crust) की संरचना का भी पृथ्वी के जैविक जीवन पर प्रभाव पड़ता है क्योंकि हर प्रकार के खनिज पदार्थों की उपलब्धि पृथ्वी के इसी भाग से होती है। (d) पृथ्वी के भीतर का भाग, जिसे **प्रावार** (Mantle) कहते हैं, भी कुछ ऐसा है जिस पर पृथ्वी के रहने वाले जैविक जीवन का किसी न किसी रूप में प्रभाव पड़ता है। (e) पृथ्वी के नीचे का **पिघला हुआ कोर** (Earth's Molten Core) भी जीवन को प्रभावित करता है। यह कोर चुम्बकीय शक्ति (Magnetic Power) उत्पादित करता है जो पृथ्वी को अन्तरिक्ष से निरन्तर पृथ्वी पर गिरती हुई विद्युत आवेशित वस्तुओं से सदैव बचा कर रखता है।

अतएव, पृथ्वी पर जीवन, आन्तरिक तथा बाहरी शक्तियों (Endogenic and Exogenic Forces) द्वारा सृजित अनेक प्रक्रियाओं द्वारा प्रभावित होता है। ये सभी प्रक्रियाएं जीव मण्डल पर्यावरण (Biospheric Environment) के भीतर या बाहर उत्पन्न हो सकती हैं।

■ पर्यावरण की अनिवार्यता (Necessity of Environment)

पर्यावरण के निम्नलिखित घटक (Components) हमारी विभिन्न जरूरतों (Requirements) की पूर्ति करने के लिये आवश्यक हैं:

■ (A) अजैवीय घटक (Abiotic Components)

अजैवीय घटकों में निम्नलिखित को शामिल किया जाता है जिनसे हमारी अनेक आवश्यकताओं (Needs) की पूर्ति होती है।

(i) स्थल-मण्डल (Lithosphere): इसमें हम **भू-आकृतियों** (Land Forms) को शामिल करते हैं। प्रत्येक भू-स्थल का मानव जीवन में बहुत अधिक महत्त्व है। उदाहरण के लिए:

(a) भू-आकृतियाँ जैसे पर्वत, मैदान, घाटियां (Valleys) आदि पृथ्वी पर आवास (habitat) के लिये आवश्यक है।

(b) भू-मिट्टी (Soils) पृथ्वी पर आवास को संभव बनाती है तथा यह निश्चित करती है कि कहां पर कितने आवासियों का रहना संभव हो सकता है।

(c) खनिज तेल का वितरण (Distribution of Petroleum Oil): खनिज तेल तथा अनेक प्रकार के अन्य खनिज पदार्थों की मात्रा एवं वितरण संसार के भिन्न-भिन्न भागों में औद्योगिक विकास के लिये आवश्यक हैं।

(d) दर्शनीय स्थल (Sight Seeing): वन, समुद्र तट व गहरी घाटियाँ पर्यटकों (Tourists) के लिए एक आकर्षण का केन्द्र है। वे इन क्षेत्रों की सुन्दरता एवं प्राकृतिक वातावरण से मोहित हो कर इनकी एक झलक (Glimpse) पाने के लिए वहाँ खिंचे चले आते हैं। ये प्राकृतिक दृश्य पर्यटकों के मन एवं शरीर को न केवल ताजगी प्रदान करते हैं बल्कि वहां के स्थानीय निवासियों को रोजगार के अवसर प्रदान करते हैं।

(e) इसके विपरीत **भूचाल** (Earth Quakes) तथा **ज्वालामुखी क्रियाओं** (Volcanic Activities) जैसी दुविधाओं से पीड़ित क्षेत्र में जीवन के लिए पर्यावरण सम्बन्धी अनेक कठिनाइयों (Environmental Hazards) का ज्ञान एवम् उनका समाधान जीवन की एक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है।

अतएव प्रकृति ने मनुष्य को भूमि-मिट्टी, वन तथा खनिज के रूप में अपार सम्पत्ति (Immense Wealth) प्रदान की है। परन्तु मनुष्य द्वारा इसके नासमझी एवं लापरवाही के प्रयोग से मानवता (Humanity) को बहुत अधिक हानि हुई है।

(ii) वायुमण्डल (Atmosphere): वायुमण्डल भी पृथ्वी पर जीवित रहने के लिये एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है। यह पर्यावरण का वह महत्त्वपूर्ण भाग है, जो (a) मानव जीवन के लिये सभी प्रकार की गैसें जैसे ऑक्सीजन प्रदान करता है। (b) यह सौर ऊर्जा प्रदान करता है अर्थात् यह सूर्य की ऊर्जा पृथ्वी पर आने देता है तथा (c) यह धरती को इतना गर्म नहीं होने देता कि यहाँ रहना ही मुश्किल हो जाए। इस प्रकार वायुमण्डल यह निर्धारित करता है कि किस प्रकार तथा कितनी मात्रा में जीवन के लिए आवश्यक ऊर्जा इस पृथ्वी तक पहुँचती रहे।

(iii) जलमण्डल (Hydrosphere): इस पृथ्वी पर प्रत्येक प्रकार के जीवन के लिए जल अत्यन्त आवश्यक है। **जल मण्डल से अभिप्राय पृथ्वी पर स्थित सभी छोटे-बड़े समुद्र** (Oceans), **झीलें** (Lakes), **नदियों के साथ-साथ वातावरण में उपस्थित वाष्प** (Water Vapours in Atmosphere), **भूमि पर्पटी के नीचे मिट्टी में नमी, भौमजल** (Ground water), **तथा पर्वतों में स्थित सभी प्रकार के हिमनद, बर्फ छत्रक** (Glaciers and Ice Caps) **से है।** पृथ्वी के कुल जल का लगभग 99 प्रतिशत भाग समुद्रों तथा बर्फ छत्रकों (Ice Caps) में स्थित रहता है और शेष केवल 1 प्रतिशत जल वायुमण्डल (Atmosphere) झीलों, नदियों, भूमि, मिट्टी आदि में मिलता है, परन्तु यह भी पृथ्वी पर जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

जल के महत्त्व (Significance of Water) को संक्षेप में निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है, (1) यह एक वह **पेय पदार्थ** है जिसके बिना जीवन संभव नहीं है। यह सभी जीवाणुओं (Organisms) की पोषक प्रक्रिया (Nourishment Process) में अत्यन्त सहायक है। इसका अभाव मृत्यु का कारण बन जाता है। (2) **जल जीव मण्डल** (Biosphere) में तत्वों के संचालन (Circulation of Elements) में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है और इसमें चल रही विभिन्न प्रकार की उपायचयी प्रक्रियाओं (Metabolic Processes) के लिए माध्यम (Medium) का काम करता है जिससे जीवन संभव हो पाता है। (3) **जल का सिंचाई के लिये** प्रयोग करके उत्पादकता के प्राकृतिक रूप (Natural Pattern of Biological Productivity) में परिवर्तन किया जा सकता है। (4) चूंकि जल में **सभी प्रकार के पदार्थ विलीन** (Dissolve) हो सकते हैं, इसलिए इसे एक तरल संसाधन (Flow Resource) के रूप में प्रयोग किया जा सकता है जैसे कि हर प्रकार के अवशिष्ट (Waste) को हटाने (Removal) के लिए। (5) जल हर प्रकार के **उद्योग** और कृषि में भी एक कच्चे माल के रूप में प्रयोग किया जाता है। जल विद्युत (Hydro-power) के उत्पादन में जल को टरबाइन को चलाने में प्रयोग में लाया जाता है। (6) जल मछलियों (Marine Fisheries) **के लिए जीवन माध्यम प्राप्त कराता है। मछली विश्व के** 10 करोड़ लोगों को प्रोटीन व भोजन उपलब्ध कराती है। (7) **यातायात, मनोरंजन** (Recreation) आदि के लिये जल का प्रयोग एक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है।

उपरोक्त विवरण से सिद्ध होता है कि जल केवल जीवन को ही संभव नहीं बनाता बल्कि जीवन को स्वच्छ (Neat), **सुन्दर व आरामदायक बनाने में जल की एक महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।**

परन्तु जल की सरल, निःशुल्क एवम् अत्यधिक उपलब्धता (Abundant Supply) के कारण इसे संसाधन के रूप में उतना अधिक महत्त्व नहीं दिया गया है, जितना कि दिया जाना चाहिए। लोग तो यह समझते हैं कि नल खोलो तो जल पाओ। परन्तु जितनी जल्दी इसमें भविष्य में आने वाली कमी का हमें आभास हो जाए, उतना ही अच्छा होगा। कहीं ऐसा न हो कि **आज तो हम इसे बाल्टियों** (Buckets) **के रूप में मापें और एक समय ऐसा भी आ जाए कि हमें इसको चम्मचों द्वारा मापना पड़ जाए** (Measure with Spoons)।

■ (B) जैवीय घटक (Biotic Components)

पर्यावरण के जैवीय घटक तीन हैं, - **पेड़-पौधे, पशु-पक्षी व मनुष्य तथा सूक्ष्म जीव** (Micro-Organisms)। इन्हें जैविक मण्डल तन्त्र के तीन उप-तन्त्र (Sub-systems) भी कहा जा सकता है:

(i) वनस्पति या पेड़-पौधे (Biosphere or Plants): इन तीनों में से वनस्पति या पेड़-पौधे अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। पेड़-पौधे प्राथमिक उत्पादक (Primary Producers) होते हैं। क्योंकि ये अपने लिए प्रकाश संश्लेषण प्रणाली (Photosynthesis) प्रक्रिया द्वारा स्वयं ही भोजन पैदा कर लेते हैं, इसलिए इन्हें **स्वपोषी** (Autotrophs) कहा जाता है। पेड़-पौधे उन सभी प्रकार के जैविक पदार्थों (Organic Matter) का अकेले ही उत्पादन करते हैं जिनका प्रयोग व उपभोग सभी तीनों जैवीय घटकों (Biotic Components) द्वारा किया जाता है। इसके अतिरिक्त पेड़-पौधों के कारण ही प्रकृति के सभी जैविक पदार्थों तथा पोषकों (Nutrients) का अवर्तन (चक्र) व पुनः चक्रण (Cycling and recycling) संभव हो पाता है। इस प्रकार पेड़-पौधे या वनस्पति ही पशु-पक्षी एवं मनुष्य को सदैव खाद्यान्न एवं ऊर्जा प्रदान करके जीवित रखते हैं।

(ii) पशु-पक्षी (Animals): जहाँ पेड़-पौधे या वनस्पति को मुख्य उत्पादक कहा जाता है वहां पशु-पक्षियों को मुख्य उपभोक्ता (Primary Consumers) कहा जाता है। पशु-पक्षियों को **परिपोषित** (Heterotrophic) घटक की संज्ञा दी जाती है। पशु-पक्षी (a) पेड़-पौधों द्वारा प्रदान किए गए सभी प्रकार के जैविक पदार्थों को प्रयोग में लाते हैं, (b) जैविक पदार्थों का पुनर्वितरण (Rearrange) करते हैं और (c) जैविक पदार्थों का अपघटन (Decomposition) या नष्ट करते हैं।

(iii) सूक्ष्म जीव (Micro-Organisms): इनमें सभी प्रकार के सूक्ष्म जीवाणु (Bacteria), कवक (Fungi) आदि आते हैं। इनको सामान्यतया **अपघटक** (Decomposers) के नाम से जाना जाता है। इनका काम मृत पेड़-पौधों (Dead plants), मृत पशु-पक्षियों (Dead animals) व अन्य मृत जैविक पदार्थों (Organic Matter) का अपघटन (Decomposition) या उन्हें नष्ट करना है। इस अपघटन क्रिया द्वारा ही ये सूक्ष्म जीव अपना भोजन व पोषण प्राप्त कर पाते हैं। इस अपघटन प्रक्रिया के अतिरिक्त ये सूक्ष्म

जीवाणु इन जैविक पदार्थों को इस विधि से अलग-अलग भी कर देते हैं कि उनमें से कुछ का जीवित पेड़-पौधे दोबारा प्रयोग (Re-use) कर सकते हैं।

■ (C) ऊर्जा (Energy)

ऊर्जा पर्यावरण का एक वह अन्य महत्त्वपूर्ण घटक है जिसके अभाव में पृथ्वी पर जीवन असंभव हो जाता है। **पृथ्वी पर सभी जैविक जीवन** (Biological Life) **के प्रजनन** (generation) **एवं पुनः** उत्पादन (Reproduction) **के लिए ऊर्जा अत्यन्त आवश्यक है** अर्थात् पृथ्वी पर जैविक जीवन के पनपने तथा उसे कायम रखने के लिए ऊर्जा अति आवश्यक है। जीव मण्डल (Biosphere) में सभी जीव एक मशीन की भांति है जो ऊर्जा द्वारा जीवित रहने की शक्ति प्राप्त करते हैं। इसी भांति ऊर्जा को भी एक प्रकार से दूसरी प्रकार में बदलने में (Convert) जैविक जीवन की आवश्यकता पड़ती है। उदाहरण के लिए, सौर-ऊर्जा जब पेड़-पौधों में जाती है तो पेड़-पौधे इसे रसायन ऊर्जा (Chemical Energy) में बदल देते हैं। इसीलिए कहा जाता है कि पदार्थ तथा ऊर्जा (Matter and Energy) दोनों के आपसी आगत-निर्गत (Input-Output) पद्धति द्वारा ही प्रकृति में जैविक जीवन संभव हो पाता है।

पर्यावरण के लिए ऊर्जा का मुख्य स्रोत **सौर ऊर्जा** (Solar Energy) है। प्रकृति में, विभिन्न प्रक्रियाओं द्वारा, ऊर्जा रूपान्तरण (Transformation) भी होता रहता है। उदाहरण के लिए, जब सौर ऊर्जा पृथ्वी पर पहुँचती है तो यह तापीय-ऊर्जा (Thermal Energy) में रूपांतरित हो जाती है; और जब सौर-ऊर्जा से जल का वाष्पीकरण (Evaporation) होता है तो सौर-ऊर्जा **गुप्त-ऊष्मा ऊर्जा** (Latent-heat energy) में परिवर्तित हो जाती है; और जब पेड़-पौधे या वनस्पति में सौर-ऊर्जा प्रकाश संलेषण प्रक्रिया (Photosynthesis) द्वारा भोजन में बदल जाती है, तो इसका रूप **रासायनिक ऊर्जा** (Chemical Energy) में परिवर्तित हो जाता है।

बेशक ऊर्जा का एक रूप से दूसरे रूप में रूपान्तरण एक निरन्तर प्रक्रिया (Continuous Process) है परन्तु कुल ऊर्जा की कुल मात्रा सदैव एक सी रहती है। इसलिए **ऊर्जा का प्रयोग** (use) **तो किया जा सकता है परन्तु इसका उपभोग** (Consumption) **संभव नहीं है** (Energy can be used but cannot be consumed)। इसका अर्थ यह हुआ कि जब भी कोई कार्य (Work) किया जाता है तो ऊर्जा का रूपान्तरण होता है। इस प्रकार हर रूप में ऊर्जा की मात्रा भिन्न-भिन्न हो जाती है।

■ 4.1 स्वस्थ पर्यावरण (Healthy Environment)

इस पृथ्वी पर रहने वाले प्रत्येक निवासी का यह मूल अधिकार है कि उसे एक स्वस्थ पर्यावरण की प्राप्ति हो। सच बात तो यह है कि संसार में जन-समूह के मूल अधिकारों (Fundamental Human Rights) की सूची में एक अधिकार स्वस्थ पर्यावरण की आकांक्षा होना चाहिए। व्यक्तिगत स्तर, राज्य तथा राष्ट्रीय स्तरों पर, तब ही, पर्यावरण का लेखा-जोखा (Accounting) उचित हो सकता है। स्वाभाविक रूप से यह प्रश्न उठता है कि स्वस्थ पर्यावरण से तात्पर्य क्या है तथा स्वस्थ पर्यावरण को कैसे बनाए रखा जा सकता है?

साधारण शब्दों में, **स्वस्थ पर्यावरण से अभिप्राय उस अवस्था से है जिसमें न्यूनतम पर्यावरण संबंधी समस्याओं के साथ जीवन की गुणवत्ता उत्तम हो** (A Healthy Environment is the one which permits the highest quality of life with minimum environmental problems)। स्वस्थ पर्यावरण संबंधी मुख्य समस्याएं निम्नलिखित हैं;

(a) **वायुमण्डल की गुणवत्ता** (Air Quality), (b) **जल की गुणवत्ता तथा साफ-सफाई** (Water Quality and Sanitation), (c) **ठोस कूड़ा-करकट व इसका उपचार** (Solid Waste Disposal) और (d) **प्राकृतिक संसाधन आधार का संरक्षण** (Preservation of Natural Resource Base)।

पर्यावरण से संबंधित उपरोक्त सभी समस्याओं को हल करने तथा पर्यावरण को स्वच्छ रखने के लिए समाज को कुछ कीमत अवश्य चुकानी पड़ती है। **विकसित देशों** ने तो इसके लिए कई सुधारात्मक उपाय अपनाए हैं, परन्तु जहां तक अल्पविकसित देशों का सवाल है, वहाँ एक तो समस्याएं बहुत अधिक हैं, दूसरे उनके पास इनके समाधान के लिए वित्तीय साधनों का भी अभाव है। इसीलिए इन देशों में पर्यावरण की समस्याएं ज्यों की त्यों ही बनी हुई हैं। इसी के परिणामस्वरूप इन निर्धन देशों में जीवन की गुणवत्ता का स्तर निरन्तर

गिरता जा रहा है। इस संदर्भ में यहां यह कह देना आवश्यक है कि प्रत्येक अर्थव्यवस्था को अपने पर्यावरण के प्रदूषण एवम् अवनति को रोकने के लिए पर्यावरण का परिकलन (Accounting of Environment) लगातार करते रहना चाहिए ताकि संसार में प्राकृतिक संसाधनों के मूल आधार (Resource Base) की और अधिक अवनति (Degradation) न हो पाए। इस संबंध में संसार के सभी देशों का यह नैतिक उत्तरदायित्व (Moral Obligation) है कि प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग इस विधि से किया जाए कि प्राकृतिक रूप से वे उसी गति से बढ़ते भी रहें और प्रकृति उनको पुन:रचित (Recharge) भी करती रहे। यदि ऐसा हो पाना संभव है तब प्रत्येक समाज में जीवन-गुणवत्ता के स्तर को सर्वश्रेष्ठ एवं उच्च कोटि का बनाया जा सकता है।

आज की स्थिति में पर्यावरण की अवनति (Degradation) न केवल समाज की वर्तमान पीढ़ी के लिए बल्कि भावी पीढ़ी के लिए भी एक गंभीर बोझ बनी हुई है और यह आगे चलकर और भी दु:खदाई सिद्ध हो सकती है। अतएव पर्यावरण की अवनति (Degradation) ने निम्नलिखित समस्याओं को जन्म दिया है:

(1) **वायुमण्डल में प्रदूषण** (Air Pollution), (2) **जल प्रदूषण तथा स्वच्छता** (Water Contamination and Sanitation), (3) **ठोस कूड़ा-करकट** (Solid Waste), (4) **वनोन्मूलन** (Deforestation), (5) **शोर प्रदूषण** (Noise Pollution), (6) **जलवायु परिवर्तन** (Climate Change), (7) **अम्लीय वर्षा** (Acid Rain), (8) **ओज़ोन लेयर की गिरावट** (Depletion of Ozone Layer), (9) **मरुस्थलीकरण** (Desertification), (10) **जैव विविधता का पतन** (Decline of Bio-diversity) आदि।

इन सभी समस्याओं का सविस्तार विवरण आगे अध्याय 13 में किया गया है।

पर्यावरण, मानव समाज तथा इनका अर्थव्यवस्था से सम्बन्ध
(Relation Between Environment, Human Society and its Economy)

पर्यावरण, मानवीय समाज तथा अर्थव्यवस्था में निम्न तीन प्रकार (Three-fold) का सम्बन्ध पाया जाता है:

(i) पर्यावरण अर्थव्यवस्था को **कच्चा माल** (Raw Material) **उपलब्ध कराता है**, उत्पादन प्रक्रिया द्वारा जिसका उपभोक्ता पदार्थों में रूपान्तरण किया जाता है। कच्चे माल में **ऊर्जा शामिल** है जो स्वयं एक उपभोक्ता पदार्थ तथा माध्यमिक पदार्थ (Intermediate) है, यह ही रूपान्तरण को संभव बनाता है।

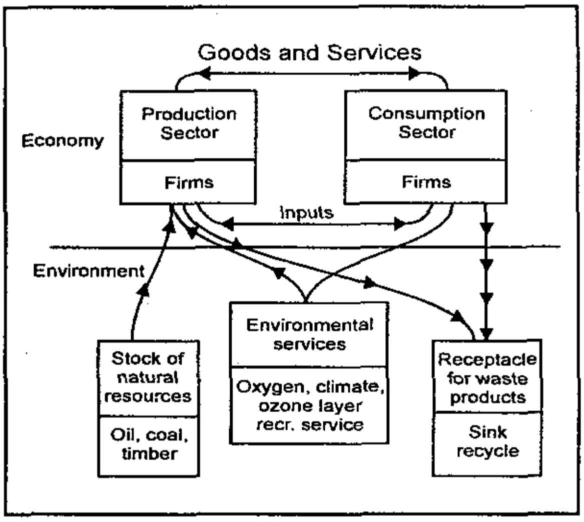

Figure 1. Environment- Economy Interaction

(ii) पर्यावरण **सेवाएं** (Services) भी उपलब्ध कराता है जिनका उपभोक्ताओं द्वारा प्रत्यक्ष प्रयोग किया जाता है। ये **महत्त्वपूर्ण जीवन सुरक्षा सेवाएं** (Critical Life-Support Services) हो सकती हैं जैसे हवा में वह **आक्सीजन** जिसके द्वारा हम सांस लेते हैं अथवा **जल** जिसे हम पीते हैं। ये सौंदर्य प्रेमी (Aesthetic) **अथवा मनोरंजन संबंधी सेवाएं** (Recreational Services) हो सकती हैं जिनसे हम आनन्द व सुख प्राप्त करते हैं जैसे वनों में सैर (Rambling) अथवा नदी में बोटिंग करना।

(iii) उत्पादन तथा उपभोग प्रक्रिया के फलस्वरूप जो **व्यर्थ पदार्थ** (Waste Products) पैदा होते हैं। पर्यावरण उन सभी के लिए **आधान** (Receptacle) या सिंक का कार्य करता है। पर्यावरण एक निष्क्रिय सिंक (Passive Sink) नहीं है बल्कि इन व्यर्थ पदार्थों को नष्ट करके पर्यावरण शुद्ध एवं साफ-सुथरा बनाता है और व्यर्थ पदार्थों का पुन: चक्रण (Recycle) करके वह आकार देता है। चित्र 1 पर्यावरण, मानव समाज एवम् अर्थव्यवस्था में सम्बन्ध प्रगट करता है।

■ 5. पर्यावरण - एक विलासिता (Environment - A Luxury)

विलासिता से अभिप्राय उन भौतिक जरूरतों (Materialistic Needs) **से है जिनकी सन्तुष्टि से हमारे आनन्द** (Pleasure), **सम्पन्नता** (Prosperity) तथा **गौरव** (Splendour) **में वृद्धि होती है**, जैसे विलासी कारें, एयरकंडीशनर, कीमती शराब, नशीली दवाइयां (Drugs), ऊँची-ऊँची अट्टालिकाएं (Palatial Buildings) आदि। पिछले कई वर्षों से हमारा जीवन इस प्रकार से बनता जा रहा है कि हम अपनी अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति से ही सन्तुष्ट नहीं हो पाते, बल्कि आवश्यकताओं की बहुलता के कारण पहले से अच्छा व बेहतर जीवन स्तर प्राप्त करने की हमारी लालसा निरन्तर बढ़ती जा रही है। उत्पादन तकनीक में सुधार आने से उत्पादकों ने उन आरामदायक एवं विलासी वस्तुओं का उत्पादन करना शुरू कर दिया है जिसके उपभोग ने हमारी जीवन शैली को बिल्कुल ही बदल दिया है। इसके अतिरिक्त प्रदर्शनकारी उपभोग (Conspicuous Consumption) ने सामाजिक प्रतिष्ठा बनाए रखने के लिए नवीनतम विलासी वस्तुओं में अब इतनी विभिन्नता आ गई है कि उत्पादक तथा उपभोक्ता के रूप में हमने इसके पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभाव (Impact) की बिल्कुल अवहेलना करनी शुरू कर दी है। अतएव हमारी आज की सुख-सुविधा एवं विलासिता पर्यावरण की लागत या गिरावट का एक प्रमुख कारण बन गई है।

पर्यावरण का प्रकृति से निकटतम सम्बन्ध है और प्रकृति ने हमारे लिए जो भी संसाधन उपलब्ध कराए हैं पर्यावरण उसी पर निर्भर है। प्रकृति द्वारा उपलब्ध संसाधनों का प्रयोग यदि हम उन जरूरतों को पूरा करने के लिए करते हैं जिनकी पूर्ति हमारे लिए अत्यन्त आवश्यक है तब पर्यावरण एक अनिवार्यता है जैसे खाद्यान्न के उत्पादन में कृषि भूमि का प्रयोग, बिजली के उत्पादन व सिंचाई के लिए नदी के जल का प्रयोग, यातायात के लिए सड़कों का निर्माण, रिहायश (Habitat) के लिए घरों का निर्माण, सैरगाह के लिए वनों की प्राकृतिक सुन्दरता का प्रयोग आदि। यदि आवश्यकताओं की पूर्ति के अतिरिक्त प्राकृतिक साधनों का अधिक शोषण (Exploitation) किया जाता है तो यह एक विलासिता का रूप धारण कर लेता है। प्रकृति हमारे लिए विलासिता से संबंधित कई साधन उपलब्ध कराती है, जैसे-

(i) लकड़ी (Wood): वनों से हमें जो लकड़ी प्राप्त होती है, उससे हमारी ईंधन की आवश्यकता तो पूरी होती ही है, परन्तु अपने ऊँचे-ऊँचे भवन निर्माण के लिए जब लकड़ी का बहुत अधिक उपयोग किया जाता है, तब इस लकड़ी के प्रयोग का उद्देश्य अपने जीवन को न केवल सुखमय बल्कि आनन्दमय बनाना है और सम्पन्नता एवं गौरव (Splendour) को सुशोभित करना भी हो जाता है। लकड़ी कितनी भी कीमती एवं दुर्लभ क्यों न हो, उसे उपलब्ध किया जाता है ताकि हमारी विलासिता पूरी तरह से सम्पन्न हो सके। गगन-चुम्बी अट्टालिकाएं बन जाने के बाद, उनके भीतर अनेक प्रकार की सजावट के लिये दुर्लभ लकड़ी का प्रयोग किया जाता है। यह पर्यावरण का विलासिता के लिये प्रयोग है।

(ii) खनिज पदार्थ (Minerals): प्रकृति ने हमें अनेक प्रकार के खनिज पदार्थ उपलब्ध कराए हैं। इनका प्रयोग अनिवार्यताओं के सन्तुष्टि के लिए तो होता है, परन्तु इनका विलासिताओं (Luxuries) के उत्पादन के लिए भी प्रयोग किया जाता है जैसे मैग्नीश्यम, निकल, माइका, कोयला, खनिज तेल, सल्फर, एल्युमीनियम, टैटानियम, आयरन आदि खनिज पदार्थों के उपयोग से अनेक प्रकार की विलासिता की वस्तुओं का निर्माण किया जाता है। खनिज पदार्थों से विलासिता की कौन-सी वस्तुएं बनती हैं, यह इस बात पर निर्भर करता है कि किसी खनिज का अन्तिम-उपयोग (End-use) किस रूप में किया गया है। उदाहरण के लिए, यदि खनिज तेल का प्रयोग हम अपने यातायात के आवश्यक मोटरों या कारों के लिए करते हैं तो यह एक अनिवार्य जरूरत (Essential Need) की पूर्ति है, परन्तु इस तेल का प्रयोग यदि बड़ी-बड़ी तथा एयरकन्डीशन्ड गाड़ियों में करते हैं तो यह प्रयोग विलासिता है। अतएव कोई खनिज पदार्थ कब विलासिता बनता है यह इस बात पर निर्भर करता है कि इसका अन्तिम-प्रयोग (End-Use) कैसे हो रहा है।

(iii) भूमि (Land): यदि भूमि का प्रयोग अनाज व अन्य आवश्यक सामग्री के उत्पादन के लिए किया जाता है, तो भूमि का यह प्रयोग अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति है, परन्तु यदि इसी भूमि का प्रयोग बड़े-बड़े फार्म हाऊसज के निर्माण में किया जाता है अथवा उस पर सिनेमा घर बनाए जाते हैं या उसको एक फिल्मी क्षेत्र (Film Area) के रूप में परिवर्तित कर दिया जाता है, तो भूमि का यह प्रयोग एक विलासिता है। यदि किसी भूमि के टुकड़े पर एक कारखाना स्थापित किया जाता है जिससे लोगों को कपड़ा, चीनी, सीमेंट जैसी वस्तुएं उपलब्ध होती हैं तो उस कारखाने की स्थापना एक अनिवार्यता है, परन्तु यदि उसी स्थान पर एक ऐसा कारखाना स्थापित

किया जाता है जिससे एयरकण्डीशनर, बड़ी-बड़ी विलासिता वाली बसें या कारें, रंगीन टी.वी. आदि बनाए जाते हैं अथवा एक पाँच सितारा होटल खोला जाता है, तो यह एक विलासिता है।

पिछले कई वर्षों से यह देखा जा रहा है कि पृथ्वी पर पर्यावरण का प्रयोग मानवीय अनिवार्य आवश्यकताओं की सन्तुष्टि से अलग हटकर विलासिताओं के उपभोग की ओर अग्रसर हो रहा है। शहरीकरण में वृद्धि होने के कारण लोगों द्वारा अब अपनी रिहायश के लिए बड़ी-बड़ी इमारतों के निर्माण के लिए वनों का अत्यधिक कटाव किया जा रहा है। बड़े-बड़े कारखाने स्थापित किए जा रहे हैं, जंगल काट कर सड़कों तथा रेलों का जाल बिछाया जा रहा है। इन सभी क्रियाओं से हमारा विलासी जीवन अवश्य बढ़ा है, भूतकाल की तुलना में हमारे पास अनेक ऐसी भौतिक एवं मनोरंजन संबंधी सुविधाएँ व सेवाएं अब उपलब्ध हो गई हैं कि जिनकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते थे। परन्तु क्या इस विलासपूर्ण जीवन ने पर्यावरण में सुधार किया अथवा नहीं, इस प्रश्न का स्पष्ट उत्तर यह है कि विलासिताओं की वृद्धि से पर्यावरण को क्षति अधिक पहुँची है और चारों ओर का वातावरण एवं वायुमण्डल अधिक दूषित हो गया है।

नदियों के किनारे या समीप जो भी कारखाने स्थापित हुए हैं वे न केवल वायु में धुआँ छोड़ते हैं बल्कि उनके द्वारा फेंका गया गंदा कूड़ा, व्यर्थ अवशेष (unsanitary waste) तथा विषैले रसायन (Toxic Chemicals) नदियों के पानी को दूषित करके पीने के अयोग्य (Undrinkable) बनाते हैं। इसके साथ-साथ सड़कों पर दौड़ने वाले अनेक वाहन अधिक शोर बढ़ाते हैं और उनसे निकलने वाला धुआँ वायुमण्डल को बहुत अधिक दूषित करता है। अतएव् विलासता के लिये किये जाने वाले कार्य वायु,जल एवम् शोर प्रदूषण को उत्पन्न कर रहे हैं तथा उसे बढ़ा रहे हैं।

विलासिता की वस्तुओं तथा सेवाओं का उत्पादन तथा उपभोग करने के लिए समाज पर्यावरण से पदार्थ (Material) एवं उर्जा प्राप्त करती है, परन्तु इस उत्पादन व उपभोग द्वारा जल में तथा पृथ्वी पर रहने वाले वनस्पति/पेड़ पौधे, जीव जन्तु आदि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है।

■ प्रभाव (Impact)

विलासता की सन्तुष्टि के लिये किये गये कुछ पर्यावरण संबंधी प्रभाव **आकस्मिक** (Incidental) हैं परंतु पर्यावरण के लिए हानिकारक है। इनमें उद्योगों तथा गृहस्थों द्वारा फेंका गया कूड़ा/अविशिष्ट है जिसका नगरीकरण तथा जनसंख्या वृद्धि पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। विलासता की वस्तुओं का उत्पादन करने वाले कारखानों की चिमनियों द्वारा वायुमण्डल में विषैला धुआँ छोड़ना, व्यर्थ पदार्थों (Wastes) को बाहर फेंकना पर्यावरण को दूषित करना है। इसके अतिरिक्त सड़कों पर अधिक वाहनों का शोर, उन द्वारा अधिक धूल मिट्टी उड़ाना तथा उन द्वारा अधिक धुआँ छोड़ना, रेलों का शोर, जेनरेटरों की ऊँची आवाज, बड़ी-बड़ी इमारतों के निर्माण के लिए वृक्षों को काटना आदि विलासिता के कुछ परिणाम हैं जिनके फलस्वरूप पर्यावरण अधिक दूषित हुआ है।

विलासिताओं के उत्पादन से यदि पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता तो इनका उत्पादन उचित है परन्तु इनमें वृद्धि करने से यदि पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है अर्थात इनसे पर्यावरण दूषित (Polluted) होता है या प्राकृतिक सौंदर्य में गिरावट आती है या नदियों का जल न पीने योग्य या प्रदूषित हो जाता है या वायुमण्डल में विषैली गैस फैलती है या वन-जीवन नष्ट होता है या वनस्पति नष्ट होती है अथवा कृषि क्रियाओं के कारण अधिक मिट्टी कटाव होता है अथवा वनों के अधिक काटने से नदियों में बाढ़ें आती हैं या प्रकृति द्वारा प्रदान की गई ऊर्जा का अपव्यय होता है, आदि तब ऐसी विलासिताओं का उत्पादन पर्यावरण की दृष्टि से हानिकारक है।

पर्यावरण से उपलब्ध संसाधनों के प्रयोग से विलासिताओं के उत्पादन में वृद्धि अवश्य हुई है। इसे आर्थिक विकास का प्रतीक माना जाता है। विलासिताओं के उत्पादन ने वर्तमान पीढ़ी को तो सुख-सुविधा उपलब्ध करा दी है। परन्तु वर्तमान सुख-सुविधा आने वाली पीढ़ी के लिए पर्याप्त नहीं है। आज की पीढ़ी ने अपनी संपन्नता तो बढ़ा ली है परन्तु भावी पीढ़ी के लिए बहुत कम छोड़ा है। हमने वर्तमान में तो सब कुछ पा लिया है परन्तु भविष्य की अवहेलना की है इसलिये ऐसा आर्थिक विकास उचित नहीं है। अतएव **पर्यावरण के संदर्भ में वर्तमान विकास भविष्य के विकास की लागत पर नहीं होना चाहिए** या वर्तमान पीढ़ी की खुशहाली भावी पीढ़ी की लागत पर नहीं होनी चाहिए। इसी से **धारणीय विकास** (Sustainable Development) की धारणा का महत्त्व प्रकट होता है जिसके अनुसार आर्थिक विकास के फलस्वरूप प्राप्त होने वाले दीर्घकालीन शुद्ध लाभ न केवल वर्तमान पीढ़ी बल्कि भावी पीढ़ी को भी प्राप्त होने चाहिए।

■ 5.1 प्रकृति के साथ मनुष्य का हस्तक्षेप – अनिवार्यता से विलासिता की ओर

(Man's Intervention with Nature – from Necessity to Luxury)

जब से सभ्यता का विकास हुआ है मनुष्य का प्रकृति से रिश्ता तभी से स्थापित हुआ है। प्रकृति ने मनुष्य को न केवल अनेक अनिवार्यताएँ उपलब्ध कराई हैं बल्कि उसके जीवन को अधिक सुखदायी एवं सुविधाजनक बनाने के लिए विलासिता से जुड़े अनेक साधन भी प्रदान किए हैं। अतएव प्रकृति ने एक प्रकार से **पूर्ण पारिस्थितिक सन्तुलन** (Perfect Ecological Balance) बनाए रखने का प्रावधान किया है। इसमें प्राकृतिक साधन, समय के साथ प्राकृतिक स्वरूप में स्वयं ही पुन: रचित (Recharge) होते रहते हैं। प्रकृति की यह क्रिया तभी तक संभव हो सकी है जब तक कि मनुष्य ने प्रकृति में अधिक हस्तक्षेप नहीं किया हो। परन्तु जनसंख्या में वृद्धि होने तथा आधुनिकीकरण (Modernisation) के साथ-साथ मनुष्य का प्रकृति में हस्तक्षेप अनेक प्रकार से बढ़ता गया है। अपने रिहाइश के लिए व भोजन का उत्पादन करने के लिए मनुष्य की अधिक से अधिक भूमि के लिए मांग में भी निरन्तर वृद्धि होती चली गई है। इतना ही नहीं उसकी आवश्यकताएं आगे से आगे बढ़ती गई हैं क्योंकि अपने जीवन को अधिक सुखदाई बनाने के लिए उसने अनेक प्रकार के साधनों की आवश्यकता भी बढ़ा ली है। इसका प्रभाव प्राकृतिक साधनों पर पड़ा और प्राकृतिक साधनों का शोषण व प्रयोग अधिक होने लगा। जब तक मनुष्य की जरूरतें उस सीमा तक रहीं कि जिसके द्वारा प्राकृतिक साधनों का प्रयोग भी होता रहे और उनकी पुन:रचना (Recharge) प्राकृतिक रूप से उतनी ही होती रहें, तब तक पारिस्थितिक सन्तुलन (Ecological Balance) भी बना रहा। परन्तु जैसे ही मनुष्य ने प्रकृति की पुन: रचना क्षमता (Recharge Capacity) से संसाधनों का प्रयोग अधिक कर दिया, इससे अनेक प्रकार की पर्यावरण समस्याएं पैदा होती चली गई और अन्तत: इसके परिणामस्वरूप **पर्यावरण का हनन** (Environmental Degradation) शुरू हो गया। आज स्थिति यह है कि अधिक धन कमाने तथा विलासपूर्ण जीवन व्यतीत करने की लालसा ने मनुष्य को इतना स्वार्थी बना दिया है कि उसने प्राकृतिक संसाधनों का बेरोक-टोक प्रयोग करना आरम्भ कर दिया है। इसका पर्यावरण पर हानिकारक प्रभाव पड़ा है।

■ 5.2 विलासिता के रूप में पर्यावरण का प्रभाव/लागत

(Impact/Cost of Environment as a Luxury)

आर्थिक संवृद्धि के फलस्वरूप हमारा रहने-सहने का ढंग विशेषकर विकसित देशों में भौतिकवादी (Materialistic) एवं विलासी बन चुका है। विलासी वस्तु के समावेश एवं उत्पादन से, उपभोग स्तर में परिवर्तन के साथ-साथ, लोगों ने अपने दिन-प्रति-दिन की जीवन शैली को बदल दिया है। उत्पादन अथवा उपभोग के स्तर का निर्णय आर्थिक अन्तर्व्यवहार (Economic Interactions) द्वारा होता है। जैसे ही इस स्तर का निर्धारण होता है वैसे ही पर्यावरण में हस्तक्षेप का निर्णय भी हो जाता है, जो हानिकारक सिद्ध होता है। यदि कोई उत्पादक किसी वस्तु, जैसे कार या एयरकण्डीनर का उत्पादन करता है, वह वायुमण्डल में धुआँ भी पैदा करता व फेंकता है। वस्तु की कितनी मात्रा का उत्पादन किस उत्पादक को करना है, यह निर्णय अर्थव्यवस्था द्वारा लिया जाता है। इसके साथ ही यह भी निश्चित हो जाता है कि वह कितना धुआँ पैदा करेगा और मानवीय स्वास्थ्य को कितनी हानि पहुँचेगी। इसलिए पर्यावरणिक प्रदूषण या अवनति (Environmental Pollution or Degradation) से जुड़ी सभी समस्याएं, उत्पादन या उपभोग से संबंधित, हमारी क्रियाओं का उप-उत्पाद (By-product) है। अन्य शब्दों में यह आर्थिक संवृद्धि की पर्यावरणिक लागत है।

आर्थिक संवृद्धि की पर्यावरणिक लागत से अभिप्राय उन खर्चों से है जो एक तो आर्थिक संवृद्धि के फलस्वरूप होने वाले प्रदूषण से बचाव करने के लिये किये जाते हैं और दूसरे उन खर्चों से है जो प्राकृतिक साधनों जैसे भूमि, नदियों, वनों आदि के संरक्षण के लिए किये जाते हैं। इन्हें प्रतिकूल बाह्यतायें (Adverse Externalities) के कारण होने वाली लागत या बाहरी हानियाँ (External Diseconomies) भी कहा जाता है। डॉ. आर के पचोरी के अनुसार, **"आर्थिक संवृद्धि की पर्यावरण लागत को सामान्यत: दो भागों में रखा जा सकता है। पहला, वायु और जल आदि के प्रदूषण से लोगों के स्वास्थ्य पर हानिकारक प्रभाव। और दूसरा, जलपूर्ति की लागत बढ़ने, भूमि के बिगड़ने और वनों के विनाश के कारण उत्पादकता पर पड़ने वाला प्रभाव।"** (*Environmental Costs generally fall into two categories. Firstly, public health impacts are caused by air and water pollution etc. Secondly, there are productivity changes on account, for*

instance of increases in water supply costs, soil degradation, deforestation including reduced density of forest cover. **-Dr. R.K. Pachauri)**

आर्थिक संवृद्धि की पर्यावरण लागत के मुख्य रूप नि लिखित हैं:

(1) जल प्रदूषण की लागत (Cost of Wate Pollution): आर्थिक समृद्धि के फलस्वरूप उद्योग धन्धों का बहुत अधिक विकास हुआ है। विभिन्न प्रकार की औद्योगिक इकाइयां अपने अवशिष्ट पदार्थों को नदियों, तालाबों एवं झीलों में बहा देती हैं, जिससे औद्योगिक क्षेत्र के समीप नदियों के पानी का रंग तक बदल जाता है, औद्योगिक अवशिष्ट में अम्ल, क्षार, लवण धातुओं के सूक्ष्म कण तथा विषैली गैसें घुली रहती हैं। इसी के कारण विभिन्न प्रकार की बीमारियों के प्रसार का कार्य ये जल स्रोत करते हैं। जल प्रदूषण मानव जाति के लिए अन्य प्रकार के किसी भी प्रदूषण से अधिक हानिकारक है। इसका कारण यह है कि मनुष्यों के अधिकतर कार्यों, कृषि और उद्योगों के लिए जल का प्रयोग अनिवार्य है। इसी कारण से जल प्रदूषण को पृथ्वी पर जीवन के लिए सबसे अधिक खतरा माना जाता है।

भारत के लगभग सभी बड़े शहर जैसे मुम्बई, कोलकाता, चेन्नई जल प्रदूषण की समस्या से पीड़ित हैं। इन शहरों के उद्योगों के अवशिष्ट पदार्थ समुद्री जल में मिल जाते हैं जिसका जल में रहने वाले जीव-जन्तुओं पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। भारत के लगभग 70 प्रतिशत नदियों का जल प्रदूषित है। जल प्रदूषण के कारण लगभग 20 लाख लोगों की मृत्यु प्रति वर्ष हो जाती है तथा लाखों लोगों को कई प्रकार की बीमारियां जैसे दस्त, पेट के कीड़े, हैजा, आदि हो जाती है।

जल-प्रदूषण का उत्पादकता पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है। पानी में मछलियां कम हो जाती हैं। स्वच्छ पानी की व्यवस्था पर करोड़ों रुपये खर्च करने पड़ते हैं। स्वच्छ पानी की कमी का आर्थिक क्रियाओं पर बुरा प्रभाव पड़ता है। भारत में यह अनुमान लगाया गया है कि **भूमिगत जल** (Ground Water) के लिये खुदाई करने से भूमिगत जल संसाधनों की गुणवत्ता और मात्रा में कमी आई है। इसकी गुणवत्ता तथा मात्रा में गिरावट से बचाव की लागत 2001-2002 की अवधि में लगभग 8 हजार करोड़ रुपये होने का अनुमान लगाया गया था।

(2) वायु प्रदूषण की लागत (Cost of Air Pollution): औद्योगिक इकाइयों की चिमनियों तथा परिवहन के लिए प्रयोग होने वाले वाहनों से निकलने वाले धुएं के कारण वायु प्रदूषण की समस्या उत्पन्न होती है। इस धुएं से वायु में अनेक जहरीली गैसें मिश्रित हो जाती हैं जिनमें मुख्यत: तीन गैसे हैं: **कार्बन मोनो-आक्साइड, सल्फर-डाई-आक्साइड** और **कार्बन-डाई-आक्साइड।** कार्बन-मोनो -आक्साइड मानव स्वास्थ्य के लिए खतरनाक है, इससे घुटन पैदा होती है। सल्फर-डाई-आक्साइड से अम्लीय वर्षा होती है। इस वर्षा के कारण मनुष्य को दमा, खांसी तथा फेफड़े संबंधी रोग हो जाते हैं। कार्बन-डाई-आक्साइड वायु में आक्सीजन की मात्रा कम करती है। *कृषि के लिये उपयोग की जाने वाली रसायनिक खादें तथा कीटाणुनाशक दवाइयां भी वायु प्रदूषण का कारण है।* वायु 21 प्रतिशत आक्सीजन, 78 प्रतिशत नाइट्रोजन तथा 1% कार्बन-डाई-आक्साइड का मिश्रण है। इस मिश्रण में होने वाले परिवर्तन के फलस्वरूप प्रदूषण पैदा हो जाता है जिसका पेड़-पौधों, मनुष्यों तथा पशुओं के जीवन पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन (World Health Organisation - WHO) ने वायु प्रदूषण की परिभाषा इस प्रकार की है **"वायु प्रदूषण से अभिप्राय मनुष्यों के कार्यों के फलस्वरूप वायु में इस प्रकार के पदार्थों का फैल जाना है जो उनके स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होते हैं।"**

पर्यावरण को असन्तुलित करने में 50 प्रतिशत वायु प्रदूषण जिम्मेदार है। वायु प्रदूषण के कारण **ओजोन परत** नष्ट (Depletion of Ozone Layer) हो रही है। ओजोन परत हमारे लिये सुरक्षा पट्टी का काम करती है। ओजोन परत के नष्ट होने का खतरा यह होगा कि सूर्य की **पराबैंगनी** किरणे सीधी पृथ्वी पर पहुंचेगी और मानव जीवन, जीव जन्तु, पेड़-पौधों तथा जलवायु सभी को बरबाद कर देगी। वायु प्रदूषण **ग्रीन हाऊस प्रभाव** *(Green House Effect)* के लिए भी जिम्मेदार हैं।

ग्रीन हाउस प्रभाव से अभिप्राय यह है कि सूर्य की किरणें दूषित वातावरण में से गुजरती हैं और पृथ्वी में बहुत अधिक गर्मी उत्पन्न कर देती हैं। इसका मुख्य कारण औद्योगिक विकास तथा आधुनिकीकरण के फलस्वरूप कार्बन-डाई-आक्साइड, सल्फर-डाई-आक्साइड, मीथेन आदि विषैली गैसों का उत्पन्न होना है। ये विषैली गैसें पृथ्वी के चारों ओर एक आवरण बना लेती हैं। इनमें से होकर सूर्य की किरणें गुजरती हैं और पृथ्वी को गर्म कर देती हैं। वायु प्रदूषण से स्वास्थ्य तथा उत्पादकता पर पड़ने वाले हानिकारक

प्रभाव की लागत बहुत अधिक है। इसके फलस्वरूप प्रतिवर्ष 30 लाख से 70 लाख लोगों की मृत्यु हो जाती है। इसका उत्पादकता पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है इसके कारण **अम्लीय वर्षा** (Acid Rain) होती है। औद्योगिक विकास के कारण पर्यावरण में अनेकों प्रदूषित पदार्थ हर समय मिलते रहते हैं। बादलों में स्थित जलकण प्रदूषित पदार्थों जैसे सलफ्यूरिक एसिड तथा नाईट्रिक एसिड को अपनी ओर आकर्षित करके एकत्रित कर लेते हैं। ये पदार्थ अम्लीय वर्षा के रूप में आकाश से गिरते हैं। इनका वनों तथा फसलों पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

(3) ध्वनि प्रदूषण (Noise Pollution): बढ़ते हुए औद्योगिकीकरण और शहरीकरण ने ध्वनि प्रदूषण को जन्म दिया है। उद्योगों, यातायात के साधनों आदि का तीव्र शोर, पर्यावरण को अपने कंपनों द्वारा प्रदूषित करता है जिससे मनुष्य की श्रवण शक्ति पर ही प्रभाव नहीं पड़ता वरन् उसे मानसिक और मनोवैज्ञानिक बीमारियों का भी सामना करना पड़ता है। प्राय: शोर की अधिकता बहरेपन और गूंगेपन का भी कारण बन जाती है। शोर के कारण श्वसन गति, रक्तचाप और नाड़ी गति में परिवर्तन आ जाने से स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। शोर पाचन विकार को भी जन्म देता है। शोर रोगियों के लिए अत्यन्त कष्टकारक सिद्ध होता है। इससे रोगियों को स्वास्थ्य लाभ में देर लगती है। ध्वनि प्रदूषण के स्वास्थ्य पर पड़ने वाले हानिकारक प्रभाव की बहुत अधिक लागत है।

(4) भूमिक्षरण (Land Degradation): भूमि कटाव, क्षारता या अवनति तथा पानी के जमाव की वजह से भूमि का क्षरण होता है। कृषि योग्य भूमि की मुख्य रूप से सिंचाई के गलत तरीकों के प्रयोग के कारण अवनति होती है। इसके अतिरिक्त कृषि उत्पादकता में वृद्धि करने के लिए प्रयोग में लाये जाने वाले रासायनिक उर्वरक तथा कीटनाशक दवाओं के कारण भी भूमि की अवनति होती है। भूमि की अवनति के कारण भूमि की उत्पादकता समाप्त हो जाती है तथा भूमि बंजर बन जाती है। भूमि की अवनति के कारण एक ओर 0.5 प्रतिशत से लेकर 1.5 प्रतिशत तक सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि होती है। परन्तु दूसरी ओर जमीन के बिगड़ने से, उत्पादकता हानि और खराब जमीन को दुबारा खेती योग्य बनाने की लागत 10 हजार करोड़ रुपये होने का अनुमान है।

(5) वनों का उन्मूलन (Deforestation): आर्थिक संवृद्धि के बढ़ने के साथ-साथ वनों का कटाव भी बढ़ता जा रहा है। वनों के बढ़ते हुए कटाव के कई कारण हैं। जैसे बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए लकड़ी की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए, कृषि भूमि की बढ़ती हुई आवश्यकताओं के लिये, निर्धनों के ईंधन की आवश्यकता को पूरा करने के लिए, सड़कों तथा रेलों, बाँधों, बढ़ते हुए उद्योगों, आवास की बढ़ती हुई मांग आदि के कारण वनों की बहुत अधिक कटाई की गई है इसका पर्यावरण पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा है। वनों के बहुत अधिक कटाव का जलवायु तथा भूमि कटाव पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा है। बाढ़ों का प्रकोप बढ़ गया है। जंगली पशुओं का विनाश होने लगा है। वनों के कटाव के कारण आर्थिक संवृद्धि के भविष्य पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है। आर्थिक संवृद्धि के लिये आवश्यक कई कार्यों के लिए, लकड़ी की पूर्ति कम हो जाती है। वनों से मिलने वाले फल और दवाइयां भी कम मात्रा में प्राप्त होती हैं। वनों के कटाव से क्षेत्र की सुन्दरता को भी धक्का लगता है। अतएव आर्थिक संवृद्धि की वनों के कटाव संबंधी लागत बहुत अधिक होती है।

(6) प्राकृतिक साधनों की अवनति (Degradation of Natural Resources): आर्थिक संवृद्धि के फलस्वरूप प्राकृतिक साधनों जैसे खनिज पदार्थों के **खनन** (Mining) में बहुत अधिक वृद्धि हुई है। खनन के कारण पर्यावरण को होने वाला नुकसान संक्षेप में इस प्रकार है:

(1) खनन के लिये बारूद के प्रयोग, खानों से खनिज पदार्थों की ढुलाई एवं सड़क परिवहन तथा कचरे के ढेरों के कारण वायु प्रदूषण में वृद्धि होती है।

(2) खानों से निकलने वाले कूड़ा-करकट में **आणविक** (Atomic) तथा अन्य नुकसानदायक तत्व होते हैं। इस कूड़े को पानी में बहाने के कारण जल प्रदूषण होता है।

(3) खनन के कारण **भूमिगत जलस्तर** (Ground Water Level) नीचे चला जाता है।

(4) खानों की खुदाई के कारण भूमि कटाव, धूल और लवण से भूमि की उपजाऊ शक्ति नष्ट हो जाती है।

सारांश यह है कि आर्थिक संवृद्धि के कारण प्राकृतिक साधनों की अवनति की लागत बहुत अधिक होती है।

संक्षेप में, आर्थिक संवृद्धि की बढ़ती हुई प्रवृत्ति के फलस्वरूप प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध शोषण किया गया है। शहर और कस्बों में जनसंख्या बहुत अधिक बढ़ गई है। अत्यधिक वायु, जल और ध्वनि प्रदूषण के कारण अस्वास्थ्यकर स्थितियां पैदा हो गई हैं जो

मानव जीवन के लिए हानिकारक हैं। वनों के कटाव से मौसम चक्र में परिवर्तन हुआ है और जल स्तर नीचा हो गया है। मनुष्य के लालच के कारण समुद्र न केवल प्रदूषित हुए हैं बल्कि उनकी प्राकृतिक सम्पदा भी धीरे-धीरे नष्ट हो रही है। **ओजोन परत के नाश होने से** (Depleting of Ozone Layer) वातावरण को गम्भीर खतरा उत्पन्न हो गया है। भूमि की उत्पादकता घटती जा रही है। आने वाली पीढ़ियों का जीवन अन्धकारमय हो गया है। इसलिए प्रश्न यह उठता है कि आर्थिक संवृद्धि की सीमा क्या होनी चाहिए?

प्रश्न (QUESTIONS)

■ I. वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

सभी प्रश्न अनिवार्य हैं (Attempt all the questions)

(i) वे सभी परिस्थितियां व प्रभाव जो पृथ्वी पर हर प्रकार के जीव के जीवन को प्रभावित करती हैं, उन्हें कहते हैं (पर्यावरण, परिवेश)

(ii) जिसमें भूमि, जलस्थल, जलवायु, पर्वत, मिट्टी आदि निर्जीव तत्व शामिल होते हैं उसे कहते हैं (जैवीय तत्व, अजैवीय तत्व)

(iii) वे सभी तत्त्व जिसमें न केवल मनुष्य बल्कि पेड़-पौधे, पशु-पक्षी तथा सभी प्रकार के सूक्ष्म जीव-जन्तु शामिल होते हैं उन्हें कहते हैं (अजैवीय तत्व, जैवीय तत्व)

(iv) जैवीय जीव, अजैवीय परिवेश तथा ऊर्जा सभी मिलकर जिस तन्त्र को बनाते हैं उसे कहते हैं (पारिस्थितिक तन्त्र, सामाजिक तन्त्र)

(v) पर्यावरण अर्थशास्त्र का संबंध मुख्यतया अर्थव्यवस्था के किस पर पड़ने वाले प्रभाव से है (वातावरण, पर्यावरण)

(vi) तरल जल का मुख्य जलाशय क्या है (समुद्र, टैंक)

(vii) कोई भी स्थान जहाँ खनिज, वायु तथा जल तीन आवश्यक तत्त्व अपर्याप्त हैं वे जैविक जीवन का पालन नहीं कर सकते अत: ये किसके बाहर रहते हैं (जीवमण्डल, स्थलमण्डल)

(viii) क्योंकि पेड़-पौधे अपना भोजन स्वयं उत्पादित कर सकते हैं, इसलिए इन्हें कहते हैं (उत्पादक, वितरक)

(ix) जैविक जीवन के प्रजनन एवं भरण-पोषण में किसका महत्त्व अधिक है (ऊर्जा, पेड़-पौधे)

(x) अनिवार्यताओं से अभिप्राय मनुष्य की उन जरूरतों से है जिनकी पूर्ति किसके लिए आवश्यक है (जीवित रहने के लिए, अस्तित्व के लिए)

(xi) पर्यावरण ऊर्जा का मुख्य स्रोत है (सूर्य, चन्द्रमा) (K.U. 2006)

(xii) विलासिताओं से अभिप्राय उन भौतिक जरूरतों से है जिनकी सन्तुष्टि से बढ़ता है (आनन्द, रोष)

(xiii) वह पर्यावरण जिससे न्यूनतम पर्यावरणीय समस्याओं के साथ जीवन की उच्चतम गुणवत्ता प्राप्त होती है, उसे कहते हैं (स्वस्थ पर्यावरण, राजनीति पर्यावरण)

(xiv) बढ़ते औद्योगिकीकरण तथा शहरीकरण ने किसको जन्म दिया है (शोर प्रदूषण, शोर में कमी)

(xv) भू-स्थल घटक है (अजैवीय, जैवीय) (K.U. 2008)

(xvi) पशु-पक्षी ________ घटक है। (अजैवीय, जैवीय) (K.U. 2009)

उत्तर (Answers): (i) पर्यावरण, (ii) अजैवीय तत्त्व. (iii) जैवीय तत्त्व, (iv) पारिस्थितिक तन्त्र, (v) पर्यावरण, (vi) समुद्र, (vii) जीवमण्डल, (viii) उत्पादक, (ix) ऊर्जा, (x) जीवित रहने के लिए, (xi) सूर्य, (xii) आनन्द, (xiii) स्वस्थ पर्यावरण, (xiv) शोर प्रदूषण, (xv) अजैवीय, (xvi) जैवीय।

II. लघु/परिभाषा रूपी प्रश्न (Short/Definitional Type Questions)

1. पर्यावरण से क्या अभिप्राय है?
2. पर्यावरणीय अर्थशास्त्र की परिभाषा दें।
3. पर्यावरण की दो विशेषताएं बतलाएं।
4. अजैवीय घटक क्या हैं?
5. जैवीय घटक क्या हैं?
6. पर्यावरण के जैवीय घटक एवं अजैवीय घटकों में अन्तर बतलाएं।
7. पर्यावरण किस प्रकार एक अनिवार्यता है?
8. ऊर्जा के मुख्य स्रोत क्या हैं?
9. पर्यावरण किस प्रकार एक विलासता है?
10. समष्टि-स्तरीय पर्यावरण समस्याएँ क्या हैं?
11. स्वस्थ पर्यावरण की परिभाषा दें।
12. आर्थिक संवृद्धि की पर्यावरण लागत की परिभाषा दें।

III. निबन्ध रूपी प्रश्न (Essay Type Questions)

1. Define environment and give its main characteristics. What are the main components of environment?
   पर्यावरण की परिभाषा दें तथा इसकी मुख्य विशेषताएं बतलाएं। पर्यावरण के मुख्य घटक कौन से हैं?
2. What is environment? How environment is a necessity?
   पर्यावरण से क्या अभिप्राय है? पर्यावरण किस प्रकार एक अनिवार्यता है?
3. Define the concept of environment and also explain the concept of environment as a necessity.
   पर्यावरण की अवधारणा की परिभाषा दें। जीवन की आवश्यकता के रूप में पर्यावरण की अवधारणा की व्याख्या करें।
4. Do you think that environment can be interpreted as a luxury?
   क्या आपके विचार में पर्यावरण को विलासिता के रूप में व्यक्त किया जा सकता है?
5. Analyse the impact/cost of environment as a luxury.
   विलासिता के रूप में पर्यावरण के प्रभाव या लागत का विश्लेषण करें।
6. "Man's intereference with nature has implied a shift from environment as a necessity to environment as a luxury." Explain
   "मनुष्य के प्रकृति के साथ हस्तक्षेप के फलस्वरूप पर्यावरण एक आवश्यकता के स्थान पर विलासिता के रूप में रूपांतरित हुआ है।" व्याख्या करें।

10

जनसंख्या - पर्यावरण संयोजन

(POPULATION - ENVIRONMENTAL LINKAGE)

■ 1. भूमिका (Introduction)

जनसंख्या वृद्धि तथा पर्यावरण का एक दूसरे से निकटतम संबंध या संयोजन (Linkage) है। जहाँ एक ओर पर्यावरण जनसंख्या वृद्धि को प्रभावित करता है वहीं दूसरी ओर जनसंख्या वृद्धि भी पर्यावरण को प्रभावित करती है। स्वच्छ पर्यावरण जनसंख्या के जीवन को सुखी बना कर उसकी वृद्धि में सहायक हो सकता है परन्तु इसके विपरीत दूषित पर्यावरण जनसंख्या के जीवन के लिये हानिकारक तथा उसकी वृद्धि में बाधक होता है।

विभिन्न देशों में अनुभवों के आधार पर जनसंख्या तथा पर्यावरण के बीच संयोजन (Linkage) से सम्बन्धित कुछ निष्कर्ष निम्नलिखित हैं:

(i) कुछ प्रमाण यह सुझाव देते हैं कि जनसंख्या में वृद्धि का पर्यावरण पर ऋणात्मक (Negative) प्रभाव पड़ता है। परन्तु इससे भी अधिक सशक्त प्रमाण यह सुझाव देता है कि पर्यावरण की अवनति के कारण जनसंख्या की कठिनाइयां (Hardships) बढ़ जाती हैं। जैसे वन विनाश के कारण ईंधन की कमी या पेय जल की कमी जनसंख्या वृद्धि पर विपरीत प्रभाव डालती है।

(ii) **प्रो. कुजनेटस** (Kuznets) का यह कहना है कि जनसंख्या वृद्धि तथा पर्यावरण के बीच कोई स्पष्ट सम्बन्ध नहीं है। जनसंख्या वृद्धि आर्थिक विकास तथा पर्यावरण अवनति का संयोजन काफी सीमा तक मिश्रित (Mixed) है।

इस संदर्भ में लुईस का कहना है कि, **''पृथ्वी के निर्धन क्षेत्रों में आर्थिक विकास तथा जनसंख्या वृद्धि पर्यावरण के महत्त्वपूर्ण विषय हैं''** (Economic development and population growth in the poor areas of the earth are essential topics of environmental concern – **Lewis**)।

■ 2. दो तरफा सम्बन्ध (Two-way Relationship)

जनसंख्या एवम् पर्यावरण में दो तरफा सम्बन्ध है एक ओर जहाँ जनसंख्या अपनी आवश्यकताओं जैसे आवास, भोजन, पानी, वायु, धूप आदि के लिए प्रकृति पर निर्भर करती है वहीं दूसरी ओर प्रकृति अपने संरक्षण, उपयोग एवम् शोषण के लिये जनसंख्या द्वारा प्रभावित होती है। जनसंख्या एवम् पर्यावरण के परस्पर सम्बन्ध के दो पहलू हैं:

(1) पर्यावरण पहलू (Environmental Aspect): पर्यावरण पहलू का सम्बन्ध जनसंख्या के आकार एवम् उसके पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभाव से है। जनसंख्या के इष्टतम आकार (Optimum Level) का पर्यावरण पर कोई विशेष हानिकारक प्रभाव नहीं पड़ता है। **इष्टतम जनसंख्या का स्तर वह स्तर है जिस पर प्रति व्यक्ति आय अधिकतम होती है।** यदि जनसंख्या इष्टतम स्तर से अधिक होती है तो यह पर्यावरण अवनति का एक कारण बन सकता है। पर्यावरण पहलू का अध्ययन **पर्यावरण पर प्रभाव** (Environmental Impact) की सहायता से किया जा सकता है। पर्यावरण पर प्रभाव से अभिप्राय है: जनसंख्या का आकार, प्रति व्यक्ति औसत उपभोग तथा उपभोग की गई वस्तुओं की प्रति इकाई मात्रा का पर्यावरण पर पड़ने वाला प्रभाव। इस प्रभाव को भी निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है:

पर्यावरण पर प्रभाव (Environmental Impact) = **जनसंख्या का आकार** (Size of Population) × **प्रतिव्यक्ति वस्तुओं का उपभोग** (Consumption of Goods Per Person) × **प्रति इकाई संसाधन उपभोग का पर्यावरण पर प्रभाव** (Environmental Impact of per unit consumption of resources)

इस समीकरण में प्रत्येक घटक (Factor) के स्तर का महत्त्व (Significance) समान है, जिसका अभिप्राय है कि कोई भी घटक न तो अधिक महत्त्वपूर्ण है और न ही कम महत्त्वपूर्ण, और प्रत्येक घटक का प्रभाव गुणात्मक (Multiplicative) होता है, न कि योगात्मक (Additive)। इसका तात्पर्य यह है कि यदि किसी घटक का स्तर बढ़ता है, तो उसका प्रभाव अन्य सभी घटकों पर भी गुणात्मक रूप से पड़ेगा। उदाहरण के लिए, वाहनों (कार, ट्रक, बसें) से निकलने वाले धुएं का पर्यावरण पर प्रभाव ऐसे क्षेत्रों पर अधिक पड़ेगा जहाँ अमीर लोग रहते हैं और अपनी कारों का निरन्तर प्रयोग करते हैं, चाहे वहाँ जनसंख्या का आकार कम ही क्यों न हो। इसके विपरीत निर्धन और अधिक जनसंख्या वाले क्षेत्रों पर इस का प्रभाव कम होगा क्योंकि वहाँ एक तो लोगों के पास अपनी कारें कम हैं और वे इनका प्रयोग भी केवल जरूरी स्थिति में ही करते हैं।

(2) उपभोग पहलू (Consumption Aspect): उपभोग पहलू का अर्थ है जनसंख्या की प्राकृतिक संसाधनों के उपभोग की सीमा एवम् पर्यावरण का जनसंख्या पर पड़ने का प्रभाव। यह प्रभाव निम्नलिखित तत्वों पर निर्भर करता है:

(i) कुल भूमि क्षेत्र, (ii) पृथ्वी पर खाद्यान्न उत्पादन की क्षमता एवं संभाव्यता (Potentiality), (iii) जल, ऊर्जा तथा खनिज पदार्थों की उपलब्धता, (iv) तकनीकी विकास का स्तर, (v) जैवीय तन्त्र (Biological System) में जनसंख्या द्वारा जनित अवशिष्ट (Waste) को अपने अन्दर समाहित (Absorb) करने की क्षमता (Ability) तथा (vi) पर्यावरण से सम्बन्धित आवश्यक सेवाओं को सुरक्षित (Sustain) रखना।

किसी क्षेत्र के प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग को **संसाधन उपभोग** (Resource Consumption) कहा जाता है। किसी भी क्षेत्र का संसाधन उपभोग (Resource Consumption) वहां की जनसंख्या तथा प्रति व्यक्ति वस्तुओं के औसत उपभोग पर निर्भर करता है। अन्य शब्दों में,

संसाधन उपभोग (Resource Consumption) = **जनसंख्या** (Population) × **प्रतिव्यक्ति वस्तुओं का उपभोग** (Consumption of Goods Per Person)

जनसंख्या वृद्धि का सबसे महत्त्वपूर्ण प्रभाव यह होता है कि इससे संसाधनों का उपभोग बड़ी तेजी से बढ़ता है और पर्यावरण में अवनति (Degradation) होती है। आज के युग में उपभोक्ता समाज (Consumer Society) में वृद्धि होने के कारण उपभोग स्तर बहुत अधिक बढ़ चुका है, इसके फलस्वरूप विश्व के संसाधनों पर दबाव भी काफी बढ़ा है। चूंकि संसाधनों के आवंटन(Allocation) और नियोजन (Planning) का कोई भी कार्यक्रम पर्यावरण संरक्षण को ध्यान में रखते हुए नहीं अपनाया गया है, इसलिए इनका उपभोग भी बहुत ही लापरवाही से किया जा रहा है। अत: वह दिन दूर नहीं कि जब ये संसाधन बहुत ही सीमित रह जाएं या समाप्ति की ओर अग्रसर हो जाएं। इससे विकास की प्रक्रिया रुक सकती है। पर्यावरण पर जनसंख्या के उपभोग प्रभाव का अनुमान **जनसंख्या दबाव** (Population Pressure) से लगाया जाता है।

■ जनसंख्या दबाव (Population Pressure)

जनसंख्या दबाव (Population Pressure) **से अभिप्राय उस स्थिति से है जिसमें जनसंख्या तथा क्षेत्रीय संसाधनों के बीच सम्बन्ध स्थापित किया जाता है।** (The concept of population pressure refers to the relationship between population and resources of an area)।

क्लार्क के शब्दों में, **''जनसंख्या दबाव की स्थिति तब उत्पन्न होती है जब किसी क्षेत्र की जनसंख्या और उसकी बढ़ती हुई ज़रूरतों तथा भौतिक मानवीय संसाधनों के बीच अंतर पैदा हो जाता है।''** (The pressure of population is caused by the imbalances between human numbers and their needs and between physical and human resources of an area - **Clarke**)। **क्लार्क** का कहना है कि किसी क्षेत्र में भूमि का एक टुकड़ा एक निश्चित समय पर उपलब्ध तकनीकी, आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक दशाओं के अन्तर्गत एक सीमित जनसंख्या का पालन-पोषण करने में, बिना पर्यावरण अवनति (Environmental Degradation) के, सक्षम होता है। यह अनुमान लगाया गया है कि 20वीं सदी के आरम्भ में जनसंख्या के बढ़ते दबाव के कारण (i) वनों की 90 लाख हेक्टेयर भूमि को काट दिया गया और उस पर कृषि शुरू कर दी गई; (ii) विश्व में ऊर्जा (Energy) का उपभोग 80 गुणा बढ़ चुका है; (iii) औद्योगिकीकरण क्रिया में 100 गुणा वृद्धि हुई है; (iv) भू-जल के उपभोग (Withdrawal of water) की मात्रा 100 वर्ग कि. म. से अधिक हो चुकी है; (v) औद्योगिक क्रियाओं के कारण पर्यावरण प्रदूषण में बहुत अधिक वृद्धि हुई है; (vi) विश्व के वातावरण (Atmosphere) में मीथेन गैस (Methane Gas) की मात्रा में 100 प्रतिशत वृद्धि हो चुकी है; (vii) कार्बन डाई-आक्साइड की मात्रा में 25 प्रतिशत वृद्धि हो चुकी है; (viii) सीसा (Lead), कैडमियम (Cadmium) तथा जिंक (Zinc) जैसी धातुओं की मात्रा 18 गुणा बढ़ चुकी है; और (ix) आरसेनिक (Arsenic), पारा (Mercury) तथा निकल (Nickel) जैसी धातुओं की मात्रा में 2 गुणा वृद्धि हो चुकी है।

प्रो॰ माबोगुंजे (Mabogunje) के अनुसार जनसंख्या दबाव के पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभाव तीन तत्वों पर निर्भर करता है: **(1) भूमि** (संसाधन), **(2) लोग** तथा (3) **अपेक्षाएं** (Expectations)। इनके फलस्वरूप पर्यावरण की अवनति निम्नलिखित तीन स्थितियों में हो सकती है:

(i) जनसंख्या तथा संसाधन कम हों परन्तु अपेक्षाएं अधिक हो।

(ii) संसाधन कम हों परन्तु जनसंख्या तथा अपेक्षाएं अधिक हों।

(iii) संसाधन तथा अपेक्षायें कम हों परन्तु जनसंख्या अपेक्षाकृत अधिक हों।

उपरोक्त विवरण से जनसंख्या एवम् पर्यावरण का दो तरफा संबंध स्पष्ट हो जाता है।

इसी प्रकार यदि जनसंख्या द्वारा पर्यावरण एवम् प्राकृतिक पूंजी का सीमित उपयोग किया जाता है तो जनसंख्या वृद्धि एवम् पर्यावरण में उचित संयोजन बना रहता है। इसके विपरीत यदि जनसंख्या वृद्धि के द्वारा पर्यावरण का शोषण किया जाता है तो पर्यावरण को दूषित होने तथा उसकी अवनति की समस्या उत्पन्न हो जाती है जो जनसंख्या के लिये हानिकारक सिद्ध होती है। वास्तव में जनसंख्या वृद्धि एवम् पर्यावरण में महत्त्वपूर्ण संयोजन है।

■ 3. जनसंख्या वृद्धि का पर्यावरण पर प्रभाव

(Impact of Population Growth on Environment)

इसकी व्याख्या निम्नलिखित भागों में की जा सकती है:

■ 3.1 पर्यावरण तथा जनांकिकी परिवर्तन सिद्धांत

(Environment and Theory of Demographic Transition)

जनसंख्या वृद्धि के पर्यावरण के विभिन्न पहलुओं पर अनेक प्रभाव पड़ते हैं। इन प्रभावों का अध्ययन **जनांकिकी परिवर्तन सिद्धान्त** (Theory of Demographic Transition) के संदर्भ में किया जाना चाहिये। जनांकिकी परिवर्तन सिद्धान्त वह सिद्धान्त है जो आर्थिक विकास के साथ-साथ जन्म दर तथा मृत्यु दर में होने वाले परिवर्तनों तथा इसके फलस्वरूप जनसंख्या वृद्धि पर प्रकाश डालता है। इससे जनसंख्या वृद्धि के पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों का ज्ञान प्राप्त होता है। आर्थिक विकास के भिन्न-भिन्न स्तरों पर जन्म दर तथा मृत्यु दर की प्रवृत्तियाँ अलग-अलग होती हैं। इस कारण जनसंख्या दर तथा उसके पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभाव भी अलग-अलग होते हैं।

ई० जी० डोलन के अनुसार, **"जनांकिकी परिवर्तन से अभिप्राय उस जनसंख्या चक्र से है जिसका प्रारम्भ मृत्यु दर के कम होने से होता है, जनसंख्या की तीव्र वृद्धि दर के रूप में जारी रहता है तथा जिसका अन्त जन्म दर के कम होने के साथ होता है।"** (Demographic transition refers to a population cycle that begins with a fall in the death rate continues with a phase of rapid population growth and concludes with a decline in the birth rate. **E. G. Dolan**)। **सॉक्स** (Sax) ने जनसंख्या के संक्रमण काल को चार अवस्थाओं में बांटा है। इन **चार अवस्थाओं** को साथ वाले चित्र में दिखाया गया है। इनकी विस्तार से निम्नलिखित व्याख्या की गई है:

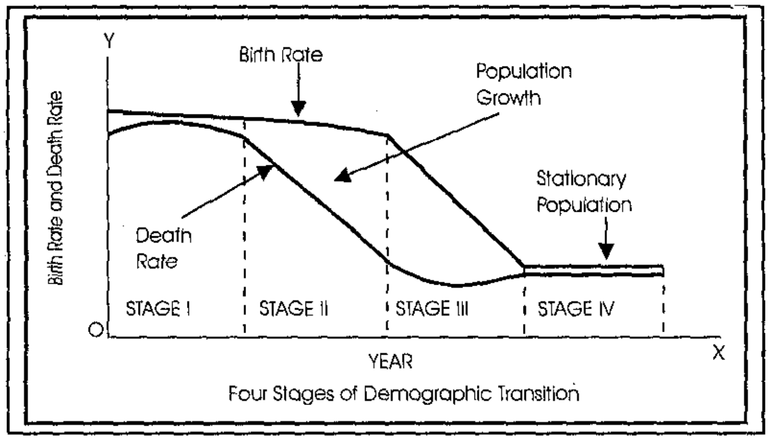

Four Stages of Demographic Transition

(1) प्रथम अवस्था या ऊंची जन्म दर तथा ऊंची मृत्यु दर की अवस्था (First Stage or Stage of High Birth Rate and High Death Rate): "जनांकिकी परिवर्तन की प्रथम अवस्था में जन्म दर भी अधिक होती है तथा मृत्यु दर भी अधिक होती है। इसलिए जनसंख्या की विकास दर बहुत कम होती है।" (A high birth rate and a high death rate leaves little room for population expansion)। इस अवस्था में देश आर्थिक विकास के निम्न स्तर पर होता है। लोगों का मुख्य व्यवसाय कृषि होता है, कृषि पिछड़ी हुई स्थिति में होती है, प्रति व्यक्ति आय कम होती है लोगों का जीवन स्तर नीचा होता है। रासायनिक खादों तथा कीटाणुनाशक दवाइयों का प्रयोग कम होता है। उद्योगिक विकास का स्तर कम होता है इसलिए औद्योगिक प्रदूषण की संभावना भी कम होती है। वाहनों की संख्या भी कम होती है, अतएव जनांकिकी परिवर्तन की प्रथम अवस्था में जनसंख्या वृद्धि का पर्यावरण पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ता।

(2) दूसरी अवस्था या ऊंची जन्म दर तथा नीची मृत्यु दर या जनसंख्या विस्फोट की अवस्था (Second Stage or Stage of High Birth and Low Death Rate or Stage of Population Explosion): जनांकिकी परिवर्तन की दूसरी अवस्था में ऊंची जन्म दर तथा नीची मृत्यु दर के कारण जनसंख्या की वृद्धि दर बहुत बढ़ जाती है (A high birth rate and declining death rate leads to high population growth)। इस अवस्था में जनसंख्या वृद्धि दर एक से तीन प्रतिशत तक होता है, इस स्थिति को **जनसंख्या विस्फोट** (Population Explosion) की स्थिति भी कहा जाता है। यह एक असन्तुलन की स्थिति है जो लम्बे समय तक कायम नहीं रह सकती। इस अवस्था में आय में वृद्धि होने लगती है और आर्थिक क्रियाओं का विस्तार होता है। इसके साथ अच्छी स्वास्थ्य सेवाओं तथा पौष्टिक आहार के कारण मृत्यु दर में तेजी से कमी आने लगती है। इस अवस्था में आधुनिकीकरण होता है तथा व्यापार, उद्योग तथा यातायात का विकास होने लगता है। इस अवस्था में कृषि प्रदूषण, औद्योगिक प्रदूषण एवं यातायात प्रदूषण में वृद्धि होने के कारण पर्यावरण पर बुरा प्रभाव पड़ता है एवं उसकी अवनति होती है। अतएव् जनांकिकी परिवर्तन की द्वितीय अवस्था में जनसंख्या वृद्धि का पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

(3) तीसरी अवस्था या गिरती हुई जन्म दर तथा नीची मृत्यु दर की अवस्था (Third Stage or Stage of Declining Birth Rate and Low Death Rate): जनांकिकी परिवर्तन की तीसरी अवस्था में गिरती हुई जन्म दर तथा नीची मृत्यु दर के कारण जनसंख्या की वृद्धि दर कम होने लगती है (A declining birth rate and low death rate lead to low population growth.)। इसके कारण एक देश के आर्थिक विकास के साथ-साथ अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक परिवर्तन (Structural Changes) होने आरम्भ हो जाते हैं। देश में उद्योग-धंधों की अधिक स्थापना होती है, जनसंख्या का अधिकतर भाग

शहरों में रहने लगता है। इस अवस्था में औद्योगिक, कृषि एवं यातायात के विकास के फलस्वरूप प्राकृतिक साधनों का शोषण होता है एवं पर्यावरण की अधिक अवनति होती है। अतएव इस अवस्था में जनसंख्या वृद्धि का पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

(4) चतुर्थ अवस्था या नीची जन्म दर तथा नीची मृत्यु दर की अवस्था (Fourth Stage or Stage of Low Birth Rate and Low Death Rate): जनांकिकी परिवर्तन की चतुर्थ अवस्था में नीची जन्म दर तथा नीची मृत्यु दर के कारण जनसंख्या की वृद्धि दर नीचे स्तर पर ही स्थिर हो जाती है। (A low birth rate and low death rate lead to stationary population growth at low rate.) यह **स्थिर जनसंख्या की अवस्था** (Stationary Population Stage) कहलाती है। इस अवस्था में आर्थिक विकास के परिणामस्वरूप लोगों का जीवन स्तर बहुत ऊंचा हो जाता है। शहरीकरण, उद्योगीकरण तथा शिक्षा प्रसार से लोगों के सामाजिक दृष्टिकोण में परिवर्तन आ जाता है।

इस अवस्था में अधिकतर जनसंख्या पर्यावरण संरक्षण के प्रति जागरूक हो जाते हैं। प्रदूषण को कम करने एवं पर्यावरण संरक्षण के लिए विशेष प्रयत्न किये जाने लगते हैं जिससे **धारणीय विकास** (Sustainable Development) के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सके।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि जनांकिकी परिवर्तन सिद्धान्त द्वारा व्यक्त चार अवस्थाओं का पर्यावरण पर अलग-अलग प्रभाव पड़ता है।

■ 3.2 जनसंख्या वृद्धि के पर्यावरण पर प्रभाव
(Effect of Population Growth on Environment)

जनसंख्या वृद्धि के पर्यावरण पर मुख्य रूप से निम्नलिखित प्रभाव पड़ते हैं:

(1) प्राकृतिक संसाधनों की समाप्ति (Depletion of Natural Resources): जिस गति से जनसंख्या बढ़ रही है, उसी गति से मानवीय क्रियाएं भी बढ़ रही हैं, इसके परिणामस्वरूप पर्यावरण पर दबाव इस सीमा तक बढ़ चुका है कि पर्यावरण बढ़ती जनसंख्या के पोषण में असमर्थ होता जा रहा है। आने वाले समय में खाद्यान्न की कमी नहीं बल्कि पर्यावरण का निम्नीकरण (Degradation) ही जनसंख्या वृद्धि की सीमा को निश्चित करेगा। जनसंख्या वृद्धि के कारण कई प्राकृतिक संसाधन समाप्ति की ओर अग्रसर हो रहे हैं और मनुष्य में इतना सामर्थ्य नहीं होगा कि वह इनका कोई विकल्प (Substitute) खोज पाए। उदाहरण के लिए यदि विश्व के तेल भण्डार (Oil Reserves) समाप्त या निष्कासित (Exhausted) हो जाते हैं, इससे पहले कि मानव उनका कोई विकल्प विकसित कर पाए, यह स्थिति विश्व अर्थव्यवस्था के पूर्णतया नियन्त्रण से बाहर हो जाएगी।

(2) भूमि पर दबाव (Strain on Land): भूमि एक वह आधारभूत प्राकृतिक साधन है जिसके द्वारा विशाल जनसंख्या का पालन-पोषण हो रहा है। जनसंख्या के बढ़ते घनत्व के कारण वनों को अंधाधुंध काटा जा रहा है ताकि कृषि प्रयोग के लिए भूमि उपलब्ध हो सके। भूमि प्रयोग में भी काफी परिवर्तन लाए जा रहे हैं, प्रमुख नदियों पर बड़े-बड़े जलाशय (Reservoirs) एवं बांध बनाए जा रहे हैं, खनिज पदार्थों को भी व्यापक रूप से निकाला व प्रयोग किया जा रहा है, ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों में नई-नई बस्तियां बसाई जा रही हैं और अनेक गैर-कृषि उपयोगों के लिए भूमि की मांग बढ़ रही है। बीसवीं शताब्दी के दौरान ही कृषि क्षेत्र की मांग को पूरा करने के लिए लगभग 90 लाख हेक्टेयर भूमि से वन काट दिए गए थे। वनों का व्यापक अवक्षयन (Deforestation), घास स्थलों का निम्नीकरण (Degradation of Grassland) आदि के कारण विश्व में मरुस्थलीकरण (Desertification) बढ़ता जा रहा है। प्राकृतिक पारिस्थितिक तन्त्र (Ecology) का यह विनाश एक ओर तो जैवीय विविधता (Bio-diversity) के लिए और दूसरी ओर मृदा की गुणवत्ता (Quality of Soils) के लिए खतरा बनता जा रहा है।

(3) भूमि का गहन प्रयोग (Intensive Use of Land): जनसंख्या वृद्धि के कारण कृषि भूमि का अधिक गहनता से प्रयोग करने के लिए ऊर्जा (Energy), जल, उर्वरक, व कीटनाशक दवाइयों (Pesticide) का प्रयोग किया जाता है। भूमि प्रयोग को और अधिक गहन करने के लिए सिंचाई मनुष्य द्वारा प्रयोग की जाने वाली एक सामान्य तकनीक है। परन्तु यह बहुत कम महसूस किया गया कि है इन उर्वरकों और कीटनाशक दवाइयों के प्रयोग से कुछ रोगजनक जीवाणुओं का जनन हो सकता है। सिंचाई से सिस्टोसोमियासिस (Schistosomiasis) जैसी बीमारियाँ पैदा होती हैं जो मलेरिया के साथ मिलकर विश्व में गंभीर रोगों को जन्म देती हैं। इसी प्रकार

उर्वरक के तौर पर नाइट्रेट (Nitrate) के अधिक प्रयोग से भी कई बार मैनिन्जाइटस (Meningitis) जैसी बीमारियों के कीटाणु पैदा हो सकते हैं।

(4) **मिट्टी को गम्भीर क्षति** (Serious Damage to Soils): मानवीय क्रियाओं के फलस्वरूप भूमि/मृदा को भी निम्नलिखित कारणों से बहुत अधिक क्षति पहुँची है: (i) निम्न कृषि तकनीकों का प्रयोग, (ii) भूमि-जल का अत्यधिक निष्कासन (Extraction), (iii) सिंचाई के गलत तरीकों के प्रयोग के कारण मिट्टी या मृदा का लवणीकरण (Salinisation), (iv) सड़कों का जाल बिछाना, (v) भारी-भारी वाहनों का चलाना, (vi) अतिचारण (Overgrazing) के कुप्रभाव आदि। इन सभी के संचयी प्रभाव (Cumulative Effect) बहुत ही हानिकारक (Disastrous) रहे हैं विशेषकर उन देशों में जहां कृषि ही अर्थव्यवस्था का मुख्य प्रेरणा स्रोत (Mainstay) है।

(5) **मरुस्थलीकरण** (Desertification): बढ़ती जनसंख्या के कारण मरुस्थलीकरण पर्यावरण के निम्नीकरण का एक गंभीर पहलू है। बड़े पैमाने पर मरुस्थलीकरण के मुख्य कारण हैं वनों का अपरोपण (Clearing of Forests), कृषि प्रबन्ध में ढीलापन, बढ़ता भूमि कटाव (Soil Erosion), जलाक्रान्ति (Waterlogging), सिंचित भूमि का लवणीकरण (Salinisation) और खेती वाली भूमि का निम्नीकरण। इन सभी कारणों के परिणामस्वरूप पेड़-पौधों, जैवीय जातियों (Genetic Diversity) तथा पशु-पक्षियों का विलोपन हो सकता है। ऐसा अनुमान है कि आज विश्व की लगभग 60 प्रतिशत कृषि भूमि, विभिन्न मात्रा में, मरुस्थलीकरण से ग्रस्त होती जा रही है।

(6) **घटते प्रतिफल का नियम** (Law of Diminishing Returns): बढ़ती जनसंख्या के परिणामों का एक पहलू कृषि में घटते प्रतिफल के नियम का लागू होना है। बढ़ती जनसंख्या के पोषण के लिए अधिक खाद्यान्न उत्पादन करने के लिए हमारे पास दो मार्ग हैं – पहला है अधिक भूमि को खेती के अन्तर्गत लाना और दूसरा है, उपलब्ध कृषि भूमि पर अधिक सिंचाई, उर्वरक, अच्छे बीज, अच्छे प्रबन्ध व कीटनाशक दवाइयों का प्रयोग करके गहन खेती द्वारा उत्पादन बढ़ाना। इन प्रयासों से शुरू में कृषि उत्पादन मे वृद्धि तो हो सकती है परन्तु दीर्घकाल में स्थिति ऐसी भी हो सकती है कि भूमि की प्राकृतिक उत्पादन की शक्ति में गिरावट आ जाए। अर्थशास्त्र में इस अवस्था को घटते प्रतिफल के नियम की संज्ञा दी जाती है। इसी प्रकार जब और अधिक भूमि को कृषि योग्य बनाने का प्रयास किया जाएगा, तो उसके लिए वनों को काटना पड़ेगा, जिससे मरुस्थलीकरण की समस्या फिर पैदा हो जाएगी।

(7) **जलवायु तन्त्र को खतरा** (Threat to Climatic System): इस धरती पर बढ़ती जनसंख्या के दबाव के कारण जलवायु तन्त्र पर भी विपरीत प्रभाव पड़ सकते हैं। इसके परिणामस्वरूप वातावरण में मीथेन (Methane), कार्बन-डाइ-आक्साइड (Carbon Di-oxide), सलफर डाइ-आक्साइड (Sulphur Dioxide) तथा सीसा (Lead), जिंक (Zinc), कैडमियम (Cadmium), पारा (Mercury), निकल जैसी धातुओं की बढ़ती मात्रा से जलवायु पर जो प्रभाव पड़ रहे हैं, उनसे ओजोन सतह (Ozone Layer) का समापन (Depletion) होने से वैश्वीय वातावरण (Global Environment) गर्म होता जा रहा है।

*(8) **पोषण चक्रों को खतरा** (Threat to Nutrient Cycles): बढ़ते जनसंख्या दबाव के कारण पोषण चक्रों को भी खतरा* पैदा हो रहा है। **पोषण चक्र से अभिप्राय पारिस्थितिक तन्त्र के जैवीय तथा अजैवीय मिश्र-अमिश्र के बीच अन्तर्क्रिया से है** (The nutrient cycles refer to the interaction between organic and inorganic compounds of the ecosphere)। इन अन्तर्क्रियाओं के कारण पोषणों का परिसंचरण (Circulation of Nutrients) होता रहता है। मानवीय क्रियाओं के बढ़ने के कारण कार्बन, नाइट्रोजन तथा फासफोरस (Phosphorus) आदि की गतिशीलता बढ़ गई है, इसके फलस्वरूप पोषण चक्र का सन्तुलन बिगड़ गया है। उनमें से कुछ का अवक्षयन (Depletion) हो गया है तो कुछ का आधिक्य (Enrichment) हो गया है।

(9) **जल चक्र को खतरा** (Threat to Hydrological Cycle): जलचक्र भी बढ़ती जनसंख्या के कुप्रभाव से अछूता नहीं रहा है। मनुष्य की जल की जरूरतें दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही हैं। मानवीय क्रियाओं में वृद्धि होने के साथ घरेलू प्रयोग, कृषि में सिंचाई तथा विभिन्न औद्योगिक इकाइयों के लिए जल की आवश्यकता बहुत अधिक बढ़ गई है। जल की बढ़ती मांग को पूरा करने के लिए भौम-जल (Ground Water) का प्रयोग अधिक होने लगा है। इसका वैश्वीय (Global) जल चक्र पर प्रभाव पड़ रहा है। इतना ही नहीं

मानवीय जलप्राप्ति सम्बन्धी क्रियाओं के बढ़ने के कारण आज कहीं सूखा तो कहीं बाढ़ों की स्थिति बन चुकी है। जल संदूषण (Water Pollution) का भी जल चक्र पर हानिकारक प्रभाव पड़ा है।

(10) जैवीय-विविधता को खतरा (Threat to Bio-diversity): बढ़ती जनसंख्या के दबाव के कारण इस धरती पर जैवीय-विविधता को भी खतरा बढ़ता जा रहा है। बढ़ती मानवीय क्रियाओं के कारण पर्यावरण में जो परिवर्तन आ रहे हैं उनसे कुछ वनस्पति तथा प्राणीय प्रजातियों (Species of Plants and Animals) का विलोपन (Extinction) होता जा रहा है और यदि इसे समय पर रोका न गया तो स्वयं मनुष्य का भी इस पृथ्वी से एक दिन विलोपन हो सकता है।

(11) उपभोक्तावाद की वृद्धि (Rise of Consumerism): संसार में बढ़ते उपभोक्तावाद के कारण ऊर्जा का उपभोग बढ़ रहा है, वातावरण एवं जलमण्डल (Hydrosphere) में प्रदूषकों (Pollutants) की मात्रा बढ़ रही है, अवशिष्ट के ढेर इकट्ठे होते जा रहे हैं, इन सभी के पर्यावरण पर हानिकारक प्रभाव पड़ रहे हैं। उदाहरण के लिए बिजली उत्पादन के लिए कोयले के प्रयोग से वातावरण का प्रदूषण, जल का संदूषण, स्थलाकृति का विरूपण (Defacement of Landscapes), स्थानीय पारिस्थितिक तन्त्र की विच्छिन्नता (Disruption) तथा अवशेष (Waste) का जनन (Generation) हो रहा है।

(12) अवशेष का अधिक प्रजनन (More Generation of Waste): उपभोग में वृद्धि होने के फलस्वरूप पृथ्वी की संसाधन सम्पदा (Resource Wealth) का बहुत अधिक शोषण हुआ है। इन संसाधनों के शोषण के फलस्वरूप कई प्रकार के अवशेष प्रजनित होते हैं जो बहुत ही हानिकारक हैं। इन अवशेषों को नष्ट करना एवं इनका उपचार करना भी एक समस्या बनी हुई है। इन अवशेषों के कारण ही वायु प्रदूषण एवं जल संदूषण निरन्तर बढ़ रहा है। जब तक इस समस्या के निवारण के लिए कोई उपाय नहीं ढूंढा जाता, यह समस्या गंभीर से गंभीर बनती जाएगी और पृथ्वी पर हमारा जीवन असम्भव सा होता जाएगा।

(13) समुद्र तथा महासागरों पर प्रभाव (Effect on Oceans and Seas): समुद्र और महासागर भी, जनसंख्या वृद्धि के कारण, हानिकारक प्रभावों से अछूते नहीं रह पाए हैं। समुद्र एवं महासागरों में से अधिकाधिक मछलियों का निकालना, समुद्र तल से अधिक खनिज तेल निकालना (Extraction) तथा कुछ अति दुर्लभ जल-जीवियों (Corals) का अपनयन (Removal) आदि कुछ ऐसे उदाहरण हैं जो बढ़ती खाद्यान्न की मांग की पूर्ति के लिए किए जा रहे हैं। इसके अतिरिक्त काफी मात्रा में अवशेष (Waste) समुद्र तथा महासागरों में गिरा दिया जाता है, इससे जल-जीवन और भी अधिक खतरे में पड़ रहा है।

(14) नगरीकरण का प्रभाव (Effect of Urbanization): बढ़ते नगरीकरण ने भी प्राकृतिक वातावरण को प्रभावित किया है। वर्तमान में विश्व की कुल जनसंख्या का लगभग 45 प्रतिशत भाग शहरी क्षेत्रों में रह रहा है। विकसित देशों में 73 प्रतिशत और अविकसित देशों में केवल 37 प्रतिशत लोगों के निवास स्थान शहरों में हैं। ऐसा अनुमान है कि 21वीं शताब्दी के आरम्भ में विश्व जनसंख्या का लगभग 51 प्रतिशत भाग शहरों में निवास करने लगेगा। बड़े शहरों के कारण कई समस्याएं पैदा हो सकती हैं जैसे (i) भूमि की सतह (Land Surface) में प्रमुख परिवर्तन (Alterations), (ii) भूमि जल का अधिक निकालना, (iii) बढ़ता कूड़ा-करकट और इसके प्रबन्ध की समस्या, इन सभी के गंभीर पर्यावरणीय दुष्परिणाम हो सकते हैं। इनके साथ ही जुड़ी समस्या है चार दीवारी के अन्दर रहना (Indoor Living) और शोर प्रदूषण (Noise Pollution), वायु प्रदूषण (Air Pollution) जिनका जन स्वास्थ्य पर अहितकर प्रभाव पड़ सकता है। **लेस्टर. आर. ब्राऊन** (Lester R. Brown) के अनुसार, **''जैसे-जैसे शहरों का आकार बढ़ता जा रहा है वैसे-वैसे शोर, वायु तथा जल प्रदूषण बढ़ता जा रहा है, वस्तुओं, सेवाओं और रिहायश के लिए प्रतियोगिता गहराती जा रही है।''**

(15) सार्वजनिक स्वास्थ्य तन्त्र पर प्रभाव (Effect on Public Health System): नगरीकरण से निकटतम जुड़ाव है पर्यावरण के सार्वजनिक स्वास्थ्य का। घनी जनसंख्या वाले कई अविकसित देशों में सार्वजनिक स्वास्थ्य तन्त्र इस प्रकार का बन चुका है जो देश के लिए हानिकारक तथा विश्व समुदाय के लिए खतरा बन सकता है। कुछ वर्ष पूर्व सूरत में फैले प्लेग की याद से ही हमारे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। जिस कुशलता से भारत ने उस स्थिति का सामना किया, वह सभी अविकसित देशों को करने की आवश्यकता है। आज सूरत नगर भारत में सबसे स्वच्छ नगरों में माना जाता है। यदि सभी शहरों में हम सफाई रखें तो इस समस्या का समाधान किया जा सकता है।

(16) महामारी (Epidemics): सार्वजनिक स्वास्थ्य के साथ-साथ बढ़ती जनसंख्या व जनसंख्या गहनता (Density) के मानवीय स्वास्थ्य पर हानिकारक प्रभाव पड़ सकते हैं। ऊँची औसत गहनता के कारण बड़ी मात्रा में कुपोषण (Under Nourishment) हो जाता है, जनसंख्या में क्षेत्रीय प्रवास (Regional Mobility) शुरू हो जाता है, और महामारियाँ (Epidemics) तथा संक्रमण (Infection) भी जल्दी फैलता है। जो संक्रामक बीमारी वाले व्यक्ति सफर करते हैं, उनसे यह वाइरस दूसरों में फैल जाता है। कहते हैं कि वायरस इतना खतरनाक है कि इससे करोड़ों लोगों की तुरन्त मृत्यु हो सकती है। **इन्फ्लूयेन्जा, टाइफाइड, यलो फीवर** (Yellow Fever) **आदि कई ऐसी बीमारियां हैं जो चिकित्सक वैज्ञानिकों के लिए अभी भी सिरदर्द बनी हुई हैं।**

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि जनसंख्या वृद्धि के पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभाव कितने हानिकारक हैं। **अहमद हुसैन** के अनुसार, **''जनसंख्या की तेजी से वृद्धि ही, सच्चे रूप में, निरन्तर पर्यावरण के हनन की मुख्य दोषी है।''** (Rapid *population growth may in fact be the main culprit for continued environmental degradation.* **– Ahmad Hussen**)

■ 4.पर्यावरण का जनसंख्या वृद्धि पर प्रभाव (Impact of Environment on Population Growth)

पर्यावरण तथा जनसंख्या वृद्धि के बीच संयोजन बहुत ही जटिल है। पर्यावरण जनसंख्या वृद्धि के लिए एक आवश्यकता भी है और विलासिता भी है। उचित एवं स्वच्छ पर्यावरण जनसंख्या वृद्धि में सहायक होता है परन्तु दूषित पर्यावरण जनसंख्या वृद्धि में बाधक सिद्ध होता है। पर्यावरण के जनसंख्या वृद्धि पर मुख्य रूप से निम्नलिखित प्रभाव पड़ते हैं:

(1) जीवन की गुणवत्ता (Quality of Life): जीवन की उत्तम गुणवत्ता जनसंख्या वृद्धि को प्रभावित करती है। जनांकिकी परिवर्तन सिद्धान्त (Theory of Demographic Transition) के अध्ययन से ज्ञात हो जाता है कि प्रथम अवस्था में जब जीवन की गुणवत्ता उत्तम नहीं थी तो जन्म दर और मृत्यु दर दोनों ही अधिक होते थे तथा जनसंख्या की वृद्धि दर कम थी। परन्तु जैसे-जैसे उत्तम पर्यावरण के कारण जन्म दर व मृत्यु दर में अन्तर बढ़ता गया जनसंख्या की वृद्धि दर भी अधिक होती गई। परन्तु जब जनसंख्या पर्यावरण संरक्षण के विषय में अधिक जागरूक हो गई तो जन्मदर कम होने लगी तथा जनसंख्या की वृद्धि दर भी कम होने लगी। स्वच्छ पर्यावरण जीवन की गुणवत्ता को उत्तम बनाता है, व जनसंख्या को एक स्वच्छ एवं स्वस्थ प्राकृतिक आवास प्रदान करता है। इसलिए पर्यावरण द्वारा जनसंख्या को प्राकृतिक आवास प्रदान किया जाता है।

(2) प्राकृतिक आवास (The Habitat): प्रत्येक मनुष्य की स्वाभाविक इच्छा यह है कि अन्य जीव-जन्तुओं व पशु-पक्षियों की भांति वह भी एक ऐसा प्राकृतिक आवास स्थान प्राप्त करे जो प्राकृतिक रूप से स्वच्छ वायु वाला (Clean Air) व विभिन्न प्रकार की हरियाली वाला हो। ऐसा प्राकृतिक वातावरण मनुष्य को स्वस्थ, स्वच्छ, सुखी एवं प्रसन्न बनाए रखता है। जब मनुष्य शहरों में आकर अपना निवास स्थान बनाता है तो उसका निरन्तर यह प्रयास रहता है कि अपने निवास स्थान के चारों ओर हरी घास व पेड़-पौधे लगाए तथा घर के भीतर भी हरे-भरे पौधों से भरे गमले रखे, व घर की चार-दीवारी के अन्दर नहाने व तैरने का आनन्द लेने के लिए एक 'स्विमिंग पूल' बनवाए तथा प्राकृतिक वातावरण को और रुचिकर बनाए रखने के लिए घरेलू कुत्ता, बिल्ली, खरगोश जैसे जानवर पाले, जिनसे उसे थोड़ा बहुत संग-साथ व निकटता (Company) मिलती रहे। परन्तु यहाँ स्पष्ट रूप से यह बतला पाना कठिन है कि किस प्रकार का वातावरण जीवन की उत्तम एवं इष्टतम गुणवत्ता (Optimal Quality of Life) प्रदान कर सकता है। इस संदर्भ में यह अवश्य कहा जा सकता है कि वह प्राकृतिक वातावरण मनुष्य के लिए सबसे अधिक स्वस्थ एवं उत्तम है जो आधुनिक समाज (Modern Society) के हस्तक्षेप के बिना, पिछले अनेक वर्षों से चला आ रहा है।

(3) पर्यावरण एवं जनसंख्या की निर्धनता (Environment and the Poverty of the People): पर्यावरण का जनता की निर्धनता से प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। पर्यावरण के मुख्य अंग जैसे भूमि, वन तथा जल का निर्धन लोग अत्यधिक प्रयोग करते हैं। इसके फलस्वरूप पर्यावरण की अवनति होती है जिसका जनसंख्या के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। पर्यावरण की अवनति के फलस्वरूप निर्धन वर्ग को हानि पहुँची है। यह विशेषकर उन समाजों में देखा गया है जहाँ लोग अधिकतर सामान्य सम्पत्ति संसाधनों (Common Property Resources) पर निर्भर है। उदाहरण के लिए पानी अथवा ईंधन की कमी (Shortage) धनी वर्ग की बजाए निर्धन वर्ग को अधिक प्रभावित करती है।

(4) पर्यावरण का धारणीय विकास के लिए महत्त्व (Importance of Environment for Sustainable Development): पर्यावरण संरक्षण धारणीय विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक है। **धारणीय विकास से अभिप्राय विकास की उस प्रक्रिया से है जो भावी पीढ़ी की आवश्यकताओं को पूरी करने की योग्यता को बिना कोई हानि पहुँचाए, वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं को पूरा करती है।** (Sustainable Development is that process of development which meets the needs of the present generation without compromising the ability of future generation to meet their own needs)। उदाहरण के लिए, आर्थिक विकास के क्षेत्र में हमारा विकास ऐसा होना चाहिए कि जिसका पर्यावरण पर कोई कुप्रभाव न हो। साधारण शब्दों में, धारणीय विकास के संदर्भ में विकास ऐसा होना चाहिए कि जिससे मूल संसाधन भावी पीढ़ियों के लिए बचे रहें। धारणीय विकास की निम्नलिखित पाँच प्राथमिकताएं (Priorities) होनी चाहिए: (i) मूल संसाधनों तथा लोगों को बिना क्षति पहुँचाए अधिकतम संवृद्धि (Maximum Growth), (ii) पारिस्थितिक प्रक्रियाओं (Ecological Processes) को क्रियान्वत बनाए रखना, (iii) प्रत्येक प्रकार के संसाधनों की संभाव्यता (Potential) को बनाए रखना (iv) जैवीय विविधता (Bio-diversity) को बनाए रखना (Maintain) और (v) आर्थिक गुणवत्ता (Economic Quality) तथा आर्थिक मात्रा (Quantity) के बीच सन्तुलन बनाए रखना।

अतएव पर्यावरण संरक्षण का भावी जनसंख्या वृद्धि के लिये बहुत महत्व है।

■ 5. सुझाव (Suggestions)

जनसंख्या दबाव की समस्या तथा पर्यावरण पर पड़ने वाले इसके प्रभाव की समस्या एक बहुत ही जटिल प्रश्न है। इस समस्या के समाधान के लिए कोई ठोस उपाय सरलता से ढूंढे नहीं जा सकते। फिर भी धारणीय विकास की संभावना को अधिकतम करने और पर्यावरण की अवनति की संभावना को न्यूनतम करने के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए जा सकते हैं:

(1) न्यूनतम या शून्य जनसंख्या वृद्धि दर (Minimum or Zero Population Growth): बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में जनसंख्या वृद्धि दर निम्न रही, परन्तु 1980 के दशक में यह उच्चतम बिन्दु पर पहुँच गई। पिछले 30-35 वर्षों से जनसंख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है। प्रश्न यह है कि क्या यह पृथ्वी इतनी वृद्धि सहन कर सकती है, और क्या सीमित संसाधन इस विशाल जनसंख्या का पालन-पोषण कर सकते हैं? इसका उत्तर ऋणात्मक ही है। इसलिए संसार में यदि प्रत्येक व्यक्ति का पालन-पोषण ठीक ढंग से करना है, तो भविष्य में जनसंख्या की वृद्धि दर को न्यूनतम करना होगा, बेहतर यही होगा कि **यह वृद्धि दर शून्य हो** अर्थात् इसमें पूर्ण विराम लगाकर इसे शून्य स्तर पर लाना होगा। अल्पविकसित देशों में जब तक जनसंख्या वृद्धि दर शून्य स्तर पर नहीं आती, तब तक विश्व में जनसंख्या वृद्धि को रोका नहीं जा सकता।

(2) जीवन की गुणवत्ता में सुधार (Improvement in Quality of Life): जीवन की गुणवत्ता का जनसंख्या की वृद्धि से निकटतम सम्बन्ध है। जीवन की गुणवत्ता को बनाए रखने के लिए इसके कुछ चुने हुए घटक या संकेतक (Indicators) हैं: जीवनकाल (Length of Life), अच्छी चिकित्सा सुविधाओं की उपलब्धता, स्वास्थ्य की देख-रेख और शिक्षा स्तर। जीवन की गुणवत्ता व इसके सभी घटकों में किसी देश की सम्पन्नता के साथ आपस में धनात्मक सम्बन्ध होता है। विश्व की आज की स्थिति को देखते हुए यह आवश्यक है कि सभी व्यक्तियों को भोजन, अच्छी चिकित्सा एवं स्वास्थ्य देख-रेख सुविधा उपलब्ध हो ताकि सामान्य रूप से जीवन की गुणवत्ता में सुधार हो सके। इसके लिए आवश्यक है कि विकसित देश इसके लिए आगे आएं। विकसित देशों के पास वैश्वीय संसाधनों का 75 प्रतिशत भाग है, इसलिए उनका यह नैतिक कर्तव्य है कि अपने संसाधनों में से कुछ वित्तीय सहायता वे अल्पविकसित देशों को दें, ताकि वे इस धनराशि का प्रयोग निर्धनता उन्मूलन एवं जीवन की गुणवत्ता को सुधारने में खर्च कर सकें। इस संदर्भ में विकसित देशों का पहला कदम अविकसित देशों के ऋणों को माफ करना होना चाहिए।

(3) प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण (Conservation of Natural Resources): भावी पीढ़ी के लिए भूमि, जल, ऊर्जा, खनिज आदि प्राकृतिक संसाधनों को संरक्षित रखना भी समान रूप से आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण है। ये सभी संसाधन प्रकृति की नि:शुल्क देन हैं और असीमित नहीं हैं, इसलिए इनका अपव्ययी प्रयोग (Extravagant Use) विश्व के लिए असहनीय है। यदि इनका किफायतपूर्ण प्रयोग किया जाता है तो इससे हम इन्हें संरक्षित भी रख सकते हैं और पर्यावरण को प्रदूषित होने से भी बचा सकते हैं।

(a) भूमि संसाधन (Land Resources): खेती के लिए यदि कुशल एवं पर्यावरण-सुरक्षित विधियों का प्रयोग किया जाता है, तो इससे न केवल हमारी सीमित भूमि-संसाधन का संरक्षण हो पाएगा बल्कि हम पर्यावरण को भी सुरक्षित रख सकेंगे। कृषि की ऐसी विधियाँ अपनाई जाएं जो कुशल हों परन्तु कृषि भूमि का उनसे अत्यधिक गहन प्रयोग (Over-intensive Use) न हो जैसे उन उर्वरकों, कीटनाशक दवाइयों आदि का प्रयोग किया जाए जिनकी सहायता से हमारा उत्पादन तो अधिक हो परन्तु उनसे न तो भूमि की मूल उत्पादकता को और न ही पर्यावरण को कोई क्षति पहुँचे।

(b) जल (Water): इसी भांति जनसंख्या की वृद्धि के कारण घरेलू, कृषि तथा उद्योगों के लिए जल की मांग निरन्तर बढ़ती जा रही है। इस मांग को पूरा करने के लिए बहु-तरफा (Multi-pronged) रणनीति अपनाने की आवश्यकता है। इसके लिए सबसे पहले, इतनी खुदाई न की जाए जिससे भौम-जल के जल-स्तर में गिरावट आ जाए, दूसरे, सतह स्तर व नदियों के जल को संदूषण से सुरक्षित रखा जाए और तीसरे, यदि जल संदूषित हो भी गया है तो उसे शुद्ध करने के लिए (Purify) संवेदनशील क्षेत्रों (Vulnerable Regions) में वाटर ट्रीटमेण्ट प्लाण्ट लगाए जाएं।

(c) खनिज (Minerals): इस पृथ्वी पर खनिज पदार्थ न केवल सीमित हैं बल्कि इनका वितरण भी असमान है। इस संदर्भ में विकसित देश अधिक भाग्यशाली हैं और वे अपने संसाधनों का अत्यधिक प्रयोग कर रहे हैं क्योंकि ये संसाधन उनकी वर्तमान जनसंख्या की जरूरतों की तुलना में अधिक हैं। इन देशों द्वारा इस खनिज सम्पत्ति के अपव्ययपूर्ण और अंधाधुंध इस्तेमाल पर रोक लगाने की आवश्यकता है। खनिजों के अत्यधिक दुरुपयोग से पर्यावरण में जो प्रदूषण बढ़ता है, इसे रोका जाना चाहिए। रेडियो एक्टिव पदार्थ, कोयला व खनिज तेल का प्रयोग पर्यावरण की दृष्टि से हानिकारक प्रदूषक सिद्ध हो सकते हैं।

(d) ऊर्जा (Energy): इसी से सम्बन्धित है ऊर्जा का उपभोग। ऊर्जा के अत्यधिक उपभोग से न केवल बचने की आवश्यकता है बल्कि इसके प्रयोग में संयम की आवश्यकता भी है। ऊर्जा के वे स्रोत जो पर्यावरण को प्रदूषित करते हैं, उनका न्यूनतम प्रयोग किया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए, कोयला तेल से अधिक और तेल प्राकृतिक गैस से अधिक प्रदूषण फैलाता है। ऐसा अनुमान है कि विश्व के कुल प्रदूषण के 50 प्रतिशत प्रदूषण और लगभग 20 प्रतिशत ग्रीनहाऊस प्रभाव विश्व में चलने वाले मोटर वाहनों के कारण पैदा होते हैं। पर्यावरण सम्बन्धी इस समस्या की गम्भीरता को कम करने के लिए सस्ते सार्वजनिक परिवहन के साधनों का और न्यूनतम ऊर्जा बचत वाली तकनीक का विकास किया जाना चाहिए।

(4) अवशिष्ट एवं अन्य सामग्री का पुन: प्रयोग (Recycling the Waste and Other Materials): पृथ्वी के संसाधनों के शोषण करने से कुछ न कुछ अवशिष्ट अवश्य पैदा होता है, जो पर्यावरण की दृष्टि से बहुत अधिक हानिकारक हैं। वैसे भी, मानवीय क्रियाओं से प्रतिदिन बहुत अधिक मात्रा में अवशिष्ट जनित (Generate) होता है। इस अवशिष्ट का बिना सोचे समझे जगह-जगह लापरवाही से फेंका जाना (Disposal of Waste) विश्व में सार्वजनिक स्वास्थ्य के लिए हानिकारक सिद्ध हो सकता है। मानवीय स्वास्थ्य तथा पर्यावरण दोनों के लिए सही ढंग के उपाय ढूंढने की आवश्यकता है और इस बात की आवश्यकता भी है कि इस अवशेष का पुन:चक्रण (Recycling), जहाँ तक सम्भव हो, साथ-साथ किया जाए। इसके लिए जन साधारण की विचारधारा में परिवर्तन लाने की आवश्यकता है। किसी भी हालत में अवशिष्ट को नदियों एवं समुद्र में खुलेआम मिलने नहीं देना चाहिए।

(5) वातावरण के बचाव की आवश्यकता (Need for the Protection of Atmosphere): विश्व में बढ़ती औद्योगिक क्रियाओं के परिणामस्वरूप वातावरण को हानि पहुँचाने वाली कई गैसें जैसे सल्फर-डाइ-आक्साइड, कार्बन-डाइ-आक्साइड, नाइट्रोजन आक्साइड, मीथेन आदि की मात्रा बढ़ती जा रही है। इन सभी गैसों का पर्यावरण पर इतना विघनात्मक प्रभाव (Disturbing Impact) पड़ रहा है कि वातावरण का सामान्य तापमान धीरे-धीरे बढ़ता जा रहा है और इन्हीं के कारण कभी-कभी, कहीं-कहीं अम्लीय वर्षा (Acid Rain) भी हो सकती है, जिसके कारण विश्व के वनों की पूर्ण समाप्ति भी हो सकती है। विश्व के औद्योगिक देशों को इसके लिए उपचारात्मक उपाय सोचने की आवश्यकता है। इन देशों के पास ऐसा करने के लिए पर्याप्त धन एवं तकनीक दोनों उपलब्ध हैं।

(6) अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की आवश्यकता (Need for International Co-operation): विश्व में वातावरण को साफ-सुथरा एवं स्वस्थ्य तथा पर्यावरण को सुरक्षित रखने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग का उपलब्ध होना अत्यन्त आवश्यक है। ऊपर व्यक्त अम्लीय वर्षा (Acid Rain) का प्रभाव केवल औद्योगिक देशों पर ही नहीं बल्कि पड़ोसी देशों पर भी पड़ेगा, जबकि उन देशों का

इसके लिए कोई दोष (Fault) नहीं है। इतना ही नहीं, बहु-राष्ट्रीय कम्पनियों के आने से एकदम सुधारात्मक उपाय (Quick Remedial Measures) के लिए अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की आवश्यकता और भी बढ़ गई है। उदाहरण के लिए भारत में 1984 में **भोपाल में जहरीली गैस त्रासदी** (Bhopal Gas Tragedy) यू. एस. आधारित कम्पनी की लापरवाही के कारण हुई थी। इस दुर्घटना में 3000 बेगुनाह लोगों को अपनी जान गंवानी पड़ी और 2 लाख से अधिक लोग अशक्त, अपंग एवं रोगग्रस्त हो गए। अभी तक बहुत से पीड़ित एवं प्रभावित इन व्यक्तियों को कोई न्याय एवं मुआवजा नहीं मिल पाया है।

(7) पर्यावरण सम्बन्धी जागृति (Environmental Awareness): पर्यावरण को स्वच्छ रखने के लिए लोगों में पर्यावरण सम्बन्धी जागरूकता भी आवश्यक है। लोगों से यह अपेक्षा की जानी चाहिए कि वे स्वच्छ रहें, इधर-उधर न थूकें, घर का कूड़ा इधर-उधर न फेंके, खुले में पेशाब-पखाना न करें आदि। लोगों में प्रकृति के साथ मिलकर रहने, न कि खिलवाड़ करने की भावना जागृत करने की आवश्यकता है। यदि लोग स्वयं इन बातों को समझने लगेंगे, तो इससे सार्वजनिक स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं को सुलझाने में भी आसानी होगी।

(8) उचित कानूनी व्यवस्था (Appropriate Legislative Measures) विश्व के कई देशों ने पर्यावरण संरक्षण से सम्बन्धित कई कानून बनाएं हैं और उन्हें सख्ती से लागू भी किया है। भारत में भी, पर्यावरण संरक्षण सम्बन्धी कानूनों की कमी नहीं है। परन्तु अनेक अल्पविकसित देशों में इससे सम्बन्धित कानून बनाए ही नहीं गए हैं और जिन्होंने बनाए भी हैं, उनमें इन कानूनों को सख्ती से लागू करने का अभाव पाया जाता है। पर्यावरण सम्बन्धी कानून **'प्रदूषक को हर्जाना देना होगा'** (The Polluter must Pay) के सिद्धान्त पर बनाए जाने चाहिए। जो औद्योगिक इकाइयां पर्यावरण को प्रदूषित करती हैं उन पर भारी जुर्माना लगाया जाना चाहिए, कानून का पालन न करने वाले को सजा भी मिलनी चाहिए। कानून में यह व्यवस्था भी रखी जानी चाहिए कि जो औद्योगिक इकाइयां पर्यावरण संरक्षण का पूरा ध्यान रखती हैं, उन्हें उचित पुरस्कार मिले। कुछ भी हो, प्रदूषण फैलाने वाली इकाइयों को स्वच्छता की लागत के भुगतान से छुटकारा नहीं देना चाहिए।

(9) जैवीय विविधता की सुरक्षा (Protection of Bio-Diversity): मानवीय क्रियाओं और इसके परिणामात्मक (Resultant) जलवायु परिवर्तनों के कारण किसी न किसी क्षेत्र में कुछ वनस्पति प्रजाति या प्राणि प्रजाति (Species of Animals and Plants) का धीरे-धीरे विलोपन (Extinction) होता जा रहा है। इससे जैवीय विविधता को निरन्तर खतरा पैदा होता जा रहा है। उदाहरण के लिए, आज भी अंटार्कटिका (Antarctic) तथा आर्कटिक (Arctic) जैसे कुछ ऐसे स्थान बचे हुए हैं, जहां मानवीय हस्तक्षेप न्यूनतम या अप्रभावित (Unaffected) है। इन दोनों स्थानों की आज की पारिस्थितिक तन्त्र (Ecosystem) के सन्तुलन को बनाए रखने में अपनी एक महत्त्वपूर्ण भूमिका हो सकती है, जिसकी हमें आज शायद जानकारी भी न हो। इन क्षेत्रों में अभी भी दुर्लभ वनस्पति व प्राणि जातियाँ (Rarest species and natural fauna and flora) पाई जाती हैं और हो सकता है कि ऐसे स्थानों की विश्व में आज के जलवायु प्रतिरूप में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका हो। अतएव विश्व समुदाय को मिलकर एक अन्तर्राष्ट्रीय समझौता (International Agreement) यह करना होगा कि इस स्थान को मानवीय हस्तक्षेप से बचाया जाए। इस संदर्भ में 11 अक्तूबर, 1991 को कई देशों द्वारा अन्टार्कटिका संधि (Antarctic Treaty) पर हस्ताक्षर किया गया, जिसमें यह निर्णय लिया गया कि अब कोई भी देश इन स्थानों पर अगले 50 वर्षों तक खनिज पदार्थ तलाशने या निकालने हेतु कार्य नहीं कर सकता और न ही कोई व्यक्ति अपने साथ ले जाई कोई वस्तु/अवशिष्ट वहां फेंक कर आ सकता है।

(10) पर्यावरण संरक्षण संबंधी गहन अनुसंधान (Intensive Research to Preserve the Environment): पर्यावरण संरक्षण के सम्बन्ध में कई कारणों (Reasons) से अनुसंधान किए जाने की आवश्यकता है। हमारे विचार में अनुसंधान की दिशा निम्नलिखित विषयों की ओर अग्रसर होनी चाहिए: (i) विश्व की जनसंख्या को स्थिर करने के लिए उचित उपाय ढूंढना, (ii) मनुष्य द्वारा संसाधनों के अत्यधिक उपभोग को कम करने तथा भावी पीढ़ी के लिए संसाधन बचाए रखने के लिए मार्ग ढूंढना; (iii प्राकृतिक शक्तियों एवं मानवीय क्रियाओं के अन्तर्सम्बन्ध को समझना; (iv) ऐसी कृषि तकनीक का विकास करना जिससे भूमि से उत्पादन तो बढ़े परन्तु मिट्टी की मौलिक उत्पादकता में कमी न हो; (v) जल, खनिज, ऊर्जा आदि के कुशल प्रयोग के लिए बेहतर तकनीक की खोज करना; (vi) ऐसी तकनीक विकसित करना जिससे अवशिष्ट का पुन:चक्रण संभव हो सके; (vii) ऐसी तकनीक का विकास करना जिससे वाहनों

द्वारा जनित प्रदूषण को कम किया जा सके; (viii) ऐसे आविष्कार की खोज करना जो खनिज तेल का विकल्प बन सकें; (ix) जैवीय *विविधता, भूमि प्रयोग, मानवीय व्यवहार आदि पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को जानना, आदि।*

अन्त में यह कहना उचित होगा कि उपरोक्त सभी उपायों को लागू करने के लिए एक ओर तो काफी धन की आवश्यकता है और दूसरी ओर इच्छाशक्ति (Will power) की। विश्व के अधिक विकसित देश, जिनके पास विश्व की कुल प्राकृतिक सम्पत्ति का तीन-चौथाई भाग है, उन्हें अल्पविकसित देशों को अपने पर्यावरण संरक्षण कार्यक्रम में वित्तीय सहायता तथा तकनीकी सहायता प्रदान करने में अधिक उदार बनना पड़ेगा। समय-समय पर अत्यधिक महत्त्वपूर्ण पर्यावरण विषयों का उन्हें नियमित रूप से मूल्यांकन भी करना होगा तथा इन देशों में वर्तमान पर्यावरण सम्बन्धी कानून के सख्ती से एवं प्रभावपूर्ण ढंग से लागू करने की प्रक्रिया भी शुरू करनी होगी। इसके साथ-साथ प्रचार माध्यम (Media) द्वारा जनसाधारण में जागृति भी लानी होगी।

संक्षेप में पर्यावरण एवं जनसंख्या वृद्धि में परस्पर संयोजन पाया जाता है। जहाँ एक ओर जनसंख्या वृद्धि पर्यावरण को प्रभावित करती है वहाँ दूसरी ओर पर्यावरण द्वारा प्रभावित होती है।

■ 6. जनसंख्या निर्धनता और पर्यावरण (Population, Poverty and Environment)

हाल के वर्षों में विश्व ने पर्यावरण की अवस्था में बहुत अधिक अवनति और समाज पर इसके प्रतिकूल प्रभाव को देखा है। ऐसा लगता है कि यह कई अंतर्संबंधित तत्त्वों जैसे आर्थिक विकास, जनसंख्या वृद्धि, शहरीकरण, कृषि की गहनता, बढ़ते ऊर्जा प्रयोग तथा यातायात द्वारा प्रभावित है। अनेक पर्यावरणीय समस्याओं की जड़ में निर्धनता अभी भी एक समस्या बनी हुई है।

सन् 1990 में, जनसंख्या, बढ़ती निर्धनता तथा पर्यावरणीय अवनति के बीच परस्पर जुड़ाव के कारण विश्व में कई कान्फ्रेंस हुई हैं जिन्होंने यह दर्शाया है कि संसार को इन चुनौतियों का सामना करना है। संसार में इन समस्याओं से संबंधित आयोजनों ने यह सहमति भी दिखाई है कि पर्यावरण संबंधी धारणीयता और समानांतर विकास के लिए कुछ कदम अवश्य उठाए जाने चाहिएं। तब से ही अंतर्राष्ट्रीय समुदाय (International Community) की ओर हुई प्रगति का अनुमान लगाने का प्रयास कर रही है और यह प्रयत्न भी कर रही है कि इस संदर्भ में राष्ट्रीय और स्थानीय स्तर पर सामान्य सहमति को जगृत किया जाए।

■ 6.1 पृष्ठभूमि (Background)

जनसंख्या, निर्धनता तथा पर्यावरण के बीच जुड़ावों (Linkages) को स्थापित करना एक जटिल समस्या है। जनसंख्या-पर्यावरण अंतर्संबंध की उत्पत्ति हमें **माल्थस** की ओर ले जाती है जिसने 1700 में यह बतलाया था कि जनसंख्या में वृद्धि खाद्य पदार्थों की वृद्धि की तुलना में अधिक तेजी से होती है। इसका विशुद्ध परिणाम यह होगा कि खाद्य पदार्थ में वृद्धि की तुलना में जनसंख्या में अंततः वृद्धि कहीं अधिक हो जाएगी, इसके फलस्वरूप मानवीय समाज में दरिद्रता, अकाल, संकट और वियोग तथा उथल-पुथल आ जाएगी। थॉमस माल्थस ने कहा कि निर्धनों से पर्यावरण हानिकारक व्यवहार में लिप्त हो जाने की संभावना हो जाती है क्योंकि वे अपने *अगले भोजन के आगे कुछ भी नहीं सोचते।*

क्लीवर तथा शरीबर (Cleaver and Schreiber) जैसे नव-माल्थस विचारकों का यह कहना है कि ऊँची जनसंख्या वृद्धि दरें *पर्यावरणीय तथा कृषि समस्याओं को बढ़ाती है, जिससे निर्धनता और अधिक पर्यावरणीय अवनति होती है।*

■ 6.2 जनसंख्या वृद्धि तथा पर्यावरणीय अवनति (Population Growth and Environmental Degradation)

जनसंख्या वृद्धि को पर्यायवरणीय अवनति का सामान्यतया जिम्मेवार इसलिए ठहराया जाता है क्योंकि यह उपभोग में वृद्धि लाती है और प्राकृतिक संसाधनों के लिए अधिक माँग को बढ़ाती है। जनसंख्या वृद्धि और निर्धनता वन, जल, भूमि और रिहायश जैसे प्राकृतिक संसाधनों पर अपना प्रभाव छोड़ती है, इस प्रकार दुश्चक्र (Vicious Circle) द्वारा यह पर्यावरण को प्रभावित करती है। इस संदर्भ में 1987 की ब्रण्टलैण्ट रिपोर्ट का कहना है कि ''विश्व के कई भाग नीचे की ओर दुश्चक्र (Vicious Downward Spiral) में फंस गए हैं, निर्धन लोग जीवित रहने के लिए पर्यावरणीय संसाधनों के प्रयोग के लिए मजबूर हैं और उनकी पर्यावरण की अपनी दरिद्रता उन्हें और अधिक दरिद्र या कंगाल बना देती है, जिससे उनका जीवित रहना (Survival) और भी कठिन एवं अनिश्चित हो जाता है।

चूंकि निर्धन वर्ग के पास आय-साधन अपर्याप्त या बहुत ही कम हैं, इसलिए उन्हें अपनी जरूरत के अनुसार सामग्री (उपभोग पदार्थ आदि) नहीं मिल पाता। इसका परिणाम 'निर्धनता' होता है। निर्धन होने के कारण लोग, अपनी आधारभूत जरूरतों को पूरा करने के लिए दुर्बल तथा बहुत ही संवेदनशील इलाकों में जाते हैं। ईंधन के लिए वे वृक्षों को काटते हैं, पहाड़ी ढलानों पर खेती करते हैं, ये सभी क्रियाएं पर्यावरणीय प्रश्नों से जुड़ी हुई हैं। कई बार वे पर्यायवरणीय अवनति की गति को तेज करती हैं।

निर्धनता ही गरीब लोगों को बाध्य करती है कि ईंधन के रूप में गोबर एवं लकड़ी का प्रयोग करें, जिससे वायु प्रदूषण बढ़ता है। इसलिए सकारात्मक (Positive) जनसंख्या वृद्धि दुर्भाग्य एवं विनाश ला सकती है, विशेषकर अल्पविकसित देशों में, क्योंकि इससे नीचे की ओर दूषित चक्करदार निर्धनता (Vicious downward spiral-poverty) का क्रम शुरू हो जाता है, जिससे अधिक बच्चे और अधिक निर्धनता तथा प्राकृतिक संसाधनों की अधिक अवनति होती है।

■ 6.3 भारत में स्थिति (Position in India)

उत्तरजीविता (Survival) तथा भारत में अधिकतर निर्धन वर्ग ग्रामीण क्षेत्रों में रहते हैं और अपनी आजीविका के लिए प्रत्यक्ष रूप से प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर रहते हैं। देश के कार्यबल (Workforce) का 60 प्रतिशत भाग अपनी आजीविका के लिए कृषि, *मछलीपालन तथा वनों पर निर्भर है और गैर-निर्धन की तुलना में निर्धन की निर्भरता प्राकृतिक संसाधनों पर अधिक है।*

भारत में प्रतिव्यक्ति कृषि योग्य भूमि की उपलब्धता पिछले कई वर्षों से कम होती जा रही है। चूंकि ग्रामीण लोगों के लिए कृषि एक मुख्य सहारा है और प्रतिव्यक्ति कृषि भूमि निरंतर गिर रही है, इसलिए उनकी क्रय-शक्ति घट गई है और इसलिए वे निर्धनता की श्रेणी में आते जा रहे हैं।

ग्रामीण लोग या कृषि समुदाय से संबंधित लोगों को दो प्रकार की प्रतिक्रियाओं (Responses) का तब सामना करना पड़ता है जब संसाधनों पर दबाव बढ़ता है। पहली प्रतिक्रिया अक्सर ग्रामीण गृहस्थों द्वारा अपनाई जाती है जिसमें उन्हें सीमा प्रदेशों में खेती का विस्तार करना पड़ता है, कम सशक्त भूमि (Low Potential Land) का प्रयोग करना पड़ता है, वन क्षेत्र में खेती करनी पड़ती है अथवा रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग द्वारा कृषि का तीव्रीकरण (Intensification) करना पड़ता है। इन सभी क्रियाओं से भूमि की अवनति होती है, उत्पादकता गिरती है, वन-विनाश (Deforestation) होता है तथा अन्य पर्यावरणीय संबंधित समस्याएं पैदा होती हैं। इससे भूमिहीन किसानों में बेरोजगारी बढ़ी है, ऋणग्रस्तता बढ़ी है और कमजोर वर्ग का शोषण हुआ है।

संसाधनों की अवनति निर्धन वर्ग की उत्पादकता को कम करती है। निर्धन चूंकि निर्धन है, वह अपने बच्चों के लिए आधारभूत अनिवार्यताएं (Basic Necessities) भी उपलब्ध नहीं करा सकता। बच्चे निरक्षर तथा कुपोषित रह जाते हैं। इससे अंतत: प्रजनन दर और जनसंख्या बढ़ती है। जनसंख्या के दबाव के कारण मजदूर-दर गिर जाती है और काम के अवसर कम हो जाते हैं, मजबूर होकर ग्रामीण निर्धन लोग शहरों की ओर भागते हैं, जिससे शहरी क्षेत्रों में पर्यावरण की समस्या पैदा होती है तथा आर्थिक और राजनीतिक अस्थिरता आती है।

ग्रामीण लोगों के शहरों में आने से, महानगर (Mega Cities) उभरने लगे हैं और शहरी गंदी बस्तियाँ (Urban Slums) फैलने लगी हैं। शहरों के इस तेज और अनियोजित विस्तार से शहरी पर्यावरण की भी अवनति होने लगी है। इसने ऊर्जा, निवास, यातायात, संचार, शिक्षा, जल आपूर्ति और सिवरेज तथा मनोरंजन संबंधी सुविधाओं जैसी आधारभूत सेवाओं की माँग और पूर्ति के बीच अंतर ला दिया है, और इसीलिए शहरों के पर्यावरणीय संसाधन आधार भी समाप्ति की ओर अग्रसर हो रहे हैं।

■ 6.4 पर्यावरण अवनति के परिणाम के रूप में निर्धनता

(Poverty as a Result of Environmental)

यह सही है कि जनसंख्या वृद्धि से निर्धनता के फलस्वरूप पर्यावरणीय अवनति हुई है। परंतु कुछ सीमा तक पर्यावरण अवनति भी निर्धनता के लिए जिम्मेवार है। यह सच है कि अपने निर्वाह के लिए निर्धन वर्ग प्रकृति पर निर्भर है, पुंत ये भी प्राकृतिक प्रकोपों, पर्यावरणीय अवनति तथा परिस्थितिक बर्बादी (Ecological Disaster) का शिकार हुए हैं। परंतु प्रश्न यहां यह है कि इस अवस्था के

बनाने में क्या वे स्वयं जिम्मेवार हैं, जैसाकि 'दुश्चक्र' समर्थकों का कहना है। इसका सही उत्तर यह है कि कुछ सीमा तक पर्यावरणीय अवनति भी निर्धनता के लिए जिम्मेवार है। इसके समर्थन में निम्नलिखित तर्क दिए जा सकते हैं:

(i) 19वीं तथा बीसवी शताब्दी में वन विनाश (Deforestation) इसलिए हुआ है कि रेलवे नेटवर्क के विस्तार में तथा शहरी क्षेत्रों में लकड़ी की माँग का दबाव बढ़ा था। इसलिए इस माँग को पूरा करने के लिए वनों को अंधाधुंध काटा गया। (ii) भारत में औद्योगिकीकरण तथा शहरीकरण प्रक्रिया के कारण भी पर्यावरण की अवनति निरंतर हुई। (iii) पर्यावरण अवनति पर निर्धन की भूमिका के कम होने के बदले में यह भी कहा जाता है कि निर्धनों की तुलना में अमीर लोग अधिक उपभोग करते हैं। और (iv) ऐसा भी देखा गया है जब निर्धनता स्तर बहुत ऊँचा था, तब पर्यावरणीय अवनति इतनी अधिक नहीं थी और अब जब निर्धनता स्तर काफी घट रहा है (1973 में 55 प्रतिशत से घटकर 1999-2000 में 26 प्रतिशत) तब पर्यावरणीय अवनति बढ़ती हुई दिख रही है।

■ 6.5 नीति उपाय (Policy Measures)

अब ध्यान आकर्षित करने वाला मुख्य कार्य यह है कि जनसंख्या, निर्धनता तथा पर्यावरण के बीच की कड़ी को कैसे तोड़ा जाए। इस जटिल स्थिति के परिपेक्ष्य में नीति निर्माता इस दुविधा में है कि क्या ऐसी नीति बनाई जाए कि जिसके द्वारा पर्यावरण की लागत पर निर्धनता को कम किया जाए अथवा ऐसी नीति निर्मित की जाए की निर्धन समुदाय की लागत पर अवनति को कम किया जाए। यहां यह बतला देना आवश्यक है पर्यावरणीय मूल कारण किसी देश के प्राकृतिक संसाधनों प्रणाली और सामाजिक-आर्थिक संरचना के कुप्रबंध (Mismanagement) में है न कि निर्धन समुदाय में जो अपने निर्वाह के लिए इन संसाधनों पर निर्भर हैं।

निर्धनता तथा पर्यावरण संबंधी नीतियों का निर्माण इस ढंग से किया जाना चाहिए कि जिससे उत्पादकता में वृद्धि हो और जलाने वाली लकड़ी तथा जल जैसे सामान्य सम्पत्ति संसाधनों की उपलब्धता आसानी से हो।

हमारे विचार में, इस संदर्भ में उपयुक्त नीति हस्तक्षेप (Policy Intervention) निम्न प्रकार का होना चाहिए: (i) प्राकृतिक संसाधन प्रबंध में सुधार; (ii) निर्धनता उन्मूलन को प्रोत्साहन; (iii) ग्रामीण जोखिम और असुरक्षा को कम करना; (iv) आय के असमान वितरण को कम करना; (v) शिक्षा तथा सार्वजनिक स्वास्थ्य कार्यक्रमों को सशक्त करना और परिवार कल्याण कार्यक्रमों को बढ़ावा देना; (vi) तथा निर्धनता संबंधी निर्णय-निर्माण नीति में निर्धन की आवाज को सुनना और उस पर गौर करना। इसके लिए समान रूप से महत्त्वपूर्ण है कृषि का विकास करना क्योंकि कृषि विकास, खाद्य उपलब्धता, निर्धन द्वारा ली जाने वाली कैलरी और निर्धनता में कमी में निकट संबंध है।

प्रश्न (QUESTIONS)

■ I. वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

सभी प्रश्न अनिवार्य है (Attempt all the Questions)

1. जनसंख्या वृद्धि तथा पर्यावरण के बीच संयोजन है (बहुत निकट, बहुत निकट नहीं) (K.U. 2005)
2. किसी क्षेत्र की जनसंख्या तथा संसाधनों के बीच के सम्बन्ध को कहा जाता है (जनसंख्या दबाव, मानवीय विकास)
3. जैसे-जैसे जनसंख्या दबाव बढ़ता है, मानवीय क्रियाएं बढ़ती हैं और ऊर्जा की मात्रा का उपभोग (बढ़ता है, घटता है)
4. अल्पविकसित देशों की तुलना में, विकसित देशों में प्रदूषण छोड़ने का स्तर है (अधिक, कम)
5. पोषण चक्र को खतरा पैदा हो रहा है (बढ़ती जनसंख्या दबाव द्वारा, घटती जनसंख्या दबाव द्वारा)
6. जनसंख्या वृद्धि के कारण भू-जल तथा सतह जल की मांग (बढ़ी है, स्थिर रही है)

7. अवशिष्ट के अधिक जनित होने के कारण वायु प्रदूषण तथा जल संदूषण निरन्तर (बढ़ा है, स्थिर रहा है
8. बढ़ती नगरीकरण प्रवृत्तियों के कारण प्राकृतिक पर्यावरण प्रभावित हुआ है (अनुकूल रूप से, प्रतिकूल रूप से)
9. पर्यावरण निम्नीकरण को कम करने के लिए क्या आवश्यक है (शून्य जनसंख्या वृद्धि, तेज जनसंख्या वृद्धि)
10. जल की बढ़ती मांग को पूरा करने के लिए भू-जल के अत्यधिक निष्कासन को करना होगा (निरुत्साहित, उत्साहित)

उत्तर (Answer): (1) बहुत निकट, (2) जनसंख्या दबाव, (३) बढ़ता है, (4) अधिक, (5) बढ़ती जनसंख्या दबाव द्वारा, (6) बढ़ी है, (7) बढ़ा है, (8) प्रतिकूल रूप से, (9) शून्य जनसंख्या वृद्धि, (10) निरुत्साहित।

II. लघु/परिभाषा रूपी प्रश्न (Short/Definitional Type Questions)

1. जनसंख्या दबाव से आपका क्या अभिप्राय है?
2. क्या अल्पविकसित देशों की तुलना में अधिक विकसित देश अधिक अवशिष्ट जनित करते हैं?
3. बढ़ते जनसंख्या दबाव से सम्बन्धित दो आधारभूत मुद्दे क्या हैं?
4. संसाधन उपभोग से क्या अभिप्राय है?
5. बढ़ती जनसंख्या के कारण प्राकृतिक साधन का हनन कैसे होता है?
6. मानवीय क्रियाओं के कारण मरुस्थलीकरण के मुख्य कारण क्या हैं?
7. जनसंख्या वृद्धि के कारण उपभोक्तावाद में वृद्धि से क्या अभिप्राय है?
8. क्या जनसंख्या वृद्धि का महासागर तथा समुद्रों पर कोई प्रभाव पड़ता है?
9. नगरीकरण का पर्यावरण पर क्या प्रभाव पड़ता है?
10. धारणीय विकास की परिभाषा दें।
11. पर्यावरणीय निम्नीकरण को कम करने के लिए क्या आप शून्य जनसंख्या वृद्धि का समर्थन करते हैं?
12. पर्यावरण संरक्षण के लिए अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग कैसे प्राप्त किया जा सकता है?
13. निर्धनता तथा पर्यावरण के बीच क्या संयोजन है?
14. पर्यावरण संरक्षण के लिए क्या आप उपयुक्त कानूनी उपायों का समर्थन करते हैं?
15. बढ़ती जनसंख्या का दबाव किस प्रकार कुछ प्रजातियों के विलोपन के लिए खतरा है?
16. जनसंख्या के इष्टतम आकार से क्या अभिप्राय है?

III. निबन्ध रूपी प्रश्न (Essay Type Questions)

1. What is population pressure? Explain the population resource relationship and its impact on environment.

   जनसंख्या दबाव से क्या अभिप्राय है? जनसंख्या-संसाधन सम्बन्ध तथा पर्यावरण पर इसके पड़ने वाले प्रभाव की व्याख्या करें।

2. Tell the linkage between population and environment. What are the environmental consequences of growing population pressure?

   जनसंख्या तथा पर्यावरण के बीच के संयोजन का वर्णन करें। बढ़ती जनसंख्या दबाव के पर्यावरण सम्बन्धी परिणाम क्या हैं?

3. What remedial measures will you suggest to minimise the chances of environmental degradation, keeping in view the growing population?

   बढ़ती जनसंख्या को ध्यान में रखते हुए, पर्यावरण निम्नीकरण को न्यूनतम करने के लिए आप किन सुधारात्मक उपायों का सुझाव देंगे?

4. Explain the linkage between poverty and environment.
   निर्धनता तथा पर्यावरण के बीच संयोजन की व्याख्या करें।
5. Can it be possible to identify such human activities which are generating maximum environmental pollution?
   क्या उन मानवीय क्रियाओं को ढूंढ पाना संभव है जिनके द्वारा अधिकतम पर्यावरण प्रदूषण का प्रजनन हो रहा है?
6. Explain the relationship between theory of demographic transititon and environmental degradation with special reference to India.
   भारत के संदर्भ में जनांकिकी परिवर्तन सिद्धान्त तथा पर्यावरण अवनति के सम्बन्ध में व्याख्या करें। (K.U. 2005)
7. 'There is two-way relationship between population and environment', discuss the statement.
   'जनसंख्या तथा पर्यावरण के बीच दो-तरफा सम्बन्ध' पाया जाता है। इस कथन की व्याख्या कीजिए। (K.U. 2009)
8. Discuss the relation between population, poverty and environment.
   जनसंख्या, निर्धनता तथा पर्यावरण के बीच के संबंध की व्याख्या करें।
9. What are the environmental consequences of growing population? Discuss.
   बढ़ती जनसंख्या के पर्यावरण संबंधी परिणाम क्या हैं? व्याख्या कीजिए। (K.U. 2007)
10. Analyse the mutual relationship between population and environment. Discuss with special reference to India.
    जनसंख्या तथा पर्यावरण के परस्पर संबंध का विश्लेषण करें। भारत के संदर्भ में इसका उल्लेख करें। (M.D.U. 2009)

11

पर्यावरण संबंधी वस्तुओं के संदर्भ में बाजार तन्त्र की विफलता

(MARKET FAILURE IN CASE OF ENVIRONMENTAL GOODS)

■ 1. भूमिका (Introduction)

बाजार की विफलता एवं पर्यावरण संबंधी वस्तुओं के संबंध का विस्तृत अध्ययन करने के लिए बाजार, बाजार तन्त्र, बाजार विफलता एवं पर्यावरण संबंधी वस्तुओं की धारणाओं का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। **बाजार से अभिप्राय उन संस्थाओं से है जो उन आर्थिक एजेण्टों के बीच मध्यस्थ का कार्य करती हैं जो परस्पर तय की गई कीमतों पर खरीद व बिक्री करते हैं।** (Markets are commonly regarded as institutions that mediate between economic agents who buy and sell at mutually agreed prices.) अन्य शब्दों में, बाजार एक वह **संस्थागत स्थान** (Institutional Area) है जहां अन्तिम वस्तुओं तथा सेवाओं और उत्पादन के साधनों (जैसे श्रम, पूंजी और प्राकृतिक साधन) का विनिमय (खरीदना और बेचना) होता है। **बाजार तन्त्र वह विधि है** जिसमें बिना किसी बाहरी हस्तक्षेप के मांग एवं पूर्ति की अन्तर-क्रियाओं द्वारा किसी वस्तु की कीमत एवं मात्रा निर्धारित होती है। प्रतियोगी बाजार तन्त्र में उत्पादन एवं उपभोग का आवंटन इस प्रकार होता है कि सीमान्त सामाजिक लाभ और सीमान्त सामाजिक लागत बराबर हो जाती है, परन्तु जब इनमें कई कारणों से असमानता बनी रहती है तो इस स्थिति को **बाजार विफलता** कहा जाता है। जे.बी. टेलर के शब्दों में, **"बाजार विफलता वह स्थिति है जो कुशल आर्थिक लागत को प्राप्त नहीं करती और जिसमें सरकार के हस्तक्षेप की संभावना होती है। इसके तीन मुख्य कारण हैं: सार्वजनिक पदार्थ, बाहरी प्रभाव तथा बाजार शक्ति।"** (Any situation in which the market does not lead to an efficient economic outcome and in which there is potential role of government. There are three broad sources of market failure: public goods, externalities and market power. - **J.B. Taylor**)

पर्यावरण संबंधी वस्तुओं से अभिप्राय प्राकृतिक साधनों, जैसे वन, वायु, धूप, वातावरण, वनस्पति एवं प्राणि-जगत से है। बाजार तन्त्र में वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन एवं उपभोग करते समय पर्यावरण संबंधी वस्तुओं की अवनति (Environmental degredation) होती है। इसके फलस्वरूप प्रदूषण उत्पन्न होता है। बाजार तन्त्र में वस्तुओं की कीमत निर्धारित करते समय पर्यावरण संबंधी अवनति एवं प्रदूषण की लागत को ध्यान में नहीं रखा जाता है। यह पर्यावरण संबंधी वस्तुओं के संबंध में बाजार विफलता का सूचक है।

■ 2. बाजार तन्त्र की विफलता (Failure of Market Mechanism)

बाजार तन्त्र की विफलता से अभिप्राय उस स्थिति से है जिसमें **निजी लाभ** (Private Benefits) तथा **सामाजिक लाभ** (Social benefit) में अन्तर होता है। इस सन्दर्भ में **पर्यावरण संबंधी अवनति** (Environmental Degradation) तब होती है जब किसी अर्थव्यवस्था में उत्पादन तथा उपभोग क्रिया के कारण **जल प्रदूषण** (Water Pollution), **वायु प्रदूषण** (Air

Pollution) अथवा **शोर प्रदूषण** (Noise Pollution) होता है, जिसका अभिप्राय है कि यह वह **सामाजिक लागत** (Social Cost) है जिसे सम्पूर्ण समाज को सहन करनी पड़ती है, परन्तु **बाजार कीमत संरचना** (Market Price Structure) के रूप में इसे प्रकट नहीं किया जाता। उदाहरण के लिये, यदि किसी फैक्टरी का धुआं वातावरण को दूषित करता है, या वाहन की आवाज शोर प्रदूषण फैलाती है या कोई कारखाना अपने गन्दे अवशिष्ट को जल में मिलाता है, या जंगल से लकड़ी काट कर ईंधन के रूप में प्रयोग की जाती है, तब इन सब का **फैलाव प्रभाव** (Spillover Effect) पूर्ण समाज को सहन करना पड़ता है। समस्त समाज में इसका फैलाव होता है, इसलिए इस दुष्प्रभाव को फैलाव प्रभाव (Spillover Effect) कहा जाता है। बाजार तन्त्र इस प्रभाव को कीमत के रूप में प्रकट नहीं करता, इस प्रभाव को कीमत में शामिल नहीं करने को ही **बाजार तन्त्र की विफलता** कहा जाता है:

संक्षेप में, पयार्वरण के संबंध में बाजार तन्त्र की विफलता से अभिप्राय उत्पादन अथवा उपभोग की उस प्रक्रिया से है जिसके द्वारा किसी वस्तु या सेवा के उत्पादन अथवा उपभोग के फलस्वरूप पर्यावरण की दृष्टि से, व्यक्तिगत लाभ की तुलना में समाज के अधिकांश वर्ग को शून्य अथवा ऋणात्मक लाभ (Benefit) **होता है।** परन्तु बाजार तंत्र में इसे कीमत के रूप में प्रकट नहीं किया जाता। उदाहरण के लिए, यदि किसी कारखाने में किसी वस्तु के उत्पादन से कारखाने के स्वामी को तो लाभ होता है, परन्तु कारखाने की चिमनी द्वारा छोड़े जाने वाले धुएं से यदि वातावरण व वायु प्रदूषित होती है अथवा उसके अवशिष्ट फेंकने से जल प्रदूषित होता है, तो इससे समाज के लोगों के स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। कारखाने की उत्पादन की यह प्रक्रिया बाजार तन्त्र में किसी भी प्रकार से व्यक्त नहीं होती, परन्तु पर्यावरण प्रदूषण के रूप में समाज को इसकी गहरी लागत चुकानी पड़ती है।

पर्यावरण तथा प्राकृतिक संसाधन सम्बन्धी अर्थशास्त्र में बाजार तन्त्र की अनुपस्थिति को अक्सर देखा गया है, अर्थात् शुद्ध वायु व जल, जंगली **पशु-पक्षियों** (Wild Life) तथा जल जीव ऐसे उदाहरण हैं जिनका सम्बन्ध पर्यावरण तथा प्राकृतिक संसाधनों से तो है परन्तु बाजार तन्त्र से इनका संबंध बहुत कम अथवा बिल्कुल नहीं के बराबर है। किसी भी उत्पादन अथवा उपभोग क्रिया द्वारा ये पर्यावरण सम्बन्धी कारक कैसे प्रभावित होते हैं, इसका मूल्यांकन बाजार तंत्र द्वारा नहीं होता।

अतएव बाजार तन्त्र की विफलता से तात्पर्य उस बाजारिक प्रक्रिया (Marketing Process) से है जिसमें कुछ वस्तुओं तथा सेवाओं के उत्पादन एवं उपभोग से कुछ लोगों को मिलने वाले लाभ (निजी लाभ) की तुलना में समाज के अधिकांश वर्ग (सामाजिक लाभ) को शून्य या ऋणात्मक लाभ होता है, परन्तु बाजार तन्त्र इसकी गणना करने में असफल रहता है।

उदाहरण के लिए, मान लो कोई व्यक्ति वन के एक भाग को काट कर उस पर खेती-बाड़ी शुरू कर देता है या मकान बनवा लेता है अथवा वन की लकड़ी काट कर अपने मकान के दरवाजे बनाता है या उसका ईंधन के रूप में प्रयोग करता है। इस सारी प्रक्रिया में सामाजिक हित की तुलना में निजी हित सर्वोपरि रहा, उसने यह नहीं सोचा कि वन के काटने से वातावरण, वन जीव-जन्तु, पशु-पक्षी, जल-वायु अथवा वन के समीप रहने वाली जनजातियों पर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा। समाज के इस वर्ग पर पड़ने वाले ऋणात्मक प्रभाव को व्यक्त करने में बाजार तन्त्र विफल रहा है। अतएव **पर्यावरण सम्बन्धी पदार्थ** (Environmental Goods)जैसे वन, नदी जल, खनिज, पेड़-पौधे आदि के प्रयोग से निजी हित की तुलना में सामाजिक अहित अधिक होता है और बाजार तन्त्र किसी भी रूप में इसका मूल्यांकन नहीं कर पाता, तब स्पष्ट रूप से यह क्रिया बाजार तन्त्र की विफलता का संकेत देती है।

■ 3. बाजार विफलता का आधार — बाहरी प्रभाव (Basis of Market Failure — Externalities)

पर्यावरण संबंधी वस्तुओं के संबंध में बाजार **विफलता** का आधार **बाहरी प्रभाव** (Externalities) या **फैलाव प्रभाव** (Spillovers) का पाया जाना है। बाहरी प्रभाव से अभिप्राय उस स्थिति से है जिसमें बाजार में एक फर्म या व्यक्ति के कार्यों का बाजार में दूसरी फर्मों या व्यक्तियों पर अच्छा या बुरा प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। (An externality occurs when the action of one firm or individual in the market has direct effects - either good or bad - on other firms or individuals in the market.)

परिभाषा (Definition)

(i) काटज और रोजन के शब्दों में, **"बाहरी प्रभाव तब होता है जब किसी व्यक्ति अथवा फर्म की क्रिया द्वारा किसी अन्य व्यक्ति या फर्म का कल्याण इस प्रकार से प्रभावित होता है कि उसे बाजार कीमतों द्वारा प्रकट नहीं किया जा सकता।"** (An externality occurs when the activity of one person or firm affects the welfare of another person or firm in a way that is not transmitted by market prices – **Katz** and **Rosen**)

(ii) मकौनल के अनुसार, **"बाहरी प्रभाव तब उदय होता है जब किसी वस्तु अथवा सेवा के उत्पादन अथवा उपभोग से जुड़े कुछ लाभ अथवा हानि (लागत) का प्रभाव किन्हीं तीसरे व्यक्तियों पर पड़ता है, अर्थात् वे व्यक्ति जो उस वस्तु के तत्काल क्रेता या विक्रेता नहीं हैं।"** (Externalities occur when some of the benefits or costs associated with the production or consumption of a good 'spillover' on to third parties, that is, to parties other than the immediate buyer or seller – **McConnell**)

उदाहरण के लिए, यदि कोई व्यक्ति अपने घर के बाहर एक बगीचा बनवाता है जिसमें वह सुन्दर-सुन्दर खुशबूदार फूल लगाता है। अब उसकी इस क्रिया का लाभ न केवल उसके पड़ोसी को बल्कि वहां से गुजरने वाले को भी सुगन्ध प्रदान करेगा, उसके बगीचे लगाने की इस क्रिया को **धनात्मक बाहरी प्रभाव** कहा जायेगा। पड़ोसी या आने-जाने वाला इसके लिए कोई कीमत नहीं देता। इसके विपरीत, यदि कोई व्यक्ति अपने घर में एक जैनरेटर लगवाता है और बिजली चले जाने पर वह उस जैनरेटर को चलाता है, तब उस व्यक्ति को तो रोशनी मिल जाएगी, परन्तु वह जैनरेटर शोर प्रदूषण व वायु प्रदूषण पैदा करेगा जिसका **ऋणात्मक प्रभाव** पड़ोसी या अन्य व्यक्तियों को सहन करना पड़ेगा। जैनरेटर चालक इस ऋणात्मक प्रभाव की कोई भी कीमत अपने पड़ोसी को नहीं देता। पड़ोसी को सहन करने वाले ऋणात्मक प्रभाव को ही बाहरी प्रभाव कहा जायेगा।

अतएव **प्रो. चार्ल्स डी. कोलस्टाड** के अनुसार, **"बाहरी प्रभाव तब होता है जब किसी व्यक्ति या फर्म के उपभोग अथवा उत्पादन चुनाव किसी अन्य व्यक्ति से बिना अनुमति लिए या बिना मुआवजा दिए उस व्यक्ति की उपयोगिता अथवा उत्पादन फलन में प्रवेश करते हैं"** (An externality exists when the consumption or production choices of one person or firm enters the utility or production function of an other entity without that entity's permission or compensation– **Charles D. Kolstad**)

3.1 धनात्मक तथा ऋणात्मक बाहरी प्रभाव या बाहरी लाभ या बाहरी लागत

(Positive and Negative Externalities Or External Benefits Or External Costs)

बाहरी प्रभाव के दो रूप धनात्मक तथा ऋणात्मक प्रभाव होते हैं:

(a) धनात्मक बाहरी प्रभाव या बाहरी लाभ (Positive Externalities or External Benefits): जब किसी वस्तु अथवा सेवा के उत्पादन या उपभोग के फलस्वरूप किसी अन्य व्यक्ति पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है जो, उस वस्तु या सेवा का क्रेता या विक्रेता नहीं है, तब इसे धनात्मक बाहरी प्रभाव कहा जाता है। अन्य शब्दों में, एक व्यक्ति की क्रिया का उस व्यक्ति की तुलना में समाज के अन्य वर्ग पर लाभकारी प्रभाव पड़ता है। **उदाहरण के लिए**, यदि कोई व्यक्ति अपने घर के बाहर रोशनी करने के लिए एक बल्ब लगवा देता है, तब इससे उस रास्ते से गुजरने वाले अन्य व्यक्तियों को लाभ होगा। धनात्मक बाहरी प्रभाव बाजार कीमत द्वारा प्रकट नहीं किया जा सकता। धनात्मक बाहरी प्रभाव निम्नलिखित दो प्रकार का होता है:

(i) उत्पादन का धनात्मक बाहरी प्रभाव (Positive Externalities of Production): जब किसी उत्पादक अथवा फर्म की उत्पादन क्रिया द्वारा समाज के अन्य व्यक्तियों को बिना किसी क्षतिपूर्ति के लाभ (Uncompensated Benefits) प्राप्त होता है, तो इसे उत्पादन का धनात्मक बाहरी प्रभाव कहते हैं। यह धनात्मक बाहरी प्रभाव प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष दोनों रूप में प्राप्त हो सकता है। **उदाहरण के लिए,** यदि कोई फर्म कुछ श्रमिकों को प्रशिक्षण देती है, तो इसका लाभ केवल उसी फर्म को नहीं बल्कि अन्य फर्मों को भी तब मिलेगा जब ये प्रशिक्षित श्रमिक उनके पास काम करने के लिए आते हैं।

(ii) उपभोग का धनात्मक बाहरी प्रभाव (Positive Externalities of Consumption): जब किसी उपभोक्ता की किसी क्रिया के फलस्वरूप समाज के अन्य व्यक्तियों को बिना क्षतिपूर्ति दिए लाभ (Uncompensated Benefit) प्राप्त होता है, तो इसे उपभोग का धनात्मक बाहरी प्रभाव कहते हैं। **उदाहरण के लिये**, यदि कोई व्यक्ति अपने बच्चों को पढ़ाता है और उन्हें जिम्मेवार नागरिक बनाता है, इसका लाभ पड़ोसियों को भी होगा, वे भी अपने बच्चों को सुसभ्य एवं सुशिक्षित बनाने का प्रयास करेंगे।

(b) ऋणात्मक बाहरी प्रभाव या बाहरी लागतें (Negative Externalities or External Costs): जब किसी व्यक्ति की उत्पादन अथवा उपभोग क्रिया द्वारा, समाज के अन्य व्यक्तियों को हानि होती है तथा उन पर इस क्रिया का ऋणात्मक प्रभाव पड़ता है, और उन्हें इसकी कोई क्षतिपूर्ति (Compensation) भी नहीं मिलती, तो इसे ऋणात्मक बाहरी प्रभाव कहा जाएगा। **उदाहरण के लिए**, नदी के समीप यदि कोई फैक्टरी अपने रासायनिक अवशिष्ट का ढेर नदी में फेंकती है तो इसका परिणाम यह होगा कि नदी का जल प्रदूषित होगा। जो लोग इस जल का प्रयोग करेंगे, उनके स्वास्थ्य पर इसका हानिकारक प्रभाव होगा। यहां कारखाने के स्वामी को मिलने वाले लाभ की तुलना में समाज के अन्य लोगों द्वारा उठाई जाने वाली हानि अधिक है, कारखाने का स्वामी इसकी क्षतिपूर्ति भी नहीं करता। इस ऋणात्मक प्रभाव को बाजार कीमत के रूप में व्यक्त नहीं किया जा सकता। ऋणात्मक बाहरी प्रभाव भी दो प्रकार का होता है:

(i) उत्पादन का ऋणात्मक बाहरी प्रभाव (Negative Externalities of Production): जब किसी वस्तु के उत्पादन की लागत न तो उत्पादकों और न ही उपभोक्ताओं द्वारा सहन की जाती है, बल्कि बिना कोई क्षतिपूर्ति हासिल किए इसकी लागत किन्हीं अन्य व्यक्तियों या समस्त समाज द्वारा सहन की जाती है तो इसे उत्पादन का ऋणात्मक बाहरी प्रभाव कहा जाता है। (When the cost of producing a product is borne neither by producers nor by consumers of the product but without compensation by a third party- society as a whole - **McConnell**)। **उदाहरण के लिए**, यदि कोई तेल शोधक कारखाना (Oil Refinery) अपने धुएं से वायु को दूषित करता है अथवा कोई पेंट फैक्टरी वातावरण में कष्टप्रद गंध (Distressing Odours) फैलाती है, तो इससे पर्यावरण अवनति होता है और इसके फलस्वरूप समीपवर्ती क्षेत्रों में रहने वाले लोग श्वास-रोग समस्याओं (Respiratory Problems) व अन्य कई बीमारियों से प्रभावित होते हैं। **ऋणात्मक बाहरी प्रभाव की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि बाजार के प्रचालन द्वारा न तो यह नियन्त्रित होती है और न ही यह कोई क्षतिपूर्ति करती है** (An important feature of negative externality is that they are not compensated or controlled through the operation of the market)। कई बार तो ऐसा भी होता है कि प्रदूषणकर्ता (Polluter) यह भी नहीं जानता कि उसकी क्रिया द्वारा पर्यावरण अवनति (Enviornmental Degradation) हो रही है। अपने निजी लाभ कमाने की होड़ में (Pursuit of Private Profit) उत्पादक बिना सोचे समझे पर्यावरण का विनाश करता चला जाता है, जैसे वन-विनाश (Deforestation) और वृक्षों को काटना, कृषि उत्पादन व उत्पादकता बढ़ाने के लिए रासायनिक पदार्थों (Chemical Inputs) का विवेकरहित प्रयोग करना (Indiscriminate Use) आदि। उत्पादन की इन सभी क्रियाओं का ऋणात्मक प्रभाव, सम्पूर्ण समाज को सहन करना पड़ता है, जबकि सम्बन्धित उत्पादक अपनी उत्पादन क्रिया से धनात्मक रूप में लाभान्वित होता रहता है और हानि सहन करने वालों की कोई भी क्षतिपूर्ति नहीं करता।

(ii) उपभोग का ऋणात्मक बाहरी प्रभाव (Negative Externalities of Consumption): **उपभोग का ऋणात्मक बाहरी प्रभाव तब होता है जब किसी उपभोक्ता की क्रिया के फलस्वरूप अन्य व्यक्तियों को बिना क्षतिपूर्ति हानि होती है।** (Negative externalities of consumption occur when action taken by a consumer results in an uncompensated costs to others)। **उदाहरण के लिए**, यदि कोई गृहणी अपना आंगन धोकर पानी सड़क पर फेंक देती है या अपने घर का कूड़ा बाहर सड़क पर फेंक देती है, तब हम यह कल्पना कर सकते हैं कि सड़क पर पड़े पानी से आने-जाने वाले पर छींटे पड़ेंगे और कूड़े की दुर्गन्ध वातावरण को दूषित करेगी। गृहस्थी की उपभोग की इस क्रिया का पड़ोसी व समाज के अन्य व्यक्तियों पर ऋणात्मक प्रभाव पड़ेगा।

प्रो. ए. पी. थिरलवाल (A.P. Thirlwall) के अनुसार बाहरी प्रभावों (Externalities) के सम्बन्धित कारण दो हैं: **(A) व्यक्तिगत सम्पत्ति अधिकारों का अभाव** (Lack of Individual Property Rights) और **(B)उत्पादन अथवा उपभोग में संयुक्तता** (Jointness in either production or consumption)।

व्यक्तिगत सम्पत्ति अधिकार वस्तुओं, सेवाओं तथा उत्पादन के साधनों पर प्रयोग किए जाते हैं और इसके प्रयोग द्वारा बाजारों को कुशलता से कार्य करने दिया जाता है। व्यक्तिगत सम्पत्ति अधिकार के पूरे सेट (Complete Set) के होने पर किसी क्रिया के सभी प्रभावों का नियन्त्रण बाजार द्वारा किया जाता है क्योंकि किसी वस्तु या सेवा के उपभोग तथा उत्पादन-साधन के प्रयोग के लिए उसके स्वामी को भुगतान करना पड़ता है।

■ 4. बाजार तन्त्र की विफलता तथा बाहरी प्रभाव
(Failure of Market Machanism and Externalities)

बाहरी प्रभावों के फलस्वरूप बाजार तन्त्र की विफलता का मुख्य कारण निजी लागतों एवं सामाजिक लागतों में पाये जाने वाला अन्तर है। बाहरी प्रभावों (Externalities) की उपस्थिति के कारण **निजी लागत** (Private Cost) तथा **सामाजिक लागत** (Social Cost) में अन्तर पैदा होता है।

(i) **निजी लागत** (Private Cost): **निजी लागत वह लागत है जो किसी एक फर्म को एक वस्तु के उत्पादन के लिये खर्च करनी पड़ती है। मिल्लर के अनुसार, "निजी लागत वह लागत है जो किसी फर्म या व्यक्तिगत उत्पादक को अपने स्वयं के निर्णयों के कारण खर्च करनी पड़ती है।"** (Private costs are the cost incurred by the firms or the individual producer as a result of their own decision. - **Miller**)। उदाहरण के लिए, कपड़ा बनाने वाली फर्म को कच्चा माल, मजदूरी, किराया, बिजली आदि पर जो धन व्यय करना पड़ता है उसे निजी लागत कहते हैं।

(ii) **सामाजिक लागत** (Social Cost): **सामाजिक लागत वह लागत है जो सारे समाज को किसी वस्तु के उत्पादन के लिये चुकानी पड़ती है।** (Social cost is the cost incurred by the whole society for producing a commodity.)। उदाहरण के लिए, कपड़े के उत्पादन के दौरान कपड़ा मिलों की चिमनियों से जो धुआं फैलता है उसके फलस्वरूप लोगों को अपने कपड़ों की धुलाई पर अधिक खर्च करना पड़ेगा। वायु के दूषित होने के कारण स्वास्थ्य खराब होने के फलस्वरूप समाज को लोगों की चिकित्सा पर धन खर्च करना पड़ेगा। ये सब खर्चे निजी फर्म को नहीं करने पड़ते। उनका बोझ समाज को ही उठाना पड़ता है, इसलिये इस प्रकार के खर्चों को **सामाजिक लागत** कहा जाता है।

सामाजिक लागत के निम्नलिखित उदाहरण हैं जो निजी लागत तथा सामाजिक लागत के अन्तर को स्पष्ट कर देते हैं:

(1) एक ठेकेदार वन से पेड़ कटवाने पर जो धन व्यय करता है वह **निजी लागत** है। परन्तु वनों के काटने के फलस्वरूप भूमि कटाव, बाढ़ तथा प्राकृतिक सुरक्षा क्षेत्र की हानि के रूप में समाज को जो त्याग करना पड़ता है वह वनों को काटने की समाजिक लागत है।

(2) एक रसायन बनाने वाला रासायनिक कारखाना रसायन बनाने पर जो धन खर्च करता है वह **निजी लागत** है परन्तु यह कारखाना अपनी गन्दगी को नदी में छोड़ता है। इससे (i) नदी की मछलियां मर जाती हैं। (ii) नदी का पानी गन्दा हो जाता है। उसे पीने के योग्य बनाने के लिये नगरपालिका को **धन खर्च करना पड़ता है इस प्रकार किये गये व्यय को सामाजिक लागत कहा जायेगा।** यह ध्यान रखना चाहिए कि जब हम लागत की बात करते हैं तो हमारा अभिप्राय निजी लागत से होता है।

निजी लागत एवं सामाजिक लागत का अन्तर बाजार विफलता की स्थिति को प्रकट करता है। क्योंकि जब कोई फैक्टरी वायु या जल को प्रदूषित करती है, वह इस प्रदूषण की लागत को अपनी उत्पादन लागत में शामिल नहीं करती परन्तु समाज को किसी न किसी रूप में इस लागत को सहन करना पड़ता है। इसलिए समाज की दृष्टि से **निजी लागत** की तुलना में **सामाजिक लागत** अधिक है। इसलिए बाहरी प्रभाव, निजी लागत तथा सामाजिक लागत के बीच अन्तर पैदा करते हैं। चूंकि बाजार कीमतें केवल **निजी लागतों** तथा **लाभों** (Benefit) का लेखा-जोखा रखती हैं न कि सामाजिक लागतों और लाभों का, इसलिए ये संसाधनों के इष्टतम आवंटन

(Optimum Allocation) के बारे में गलत सूचना (Misleading Information/Signals) प्रदान करती हैं। इससे प्रकट होता है कि पर्यावरण अवनति के रूप में बाहरी प्रभावों (Externalities) की उपस्थिति **बाजार तन्त्र की विफलता** को प्रकट करती है।

■ 5. निजी लागतों तथा सामाजिक लागतों में विभिन्नता

(Divergence Between Private Costs and Social Costs)

निजी तथा सामाजिक लागतों एवं लाभों (Benefits) के बीच विभिन्नता पाई जाती है। **यदि बाहरी प्रभाव ऋणात्मक है** तब निजी लागतें सामाजिक लागतों का अल्प अनुमान लगाती हैं और **यदि बाहरी प्रभाव धनात्मक है** तब निजी लागतें सामाजिक लागतों का अत्यधिक अनुमान लगाती है (Private Costs Underestimate or Overestimate Social Costs if the externality is negative or positive)।

धनात्मक तथा ऋणात्मक बाहरी प्रभाव की स्थितियों को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है:

(a) वह स्थिति जिसमें **धनात्मक बाहरी प्रभाव** (Positive Externality) पाए जाते हैं, वहां

सामाजिक लाभ = निजी लाभ + बाहरी लाभ और

बाहरी लाभ > 0 (अर्थात् शून्य से अधिक)

अतएव

सामाजिक लाभ > निजी लाभ

(b) वह स्थिति जहां **ऋणात्मक बाहरी प्रभाव** (Negative Externality) पाए जाते हैं, वहां

सामाजिक लागतें = निजी लागतें + बाहरी लागतें और

बाहरी लागतें > 0 (अर्थात् शून्य से अधिक)

अतएव

सामाजिक लागतें > निजी लागतें

टर्वे (Turvey) के अनुसार, "**वास्तविक बाहरी प्रभावों की उपस्थिति में लागतों तथा लाभों के निजी तथा सामाजिक मूल्यांकनों के बीच विभिन्नता होगी**" (In the presence of real externalities, there will be divergence between private and social evaluations of costs and benefits. – **Turvey**)।

निजी तथा सामाजिक लागतों के बीच की यह विभिन्नता ही हमें पर्यावरण की समस्या को समझने का मार्ग दर्शाती है। इसलिए **पर्यावरण को हम उस एक सामान्य सम्पत्ति संसाधन** (Common Property Resources) के रूप में व्यक्त करेंगे जिसका प्रयोग प्रत्येक व्यक्ति कर सकता है, क्योंकि उसके प्रयोग के लिए सबके पास मार्ग खुला (Free Access) है। इस पृथ्वी पर जल, वायु, वन, पेड़-पौधे तथा जैवीय विविधताएं (Bio-diversities) सभी मिलकर पर्यावरण का निर्माण करती हैं और आर्थिक क्रियाओं के कारण अवशिष्ट पदार्थों (Waste Products of Economic Activities) का अम्बार या ढेर (Dump) के रूप में प्रयोग किया जाता है। **इसलिए वायु तथा जल प्रदूषण और पेड़-पौधों तथा विविध जैवीय जातियों (Biological Species) के विनाश (Destruction) के रूप में इसे जो क्षति (Damage) पहुँचती है वे महत्वपूर्ण लागतें (Important Costs) हैं जिसे सम्पूर्ण समाज को सहन करना पड़ता है।** (Thus the damage caused to it in the form of pollution of air and water and destruction of plants and biological species are important costs that the society as a whole has to bear)। ये लागतें व्यक्तिगत उत्पादकों की गणना (Calculations) में नहीं आतीं और इसलिए ये बिना निकालें (Uncovered) ही

रह जाती हैं। यहाँ हमारा प्रयास यह है कि बाजार तंत्र की विफलता के संदर्भ में आंतरिक अथवा अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए, कुछ निष्कर्ष (Implications) ढूंढ सकें।

यहां ध्यान देने वाली बात यह है कि **पर्यावरण पर आर्थिक क्रियाओं का पड़ने वाला ऋणात्मक प्रभाव (Negative Impact) स्थानीय (Local) अथवा वैश्वीय (Global) हो सकता है।** आर्थिक क्रियाएं उस विशेष स्थान (Locality) के पर्यावरण को प्रदूषित एवं अवनति कर सकती हैं, जहां ये क्रियाएं चल रही हैं और हो सकता है कि सीमापार (Transborder) पर इनका प्रभाव कुछ भी न हो। ये **वैश्वीय पर्यावरण** (Global Environment) की भी अवनति (Degradation) कर सकती है और सुदूर क्षेत्रों पर भी इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है।

■ 5.1 धनात्मक बाहरी प्रभाव या बाहरी लाभ तथा बाजार विफलता
(Positive Externality or External Benefit and Market Failure)

स्वतन्त्र बाजार में लोग निजी लाभ के लिए उत्पादन एवं उपभोग करते हैं तथा निजी लागत व्यय करते हैं। स्वतन्त्र बाजार में **बाहरी बचत या धनात्मक बाहरी प्रभाव वह स्थिति है जिसमें निजी लागत और सामाजिक लागत बराबर होती है।** परन्तु सामाजिक लाभ निजी लाभ से अधिक होते हैं। इस स्थिति को चित्र 1 द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

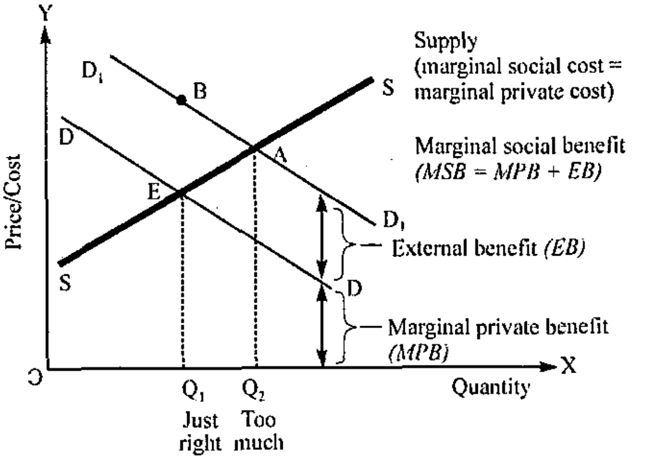

चित्र 1

इस चित्र में OX अक्ष पर उत्पाद की मात्रा एवं OY अक्ष पर उत्पाद की कीमत और लागत को प्रकट किया गया है। SS पूर्ति वक्र है तथा DD **निजी मांग वक्र** एवं D_1D_1 **सामाजिक मांग वक्र हैं।** पूर्ति वक्र SS द्वारा **सीमान्त निजी लागत** (Marginal Private Cost) तथा **सीमान्त सामाजिक लागत** (Marginal Social Cost) दोनों को प्रकट किया जा रहा है, क्योंकि बाजार में निजी लागत और सामाजिक लागत बराबर हैं। जब बाजार में मांग वक्र DD है तो सन्तुलन बिन्दु E पर होगा जहां मांग वक्र DD पूर्ति वक्र SS को काट रही है। सन्तुलन की स्थिति में बाजार में OQ_1 मात्रा का उत्पादन होगा। उत्पादन की इस मात्रा पर सीमान्त निजी लाभ सीमान्त निजी लागत के बराबर होंगे, परन्तु उत्पादन की यह मात्रा समाज की दृष्टि से बहुत कम होगी। क्योंकि उत्पादन की इस मात्रा पर सीमान्त सामाजिक लाभ बिन्दु B पर सीमान्त निजी लाभ से EB अधिक होंगे। उत्पादन की इस मात्रा पर **सीमान्त सामाजिक लाभ** (Marginal Social Benefit), **सीमान्त निजी लाभ** (Marginal Private Benefit) तथा **बाहरी बचतों** (External Benefit) के योग के बराबर होंगे, अर्थात् **सीमान्त सामाजिक लाभ = सीमान्त निजी लाभ + बाहरी बचत या बाहरी लाभ।** उत्पादन की OQ_2 मात्रा पर सामाजिक लाभ सामाजिक लागत से अधिक है। इसलिए उत्पादन में OQ_2 तक वृद्धि की जानी चाहिए,

परन्तु बाजार विफलता (Market Failure) के कारण बाजार में OQ_1 से अधिक उत्पादन नहीं किया जायेगा। अतएव **धनात्मक बाहरी प्रभाव की स्थिति में निजी क्षेत्र का उत्पादन सामाजिक सन्तुलन उत्पादन से कम होता है**, जैसा रेखाचित्र में दिखाया गया है।

■ ऋणात्मक बाहरी प्रभाव या बाहरी लागत तथा बाजार विफलता

(Negative Externalities or External Cost and Market Failure)

हम जानते हैं स्वतन्त्र बाजार में लोग निजी लाभ के लिए उत्पादन एवं उपभोग करते हैं तथा निजी लागत व्यय करते हैं। स्वतन्त्र बाजार में **ऋणात्मक बाहरी प्रभाव या बाहरी लागत वह स्थिति है जिसमें निजी लागत और सामाजिक लागत में अन्तर पाया जाता है।** उदाहरण के लिए प्रदूषण की स्थिति में समाज को तो लागत व्यय करनी पड़ती है अर्थात् सामाजिक लागत होती है, परन्तु निजी क्षेत्र को प्रदूषण की कोई लागत सहन नहीं करनी पड़ती। वह दूसरे लोगों को प्रदूषण से होने वाली हानि की लागत को वहन करने के लिए मजबूर करते हैं। इसे एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। यदि एक फैक्टरी कपड़े का उत्पादन करती है तो उससे जो धुआं उत्पन्न होता है उसके फलस्वरूप समाज को हानि उठानी पड़ेगी। लोगों के कपड़े गन्दे होंगे। उनका स्वास्थ्य खराब होगा। उन्हें प्रदूषण से बचाव करने के लिए व्यय करना पड़ेगा। इस व्यय को कपड़ा उत्पादन करने वाला उत्पादक वहन नहीं करेगा। अतएव इसकी कोई निजी लागत नहीं होगी। परन्तु समाज को प्रदूषण से बचाव करने के लिए जो व्यय करना पड़ेगा उसे सामाजिक लागत कहा जायेगा। ऋणात्मक बाहरी प्रभाव या बाहरी हानि को चित्र 2 द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

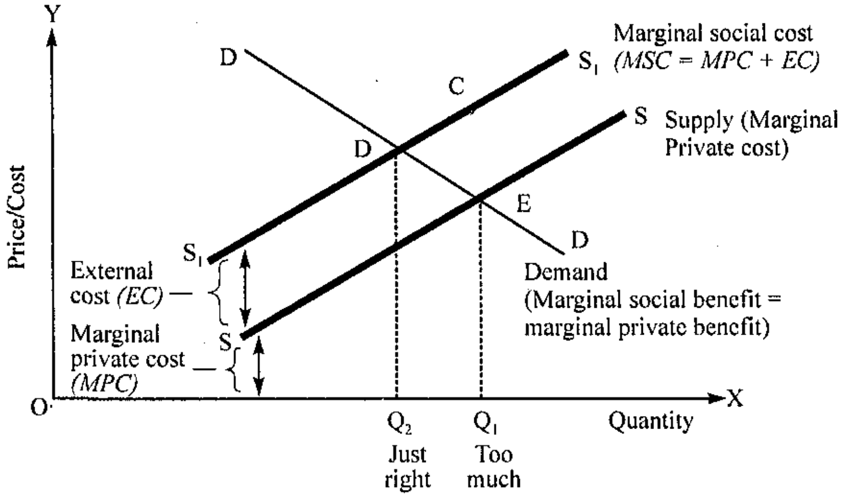

चित्र 2

इस चित्र में OX अक्ष पर उत्पाद की मात्रा एवं OY अक्ष पर उत्पाद की कीमत और लागत को प्रकट किया गया है। DD मांग वक्र है तथा SS निजी क्षेत्र की पूर्ति वक्र या सीमान्त निजी लागत वक्र है। S_1S_1 समाज की पूर्ति वक्र या सीमान्त सामाजिक लागत वक्र है। स्वतन्त्र बाजार में DD मांग वक्र SS पूर्ति वक्र को बिन्दु E पर काट रही है सन्तुलन की स्थिति में OQ_1 मात्रा का उत्पादन किया जाएगा। उत्पादन की OQ_1 मात्रा पर निजी लागत और निजी लाभ बराबर होंगे। परन्तु सीमान्त सामाजिक लागत एवं सीमान्त सामाजिक लाभ में से EC का अन्तर होगा, अर्थात् सीमान्त सामाजिक लागत सीमान्त सामाजिक लाभ से EC के बराबर अधिक होगा। इस स्थिति में निजी उत्पादक सामाजिक दृष्टि से बहुत अधिक उत्पादन कर रहे हैं। उन्हें OQ_1 से उत्पादन कम करके OQ_2 करना चाहिए जिस पर समाज सन्तुलन पर हो सकेगा। परन्तु बाजार विफलता के कारण बाजार में उत्पादन कम नहीं किया जाएगा, अतएव **ऋणात्मक बाहरी प्रभाव की स्थिति में निजी क्षेत्र का उत्पादन सामाजिक सन्तुलन उत्पादन से अधिक होता है**, जैसा कि रेखाचित्र में दिखाया गया है।

■ 6. बाजार तन्त्र की विफलता के कारण (Reasons for Market Failures)

विश्व विकास रिपोर्ट (World Development Report) के अनुसार बाजार तन्त्र में विफलता तब आती है जब सभी बाजार निम्नलिखित कारणों से पर्यावरण के सामाजिक मूल्य को प्राय: सही रूप से प्रकट नहीं कर पाते (और इसलिए पर्यावरण अवनति की लागत बढ़ती है):

(1) पर्यावरण के सामाजिक मूल्य को व्यक्त करने से सम्बन्धित कोई भी बाजार नहीं है क्योंकि पर्यावरण के स्वामित्व अथवा प्रयोग से सम्बन्धित अधिकारों को लागू करना (Enforce) कठिन है, जैसे वायु का गुण (Air Quality)। अतएव कीमतें प्रदूषकों (Pollutants) के प्रतिकूल प्रभाव को प्रकट नहीं करतीं हैं परिणामस्वरूप वायु प्रदूषण अधिक होता है।

(2) कुछ संसाधनों के उपयोग का तो बाजारीकरण किया जाता है, परन्तु कुछ का नहीं। उदाहरण के लिए उष्णकटिबंधीय वर्षा-प्रचुर वनों (Tropical Rain Forests) को लीजिए जिनमें से इमारती लकड़ी (शहतीर, वल्लियां आदि) काटकर बाजार में भेजी जाती हैं परन्तु जल-विभाजक संरक्षण (Watershed Protection) नहीं। परन्तु न बेचे जाने वाले पदार्थों (Non-market Products) की अधिकतर अवहेलना की जाती है, इसी प्रकार किसी संसाधन के अन्य प्रयोगों का भी अत्यधिक शोषण (Over-exploitation) होता है।

(3) कुछ संसाधन ऐसे हैं जहां पर अनेक लोगों की बेरोकटोक पहुंच (Open Access) है, इसलिए ऐसे संसाधनों का प्रयोग व शोषण सभी द्वारा होता है। इसके उदाहरण हैं: जलाशय और समुद्रों में मछली का अधिक पकड़ना (Overfishing) और वनों के अत्यधिक शोषण के फलस्वरूप वन-अपरोपण (Deforestation)। इन सभी मामलों में प्रयोगकर्ता (Users) पर्यावरण प्रभाव की परवाह नहीं करते, इसलिए इनके प्रयोग से हानिकारक बाहरी प्रभाव (Externalities) अधिक होते हैं।

(4) बाजार तंत्र की विफलता का एक और कारण है व्यक्तियों (Individual) और समाजों में पर्यावरण सम्बन्धी प्रभावों की अपूर्ण सूचना अर्थात् उन्हें यह जानकारी ही नहीं है कि पर्यावरण क्या होता है अथवा पर्यावरण हनन को बचाने के लिए निम्न खर्च (Low Cost) वाले कौन से मार्ग अपनाए जा सकते हैं।

■ 7. बाजार तंत्र की विफलता/बाहरी प्रभाव की समस्या का समाधान अथवा बाहरी प्रभावों का आंतरीकरण

(Solution of the Problem of Market Failures/Externalities Or Internalisation of Externalities)

बाहरी प्रभावों (Externalities) अथवा बाजार तंत्र की विफलता की समस्या के समाधान (Solution) को **बाहरी प्रभावों का आंतरीकरण** (Internalisation) कहा जाता है। बाहरी प्रभावों की समस्या को हल करने के लिए मुख्य विधियां निम्नलिखित हैं:

(1) सरकार द्वारा कर लगाना (Government Imposed Taxes): सरकार किसी भी प्रकार का कर लगाकर बाहरी प्रभावों का आन्तरीकरण कर सकती है, इसको निम्नलिखित चित्र 3 की सहायता से समझाया जा सकता है। थोड़ी देर के लिए प्रदूषण समस्या या बाहरी लागत (External Cost) को अभी अलग रखा गया है और उसे छूआ नहीं गया है। इस स्थिति में फर्म की सीमान्त लागत MC सीमान्त निजी लागत MPC के बराबर होगी (MC = MPC) और जिस उत्पाद के स्तर का उत्पादन अवश्य करना है उसके निर्धारण के लिए फर्म को इस लागत (MPC) की सीमान्त आय MR से तुलना करनी होगी। मान लो फर्म पूर्ण प्रतियोगी बाजार की दशाओं में काम कर रही है। यह सन्तुलन कीमत E बिन्दु पर निर्धारित होगा, जहां उद्योग पूर्ति तथा मांग वक्र एक दूसरे को काट रहे हैं। चित्र 3 से स्पष्ट होता है कि सन्तुलन कीमत OP है और इस कीमत पर उद्योग OQ मात्रा का उत्पादन कर रहा है। चूंकि फर्म केवल **'कीमत स्वीकारक' (Price taker) है, वह केवल अपने उत्पादन के स्तर को समन्वित (Adjust) करती है ताकि उसकी MPC इस कीमत के बराबर हो जाए। जो आगे MR के बराबर भी हो जाए। फर्म के उत्पादन का सन्तुलन स्तर OM है।**

अपने विश्लेषण में यदि हम अब बाहरी लागतों (External Costs) को शामिल करते हैं, तब मान लो फर्म अपनी फैक्टरी की चिमनी से काफी धुआं छोड़ती (Emit) है जिससे समीपवर्ती क्षेत्र में वायु प्रदूषित होती है और फैक्टरी के समीप रहने वाले लोगों के

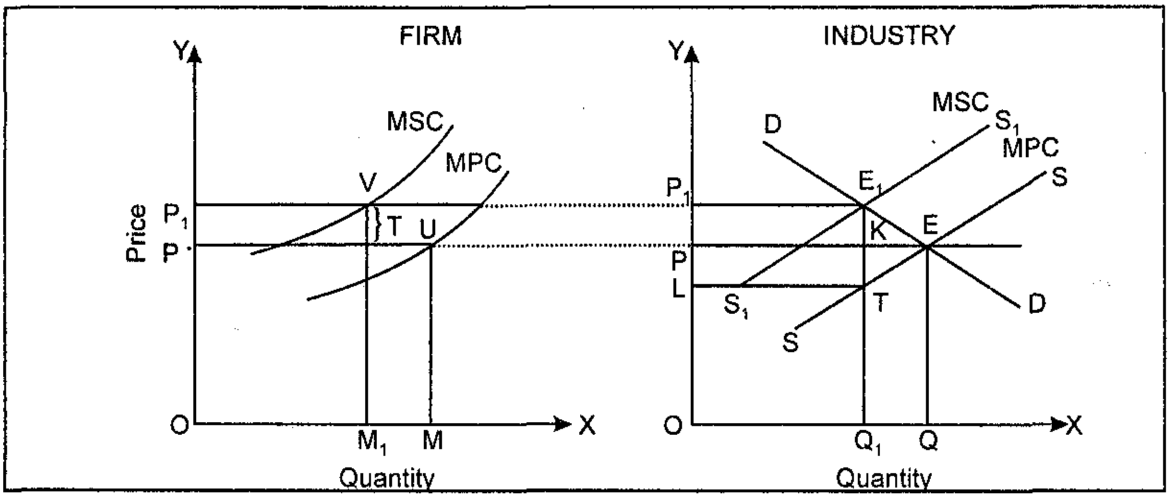

चित्र 3

स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। जब लागत की गणना की जाती है, तब इस बाहरी लागत को भी इसमें शामिल किया जाना चाहिए। इसलिए सीमान्त निजी लागत MPC की बजाए, हमें सीमान्त सामाजिक लागत MSC की जानकारी व सूचना भी होनी चाहिए, सीमान्त सामाजिक लागत = सीमान्त निजी लागत (MPC) + बाहरी प्रभाव लागत (Externality Cost) E अर्थात् MSC = MPC + E। स्पष्ट है कि नई MC वक्र पुरानी MC वक्र से ऊपर होगी, क्योंकि हमारे उपरोक्त उदाहरण में बाहरी प्रभाव लागत धनात्मक (Positive) है। नई MC वक्र MSC है। फर्म स्तर में यह परिवर्तन उद्योग स्तर में परिवर्तन द्वारा प्रकट होता है क्योंकि उद्योग का पूर्ति वक्र SS से सरक कर S_1S_1 हो गया है। नया पूर्ति वक्र S_1S_1 मांग वक्र DD को E_1 बिन्दु पर काट रहा है, जो नया सन्तुलन बिन्दु है। इस बिन्दु पर OQ_1 उत्पादन 'इष्टतम'□ (Optimal) या 'कुशल' (Efficient) उत्पादन है, क्योंकि यह बाहरी प्रभाव लागत को भी शामिल करता है। नई सन्तुलन कीमत OP_1 है। इस कीमत के आधार पर फर्म का सन्तुलन बिन्दु V है, जहां MSC = Price (=MR)। इस बिन्दु पर अपने पहले वाले OM सन्तुलन उत्पादन की तुलना में फर्म अब उत्पादन का कम स्तर अर्थात् OM_1 उत्पादित कर रही है।

अब मान लो सरकार प्रदूषण लागत का आन्तरीकरण (Internalise) करना चाहती है। इसके लिए वह फर्म पर प्रति इकाई 'T' विशिष्ट कर (Specific Tax) लगाती है जिससे MPC वक्र सरक कर MSC वक्र हो जाती है अर्थात् कर बाहरी लागत (External Cost) के बिल्कुल बराबर हो जाता है। फर्म के सामने जो अब MC वक्र है वह MSC वक्र के समान है। उद्योग का पूर्ति वक्र फर्मों के MC वक्रों का जोड़ है। कर लगाने के फलस्वरूप उद्योग का पूर्ति वक्र SS से सरक कर S_1S_1 हो जाएगा, इससे सन्तुलन कीमत बढ़कर OP_1 हो जाएगी। इस सन्तुलन कीमत पर फर्म के उत्पादन का सन्तुलन स्तर OM_1 है जो उत्पादन के **कुशल** (Efficient) स्तर के बराबर है। अतएव कर प्रतियोगी फर्मों को बाध्य कर देता है कि वे अपना उत्पादन स्तर बाहरी लागत के अनुरूप समन्वित करें। कर उत्पादकों तथा उपभोक्ताओं के बीच बट जाएगा। कर के परिणामस्वरूप, कीमत OP से बढ़कर OP_1 हो जाएगी। चूंकि उद्योग का उत्पादन OQ_1 है, उपभोक्ताओं पर कर का भार PP_1E_1K होगा, उत्पादकों द्वारा दिया जाने वाला कर का भाग LPKT होगा।

यहां यह बतला देना आवश्यक है कि उत्पादन की मात्रा का OQ से कम होकर OQ_1 हो जाने का अर्थ प्रदूषण का त्याग (Elimination) नहीं है, **"इस बिन्दु तक इसे इसलिए कम किया गया है क्योंकि इसके बाद उत्पादन तथा प्रदूषण में कमी इसके मूल्य से अधिक हो जाएगी।"** (It is simply reduced to the point where further reduction in production and pollution would cost more than its worth. - **E.E. Browning** and **J.M. Browning**)। असल में बाहरी लगातों का पूर्णतया (Totally) त्याग भी नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि ये लागतें औद्योगिक विकास एवं गतिविधि (Activity) का बहुत अधिक मात्रा का एक भाग है। इन लागतों का पूर्ण त्याग (Total Elimination) औद्योगिक गतिविधि को बुरी तरह से घटा देगा

और आर्थिक प्रगति के दु:खद अन्त (Doom) को सूचित करेगा (Spell doom to economic progress)। **उचित नीति यह है कि घटाए गए उत्पादन के कारण उपभोक्ताओं पर पड़ने वाली लागत के बदले में बाहरी लागतों के घटने से मिलने वाले लाभ (Gain) को ठीक प्रकार तोला जाए** (The correct policy is to weigh the gains from reduced external cost against the costs to the consumers of a reduced output.)।

यह सब सरल-सा तो दिखता है, परन्तु कर लगाने के लिए **असली समस्या बाहरी लागतों का निर्धारण** (Determination of External Costs) है। उदाहरण के लिए, उस फर्म को लीजिए जो नदी में अपना रासायनिक अवशिष्ट (Chemical Waste) बहा देती है। इस फर्म पर सही प्रकार से कर तभी लगाया जा सकता है जब सरकार मौद्रिक रूप में उस फर्म द्वारा की जाने वाली क्षति (Damage) का अनुमान लगा पाती है। इस संदर्भ में **ए.पी. थिरलवाल** का कहना है कि **"पर्यावरण सम्वन्धी निम्नीकरण की लागतों तथा लाभों का अनुमान लगाना बड़ा कठिन है।"** (It is very difficult to quantify and value the costs and benefits of environmental degradation - **Thirlwall**) यह मौद्रिक अनुमान लगाना या मापना भी कठिन है कि नदी से नीचे, दूर या समीप रहने वाले लोगों के स्वास्थ्य पर फर्म की इस गतिविधि का कितना विपरीत प्रभाव पड़ा है। इससे भी बढ़कर, मौद्रिक रूप में यह जान पाना और भी कठिन है, कि इस गतिविधि से कितने लोगों को अपने जीवन से हाथ धोना (Loss of Life) पड़ा है।

(2) सम्पत्ति अधिकारों को परिभाषित एवं लागू करना (Defining and Enforcing Property Rights): कुछ अर्थशास्त्रियों के अनुसार बाहरी प्रभाव की समस्या (Externality Problem) दोषपूर्ण सम्पत्ति अधिकारों के कारण उदय होती है। इसको ऊपर दी गई नदी जल की समस्या की सहायता से समझाया जा सकता है। मान लीजिए नदी के पास वाली फैक्टरी अपने अवशिष्ट के ढेर को नदी में फेंकती (Dump) है, इससे नदी के समीप रहने वाले लोगों के लिए पानी दूषित हो जाता है। फैक्टरी के स्वामी अपनी लागतों को आंकते समय प्रदूषण की लागत को नहीं आंकते, क्योंकि नदी किसी भी व्यक्ति की सम्पत्ति नहीं है और कूड़े का अम्बार (Garbage Dump) लगाने के लिए इसका प्रयोग आसानी से किया जा सकता है। परन्तु यदि नदी के समीप या नीचे (Downstream) रहने वाले लोगों को शुद्ध जल प्राप्त करने का अधिकार मिल जाता है, तब इस फैक्टरी के स्वामी, उन लोगों को क्षति लागत (Damages) या क्षतिपूर्ति (Compensation) किए बगैर, जल को दूषित नहीं कर सकते। ऐसी दशा में फर्म/फैक्टरी स्वामी अपनी उत्पादन लागत में, लोगों को दी गई क्षतिपूर्ति को शामिल करेंगे।

अब यहां **'प्रदूषण की लागत'** बाहरी लागत नहीं रहेगी बल्कि फर्म की लागत गणना (Cost of Calculations) में शामिल होगी, अर्थात् बाहरी लागत का आन्तरीकरण (Internalisation) हो जाएगा और संसाधन का आवंटन कुशल हो जाएगा। इससे प्रकट होता है कि बाहरी प्रभावों से व्यवहार करते समय कई मामलों में समस्या का आधारभूत स्रोत या कारण सम्पत्ति अधिकारों की अनुपस्थिति या अनुपयुक्त हस्तांतरण (Inappropriate Assignment) है। इसलिए **ब्राऊनिंग** और **ब्राऊनिंग** का कहना है कि **"सरकार को करों, आर्थिक सहायता या विनियमों को प्रयोग करने की जरूरत नहीं है; इसे केवल सम्पत्ति अधिकारों को परिभाषित एवं लागू करने की जरूरत है और इसके परिणामस्वरूप बाजार विनिमय स्वयं एक कुशल संसाधन आवंटन का उत्पादन कर देंगे।"** (The government may not need to use taxes, subsidies or regulation at all; it need only define and enforce property rights and the resulting market exchanges would produce an efficient resource allocation. – **Browning and Browning**)

1960 में छपे एक प्रसिद्ध लेख में **रोनाल्ड कोस** (Ronald Coase) ने कहा कि बाहरी प्रभावों के आन्तरीकरण के मामले में सरकार को अपने आप को उलझाना नहीं चाहिए। **निजी सौदे एवं समझौते** (Private Gains and Negotiations) बिना सरकारी हस्तक्षेप के, कई बाहरी लागत सम्बन्धी मामलों का कुशल हल ढूंढ सकते हैं। रोनाल्ड कोस के इस तर्क को **Coase Theorem** कहा जाता है। **कोस सिद्धान्त** के अनुसार किसी संसाधन के स्वामित्व अधिकार जैसे ही स्थापित हो जाते हैं, बाहरी प्रभाव कोई भी अकुशलता की समस्याएं पैदा नहीं करते क्योंकि लोग सौदाकारी द्वारा इसके लिए कुशल हल ढूंढ लेते हैं। इसका कारण यह है कि परिभाषा से ही, अकुशलता की उपस्थिति का अर्थ है कि प्रभावित पक्षों/लोगों के लिए यह संभव है कि इकट्ठे हो कर वे कोई समझौता करके कुछ लाभ प्राप्त कर लें और इस अकुशलता का परित्याग करें। (Coase Theorem implies that once ownership rights to a

resource are established, externalities create no inefficiency problems, because individuals will bargain their way to an efficient solution. The reason is that, by definition, the presence of an in efficiency means that it is possible for the parties involved to gain by getting together and eliminating it.)

कोस सिद्धान्त इस विचार को लेता है कि सम्पत्ति अधिकारों में परिवर्तन से यदि एक व्यक्ति को लाभ (Benefit) होता है परन्तु अन्य व्यक्तियों को हानि (Harm) होती है, तब सामाजिक कल्याण में एक **पैरिटो सुधार** (Pareto Improvement) बनेगा, जिसके अनुसार यदि विजेता (Winner) हारने वालों (Losers) की क्षतिपूर्ति कर देता है जिसके फलस्वरूप परिवर्तन द्वारा उनकी स्थिति कम से कम (At least) खराब नहीं होती (No worse off by the change)। दायित्व निर्धारित करने (Assigning Liabiltiy) से एक पक्ष (Party) को संसाधन आवंटन (Resource Allocation) के कुछ रूपों पर निषेधाधिकार (Veto) मिल जाएगा जबकि स्वेच्छिक समझौतों (Voluntary Agreements) का प्रयोग यह सुनिश्चित करने के लिए किया जाएगा कि संसाधन प्रयोग में परिवर्तन के फलस्वरूप किसी भी पक्ष की स्थिति खराब (Worse off) न हो।

जब तक बाहरी प्रभाव का क्षेत्र (Scope of Externality) सीमित है, किसी भी पक्ष का निर्धारित किया गया दायित्व संसाधन आवंटन की लागतों का आन्तरीकरण कर देगा।

बाहरी प्रभावों की समस्या के उपरोक्त सभी समाधानों को संक्षेप में निम्न प्रकार व्यक्त किया जा सकता है:

(i) निषेध आज्ञा द्वारा समाधान (Solution by Prohibition): इसका अभिप्राय है जो लोग प्रदूषण में वृद्धि लाते हैं उनकी क्रियाओं पर पूर्ण रूप से निषेध•आज्ञा (Total Prohibition) लागू कर दी जाए।

(ii) प्रत्यक्ष नियन्त्रणों द्वारा समाधान (Solution by Direct Controls): इसके लिए आवश्यक है कि जल या वायु में जो भी अवशिष्ट एवं मल (Effluent) तथा उत्सर्जित धुआं (Emission) फेंकते हैं उनके लिए उच्चतम सीमा का एक स्तर (Coiling) निश्चित कर दिया जाए। सरकार को यह सुनिश्चित करना होगा कि कोई फैक्टरी कितना धुआं बाहर फेंक सकती है। किसी विशेष प्रकार के प्रदूषण उपस्कर (Pollution Equipment) के लगाने का ब्योरा (Specification) भी प्रत्यक्ष नियन्त्रणों द्वारा निश्चित किया जा सकता है।

(iii) करों तथा आर्थिक सहायता द्वारा समाधान (Solution by Taxes and Subsidies): इस विचार का यहां तर्क यह है कि उन क्रियाओं को प्रोत्साहित किया जाए जिनसे सामान्य हितों (Common Goods) की वृद्धि होती है और उन क्रियाओं को समाप्त या निरुत्साहित किया जाए जिनसे सामान्य हितों को क्षति पहुंचती है। इसके अनुसार प्रत्येक उस प्रदूषणकर्ता को कर देने के लिए कहा जाए जो अवशेष व कूड़ा-करकट को फेंकता है। इसके विपरीत उस इकाई को आर्थिक सहायता दी जाए जो प्रदूषण को कम करती है। आर्थिक सहायता उस फर्म को उस लागत की पूर्ण अथवा आंशिक रूप में दी जा सकती है, जो उस फर्म को प्रदूषण नियन्त्रण उपस्कर के लगाने पर करनी पड़ती है।

(iv) प्रत्यक्ष कार्यवाही द्वारा समाधान (Solution through Direct Action): सिवरेज निवेश प्लाण्टों में प्रत्यक्ष निवेश करके सरकार बाहरी हानिकारक प्रभावों को कम कर सकती है।

(v) प्रदूषण परमिटों की बिक्री द्वारा समाधान (Solution by the Sale of Pollution Permits): इस समाधान को लागू करने के लिए बाजार से संबंधित लाइसेंस प्रणाली की स्थापना की आवश्यकता है। प्रत्येक जारी किए गए लाइसेंस के अनुसार कारखाने के मालिक को यह अधिकार दिया जाएगा कि समय की एक निश्चित अवधि में उसे एक निश्चित मात्रा में प्रदूषण फैलाने का अधिकार होगा। एक संगठित बाजार में उनका लाइसेंस खरीदा व बेचा जा सकता है।

(vi) सम्पत्ति अधिकारों के पुन:स्थापन द्वारा समाधान (Solution through Restoration of Property Rights): कई व्यक्तियों का यह विचार है कि सामान्य सम्पत्ति अधिकारों के कारण भी हानिकारक प्रभाव पड़ते हैं। उनके अनुसार यदि निजी सम्पत्ति अधिकारों की पुन: स्थापना कर दी जाए, इससे संसाधनों के संरक्षण (Conservation) एवं परिरक्षण (Preservation) को प्रोत्साहन मिलेगा, और बाहरी हानिकारक प्रभाव काफी सीमा तक कम हो सकेंगे।

समझौतों की असफलता के कारण (Reasons for Failure of Negotiations)

(i) यहां बतला देना आवश्यक है कि **सौदाकारी तथा समझौता** (Bargaining and Negotiations) केवल **'स्थानीय बाहरी प्रभाव'** (Localities Externality) में ही सफल हो सकते हैं अर्थात् बाहरी प्रभाव में शामिल लोगों की कम संख्या ही आती है। जैसे-जैसे लोगों की संख्या में वृद्धि होती जाती है, सौदाकारी और समझौता की प्रक्रिया को जारी रखना कठिन होता जाता है। **जहां कोई संसाधन नि:शुल्क (Free) है, जैसे हवा या जल, सौदाकारी और भी असंभव हो जाती है,** क्योंकि इसमें शामिल (Involved) लोगों की संख्या भी अधिक हो जाती है। ऊपर दिए उदाहरण के अनुसार यदि फैक्टरी नदी के जल में रासायनिक अवशिष्ट (Chemical Wastes) छोड़ती है, तब सौदाकारी के लिए उन सभी लोगों से समझौता करने की आवश्यकता पड़ेगी जो नदी के समीप या नदी से थोड़ा दूर नीचे रहते हैं और जो जल प्रदूषण से प्रभावित होते हैं। इसके लिए यह आवश्यक है कि उनके पास सम्पत्ति अधिकार हो। इसका अर्थ यह होगा कि फैक्टरी के स्वामी को उन हजारों लोगों से समझौता करने की आवश्यकता पड़ेगी, जो नीचे नदी के समीप रहते हैं, परन्तु वास्तव में यह संभव नहीं है। ऐसे मामलों में **सम्पत्ति विफलता** (Property Failure) हो जाती है क्योंकि निजी समझौते (Private Agreements) और स्वेच्छिक क्रियाएं (Voluntary Actions) लागू करना एक प्रकार से कठिन हो जाता है। इसलिए आवश्यक हो जाता है कि सरकार इसमें हस्तक्षेप करे। इस संदर्भ में **ब्राऊनिंग और ब्राऊनिंग** का कहना है कि कई मुद्दे (Issues) जैसे सुरक्षा (Defence), पुलिस संरक्षण, वायु तथा जल प्रदूषण आदि बहुत ही महत्वपूर्ण हैं, ये 'बड़े समूह बाहरी प्रभाव' (Large Group Externalities) या सार्वजनिक पदार्थ हैं और बिना सरकारी हस्तक्षेप के निजी बाजार (Private Markets) इन क्षेत्रों में प्रभावपूर्ण ढंग से कार्य नहीं कर सकते।

(ii) दूसरे **सौदाकारी की लागत** (Cost of Bargaining) का अनुमान लगाना बड़ा कठिन है, अर्थात् जो पक्ष (Party) या लोग समझौतें के लिए राजी होते हैं, एक तो उनको इकट्ठा करना कठिन है, दूसरे समझौता कैसे करना है, मामले के तथ्य क्या हैं उसको समझना, समझौता मीटिंगों में हाजिर होना, कोई वकील से परामर्श करना आदि कठिन कार्य है, जिससे हर व्यक्ति बचने की कोशिश करता है। प्रत्येक व्यक्ति यह सोचता है कि "मैं ही क्यों आगे आऊं और खर्च करूं, कोई और व्यक्ति इसे करे और तब प्रदूषण कम होने से मुझे भी लाभ हो जाएगा।" (Why I should endure all this hassle and expense. Let someone else do it, and I will still benefit from the reduction in pollution)। यह एक व्यावहारिक कठिनाई है, जो समझौता के मार्ग में आती है।

(iii) **कोस** सिद्धान्त के साथ जुड़ी तीसरी समस्या है कि **क्षति** (Damages) का अनुमान कैसे लगाया जाए। उदाहरण के लिए वायु प्रदूषण के मामले में यह पहचान कर पाना (Identify) कठिन है कि हवा को कौन प्रदूषित कर रहा है, क्योंकि हवा को प्रदूषित करने वाले हजारों प्रदूषक हैं। परन्तु इसके फलस्वरूप होने वाली क्षति में प्रत्येक का कितना अनुपात है, यह जान पाना और भी कठिन है। ऐसी स्थिति में कितनी क्षति का आधार लेकर समझौता किया जाए, यह तय कर पाना संभव नहीं है।

(3) बाहरी प्रभाव के निर्माण के लिए अधिकारों की बिक्री या नीलामी (Selling or Auctioning of Rights to Create an Externality): बाहरी लागतों के आन्तरीकरण के लिए फर्मों पर लगाए जाने वाले करों का एक विकल्प (Alternative) है बाहरी प्रभाव के निर्माण के अधिकारों की बिक्री या नीलामी। प्रदूषण का ही उदाहरण लें, आर्थिक विकास तथा औद्योगिक उत्पादन के हित में,-मान लो सरकार प्रदूषण को बिल्कुल भी समाप्त (Eliminate) नहीं करती, बल्कि फैक्टरियों को यह अनुमति दे देती है कि वे नदियों में अपना अवशिष्ट फेंक सकती है, अपनी चिमनियों द्वारा हवा में धुंआ छोड़ सकती हैं आदि। इसी प्रकार मोटर वाहनों को भी यह इजाजत दे देती हैं कि वे सड़क पर वाहन चलाएं बेशक इससे सड़कों पर भीड़, वायु प्रदूषण तथा सड़क दुर्घटना (Accidents) हो जाते हैं। सरकार केवल प्रदूषण कर (Pollution Tax) लगाती है या सम्पत्ति अधिकार सृजित (Create) करती है।

इसका दूसरा एक विकल्प है **प्रदूषण अधिकारों** (Pollution Rights) **की बिक्री**। इस स्थिति में किसी देश की सरकार **प्रदूषण का एक अनुमति योग्य स्तर** (Allowable Level of Pollution) **निश्चित कर देती है और प्रदूषण करने के अधिकार** (Right to Pollute) को बेच देती है। वे लोग जो प्रदूषण अधिकारों का मूल्य ऊँचा समझते हैं वे इस अधिकार को खरीद लेते हैं और

संभाल लेते हैं। सरकार उद्योग को यह नहीं बतलाती कि वह वायु को किस प्रकार स्वच्छ करेगी। सरकार प्रदूषण का केवल 'इष्टतम स्तर' (Optimal Level) निश्चित कर देती है और निर्णय फर्मों पर छोड़ देती है कि किस प्रकार वे अपने प्रदूषण पर नियन्त्रण रखें।

प्रदूषण अधिकारों की बिक्री का एक पारंपरिक उदाहरण सिंगापुर में मिलता है, जहां कार खरीदने के अधिकार की नीलामी प्रति वर्ष की जाती है। सिंगापुर में द्रुतगति से आर्थिक विकास होने के कारण, शहरों में भीड़ (Congestion) बहुत अधिक बढ़ गई है। ऊँचे वाहन कर (Automobile Taxes) तथा अत्यधिक भीड़-भाड़ के समय (Peak-hour) ड्राइविंग लाईसेंस देने के बावजूद भी, सरकार के लिए मोटर-वाहनों को नियंत्रण करना असंभव हो गया। तब 1990 में सरकार ने कार-खरीदने वालों **के लिए** Certification of Entitlements (COEs) की नीलामी शुरू कर दी। इसके अनुसार केवल वे व्यक्ति ही कार खरीद सकते हैं जिनके पास COE है। सरकार की इस नीति के कई समर्थकों के अनुसार इस क्रिया के फलस्वरूप भीड़-भाड़ (Congestion) और प्रदूषण पर नियंत्रण संभव हो सका और ड्राइविंग अधिकारों का सही आवंटन हो सका।

नीति की कठिनाई (Difficulty of the Policy): इस नीति को लागू करने की भी वही समस्या है जो प्रदूषण कर लगाने की है। जैसे प्रदूषण कर की **'सही मात्रा'** (Exact Amount) निर्धारित करना कठिन है, उसी भांति **'इष्टतम प्रदूषण'** (Optimal Pollution) का अनुमान लगाना भी कठिन है। दिल्ली में हाल ही में वाहनों के वायु प्रदूषण को रोकने के लिए जो अधिनियम बनाया गया, उसके सामने भी यही समस्या आ रही है। इसलिए, यह निर्णय लेना कठिन है कि प्रदूषण के लिए अधिकारों की कितनी मात्रा की बिक्री या नीलामी की जाए।

(4) प्रत्यक्ष सरकारी नियमन (Direct Government Regulation): बाहरी प्रभावों के आन्तरीकरण से सम्बन्धित ऊपर वर्णित किए गए सभी उपाय अप्रत्यक्ष उपाय हैं। विभिन्न देशों में सरकारों ने इन्हें बहुत अधिक प्रभावपूर्ण (Effective) नहीं पाया है। अतएव बाहरी लागतों का प्रत्यक्ष नियमन सरकारों ने बेहतर समझा है। उदाहरण के लिए, प्रदूषण नियन्त्रण के प्रयास में सरकार कुछ नियम/कानून (Rules) बनाती है जिसका अनुसरण प्रत्येक फर्म को करना होता है। इन विनियमों में निम्नलिखित को शामिल किया गया है: कारखानों में प्रदूषण नियन्त्रण उपक्रम का लगाना, औद्योगिक अवशिष्ट एवं मल (Effluent) को किसी विशेष प्रकार से फेंकना, निकलने व उत्सर्जित होने वाले धुएं (Emission) को निर्धारित तरीके (Prescribed Manner) से साफ रखना, जल को शुद्ध करने की सुविधा प्रदान करना (Facilities to purify water) आदि।

वायु और जल प्रदूषण को रोकने व कम करने के लिए सबसे उत्तम विधि एक कानून (Legislation) का बनाना है। ऐसे कानून द्वारा संभावित प्रदूषकों एवं फर्मो को बाध्य किया जाए कि वे अपने अवशिष्ट को फेंकने या नष्ट करने का कोई उपाय ढूँढें तथा उसके फेंकने की लागत भी स्वयं ही सहन करें (Such legislation should force potential polluters to bear the cost of more properly disposing of industrial wastes.- **McConnell and Brue**)।

भारत में सन् 1986 में पर्यावरण संरक्षण अधिनियम (Environment Protection Act) पास किया गया था। यह अधिनियम केन्द्रीय सरकार को यह शक्ति प्रदान करता है कि पर्यावरण की गुणवत्ता के संरक्षण के लिए आवश्यक कदम उठाए जैसे पर्यावरण सम्बन्धी प्रदूषण की रोकथाम, नियन्त्रण एवं घटाव (Abatement) के लिए राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम की योजना बनाना व उसे लागू करना; पर्यावरण सम्बन्धी प्रदूषकों के फेंकने (Discharge) के लिए कुछ मानदण्ड अपनाना। **केन्द्रीय पर्यावरण नियन्त्रण बोर्ड** (The Central Pollution Control Board) ने विशिष्ट उद्योगों से निकलने वाले प्रदूषक धुएं (Emissions) तथा गन्दे मल (Effluent) के लिए न्यूनतम राष्ट्रीय मानदण्डों (*Minimum National Standard*) का निर्माण किया है और नियन्त्रण उपायों (Control Measures) को थोड़ा-थोड़ा करके (Phased Manner) लागू किया है। बहुत अधिक प्रदूषण वाले उद्योगों की सत्रह श्रेणियां (सीमेंट, थरमल पावर प्लांट, तेल शोधक कारखाने, पेट्रोकेमिकल्ज, डिस्टिलरीज, चीनी आदि) की पहचान कर ली गई है और प्राथमिकता के आधार पर इन उद्योगों में दोषी पाई जाने वाली इकाई के विरुद्ध कानूनी कार्यवाही की जाएगी।

पर्यावरण संरक्षण में सरकार की भूमिका पर अपना विचार व्यक्त करते हुए **विश्व विकास रिपोर्ट** (World Development Report), 1992 का कहना है कि **"पर्यावरण संरक्षण एक वह क्षेत्र है जिसमें सरकार को एक केन्द्रीय भूमिका अवश्य निभानी चाहिए। निजी क्षेत्र/बाजार प्रदूषण से बचाने के लिए बहुत ही कम या कोई भी प्रेरणा नहीं देते। शहरी क्षेत्रों में चाहे वायु प्रदूषण**

हो, सार्वजनिक जल आपूर्ति में चाहे अस्वास्थ्यकर अवशिष्टों के अम्बार हों अथवा उस भूमि का अत्यधिक प्रयोग हो जिसका स्वामित्व अस्पष्ट हो, इन सबके लिए सरकारी क्रिया की अत्यन्त आवश्यकता है।" (Environmental Protection is one area in which government must maintain a central role. Private markets provide little or no incentives for curbing pollution. Whether it be air pollution in urban centres, the dumping of unsanitary wastes in public waters, or the overuse of land whose ownership is unclear, there is a compelling case for public action . -**World Development Report)**

■ 8. फैलाव लाभ (Spillover Benefits)

ऊपर हमने फैलाव/बिखराव लागतों अर्थात् बाहरी प्रभावों की हानिकारक या ऋणात्मक प्रभावों (Negative Externalities) से सम्बन्धित समस्याओं व उनके लिए सुधारात्मक उपायों की चर्चा की। जैसा कि पहले बतला दिया गया है कि बाहरी प्रभावों के धनात्मक लाभ भी मिलते हैं, इन्हें ही फैलाव या बिखराव प्रभाव (Spillover Benefits) या बाहरी प्रभाव (External Effect) या तीसरा पक्ष प्रभाव (Third Party Effects) या पड़ोस प्रभाव (Neighbourhood Effects) कहा जाता है। कुछ वस्तुओं तथा सेवाओं के उत्पादन अथवा उपभोग के फलस्वरूप तीसरे पक्षों (Third Parties) अथवा सम्पूर्ण समाज को बिना किसी भुगतान अथवा क्षतिपूर्ति के फैलाव प्रभाव या बाहरी धनात्मक लाभ प्राप्त होते हैं (The production or consumption of certain goods and services may confer spillover or external benefits on third parties or the community at large for which payment or compensation is not required)। उदाहरण के लिए, शिक्षा के प्रसार से केवल व्यक्तिगत उपभोक्ताओं को ही लाभ प्राप्त नहीं होते, सम्पूर्ण समाज भी लाभान्वित होता है। शिक्षा के प्रसार से अर्थव्यवस्था को एक ओर तो अधिक कुशल और अधिक उत्पादक श्रमबल (Labour Force) प्राप्त होता है और दूसरी ओर अपराध रोकथाम के क्षेत्र में, कानून लागू करने में (Law Enforcement) तथा कल्याण कार्यक्रमों पर कम व्यय करना पड़ता है। शिक्षा के प्रसार से लोगों में सामाजिक तथा राजनैतिक जागरूकता भी आती है, वोट देने वाले व्यक्तियों का प्रतिशत बढ़ता है।

नीचे बना चित्र 4 संसाधन आवंटन पर फैलाव लाभ (Spillover Benefit) को व्यक्त करता है। फैलाव लाभों के होने का अर्थ है कि बाजार मांग वक्र जो निजी लाभों (Private Benefits) को व्यक्त कर रही है, वह कुल लाभों को कम करके (Understate) बतला रही है। बाजार मांग वक्र उन सभी वस्तुओं तथा सेवाओं की उपलब्धता तथा उपभोग से जुड़े सभी लाभों को व्यक्त करने में असफल हो रही है जो फैलाव लाभों के कारण उदय होते हैं। अतएव चित्र 4 (a) में D रेखा केवल उन लाभों को व्यक्त कर रही है जो

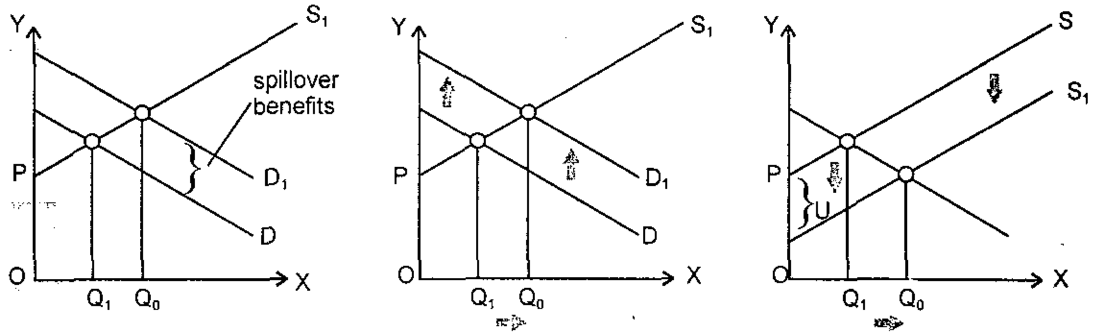

(a) The case of spillover benefits

(b) Correcting the under allocation of resources: demand side

(c) Correcting the under allocation of resources: supply side

चित्र 4

शिक्षा के फैलाव के कारण निजी व्यक्ति (Private Individuals) प्राप्त करते हैं। D_1 रेखा में निजी लाभ (Private Benefits) तथा समाज को मिलने वाले अतिरिक्त फैलाव लाभों (Additional Spillover Benefits) को शामिल किया गया है। अतएव बाजार मांग D और पूर्ति S_1 केवल OQ_1 सन्तुलन उत्पादन प्रदान करेगी, यह उत्पादन इष्टतम OQ_0 उत्पादन से कम है। अतएव बाजार तन्त्र पर्याप्त शिक्षा उपलब्ध नहीं करा पाएगा; इसमें शिक्षा के लिए संसाधनों का अल्प-आवंटन (Underallocation) होगा।

■ 8.1 फैलाव लाभों को सुधारने के उपाय (Correcting the Spillover Benefits)

फैलाव लाभों की उपस्थिति से सम्बन्धित संसाधनों के अल्प आवंटन को सुधारने के लिए निम्नलिखित कदम उठाए जा सकते हैं:

(i) मांग में वृद्धि (Increase in Demand): पहला उपाय है उपभोक्ताओं को क्रयशक्ति प्रदान करके उनकी मांग में वृद्धि करना, इस क्रयशक्ति का प्रयोग केवल उस वस्तु या सेवा के लिए किया जाए जिसके साथ फैलाव प्रभाव जुड़े हुए हैं। उदाहरण के लिए, कम आय परिवारों की खुराक (Diets) को सुधारने के लिए भोजन कार्ड (Food Card) प्रदान करना। ये भोजन कार्ड सरकार उन परिवारों को दे जो केवल भोजन पाने के लिए ही इसका प्रयोग करें। जो स्टोर या दुकानदार इन भोजन कार्डों पर भोजन देते हैं, सरकार उनको इसका भुगतान नकद करे। इस कार्यक्रम का औचित्य (Rationale) इस बात में है कि सुधरे हुए पोषक पदार्थों (Improved Nutrition) के मिलने से निर्धन बच्चे स्कूल में जा कर अपना शिक्षा स्तर सुधार सकते हैं और निर्धन वयस्क (Adults) अच्छे श्रमिक बन सकते हैं। संक्षेप में, इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य यह है कि निर्धन लोग देश में उत्पादक भागीदार (Productive Participants) बन सकें, इसके परिणामस्वरूप पूरे समाज को लाभ होगा। चित्र 4 (b) में यह कार्यक्रम भोजन के लिए मांग को D से बढ़ा कर D_1 कर देता है, जिसका तात्पर्य संसाधनों के अल्प आवंटन को समाप्त या कम करना है।

(ii) पूर्ति में वृद्धि (Increase in Supply): दूसरा उपाय बाजार में पूर्ति पक्ष से जुड़ा है। किसी वस्तु विशेष के लिए उपभोक्ताओं को आर्थिक सहायता (Subsidy) देने की बजाए सरकार द्वारा उत्पादकों को आर्थिक सहायता प्रदान करना अधिक सुविधाजनक तथा प्रशासन की दृष्टि से सरल है। **आर्थिक सहायता** (Subsidy) सरल रूप में विशिष्ट कर (Specific Tax) का विपरीत (Reverse) है; करों के लगाने से उत्पादकों की अतिरिक्त लागत (Extra Cost) बढ़ती है, जबकि आर्थिक सहायता उनकी लागतों को कम करती है। चित्र 4 (c) में उत्पादकों को प्रति इकाई U आर्थिक सहायता मिलने से उनकी लागतें घट जाएंगी, वे अधिक वस्तुओं की आपूर्ति करेंगे जिसके फलस्वरूप पूर्ति वक्र S से सरक कर नीचे S_1 हो जाएगी। इसके परिणामस्वरूप उत्पादन OQ_1 से बढ़कर इष्टतम स्तर OQ_0 हो जाएगा। इस प्रकार साधनों के अल्प आवंटन में सुधार होगा। उच्च शिक्षा के लिए सार्वजनिक आर्थिक सहायता (Public Subsidization), जनसमूह रोग मुक्त (Mass Immunisation) कार्यक्रम और सार्वजनिक अस्पताल तथा स्वास्थ्य केन्द्र (Health Clinics) खोलना आदि इस कार्यक्रम के अन्य उदाहरण हैं।

(iii) सरकारी प्रावधान (Government Provision): तीसरा उपाय तब सुझाया जाएगा जब फैलाव प्रभाव बहुत अधिक बड़ा हो, जैसे बिजली की सप्लाई। ऐसी बड़ी परियोजना का वित्त प्रबन्ध केवल सरकार ही कर सकती है और ऐसी परियोजना अथवा उपक्रम का प्रचालन सरकार ही कर सकती है और सरकार ही इस संदर्भ में सार्वजनिक हित (Public Interest) सोच सकती है।

प्रश्न (QUESTIONS)

■ I. वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

सभी प्रश्न अनिवार्य हैं (Attempt all the Questions)

1. बाजार तन्त्र की विफलता से अभिप्राय उस स्थिति से है जिसमें निजी लाभ नहीं व्यक्त करते (सामाजिक लाभों को, नैतिक लाभों को)
2. जल प्रदूषण तथा वायु प्रदूषण जैसी पर्यावरणीय अवनति से होता है (सामाजिक लाभ, सामाजिक लागत)

3. परम्परावादी आर्थिक विचारों की तुलना में आधुनिक आर्थिक विचारकों के अनुसार व्यक्तिगत लाभ तथा सामाजिक लाभ हैं (समानार्थक, समानार्थक नहीं)
4. किसी व्यक्ति द्वारा सहन किया गया लाभ या लागत जो किसी अन्य व्यक्ति के व्यवहार का प्रत्यक्ष परिणाम है और उसकी कोई क्षतिपूर्ति नहीं की गई है, उसे कहते हैं (बाहरी प्रभाव, आन्तरिक प्रभाव)
5. पर्यावरण अवनति के रूप में बाहरी प्रभाव पैदा करते हैं (बाजार तन्त्र की विफलता, बाजार तन्त्र की सफलता)
6. संसाधनों तक लोगों की बेरोक-टोक पहुँच उन्हें शोषण करने की अनुमति देती है (सभी को, कुछ एक को)
7. बाहरी प्रभावों अथवा बाजार तन्त्र की विफलता के समाधान को कहा जाता है (बाहरी प्रभाव का आन्तरीकरण, बाहरी प्रभावों का हटाना)
8. भारत में पर्यावरण संरक्षण कानून पास किया गया (1986 में, 1991 में)
9. ________ एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसके द्वारा बिना बाहरी हस्तक्षेप के माँग और पूर्ति की शक्तियों की सहायता से वस्तुओं की कीमतें निर्धारित होती है। (बाजार तंत्र की विफलता, बाजार संयंत्र) (K.U. 2009)

उत्तर (Answer): (1) सामाजिक लाभों को, (2) सामाजिक लागत, (3) समानार्थक नहीं, (4) बाहरी प्रभाव, (5) बाजार तन्त्र की विफलता, (6) सभी को, (7) बाहरी प्रभाव का आन्तरीकरण, (8) 1986 में, (9) बाजार संयंत्र।

■ II. लघु/परिभाषा रूपी प्रश्न (Short/Definitional Type Questions)

1. बाजार तन्त्र की विफलता की परिभाषा आप कैसे देंगे?
2. क्या बाजार कीमत संरचना पर्यावरण सम्बन्धी अवनति को व्यक्त करता है?
3. निजी हितों तथा सामाजिक हितों के बीच अन्तर बतलाएं।
4. बाहरी प्रभाव को परिभाषित कीजिए। (M.D.U. 2008)
5. धनात्मक बाहरी प्रभावों की व्याख्या करें।
6. ऋणात्मक बाहरी प्रभावों की व्याख्या करें।
7. निजी लागतों तथा सामाजिक लागतों के बीच क्या विभिन्नता है?
8. बाजार तन्त्र की विफलता के संक्षेप में कारण बतलाएं।
9. फैलाव लाभों की व्याख्या कीजिए। (K.U. 2009)
10. बाजार तन्त्र की विफलता की समस्या का संक्षेप में समाधान बतलाएं।
11. सम्पत्ति अधिकार क्या हैं? (K.U. 2005)

■ III. निबन्ध रूपी प्रश्न (Essay Type Questions)

1. What is meant by market failure? Tell the reasons for market failures.
   बाजार तन्त्र की विफलता से क्या अभिप्राय है? बाजार तन्त्र की विफलता के कारण बतलाएं। (M.D.U. 2007)
2. Define externalities and explain positive and negative externalities. How these externalities are linked with market failure?
   बाहरी प्रभावों की परिभाषा दें और धनात्मक तथा ऋणात्मक बाहरी प्रभावों की व्याख्या करें। ये बाहरी प्रभाव किस प्रकार बाजार तन्त्र की विफलता से जुड़े हैं?
3. Explain the divergence between private costs and social costs.
   निजी लागतों तथा सामाजिक लागतों में विभिन्नता की व्याख्या करें।

4. What are the causes for the market failures? Give remedial measures for the solution of the problem of market failures.

   बाजार तन्त्र की विफलता के कारण क्या हैं? बाजार तन्त्र की विफलता की समस्या के समाधान के लिए सुधारात्मक उपाय बतलाएं।

5. What are spillover benefits? What do you suggest for correcting spillover benefits?

   फैलाव लाभों से क्या अभिप्राय है? फैलाव लाभों को सुधारने के लिए आप क्या सुझाव देते हैं।

6. What do you mean by Market failure? Discuss remedial measures for the solution of the problem of market failures.

   बाजार तंत्र की विफलता से आप क्या समझते हैं? बाजार तन्त्र की विफलता की समस्या के समाधान के लिए सुधारात्मक उपाय बताइए। (K.U. 2008)

12

सार्वजनिक पदार्थ के रूप में पर्यावरण

(ENVIRONMENT AS A PUBLIC GOOD)

■ 1. भूमिका (Introduction)

प्रत्येक अर्थव्यवस्था में पाये जाने वाले पदार्थों का महत्त्वपूर्ण वर्गीकरण निम्न दो भागों में किया जाता है:

(1) निजी पदार्थ (Private Goods): **निजी पदार्थ वह पदार्थ हैं जिसकी प्रत्येक इकाई का उपभोग केवल एक व्यक्ति द्वारा किया जाता है। निजी पदार्थ की दो मुख्य विशेषताएं हैं:** (i) **प्रतिस्पर्धा** (Rivalry): प्रतिस्पर्धा का अर्थ है कि यदि किसी वस्तु का उपभोग एक व्यक्ति करता है तो अन्य उस वस्तु का उपभोग नहीं कर सकते। उदाहरण के लिए, कोकाकोला एक निजी पदार्थ है कि यदि आप कोकाकोला की एक बोतल का उपभोग कर लेते हैं तो अन्य व्यक्ति उस बोतल का उपभोग नहीं कर सकते। (ii) **एकाकी** (Exclusive): निजी पदार्थ की दूसरी विशेषता यह है कि यह एकाकी (Exclusive) होता है। इससे अभिप्राय यह है कि यदि आपने कोकाकोला की एक बोतल खरीद ली, तो वह आपकी निजी सम्पत्ति हो जायेगी, आप अन्य व्यक्तियों को उसका उपभोग करने से अलग कर सकते हैं।

(2) सार्वजनिक पदार्थ (Public Goods): **सार्वजनिक पदार्थ वह सामूहिक पदार्थ हैं जिसका उपभोग सार्वजनिक रूप से सभी व्यक्तियों द्वारा किया जा सकता है तथा एक व्यक्ति द्वारा किया गया उपभोग दूसरे व्यक्ति के उपभोग को कम नहीं करता।** सार्वजनिक पदार्थ की भी दो विशेषताएं होती हैं: (i) **गैर-प्रतिस्पर्धी** (Non-rivalry): गैर-प्रतिस्पर्धी का अर्थ है किसी एक व्यक्ति द्वारा वस्तु का अधिक उपभोग करने से दूसरे व्यक्तियों द्वारा किये जाने वाले उपभोग में कमी नहीं आती। (ii) **गैर-एकाकी** (Non- exclusive): गैर-एकाकी का अर्थ है कि लोगों को वस्तु के उपभोग से अलग नहीं किया जा सकता। पर्यावरण के अंग जैसे शुद्ध वायु, वन, नदी व समुद्र का जल, वातावरण आदि निजी पदार्थ नहीं हैं ये सार्वजनिक पदार्थ हैं। क्योंकि इनका प्रयोग केवल एक व्यक्ति ही नहीं करता वरन् सभी व्यक्ति कर सकते हैं अर्थात् ये गैर-प्रतिस्पर्धी और गैर-एकाकी हैं।

■ 2. पर्यावरण/सार्वजनिक पदार्थ का अर्थ (Meaning of Environment/Public Goods)

पर्यावरण के विभिन्न अंग जैसे वायु, जल, धूप, पार्क आदि निजी पदार्थ नहीं हैं: ये सार्वजनिक पदार्थ हैं, क्योंकि ये **गैर-प्रतिस्पर्धी** (Non-rivalry) एवं **गैर-एकाकी** (Non-Exclusive) हैं। एक प्राकृतिक पदार्थ के रूप में पर्यावरण का अध्ययन करने के लिए यह जानना आवश्यक हो जाता है कि प्राकृतिक पदार्थ क्या हैं और उनकी क्या विशेषताएं हैं? सार्वजनिक पदार्थ से अभिप्राय उस किसी भी वस्तु से है जिसके प्रयोग से प्रत्येक व्यक्ति को लाभ मिलता है। यह एक सामूहिक पदार्थ है जिसकी मात्रा एक अथवा कुछ व्यक्तियों के उपयोग द्वारा घटती नहीं है। (It is a collective good which is not reduced if it is used by one or few individuals)। सार्वजनिक पदार्थ **अविभाज्य** (Indivisible) हैं अर्थात् ये इतनी अधिक मात्रा में उपलब्ध हैं कि इनको व्यक्तिगत क्रेताओं को बेचा नहीं जा सकता, जैसे शुद्ध वायु, वन, नदी व समुद्र का जल आदि।

■ परिभाषा (Definition)

(1) **टोडारो** के अनुसार, "**एक सार्वजनिक पदार्थ वह पदार्थ है जिससे प्रत्येक व्यक्ति को लाभ उपलब्ध होता है और जिसकी उपलब्धता एक साथ अन्य व्यक्तियों के प्रयोग द्वारा घटती नहीं है।**" (A public good is any thing that provides a benefit to everyone and the availability of which is in no way diminished by its simultaneous enjoyment by others. – **Todaro**)

(2) **एम. पार्किन** के अनुसार, "**एक सार्वजनिक पदार्थ वह पदार्थ है जिसकी प्रत्येक इकाई का उपभोग प्रत्येक व्यक्ति द्वारा किया जा सकता है तथा जिसके उपभोग से किसी व्यक्ति को अलग नहीं किया जा सकता।**" (A public good is a good each unit of which is consumed by everyone and from which no one can be excluded. – **M. Parkin**)

(3) **बियर्ड शा** के अनुसार, "**सार्वजनिक पदार्थों की परिभाषा उन पदार्थों के रूप में की जाती है जिनके उत्पादन के किसी दिये हुए स्तर का अतिरिक्त उपभोक्ताओं द्वारा किया जाने वाला उपभोग वर्तमान उपभोक्ताओं द्वारा दिए जाने वाले उपभोग को कम नहीं करता। अन्य शब्दों में एक अतिरिक्त व्यक्ति के लिए किए जाने वाले उत्पादन की सीमान्त लागत शून्य होती है।**" (Public goods are defined as products where, for any given output, consumption by additional consumers does not reduce the quantity consumed by existing consumers. Another way of putting this is that the marginal cost of production for an extra person is zero. – **Beardshaw**)

■ 3. सार्वजनिक पदार्थ की विशेषता (Features of Public Goods)

सार्वजनिक पदार्थ वह वस्तु या सेवा है जिसका सामूहिक रूप से उपभोग किया जाता है, इसकी दो मुख्य विशेषताएं हैं:

(1) **गैर-प्रतिस्पर्धीय** (Non-Rival): सार्वजनिक पदार्थ एक गैर-प्रतिस्पर्धी वाला पदार्थ है। गैर-प्रतिस्पर्धी का अर्थ है कि किसी वस्तु का एक व्यक्ति द्वारा अधिक उपभोग करने से दूसरे व्यक्ति के उपभोग में कमी नहीं होती है। (Non-rivalry in consumption means that more consumption of a good by one person does not mean less consumption of it by another person.)

उदाहरण के लिए, यदि आप घूमते हुए अधिक शुद्ध हवा को अपने फेफड़ों में भरते हैं तो इसका यह अर्थ नहीं है कि दूसरे व्यक्तियों के लिए शुद्ध हवा की कमी हो जाती है। **एडविन मैन्जफील्ड** के अनुसार, "**बिना अन्य व्यक्तियों के आनन्द एवं सुख को कम किए, सार्वजनिक पदार्थ के प्रयोग का आनन्द कोई भी अतिरिक्त व्यक्ति उठा सकता है।**" (A Public good can be enjoyed by an extra person without reducing the enjoyment it gives to others. - **Edwin Mansfield**)
पर्यावरण एक गैर-प्रतिस्पर्धी पदार्थ हैं क्योंकि पर्यावरण का एक व्यक्ति द्वारा किए जाने वाले उपभोग के फलस्वरूप दूसरे व्यक्तियों द्वारा किए जाने वाले उपभोग में कोई कमी नहीं होती। यह ध्यान रखना चाहिए कि कुछ प्राकृतिक पदार्थ जैसे वन केवल एक सीमा तक ही गैर-प्रतिस्पर्धी होती हैं। जब वनों का पूर्ण रूप से कटाव कर दिया जाता है तो वे गैर-प्रतिस्पर्धी नहीं रहते। उनका दूसरे लोगों द्वारा किया जाने वाला उपभोग कम हो जाता है। अतएव वन एक **शुद्ध सार्वजनिक पदार्थ** (Pure Public Goods) नहीं है। यह केवल **मिश्रित पदार्थ** (Mixed Goods) है। इसके विपरीत पर्यावरण के कुछ पदार्थ जैसे- वायु, धूप, शुद्ध सार्वजनिक पदार्थ हैं। क्योंकि इनका एक व्यक्ति द्वारा किये जाने वाले अधिक उपभोग के कारण दूसरे व्यक्तियों के उपभोग में कोई कमी नहीं होती। **सार्वजनिक पदार्थ जैसे ही उपलब्ध होते हैं अन्य व्यक्तियों द्वारा उनके उपभोग की सीमान्त लागत शून्य होती है।** (Aa a public good is provided, the marginal cost of another person's consuming it is zero.)

संक्षेप में, अधिकतर पर्यावरण के अंग जैसे नदियाँ, झरने, जलाशय, कुएं, वातावरण, प्राकृतिक सौन्दर्य, वायु, धूप आदि गैर-प्रतिस्पर्धी सार्वजनिक पदार्थ हैं।

(2) गैर-एकाकी (Non-exclusive): सार्वजनिक पदार्थ की दूसरी विशेषता यह है कि यह गैर-एकाकी होता है। गैर-एकाकी का अर्थ है कि लोगों को वस्तु के उपभोग से अलग नहीं किया जा सकता। प्राकृतिक पदार्थ जैसे धूप, गैर-एकाकी है क्योंकि धूप के उपयोग पर किसी एक व्यक्ति का अधिकार नहीं होता वरन् सभी व्यक्ति इसका उपभोग कर सकते हैं। किसी भी व्यक्ति को धूप का उपभोग करने से रोका नहीं जा सकता। सामान्यत: जब कोई व्यक्ति किसी निजी वस्तु का उपभोग करता है तो वह उसके लिए कोई कीमत देता है जो व्यक्ति उस वस्तु की कीमत देते हैं वे उसका उपभोग कर सकते हैं। जो कीमत नहीं देते वे उसका उपभोग नहीं कर सकते परन्तु पर्यावरण के पदार्थों के संबंध में ये शर्तें लागू नहीं होती। उनका प्रयोग करने से किसी व्यक्ति को नहीं रोका जा सकता चाहे वह उसकी कीमत दे सकता है या नहीं। **मकौनल के अनुसार, " सार्वजनिक पदार्थों पर एकाकी सिद्धान्त लागू नहीं होता, अर्थात् सार्वजनिक पदार्थ जैसे ही अस्तित्व में आते हैं, इनसे मिलने वाले लाभों से लोगों को अलग नहीं किया जा सकता।"** (Exclusion principle does not apply to publish goods, that is, there is no-effective way of excluding individuals from the benefits of public goods once those goods come into existence- **McConnell)**

प्रो. मेन्सफील्ड का भी यह विचार है कि **"एक सार्वजनिक पदार्थ वह पदार्थ है जो गैर-प्रतिस्पर्धी तथा गैर-एकाकी दोनों है। सभी गैर-प्रतिस्पर्धी पदार्थ गैर-एकाकी पदार्थ और गैर-एकाकी पदार्थ गैर-प्रतिस्पर्धी पदार्थ नहीं होते।"** (A public good is defined as a good that is both non-rival and non-exlusive. Not all non-rival goods are non-exclusive good and not all non-exclusive goods are non-rival goods. – **Edwin Mansfield)**।

उदाहरण के लिए, एक व्यक्ति किसी पार्क में शुद्ध वायु का अधिकतम सेवन कर सकता है परन्तु जब उस पार्क में बहुत अधिक व्यक्ति एकत्रित हो जाते हैं तो अतिरिक्त व्यक्तियों द्वारा सेवन किये जाने पर शुद्ध वायु में कमी हो जाती है अर्थात् उन्हें मिलने वाली वायु अशुद्ध हो जाती है। परन्तु यह भी एक तथ्य है कि चाहे कितने भी व्यक्ति एकत्रित हो जायें उन्हें श्वसन क्रिया से रोका नहीं जा सकता। अतएव श्वसन क्रिया एक गैर-एकाकी क्रिया है परन्तु गैर-प्रतिस्पर्धी नहीं है। इसी प्रकार यह सिद्ध किया जा सकता है कि गैर-प्रतिस्पर्धी पदार्थ, गैर-एकाकी नहीं होता। उदाहरण के लिए, टोल टैक्स वाले एक पुल (Bridge) पर से मोहन यदि गुजरता है तो उसके गुजरने से सोहन के उस पुल पर से गुजरने में कोई रुकावट नहीं आती, तब यह पुल एक गैर-प्रतिस्पर्धी पदार्थ है। परन्तु यह गैर-एकाकी (Non-exclusive) पदार्थ नहीं है क्योंकि इस पुल पर निकलने की फीस चार्ज की जाती है। यहाँ एक और बात बतला देना आवश्यक है, वह यह कि सार्वजनिक पदार्थ, बाजार प्रणाली द्वारा, सही मात्रा में उपलब्ध नहीं कराए जाते (Public Goods are not provided in the right amounts by the market mechanism) बाजार प्रणाली तो इस सिद्धान्त पर चलती है कि जो वस्तु की कीमत नहीं देता है वह इसका उपभोग नहीं कर सकता। परन्तु जहां तक सार्वजनिक पदार्थ के उपभोग का प्रश्न है, लोगों को इसके उपभोग से रोका नहीं जा सकता, चाहे इसके लिए वे कीमत दें अथवा नहीं। उदाहरण के लिए, नदी-तालाब के जल से प्राप्त होने वाले लाभ से किसी को वंचित नहीं किया जा सकता, चाहे वे इसके लिए कोई कीमत दें अथवा न दें। इसलिए इन दशाओं में बाजार प्रणाली लागू नहीं होती।

■ 4. पर्यावरण के रूप में सार्वजनिक घटिया पदार्थ का अर्थ
(Meaning of Environment as Public Bad)

सार्वजनिक पदार्थ के रूप में पर्यावरण की एक दूसरी महत्त्वपूर्ण धारणा सार्वजनिक घटिया पदार्थ (Public Bads) है। **टोडारो** के अनुसार, **"एक घटिया सार्वजनिक पदार्थ वह पदार्थ या दशा है जिसके प्रयोग द्वारा लोगों की सुख-समृद्धि की अवस्था गैर-व्यापक रूप से घटती है।"** (A public bad is any product or condition that decreases the well-being of others in a non-exhaustive manner - **Todaro**)। जैसे वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण तथा शोर प्रदूषण। यदि मानवीय प्रकृति को देखा जाए तो हम पाएंगे कि लोग जब अपनी क्रियाओं से जुड़ी पूर्ण लागतों (Full Costs) या हानियों का भुगतान नहीं करते, तो इसके फलस्वरूप घटिया पदार्थ काफी मात्रा में पैदा हो जाते हैं। इसके परिणामस्वरूप सामाजिक दृष्टि से उत्पादन का इष्टतम उत्पादन नहीं हो पाता। इस संदर्भ में अनेक उदाहरण मिलते हैं, जैसे क्षेत्रीय पर्यावरण सम्बन्धी अवनति (Regional Environmental Degradation) जो वनों की अधिक कटाई के कारण होता है, जल का अत्यधिक प्रयोग करने से पृथ्वी की सतह में पानी का कम हो जाना, वृक्षों का जलाना व अत्यधिक काटना, जल को दूषित करना आदि।

धारणीय विकास (Sustainable Development) की एक मुख्य समस्या पर्यावरण का सार्वजनिक **घटिया पदार्थ** (Public Bad) के रूप में पाया जाना है। इसका प्रत्येक अर्थव्यवस्था पर बहुत ही प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण एवं शोर प्रदूषण पर्यावरण के ऐसे **सार्वजनिक घटिया पदार्थ** (Economic Bads) हैं जिनका प्रभाव कम करने के लिए सरकारी हस्तक्षेप की बहुत अधिक आवश्यकता है।

■ 5. पर्यावरण का सार्वजनिक पदार्थ के रूप में प्रावधान

(Provision of Environment as A Public Good)

यदि किसी समाज में लोगों की संख्या कम है, तब भी उनको पर्यावरण रूपी सार्वजनिक पदार्थों का प्रावधान करना पड़ता है। परन्तु आज के युग में प्रत्येक समाज में लोगों की संख्या अधिक है, अन्तर केवल यह है कि कम लोगों वाली समाज में सार्वजनिक पदार्थों का उपलब्ध करानां कुछ ही लोगों की जिम्मेवारी होती है, जैसे मान लो एक द्वीप (Island) में केवल दो परिवार ही रहते हैं, वहाँ सार्वजनिक पदार्थ का प्रावधान इन दोनों परिवारों को ही अपनी आवश्यकता के अनुसार करना पड़ेगा; जबकि बड़ी समाज में सार्वजनिक पदार्थों को सही मात्रा में उपलब्ध करवाने की जिम्मेवारी सरकार के कन्धों पर आ जाती है। उदाहरण के लिए लोगों को शुद्ध जल, शुद्ध वायु, जान व माल की सुरक्षा आदि ऐसे सार्वजनिक पदार्थ हैं, जिस पर सरकारी तन्त्र को काफी व्यय करना पड़ता है। प्रजातन्त्रात्मक समाजों में इन पर कितना व्यय किया जाएगा यह बैलट बाक्स (Ballot Box) पर निर्भर करता है। लोगों द्वारा चुने गए प्रतिनिधि ही यह निर्णय लेते हैं कि पर्यावरण सम्बन्धी पदार्थों के उत्पादन एवं संरक्षण पर कितना सरकारी व्यय किया जाना चाहिए।

■ 6. सार्वजनिक पदार्थों की नि:शुल्क प्रयोगकर्ता संबंधी समस्याएँ

(Free Rider Problem Relating to Public Goods)

पर्यावरण रूपी सार्वजनिक पदार्थ से संबंधित एक प्रमुख समस्या **नि:शुल्क प्रयोगकर्ता (Free rider)** की समस्या है। नि:शुल्क प्रयोगकर्ता से अभिप्राय उस व्यक्ति से है जो नि:शुल्क ही किसी वस्तु का प्रयोग करते हैं, उदाहरण के लिए यदि लोग किसी पार्क का प्रयोग उस पार्क के रख-रखाव पर कोई खर्च किये बिना ही कर लेते हैं तो उन्हें नि:शुल्क प्रयोगकर्ता (Free Rider) कहा जाएगा। सार्वजनिक पदार्थ, यदि गैर-एकाकी पदार्थ हैं, तब उपभोक्ताओं के लिए इनका प्रयोग नि:शुल्क होता है। अन्य शब्दों में, उपभोक्ता जब यह महसूस करते हैं कि किसी एक व्यक्ति के उपभोग से वस्तु के कुल उत्पादन पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता, तब उन से यह अपेक्षा नहीं की जाती कि वस्तु के उत्पादन में वे अपना कोई योगदान दें। वस्तु का उत्पादन जितना भी हो रहा है, वे उसका प्रयोग करते रहेंगे। **मकौनल के अनुसार, "लोग वस्तु के उत्पादन लागत में बिना कोई अंशदान दिए उससे लाभ प्राप्त कर सकते हैं।"** (People can receive benefits from a good without contributing to its cost. - **McConnell**)। उदाहरण के लिए, बाढ़ नियन्त्रण, कूड़ा-करकट का निपटान पार्क (Sewage Disposal Park) आदि ऐसे सार्वजनिक पदार्थ हैं जहां इनसे मिलने वाले लाभ अधिक हैं परन्तु व्यक्ति या बाजार प्रणाली इसमें अपने संसाधन आवंटित नहीं करती। यदि समाज इन पदार्थों व सेवाओं का लाभ उठाना चाहती है तो ये सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा उपलब्ध कराए जाने चाहिए और इनके वित्त प्रबन्ध के लिए सरकार को कुछ कर लगा देना चाहिए।

चूंकि इन सभी सेवाओं के धनात्मक बाहरी प्रभाव (Spillover Benefits) है, इसलिए इनका उत्पादन बाजार तन्त्र द्वारा नहीं बल्कि सरकार द्वारा ही किया जा सकता है। ऐसे पदार्थों तथा सेवाओं को **अर्ध-सार्वजनिक पदार्थ** (Quasi-Public Goods) कहा जाता है। इन सभी पदार्थों तथा सेवाओं का प्रयोग भी सार्वजनिक हित (Social Benefit) के लिए किया जाता है।

■ 7. सार्वजनिक पदार्थ तथा बाहरी प्रभाव (Public Goods and Externalities)

सार्वजनिक पदार्थों के उपलब्ध करवाने के अतिरिक्त सरकार को कई बार बाहरी हानियों तथा बचतों (External Diseconomies and Economies) द्वारा पैदा हुई विकृतियों (Distortions) को कम करने के लिए भी प्रयत्न करना पड़ता है। यहाँ इन बाहरी प्रभावों की व्याख्या, हम पर्यावरण प्रदूषण की समस्या से जोड़कर, करेंगे और यह व्यक्त करेंगे कि इस मामले में सरकार को किस प्रकार और किस सीमा तक हस्तक्षेप करना चाहिए। प्रदूषण समस्या हमारे पर्यावरण के प्रमुख पक्ष (Vital Aspect) को प्रभावित करती है। हमारी कई नदियों व झीलों में (Streams and Lakes) औद्योगिक प्लाण्टों द्वारा छोड़े गए रासायनिक अवशिष्ट

(Chemical Wastes), और किसानों तथा गृहस्थों द्वारा प्रयोग की गई कीटनाशक दवाइयां, उर्वरक तथा डिटर्जेंट पाऊडर आदि शामिल होते हैं। इनसे जल काफी मात्रा में प्रदूषित होता है। इसी प्रकार कई वाहनों (Automobiles) का धुआं वायु प्रदूषण का मुख्य स्रोत है। कई फैक्टरियाँ भी कई ऐसे कण (Particles) फैलाती है, जिससे वायु प्रदूषित होती है।

हमारी अर्थव्यवस्था पर्यावरण के इस प्रदूषण को सहन क्यों करती है, इसका उत्तर व्यापक रूप से बाहरी हानियों (External Diseconomies) की धारणा से सम्बन्धित है। बाहरी हानि या बाहरी ऋणात्मक प्रभाव (Negative Externality) तब होता है जब एक व्यक्ति या फर्म द्वारा संसाधन के प्रयोग से होने वाली क्षति अन्य व्यक्तियों को बिना किसी उचित क्षतिपूर्ति प्राप्त हुए सहन करनी पड़ती है (An external diseconomy occurs when one person's or firm's use of a resource damages other people who cannot obtain proper compensation)। जब ऐसा क्रम चलता है तब एक प्रतियोगी अर्थव्यवस्था ठीक प्रकार से कार्य नहीं कर सकती। बाजार कीमतों के लिए संसाधनों के एक कुशल आवंटन के उत्पादन के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक संसाधन के प्रयोग की पूर्ण लागत (Full Cost) उस फर्म या व्यक्ति द्वारा सहन की जाए जो इस संसाधन का प्रयोग करती है। (For market prices to produce an efficient allocation of resources, it is necessry that the full cost of using each resource is borne by the person or firm that uses it) यदि ऐसा नहीं होता और प्रयोगकर्ता फर्म पूर्ण लागतों का केवल एक भाग ही सहन करती है तब **सामाजिक इष्टतम प्रयोग** (Socially Optimal Use) की दृष्टि से कीमत तन्त्र (Price System) संसाधन के प्रयोग को सही दिशा नहीं दे सकता।

एक प्रतियोगी अर्थव्यवस्था में संसाधनों का प्रयोग सामाजिक दृष्टि से, बहुत ही मूल्यवान रूप से (Socially most valuable way) किया जाता है क्योंकि इनका आवंटन लोगों और फर्मों के बीच इस प्रकार से किया जाता है कि यह सबके लिए उपयुक्त हो और इनके बदले में मिलने वाली कीमतें सही सामाजिक लागतों (True Social Costs) को प्रकट करें। परन्तु बाहरी हानियों की उपस्थिति के कारण लोग और फर्में कुछ संसाधन की सही सामाजिक लागतों (True Social Costs) का भुगतान नहीं करती हैं। विशेषकर मान लो कुछ फर्में या लोग जल अथवा वायु का बेकार में (For nothing) प्रयोग करते हैं, जबकि अन्य फर्मों तथा लोगों को वायु व जल के इस प्रयोग के परिणामस्वरूप लागत या हानि सहन करनी पड़ती है। इस स्थिति में वायु व जल के प्रयोग की निजी लागतें (Private Costs) सामाजिक लागतों से भिन्न होंगी। **जल तथा वायु के प्रयोगकर्ता द्वारा दी जाने वाली कीमत समाज की असली/सही लागत से कम है** (The price paid by the user of water and air is less than the true cost to society)। इस मामले में जल तथा वायु के प्रयोगकर्ता अपने निर्णयों में जल तथा वायु की निजी लागतों द्वारा मार्गदर्शित (Guide) होते हैं, अर्थात् उन कीमतों द्वारा जो वे देते हैं। चूंकि वे सही/उचित सामाजिक लागतों (True Social Costs) की तुलना में कम कीमत देते हैं, जल और वायु उनके लिए सस्ता है, इसलिए समाज के दृष्टिकोण से वे इन संसाधनों का बहुत अधिक प्रयोग करते हैं।

निजी तथा सामाजिक लागतों के बीच अन्तर (Divergence) तब उदय होता है जब एक फर्म या व्यक्ति द्वारा जल या वायु का प्रयोग अन्य फर्मों या व्यक्तियों के लिए लागत बन जाता है। अत: यदि कोई पेपर मिल जल का प्रयोग करती है और उसकी गुणवत्ता बनाए रखती है, तब निजी तथा सामाजिक लागतों में कोई अन्तर नहीं होगा। परन्तु यदि वही कागज मिल अपने दूषित जल तथा अन्य अवशिष्टों को नदियों में फेंकती है, तब नदी के समीप या दूर की फर्मों तथा शहरों को इस दूषित पानी के प्रयोग के लिए और इसकी गुणवत्ता बनाए रखने में जो खर्च करना पड़ता है, वह उनके लिए लागतें हैं; ऐसी स्थिति में निजी तथा सामाजिक लागतों में अन्तर हो *जाएगा। यही स्थिति वायु प्रदूषण की भी हो सकती है। जब कोई बिजली पावर प्लांट अपने अवशिष्ट छोड़ने के लिए वातावरण* (Atmosphere) को सस्ते और सुविधाजनक जगह के रूप में प्रयोग करता है, तब इसके फलस्वरूप इसके समीप रहने वाले और काम करने वाले लोगों को (अपने स्वास्थ्य सहित) लागत या हानि सहन करनी पड़ती है, इस स्थिति में भी निजी तथा सामाजिक लागतों में अन्तर होगा।

■ 8. सरकारी हस्तक्षेप और पर्यावरण एक सार्वजनिक पदार्थ के रूप में (Government Intervention and Environment as Public Goods)

पर्यावरण रूपी सार्वजनिक पदार्थ एवं घटिया पदार्थ (Public Goods and Bads) का समाज पर पड़ने वाले प्रभाव को नियमित करने के लिए सरकार कई प्रकार से हस्तक्षेप कर सकती है। उदाहरण के लिए उद्योगों एवं वाहनों के द्वारा फैलाए गए प्रदूषण एवं वन, जल, वायु आदि की अवनति को रोकने के लिए एवं पर्यावरण को समाज के लाभ के लिए नियमित करने के लिए सरकार कई प्रकार से प्रयत्न कर सकती है। इस समस्या को एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है, मान लीजिए उत्पादन के प्रत्येक स्तर पर कोई उद्योग प्रदूषण की जो मात्रा पैदा करता है वह सरकारी हस्तक्षेप के कारण बदल सकती है। सरकार ये प्रावधान कर सकती है कि उस उद्योग को प्रदूषण नियन्त्रण उपकरण (Pollution Control Device) लगा लेना चाहिए, जैसे- गैस शुद्ध करने का उपकरण (Scrubber)। यदि उद्योग का उत्पादन स्थिर (Fixed) है, तब आर्थिक दृष्टि से प्रदूषण नियन्त्रण का कुशल स्तर क्या होना चाहिए? इसका स्पष्ट उत्तर तो यह है शून्य प्रदूषण (Zero Pollution) सबसे उत्तम स्तर है, परन्तु यह स्तर प्राप्त करना सरल नहीं है। इस प्रश्न का एक और उत्तर है कि वह उद्योग प्रदूषण की उतनी मात्रा जनित (Generate) करे जिसे समाज सहन कर सके। इसके लिए दो बातों को ध्यान में रखने की जरूरत है: एक है **प्रदूषण की लागत** (Cost of Pullution) और दूसरी है **प्रदूषण नियंत्रण की लागत** (Cost of Pollution Control)। समाज की दृष्टि से उद्योग को अपने अवशिष्ट को छोड़ने की मात्रा को उस बिन्दु तक कम करते रहना चाहिए जहां पर इन दोनों लागतों का जोड़ न्यूनतम हो (From the point of view of the society as a whole, the industry should reduce its discharge of pollution to the point where the sum of these two costs is a minimum), इसका कारण यह है कि यदि उद्योग कम मात्रा में अवशिष्ट छोड़ेगा तो उससे प्रदूषण नियन्त्रण की लागत में भी कमी आएगी। अन्य शब्दों में, आर्थिक दृष्टि से प्रदूषण का कुशल स्तर वह होगा जहाँ प्रदूषण छोड़ने की अतिरिक्त इकाई की लागत उसकी अतिरिक्त इकाई की नियन्त्रण लागत के बराबर हो जाए (The cost of extra unit of pollution is just equal to the cost of reducing pollution by an extra unit) अर्थात् प्रदूषण की सीमान्त लागत प्रदूषण नियन्त्रण की सीमान्त लागत के बराबर हो जाए।

जैसा कि ऊपर बतलाया गया है कि प्रदूषण का कुशल या उत्तम स्तर प्रदूषण को शून्य स्तर पर लाना है, परन्तु व्यावहारिक रूप से यह स्थिति लाना संभव नहीं है, बेशक सैद्धान्तिक दृष्टि से यह सही क्यों न हो। आज के युग में समाज को कुछ न कुछ प्रदूषण लागत को सहन तो अवश्य ही करना पड़ता है। परन्तु प्रदूषण को कम करने के लिए सरकार निम्नलिखित प्रत्यन अवश्य कर सकती है:

(i) प्रत्यक्ष नियमन (Direct Regulation): सरकार यह आदेश दे सकती है कि प्रत्येक उद्योग को कानून के अनुसार प्रदूषण की एक न्यूनतम सीमा रखनी होगी। इस सीमा के उल्लंघन करने पर दोषी उद्योग के विरुद्ध कानूनी कार्यवाही की जाएगी और दोषी उद्योग को कानून के अन्तर्गत किसी भी प्रकार से दण्डित भी किया जा सकता है। सरकार वाहनों को पेट्रोल या डीजल के स्थान पर CNG का प्रयोग करने के लिए बाध्य कर सकती है।

(ii) मल-प्रवाह फीस (Effluent Fee): प्रदूषण की मात्रा को कम करने के लिए सरकार मल-प्रवाह की फीस लगा सकती है। यह फीस वह राशि है जिसे प्रदूषणकर्ता (Polluter) को सरकार को अवशिष्ट फेंकने के बदले में अवश्य देनी होगी। मल-प्रवाह फीस लगाने के पीछे विचार यह है कि इससे अवशिष्ट फेंकने की निजी लागत **सही सामाजिक लागत** (True Social Cost) के निकट आ जाएगी। मल-प्रवाह फीस एक तो प्रदूषण कम करने का एक सस्ता मार्ग है, इससे प्रदूषण को प्रत्यक्ष रूप से नियमित (Regulate) किया जा सकता है। दूसरे सरकारी एजेन्सियां जो प्रत्यक्ष रूप से प्रदूषण का नियमन कर रही है, वे कारखानों या घरों में एक मीटर लगा कर प्रदूषण सम्बन्धी उचित सूचना प्राप्त करके, उसके अनुसार उनसे फीस ले सकती हैं।

(iii) हस्तांतरणीय निस्सारण परमिट (Transferable Emission Permits): इस विधि के अनुसार प्रदूषण की मात्रा को दबाने (Curb) के लिए सम्बन्धित पक्षों (Related Parties) को सरकार हस्तांतरणीय निस्सारण परमिट जारी कर सकती है, जिसके अनुसार व्यक्ति या फर्म कुछ सीमा तक प्रदूषण जनित कर सकते हैं। ये परमिट फर्मों में सीमित मात्रा में बाँटे जा सकते हैं ताकि प्रदूषण प्रजनन की कुल मात्रा आर्थिक दृष्टि से कुशल मात्रा के लगभग बराबर हो जाए (These permits, which are limited in total number so that aggregate amount of pollution equals approximately, the economically efficient

amount, are allocated among the firms)। इन परमिटों को खरीदा व बेचा जा सकता है। जिन फर्मों के लिए प्रदूषण घटाना बहुत महंगा है, वे इन परमिटों को खरीदना पसंद करेंगी और जिनके लिए यह सस्ता है, वे इन्हें बेचना पसन्द करेंगी।

■ 9. सरकारी हस्तक्षेप की सीमाएं (Limitations of Government Intervention)

जहाँ तक सार्वजनिक पदार्थ के रूप में पर्यावरण का सम्बन्ध है, इसमें सरकार की भूमिका सदा महत्वपूर्ण होती है। सरकार ही एक ऐसी एजेन्सी है जिसके द्वारा पर्यावरण से सम्बन्धित सार्वजनिक पदार्थों का संरक्षण, रख-रखाव एवं वृद्धि होती है। वन, वृक्ष, पेड़-पौधे, जल, सौर ऊर्जा (Solar Energy), धरती, खनिज पदार्थ, समुद्र, नदियां, जलाशय, जैविक जीवन (Organic Life), आदि सभी सार्वजनिक पदार्थ पर्यावरण से जुड़े हुए हैं; इसके अतिरिक्त देश में सड़क-रेल यातायात, बाढ़ नियन्त्रण, बाँध निर्माण, पुल, परती भूमि, अवशिष्ट सफाई (Pollution Clean-up) आदि वे सार्वजनिक पदार्थ हैं जिनसे समाज को लाभ प्राप्त होता है। इसलिए प्रत्येक देश में सरकार की यह जिम्मेवारी है कि सार्वजनिक हित को ध्यान में रखते हुए वह ऐसी उचित नीति अपनाए व उस नीति द्वारा इस प्रकार से हस्तक्षेप करे कि जिसके फलस्वरूप सामाजिक कल्याण में वृद्धि हो। प्रत्येक सरकार का अपनी ओर से वैसे तो सदा यह प्रयास रहता है कि देश के उत्थान के लिए उचित रणनीति अपनाए और अपनी नीतियों को प्रभावपूर्ण ढंग से लागू करे। परन्तु कई निम्नलिखित सीमाओं के कारण सरकार की नीतियां अप्रभावी रह जाती हैं और उनके वांछित परिणाम भी प्राप्त नहीं हो पाते।

(1) राजनैतिक दबाव (Political Pressure): प्रजातान्त्रित ढाँचे में जनता के कई प्रतिनिधि चुनाव जीत कर आते हैं। प्रतिनिधियों का यह समूह (Group of People's Representatives) बेशक जनता का एक छोटा अनुपात होता है, परन्तु ये सामान्य जनता के हित को एक किनारे रखकर उन्ही नीति उपायों (Policy Measures) को अपनाने पर बल देते हैं जिनसे उनके निजी लाभ व स्वार्थ हित में वृद्धि हो। भारत में राजनैतिक नेताओं से जुड़े ऐसे अनेक उदाहरण हम प्रतिदिन देखते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि सार्वजनिक पदार्थ जो जनता को आसानी से उपलब्ध हो सकते हैं, वे या तो उपलब्ध नहीं हो पाते या बहुत ही अपर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो पाते हैं। इसका ज्वलन्त उदाहरण है दिल्ली में जल व बिजली का संकट। इस संकट की वजह से आम जनता को कितनी तकलीफ, असुविधा एवं क्षति पहुँच रही है, ये राजनीतिज्ञ अपने राजसी ठाठ के मद में इसको बिल्कुल भी महसूस नहीं कर पाते हैं।

(2) अधिकारी-तन्त्र (Bureaucracy): पर्यावरण से सम्बन्धित कई विभाग जैसे वन विभाग, बिजली विभाग, सफाई विभाग, यातायात विभाग आदि के संचालक तथा उच्चतर अधिकारी अपने उत्तरदायित्व का पूरी तरह से पालन नहीं करते। वे अपनी जिम्मेदारी को एक दूसरे पर टालने का प्रयत्न करते हैं। कई सार्वजनिक क्षेत्रों में लाल फीताशाही (Red Tapism) बहुत अधिक है। इसके फलस्वरूप नीति निर्णय लेने व उनको लागू करने में बहुत अधिक समय लग जाता है। इसके अतिरिक्त कई अधिकारी वर्ग इस बात में रुचि अधिक रखते हैं कि किन क्रियाओं से उनकी प्रदोन्नति (Promotion) हो सकती है। उनके इस स्वार्थी व्यवहार के परिणामस्वरूप, उनके विभाग से जनता को जो लाभ पहुँचना होता है वह या तो पहुँच नहीं पाता या बहुत देरी से पहुँच पाता है। उदाहरण के लिए वनों की अंधाधुंध कटाई, बढ़ते वाहनों से अत्यधिक शोर प्रदूषण, कारखानों द्वारा फेंके गए अवशिष्ट से बढ़ता जल प्रदूषण और इनकी चिमनियों से छोड़े जाने वाले रासायनिक धुएं के फलस्वरूप होने वाला वायु प्रदूषण, पर्यटन स्थलों पर गन्दगी आदि अधिकारी-तन्त्र की अकुशलता का ही परिणाम है।

(3) जनता के सहयोग का अभाव (Lack of Public Cooperation): जनता के सहयोग के अभाव के कारण भी पर्यावरण से सम्बन्धित सार्वजनिक पदार्थों का अपव्यय होता है। उदाहरण के लिए, लोग जल का अपव्यय करते हैं, घर के कूड़ा-करकट को सड़क पर फेंक देते हैं, जगह-जगह पाखाना, पेशाब करते हैं, थूकते हैं, पर्यटक स्थलों पर बचा-खुचा खाना व अन्य सामान फेंकते हैं, वन की लकड़ी काट कर उसे ईंधन के रूप में प्रयोग करते हैं, सड़क पर पड़े कूड़ादान सफाई के अभाव के कारण चारों ओर गंध फैलाते हैं आदि। आम जनता द्वारा की जाने वाले ये सभी क्रियाएं पर्यावरण को दूषित करती हैं, इसके फलस्वरूप सरकार द्वारा किए जाने वाले सभी प्रयास अभावी रहते हैं।

(4) अच्छे प्रबन्ध का अभाव (Lack of Good Management): पर्यावरण स्वच्छता से सम्बन्धित सरकार द्वारा जो भी कार्यक्रम चलाए जाते हैं, वे अच्छे प्रबन्ध के अभाव के कारण ठीक समय अवधि के अन्दर पूरे नहीं हो पाते, यदि ये पूरे हो भी जाते हैं तब इनकी पूरी देखभाल एवं रख-रखाव नहीं होता। आपने देखा होगा कि कई सार्वजनिक उद्यमों के संचालक के रूप में या तो अवकाश प्राप्त

अधिकारियों को नियुक्त किया जाता है या उन राजनीतिज्ञों की नियुक्ति की जाती है जो चुनाव हार चुके हैं। ये अधिकारी अपने कर्त्तव्य के प्रति निष्ठावान नहीं रहते, इसके फलस्वरूप सामाजिक कल्याण के लिए सरकार ने जो कार्यक्रम अपनाया हुआ है, लोग उससे मिलने वाले लाभ से वंचित रह जाते हैं।

(5) कोषों का अभाव (Shortage of Funds): पर्यावरण से सम्बन्धित कई कार्यक्रम ऐसे हैं जहाँ अधिक धन की आवश्यकता होती है जैसे वाहनों के अधिक हो जाने के कारण अधिक भीड़-भाड़, ट्रैफिक जाम, वाहनों का शोर, वायु को प्रदूषित करने वाला वाहनों का धुआं आदि के लिए चार, या आठ लेन वाली सड़कों, पुलों तथा फ्लाईओवरों की आवश्यकता होती है। परन्तु इसकी निर्माण योजना को कई बार इसलिए स्थगित कर दिया जाता है क्योंकि इन पर भारी खर्च करने के लिए सरकार के पास धन का अभाव होता है। इसका परिणाम यह होता है कि सामान्य जनता को पर्यावरण हनन (Environmental Degradation) की हानि को सहन करना पड़ता है।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि पर्यावरण से सम्बन्धित सार्वजनिक पदार्थों के उत्पादन, रख-रखाव (Maintenance) तथा उचित कार्यकरण में सरकार के मार्ग में कई बाधाएं आती हैं। कई स्थानों पर सरकार की अपनी शिथिलता भी इसकी जिम्मेवार है और कई जगह सरकार को राजनैतिक दलों एवं आम जनता से भी पूरा सहयोग नहीं मिल पाया है। जहाँ तक भविष्य का प्रश्न है, पर्यावरण से सम्बन्धित सभी सार्वजनिक पदार्थों की भावी पीढ़ी के लिए आवश्यकता निरन्तर बनी रहेगी। इसलिए सरकार को यह सोचना होगा और प्रयास करना होगा कि वर्तमान में उपलब्ध इन सभी पदार्थों एवं साधनों का अपव्यय न हो बल्कि इनका चयनात्मक (Selective) प्रयोग हो, तब ही भावी पीढ़ी का जीवन सुखद होगा।

प्रश्न (QUESTIONS)

■ I. वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

सभी प्रश्न अनिवार्य हैं (Attempt all the questions)

1. एक सार्वजनिक पदार्थ वह कोई भी वस्तु है जिससे लाभ होता है (सबको, किसी को भी नहीं)
2. सार्वजनिक पदार्थ हैं (अविभाज्य, विभाज्य) (K.U. 2006, M.D.U. 2007)
3. एक वह सामूहिक पदार्थ जिसकी मात्रा एक अथवा कुछ व्यक्तियों के उपयोग द्वारा घटती नहीं है, उसे कहते हैं (सार्वजनिक पदार्थ, निजी पदार्थ)
4. कोई सार्वजनिक पदार्थ जैसे ही उपलब्ध होता है, अन्य व्यक्ति द्वारा इसके उपभोग की सीमान्त लागत होती है (शून्य, ऋणात्मक)
5. जब लोगों को किसी वस्तु के उपभोग से अलग नहीं किया जा सकता तब उस वस्तु को कहते हैं (गैर-एकाकी पदार्थ, एकाकी पदार्थ)
6. अधिक जनसंख्या वाली समाज के लोगों के लिए सार्वजनिक पदार्थों की कुशल मात्रा उपलब्ध कराने की जिम्मेवारी होती है (सरकार की, फर्म की)
7. आधुनिक आर्थिक ढांचे में शून्य प्रदूषण लाना (संभव है, संभव नहीं है)
8. किसी सार्वजनिक परियोजना को शुरू करने के लिए कौन-सा विश्लेषण पथ-प्रदर्शन करता है (लाभ-लागत विश्लेषण, केवल लाभ विश्लेषण)
9. सरकारी नीतियां किस कारण से अप्रभावित होती हैं (राजनैतिक दबाव, नैतिक दबाव)
10. गैर-एकाकी का अर्थ है लोगों को वस्तु के उपभोग से किया जा सकता है (अलग, अलग नहीं)

11. गैर-प्रतिस्पर्धी का अर्थ है कि किसी वस्तु का एक व्यक्ति द्वारा अधिक उपयोग करने से दूसरे व्यक्ति के उपभोग में कमी (होती है, नहीं होती है)
12. पर्यावरण पदार्थ हैं – (प्रतिस्पर्धीय, गैर-प्रतिस्पर्धीय)
13. सार्वजनिक पदार्थ हैं (एकाकी, गैर-एकाकी) (K.U. 2008)
14. _______ पदार्थ गैर-प्रतिस्पर्धीय तथा गैर-एकाकी है। (निजी, सार्वजनिक) (K.U. 2009)

उत्तर (Answers): (1) सबको, (2) अविभाज्य, (3) सार्वजनिक पदार्थ, (4) शून्य, (5) गैर-एकाकी पदार्थ, (6) सरकार, (7) संभव नहीं है, (8) लाभ-लागत विश्लेषण, (9) राजनैतिक दबाव, (10) अलग नहीं, (11) नहीं होती है, (12) गैर-प्रतिस्पर्धीय, (13) गैर-एकाकी, (14) सार्वजनिक।

■ II. लघु/परिभाषा रूपी प्रश्न (Short/Definitional Type Questions)

1. सार्वजनिक पदार्थ की परिभाषा दें।
2. पर्यावरण प्रकट करने वाले सार्वजनिक पदार्थों के नाम बतलाएं।
3. प्रदूषण कम करने के लिए सरकार क्या कर सकती है?
4. लाभ-लागत कहाँ तक न्यायोचित है?
5. वास्तविक तथा आर्थिक लाभ और लागतों में अन्तर बतलाएं।
6. सरकारी नीतियों के अप्रभावी होने के संक्षेप में कारण बतलाएं।
7. गैर-स्पर्धीय से क्या अभिप्राय है?
8. गैर-एकाकी से क्या अभिप्राय है?
9. मल-प्रवाह फीस (Effluent Fee) क्या है?
10. सार्वजनिक घटिया पदार्थ (Public Bad) का क्या अर्थ है?

■ III. निबन्ध रूपी प्रश्न (Essay Type Questions)

1. What do you mean by public good? Tell the types of public goods related to environment.
   सार्वजनिक पदार्थ से क्या अभिप्राय है? पर्यावरण से सम्बन्धित सार्वजनिक पदार्थों के प्रकार बताइए।
2. How will you relate the provision of public goods with externalities?
   सार्वजनिक पदार्थों के प्रावधान को आप किस प्रकार बाहरी प्रभावों से सम्बन्धित करेंगे?
3. What do you mean by public goods? Discuss the causes related to the ineffectiveness of the government policies related to environment as a public good.
   सार्वजनिक पदार्थ से क्या अभिप्राय है? सार्वजनिक पदार्थ के रूप में पर्यावरण से सम्बन्धित सरकारी नीतियों के अप्रभावी होने के कारणों की व्याख्या करें। (K.U. 2006)
4. What is meant by public good? How do you regard environment as a public good?
   सार्वजनिक वस्तु से आप क्या समझते हैं? आप वातावरण को एक सार्वजनिक वस्तु कैसे मानते हैं? (M.D.U. 2008)
5. What steps the government can take in reducing the wastage and thus the pollution of public goods? What are the limitation of the government in this connection?
   सार्वजनिक पदार्थों के अपव्यय और इस प्रकार प्रदूषण को कम करने के लिए सरकार क्या कदम उठा सकती है? इस संदर्भ में सरकार की क्या सीमाएं हैं?

13

प्रदूषण : निवारण तथा नियन्त्रण

(POLLUTION : PREVENTION AND CONTROL)

■ 1. भूमिका (Introduction)

कुछ लोगों का यह विश्वास है कि आर्थिक शक्तियां (Economic Forces) ही पर्यावरण निम्नीकरण या प्रदूषण का मूल कारण है। उनके इस कथन में कुछ सत्यता है। विकासकर्ता (Developers) ही बंजर जमीन (Waste-lands) को रूपांतरित एवं विरूपित (Convert and Deface) करते हैं; इमारती लकड़ी वाली कम्पनियां ही वनों को नंगा करती हैं (Denude); मछेरे झीलों और समुद्रों में से अत्यधिक मछली पकड़ते हैं: उद्योग तथा वाहन जल तथा वायु को प्रदूषित करते हैं। इस प्रकार यह कहानी निरन्तर चलती रहती है।

■ प्रदूषण का अर्थ (Meaning of Pollution)

प्रदूषण से अभिप्राय उद्योगों, कृषि, गृहस्थों, वाहनों एवं अन्य व्यक्तियों द्वारा की जाने वाली उन क्रियाओं से है जिनके द्वारा वायु, जल एवं वातावरण दूषित होता है। उदाहरण के लिए, औद्योगिक इकाइयां अपनी चिमनियों के धुएं से वायु को और अपने रासायनिक अवशिष्ट द्वारा जल को, कृषि क्रियाएं वनों को काटकर तथा रासायनिक खाद एवं उर्वरकों के प्रयोग द्वारा, गृहस्थ अपने चूल्हे के धुएं एवं घर की गन्दगी द्वारा, वाहन अपने शोर व धुएं द्वारा व अन्य व्यक्ति अपनी अनेक क्रियाओं द्वारा वायु, जल एवं वातावरण को प्रदूषित करते हैं। इन सभी क्रियाओं के फलस्वरूप पर्यावरण प्रदूषण एवं पर्यावरण का निम्नीकरण होता है।

बी. आर शिल्लर के अनुसार, ''**प्रदूषण एक बाहरी प्रभाव है, यह बाजारी क्रिया की एक वह लागत है जिसे एकदम या तुरन्त उत्पादक या उपभोक्ता के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति (तीसरे पक्ष) पर डाल दी जाती है।**'' (Pollution is an externality, a cost of a market activity imposed on some one (a third party) other than the immediate producer or consumer – **B.R. Schiller**)

सम्पूर्ण विश्व में यह आम राय (Consensus) बन चुकी है कि पर्यावरण प्रदूषण एवं निम्नीकरण (Degradation) की समस्याएं अब गंभीर रूप धारण कर चुकी हैं। संसार में सभी इस बात से चिन्तित हैं कि जिस दर से पर्यावरणीय तथा जीवन-भरण-पोषण संबंधी सुविधाएं (Sustaining Facilities) निम्नीकृत हो रही हैं, हो सकता है आने वाले कुछ दशकों या शताब्दियों में हमारे लिए बहुत थोड़ा या नगण्य (Paltry) ही बच पाए और अन्तत: इस धरती पर जीवन ही समाप्त हो जाए। इसलिए सामान्य सहमति यह बन रही है कि इस क्रम को आगे न बढ़ने दिया जाए और इसको रोकने के लिए कुछ उपाय अवश्य ढूंढे जाएं और ऐसी रणनीति बनाई जाए कि जिससे इस समस्या से पूर्ण रूप से छुटकारा मिल सके।

इस अध्याय में पर्यावरण से संबंधित प्रदूषण की समस्या, प्रदूषण के प्रकार तथा प्रदूषण के निवारण एवं नियंत्रण आदि विषयों का विवेचन किया जाएगा।

■ 2. प्रदूषण के प्रकार (Types of Pollution)

इससे पहले कि प्रदूषण एवं पर्यावरण निम्नीकरण की समस्या के निदान के लिए सुझाव अथवा प्रबन्ध रणनीति (Management Strategy) सोची जाए, हमारे लिए यह जान लेना आवश्यक है कि इस समस्या की प्रकृति तथा क्षेत्र (Scope) क्या है। इसलिए पर्यावरण प्रदूषण अथवा निम्नीकरण की समस्या को कई भागों में बांटा जा सकता है। पर्यावरण के मुख्य प्रकार अग्रलिखित हैं:

(1) वायुमण्डल में प्रदूषण (Air Pollution), (2) जल प्रदूषण (Water Pollution), (3) ठोस-कूड़ा-करकट की समस्या (The Problem of Solid Waste), (4) वन-विनाश (Deforestation), (5) शोर प्रदूषण (Noise Pollution), (6) प्रतिक्रियक अवशिष्ट का परित्याग तथा विकिरण के खतरे (Disposal of Reactive Waste and Dangers of Radiation), (7) ऋतु परिवर्तन (Climate Change), (8) अम्लीय वर्षा (Acid Rain), (9) ओजोन लेयर का ह्रास (Depletion of Ozone Layer), (10) मरुस्थलीकरण (Desertification), (11) जैव विविधता की गिरावट (Decline of Biodiversity)।

■ (1) वायुमण्डल में प्रदूषण (Air Pollution)

वायु मनुष्य और जीव-जन्तुओं के लिए प्रकृति की ओर से एक नि:शुल्क उपहार है। इसकी गुणवत्ता मानवीय स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है, यदि इसकी गुणवत्ता घट जाती है तो इसका मानवीय स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। यदि हवा प्रदूषित हो जाती है तो इससे सांस की बीमारी (Respiratory Disease) हो सकती है, शरीर के किसी अंग का भौतिक नुकसान (Physical Damage) हो सकता है, आँख की रोशनी समाप्त (Loss of Vision) हो सकती है और कभी-कभी इसके कारण मृत्यु भी हो सकती है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन (World Health Organisation) के अनुसार "**वायु प्रदूषण तब होता है जब मानवीय कार्यों के कारण हवा में कुछ हानिकारक तत्वों का समावेश होने लगता है।**" (Air pollution is the incorporation of harmful substances into the air by the activities of mankind – **WHO**)।

वायु में जब हानिकारक तत्वों की मात्रा अधिक हो जाती है तो ये मनुष्य के स्वास्थ्य पर, कृषि पर, प्राकृतिक संसाधनों पर और सम्पत्ति पर अपना हानिकारक प्रभाव दिखाना शुरू कर देते हैं। उदाहरण के लिए, वायु प्रदूषण के कारण अम्लीय वर्षा (Acid Rain) हो सकती है, जो मनुष्य व उसकी सम्पत्ति तथा फसलों के लिए हानिकारक सिद्ध हो सकती है। इसी भाँति वायु में यदि सीसा (Lead) की मात्रा बढ़ जाए तो इससे मनुष्य की बुद्धि मन्द पड़ सकती है।

हम सब जानते हैं कि वायु की गुणवत्ता में गिरावट का मुख्य कारण आधुनिक युग में होने वाली **विकासात्मक प्रक्रियाएं** (Developmental Processes) हैं। वायु प्रदूषण का मुख्य स्रोत संभवत: **औद्योगिक निस्सारण** (Industrial Emission) है। उद्योगों के कारण सल्फर-डाइआक्साइड (Sulphur Dioxide), हाइड्रोजन सल्फाइड (Hydrogen Sulphide), अमोनिया (Ammonia), नाइट्रोजन के आक्साइडस (Oxides of Nitrogen), ओजोन (Ozone), सीसा (Lead) आदि और भी कई प्रकार के जहरीले पदार्थ (Toxic Pollution) वायु में मिलते चले जाते हैं। इसके अतिरिक्त वायु प्रदूषण तब होता है जब हवा में **सस्पेंडेड पार्टीकूलेट मैटर** (Suspended Particulate Matter - SPM) तथा गन्दी व जहरीली गैस आ जाती है। धुआं, राख (Ash) और धूल SPM के मुख्य घटक हैं। रसायन, चमड़ा, कागज व चीनी उद्योग सबसे अधिक गन्दी दुर्गन्ध (Noxious Smells) फैलाते हैं। कपड़ा उद्योग के कारण श्रमिकों में सांस की बीमारी (Asthama) और सीमेण्ट उद्योग के कारण तपेदिक (Tuberculosis) की बीमारी फैलने की संभावना बनी रहती है। इसके अतिरिक्त कई **औद्योगिक दुर्घटनाएं** (Industrial Accidents) वायु प्रदूषण के लिए जिम्मेवार हैं। Union Carbide Bhopal की दुर्घटना अब भी रोंगटे खड़े कर देती है, इसमें लगभग 4000 व्यक्ति मर गए व कई हजार अन्धे व लंगड़े-लूले (Maimed) हो गए।

वायु प्रदूषण का एक अन्य कारण निरन्तर बढ़ते **मोटर वाहन** हैं, ये वाहन भी स्वास्थ्य के लिए एक खतरा बनते जा रहे हैं। इन वाहनों से निकली कार्बन काफी मात्रा में हानिकारक सिद्ध हो सकती है। कार्बन डाइआक्साइड के बढ़ने से पर्यावरण में गर्मी बढ़ने (Global Warming) का खतरा बढ़ता जा रहा है। मोटरवाहनों से निकली कार्बन के कारण श्वास से सम्बन्धित कई बीमारियां जैसे अस्थमा व एलर्जी बढ़ती जा रही हैं।

ग्रामीण क्षेत्र (Rural Areas) भी वायु प्रदूषण से अछूते नहीं रहे हैं। गांवों में लोग चूल्हे में लकड़ी या उपलों (Cow-dung) का प्रयोग करते हैं, जिससे काफी धुआं फैलता है और ग्रामीण स्त्रियों के लिए विशेषकर अस्वास्थ्य कर सिद्ध होता है। चूल्हे से निकले धुएं से अक्सर श्वास सम्बन्धित बीमारियाँ ((Respitary Infections) हो जाती हैं, फेफड़ों से संबंधित बीमारियां (Chronic Lung Diseases) आम पाई जाती हैं, स्त्रियों के मृत बच्चे पैदा होते हैं या नवजात शिशुओं का कम वजन होता है। नवजात शिशुओं को यदि धुएं से न बचाया जाए तो उन्हें निमोनिया, श्वास की बीमारी आदि हो सकती है।

शहरी क्षेत्रों (Urban Areas) में वायु प्रदूषण फैलने का कारण है अधिक औद्योगिक विकास, तेजी से बढ़ते मोटर वाहनों की संख्या, वाहनों में गन्दे अथवा सीसारहित पेट्रोल का प्रयोग, मच्छरों को मारने वाले कोयल्स (Coils) का प्रयोग, कीटनाशक दवाइयों का अंधाधुंध प्रयोग आदि। भारत में बड़े-बड़े शहर जैसे दिल्ली, मुम्बई, कोलकाता, बंगलौर, अहमदाबाद आदि मोटर वाहनों की संख्या अधिक होने के कारण भी प्रदूषित होते जा रहे हैं।

■ (2) जल प्रदूषण (Water Pollution)

पृथ्वी का 70 प्रतिशत भाग जल द्वारा घिरा हुआ है, समुद्र व महासागर में पाया जाने वाला जल खारा (Saline) है, इसलिए इसका इस्तेमाल पीने, कृषि व औद्योगिक उद्देश्यों के लिए ठीक नहीं है। शुद्ध जल के स्रोत मुख्यत: झील, पोखर (Pond), जलाशय, नदियां, चश्में (Streams) आदि हैं। जल प्रकृति द्वारा उपलब्ध कराया गया एक ईश्वरीय (Divine) अथवा अति उत्तम पेय पदार्थ है जो जीवित रहने के लिए अत्यन्त आवश्यक है। जल के संदूषित (Contaminate) होने से जीवन समाप्त हो सकता है। पर्यावरण की स्वच्छता भी जल की शुद्धता पर निर्भर करती है। जल संदूषण के कारण ही संसार में अत्यधिक मृत्यु होती है। अतएव किसी भी क्षेत्र में जीवन की गुणवत्ता का सही माप वहाँ उपलब्ध होने वाले सुरक्षित जल (Safe Water) की उपलब्धता है। भारत में शहरी क्षेत्रों में केवल 72 प्रतिशत लोगों को शुद्ध पेय जल उपलब्ध है, परन्तु ग्रामीण क्षेत्रों में यह प्रतिशत बहुत ही कम है।

भारत में जल के उपलब्ध जितने भी स्रोत हैं, उन सबका जल तब तक पीने योग्य नहीं होता जब तक कि उसे साफ करके पीने योग्य नहीं बनाया जाता। पानी की अस्वच्छता के कारण ही पेट की सभी बीमारियाँ जैसे **डायरिया** (Diarrhea), **हैपटाइटस** (Heptitus), पेट में कीड़े आदि पैदा होती हैं। **विश्व स्वास्थ्य संगठन** (WHO) के अनुसार **भारत में सभी बीमारियों में से 11 प्रतिशत बीमारियों का कारण संदूषित जल है और सभी संक्रामक बीमारियों (Communicable Diseases) का भी मुख्य स्रोत संदूषित जल है।**

सुरक्षित व स्वच्छ जल के अभाव के कारण ही आँत-संबंधी बीमारियाँ (Intestinal Diseases) बढ़ती हैं और नवजात शिशुओं की मृत्यु दर (Infant Mortality) का कारण बन जाती हैं। कई बार जल संदूषण, खाद्य पदार्थ संदूषण (Food Contamination) या निम्न सफाई दशाओं (Poor Sanitation Condition) के कारण संदूषण या अस्वच्छता में भेद करना मुश्किल हो जाता है। इसीलिए यह जान पाना कठिन हो जाता है कि इन तीनों में से बीमारियाँ फैलाने वाला मुख्य घटक कौन-सा है। परन्तु ऐसा कहा जाता है कि पेयजल की गुणवत्ता को यदि बढ़ा लिया जाए और इसे स्वच्छ रूप में उपलब्ध कराया जाए तब इससे विश्व की 25 प्रतिशत बीमारियाँ घटाई जा सकती हैं।

- **जल संदूषण के मुख्य स्रोत** (Main Sources of Water Contamination)

जल संदूषण के मुख्य स्रोत निम्नलिखित हैं:

(i) शहरी क्षेत्रों के लोगों द्वारा अपने अपशिष्ट (Waste) को नदियों में फेंकना, खुले में कूड़े के ढेर लगाना या उनको ऐसे गड्ढों में डालना जिनसे कि धरती के ऊपर वाला जल (Surface Water) तथा भूमिगत जल (Ground Water) संदूषित हो जाता है।

(ii) जल संदूषण का अन्य व मुख्य स्रोत बीमारी वाला मानवीय मलमूत्र (Disease Bearing Human Waste) है।

(iii) नदियों व झीलों के पानी में औद्योगिक एवं कृषि अपशिष्ट खुलेआम मिलाया जाता है। यह अपशिष्ट मिश्रित जल अपने साथ कई प्रदूषण तत्व (Pollutants) ले जाता है। यही कारण है कि कई जहरीले रसायन (Toxic Chemicals) जल में मिलते रहते हैं। कई बार तो मछलियों में भी इन्हीं के कारण बीमारियाँ हो जाती हैं और ऐसी मछलियों का भोजन के रूप में उपभोग खतरनाक सिद्ध हो सकता है। औद्योगिक अपशिष्ट के रूप में जल में पाए जाने वाले कई धातु पदार्थ जैसा पारा, (Mercury), क्रोमियम, सीसा (Lead) आदि के कारण सम्पूर्ण जलमण्डलीय जीवन (Marine Life) को काफी खतरा बना रहता है।

(iv) वाहित मल (Sewage) फेंकने की अपर्याप्त सुविधाओं के कारण, यह जल में मिलकर जल को संदूषित कर देता है। इसके परिणामस्वरूप हैजा, दस्त व पेट की अनेक बीमारियाँ फैलती हैं। एक अनुमान के अनुसार भारत में 80 प्रतिशत ग्रामीण बच्चे कई प्रकार की संक्रामक बीमारियों (Helminthic Diseases) से पीड़ित हो जाते हैं। ये बीमारियाँ सामान्यतया मानवीय मलमूत्र (Nightsoil) के पीने के जल में मिल जाने से पैदा होती हैं।

■ (3) ठोस कूड़ा-करकट की समस्या (Problem of Solid Waste)

पर्यावरण प्रदूषण समस्या का एक अन्य स्रोत **ठोस कूड़ा-करकट** है। जनसंख्या वृद्धि व औद्योगिक उत्पादन की वृद्धि के साथ-साथ ठोस कूड़ा-करकट की मात्रा भी कई गुणा बढ़ती जा रही है। सामान्यतया यह विश्वास किया जाता है कि अपशिष्ट प्रजनन (Waste Generation) और देश के धन (Wealth of a Nation) के बीच एक धनात्मक संबंध (Positive Correlation) है, अर्थात् अमीर देश गरीब देशों की तुलना में अधिक कूड़ा-करकट प्रजनित (Generate) करने की क्षमता रखता है। जैसे-जैसे कोई देश धनी होता जाता है, उसकी ठोस कूड़ा-करकट पैदा करने की क्षमता भी बढ़ती जाती है और उसकी कूड़ा-करकट की रचना में भी भिन्नता आती जाती है। उदाहरण के लिए जैसे-जैसे समाज का जीवन स्तर बढ़ता है वैसे-वैसे कूड़ा-करकट में फूल-पेड़-पत्तों या वनस्पति जैसे जीव-कृत निम्नीकरण पदार्थ (Bio-degradable Organic Material) की जगह प्लास्टिक की केनियां, बोतलें व बैग, कागज के लिफाफे, पुराने टायर, सड़ी सब्जी, पुराने जूते व चप्पलें, अण्डों के छिलके आदि अधिक मात्रा में आने लगते हैं। यदि ऐसे कूड़ा-करकट को कुशलता से फेंका नहीं जाता, तो इससे मक्खियाँ, मच्छर, चूहे (Rodents) आदि उसकी ओर खिचते हैं, ये फिर अपने साथ कई बीमारियाँ ले जा कर फैलाते हैं। संबंधित क्षेत्र की भूमि, मिट्टी तथा जल संसाधन को निम्नीकृत (Degrade) करते हैं। सूरत में फैले प्लेग की याद अभी हमारे दिमाग में ताजा है कि किस प्रकार शहर में फैली जगह-जगह गंदगी प्लेग जैसी खतरनाक बीमारियों को जन्म दे सकती हैं।

- **कूड़ा उठाने वाले** (Rag Pickers)

कुछ लोगों के विचार के अनुसार शहरों और कस्बों में इधर-उधर फैले कूड़े के ढेरों को छांट-छांट कर उठाने वाले लोग (Rag Pickers) समाज की बिना लागत (Cost Free) के सेवा कर रहे हैं। कूड़ा उठाने वाले ये लोग अपने लिए स्वरोजगार पैदा करते हैं क्योंकि कूड़े में से छंटा प्लास्टिक, काँच या कोई अन्य सामान बेचकर वे कुछ आय अर्जित कर लेते हैं। इसलिए ये लोग औद्योगिक रूपान्तरण में सहायक सिद्ध होते हैं और ऐसे लोगों को पर्यावरण का मित्र (Environment Friendly) मानना चाहिए। आपने ऐसा देखा होगा कि भारत में जगह-जगह पर पुन: चक्रण और गैर-चक्रण वाला (Recyclable and Non-Recyclable) कूड़ा एक साथ फेंक दिया जाता है। कूड़ा उठाने वाले (Rag Pickers) ये लोग, उस कूड़े से पुन: चक्रण (Recyclable) वाली वस्तुओं को अलग करने में, एक महत्वपूर्ण कार्य करते हैं। भारत में कूड़ा उठाने वाली प्रणाली अधिक कुशल नहीं है, कूड़े का ढेर कई दिनों तक एक ही स्थान पर पड़ा रहता है, इससे आस-पास के क्षेत्र में बदबू व कई प्रकार की बीमारियाँ फैलती हैं। ये कूड़ा उठाने वाले लोग स्वयं ही कूड़े में से पुन: चक्रण वाली वस्तुएं छांट-छांट कर अलग करते हैं, परन्तु स्वयं बीमारी के शिकार हो जाते हैं क्योंकि ये लोग नंगे हाथों, बिना मुँह ढके और नंगे पैरों से इस कूड़े में घुस कर कूड़ा उठाने का कार्य करते हैं। उनकी आर्थिक हालत भी ऐसी नहीं है कि वे दस्तानें व जूते खरीद कर पहन सकें। इसका परिणाम यह होता है कि इनको कई प्रकार की बीमारियाँ लग जाती हैं, जो इनसे इनके परिवारों तक पहुँचती हैं।

इस संदर्भ में यहाँ यह कह देना भी आवश्यक है कि सभी प्रकार के ठोस कूड़ा-करकट में से अस्पतालों द्वारा फेंका जाने वाला कूड़ा सबसे अधिक खतरनाक होता है। क्योंकि इसमें बीमारी फैलाने वाले अनेक कीटाणु होते हैं। इसलिए अस्पताल वाले कूड़े को किसी भी हालत में आम/औद्योगिक कूड़े के साथ मिश्रित नहीं होने देना चाहिए, बल्कि इसे अलग से इकट्ठा करके रासायनिक तरीकों द्वारा नष्ट कर देना चाहिए।

■ (4) वन-विनाश (Deforestation)

वन भारत के प्रमुख प्राकृतिक साधन हैं। लगभग भूमि का 1/5 भाग वनों के अन्दर है। इन वनों में अनेक प्रकार की लकड़ी, जड़ी-बूटियां, पशु-पक्षी, कीड़े, सर्प आदि पाए जाते हैं। परन्तु पिछले कई वर्षों से वन-विनाश बहुत अधिक हो रहा है। **वन-विनाश या वनोन्मूलन से अभिप्राय वनों की क्षति से है।** यह कोई आज से प्रारम्भ नहीं हुआ है बल्कि सदियों से चलता आ रहा है। परन्तु आज यह इस सीमा तक पहुँच चुका है कि जहाँ कई वन जनजातियों (Species) का समाप्त होना काफी आसान हो गया है। यह वन-विनाश यदि ऐसी ही तीव्र गति से चलता रहा तो वह दिन दूर नहीं कि मनुष्य का स्वयं विलोपन (Extinction of Mankind) हो जाए। कहते हैं कि एक बार यदि वनों का निम्नीकरण या वन विनाश शुरू हो जाए तो इस प्रक्रिया को रोकना (Reversal of Process) बहुत ही कठिन है और हो सकता है कि आने वाले समय में वन-सम्पदा समाप्त ही हो जाए। दुर्भाग्यवश कई देश इस अवस्था तक पहुँच चुके हैं।

कारण (Causes): वन-विनाश के प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं: (i) विश्व की बढ़ती जनसंख्या के कारण आवास स्थानों के लिए अधिक भूमि की आवश्यकता, (ii) कृषि भूमि की बढ़ती आवश्यकता के लिए वनों को काटना, (iii) स्थानान्तरण-कृषि (Shifting Cultivation) की प्रक्रिया (Process) का जारी रहना, (iv) गरीबी के कारण कीमती लकड़ी को भी चूल्हे-चौके के लिए काट देना, (v) विकास सम्बन्धी संरचना जैसे सड़कों, रेलों, बिजली के खंभों, हवाई अड्डों आदि का जाल बिछाना, (vi) बहु-उद्देश्यी बांधों का निर्माण, (vii) बढ़ती हुई आवास (Housing) भूमि की आवश्यकता तथा उद्योगों के लिए भूमि की आवश्यकता जिससे लकड़ी (Timber), पल्प की खपत बढ़ना, (viii) वनों में लगी आग के कारण वनक्षति होना, (ix) अम्लीय वर्षा (Acid Rain) का होना जिससे वृक्षों की मृत्यु भी हो जाती है और (x) गलत प्रबन्धकीय फैसले (Administrative Decisions) लेना, इनके अतिरिक्त और भी अनेक कारण हैं जिन्हें यहाँ गिनाना संभव नहीं है।

वन विनाश के परिणाम (Consequences of Deforestation): वन-विनाश के कई गंभीर परिणाम निम्नलिखित हैं:

(i) विस्तृत भूमि कटाव (Soil Erosion), (ii) बाढ़ों का बार-बार आना, (iii) कुछ वन जातियों (Species) का विलोपन, (iv) जलवायु में महत्वपूर्ण बदलाव, (v) क्षेत्रीय जलवैज्ञानिक स्थिति (Hydrology of the Area) में बदलाव, जैसे कि जल-प्रवाह में पाशु की मात्रा (Siltation) का बढ़ जाना तथा जल प्रवाह की मात्रा में बदलाव, (vi) क्षेत्र का आर्थिक स्वास्थ्य (Economic Health) पर प्रभाव, (vii) मानव स्वास्थ्य (Human Health) पर कुप्रभाव, और (viii) क्षेत्रीय प्राकृतिक सुन्दरता में कमी (Aesthetic Loss)।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि वन-विनाश का भी पर्यावरण पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

■ (5) शोर प्रदूषण (Noise Pollution)

शोर प्रदूषण पर्यावरण संकट का एक अन्य गंभीर रूप है, औद्योगिकीकरण के बढ़ने के फलस्वरूप इसके भविष्य में और अधिक गंभीर बनने की संभावना है। शोर प्रदूषण की समस्या तो तब ही शुरू हो गई थी जब विश्व में औद्योगिक युग (Industrial Age) शुरू हुआ था, परन्तु इसके गंभीर परिणाम अब अधिक स्पष्ट होने लगे हैं। अब प्रश्न यह है कि शोर से क्या अभिप्राय है? और ध्वनि (Sound) तथा शोर (Noise) में क्या अन्तर है। किस स्तर पर पहुँच कर ध्वनि शोर का रूप ले लेती है और स्वास्थ्य के लिए हानिकारक बन जाती है-और इसे शोर प्रदूषण कहा जाने लगता है तथा शोर प्रदूषण को कैसे कम (Curb) किया जा सकता है?

(a) ध्वनि (Sound): **ध्वनि को एक विशेष प्रकार की दबाव तरंग (Pressure Wave) कहते हैं जिसका वायु के मध्य से संचार (Transmission) होता है।** ठोस और तरल पदार्थ (Solid and Liquid Surfaces) भी इसके संचारण को पूरी तरह से रोक नहीं पाते, परन्तु इनकी तरंगों (Waves) की तीव्रता (Intensity) को कम अवश्य कर सकते हैं। ध्वनि की तरंगों की तीव्रता दूरी के बढ़ने से (Increasing Distance) घट अवश्य जाती है।

(b) **शोर** (Noise): **शोर उच्च ध्वनि की तीव्रता** (High Intensity Sound) से होता है और यदि आवाज इतनी ऊँची हो कि काम करना मुश्किल हो, सोना मुश्किल हो और बातचीत भी संभव न हो तो इसे शोर कहते हैं (Noise refers to the high intensity sound which interferes with normal way of living of man by interfering with his speech, sleep and concentration, thus, affecting his efficiency adversely)। ऐसे शोर का मनुष्य के स्वास्थ्य व मस्तिष्क एवं श्रवण तन्त्र (Hearing System) पर हानिकारक प्रभाव (harmful Impact) पड़ता है। शोर को सामान्यतया **डेसीबल** (Decibal -DB) इकाई में मापा जाता है। यदि ध्वनि की तीव्रता (Intensity of Sound) को 10 गुणा बढ़ा देंगे तो इसे 10 डेसीबल (DB) कहेंगे और यदि ध्वनि की तीव्रता को 100 गुणा बढ़ा दें तो डेसीबल पैमाने (DB Scale) पर यह 20 DB हो जाएगी। इस प्रकार यह स्केल या मापक बढ़ता जाता है।

(c) **शान्त** (Silence): **जब किसी स्थान पर ध्वनि न हो उसे शान्त कहा जाता है।** ध्वनि रहित या पूर्ण रूप से शान्त (Pin-drop silence) यदि कोई स्थान हो, तो वहाँ शून्य डेसीबल (DB) होता है। इसका अभिप्राय है कि यदि एक डेसीबल की ध्वनि भी की जाए तो उसे सुना जा सकेगा।

अनुसंधानों ने यह प्रकट किया है कि 90D स्तर के शोर से बहरापन (Deafness) के साथ-साथ मनुष्य के स्नायु तन्त्र (Nervous System) पर भी हानिकारक प्रभाव पड़ता है। शोर एक ऐसा तत्व है जिसका प्रत्यक्ष संबंध तनाव से संबंधित प्रतिबल सम्बन्धित बीमारियों (Stress Related Diseases) से होता है और जैसे हृदय रोग (Heart Ailments), गर्भवती स्त्रियों के गर्भ में पल रहे बच्चों पर कुप्रभाव (Pregnancy Disorder), रक्त चाप, अत्यधिक तनाव (Hypertension) आदि। ये सभी बीमारियाँ सामान्यतया शोर से जुड़ी मानी जाती हैं। अतएव बढ़ता हुआ शोर प्रदूषण मानव स्वास्थ्य और प्रसन्नता के लिए एक बढ़ता हुआ खतरा है।

(1) शोर प्रदूषण का स्रोत (Source of Noise Pollution): वे सभी क्रियाएं जिनसे 50-55 DB स्तर से ऊंची तीव्रता की आवाज पैदा होती है, उसे शोर के कारण होने वाले प्रदूषण का स्रोत माना जा सकता है। अतएव कोई भी सामुदायिक क्रिया, औद्योगिक क्रिया, यातायात क्रिया आदि जिनसे ऊंची आवाज पैदा होती है उसे शोर प्रदूषण का प्रमुख स्रोत कहा जा सकता है।

भारत के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि यहाँ सामाजिक जनसमूह (Social Gatherings) जैसे शादियाँ, धार्मिक सभाएं धार्मिक व पूजा के स्थानों से होने वाले प्रवचन (Religious Discourses) तथा निरन्तर चुनाव अभियान क्रियाओं (Electioneering Activities) में एम्पलीफायर के साथ लाऊड स्पीकरों का प्रयोग बहुत अधिक होता है। इनसे कितना शोर होता है इसका हम अनुमान लगा सकते हैं। इन सबसे जन साधारण और विशेष रूप से छात्र वर्ग बहुत ही दुखी होते हैं। इसी प्रकार कई संगीत-संबंधी रातें (Musical Nights) व माता का जागरण बहुत ऊंची मात्रा में शोर करते हैं। इसके साथ-साथ गली में सब्जी बेचने वाले, रेहड़ी वाले, फेरी वाले, रद्दी खरीदने वाले, मछली बाजार, साप्ताहिक बाजार आदि सभी शोर प्रजनन के मुख्य कारक हैं और कई बार ये लोग उनके लिए एक बड़ी सिरदर्दी का कारण बनते हैं जो इनके समीप रहते हैं।

शोर का एक ओर सबसे बड़ा स्रोत **मोटर यातायात तन्त्र** (Motor Transport System) है। भारी वाहन जैसे ट्रक, ट्रैक्टर, रेलगाड़ियां, जेट विमान, हेलीकाप्टर, लड़ाकू विमान और सभी प्रकार के हवाई जहाज बहुत ऊँची आवाज पैदा करते हैं। आजकल सुपरसोनिक यातायात के साधन तो मनुष्य के श्रवण तन्त्र (Hearing System) के लिए और भी खतरनाक हैं। इसी भाँति जब बिजली चली जाती है, तो लोग जैनरेटर चला कर शान्त वातावरण को और भी शोर वाला कर देते हैं। **कृषि क्षेत्र** में प्रयोग किए जाने वाले ट्रैक्टर, थ्रैशर, कम्बाइनज (Combines) आदि; **घरेलू क्षेत्र** में प्रयोग होने वाली मिक्सी, ग्राइंडर आदि; **इमारतें बनाते समय** बड़ी-बड़ी मशीनों का प्रयोग; **सड़क निर्माण** में प्रयोग होने वाले रोड रोलर आदि सभी मिल कर बहुत अधिक शोर प्रदूषण का कारण बनते हैं।

औद्योगिक क्षेत्र भी शोर प्रदूषण में किसी से पीछे नहीं हैं, कारखानों में चल रही बड़ी-बड़ी मशीनें, **खान-खदानों** में धमाके, सभी जोर से शोर मचाते हैं। औद्योगिक देशों में श्रवण शक्ति का ह्रास इसी वजह से अधिक होता है। विकसित देशों में, अल्पविकसित देशों की तुलना में, शोर प्रदूषण की समस्या अधिक गंभीर है।

(2) शोर प्रदूषण का प्रभाव (Impact of Noise Pollution): मानव समाज पर शोर प्रदूषण के पड़ने वाले प्रभावों को निम्नलिखित श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है:

(a) सामान्य प्रभाव (General Impact): सामान्यतया शोर प्रदूषण से मानवीय स्वास्थ्य एवं प्रसन्नता को निश्चित रूप से खतरा बना रहता है। ऊँची ध्वनि/आवाज, जिसे शोर कहते हैं, के फलस्वरूप मनुष्य की बोलने की शक्ति (Speech), नींद व सोचने की शक्ति विपरीत रूप से प्रभावित होती है विशेष रूप से उन व्यक्तियों की जो छात्र, अध्यापक या साधक (Meditators) होते हैं। ये लोग शोर के कारण गंभीर सोच-विचार (Serious Thinking) व अपने मन की एकाग्रता (Concentration of Mind) नहीं कर सकते। यदि नींद में खलल पड़ता है या विचारधारा (Thinking) भंग होती है तो इससे व्यक्ति की काम करने की क्षमता प्रभावित होती है और उससे दिन भर कुशलता से काम नहीं हो पाता।

(b) मनोवैज्ञानिक प्रभाव (Psychological Impact): मनोवैज्ञानिक दृष्टि से ऐसा विश्वास किया जाता है कि यदि लम्बे समय तक निरन्तर ऊँची आवाज सुननी पड़े तो इससे व्यक्तियों के व्यवहार में कुप्रभावी परिवर्तन आ जाते हैं। इसीलिए कहा जाता है कि शोर को जहाँ तक कम किया जा सके उतना ही बेहतर है।

(c) **शारीरिक प्रभाव** (Physiological Impact): शारीरिक दृष्टि से भी प्रदूषण बहुत अधिक हानिकारक है। शोर प्रदूषण के कारण श्रवण शक्ति (Hearing) घटती है, रक्तचाप में वृद्धि होती है, प्रजनन समस्याएं (Reproductive Problems) उपजती हैं, गर्भपात हो जाता है व गर्भ संबंधी रोग पैदा हो जाते हैं। प्रयोगों से प्रकट होता है कि 90DB स्तर से अधिक शोर से बहरापन आ सकता है। अतएव शोर प्रदूषण ही ऊँचे रक्त चाप, हृदय रोग (Heart Ailment), नाड़ी-नसों में तनाव (Neuro-muscular tensions), घबराहट (Nervousness), पेट का अल्सर (Intestinal Ulcer), गर्भपात (Pregnancy Disorder) आदि का कारण हैं।

■ (6) प्रतिक्रियावादी अपशिष्ट का परित्याग और विकिरण का खतरा

(Disposal of Reactive Waste and Dangers of Radiation)

विश्व को न्यूक्लीयर विकिरण (Nuclear Radiation) के खतरों का तब पता चला जब अगस्त 1945 में जापान में दो एटोमिक बम फेंके गए थे। ईश्वर का शुक्र है कि आगे होने वाले युद्धों में लोगों पर एटोमिक हथियारों का प्रयोग नहीं किया गया, परन्तु शक्तिशाली राष्ट्र इन हथियारों को विकसित कर रहे हैं और समय-समय पर इनका परीक्षण भी कर रहे हैं। ऐसे परीक्षणों के सुरक्षा पक्ष (Safety Aspect) को अभी भी गोपनीय रखा गया है और अभी भी यह संदेह (Suspect) से लिप्त है।

सैनिक प्रयोग के अतिरिक्त यूरेनियम तथा प्लूटोनियम जैसे न्यूक्लीयर पदार्थों का प्रयोग न्यूक्लीयर पावर प्लांटों द्वारा बिजली पैदा करने के लिए किया जाता है। न्यूक्लीयर पावर प्लांट, पारम्परिक प्लांटों की तुलना में, अधिक लाभकारी हैं क्योंकि न्यूक्लीयर ऊर्जा सस्ती, साफ (Clean) तथा सघन (Compact) है। परन्तु समस्या इससे पैदा हुए अवशिष्टों को फेंकने या परित्याग (Disposal) की है, जिसका स्तर निम्न, मध्यम तथा ऊँचा है। (a) **निम्नस्तरीय अवशिष्ट** (Low-level Waste) को सामान्तया पतला (Dillute) कर दिया जाता है और समुद्र में डाल दिया जाता है। (b) **मध्यम-स्तरीय अवशिष्ट** (Medium-Level Waste) दलदली (Sludgy) होता है, उसे रासायनिक तरीके से ट्रीट (Treated) किया जाता है और भूमि के नीचे (Underground) स्टेनलेस स्टील से बने टैंकों में रख लिया (Store) जाता है। (c) **उच्चस्तरीय अपशिष्ट** (High Level Waste) बहुत अधिक मात्रा में विकिरण (Radiation) छोड़ता (Emit) है और उसे पर्यावरण में छोड़ा (Release) नहीं जा सकता। इसे दोहरी दीवार वाले स्टेनलेस स्टील से बने टैंकों (Double Walled Stainless Steel Tanks) में भूमिगत (Underground) रखा जाता है। यहाँ इसे ग्लास/काँच जैसे द्रव्य (Glass Like Substances) में एक प्रक्रिया द्वारा परिवर्तित किया जाता है, इस प्रक्रिया को काँचीकरण (Vitrification) कहा जाता है।

यहाँ प्रश्न यह उठता है कि इस खतरनाक द्रव्य (Hazardous Substance) को कब तक अनिश्चित काल के लिए स्टोर करके रख सकते हैं। चूंकि विकिरण (Radiation) बड़े लम्बे समय तक निकलता (Emit) रहेगा, इसलिए इसका मानवजाति (Mankind) पर कभी-कभी तो बुरा प्रभाव अवश्य ही पड़ेगा, बेशक जमीन के नीचे ही क्यों न दबा हो।

■ (7) जलवायु परिवर्तन *(Climate Change)*

जलवायु परिवर्तन एक वैश्वीय (Global) समस्या है और अब से लगभग 20 वर्ष पूर्व से अन्तर्राष्ट्रीय नीति आयोजकों (International Policy Planners) का इसकी ओर ध्यान लगा हुआ है। हमारी जलवायु कई तत्वों पर निर्भर करती है जैसे तापमान (Temperature), हवा (Wind) और वर्षा, विश्व पर स्थिति (Location on the Globe) और पृथ्वी की चक्रीय और क्रांतिकारी गति (Rotational and Revolutionary Movement of Earth)। इसे सभी मानवजाति व जीवित प्राणी भोगते (Share) हैं। मानवीय औद्योगिक क्रिया, विशेषकर जीवाश्म ऊर्जा (Fossil Fuel) का दहन (Combustion), ने कार्बन-मोनोक्साइड और कार्बन-डाइ-आक्साइड जैसी गैसों को बड़े पैमाने पर पैदा किया है, ये गैसें ताप/उष्णता (Heat) उत्पन्न कर ऊपर के वायुमण्डल (Upper Atmoshpere) में एक कवच (Shield) बना लिया है।

पृथ्वी सूर्य से उष्णता (Heat) प्राप्त करती है, इसके कुछ भाग को अवशोषित (Absorb) कर लेती है और कुछ भाग को दोबारा अंतरिक्ष (Space) में प्रतिबिंबित (Reflect) कर देती है। ये गैसें उस मात्रा को प्रभावपूर्णता (Effectively) से घटाती हैं जो सामान्तया वापस प्रतिबिंबित होती हैं। इसे **ग्रीनहाऊस प्रभाव** (Greenhouse Effect) कहा जाता है। इसके फलस्वरूप औसत

वैश्वीय तापमान (Global Temperature) में वृद्धि हो जाती है। ऐसा अनुमान है कि पिछले 200 वर्षों में वैश्वीय तापमान में लगभग 1.5 डिग्री सेल्सियस वृद्धि हो चुकी है।

अब समस्या यह है कि यदि इसे रोका न गया तो यह प्रक्रिया (Process) चलती रहेगी। हो सकता है कि अल्प अवधि में कनाडा जैसे कुछ देश इस उष्णता/गर्मी (Warming) से कुछ लाभ (Gain) प्राप्त कर सकें (क्योंकि वहाँ बर्फ से घिरी भूमि खेती योग्य हो जाएगी) परन्तु दीर्घकाल में मानवीय व अन्य जीवन बिल्कुल असंभव हो सकता है। **मानवीय शरीर की उष्णता/गर्मी सहने की सहनशीलता बहुत कम है** (The tolerance of the human body to heat is very low)। ऐसा माना जाता है कि तापमान के 55 डिग्री सेल्सियस के अधिक होने पर उसे सहन करना संभव नहीं है। इसके अतिरिक्त वर्षा का ढंग (Rainfall Pattern) भी गड़बड़ा सकता है (Chaotically altered)। भारत जैसे गर्म देशों को इसकी अधिक चिन्ता (Worry) करने की आवश्यकता है, क्योंकि विश्व के इन भागों में रहना ही मुश्किल (Uncomfortable) हो जाएगा। सन् 1997 में **क्योटो** (Kyoto, जापान) में हुई संधि (Treaty) ने सभी राष्ट्रों से यह आग्रह किया था कि वे ग्रीन हाऊस गैसों को घटा कर 1990 के स्तरों पर लाएं। सभी देश इस संधि की अभिपुष्टि (Ratification) की प्रक्रिया में हैं।

परिणाम (Consequences): **अधिक वर्षा** के कारण चारों ओर पानी फैल जाता है, बदबू निकलती है, जल-निकास (Sewage) तन्त्र विफल हो जाता है, इससे मच्छर, मक्खियाँ पैदा हो जाती हैं, बीमारियाँ फैलनी शुरू हो जाती है, बाढ़ें आ जाती है, खड़ी फसल बह जाती है, जान व माल का नुकसान होता है, पेयजल अपेय बन जाता है। इसके विपरीत **अत्यधिक गर्मी** (Extreme Hot Weather) के अपने परिणाम (Reperussions) होते हैं। इसी भाँति **अत्यधिक सर्दी** से जुकाम, बुखार व अन्य कई बीमारियाँ शुरू हो जाती हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि जलवायु में परिवर्तन से कई प्रकार के अवांछित परिणाम (Undesirable Results) निकलते हैं।

■ (8) अम्लीय वर्षा (Acid Rain)

अम्लीय वर्षा, वातावरण के अपने आपको स्वच्छ (Cleanse) करने की एक प्रवृत्ति (Tendency) है, यह तब होता है जब औद्योगिक क्रिया के कारण पर्यावरण में अनेक प्रकार के प्रदूषित पदार्थ हर समय मिलते रहते हैं। बादलों में स्थित जलकण (Water Droplets) ऐसे प्रदूषित पदार्थों को अपनी ओर आकर्षित करके एकत्रित कर लेते हैं। प्रदूषित पदार्थ (Pollutants) दो प्रकार के होते हैं, ये हैं मुख्य और गौण। **मुख्य प्रदूषण पदार्थ** (Primary Pollutants) वे पदार्थ होते हैं जो उद्योगों या घरों से प्रदूषण फैलाने वाली क्रियाओं से उत्पादित होते हैं। **गौण प्रदूषण पदार्थ** (Secondary Pollutants) वे पदार्थ हैं जो कि वातावरण में मिलने वाले मुख्य प्रदूषित पदार्थों के परस्पर रासायनिक प्रक्रियाओं (Various Chemical Processes) द्वारा पैदा होते हैं।

उद्योगों द्वारा वातावरण में सल्फर-डाइ-आक्साइड (Sulphurdioxide) और नाइट्रोजन आक्साइड (Nitrogen Oxide) सदा मिलाई जाती रहती है जो कि सलफ्यूरिक अम्ल या तेजाब (Sulphuric Acid) और नाइट्रिक अम्ल या तेजाब (Nitric Acid) में बदल जाती है और यह ही तेजाबी या अम्लीय वर्षा के रूप में आकाश से भूमि पर गिरती है। वातावरण में स्थित जल, सौर ऊर्जा (Sunlight) तथा ऑक्सीजन इन गैसों के अम्ल/तेजाब में रूपांतरित करने (Conversion) में सहायक होते हैं। सामान्यतया तो सलफ्यूरिक अम्ल तथा नाइट्रिक अम्ल ही अम्लीय वर्षा के रूप में आकाश से गिरते हैं परन्तु वनस्पति (Vegetation) में भी अपने आपमें वातावरण से ऐसे प्रदूषित पदार्थों को अपनी ओर खींचने की क्षमता होती है।

एक बार जब कहीं भी अम्लीय वर्षा हो जाती है तो इससे कई प्रकार की रासायनिक अन्तर्क्रियाओं का जन्म होता है, जिससे वनों का विनाश भी हो सकता है। इससे मिट्टी (Soil) और भूमिगत जल (Ground Water) पर भी विनाशकारी प्रभाव पड़ता है।

■ (9) ओजोन परत का ह्रास (Depletion of the Ozone Layer)

ओजोन परत ऑक्सीजन O_2 तथा ओजोन O_3 के एक मिश्रण की परत है, यह उच्च वातावरण (Upper Atmosphere) में पाई जाती है, यह परत सूर्य से आने वाली अधिकतर पराबैंगनी किरणों (Ultra Violet Rays) को वापस प्रकट करने के लिए जिम्मेवार है (A Layer of a mixture of oxygen O_2 and Ozone O_3, Known as Ozone layer in the upper

atmosphere is responsible for reflecting back most of the ultraviolet rays arriving from the sun)। इस परत के अभाव में इस पृथ्वी पर जीवन उच्च स्तरीय पराबैंगनी किरणों के आगे खुल जाएगा (Expose) जिससे कैंसर हो सकता है। ऐरोसोल प्रापलेंटस (Aerosol Propellants) में प्रयोग होने वाले कुछ रसायन तथा ऊँची उड़ान भरते जेट एयरक्राफ्ट जो धुआँ छोड़ते हैं उससे ओजोन में टूट-फूट आ जाती है। ओजोन परत के पतले (Thinning) होने को सबसे पहले 1974 में नोटिस किया गया जब वैज्ञानिकों ने अन्टार्कटिक (Antarctic) के ऊपर ओजोन ह्रास को नोटिस किया। सन् 1991 तक यह प्रभाव और बढ़ चुका था और दक्षिणी अर्जेन्टाइना तक चला गया था। मॉंट्रियल (Montreal) तथा क्योटो (Kyoto) आचार-संहिता (Protocols) से इस समस्या के समाधान की अपेक्षा की गई है।

■ (10) मरुस्थलीकरण (Desertification)

मरुस्थलीकरण (Deforestation) वन-विनाश का प्रत्यक्ष परिणाम (Consequence) है। हम जानते हैं कि वनों तथा मिट्टी के बीच नाजुक संबंध (Delicate Link) है, *यह सदा स्पष्ट नजर नहीं आता। वन हवाओं की गति को रोकते हैं। वातावरण में* स्वस्थ गैस सन्तुलन (Healthy Gaseous Balance) बनाए रखने में ये जलवायु के परिमार्जक (Maderators) है। अपनी सतह (Surface) से प्रस्वेदन (Transpiration) द्वारा ये नमी (Humidity) को बढ़ाते हैं।

अतएव वन मिट्टी कटाव (Soil Erosion) तथा भू-स्खलन (Landslides) को नियंत्रित कर सकते हैं। पहाड़ी क्षेत्र में नदी के किनारों पर लगे वृक्ष मिट्टी को साबुत/सही सलामत (Intact) बनाए रखते हैं और एक विस्तृत जड़ तन्त्र (Root System) द्वारा इसे बहने से रोकते हैं। नदियों के निचले डेल्टाओं के लिए ऐसे ही सही होता है। ये वर्षा बौछारें (Rain Torrents) को रोकते हैं और मिट्टी में स्थिरता बनाए रखते हैं। बड़े पैमाने पर वनों का विनाश हवा, वर्षा तथा लहरों के प्राकृतिक प्रकोप (Natural Fury) के सन्तुलन की प्रकृति की क्षमता को घटा देता है। यदि मिट्टी की ऊपरी परत के आधा इंच भाग में कटाव आ जाता है तब इसको भरने अथवा मिट्टी को अपने मौलिक रूप (Original Form) में आने के लिए 50 वर्ष लग जाते हैं। मिट्टी की इस उपजाऊ उपरी परत के खत्म होने से कृषि करना तथा अन्य वनस्पति व हरियाली बनाए रखना असंभव हो जाता है। खनन तथा डैम निर्माण सहित औद्योगिक तथा निर्माण क्रिया भी मिट्टी के निम्नीकरण के लिए जिम्मेवार हैं। ऊपरी मिट्टी कटाव को वनारोपण (Afforestation) द्वारा रोका जा सकता है।

यदि मरुस्थलीकरण को नहीं रोका गया तो इसका दीर्घकालीन प्रभाव क्या पड़ेगा? स्पष्ट है निरन्तर निम्नीकरण से मरुस्थल (Deserts) बढ़ते व फैलते जाएंगे। बांझ/बंजर भूमि कम वृक्ष वनस्पति (Vegetation) पैदा करेगी। इससे ऊपरी मिट्टी (Top Soil) में और अधिक कटाव आएगा। हवा (Wind) तथा लहरें (Tides) अनियन्त्रित (Unchecked) रह जाएंगी। मरुस्थल और आगे फैलता जाएगा। समस्या स्वयं ही उग्र (Self-aggravating) हो जाएगी और इससे पर्यावरण का हनन और भी अधिक होगा।

■ (11) जैव विविधता की गिरावट (Decline of Bio-diversity)

जैव विविधता से अभिप्राय इस पृथ्वी पर पाये जाने वाले पेड़-पौधे तथा पशु-पक्षी जीवन के विभिन्न प्रकार से है। (Bio-diversity refers to the variety of plant and animal life on the planet)। प्रजातियों (Species) की अनेक संख्या के महत्व को हाल ही के वर्षों में आनुवंशिकी (Genetics) के अध्ययन द्वारा पहचाना गया है। पशु-पक्षियों, पेड़-पौधों तथा अन्य जीव जन्तुओं (Creatures) की प्रजातियाँ अनेक प्रकार से (Myriad Way) एक-दूसरे पर निर्भर हैं बल्कि भोजन शृंखला (Food Chain) में ये सभी प्रजातियां अनेक जीवन के लिए भरण-पोषण कार्य (Life-Sustaining Tasks) भी करती हैं और इस प्रकार प्रकृति में सन्तुलन बनाए रखती हैं। जैव विविधता में गिरावट या क्षति (Less) तब होता है जब सभी प्रजातियाँ अस्तित्व से नष्ट (Wipe out) हो जाएं और इस प्रकार शृंखला (Chain) में जो नाजुक जुड़ाव (Delicate Link) है और जो सभी के लिए जीवनाधार (Vital) हैं, वह समाप्त हो जाए।

जैव विविधता में हानि दो कारणों से होती है: एक जब प्राकृतिक आवास (Natural Habitat) का विनाश हो जाए जिसके फलस्वरूप किसी विशेष प्रजाति को कोई वैकल्पिक आवास न मिल पाए या किसी जगह प्रवास (Migrate) न कर सके। इसके फलस्वरूप सम्पूर्ण प्रजाति समाप्त (Extinct) हो जाती है जैसे भारत में सुन्दरवन सुरक्षित वन में रायल बंगाल टाइगर के साथ हुआ।

सन् 1972 में इन शेरों की संख्या बहुत अधिक घट गई थी। जैव विविधता की हानि का **दूसरा कारण** इनकी प्रत्यक्ष रूप से कटाई (Direct Harvesting) है। मनुष्य अपने भोजन व आनन्द के लिए इन प्रजातियों का पशुवध (Slaughter) करता है। चूंकि इस प्रक्रिया को रोका नहीं जाता, इसलिए ये प्रजातियाँ समाप्त होती चली जाती हैं, कई स्थानों पर ह्वेल मछली का इस रूप में वध हो रहा है और इस प्रकार वह लुप्त (Extinct) हो सकती है।

■ 3. प्रदूषण का निवारण एवं नियन्त्रण (Prevention and Control of Pollution)

ऊपर व्यक्त किए गए प्रदूषण के अनेक प्रकारों को रोकने के लिए कई निवारक एवं नियंत्रात्मक उपाय सुझाए जा सकते हैं ताकि पर्यावरण के विपरीत प्रभावों को कम या खत्म किया जा सके। ये उपाय निम्नलिखित हैं:

(1) वायु प्रदूषण संबंधी उपाय (Air Pollution Measures)

ग्रामीण तथा शहरी दोनों क्षेत्रों में वायु प्रदूषण के विपरीत प्रभावों से निपटने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए जा सकते हैं:

(i) यातायात (Transport): प्रत्येक बड़े शहर, विशेषकर महानगरों में सशक्त एवं कुशल सार्वजनिक यातायात का प्रावधान किया जाना चाहिए, यदि संभव हो तो विद्युत चालित (Electrically Operated) यातायात वाहनों का बड़ी मात्रा में प्रयोग किया जाए। इससे लोग अपने निजी वाहनों का प्रयोग कम करेंगे।

(ii) उचित आयोजन (Proper Planning): शहरी केन्द्रों का उचित आयोजन किया जाना चाहिए ताकि शहरों में वाहनों की भीड़ इकट्ठी न हो। इसके लिए सड़क का जाल आयोजित ढंग से बिछाया जाना चाहिए ताकि वाहनों की कम से कम आवश्यकता महसूस हो।

(iii) तेल कुशल वाहन (Fuel Efficient Vehicles): ऐसे वाहनों को बनाया जाना चाहिए जिनमें कम से कम तेल का प्रयोग हो और जिनमें प्रदूषण भी कम से कम हो। जैसे दो पहिया या तीन पहिया वाहनों में 4-स्ट्रोक इंजन लगा कर प्रदूषण को घटाया जा सकता है और ऐसी तकनीक विकसित की जाए या पेट्रोल का स्थानापन्न ढूंढा जाए जिससे कार्बन-मोनोक्साइड के उत्सर्जन (Emission) को घटाया जा सके।

(iv) स्वच्छ ईंधन (Clean Fuel): भारत जैसे देशों के ग्रामीण क्षेत्रों के लिए खाना बनाने के उद्देश्यों (Cooking Purposes) के लिए आवश्यक है कि स्वच्छ ईंधन उपलब्ध हो जो वर्तमान में प्रयोग होने वाले पुराने गैर-व्यापारिक ईंधन (Traditional Non-commercial Fuel) का स्थान ले सके।

(v) धुआँरहित चूल्हे (Smokeless Chulas): भारतीय दशाओं के अनुरूप यहाँ कुशल धुआँरहित चूल्हों को विकसित एवं लोकप्रिय बनाया जाए, इससे ग्रामीण स्त्रियों को खुली आग पर खाना पकाने के फलस्वरूप स्वास्थ्य संकट से बचाया जा सकता है, उन्हें तब उपलों और लकड़ियों का प्रयोग भी नहीं करना पड़ेगा।

(vi) उचित रोशनदान (Proper Ventilation): ग्रामीण क्षेत्रों में रसोईघर इस प्रकार से बनाए जाने चाहिएं कि उनमें उचित रोशनदान हों ताकि रसोई का धुआँ बाहर निकलता रहे और ताजी व खुली हवा का आवागमन बना रहे।

(vii) खाना बनाने की कुशल विधियाँ (Efficient Ways of Cooking): खाना बनाने के उचित तरीकों के विकसित एवं सुगम बनाने से ईंधन तथा समय दोनों की बचत हो सकती है और स्वास्थ्य संकट (Health Hazards) को कम किया जा सकता है।

(viii) सोच में परिवर्तन (Attitudinal Change): रूढ़िवादी ग्रामीण समाज की सोच में भी परिवर्तन लाने की आवश्यकता है जिससे कि वहाँ गर्भवती स्त्रियों को खुली-आग के सामने चूल्हे-चौके (Cooking) का काम कम करना न पड़े। इससे नवजात शिशुओं की प्रदूषण से रक्षा की जा सकती है।

(2) जल प्रदूषण संबंधी उपाय (Water Pollution Measures)

जल संदूषण (Water Contamination) के कारण होने वाली स्वास्थ्य हानि को न्यूनतम करने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए जा सकते हैं ताकि ये स्वस्थ पर्यावरण में सहायक सिद्ध हो सकें:

(i) कुछ मापदण्डों का अनुसरण (To Follow Certain Standards): प्रत्येक औद्योगिक इकाई को वायु उत्सर्जन (Air Emission) तथा जल अपव्यय से संबंधी मापदण्डों एवं नियमों का पालन करना चाहिए।

(ii) कानूनों का लागू करना (Implementation of Laws): प्रदूषण रोकने के संदर्भ में कानूनों की कमी नहीं है परन्तु इनको सख्ती से लागू करने में ढील अवश्य है।

(iii) उपचार प्लांटों का लगाना (Employing Treatment Plants): भारत जैसे विकसित देशों में अधिकतर उद्योग तो बहुत छोटे या मध्यम आकार के हैं ऐसे मामलों में प्रत्येक औद्योगिक इकाई को उपचार (Treatment) प्लांट लगाना अधिक महंगा पड़े। इसलिए हमारे विचार में एक औद्योगिक समूह के लिए सारे औद्योगिक अपशिष्ट को एक ही स्थान पर साफ करने के लिए संयुक्त ट्रीटमेंट प्लांट का प्रावधान किया जा सकता है, इससे औसतन खर्च भी कम होगा।

(iv) प्रदूषण कर (Pollution Tax): म्युनिसिपल कमेटियों द्वारा औद्योगिक प्रदूषण कर लगाया जाना चाहिए और इससे जो कुछ आय या पैसा इकट्ठा हो उसे अपशिष्ट साफ करने वाले प्लांटों (Treatment Plants) पर खर्च कर देना चाहिए।

(v) मलभरे पानी को फेंकना (Sewage Disposal): शहरी क्षेत्रों में वाहित मल को फेंकने एवं साफ करने के लिए कुछ न कुछ प्रबन्ध किया जाना चाहिए, किसी भी दशा में वाहित मल को नदियों में प्रवाहित नहीं किया जाना चाहिए।

(vi) वाहित मल जनित कीटाणुओं का प्रयोग (Use of Sewage Bacteria): वाहित मल से पैदा हुए कीटाणुओं का कृषि क्षेत्र में प्रयोग जल्दी से जल्दी शुरू कर देना चाहिए।

(vii) प्रचार (Use of Mass Media): टेलीविजन जैसे जन प्रचार माध्यमों (Mass Media) का प्रयोग करके लोगों को पर्यावरण को स्वच्छ रखने के उपायों के बारे में जागरूक करना और स्वास्थ्य पर प्रदूषण के हानिकारक प्रभावों के बारे में आम लोगों की चेतना जागृत करनी चाहिए।

(viii) सभी प्रमुख नदियों की सफाई (Cleaning of All Major Rivers): सारे देश (Nation Wide) में सभी प्रमुख नदियों को स्वच्छ रखना व ऐसे सभी कदम उठाना जिससे नदियों में औद्योगिक एवं कृषिय अपशिष्ट प्रवाहित न किए जा सकें।

(ix) सामान्य सफाई (General Sanitation): सारे देश में सामान्य सफाई अभियान चलाया जाना चाहिए ताकि सभी व्यक्तियों को कम से कम प्राथमिक स्वच्छता अवश्य प्राप्त हो सके। इसके लिए सरकार की ओर से प्रत्येक शहर व गांव में स्वच्छता प्रदान करने हेतु सभी आवश्यक कदम उठाए जाने चाहिएं जिससे कोई भी व्यक्ति गंदगी न फैला सके।

संक्षेप में, यह कहना उचित होगा कि केवल कानून बना देने से ही समस्या का उपचार नहीं हो सकता बल्कि आवश्यकता इस बात की है कि इन कानूनों को सख्ती से लागू किया जाना चाहिए, तभी इन सभी समस्याओं का समाधान संभव हो सकता है। सरकारी हल के साथ-साथ जनता को जागरूक करके उनसे सहयोग की अपेक्षा की जानी चाहिए और लोगों में समस्या के समाधान के प्रति इच्छा जागृत करनी चाहिए।

(3) ठोस कूड़ा-करकट की समस्या के समाधान संबंधी उपाय (Measures to the Problem of Solid Waste)

ठोस कूड़ा-करकट की समस्या के समाधान के लिए आवश्यक है कि इसको इकट्ठा करने, उठा कर ले जाने और रासायनिक तरीकों से उसके उपचार (Treatment) की उचित व्यवस्था की जाए। यदि कूड़े को बिना उपचार छोड़ दिया जाता है, तो इसमें धीरे-धीरे किण्वन (Fermentation) शुरू हो जाती है जिससे मिथेन जैसी बायोगैस वातावरण में बढ़ती जाती है और इस बायोगैस के निकलने (Discharge) से वातावरण के लिए गंभीर परिणाम हो सकते हैं।

ठोस कूड़ा-करकट के प्रयोग (Utilization) के लिए उस उपयुक्त तकनीक का विकास किया जाना चाहिए जिससे विश्व के वातावरण को स्वच्छ एवं स्वस्थ बनाया जा सके और स्वास्थ्य संबंधी संकटों (Health Hazards) को न्यूनतम किया जा सके। यदि ऐसी वैज्ञानिक तथा पर्यावरण मित्रीय तकनीक का विकास किया जाए जिससे कि कूड़ा-करकट का ऐसा उपचार (Treatment) संभव हो जिससे कूड़े (Waste) का प्रयोग ऊर्जा (Energy) अर्जित करने के लिए किया जा सके, तो इससे एक पंथ दो काज हो जाएंगे। एक बार ऐसी तकनीक यदि संभव हो जाए तो कूड़े का लाभदायक उपयोग, उर्वरक (Compost) और ऊर्जा उत्पादन में किया जा सकता है।

ठोस कूड़ा-करकट से ऊर्जा पैदा करने के लिए इस समय दो प्रकार की तकनीक उपलब्ध है। पहली है जैविक प्रकार की तकनीक (Biological Options), जिसमें कम्पोजटिंग (Composting), जीवाणु कम्पोजटिंग (Vermic composting) और

अवायवीय-पाचन (Anaerofic Digestion) है और **दूसरी** तापीय ढंग की तकनीक (Thermal Options) होती है, इसमें भस्मीकरण (Incineration), गैस व ऊर्जा उत्पादन करना आदि प्रक्रियाएं आती हैं।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि ठोस कूड़ा-करकट की समस्या के समाधान के लिए निम्नलिखित सुझाव उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं:

(i) फेंकना (Dumping): पुन:चक्रण और गैर-पुन: चक्रण (Recyclable and Non-recyclable) कूड़े को अलग-अलग जगहों पर फेंकने की प्रथा को उत्साहित किया जाना चाहिए। जन समूह को इसके बारे में जानकारी सार्वजनिक प्रचार माध्यम (Mass Media) जैसे टी.वी. द्वारा दी जानी चाहिए।

(ii) पोलीथीन का प्रयोग (Use of Polythene): पोलीथीन बैंगों के प्रयोग को एकदम बन्द कर देना चाहिए।

(iii) कूड़ा ढेर (Garbage Dumps): कूड़ा स्थानों/अम्बारों को निरन्तर रासायानिक उपचार (Chemical Treatment) से कीटाणुओं से रहित रखने की आवश्यकता है, ताकि कूड़ा वाले स्थानों से बीमारियाँ न फैल सकें।

(iv) अस्पतालों से जनित कूड़ा (Hospital Wastes): अस्पतालों द्वारा फेंके जाने वाले कूड़े को बाकी हर प्रकार के म्यूनिसिपल व उद्योग वाले कूड़े से अलग रखते हुए उसका रासायनिक उपचार कुशल एवं प्रभावपूर्ण ढंग से शीघ्रता से किया जाना चाहिए। अस्पताल में कूड़े के उपचार प्लांटों की देख-रेख ठीक प्रकार से की जानी चाहिए।

(v) कूड़ा उठाने वाले (Rag Pickers): जगह-जगह से कूड़ा उठाने वाले जो लोग हैं उनको किसी दानी संस्था (Charitable Trust) द्वारा दस्ताने व बूट इस शर्त पर उपलब्ध कराए जाने चाहिएं कि वे इन्हें पहन कर ही कूड़ा छांटेगें और वे सरकारी अस्पतालों में अपनी डाक्टरी जाँच (Medical Check up) लगातार करवाते रहेंगे। उन्हें इस बात के लिए भी सजग किया जाए कि वे अपना स्व-व्यावसायिक काम करते समय अपनी सेहत का भी ध्यान रखेंगे।

(vi) उचित तकनीक (Appropriate Technology): ठोस कूड़ा-करकट के पुन: चक्रण के लिए उपयुक्त तकनीक को विकसित एवं लोकप्रिय बनाया जाए और ये प्रयास भी किए जाएं कि ठोस कूड़ा-करकट से ऊर्जा/बिजली का प्रजनन (Electricity Generation) हो सके।

(4) शोर प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए उपाय (Measures to Control Noise Pollution)

शोर प्रदूषण के मानवीय स्वास्थ्य पर पड़ने वाले हानिकारक प्रभावों को देखते हुए यह आवश्यक हो जाता है कि शोर नियंत्रण (Noise Abatement) के लिए कुछ न कुछ कदम अवश्य उठाए जाने चाहिएं। शोर प्रदूषण को रोकना कोई मुश्किल काम नहीं है। शोर प्रदूषण को नियंत्रित एवं इस समस्या से सामना करने की तकनीक सरल है और उसे विकसित करना कठिन नहीं है; इसके लिए आवश्यकता दृढ़संकल्प, दृढ़ निश्चय, कल्पना (Imagination) एवं थोड़ी-बहुत तकनीक अपनाने की है।

शोर प्रदूषण का सामना करने के लिए निम्नलिखित विभिन्न रणनीतियां व उपाय अपनाए जा सकते हैं: (i) अधिक हरियाली वाले क्षेत्र (Green Belts) स्थापित करना, (ii) इमारतों की बनावट एवं मशीनरी में सुधार लाना, (iii) दीवारों में ध्वनि समाहित (Sound Absorbing) करने वाली सामग्री का प्रयोग करना, (iv) सभी मोटरवाहनों की बनावट एवं मशीनरी मे सुधार लाना; (v) सभी मोटरवाहनों में बेहतर साइलेंसर लगाने का बन्दोबस्त करना, (vi) वाहनों द्वारा प्रेशर हार्न के प्रयोग को बन्द (Ban) करना, (vii) सड़क तन्त्र में सुधार करना, (viii) व्यक्तिगत स्तर पर कम शोर के लिए संरक्षणात्मक उपायों (Protective Measures) का प्रयोग करना, और (ix) उचित कानून बनाना।

पहले (i) उपाय के संदर्भ में यह आवश्यक है कि हवाई अड्डा, फौजी क्षेत्र, शिक्षा क्षेत्र, अस्पताल जैसे शोर ग्रस्त क्षेत्रों में अधिक से अधिक **हरे-भरे वृक्ष लगाए जाएं** और चारों ओर **हरियाली क्षेत्र विकसित** करके शोर की समस्या को घटाया जा सकता है। हरियाली व पेड़े-पौधे नियंत्रण के लिए प्रभावी उपाय सिद्ध हो सकते हैं क्योंकि हरियाली से शोर-दबाव कम होता है। ऐसा कहा जाता है कि हरे-भरे वृक्षों से शोर के स्तर में 10-15 डेसीबल की कमी लाई जा सकती है। इसलिए बढ़ता हरा-भरा क्षेत्र शोर नियंत्रण का सबसे आसान व पर्यावरण के लिए मित्रतापूर्ण तरीका माना जाता है।

उपाय (ii) के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि **बड़ी-बड़ी इमारतों के सुधरे हुए डिजाइन** शोर प्रदूषण के खतरे को काफी सीमा तक नियंत्रित करने में सहायक सिद्ध हो सकते हैं। इमारतों में, जहां संभव है, यदि शीशे की दीवारें समावेशित की जाएं तो ये भी शोर को कम करती हैं। ऐसा कहा जाता है कि शीशे की दीवारों से शोर के स्तर में 50 डेसीबल की कमी लाई जा सकती है। इसी भाँति यदि दीवारों को सिंडर (सिंडर लकड़ी और कोयले के अवशेष (Residue) से बनता है।) से प्लस्तर (Cinder Blocks) कर दिया जाए, तो इससे भी ध्वनी की मात्रा घटती है।

उपाय (iii) से **(vii)** तक के संदर्भ में कहा जा सकता है चूंकि **वाहन** (Automobiles) शोर प्रदूषण का सबसे बड़ा स्रोत (Vital Source) है, इसलिए सभी **मोटर वाहनों के डिजाइन में आवश्यक सुधार के** लिए निरन्तर अनुसंधान करने की जरूरत है। सभी वाहनों में अच्छी क्वालिटी वाले साइलेन्सर लगाने चाहिएं, जिनसे की शोर कम हो सके। इसके साथ-साथ यदि आम लोगों (Masses) को सड़क नियमों (Traffic Rules) के बारे में शिक्षित किया जाए तथा उनमें ट्रैफिक जागरूकता (Traffic-Sense Culture) पैदा की जाए तो हार्न का प्रयोग कम से कम किया जा सकता है। इससे भी बढ़कर यदि सड़कें ट्रैफिक रुकावटों (Traffic Bottlenecks) से मुक्त हैं तब भी विशिष्ट स्थानों (Specific Points) पर शोर को कम किया जा सकता है।

उपाय (viii) का संबंध कारखानों द्वारा जनित शोर गहनता (Noise Intensity) से है। कई कारखाने ऐसे हैं जहाँ बड़ी-बड़ी मशीनों को प्रयोग में लाया जाता है। इससे जो लोग वहाँ काम करते हैं, उनकी श्रवण शक्ति (Hearing Power) का ह्रास जल्दी होना शुरू हो जाता है। इससे बचने के लिए वहाँ के कर्मचारियों को शोर हेल्मेट (Noise Helmets) और कानों के प्लग (Ear Muffs) उपलब्ध कराए जाने की सिफारिश की जाती है।

उपाय (ix) का संबंध उचित **कानून व्यवस्था** (Legislature) से है। शोर से बचने के लिए सरकारी स्तर पर उचित कानून बनाकर उन्हें सख्ती से लागू करने की आवश्यकता है। इन कानूनी उपायों में लाउडस्पीकरों के प्रयोग पर प्रतिबन्ध लगाना, मोटर वाहनों में प्रेशर हार्न के प्रयोग को कम से कम करना, शोर हल्मेट का पहनना अनिवार्य करना, कानों में शोर से बचने के लिए प्लग (Ear Plugs/Muffs) का लगाना आदि शामिल हैं।

अल्पविकसित देशों में भारत शायद पहला देश है जिसने सन् 1986 में पर्यावरण संरक्षण के लिए कानून बनाया था। दरअसल भारत में ऐसे कानूनों की कोई कमी भी नहीं है। उदाहरण के लिए Indian Penal Code के अनुच्छेद 133 के अन्तर्गत लाउडस्पीकर के प्रयोग के बारे में कुछ नियम बनाए गए हैं, इस कानून के अनुसार शोर मचाना एक जुर्म (Criminal Offence) है। इस कानून के अनुच्छेद 268 में जुर्माना करने का प्रावधान भी किया गया है। जो वाहन बिना साइलेन्सर चलाया जाएगा, पुलिस उसका चालान कर सकती है। इसी प्रकार विशेष क्षेत्रों जैसे अस्पताल, शिक्षण संस्थान, साधना केन्द्र, अदालतें आदि को शोर-रहित क्षेत्र (Silence Zones) घोषित किया गया है। ऐसे स्थानों के चारों ओर लगभग 100 मीटर अर्धव्यास (Radius) क्षेत्र में हार्न आदि नहीं बजाया जा सकता और लाउडस्पीकरों का प्रयोग नहीं किया जा सकता।

9 सितम्बर, 2003 को Hindustan Times में छपी एक खबर के अनुसार Union Ministry of Road Transport and Highway ने सभी सड़क वाहनों (कृषि वाहनों समेत) को यह आदेश दिया है कि वे अक्तूबर 2004 से निर्धारित (Prescribed) शोर प्रदूषण स्तर का परिपालन करेंगे। इस आदेश के अनुसार प्रत्येक वाहन (दो पहिया, व कार समेत) का शोर प्रदूषण का डेसीबल के रूप में एक मानदंड (Norm) निश्चित कर दिया गया है, जो वाहन निर्धारित मानदंड के स्तर के अनुसार अपना वाहन नहीं रखेगा। Task Force उसके विरुद्ध कानूनी कार्यवाही करेगी। इस आदेश के अन्तर्गत अक्तूबर 2004 के बाद लगभग 6 करोड़ वाहनों को इस मानदण्ड (Norms) का परिपालन करना होगा।

संक्षेप में शोर प्रदूषण का नियन्त्रण कोई कठिन कार्य नहीं है। हाँ, इसके लिए जनसाधारण में इच्छा, चेष्टा एवं दृढ़ निश्चय की आवश्यकता जरूर है। इसके साथ-साथ अनुसंधान (Research) की निरन्तर आवश्यकता है ताकि शोर को कम से कम जनित होने दिया जाए और जो शोर जनित भी हो उसका मानवीय स्वास्थ्य पर पड़ने वाले हानिकारक प्रभाव को कम किया जा सके। शिक्षा द्वारा इसके लिए लोगों में जागृति लाने (Awareness) की आवश्यकता है।

(5) वन संरक्षण के लिए उपाय (Measures to Conserve Forest)

वन संरक्षण से तात्पर्य वनों को अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन क्षति एवं अवनति से संरक्षित करना है ताकि वे भावी पीढ़ी के उपयोग के लिए निरन्तर उपलब्ध होते रहे (Conservation of Forests refers to protect forests both from short-term and long-term decay and depletion so as to make them continuously available for use by the future generation)। यहाँ वन तथा **वनारोपण** (Afforestation) और **पुनर्रोपण** (Reforestation) में अन्तर बतला देना आवश्यक है। **पुनर्रोपण** का अर्थ है कि वन जहाँ से काटे जा चुके हैं वहाँ वृक्षों को फिर से उगाना, जबकि **वन संरक्षण** का अर्थ होता है वनों का उपयोग इस ढंग से करना कि वे मानव को सदा के लिए उपलब्ध होते रहें, इसके विपरीत **वनारोपण** का अर्थ है नए क्षेत्रों में वन लगाना।

- **वन संरक्षण के लिए रणनीति** (Strategy for Forest Conservation)

वनों के संरक्षण के लिए बहुमुखी (Multifaced) रणनीति में वन पदार्थों के लिए मांग में कटौती अथवा वनों पर दबाव को कम करने से लेकर जनसमूह तथा लोगों में यह भावना जागृत करना है कि वे वनों का विनाशक प्रयोग न करें। इसलिए वनों के संरक्षण के लिए सभी राष्ट्रों द्वारा जो रणनीतियाँ अपनाई जानी चाहिएं वे इस प्रकार हैं: (i) सबसे पहले वन पदार्थों के लिए मांग को घटाना और वनों पर दबाव को कम करना; (ii) यह प्रण लेना कि आज के बाद वनों की और अवनति नहीं होने दी जाएगी; (iii) घर में चूल्हे-चौके के लिए लकड़ी का प्रयोग बन्द करना और ऐसे लोगों के लिए अन्य ऊर्जा स्रोत (Biogas) उपलब्ध कराना; (iv) नई ईंधन वाली लकड़ी (New Fuel Wood) के विकास के लिए वन अनुसंधान को प्रोत्साहित करना और ऐसे नए वृक्षों की खोज करना जो जल्दी से जल्दी बढ़ जाएं और ऐसे वृक्ष खोजना कि जिनकी लकड़ी चूल्हे-चौके के प्रयोग में लाई जा सके; (v) वनों के लिए नई जाति (Species) का आविष्कार करके उनके जीन बैंक (Gene Bank) बनाना ताकि मांगे जाने पर नई विविधताएं (Varieties) उपलब्ध हो जाएं; (vi) आर्थिक विकास के लिए वनों को कम से कम काटना; (vii) वनों में लगने वाली आग को रोकना; (viii) वनों में लगी आग को बुझाने के लिए ऐसे तरीके निकालना कि जिससे आग जल्दी बुझाई जा सके तथा उनसे वनों की क्षति भी कम से कम हो; (ix) प्राकृतिक वनों का पुनर्वनरोपण (Reforestation) करना तथा पुनरुत्थान (Regeneration) करना; (x) ऐसे क्षेत्र जहाँ कृषि करना संभव न हो वहाँ वनों को लगाना (Afforestation); (xi) कृषि एवं सामाजिक बागवानी (Social Forestry) को प्रोत्साहित करना; (xii) अच्छे वन प्रबन्ध (Forest Management) को प्रोत्साहित करना; तथा (xiii) लोगों में वन-संरक्षण की भावना जागृत करना ताकि वनों का दुरुपयोग न हो।

कृषि बागवानी (Agro-Foresting): इससे अभिप्राय है कृषि भूमि में फसलों के साथ-साथ वृक्ष व झाड़ियाँ (Shrubs) आदि लगाना। इससे एक तो चूल्हे-चौके के लिए वनों से लकड़ी लेनी नहीं पड़ेगी, बल्कि लकड़ी खेती से ही मिल जाएगी और दूसरे - मिट्टी के उपजाऊपन को बनाए रखने के लिए मिट्टी को मल्च (Mulch) भी मिलता रहे।

सामाजिक बागवानी (Social Forestry): सामाजिक या सामुदायिक (Community) बागवानी से अभिप्राय है किसानों या पूरे समुदाय को वृक्षारोपण (Forestry) में लगाना। सामाजिक बागवानी में ऐसे वृक्ष लगाए जाते हैं जिनका गृहस्थों या समुदाय में अधिक प्रयोग किया जा सके। भारत में गुजरात तथा पश्चिम बंगाल में ऐसे कई कार्यक्रम बड़े सफल सिद्ध हुए हैं। इनसे एक तो जरूरतमन्द व निर्धन लोगों को रोजगार व जीवनयापन (Livelihood) का साधन मिल जाता है और दूसरे सीमान्त या मरुभूमि पर वनारोपण हो जाता है।

जन-आन्दोलन का निर्माण (Building up People's Movement): वन विनाश (Deforestation) को रोकने के लिए जन-आन्दोलन या जनता को जागृत करना भी एक अच्छी रणनीति सिद्ध हुई है। इस संदर्भ में भारत में **चिपको आन्दोलन** (Chipko Movement) को काफी सफलता मिलती है, यह एक गांधीवादी तरीके से वन विनाश को रोकने का तरीका है। यह आन्दोलन सन् 1972 में सर्वप्रथम उत्तर प्रदेश के गढ़वाल क्षेत्र में शुरू हुआ और आज यह हिमाचल प्रदेश, जम्मू-कश्मीर, अरुणाचल प्रदेश, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार, कर्नाटक आदि कई राज्यों में फैल चुका है। चिपको आन्दोलन को इस बात में सफलता प्राप्त हुई कि अब इन राज्यों में समुद्र स्तर से 1,000 मीटर की ऊँचाई वाले ऐसे क्षेत्रों में, जहाँ ढलान 30 डिग्री से अधिक हो, वृक्ष काटे नहीं जा सकते (Tree-Felling Banned)।

अम्लीय वर्षा की धारणा और इस पर रोक (Acid Rain its Prevention)

अम्लीय वर्षा जैसी गंभीर समस्या से हो रहे वनों के निम्नीकरण से निपटने के लिए विश्वभर की सरकारें और विशेषकर विकसित देशों की सरकारें काफी गंभीरता से समय-समय पर विचार विमर्श करती रहती हैं। आज तक इस समस्या से बचने के लिए जो कदम उठाए जा चुके हैं, वे निम्नलिखित हैं:

(i) जहाँ तक हो सके कोयला व तेल पर आधारित बिजलीघरों से जनित प्रदूषण को कम करना;

(ii) उद्योगों को बाध्य (Force) करना कि वे ऐसा अच्छा कोयला प्रयोग में लाएं कि जिससे सल्फर-डाई-आक्साइड व अन्य प्रदूषण पदार्थ वातावरण में कम से कम जाएं;

(iii) नई से नई तकनीक का आविष्कार करना जिससे पर्यावरण कम से कम प्रदूषित हो। इसमें एक तकनीक है तरल-तल दहन (Fluidised-bed Combustion), इस तकनीक में कोयले व चूने के तरल-तल का प्रयोग करके तापमान को इतना रखा जाता है कि जिससे प्रदूषण कम से कम हो और बिजली भी बनाई जा सके।

■ 4. अल्पविकसित देशों के लिए प्रदूषण/पर्यावरण निम्नीकरण के परिणाम

(Consequences of Pollution/Environmental Degradation for Under Developed Countries)

आने वाले कुछ दशकों में अल्पविकसित देशों में, निर्धनता के कारण, कई पर्यावरण संबंधी चुनौतियों का सामना करना पड़ेगा। इन चुनौतियों में स्वच्छ जल एवं सफाई (Clean Water and Sanitation) के अभाव के कारण पैदा होने वाले स्वास्थ्य संकट, बायोमास स्टोवों से होने वाला घरों के अन्दर वायु प्रदूषण और वन-विनाश तथा मिट्टी के निम्नीकरण के कारण होने वाली क्षति शामिल है। इन देशों में आर्थिक विकल्पों के अभाव के कारण सभी गृहस्थों के रहने-सहने का भावी ढांचा प्रभावित हो सकता है। नीचे बनी तालिका 1 पर्यावरण क्षति (Damage) के कारण तृतीय विश्व (Third World) में प्रमुख स्वास्थ्य एवं उत्पादकता परिणामों का सारांश प्रस्तुत करती है। इसमें क्षति (Damage) को निम्नलिखित सात श्रेणियों में विभाजित किया गया है: जल प्रदूषण तथा जल अभाव, वायु प्रदूषण, ठोस एवं जोखिम भरे अपशिष्ट, मिट्टी निम्नीकरण, वन विनाश, जैव विविधता की हानि तथा वातावरण संबंधी परिवर्तन।

तालिका 1. पर्यावरण क्षति के प्रमुख स्वास्थ्य एवं उत्पादकता परिणाम

(Principal Health and Productivity Consequences of Environmental Damage)

पर्यावरणीय समस्या (Enviornmental Problem)	स्वास्थ्य पर प्रभाव (Effect on Health)	उत्पादकता पर प्रभाव (Effect on Productivity)
1. जल प्रदूषण तथा जल अभाव	प्रदूषण के कारण एक वर्ष में 20 लाख से अधिक मृत्यु हुई हैं और लाखों बीमारी से ग्रस्त हुए हैं; जल अभाव के कारण घरों में साफ-सफाई ठीक नहीं हुई है जिसके कारण स्वास्थ्य जोखिम बढ़े हैं।	मछली क्षेत्र में गिरावट; सुरक्षित जल ढोने में ग्रामीण गृहस्थों के अधिक समय का लगना तथा जल सप्लाई करने में म्यूनिसिपल कमेंटियों के बढ़ते खर्च; एक्वीफर ह्रास के कारण अपरिवर्त्य संग्रह; जल अभाव के कारण आर्थिक क्रिया पर दबाव।

2. वायु प्रदूषण	स्वास्थ्य पर कई तीक्ष्ण एवं दीर्घकालीन प्रभाव: अत्यधिक कणीयद्रव्य (Particulate Matter) स्तर 30,00,000 से 70,00,000 समय से पहले मृत्यु के लिए जिम्मेवार हैं और आधे से अधिक बच्चों की लम्बी खांसी इसी का कारण है: 4 करोड़ से 7 करोड़ लोग, मुख्यत: स्त्रियां और बच्चे घर के अन्दर वाले धुएं से प्रभावित हैं।	नाजुक घटनाओं के दौरान वाहन तथा औद्योगिक क्रिया पर प्रतिबन्ध; अम्लीय वर्षा का वनों तथा जल संकायों पर प्रभाव।
3. ठोस और जोखिम भरे अपशिष्ट	सड़ते कूड़े के अम्बारों एवं बन्द ड्रेनों व नालियों के कारण बीमारियां फैली हैं; हानिकारक अपशिष्टों से अधिक जोखिम, विशेषकर स्थानीय और अक्सर गंभीर बीमारियाँ पैदा होती हैं।	नीचे भूजल संसाधनों का प्रदूषण।
4. मिट्टी निम्नीकरण	मिट्टी के उपजाऊपन के ह्रास के कारण गरीब किसानों के लिए पोषण की समस्या: सूखे की अधिक संभावना।	आम उष्ण-कटिबंधीय मिट्टी पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP) के 0.5% से 1.5% की रेंज में कृषि उत्पादकता की हानि; जलाशयों, नदी यातायात में गाद का भरना और हाइड्रोलिक निवेश।
5. वन-विनाश	स्थानीय क्षेत्र में अधिक बाढ़ें, फलस्वरूप अधिक बीमारियाँ एवं मौतें।	अधिक मिट्टी कटाव, पानी का अधिक छितराव, वनों के निरन्तर कम होने से कम वन उत्पाद।
6. जैव विविधता की हानि	नए ड्रगों की संभावित क्षति।	इकोसिस्टम समन्वयता में गिरावट और जेनेटिक संसाधनों की क्षति।
7. वातावरण सम्बन्धी परिवर्तन	वैक्टरबोर्न बीमारियों से संभावित बदलाव; जलवायु प्राकतिक विनाश से जोखिम: ओजोन ह्रास से पैदा हुई बीमारियां (शायद संसार में एक वर्ष में स्किन कैंसर के 3,00,000 अतिरिक्त मामले और 17 लाख कैटरैक्ट के मामले)।	कृषि उत्पादकता में क्षेत्रीय परिवर्तन; समुद्री भोजन शृंखला में रुकावट।

(Source : World Bank, World Development Report, 1992)
M.P. Todaro : Economic Development P.P. 414-417

■ 5. पर्यावरण प्रदूषण तथा निम्नीकरण के कारण

(Causes of Environmental Pollution and Degradation)

पर्यावरण निम्नीकरण के (विशेषकर भारत के संदर्भ में) मुख्य कारण निम्नलिखित हैं:

(1) जनसंख्या विस्फोट (Population Explosion): पर्यावरण निम्नीकरण का एक मुख्य कारण भारत में जनसंख्या विस्फोट की प्रवृत्ति है। इसके फलस्वरूप भूमि पर जनसंख्या का दबाव बहुत अधिक बढ़ गया तथा भूमि का अधिक शोषण होने लगा। जनसंख्या विस्फोट के कारण वनों के अन्तर्गत भूमि पर से वनों का बहुत अधिक कटाव किया गया क्योंकि इस भूमि का प्रयोग (i) कृषि भूमि तथा (ii) निर्माण योजनाओं अर्थात् (a) शहरी जनसंख्या के लिए मकानों के निर्माण (b) सिंचाई तथा बिजली के लिए नदी घाटी योजनाओं के निर्माण के लिए किया जाना था।

(2) निर्धनता रेखा से नीचे के लोगों की बढ़ती हुई जनसंख्या (Increasing Number of People Below Poverty line): भारत में निर्धनता रेखा से नीचे के लोगों की संख्या काफी अधिक है। ये लोग अपने जीवन निर्वाह के लिए वनों का कटाव करते हैं तथा अनेक प्रकार की प्राकृतिक पूंजी का शोषण करते हैं।

(3) बढ़ता हुआ नगरीकरण (Increasing Urbanization): स्वतन्त्रता के पश्चात् नगरीकरण की प्रवृत्ति में काफी वृद्धि हुई है। इसके फलस्वरूप मकानों तथा अन्य सार्वजनिक सुविधाओं की मांग में काफी वृद्धि हुई है। इनकी बढ़ती हुई मांग को पूरा करने के लिए भूमि तथा अन्य प्राकृतिक साधनों का अत्यधिक शोषण किया गया है।

(4) कृषि का आधुनिकीकरण (Modernisation of Agriculture): कृषि के आधुनिकीकरण के फलस्वरूप रासायनिक खादों, कीटनाशक दवाइयों आदि का प्रभाव बहुत अधिक बढ़ गया है। इसके फलस्वरूप भी प्रदूषण में वृद्धि हुई है।

(5) अधिक तीव्र औद्योगिकीकरण (More Rapid Industrialization): स्वतन्त्रता के बाद भारतीय अर्थव्यवस्था का बहुत तेजी से औद्योगिकीकरण किया गया है। इसके फलस्वरूप वायु-प्रदूषण, जल-प्रदूषण तथा ध्वनि-प्रदूषण में वृद्धि हुई है।

(6) यातायात के साधनों का विविधीकरण (Multiplicity of the Means of Transport): भारत में स्वतन्त्रता के पश्चात् यातायात के साधनों का बढ़ता हुआ विविधीकरण भी पर्यावरण समस्या का एक मुख्य कारण है। इसके फलस्वरूप वायु प्रदूषण और ध्वनि प्रदूषण में बहुत अधिक वृद्धि हुई है।

(7) नागरिक मानदण्डों का त्याग (Discard of Civic Norms): भारतवर्ष में सामान्य जनता नागरिक मानदण्डों को बनाये रखने का प्रयत्न नहीं करती। वे इनका दुरुपयोग करते रहते हैं। उदाहरण के लिए, सड़कों को साफ नहीं रखना, उन पर कूड़ा-करकट बिखरा रहने देना, नालियों की सफाई नहीं करना, उनमें गंदगी फंसी रहने देना, लाऊड स्पीकरों का अधिक प्रयोग करना आदि। इनके फलस्वरूप वातावरण प्रदूषित होता है।

संक्षेप में, जहां एक ओर तेजी से होने वाले औद्योगिकीकरण तथा नगरीकरण के फलस्वरूप पर्यावरण का निम्नीकरण हुआ है वहीं दूसरी ओर लोगों द्वारा नागरिक मानदण्डों की अवहेलना के कारण प्रदूषण की प्रक्रिया स्थायी हो गई है।

■ 6. आर्थिक संवृद्धि एवं पर्यावरण सम्बन्धी नीतियाँ

(Economic Growth and Environmental Policies)

आर्थिक संवृद्धि के साथ-साथ पर्यावरण संरक्षण के सम्बन्ध में निम्नलिखित नीतियां अपनाई जा सकती हैं:

(1) उचित संसाधन कीमत निर्धारण (Proper Resource Prices): अल्पविकसित देशों में सरकार की कीमत नीति में परिवर्तन किया जाना चाहिये। सरकार की कीमत नीति के फलस्वरूप संसाधनों की पूर्ति में तेजी से कमी हो सकती है या उत्पादन की निरन्तर न चलने वाली (Unsustainable) विधियों को प्रोत्साहन मिल सकता है। कई बार सरकार की कीमत नीतियां जो निर्धनों की सहायता करने के उद्देश्य से बनाई जाती हैं, उनके फलस्वरूप असमानता और निर्धनता कम होने के स्थान पर बढ़ जाती है। सरकार द्वारा बिजली, पानी और कृषि के लिये जो रियायतें (Subsidies) दी जाती है उसका लाभ सामान्यत: निर्धनों के स्थान पर धनी लोगों को मिलने लगता है। इसके फलस्वरूप संसाधनों का उचित प्रयोग नहीं हो पाता। इसलिये पर्यावरण संरक्षण के लिये रियायतों

(Subsidies) को कम किया जाना चाहिये। सरकार की कीमत नीति इस प्रकार की होनी चाहिये जिनसे लाभ प्राप्त हो सके और उस लाभ का प्रयोग निर्धनों को प्रत्यक्ष रूप से आर्थिक सुविधाएँ उपलब्ध कराने तथा पर्यावरण संरक्षण के लिये किया जाना चाहिये।

(2) सामाजिक भागीदारी (Community Involvement): वातावरण संरक्षण के लिये ऐसे उपाय अपनाये जाने चाहिये जो स्थानीय साधनों का प्रयोग करके अस्थानीय लोगों द्वारा लागू किये जा सकें। इसके लिये आवश्यक है कि आर्थिक विकास एवं पर्यावरण संरक्षण की योजनाओं में लोगों की निश्चित भागीदारी होनी चाहिए। उन्हें योजनाओं के कार्यकरण एवं लाभों के विषय में पूर्ण जानकारी होनी चाहिए। इस प्रकार की योजनाओं की लागत भी कम होगी और उनका आर्थिक विकास तथा पर्यावरण दोनों पर अनुकूल प्रभाव पड़ेगा।

(3) स्पष्ट सम्पत्ति अधिकार एवम् संसाधनों का स्वामित्त्व (Clear Property Rights and Ownership of Resources) : देश में सम्पत्ति अधिकार सम्बन्धी कानून स्पष्ट होने चाहिये। जब लोगों का अपनी सम्पत्ति और साधनों पर निजी स्वामित्व होता है तब वे उसका किफायत और कुशलता से प्रयोग करते हैं। इसके विपरीत जब सम्पत्ति पर सभी लोगों का समान रूप से स्वामित्व (Common Property rights) होता है तो उसका किफायत पूर्ण एवम् कुशलता पूर्ण प्रयोग नहीं होता। इसलिये आवश्यक है कि देश में सम्पत्ति सम्बन्धी कानून ऐसे होने चाहिये जिससे लोगों को निजी सम्पत्ति प्राप्त करने के लिये प्रोत्साहित किया जा सके। कृषि भूमि का स्वामित्व भी समान होना चाहिये। इसके लिए उचित भूमि सुधार किये जाने चाहियें। सम्पत्ति के निजी स्वामित्व के फलस्वरूप लोगों को अपना आर्थिक विकास करने तथा पर्यावरण के प्रदूषण को रोकने के लिये प्रोत्साहन मिलेगा।

(4) निर्धनों के आर्थिक विकल्पों में सुधार सम्बन्धी प्रोग्राम (Programmes to Improve the Economic Alternatives of the Poor): ग्रामीण क्षेत्रों में पर्यावरण के निम्नीकरण को रोकने एवम् वनों तथा भूमि संरक्षण के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिये निर्धन जनसंख्या के आर्थिक विकास के लिये वैकल्पिक आर्थिक योजनायें आरम्भ की जाये। इसके लिये सरकार को चाहिये कि सिंचाई की उचित व्यवस्था की जाये। निर्धन किसानों को कृषि आगत जैसे बीज, खाद, पानी, यन्त्र उचित कीमतों और समय पर उपलब्ध कराये जाने चाहिये। ग्रामीण क्षेत्रों में आर्थिक संरचना जैसे सड़कों आदि का विकास किया जाना चाहिये। गांवों की अवस्था में सुधार किया जाना चाहिये। इसके फलस्वरूप निर्धन वर्ग प्रदूषण को कम करने के लिये प्रयत्नशील होंगे। वनों, भूमि और जल का कम शोषण करेंगे।

(5) महिलाओं के आर्थिक स्तर में सुधार (Raising the Economic Status of Women): महिलाओं के शैक्षिक स्तर में सुधार होने एवम् उनकी आर्थिक क्षमता में वृद्धि होने के फलस्वरूप आर्थिक विकास तथा पर्यावरण संरक्षण कई प्रकार से लाभान्वित होंगे। एक तो शिक्षित एवम् आर्थिक दृष्टि से आत्म निर्भर महिलाएं छोटे परिवार को पसन्द करेंगी। जिससे जनसंख्या वृद्धि कम होगी। वे अपने बच्चों और परिवार के पोषण का उचित ध्यान रख सकेंगी जिससे शिशु मृत्यु दर कम होगी। शिक्षित स्त्रियां सामुदायिक विकास कार्यक्रमों को सफल बनाने में सहायक सिद्ध हो सकती है।

(6) औद्योगिक प्रदूषण नियंत्रण सम्बन्धी नीतियाँ (Policies Relating to Industrial Pollution Control): औद्योगिक प्रदूषण को रोकने के लिये सख्त नीतियां अपनायी जानी चाहियें। प्रदूषण में वृद्धि करने वाले उद्योगों पर अधिक कर लगाये जाने चाहिए। इस सम्बन्ध में कानूनों का सख्ती से पालन किया जाना चाहिये।

(7) पर्यावरण संरक्षण सम्बन्धी उपाय (Methods Relating to Environment Protection): पर्यावरण संरक्षण के निम्नलिखित सुझाव दिये जा सकते हैं:

(i) सामाजिक जागरूकता: देश की जनता को प्रदूषण से उत्पन्न खतरों के विषय में बताया जाना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति को इस बात के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए कि वह अपने स्तर पर प्रदूषण कम करने का प्रयत्न करे।

(ii) जनसंख्या नियन्त्रण: पर्यावरण संरक्षण के लिए जनसंख्या को नियन्त्रित करना आवश्यक है।

(iii) पर्यावरण संरक्षण कानून का सख्ती से पालन: भारत में पर्यावरण संरक्षण कानून 1986 में लागू किया गया था। इस कानून का उद्देश्य पर्यावरण की क्वालिटी में कमी नहीं होने देना है। इस कानून का सख्ती से पालन किया जाना चाहिए।

(iv) उचित वृक्षारोपण: पर्यावरण संरक्षण के लिए यह आवश्यक है कि अधिक मात्रा में वन लगाए जाएं।

(v) औद्योगिक तथा कृषि प्रदूषण पर नियन्त्रण: पर्यावरण संरक्षण के लिए आवश्यक है कि औद्योगिक विकास के फलस्वरूप जो वायु व जल प्रदूषण होता है उसे नियन्त्रित किया जाए। कृषि प्रदूषण से बचने के लिए कीटाणुनाशक दवाइयों और रासायनिक खादों का कम प्रयोग किया जाए।

(vi) स्वच्छ जल का प्रबन्ध : भारत में पर्यावरण संरक्षण के लिए आवश्यक है कि नदियों के जल को स्वच्छ बनाया जाए तथा गांवों में पीने के लिए स्वच्छ जल की व्यवस्था की जाए।

(vii) कूड़ा-करकट का उचित प्रबन्ध: पर्यावरण संरक्षण के लिए आवश्यक है कि ठोस कूड़ा-करकट की नियोजित ढंग से व्यवस्था की जाए। उनका रासायनिक उपचार किया जाए। गांवों में कूड़े की समस्या से निपटने के लिए कम्पोस्टिंग विधि द्वारा उसे खाद में बदला जाए।

(viii) आवास व्यवस्था में सुधार: पर्यावरण संरक्षण के लिए यह भी आवश्यक है कि लोगों के रहने की व्यवस्था साफ-सुथरी होनी चाहिए। गन्दी बस्तियों के स्थान पर साफ बस्तियों का निर्माण किया जाना चाहिए।

(8) आर्थिक समृद्धि एवम् पर्यावरण संरक्षण के लिये विकसित देशों द्वारा किये जाने वाले उपाय (Measures to be taken by developed countries for Environmental Protection): निर्धन देशों की आर्थिक संवृद्धि एवम् प्रदूषण संरक्षण के लिये धनी एवम् विकसित देशों में निम्नलिखित उपाय करने चाहियें:

(i) निर्धन देशों को आर्थिक सहायता देनी चाहिए तथा उनके ऋणों में कमी की जानी चाहिए या उनके ऋण माफ कर देने चाहियें।

(ii) औद्योगिक प्रदूषण तथा अन्य प्रकार के प्रदूषणों की रोकथाम की जानी चाहिये।

(iii) प्रदूषण संरक्षण के लिये खोज की जानी चाहिये।

(iv) ऐसी वस्तुओं के आयात पर रोक लगा देनी चाहिये जिनके फलस्वरूप प्रदूषण में वृद्धि की सम्भावना होती है।

संक्षेप में, इस प्रकार की नीतियाँ अपनायी जानी चाहियें जिससे आर्थिक संवृद्धि एवम् प्रदूषण से बचाव दोनों ही सम्भव हो सकें।

प्रश्न (QUESTIONS)

■ I. वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

सभी प्रश्न अनिवार्य हैं (Attempt all the Questions)

1. प्रदूषण का मूल कारण है (आर्थिक शक्तियां, राजनैतिक शक्तियां) (K.U. 2005)
2. वायु प्रदूषण का मुख्य स्रोत संभवत: है वाहन प्रदूषण तथा (औद्योगिक निस्सारण, औद्योगिक रख-रखाव)
3. पर्यावरण की स्वच्छता निर्भर करती है (स्वच्छ जल पर, अशुद्ध जल पर)
4. जल संदूषण का एक मुख्य कारण है (औद्योगिक अपशिष्ट, नियन्त्रित शहरी अपशिष्ट)
5. निर्धन देशों की तुलना में धनी देशों द्वारा ठोस कूड़ा-करकट का प्रजनन होता है (अधिक, कम)
6. कूड़ा उठाने वाले लोगों को समझा जा सकता है (पर्यावरण मित्र, पर्यावरण शत्रु)
7. वन विनाश का एक परिणाम है (कम बाढ़, बाढ़ों का बार-बार आना)
8. शोर से अभिप्राय है (उच्च तीव्रता वाली ध्वनि, निम्न तीव्रता वाली ध्वनि)

उत्तर (Answers): (1) आर्थिक शक्तियाँ, (2) औद्योगिक निस्सारण, (3) स्वच्छ जल पर, (4) औद्योगिक अपशिष्ट, (5) अधिक , (6) पर्यावरण मित्र, (7) बाढ़ों का बार-बार आना, (8) उच्च तीव्रता वाली ध्वनि।

■ II. लघु/परिभाषा रूपी प्रश्न (Short/Definitional Type Questions)

1. प्रदूषण की परिभाषा दीजिए तथा इसके विभिन्न प्रकार बताइए। (K.U. 2007, 2008)
2. वायु प्रदूषण की परिभाषा दें।

3. जल संदूषण के मुख्य स्रोत क्या हैं?
4. वन-विनाश के मुख्य कारण क्या हैं?
5. ध्वनि और शोर में क्या अन्तर है?
6. शोर प्रदूषण के प्रभाव क्या हैं?
7. अम्लीय वर्षा से क्या अभिप्राय है?
8. वायु प्रदूषण को रोकने के लिए चार उपाय बतलाएं।
9. जल संदूषण को कम करने के लिए चार उपाय बतलाएं।
10. ठोस कूड़ा करकट की समस्या को आप कैसे नियंत्रित कर सकते हैं?
11. शोर प्रदूषण को कम करने के दो उपाय बतलाएं।
12. वन संरक्षण से क्या अभिप्राय है?
13. अम्लीय वर्षा के लिए सुधारात्मक उपाय बतलाएं।
14. पर्यावरण निम्नीकरण के कारणों की दो बातें बतलाएं।
15. पर्यावरण संरक्षण से संबंधित दो नीति उपायों का सुझाव दें।
16. जैव विविधता में गिरावट की संक्षिप्त व्याख्या कीजिए। (M.D.U. 2009)

■ III. निबन्ध रूपी प्रश्न (Essay Type Questions)

1. Define pollution and state its various types. Also suggest the possible remedies.
   प्रदूषण की परिभाषा दीजिए तथा इसके विभिन्न प्रकारों की व्याख्या कीजिए। इसके समाधान के उपाय भी बताइए।
   (K.U. 2006, M.D.U. 2007)

   अथवा

   Explain various types of pollution. Explain in brief the measures for their solution.
   प्रदूषण के विभिन्न प्रकारों की व्याख्या करें। इनके समाधान के उपाय भी संक्षिप्त में लिखें। (M.D.U. 2009)
2. What is air pollution? Suggest remedies to solve the problem of air pollution?
   वायु प्रदूषण से क्या अभिप्राय है? वायु प्रदूषण की समस्या को हल करने के लिए सुझाव दें।
3. What is water pollution? What are the main sources of water contamination? Suggest measures to control the problem of water pollution.
   जल प्रदूषण से क्या अभिप्राय है? जल संदूषण के मुख्य स्रोत क्या हैं? जल प्रदूषण को नियंत्रित करने के उपाय बतलाएं।
4. What do you mean by deforestation? What are its causes and consequences? Suggest the strategy for forest conservation.
   वन-विनाश से आपका क्या तात्पर्य है? इसके कारण तथा परिणाम क्या हैं? वन संरक्षण के लिए रणनीति का सुझाव दें।
5. How will you explain noise pollution? What is the impact of noise pollution? Suggest the measures to control noise pollution.
   शोर प्रदूषण की व्याख्या आप कैसे करेंगे? शोर प्रदूषण के प्रभाव क्या हैं? शोर प्रदूषण को नियन्त्रित करने के लिए उपाय बतलाएं।
6. What are the consequences of pollution for under-developed countries?
   अल्पविकसित देशों में प्रदूषण के क्या परिणाम हैं?
7. What are the causes of environmental pollution and degradation? Suggest possible remedies and environental policies in this regard.
   पर्यावरण प्रदूषण एवं निम्नीकरण के क्या कारण हैं? इस संदर्भ में पर्यावरण संबंधी उपायों तथा नीतियों का विवरण दें।

14

पर्यावरण (संरक्षण) कानून की मुख्य विशेषताएँ

[SALIENT FEATURES OF ENVIRONMENT (PROTECTION) ACT]

■ 1. भूमिका (Introduction)

समस्त विश्व में मानवीय पर्यावरण का संरक्षण एवम् विकास लोगों के कल्याण एवम् आर्थिक विकास को प्रभावित करने वाला मुख्य तत्व है। पर्यावरण से तात्पर्य किसी वस्तु के पास-पड़ोस (Surroundings) से है। उदाहरण के लिये, किसी पौधे का पर्यावरण वे परिस्थितियाँ हैं, जो उसकी वृद्धि में सहायक होती हैं। हमारे लिए उस पर्यावरण का महत्त्व सबसे अधिक है जिसमें मनुष्य रहता है। **श्री आर. के पचौरी के अनुसार, "पर्यावरण की परिभाषा उन समस्त परिस्थितियों तथा प्रभावों के योग रूप में की जा सकती है जो प्राणियों के जीवन तथा विकास को प्रभावित करती है।"** (Environment may be defined as the sum total of all *conditions and influences that affect the development and life of organism.* – **R.K. Pachori**) हमारे पर्यावरण के दो अंग हैं: (1) **भौतिक पर्यावरण** (Physical Environment) (2) **जैवीय पर्यावरण** (Biological Environment)। भौतिक पर्यावरण में भूमि, जल तथा वायु जैसे निर्जीव या अजैव (Non-living) तत्त्व शामिल हैं। जैवीय पर्यावरण में पेड़-पौधे और छोटे-बड़े सभी जीव-जन्तु सम्मिलित हैं। पर्यावरण के ये दोनों अंग एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। *भौतिक पर्यावरण के बदलने से जैवीय पर्यावरण भी बदल जाता है तथा जैवीय पर्यावरण के बदलने से भौतिक पर्यावरण बदल जाता है।* कई प्रकार की खतरनाक वस्तुयें (Hazards) पर्यावरण को प्रदूषित (Pollute) करती रहती हैं। प्रदूषण सभी जीवित प्राणियों के लिये हानिकारक होता है। भारत सरकार ने 1986 से पहले पर्यावरण से संबंधित कई कानून पारित किये हैं। परन्तु ये सभी कानून आंशिक हैं तथा केवल किसी विशेष समस्या से संबंधित है। सरकार ने 1986 में पर्यावरण संबंधी एक विस्तृत कानून लागू किया है। इसे **पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम या कानून 1986,** कहा जाता है। इस कानून को पारित करने के लिये 1972 में **स्टाकहोम** में आयोजित **मानवीय पर्यावरण संबंधी यूनाइटेड नेशन्स कान्फ्रेंस** (United Nations Conference on the Human Environment) ने सरकार को प्रेरित किया था। इस कानून को 1985 में स्थापित **पर्यावरण एवम् वन मन्त्रालय (Ministry of Environment and Forest) लागू करता है।**

■ 2. पर्यावरण (संरक्षण) कानून, 1986 के उद्देश्य
(Objectives of Environment (Protection) Act., 1986)

पर्यावरण (संरक्षण) कानून 12 नवम्बर, 1986 को लागू किया गया था। इस कानून के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं:

(1) इस कानून का मुख्य लक्ष्य पर्यावरण की क्वालिटी का संरक्षण करना तथा उसमें वृद्धि करना है। इस कानून का उद्देश्य पर्यावरण की क्वालिटी में कमी नहीं होने देना है। पर्यावरण की क्वालिटी में निम्नलिखित कारणों से गिरावट आती है। (i) प्रदूषण में वृद्धि (ii) जैविक विविधता की हानि (Loss of Biological Diversity) (iii) वातावरण तथा भोजन श्रृंखलाओं (Foodchains) में

हानिकारक पदार्थों का अत्यधिक मात्रा में जमा हो जाना (iv) पर्यावरण संबंधी दुर्घटनाओं की **बढ़ती हुई जोखिम।** (v) **जीवन उपयोगी** प्रणालियों (Life Support Systems) को खतरा।

(2) इस कानून का दूसरा उद्देश्य पर्यावरण संबंधी सभी समस्याओं का समाधान करना है। यह एक **व्यापक कानून है।** यद्यपि इससे पहले पर्यावरण के विभिन्न पहलुओं से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से संबंधित कई कानून बनाये गये हैं परन्तु पर्यावरण संरक्षण के लिये एक व्यापक कानून की आवश्यकता थी।

(3) पर्यावरण (संरक्षण) कानून का एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है पर्यावरण सुरक्षा का अध्ययन करना, उसके संबंध में योजना बनाना तथा उसे लागू करने के लिये एक अधिकारी या प्राधिकरण की नियुक्ति करना है।

(4) इस कानून का उद्देश्य पर्यावरण को हानि पहुंचाने वाली आपातकालीन स्थितियों से बचाव के लिए शीघ्रगामी तथा पर्याप्त तरीकों का निर्देशन तथा समन्वय करना है।

(5) इस कानून का उद्देश्य पर्यावरण संबंधी विभिन्न अधिकारियों या रेग्यूलेटिंग एजेन्सियों के **कार्यों को समन्वित करना है।** पर्यावरण संबंधी विभिन्न रेग्यूलेटिंग एजेन्सियाँ होने के कारण एक केन्द्रीय एजेन्सी की आवश्यकता थी।

(6) पर्यावरण (संरक्षण) कानून का उद्देश्य एक ऐसे **प्राधिकरण** (Authority) की स्थापना करना है जिसे **पर्यावरण संरक्षण** करने, प्रदूषित पदार्थों के वातावरण में फैलने को नियन्त्रित करने तथा हानिकारक पदार्थों के उत्पादन तथा **बिक्री को नियंत्रण करने का** अधिकार हो।

(7) इस कानून का उद्देश्य एक ऐसे **प्राधिकरण** (Authority) की स्थापना करना है जो पर्यावरण को हानि पहुंचाने वाली दुर्घटनाओं को तुरन्त रोक सके। यह प्राधिकरण उन लोगों को सजा भी देगा जो पर्यावरण को दूषित करके मानवीय सुरक्षा तथा स्वास्थ्य को हानि पहुंचाते हैं।

■ 3. पर्यावरण (संरक्षण) कानून, 1986 की मुख्य विशेषताएं
(Salient Features of Environment (Protection) Act, 1986)

पर्यावरण (संरक्षण) कानून, 1986 की मुख्य विशेषतायें निम्नलिखित हैं:

(1) संक्षिप्त शीर्षक एवम् कानून पारित की तिथि (Short Title and Commencement of the Act): पर्यावरण (संरक्षण) कानून, 12 नवम्बर, 1986 को लागू किया गया था। इसका उद्देश्य पर्यावरण को संरक्षण प्रदान करना तथा उसके सुधार से संबंधित तत्वों को लागू करना है। इस कानून को लागू करने की प्रेरणा 1972 में स्टाकहॉम में होने वाली **मानवीय पर्यावरण संबंधी यूनाइटेड नेशन्स कान्फ्रेंस** (United Nations Conference on Human Environment) **की अधिघोषणा** (Proclaimation) से मिली थी। इस कान्फ्रेंस में भारत ने भी भाग लिया था।

(2) पर्यावरण संरक्षण कानून की धारायें (Sections of Environment Protection Act.): इस कानून के चार अध्याय तथा 26 धारायें (Sections) हैं। इस एक्ट की धारा 6 तथा धारा 25 ने केन्द्रीय सरकार को पर्यावरण के संरक्षण तथा सुधार के लिये कानून बनाने का अधिकार दिया है। केन्द्रीय सरकार ने **पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम,1986 में लागू किये हैं।**

(3) कानून का विस्तार (Extent of the Act): पर्यावरण (संरक्षण) कानून, 1986 एक व्यापक कानून है। यह समस्त भारत पर लागू होता है। इस कानून को **प्रदूषण तथा वन मन्त्रालय** लागू करता है।

(4) पर्यावरण संबंधी व्यापक परिभाषा (Comprehensive Definition of Environment): इस कानून की धारा 2 में पर्यावरण की एक व्यापक परिभाषा दी गई है। इस कानून के अनुसार "**पर्यावरण शब्द से अभिप्राय वायु, तथा जल भूमि और वायु, जल तथा भूमि और मनुष्यों, अन्य जीवित प्राणियों, पौधों, सूक्ष्म जीवों तथा सम्पत्ति में पाये जाने वाले अन्तर्सम्बन्ध से है।**" (Environment includes water, air and land and the inter-relationship which exists among and between water, air, land and human beings and other creatures, plants, micro-organisms and

property.) पर्यावरण की उपरोक्त परिभाषा के व्यापक अर्थ हैं। इसके अन्तर्गत भौतिक पर्यावरण तथा जैविक पर्यावरण दोनों ही शामिल हैं।

(5) प्रदूषण की व्यापक धारणा (Wider Concept of Pollution): इस कानून ने प्रदूषण की वायु, ध्वनि तथा जल संबंधी व्यापक धारणा प्रस्तुत की है। कानून की धारा 2 के अनुसार "**पर्यावरण प्रदूषण से अभिप्राय पर्यावरण में प्रदूषित पदार्थों की उपस्थिति से है**" (Environment pollution means the presence in the environment of any environmental pollutant.)। **प्रदूषित पदार्थ** (Environmental pollutant) **से अभिप्राय उस ठोस, तरल या गैसीय पदार्थ से है जो पर्यावरण में इतनी मात्रा में मौजूद हो जाये कि हानिकारक सिद्ध होने लगे।** (Environment pollutant means any solid, liquid, or gaseous substance present in such concentration which may be, or tend to be injurious environment.)

प्रदूषण खतरनाक सामग्री (Hazardous substance) के कारण भी हो सकता है। **खतरनाक पदार्थ** से अभिप्राय उस पदार्थ से है जो अपनी रासायनिक या भौतिक रासायनिक गुणों या निर्माण प्रक्रिया के कारण मनुष्यों, अन्य जीवित प्राणियों, पौधों, सूक्ष्म जीवी, सम्पत्ति पर्यावरण को हानि पहुंचा सकती है।

(6) केन्द्रीय सरकार को पर्यावरण के संरक्षण एवम् सुधार संबंधी उपाय अपनाने का अधिकार (Central Government is authorised to take measures to protect and improve environment): इस कानून की धारा 3 ने केन्द्रीय सरकार को पर्यावरण की क्वालिटी का संरक्षण करने तथा उसमें सुधार करने का अधिकार दिया है। केन्द्रीय सरकार को पर्यावरण के प्रदूषण को रोकने, उसका नियंत्रण करने तथा उसे हटाने के लिये उपाय करने का अधिकार दिया गया है।

(7) पर्यावरण में सुधार एवं प्रदूषण को रोकने के उपाय (Measures to Improve Environment and Prevent Pollution): इस कानून की धारा 3 की उपधारा (2) में पर्यावरण में सुधार करने तथा प्रदूषण को नियमित करने के लिये निम्नलिखित उपायों का वर्णन किया गया है:

(i) पर्यावरण के प्रदूषण को रोकने, नियन्त्रण करने तथा हटाने के लिये एक राष्ट्रीय कार्यक्रम का नियोजन तथा क्रियान्वयन।

(ii) पर्यावरण की क्वालिटी के विभिन्न पहलुओं के मानक (Standards) निर्धारित करना।

(iii) विभिन्न उद्योगों द्वारा फेंके जाने वाली प्रदूषण सामग्री के मानक तय करना।

(iv) उन क्षेत्रों को प्रतिबन्धित करना जहां कोई उद्योग या क्रिया, या प्रक्रिया (Process) चलाई नहीं जा सकती या कुछ सावधानियों के अन्तर्गत चलाई जा सकती हैं।

(v) पर्यावरण को प्रदूषित करने वाली दुर्घटनाओं की रोकथाम के लिये कार्य पद्धति (Procedure) तथा सावधानियां निर्धारित करना। दुर्घटना हो जाने पर उसके रोकथाम के लिये उपाय करना।

(vi) खतरनाक सामग्री (Hazardous Substance) के उत्पादन तथा उपयोग के संबंध में कार्य पद्धति तथा सावधानियां निर्धारित करना।

(vii) पर्यावरण प्रदूषण करने वाली विनिर्माण क्रिया (Manufacturing) की प्रक्रिया, वस्तुओं तथा पदार्थों का निरीक्षण करना।

(viii) पर्यावरण प्रदूषण से संबंधित समस्याओं के संबंध में अनुसंधान तथा खोज करना।

(ix) यह ज्ञात करने के लिये कि कोई कारखाना या प्रक्रिया प्रदूषण तो नहीं फैला रही, उसकी जांच करना। उनके कार्यों को नियमित करने के लिये आवश्यक उपाय करना।

(8) अनुसंधान तथा सूचना प्रसारण (Research and Information Dissemination): पर्यावरण (संरक्षण) कानून 1986 ने केन्द्रीय सरकार को पर्यावरण के सुधार तथा प्रदूषण के नियंत्रण के विभिन्न पहलुओं से सम्बन्धित अनुसंधान करने के लिये **प्रयोगशालायें** (Laboratories) स्थापित करने का अधिकार दिया है। इस कानून में पर्यावरण के प्रदूषण से संबंधित सूचना को एकत्रित

करना तथा उसका प्रसार करने का भी प्रावधान किया गया है। पर्यावरण प्रदूषण को रोकने तथा नियमित करने के लिये सरकार को मैन्यूल्स तथा गाइड्स भी तैयार करने होंगे।

(9) प्राधिकरण की स्थापना (Establishment of an Authority): इस कानून ने केन्द्रीय सरकार को पर्यावरण में सुधार करने तथा प्रदूषण को नियन्त्रित करने से संबंधित कार्यों को करने के लिये एक या कई प्राधिकरण (Authority) स्थापित करने का अधिकार दिया है। कानून को इस प्रावधान के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार ने **केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड** (Central Pollution Control Board) की स्थापना की है। यह बोर्ड जल एवम् वायु प्रदूषण के मूल्यांकन, निगरानी तथा नियंत्रण के लिये शीर्षस्थ राष्ट्रीय संस्था (Apex National Body) है।

(10) निर्देशन का अधिकार (Power to give Direction): इस कानून की धारा 5 के अनुसार सरकार को प्रदूषण फैलाने वाले किसी भी व्यक्ति या उद्योग को निर्देशन देने का अधिकार दिया गया है। इस अधिकार के अर्न्तगत निम्नलिखित बातों को शामिल किया गया है। (a) उस उद्योग या प्रक्रिया को बन्द करने, नियन्त्रित करने या रेग्युलेट करने का निर्देशन (b) उस उद्योग या व्यक्ति को बिजली, पानी या किसी अन्य सेवा की पूर्ति को बन्द करने का निर्देशन। जो लोग या उद्योग सरकार के निर्देशों का पालन नहीं करेंगे उन्हें सजा दी जायेगी।

(11) पर्यावरण प्रदूषण की रोकथाम को नियमित करने संबंधी नियम (Rules to Regulate Environment Pollution): पर्यावरण (संरक्षण) कानून, 1986 की धारा 6 के अनुसार केन्द्रीय सरकार को पर्यावरण के प्रदूषण को नियमित करने के संबंध में नियम बनाने का अधिकार दिया गया है। ये नियम निम्नलिखित तत्वों में से सभी या किसी एक के संबंध में बनाये जा सकते हैं:

(i) विभिन्न क्षेत्रों तथा उद्देश्य के लिये हवा, पानी, भूमि की क्वालिटी के मानक (Standard of Quality) का निर्धारण।

(ii) विभिन्न क्षेत्रों के लिये पर्यावरण को प्रदूषित करने वाले विभिन्न पदार्थों जिनमें ध्वनि (Sound) भी शामिल है कि अधिकतम स्वीकृत सीमा का निर्धारण।

(iii) खतरनाक पदार्थों की **हैंडलिंग** (Handling) की कार्य-पद्धति एवम् सावधानियों का निर्धारण।

(iv) विभिन्न क्षेत्रों में **खतरनाक सामग्रियों** (Hazardous substances) की **हैंडलिंग** पर रोकथाम तथा प्रतिबन्ध । किसी पदार्थ की **हैंडलिंग** से अभिप्राय है उसका उत्पादन, प्रोसेसिंग, पैकेज, स्टोरेज, यातायात, प्रयोग, बिक्री आदि।

(v) विभिन्न क्षेत्रों में उद्योगों की स्थापना तथा प्रक्रियाओं की रोकथाम तथा प्रतिबन्ध।

(vi) पर्यावरण प्रदूषण करने वाली दुर्घटनाओं को रोकने के लिये कार्यपद्धति तथा सावधानियां निर्धारित करना। इन दुर्घटनाओं से बचाव के नियमों का निर्धारण।

(12) पर्यावरण के प्रदूषण की रोकथाम (Prevention of Environment Pollution): पर्यावरण (संरक्षण) कानून की धारा 7 तथा 8 का सम्बन्ध पर्यावरण के प्रदूषण की रोकथाम से है। पर्यावरण प्रदूषण को निर्धारित सीमा के अधिक फैलाने पर सख्ती से पाबन्दी लगा दी गई है। जो लोग खतरनाक पदार्थों की हैंडलिंग करते हैं उन्हें इनके सम्बन्ध में सभी कार्य पद्धतियों तथा सावधानियों का पालन करना होगा।

(13) पर्यावरण प्रदूषण का नियंत्रण (Control of Environmental Pollution): इस कानून की धारा 9 से 14 में पर्यावरण प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिये कई उपाय सुझाये गये हैं। इनमें मुख्य उपाय निम्नलिखित हैं:

(a) **जब कोई प्रदूषण पदार्थ** (Environmental Pollutants) पर्यावरण की निर्धारित मात्रा से आगे फैलने लगता है या उसके फैलने की सम्भावना होती है तो सम्बन्धित व्यक्ति या उद्योग के लिए इसकी सूचना उपयुक्त अधिकारी को देनी आवश्यक है। इस सम्बन्ध में सभी संभव सहायता प्रदान करनी भी आवश्यक है। प्रदूषण सम्बन्धी सूचना प्राप्त होने पर सम्बन्धित अधिकारी को तुरन्त ही उसे रोकने के उपाय करने चाहिए। इस सम्बन्ध में जो खर्च किया जायेगा, वह प्रदूषण के लिये जिम्मेदार व्यक्ति या अधिकारी से वसूल किया जा सकता है।

(b) इस कानून की धारा 10, उपयुक्त अधिकारियों को इस बात का अधिकार देती है कि वे प्रदूषण फैलाने की सम्भावना वाले किसी भी उद्योग या प्लान्ट का निरीक्षण कर सकते हैं।

(c) अधिकृत सरकारी अधिकारी किसी भी उद्योग या स्थान से वायु, पानी, मिट्टी या किसी भी पदार्थ के विश्लेषण के लिये सैम्पल ले सकते हैं। इन सैम्पलों का पर्यावरण प्रयोगशालाओं में सरकारी विशेषज्ञों द्वारा विश्लेषण किया जाता है।

(14) कानून का पालन नहीं करने वालों के लिए सजा का प्रावधान (Penalties for the contravention of the Provisions of this Act): इस कानून की धारा 15 से 21 का सम्बन्ध इस कानून का पालन नहीं करने वालों के लिये सजा का प्रावधान करने से है। जो लोग इस कानून की धाराओं का पालन नहीं करेंगे उन्हें कैद या जुर्माना या दोनों ही सजाएं दी जा सकती हैं। उस सरकारी विभाग के उच्च पदाधिकारी को भी सजा दी जा सकती है जो विभाग इस कानून का पालन नहीं करता।

(15) नियम बनाने का अधिकार (Power to Formulate Rules): पर्यावरण (संरक्षण) कानून 1986 में केन्द्रीय सरकार को निम्नलिखित में से सभी या किसी एक बात के सम्बन्ध में नियम बनाने का अधिकार दिया गया है।

(i) पर्यावरण को प्रदूषित करने वाले पदार्थों को निर्धारित मानकों (Standards) से अधिक मात्रा में नहीं फैलने देने के सम्बन्ध में नियम।

(ii) खतरनाक पदार्थों की हैंडलिंग करते समय बरती जाने वाली सावधानियों से सम्बन्धित नियम।

(iii) उन अधिकारियों से सम्बन्धित नियम जिन्हें प्रदूषण पदार्थों के सम्बन्ध में सूचित किया जाना चाहिये।

(iv) हवा, पानी, भूमि या अन्य पदार्थों में प्रदूषण की मात्रा ज्ञात करने के लिए उनका विश्लेषण (Analysis) करने के सम्बन्धों में लिये जाने वाले सैम्पलों के बारे में नियम।

(v) प्रदूषण प्रयोगशालाओं के कार्यों के सम्बन्ध में नियम।

(vi) सरकारी विश्लेषणकर्ताओं (Government Analysts) की योग्यताओं से सम्बन्धित नियम।

(vii) उन अधिकारियों के सम्बन्ध में नियम जिन्हें रिपोर्ट, आंकड़े तथा अन्य सूचनाएं भेजी जानी हैं।

संक्षेप में, पर्यावरण (संरक्षण) कानून, 1986 का देश के पर्यावरण सम्बन्धी अधिनियमों में उच्चतम स्थान है। इससे पर्यावरण तथा प्रदूषण की समस्याओं को समझने में मदद मिलने के साथ-साथ उनके रोकथाम में भी मदद मिलती है। इस कानून ने सरकार को पर्यावरण में सुधार करने तथा प्रदूषण की रोकथाम के लिये पर्याप्त अधिकार प्रदान किये हैं।

■ 4. अन्य पर्यावरण संबंधित कानून (Other Environmental Legislation)

उपरोक्त पर्यावरण (संरक्षण) कानून, 1986 के अतिरिक्त, पर्यावरण से संबंधित अन्य कानूनी उपाय निम्नलिखित हैं:

■ 4.1 वन-जीवन (सुरक्षा) कानून, 1972 [The Wild Life (Protection) Act, 1972]

भारत में वन-जीवन की सुरक्षा के लिए पहला कदम लगभग 2300 वर्ष पूर्व मगध के सम्राट अशोक ने उठाया था। उसके बाद अंग्रेजों ने सन् *1887 में, अपनी प्रभुसत्ता वाले भारतीय क्षेत्रों के लिए, पक्षियों की सुरक्षा के लिए पहला कानून बनाया, जिसके अन्तर्गत* सरकार को यह अधिकार दिया गया कि वह किसी भी महत्वपूर्ण पक्षी के व्यापार पर प्रतिबन्ध लगा सकती है।

सन् 1972 में जब स्टाकहोम में पहला पृथ्वी सम्मेलन (Earth Summit) हुआ, उसके बाद भारत ने इस दिशा में कानून बनाने शुरू किए। सन् 1972 में भारतीय लोकसभा ने बिल पास करके वन-जीवन सुरक्षा कानून (1972) बनाया जिसे 9 सितम्बर, 1972 को राष्ट्रपति द्वारा अनुमति दी गई और तब से यह कानून लागू हो गया। आज तक इस कानून में चार संशोधन 1982, 1986, 1991 तथा 1993 में किए जा चुके हैं। इस कानून के अन्तर्गत (i) विशेष प्रजातियों के वनस्पति व जीव-जन्तुओं को विशेष सुरक्षा अधिकार दिए गए हैं; (ii) वन-जीवों के शिकार पर प्रतिबन्ध लगाया गया है; (iii) चिड़ियाघरों, राष्ट्रीय पार्क व सेन्कचुयरियों (Sanctuaries) की स्थापना की गई है; (iv) अनुसूचित जनजातियों (Scheduled Tribes) के अधिकारों को सुनिश्चित किया गया

है; (v) वन-जीवों के विरुद्ध अपराध पर नजर रखी जाने लगी है; और (vi) कानून की अवहेलना करने वालों के विरुद्ध सजा व जुर्माने की व्यवस्था की गई है।

इस कानून की विभिन्न धाराओं की अवहेलना करने वालों को 3 महीने से 6 महीने तक की सजा/कारावास व 5,000 रुपये से लेकर 25,000 रुपये तक जुर्माना करने की व्यवस्था भी की गई है।

■ 4.2 जल (संदूषण सुरक्षा व संरक्षण) कानून, 1974)

[Water (Prevention and Control of Pollution) Act, 1974]

इस कानून का मुख्य उद्देश्य संदूषण से जल की सुरक्षा करना है और जल को स्वास्थ्यकर एवं पुष्टिकर (Wholesome) बनाए रखना है। इस कानून के प्रावधान हैं: (i) जल का स्वच्छ बनाए रखना; (ii) इसके संदूषण को नियन्त्रित करना; (iii) जल-सुरक्षा को सुनिश्चित करने के लिए बोर्ड स्थापित करना; (iv) कुओं और सरिताओं (Streams) की स्वच्छता बनाए रखना; (v) जल संदूषण को रोकने के लिए अनुसंधान को प्रोत्साहन प्रदान करना; (vi) अधिकारियों को प्रशिक्षण दिलाना; (vii) नदी-नालों में संदूषकों (Disposals) को न मिलाने देना; (viii) ऐसे सुरक्षा कार्य जो संदूषण फैलाने वाला व्यक्ति न कर पाए, उन्हें पूरा करना; (ix) अचानक दुर्घटना हो जाने पर आपातकालीन कदम उठाना; (x) संदूषण फैलाने वाले उद्योगों को बन्द कराना; और (xi) संदूषण फैलाने के लिए दोषी पाए जाने वालों के विरुद्ध कानूनी कार्यवाही करना।

इस कानून की विभिन्न धाराओं का उल्लंघन करने वालों को 3 माह से 6 माह की सजा या कारावास तथा 10,000 रु. तक का जुर्माना किया जा सकता है, और यदि फिर भी वे संदूषण जारी रखें तो 5,000 रु. रोजाना की दर से जुर्माना तब तक किया जा सकता है जब तक वह सुधार न कर लें।

■ 4.3 वन (संरक्षण) कानून, 1980 (Forest (Conservation) Act, 1980)

इस कानून का मुख्य उद्देश्य देश में बढ़ते वन-विनाश (Deforestation) को प्रभावपूर्ण ढंग से नियन्त्रित करना था। इस कानून के अनुसार राज्य सरकार यदि वन क्षेत्र को असुरक्षित वन घोषित करना चाहे या किसी वन क्षेत्र को किसी और उपयोग में लाना चाहे तो उसे इसके लिए केन्द्रीय सरकार के वन-विभाग से अनुमति लेनी पड़ेगी। इस कानून की विभिन्न धाराओं की अवहेलना करने वालों को 15 दिन तक की कैद की सजा दी जा सकती है। सरकारी विभाग के मामले में उल्लंघन (Violation) के लिए प्रबन्ध-निदेशक व उच्चतम अधिकारी को उत्तरदायी माना जाता है।

■ 4.4 वायु (प्रदूषण नियन्त्रण व संरक्षण) कानून, 1981

[Air (Prevention and Control of Pollution) Act, 1981]

29 मार्च, 1981 को पास किए गए वायु प्रदूषण नियन्त्रण कानून का मुख्य उद्देश्य वायु प्रदूषण को रोकना व नियन्त्रण है। इसके लिए राज्य स्तर व राष्ट्रीय स्तर पर बोर्ड गठित किए गए हैं। इन बोर्डों के अधिकारों में निम्नलिखित अधिकार प्रमुख हैं: (i) किसी भी क्षेत्र को वायु-प्रदूषण नियन्त्रित क्षेत्र घोषित करना; (ii) वाहनों से निकलते प्रदूषकों के स्तर निश्चित करना; (iii) उद्योगों को ऐसे स्थानों पर स्थापित करना जहाँ से प्रदूषण की संभावना कम से कम हो; और (iv) कानून की अवहेलना करने वालें को विरुद्ध न्यायपालिकाओं में याचिका दायर करना। इस कानून का उल्लंघन करने वाले को 3 माह से 7 वर्ष तक की कैद तथा 10,000 रु. तक के जुर्माने की व्यवस्था है और यदि अवहेलना जारी रहती है तो 5,000 रु. रोजाना के अतिरिक्त जुर्माने की भी व्यवस्था है।

■ 4.5 राष्ट्रीय पर्यावरण ट्रिब्यूनल कानून, 1995

(The National Environment Tribunal Act, 1995)

सन् 1995 में पारित इस कानून के अन्तर्गत राष्ट्रीय पर्यावरण ट्रिब्यूनल का गठन किया गया है। इनको न्यायपालिकाओं (Civil Court) के सभी अधिकार दिए गए हैं। इनका मुख्य उद्देश्य पर्यावरण सम्बन्धी सभी मुकद्मों का तेजी से फैसला करना है। इस कानून के अन्तर्गत कोई भी व्यक्ति निम्नलिखित के कारण हुई क्षति (Damages) के लिए ट्रिब्यूनल के पास याचिका दायर कर सकता है; (i) मृत्यु हो जाना, (ii) घायल या अपंग हो जाना; (iii) मजदूरी की हानि, (iv) इलाज के लिए व्यय करना, (v) संपत्ति की हानि,

(vi) सरकार द्वारा पीड़ित/घायल/बीमार लोगों को राहत के लिए खर्च करना, (vii) सरकार को नुकसान होना, (viii) प्राणीजाति को हानि पहुँचाना, (ix) पर्यावरण प्रदूषण, (x) किसी भी संपत्ति का नुकसान होना, (xi) किसी व्यापार या नौकरी आदि का नुकसान होना और (xii) अन्य किसी किस्म का नुकसान होना।

इस कानून की धारा 3 के अनुसार यदि कोई उद्योग किसी भी दुर्घटना हो जाने के कारण किसी की मृत्यु का कारण बनता है या किसी व्यक्ति के घायल हो जाने के कारण बनता है या किसी के व्यापार, जानमाल को नुकसान पहुँचता है तो उस उद्योग को उस व्यक्ति को हानि या नुकसान का मुआवजा देना पड़ेगा। ट्रिब्यूनल दोषी पाए जाने वाले व्यक्ति को संबंधित कानून के अन्तर्गत उचित सजा या जुर्माना कर सकता है और यदि कोई व्यक्ति ट्रिब्यूनल की आज्ञा की अवहेलना करता है तो उसे 3 वर्ष तक की सजा/कैद व 10 लाख रुपये तक का जुर्माना किया जा सकता है।

निष्कर्ष (Conclusion): भारत में कानूनों का कोई अभाव नहीं है परन्तु उन्हें प्रभावपूर्ण रूप से लागू करने में लापरवाही अवश्य है। उन कानूनों का क्या फायदा यदि उनको सही प्रकार से लागू न किया जाए। इसके लिए जनसाधारण में पर्यावरण के बारे में जागृति पैदा करने की आवश्यकता है। हर व्यक्ति को पर्यावरण को प्रदूषित करने वाले व्यक्ति, संगठन, उद्योग के विरुद्ध 60 दिन का नोटिस देने के बाद ट्रिब्यूनल में शिकायत दर्ज करवाने का अधिकार है। पर हममें से कितने ऐसे हैं जो शिकायत दर्ज कराने के लिए तैयार हैं? यदि हम सभी यह करना शुरू कर दें तो सारी समस्या का समाधान आसान हो जाए। सजा व जुर्माना तो काफी उच्च है और यदि ट्रिब्यूनल दोषी व्यक्तियों पर आवश्यक कानूनी कार्यवाही करना शुरू कर दे तो भी काफी सुधार लाया जा सकता है। पर्यावरण विभाग के अधिकारी वर्ग को अधिक से अधिक सचेत व सजग होने की आवश्यकता है और उन्हें लालच से भी दूर रखने की आवश्यकता है।

प्रश्न (QUESTIONS)

I. वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective type Questions)

सभी प्रश्न अनिवार्य हैं (Attempt all the Questions)

1. भारत में पर्यावरण (संरक्षण) कानून पास किया गया था (1986 में, 1996 में) (K.U. 2005, 2008)
2. पर्यावरण (संरक्षण) कानून का मुख्य उद्देश्य किसमें कमी नहीं होने देना है (पर्यावरण गुणवत्ता में, पर्यावरण मात्रा में)
3. वन्य-जीवन (सुरक्षा) कानून सबसे पहले कब पास हुआ था (1972 में, 1980 में)
4. जल (संदूषण सुरक्षा एवं संरक्षण) कानून पास किया गया था (1974 में, 1981 में)
5. वन (संरक्षण) कानून 1980 किसको रोकने के लिए पास किया गया था (वन-विनाश, भू-संरक्षण को)
6. वायु प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड को किसके निष्कासन स्तर के निश्चित करने के अधिकार दिए हैं (सभी वाहनों के, केवल चार पहिया वाले वाहनों के)
7. राष्ट्रीय पर्यावरण ट्रिब्यूनल कानून किस वर्ष में पारित किया गया था (1995, 1998) (K.U. 2006)
8. भारत में पर्यावरण संबंधी कानूनी उपायों की आवश्यकता है? (प्रभावी लागू करने की, अप्रभावी लागू करने की)

उत्तर (Answer): (1) 1986 में, (2) पर्यावरण गुणवत्ता में, (3) 1972 में, (4) 1974 में, (5) वन-विनाश, (6) सभी वाहनों के, (7) 1995, (8) प्रभावी लागू करने की।

II. लघु/परिभाषा रूपी प्रश्न (Short/Definitional Type Questions)

1. पर्यावरण (संरक्षण) कानून 1986 के किन्हीं दो उद्देश्यों का वर्णन करें।
2. वन्य जीवन (सुरक्षा) कानून 1972 के किन्हीं दो प्रावधानों का वर्णन करें।
3. जल (संदूषण सुरक्षा व संरक्षण) कानून, 1974 में दिए कोई दो प्रावधान लिखें।

4. वायु प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड को क्या अधिकार दिए गए हैं?
5. राष्ट्रीय पर्यावरण ट्रिब्यूनल कानून, 1995 का उद्देश्य क्या है?
6. भारत में पर्यावरण कानून की सफलता के लिए आपकी राय में क्या किया जाना चाहिए?

■ III. निबन्ध रूपी प्रश्न (Essay Type Questions)

1. What is meant by environment? Explain the objectives of Environment (Protection) Act 1986.

   पर्यावरण से क्या अभिप्राय है? पर्यावरण (संरक्षण) कानून 1986 के उद्देश्यों की व्याख्या करें।

2. What is meant by environmental pollution? Explain the basic features of Environment (Protection) Act 1986.

   पर्यावरण प्रदूषण से आपका क्या अभिप्राय है? पर्यावरण (संरक्षण) कानून 1986 की मुख्य विशेषताओं की व्याख्या करें।

3. What is meant by pollution? What measures have been laid down by Environment (Protection) Act 1986 to improve environment and prevent pollution?

   प्रदूषण से क्या अभिप्राय है? पर्यावरण (संरक्षण) कानून 1986 में पर्यावरण के सुधार तथा प्रदूषण की रोकथाम के लिये क्या उपाय किये गये हैं?

4. Give a brief review of the various environmental legislative measures taken in India by the government.

   भारत में सरकार द्वारा उठाए गए विभिन्न पर्यावरण संबंधी उपायों का संक्षेप में वर्णन करें। (K.U. 2007)

   अथवा

   Discuss various legislative measures taken by Indian government related to environment.

   भारत सरकार द्वारा अपनाए गए विभिन्न पर्यावरण संबंधी कानूनों (उपायों) की व्याख्या कीजिए। (K.U. 2009)

15

धारणीय विकास

(SUSTAINABLE DEVELOPMENT)

■ 1. भूमिका (Introduction)

संसार की लगभग सभी अर्थव्यवस्थाएं अपनी आर्थिक प्रगति के लिए प्रयत्नशील हैं। आर्थिक प्रगति सभी अर्थव्यवस्थाओं के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। भारत जैसे अल्पविकसित देशों के लिए आर्थिक प्रगति इसलिए आवश्यक है क्योंकि इसके द्वारा वे अपनी गरीबी, बेरोजगारी, पिछड़ेपन एवम् निम्न जीवन स्तर की समस्याओं के समाधान का प्रयत्न करते हैं। दूसरी ओर अमेरिका जैसे विकसित देशों के लिए आर्थिक प्रगति इसलिए महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसके द्वारा वे अपनी आर्थिक समृद्धि के वर्तमान स्तर को दीर्घकाल तक बनाए रखना चाहते हैं। विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं की आर्थिक प्रगति का अध्ययन करने के संबंध में अर्थशास्त्र में काफी समय तक मुख्य रूप से दो धारणाओं का प्रयोग किया जाता रहा है:

(1) **आर्थिक संवृद्धि** (Economic Growth)

(2) **आर्थिक विकास** (Economic Development)

सामान्य रूप से **आर्थिक संवृद्धि** तथा **आर्थिक विकास** शब्दों का एक दूसरे के लिए प्रयोग किया जाता है। परन्तु अर्थशास्त्री इन शब्दों का प्रयोग विभिन्न अर्थों में करते हैं। उनके अनुसार **आर्थिक संवृद्धि** का अर्थ है वास्तविक राष्ट्रीय या प्रतिव्यक्ति आय या उत्पाद में दीर्घकालीन वृद्धि। इसके विपरीत **आर्थिक विकास** से अभिप्राय केवल वास्तविक आय या उत्पादन में होने वाली वृद्धि से नहीं है बल्कि उत्पादन में वृद्धि होने के साथ-साथ **आर्थिक कल्याण** में होने वाली वृद्धि से भी है।

अर्थशास्त्रियों ने लगभग पिछले बीस वर्षों से आर्थिक विकास की एक नई धारणा विकसित की है, जिसे **धारणीय विकास** (Sustainable Development) कहते हैं। **धारणीय विकास का अर्थ है कि एक अर्थव्यवस्था की वास्तविक आय या उत्पादन तथा आर्थिक कल्याण में इस प्रकार वृद्धि होनी चाहिए कि पर्यावरण संरक्षण तथा जीवन की गुणवत्ता** (Quality of Life) **कायम रह सकें जिसके फलस्वरूप वर्तमान तथा भावी पीढ़ी** (Future Generation) **को अधिकतम शुद्ध लाभ प्राप्त हो सकें।**

■ 2. धारणीय विकास (Sustainable Development)

अर्थशास्त्र में पिछले कुछ वर्षों से आर्थिक विकास की एक नई धारणा प्रचलन में है। इसे **धारणीय विकास** (Sustainable Development) कहते हैं।

धारणीय विकास की धारणा का प्रतिपादन सबसे पहले 1987 में "**वर्ल्ड कमीशन आन एनवाइरअनमेन्ट एण्ड डवेलपमेंट**" (World Commission on Environment and Development) द्वारा प्रकाशित **आवर कामन् फ्यूचर** (Our Common Future) नामक **ब्रुन्डलेन्ड रिपोर्ट** (Brundtland Report) में किया गया था। धारणीय विकास आर्थिक विकास की वह प्रक्रिया है जिसका उद्देश्य प्राकृतिक साधनों तथा पर्यावरण को बिना हानि पहुंचाए वर्तमान तथा भावी पीढ़ियों दोनों के **जीवन की गुणवत्ता** (Quality of Life) को बनाए रखना है। इस धारणा का प्रयोग करने का मुख्य कारण यह है कि संसार के लगभग सभी विकसित देशों की आर्थिक संवृद्धि तथा अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास की प्रक्रिया के फलस्वरूप प्राकृतिक साधनों तथा पर्यावरण की बहुत अधिक हानि हुई है। **प्राकृतिक साधनों** से अभिप्राय मनुष्य को मिट्टी, जल, खनिज, वन आदि के रूप में प्रकृति से प्राप्त निःशुल्क

उपहारों से है। **पर्यावरण** (Environment) से अभिप्राय उन सभी परिस्थितियों से है जो मनुष्यों के जीवन तथा विकास को प्रभावित करती हैं। पर्यावरण के अन्तर्गत **निर्जीव** (Non-living) पदार्थों जैसे भूमि, जल तथा वायु और **जीवित पदार्थों** (Living) जैसे पशु, जीव-जन्तु, पेड़-पौधे आदि को शामिल किया जाता है। आर्थिक विकास के फलस्वरूप प्राकृतिक साधनों का बहुत अधिक शोषण होता है। भूमि पर कई फसलें उगाई जाती हैं जिससे उसकी उत्पादकता खत्म हो जाती है। खनिज पदार्थों जैसे पेट्रोल, लोहा, कोयला, सोना-चांदी आदि का खनन किया जाता है जिससे उनके भण्डार धीरे-धीरे खत्म होने लगते हैं। कारखानों तथा यातायात के साधनों से जो धुआँ तथा अन्य हानिकारक पदार्थ उत्पन्न होते हैं वे पर्यावरण को दूषित कर देते हैं। अत: आर्थिक विकास के फलस्वरूप जल तथा वायु प्रदूषण की समस्या उत्पन्न होती है। इसका वर्तमान तथा भावी पीढ़ी के जीवन की गुणवत्ता पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। इसके फलस्वरूप भविष्य में आर्थिक विकास की दर भी कम होने की सम्भावना बढ़ जाती है। इसलिए **एक ऐसी विकास प्रक्रिया की आवश्यकता महसूस की गई जो भविष्य में आर्थिक विकास की दर को बनाए रख सके तथा भावी पीढ़ी के जीवन की गुणवत्ता को कम न होने दे।** इस विकास प्रक्रिया को **धारणीय विकास** (Sustainable Development) कहा जाता है। **धारणीय विकास वह प्रक्रिया है जो आर्थिक विकास के फलस्वरूप प्राप्त होने वाले दीर्घकालीन शुद्ध लाभों को वर्तमान तथा भावी पीढ़ी दोनों के लिए अधिकतम करती है।**

संक्षेप में, धारणीय विकास परिवर्तन की वह प्रक्रिया है जिसमें संसाधनों का प्रयोग, निवेश की दिशा, तकनीकी विकास की नई स्थिति तथा संस्थागत परिवर्तन में तालमेल होता है और ये मानवीय आवश्यकताओं तथा आकांक्षाओं की वर्तमान एवं भावी संभाव्यता (Potential) को बढ़ाते हैं। धारणीय विकास का यह अर्थ स्वयं ही विकास की प्रक्रिया को निर्मित करने, तकनीक के चुनाव, सम्पत्ति अधिकार तन्त्र की किस्मों, संसाधनों के प्रबन्ध तथा अनुमानित सामाजिक क्रम को दिशा प्रदान करता है।

■ परिभाषा (Definition)

(i) रॉबर्ट रेपीटो के अनुसार, **"धारणीय विकास का अर्थ विकास की वह रणनीति है जो सभी प्राकृतिक, मानवीय, वित्तीय तथा भौतिक साधनों का सम्पत्ति तथा आर्थिक कल्याण में दीर्घकालीन वृद्धि करने के लिए प्रबंध करती है।"** (Sustainable Development is a development strategy that manages all natural resources and human resources as well as financial and physical assets for increasing long term wealth and well being. – **Robbert Repetto**)

(ii) **राबर्ट सोलो** के शब्दों में, **"धारणीयता से अभिप्राय यह सुनिश्चित करने से है कि वर्तमान पीढ़ी की भांति भावी पीढ़ी भी सम्पन्न हो और यह सम्पन्नता समय के साथ-साथ निरन्तर जारी रहे।"** (The concept of sustainability makes sure that the next generation is well off as the present generation and ensuring that this continues for all time. – **Robert Solow**)

(iii) **विश्व विकास रिपोर्ट -2003** के अनुसार, **"धारणीय विकास से अभिप्राय विकास की उस प्रक्रिया से है जो भावी पीढ़ी की आवश्यकताओं को पूरी करने की योग्यता को बिना कोई हानि पहुंचाये वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं को पूरा करती है।"** (Sustainable Development is that process of development which meets the needs of the present generation without compromising the ability of future generation to meet their own needs. – **World Development Report-2003**)

संक्षेप में, धारणीय विकास वह प्रक्रिया है जो (i) वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं को पूरा करती है परन्तु (ii) भावी पीढ़ी की आवश्यकतायें पूरी करने की योग्यता को कोई हानि नहीं पहुंचाती।

अतएव धारणीय विकास पीढ़ियों के बीच (Inter-generational) तथा एक ही पीढ़ी के बीच (Intra-generational) दोनों को व्यक्त करता है। यह वर्तमान तथा भावी दोनों पीढ़ियों को इस योग्य बनाता है कि संभावित क्षमताओं का उत्तम प्रयोग करें। यह धारणा इस विश्वास पर आधारित है कि आने वाली पीढ़ी को उन सभी सुखों के आनन्द लेने का अवसर प्राप्त हो जिसका आनन्द वर्तमान पीढ़ी ले रही है। धारणीयता (Sustainability) का सम्बन्ध विकास अवसरों की सहभागिता से है न कि निर्धनता तथा मानवीय विच्छेद

(Human Deprivation) से। **महबूब अल हक** (Mahbub Ul Haq) के अनुसार, "धारणीयता का अर्थ निर्धनता तथा मानवीय विच्छेद के वर्तमान स्तर को बनाए रखने से नहीं है। यदि वर्तमान दु:खप्रद (Miserable) है और विश्व के अधिकांश वर्ग के लिए स्वीकार योग्य नहीं है, तब इससे पहले कि इसे सहा जाए, इसे बदल लेना चाहिए। अन्य शब्दों में, जिसे सहा जाना चाहिए वे आवश्यक रूप से जीवन अवसर (Life) होने चाहिएं न कि मानवीय विच्छेद या वंचन।"

लोगों की जरूरतों को पूरा करने की योग्यता पूंजी की तीन किस्मों पर निर्भर करती है: (i) **प्राकृतिक पूंजी** (Natrual Capital) जैसे प्राकृतिक संसाधन, शुद्ध हवा, स्वच्छ जल आदि; (ii) **भौतिक पूंजी** (Physical Capital) जैसे मशीनें, औजार, पूंजीगत साज सज्जा; और **मानवीय पूंजी** (Human Capital) जैसे शिक्षा, तकनीकी प्रगति आदि। **अतएव धारणीय विकास का अर्थ है कि भावी पीढ़ी को कम से कम इतनी पूंजी (प्राकृतिक + भौतिक + मानवीय) अवश्य दे दें जितनी कि हमारे पास वर्तमान में है ताकि भविष्य में उनको भी उतना ही सुख व आनन्द मिलता रहे जो हमें वर्तमान में मिल रहा है।**

अब स्वाभाविक प्रश्न यह पैदा होता है कि **भावी पीढ़ी के हितों का संरक्षण हम क्यों करें?** इसका कारण यह है कि भूतकाल में विकास के लाभों को बढ़ा-चढ़ा कर व्यक्त किया गया है जबकि विकास की लागत (विशेष कर पर्यावरण सम्बन्धी हानि की लागत) की अवहेलना की गई है। इसलिए यह तर्क दिया जाता है कि जब कभी भी विकास परियोजनाओं का निर्णय लिया जाए तो इन लागतों का ध्यान अवश्य रखा जाना चाहिए। इस तथ्य को जानते हुए कि जब कभी भी विकास होता है तब प्राकृतिक साधनों का कुछ ह्रास (Depletion) अवश्य होता है, इसलिए यह प्रयत्न किए जाने चाहिएं कि **प्राकृतिक पूंजी** सुरक्षित बनी रहे। पर्यावरण के संरक्षण के लिए सशक्त तर्क यह है कि भावी पीढ़ी के लिए उन अवसरों का आनन्द भोगने के आश्वासन की आवश्यकता है जो पिछली या वर्तमान पीढ़ियों ने भोग लिए हैं या प्राप्त कर लिए हैं। यह आश्वासन (Guarantee) धारणीय विकास का आधार है। प्राकृतिक पूंजी के संरक्षण के साथ-साथ **मानवीय पूंजी** तथा **भौतिक पूंजी** के संरक्षण की भी आवश्यकता है ताकि भावी पीढ़ी कम से कम इतना अवश्य प्राप्त करे जितना कि वर्तमान पीढ़ी ने भूतकालीन या पिछली पीढ़ी से प्राप्त किया है। इस सारी क्रिया के लिए संसाधनों के कुशल प्रबन्ध की आवश्यकता है ताकि जब हम वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति करें तो इसके साथ-साथ हम संसाधनों की गुणवत्ता को भी बढ़ाएं। इसलिए **अन्तिम विश्लेषण** (Final Analysis) में **धारणीय विकास जनता अनुकूल (Pro-people), रोजगार अनुकूल (Pro-jobs) तथा प्रकृति अनुकूल (Pro-nature) हो।**

■ 2.1 धारणीय विकास की विशेषताएं (Features of Sustainable Development)

धारणीय आर्थिक विकास की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं:

(1) प्राकृतिक साधनों का कुशल प्रयोग (Efficient Use of Natural Resources): धारणीय आर्थिक विकास का यह अर्थ नहीं है कि प्राकृतिक साधनों का उपयोग ही न किया जाए बल्कि इसका अभिप्राय तो यह है कि प्राकृतिक साधनों तथा पर्यावरण का इस प्रकार कुशलतापूर्वक प्रयोग किया जाए कि जिसके फलस्वरूप दीर्घकालीन शुद्ध उपलब्धियां जैसे आय तथा रोजगार में वृद्धि, निर्धनता उन्मूलन, जीवन स्तर में वृद्धि आदि के लक्ष्य प्राप्त हो सकें।

(2) भावी पीढ़ी की जीवन की गुणवत्ता में कमी न हो (No Reduction in the Quality of Life of the Future Generation): धारणीय विकास का उद्देश्य वर्तमान पीढ़ी के जीवन स्तर में वृद्धि करने के लिए प्राकृतिक साधनों तथा पर्यावरण का इस प्रकार प्रयोग करने से है कि जिसके फलस्वरूप भावी पीढ़ी की गुणवत्ता में कमी न हो।

(3) प्रदूषण में वृद्धि न हो (No Increase in Pollution): धारणीय विकास उन कार्यों का समर्थन नहीं करती जो वर्तमान जीवन स्तर की ऊंची स्थिति को बनाए रखने के लिए प्राकृतिक साधनों तथा पर्यावरण के लिए हानिकारक सिद्ध होते हैं। इस धारणा के अनुसार उन आर्थिक कार्यों को नहीं किया जाना चाहिए जो प्रदूषण को बढ़ाते हैं तथा भावी पीढ़ी की गुणवत्ता को कम करते हैं।

(4) आर्थिक विकास को सीमित नहीं करती (Does not Limit Development): धारणीय विकास का यह लक्ष्य नहीं है कि आर्थिक विकास को सीमित किया जाए। इसका लक्ष्य यह है कि प्राकृतिक साधनों तथा पर्यावरण का इस प्रकार प्रयोग किया जाए जिसके फलस्वरूप केवल वर्तमान में ही नहीं बल्कि भविष्य में भी आर्थिक विकास की दर को बनाए रखा जा सके।

(5) वितरण सम्बन्धी साम्यता (Distributional Equity): धारणीय विकास की धारणा वितरण सम्बन्धी साम्यता पर बल देती है अर्थात् यह साम्यता विभिन्न पीढ़ियों के बीच तथा एक ही पीढ़ी के भीतर (Intra-generational) हो।

(6) पूंजी की तीन किस्मों का संरक्षण (Preservation of Three Types of Capital): धारणीय विकास मानवीय पूंजी (शिक्षा आदि), भौतिक पूंजी (मशीनें, औजार आदि) तथा प्राकृतिक पूंजी (प्राकृतिक साधन, शुद्ध वायु स्वच्छ जल आदि) के संरक्षण पर बल देता है।

■ 2.2 धारणीय विकास का महत्त्व या आवश्यकता
(Importance or Need of Sustainable Development)

निर्धनता में कमी लाने के किसी भी गहन प्रयास के लिए धारणीय विकास की आवश्यकता है ताकि विकासशील देशों में उत्पादकता तथा आय में वृद्धि की जा सके। इन देशों में आर्थिक संवृद्धि की तुलना में आर्थिक विकास से सम्बन्धित प्रयासों एवं परिश्रम की अधिक आवश्यकता है। **विश्व विकास रिपोर्ट, 2003** (World Development Report, 2003) का यह सुझाव है कि धारणीय विकास को सुनिश्चित करने के लिए न केवल आर्थिक संवृद्धि की ओर बल्कि पर्यावरण सम्बन्धी एवं सामाजिक मुद्दों की ओर ध्यान देने की आवश्यकता अधिक है। जब तक आर्थिक संवृद्धि के साथ-साथ समाज का रूपांतरण एवं पर्यावरण का प्रबन्ध सही प्रकार से नहीं होता तब तक आर्थिक संवृद्धि आने वाले कई वर्षों तक जोखिम में बनी रहेगी अर्थात् दीर्घकाल में आर्थिक संवृद्धि का सही चित्र सामने नहीं आयेगा।

धारणीय विकास की आवश्यकता एवं महत्त्व मुख्य रूप से निम्नलिखित कारणों से है:

(i) निर्धनता कम हो रही है, परन्तु फिर भी एक चुनौती है (Poverty Declining but still a challenge): अत्यधिक/चरम निर्धनता में रहने वाले लोगों के प्रतिशत में काफी गिरावट आई है। सन् 1990 के बाद से भारत तथा चीन दोनों देशों में निर्धन लोगों की संख्या में कमी आई है। परन्तु अफ्रीका, पूर्व एशिया तथा दक्षिण एशिया जैसे देशों में अभी भी विश्व के अति निर्धन लोगों का दो-तिहाई भाग रह रहा है। इन देशों में निर्धनता के उन्मूलन के लिए धारणीय विकास की आवश्यकता है।

(2) असमानता बढ़ रही है (Inequality widening): 20 निर्धनतम देशों की तुलना में 20 धनी देशों में औसत आय 37 गुणा अधिक है। पिछले 40 वर्षों में, निर्धनतम देशों में कम विकास होने के कारण, यह अनुपात दुगना हो चुका है। ऐसे ही कई अन्य देशों के अन्दर भी असमानताओं में वृद्धि पाई गई है। असमानता में कमी लाने के लिए धारणीय विकास की आवश्यकता है।

(3) संघर्ष-विनाशकारी (Conflicts-Devastating): सन् 1990 में 46 देश संघर्षों में उलझे हुए थे, ये संघर्ष मुख्यत: सिविल (Civil) थे। इन संघर्षों में निर्धनतम देशों का आधे से अधिक भाग (33 में से 17) शामिल था। इन संघर्षों की लागत बहुत ऊँची थी, जिसने भूतकालीन विकास उपलब्धियों को नष्ट कर दिया और पीछे उस नष्ट परिसम्पत्ति और अविश्वास को विरासत में छोड़ा है जो भविष्य में मिलने वाले लाभों में बाधा डालती है।

(4) वायु प्रदूषित (Air Polluted): विकासशील देशों के नगरों में वायु-प्रदूषण का अस्वस्थ स्तर पाया जाता है। वैश्वीय स्तर पर, तापमान में परिवर्तन किए बिना कार्बन डाइ-ऑक्साइड को सोखने की बायोस्फीयिर की क्षमता कम कर दी गई है, क्योंकि ऊर्जा के लिए अधिक निर्भरता अब जीवाश्म ईंधन (Fossil fuel) पर है। ग्रीनहाऊस गैस निस्सारण (Emission) के फैलाव का बढ़ना भी तब तक जारी रहेगा जब तक धारणीय विकास के लिए गहन प्रयास नहीं किए जाते। पिछले 50 वर्षों में अत्यधिक नाइट्रोजन - जो मुख्यतया उर्वरकों और मानवीय सीवरेज से प्राप्त होती है - ने वैश्वीय नाइट्रोजन साईकल पर काबू पाना शुरू कर दिया है। इससे मिट्टी के उपजाऊपन तथा झीलों एवं नदियों में जल पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है।

(5) ताजा पानी: तेजी से दुर्लभ (Fresh Water- increasingly scarce): ताजे पानी के उपभोग में तेजी से वृद्धि हो रही है परन्तु विश्व के कई भागों में इसकी उपलब्धता कम अथवा दुर्लभ होती जा रही है। अतएव् पानी का बेहतर संरक्षण एवं आवंटन बहुत आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण है। इसके लिए धारणीय विकास की आवश्यकता है।

(6) मिट्टी अवनत हो रही है (Soil being degraded): सन् 1950 से लेकर अब तक 20 लाख हेक्टेयर भूमि अवनति को प्राप्त हो चुकी है। कुछ क्षेत्रों में उत्पादकता में बहुत कमी आई है। इसलिए धारणीय विकास की आवश्यकता है क्योंकि इसके फलस्वरूप भू-संरक्षण (Soil Conservation) संभव हो सकेगा।

(7) वन नष्ट हो रहे हैं (Forests being destroyed): वन-विनाश (Deforestation) तेज गति से बढ़ रहा है। उष्णकटिबंधीय वन (Tropical Forests) का 1/5 भाग अब तक समाप्त हो चुका है। **अनाज तथा कृषि संगठन** (Food and Agriculture Organisation - FAO) के अनुसार 1980 और 1995 के बीच लगभग 20 करोड़ हेक्टेयर भूमि वनों के नष्ट होने के कारण खत्म हो चुकी है। विकासशील देश में वनों के नष्ट होने के कई कारण हैं जैसे वनों का बागानों एवं पशुफार्म में बड़े पैमाने पर परिवर्तन होना तथा जीवन निर्वाह खेती का विस्तार होना। वनों के विनाश को रोकने के लिए धारणीय विकास की आवश्यकता है।

(8) जैव-विविधता लुप्त हो रही है (Bio-diversity Disappearing): कई स्थानीय विनष्ट कर देने वाली प्रवृत्तियों के कारण कई पौधों एवं जानवरों की श्रेणियां कम हो कर शताब्दी के आरम्भ की रह गई हैं। विश्व जैव-विविधता का एक तिहाई भाग प्राकृतिक आपदा की पूर्ण क्षति अथवा मानवीय अतिक्रमण (Human Encroachment) की धमकी के रूप में डरा हुआ है।

(9) मछली उद्योग घट रहा है (Fisheries are declining): मछली उद्योग तथा इसकी उत्पादकता कम हो रही है। विश्व के मूँगे की चट्टान का लगभग 54 प्रतिशत और सभी मछली प्रजातियों का 34 प्रतिशत मानवीय गतिविधियों के कारण जोखिम में हैं। संसार की 70 प्रतिशत व्यापारिक मछली का पूर्ण शोषण किया जा रहा है और घटती उपज का सामना कर रहा है।

विश्व विकास रिपोर्ट (World Development Report) के अनुसार, ''दीर्घकालीन अवधि में अन्तर्निर्भर विश्व में उपरोक्त कोई भी सामाजिक एवं पर्यावरणीय प्रतिमान धारणीय विकास से मेल नहीं खाता है। भूतकालीन विकास रणनीतियों के फलस्वरूप प्राप्त सामाजिक एवं पर्यावरण सम्बन्धी दबाव को देखते हुए विश्व में मानव कल्याण में वृद्धि करने का लक्ष्य उस विकास प्रक्रिया द्वारा किया जाना चाहिए जो **'बेहतर परिणाम'** दे सकता है - एक निर्धनता - उन्मूलन विकास मार्ग जो सुख-समृद्धि में धारणीय सुधार की खोज में सामाजिक तथा पर्यावरण सम्बन्धी रुचियों एवं अपेक्षाओं में समन्वय स्थापित करता है।''

उपरोक्त बातों के अतिरिक्त निम्नलिखित बातें भी धारणीय विकास के महत्व पर प्रकाश डालती हैं: (i) इससे वर्तमान पीढ़ी का जीवन स्तर ऊँचा होगा: (ii) यह देखा जाएगा कि इससे भावी पीढ़ी के जीवन स्तर में कोई कमी नहीं आएगी; (iii) इससे लोगों के जीवन की गुणवत्ता तथा स्वास्थ्य का प्रदूषण से बचाव होगा; (iv) इससे वर्तमान तथा भावी पीढ़ी के लिए पर्यावरण के संरक्षण में सहायता मिलेगी।

परन्तु धारणीय विकास को एक वास्तविकता बनाने के लिए निम्नलिखित दिशाओं में प्रयास किए जाने चाहिएं; (i) वर्तमान विलासपूर्ण उपभोग पर नियन्त्रण रखा जाना चाहिए; (ii) पर्यावरण एवं रोजगार मैत्रिक उपयुक्त तकनीक की खोज के लिए प्रयत्न जारी रखे जाने चाहिएं; (iii) जनसंख्या की तीव्र गति से वृद्धि पर प्रभावी ढंग से रोक लगाने की आवश्यकता है, विशेषकर अल्पविकसित देशों में।

■ 2.3 धारणीय विकास की शर्तें (Conditions of Sustainable Development)

धारणीय विकास की मुख्य शर्तें निम्नलिखित हैं:

(1) आर्थिक विकास (Economic Development): धारणीय विकास की पहली शर्त यह है कि अर्थव्यवस्था में दीर्घकालीन वास्तविक प्रति व्यक्ति आय की दर में वृद्धि होनी चाहिए। लोगों के आर्थिक कल्याण तथा जीवन की गुणवत्ता में वृद्धि होनी चाहिए।

(2) प्राकृतिक पूंजी के स्टॉक का संरक्षण (Conservation of Natural Capital Stock): धारणीय विकास तथा जीवन की गुणवत्ता की महत्त्वपूर्ण शर्त यह है कि आर्थिक विकास के फलस्वरूप प्राकृतिक पूंजी स्टॉक की **अवनति** (Degradation) नहीं होनी चाहिए। **प्राकृतिक पूंजी स्टॉक से अभिप्राय सभी प्रकार के पर्यावरण तथा प्राकृतिक साधनों की परिसम्पत्तियों के कुल**

स्टॉक से है। आर्थिक विकास के कारण प्राकृतिक साधनों जैसे वनों के क्षेत्र में कमी नहीं होनी चाहिए। मिट्टी तथा जल का संरक्षण होना चाहिए।

(3) **औद्योगिक प्रदूषण में कमी** (Reduction in Industrial Pollution): औद्योगिक उत्पादन के लिए ऐसी तकनीकों को अपनाया जाना चाहिए जो पर्यावरण के लिए अनुकूल हों। इस संदर्भ में छोटे उद्योगों के विकास को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

(4) **कृषि प्रदूषण में कमी** (Reduction in Agricultural Pollution): कृषि में परम्परागत बीजों का संरक्षण किया जाना चाहिए तथा अकार्बनिक खाद और कीटनाशक दवाइयों के स्थान पर हरी खाद तथा जैव नियंत्रण (Bio-Control) तकनीक का प्रयोग किया जाना चाहिए।

(5) **सम्पूर्ण ग्रामीण विकास** (Comprehensive Rural Development): गांवों का समुचित विकास किया जाना चाहिए। ग्रामीण क्षेत्रों में जीवन की समुचित सुविधाएं उपलब्ध होनी चाहिए। इसके फलस्वरूप शहरीकरण की प्रवृत्ति को कम करके कई प्रकार के वायु, जल तथा ध्वनि प्रदूषण को कम किया जा सकेगा।

■ 2.4 धारणीय विकास के सूचक/संकेतक (Indicators of Sustainable Development)

धारणीय विकास की शर्तों की व्याख्या के बाद एक स्वाभाविक प्रश्न यह है कि धारणीयता (Sustainability) के सूचक अथवा संकेतक क्या हैं? आपको अब तक यह स्पष्ट हो गया होगा धारणीयता से अभिप्राय पारिस्थितिक (Ecological) तथा आर्थिक दोनों प्रतीकों (Attributes) से है। इसके अनुरूप (Corresponding) धारणीयता सूचकों के लिए भी इन दोनों को ध्यान में रखना होगा। इस संदर्भ में वस्तु तथा सेवा विशेष और जनता से संबंधित अनेक सूचकों को विकसित किया जा सकता है।

आर्थिक विकास की मूल पद्धति (Framework) के अन्तर्गत विकास सूचकों की परिभाषा देना एक जटिल कार्य है। सबसे पहले सूचकों की परिभाषा देना भी आदर्शात्मक (Normative) है। कोई भी एक सूचक कल्याण की अवस्था की पूर्ण तस्वीर प्रस्तुत नहीं कर सकता। क्या प्रति व्यक्ति आय को विकास का उचित सूचक कहा जा सकता है? इसका उत्तर 'हाँ' तथा 'नहीं' दोनों में है। 'हाँ' उस सीमा तक कहा जा सकता है जिस सीमा तक कि कोई व्यक्ति **'कल्याण'** (Well-being) की सम्पूर्ण औसत दर में रुचि रखता हो। परन्तु यदि लोगों की **आय में असमानता** है या **निर्धनता रेखा** से नीचे रहने वाले लोगों की संख्या अधिक है, तब इस स्थिति को क्या कहा जाएगा। अथवा यदि प्रतिव्यक्ति आय तो अधिक है परन्तु **साक्षरता स्तर** (Level of Literacy) बहुत कम है या **शिशु मृत्यु दर** (Infant mortality) बहुत अधिक है। इन अवस्थाओं में क्या आर्थिक कल्याण का अनुमान लगाया जा सकता है। आर्थिक कल्याण को तो जीवन के कई पक्षों को प्रतिबिम्बित करना चाहिए जैसे जीवन की गुणवत्ता, गौरव (Dignity), प्रतिष्ठा (Status) और क्षमता (Capability) तथा अधिकार (Empowerment)। आर्थिक विकास का सही ज्ञान प्राप्त करने के लिए अनेक वैकल्पिक सूचकों की आवश्यकता हो सकती है।

धारणीय विकास वर्तमान विकास को भावी विकास के साथ जोडता है। परन्तु यहाँ मुख्य यह प्रश्न उठता है कि हम कैसे कहें कि क्या धारणीयता प्राप्त कर ली गई है अथवा नहीं? धारणीयता के संदर्भ में हम किस प्रकार योजना, नीतियों, कार्यक्रमों तथा परियोजनाओं (Projects) को स्वीकृति दे सकते हैं? *अन्य शब्दों में धारणीयता के सूचक (Indicators) क्या होने चाहिएं? धारणीयता को मापने के* लिए कई गत्यात्मक गणितीय/सांख्यिकीय मॉडल (Dynamic Mathematical/Statistical Model) विकसित किए गए हैं जो पर्यावरण संबंधित अर्थशास्त्र (Enviornmental Economics) तथा आर्थिक-सामाजिक परिवर्तनों को आपस में जोड़ते (Link) हैं। परन्तु ये सभी मॉडल व्यावहारिक दृष्टिकोण से बहुत ही जटिल (Complex), भ्रामक (Confused) तथा कठिनाइयों से भरे हुए हैं। विकास प्रक्रिया की धारणीयता के लिए सरलता, व्यावहारिकता, वास्तविकता तथा सुगमता अत्यन्त आवश्यक है। सौभाग्यवश कुछ सुयोग्य अर्थशास्त्रियों एवं विशेषज्ञों ने ऐसे सूचकों को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

ये विशेषज्ञ (Experts) हैं- डैली एवं काब (1989), एल सेराफी (1989), क्लार्क (1991), मैथ्यूज तथा टन्सटाल (1991), आर. गुडलेण्ड (1991), होमबर्ग (1991), दलाल क्लैटन (1992) आदि। इन विशेषज्ञों के विभिन्न विचारों को ध्यान में रखते हुए, धारणीयता के मुख्य निर्धारक को हम इस प्रकार से व्यक्त कर सकते हैं:

(i) संवृद्धि दर (Growth Rate): कुल उत्पादन वृद्धि दर धारणीयता का एक महत्त्वपूर्ण सूचक है। यह वृद्धि दर ही सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था की कार्यशील (Working) मशीनरी की सफलता अथवा विफलता की तस्वीर प्रस्तुत करती है। सकल घरेलू उत्पाद (GDP) ही विकास की आधारभूत एवं बहुत ही महत्त्वपूर्ण कसौटी है। GDP की विकास दर, वस्तुओं तथा सेवाओं के कुल उत्पादन की विकास दर पर, निर्भर करती है। कुल उत्पादन वृद्धि दर पूंजी निर्माण, पूंजी की सीमान्त उत्पादकता, आधारिक संरचना सुविधाओं, संसाधन प्रयोग आयोजन आदि पर निर्भर करती है। वर्तमान तथा भावी पीढ़ी के आर्थिक एवं सामाजिक कल्याण के लिए ऊंची आर्थिक संवृद्धि दर आवश्यक है। कुल उत्पादन में ऊंची वृद्धि दर बेरोजगारी तथा निर्धनता को कम करती है, निर्धनता में कमी के फलस्वरूप पर्यावरण संबंधी क्षति में कमी आएगी (क्योंकि निर्धनता के कारण ही काफी सीमा तक पर्यावरण में गिरावट आती है)।

(ii) जनसंख्या नियंत्रण (Population Control): पर्यावरण के संदर्भ में जनसंख्या का नियमित किया जाना आवश्यक है। अत्यधिक जनसंख्या (Overpopulation) द्वारा प्राकृतिक संसाधनों का बहुत अधिक शोषण होता है, जिसके कारण धारणीय विकास को प्राप्त करना बहुत ही कठिन हो जाता है। यह भी सही है कि श्रम उत्पादन का एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण साधन है और यह भी सच है कि मनुष्य ही वर्तमान प्रदूषण समस्याओं के लिए अन्ततः जिम्मेवार है। इस संदर्भ में जनसंख्या को नियंत्रित रखना अत्यंत आवश्यक है। वर्तमान और भावी पीढ़ी के कल्याण के लिए संसाधनों का इष्टतम उपयोग आवश्यक है, इसके लिए जनसंख्या का इष्टतम आकार (Optimum Size of Population) होना आवश्यक है। वर्तमान में अति-जनसंख्या (Over-population) भावी पीढ़ी के लिए हानिकारक है। भारत में अति-जनसंख्या ही पर्यावरण अवनति का एक प्रमुख कारण है, क्योंकि निर्धनता, अति-जनसंख्या और पर्यावरण अवनति अन्तर्संबंधित हैं। इसलिए धारणीय विकास के संदर्भ में जनसंख्या का नियंत्रण एक महत्त्वपूर्ण सूचक है।

(iii) जल आपूर्ति (Water Supply): जल आपूर्ति तथा इसके उपयोगों का धारणीय विकास से प्रत्यक्ष संबंध है। उत्पादन तथा उपभोग प्रक्रिया में जल एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। जल की आवश्यकता घरेलू, कृषि, औद्योगिक तथा अन्य कई उपयोगों में होती है। दुर्भाग्यवश स्वतंत्रता प्राप्ति के 57 वर्ष बाद भी लोगों को सुरक्षित एवं ताजा पेय जल प्राप्त नहीं होता। ग्रामीण तथा शहरी दोनों क्षेत्रों में लोग पेय जल की प्राप्ति के लिए इधर-उधर भटक रहे हैं। जल की उपयोगिता इसकी नवीकरणीय (Renewable) क्षमता से अधिक व तेज है। जल की प्राप्ति के लिए हजारों मीटर नीचे धरती में कुएं खोदे जाते हैं। अकुशल तरीके (Inefficient Manner) से पानी की अत्यधिक प्रयोग (Overuse) ने वर्तमान पीढ़ी के लिए तो संकट पैदा कर ही दिया है, इस स्थिति में शोचनीय बात यह है कि भावी पीढ़ी का क्या होगा। इस संदर्भ में यही कहना उचित है कि वर्तमान स्थिति में लोगों के लिए शुद्ध और सुरक्षित जल सरलता से उपलब्ध होना चाहिए, क्योंकि जीवन के अस्तित्व के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है।

(iv) शुद्ध वायु (Pure Air): वर्तमान तथा भावी पीढ़ी के लिए साफ और शुद्ध जल की उपलब्धता धारणीय विकास का एक महत्त्वपूर्ण सूचक है क्योंकि शुद्ध वायु न केवल मनुष्यों के लिए बल्कि जीव-जन्तुओं के लिए भी जीवन सुरक्षा (Life Support) का कार्य करती है।

अर्थशास्त्र में हम पढ़ते हैं कि वायु प्रकृति की ओर से एक निःशुल्क उपहार है। परन्तु वर्तमान स्थिति में यह पूर्णतया सही नहीं है। शुद्ध वायु बेशक प्रकृति का एक उपहार है परन्तु मनुष्य ने इस दुर्लभ वस्तु को प्रदूषित कर दिया है। आज हमें शुद्ध और साफ वायु उपलब्ध नहीं है। अधिकतर औद्योगिक और भीड़ वाले शहरों में हमें प्रदूषित वायु ही प्राप्त होती है जो मानवीय स्वास्थ्य के लिए बहुत ही हानिकारक है।

तीव्र औद्योगिक तथा शहरी विकास के कारण वायु प्रदूषण के स्तर में निरन्तर दिन-प्रतिदिन वृद्धि हो रही है। शहरों में चलने वाले वाहनों और उद्योगों से निकलने वाला विषैला धुआं वायु में प्रदूषक तत्त्व फैला रहा है। इसके कारण वायु में कई प्रकार की विषैली एवं हानिकारक गैसें मिश्रित हो रही हैं। इन गैसों में कार्बन डाइ-ऑक्साइड, कार्बन मोनोक्साइड, सल्फर ऑक्साइड, सल्फर डाइ-ऑक्साइड आदि आती हैं। वायु प्रदूषण के कारण ही ग्रीन हाउस प्रभाव तथा तेजाबी वर्षा उत्पन्न हुई है। इनके परिणामस्वरूप स्वास्थ्य संबंधी कई समस्याएं पैदा हो सकती हैं। इस सबके फलस्वरूप विकास प्रक्रिया की धारणीयता (Sustainability of Development Process) कम हो सकती है।

(v) **मानवीय संसाधन विकास** (Human Resource Development): धारणीय आर्थिक विकास की प्राप्ति के लिए मानवीय संसाधन विकास बहुत ही उपयोगी है, क्योंकि मनुष्य भी पूंजी के रूप में (मानवीय पूंजी) कार्य करता है। आर्थिक विकास की रूपान्तरण प्रक्रिया (Transforming Process) में मानवीय पूंजी एक बहुत ही उपयोगी घटक है। विकास प्रक्रिया में मानवीय गुणों एवं कौशल की आवश्यकता होती है। इस प्रकार धारणीय विकास के सूचक के संदर्भ में मानवीय संसाधन विकास की एक महत्त्वपूर्ण पहचान है। कुशल, योग्य एवं दक्ष मानवीय संसाधन न केवल वर्तमान पीढ़ी के लिए बल्कि भावी पीढ़ी के लिए भी एक आधारशिला का कार्य करता है। मानवीय संसाधन विकास के लिए उत्तम शिक्षा तथा प्रशिक्षण, पौष्टिक भोजन, अनुसंधान एवं विकास, स्वास्थ्य सुधार, निवास व्यवस्था, जीवन स्तर आदि अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि ये तत्त्व ही मानवीय विकास के सूचक हैं।

(vi) **ऊर्जा** (Energy): सम्पूर्ण विकास प्रक्रिया में ऊर्जा एक आधारभूत तत्त्व है। धारणीय विकास पर ऊर्जा की मांग तथा पूर्ति की प्रवृत्तियों में परिवर्तनों के विशेष प्रभाव पड़ते हैं। इस संदर्भ में **ऊर्जा गहनता** (Energy Intensity) कुल उत्पादन में बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। ऊर्जा गहनता ऊर्जा/GNP अनुपात द्वारा मापी जा सकती है। निम्न ऊर्जा/GNP अनुपात ऊंची धारणीयता को व्यक्त करता है। ऊर्जा के स्रोत दो प्रकार के हैं, **समाप्त होने वाले स्रोत** (Exhaustible Sources) और **नवीनीकरण होने वाले स्रोत** (Renewable Resources)। ऊर्जा जनित (Generate) करने के लिए नवीनीकरण होने वाले स्रोतों का बने रहना व जारी रहना आवश्यक है। नवीनीकरण होने वाली ऊर्जा के अनुपात की दर जितनी अधिक होगी, धारणीय विकास भी उतना ही अधिक होगा। धारणीय विकास के लिए नवीनीकरण होने वाली ऊर्जा का प्रयोग उसकी पुन: जनन दर (Rate of Regeneration) से कम होना चाहिए। क्योंकि नवीनीकरण होने वाले स्रोतों की प्रयोग दर यदि ऊर्जा पुन: जनन दर से अधिक है, तब धारणीय विकास कम होगा। कहने का भाव यह है कि नवीनीकरण स्रोतों का ऊर्जा प्रजनन (Energy Generation) में प्रयोग, जहाँ तक संभव हो, वर्तमान में सीमित रखा जाए ताकि भविष्य में विकास कार्यक्रमों में उसका प्रयोग सुगमता से हो सके।

पारिस्थितिक आकार (Ecological Dimensions) की दृष्टि से व्याख्या के लिए अनेक सूचक हैं, परन्तु कुछ ही पारिस्थितिक प्रतीक (Ecological Attributes) परिमाणीय (Quantifiable) हैं। उदाहरण के लिए कलात्मक सुन्दरता (Aesthetic Beauty) के स्तर को किसी पैमाने या सूचक के रूप में प्रकट नहीं किया जा सकता, बेशक पर्यावरण से संबंधित कुछ तत्वों को चुने हुए भौतिक सूचकों की दृष्टि से परखा जा सकता है। उदाहरण के लिए, **वायु प्रदूषण** (Air Pollution) को कार्बन डाइ-आक्साइड, सल्फर डाइ-आक्साइड या नाइट्रोजन के निस्सारण (Emission) के रूप में व्यक्त किया जा सकता है। जल में बायोलॉजीकल ऑक्सीजन मांग तथा रासायनिक ऑक्सीजन मांग मिट्टी के निम्नीकरण (जैसे मिट्टी का गठन, रंग, गहराई, खारापन, जल निकासी और छनाई) का सूचक, वन विनाश दरें, खनिज ह्रास आदि कुछ अन्य पारिस्थितिक तथा पर्यावरण संबंधी माप हैं।

पारिस्थितिक तथा पर्यावरण के परिवर्तनों संबंधी सभी पक्षों को जानने के लिए धारणीय विकास के सूचकों की निम्नलिखित किस्मों का सुझाव दिया जा सकता है:

(i) **दबाव सूचक** (Pressure Indicators): ये सूचक प्रवाह चरों (Flow Variables) को बतलाते हैं। ये सूचक एक समय में, अनेक आर्थिक क्रियाओं से जनित होने वाले निस्सारण (Emissions), निक्षिप्तियाँ (Discharges), निक्षेपनों (Depositions), खीचनें (Extractions) तथा हस्तक्षेपों (Interventions) के स्तरों को प्रकट करते हैं। ये सूचक पर्यावरण संबंधी पदार्थों एवं संसाधनों के स्टॉक पर होने वाले एक बोझ (Burden) को व्यक्त करते हैं। इनको किसी आर्थिक क्रिया या क्षेत्र (Sector) या आन्तिरक संबंधी आकार (Spatial Dimension) के रूप में परिभाषित किया जा सकता है अर्थात् उन पर्यावरण संबंधी पदार्थों व सेवाओं के रूप में जो किसी जिला, क्षेत्र, राज्य या देश द्वारा प्रयोग किए जाते हैं। यहाँ ध्यान देने वाली बात यह है कि किसी भी विशेष क्षेत्र (Specific Region) में आर्थिक क्रियाओं से पैदा होने वाला पर्यावरण संबंधी दबाव का प्रभाव जरूरी नहीं कि उसी क्षेत्र पर पड़े यह दबाव किसी अन्य क्षेत्र पर भी पड़ सकता है।

निस्सारणों (Emissions) का अन्दर आना (Import) व बाहर जाना (Export) हवा (Wind) की दिशा द्वारा निर्धारित हो सकता है। इमारती लकड़ी (Timber) के निकालने (Extraction) का प्रयोग क्षेत्र से बाहर होता है।

(ii) प्रभाव सूचक (Impact Indicators): ये सूचक पर्यावरण संबंधी दबाव अभिग्राही (Receptors) पर पड़ने वाले प्रभावों को व्यक्त करते हैं, सामान्यतया ये दबाव पूर्व निश्चित क्षेत्र (Pre-determined Region) पर पड़ते हैं। इन सूचकों में आनेवाले या आयातित सीमा पार (Transboundary) दबावों को शामिल किया जाता है। ये सूचक सामान्यतया पर्यावरण संबंधी पदार्थों तथा संसाधनों के स्टॉक व गुणवत्ता के विकास को किसी नियत समय की अवधि के बाद (Overtime) प्रकट करते हैं।

(iii) धारणीय सूचक (Sustainable Indicators): दबाव प्रभाव सूचक दोनों को, पूर्वनिश्चित संदर्भ मूल्यों (Predetermined Reference Values) के साथ संबंधित दबाव या प्रभाव द्वारा धारणीय सूचकों में रूपांतरित (Transform) किया जा सकता है। ये संदर्भ निष्कासन (Extraction) के माने जाने वाले स्तर अथवा किसी पर्यावरण संबंधी धारणीय गुणवत्ता स्तर को सूचित करते हैं। पर्यावरण वस्तु का गुणवत्ता स्तर न केवल मात्रा (जैसे सिंचाई तथा पेय जल) को बतलाता है बल्कि पर्यावरणीय संसाधन तन्त्र की गुणवत्ता (Quality) को भी व्यक्त करता है अर्थात् यह जीव-जन्तु की प्रजातियों की विविधता (Diversity of Species of Flora and Fauna) को व्यक्त करता है। ऐसी स्थिति में संदर्भ या उल्लेख (Reference) परिस्थितिक तन्त्र (Ecosystem) के या तो भूतकाल से अथवा वांछनीय भविष्य से संबंधित होता है। आदर्शात्मक मूल्यांकन (Normative Valuations) के निम्नलिखित तीन पक्ष (Aspect) हो सकते हैं:

(a) ये वर्तमान (Current) तथा संदर्भ मूल्यों के बीच उस अन्तर को चित्रित करते हैं जिन्हें भरा जाना (Bridge) चाहिए।

(b) बेशक संदर्भ मूल्य (Reference Values) अन्तर्दृष्टि (Insight) पर आधारित हैं, परन्तु फिर भी ये व्यक्तिगत तथा सामाजिक जोखिम अनुमानों (Assessments) और अधिमानों (Preferences) का अनिवार्य परिणाम हैं।

(c) एक अन्य मूल्यांकन (Valuation) समस्या तब उदय होती है जब किसी पर्यावरण के सम्पूर्ण तन्त्र को पर्याप्त सूचना उपलब्ध करने के लिए धारणीय सूचक का जोड़ (Aggregate) किया जाता है। जोड़ करते समय मूल सूचकों के सापेक्षक भार (Relative Weights) को स्थापित करना पड़ता है। इन संयोजक सूचकों (Composite Indicators) की निर्माण विधि मूल्यांकन समस्या को और जटिल कर देती है। धारणीय सूचकों के कुछ उदाहरण नीचे बनी तालिका में दिए गए हैं:

धारणीय सूचकों की उदाहरणात्मक सूची
(Illustrative List of Sustainable Indicators)

मुद्दे (Issues)	दबाव (Pressure)	प्रभाव (Impact)	धारणीय विकास (Sustainable Development)
1. ऋतु परिवर्तन	पर्यावरणीय दबाव के सूचक कार्बन डाइआक्साइड का निस्सारण	सामाजिक प्रतिक्रिया के सूचक ऊर्जा गहनता (Intensity)	पर्यावरणीय दशाओं के सूचक ग्रीन हाऊस गैसों, वैश्वीय औसत तापमान का पर्यावरण में केन्द्रीयकरण
2. शहरी पर्यावरणीय गुणवत्ता	आटो, यातायात, औद्योगिकीकरण	गौण और भारी रुग्णावस्था	चुने हुए शहरों में सल्फर डाइआक्साइड, नाइट्रोजन कणों का जमा होना
3. जैवीय (Biological) विविधता तथा भूमि बनावट	भूमि प्रयोग में परिवर्तन होता है	कुल क्षेत्र के संरक्षित क्षेत्र प्रतिशतों के रूप में	जानी पहचानी प्रजातियों की विलुप्त प्रजातियों का प्रतिशत

4. अपशिष्ट (Waste)	म्यूनीसिपल कमेटी, औद्योगिक, न्यूक्लीयर हानिकारक अपशिष्ट	इनके उपचार व इकट्ठा करने पर खर्च, अपशिष्ट पुनः चक्रण दरें (कागज और शीशा)	लागू नहीं होता
5. जल संसाधन	जल संसाधन के प्रयोग की गहनता	अल्पकालीन रुग्णावस्था	सतह और भीतरी जल का ह्रास
6. वन संसाधन	वन संसाधन के प्रयोग की गहनता (Intensity)	मिट्टी कटाव, बाढ़ें	वनों का क्षेत्र, मात्रा और वितरण
7. मछली संसाधन	मछली बाहर निकालने की दरें	मछली पकड़ने (Catches) में गिरावट	जैवीय विविधता में परिवर्तन, प्रजातियों का विलोपन
8. मिट्टी, निम्नीकरण (मरुस्थलीकरण) और कटाव	मरुस्थलीकरण, रासायनिक खादों का गहन प्रयोग	जल जमा होना (Water Logging) खारेपन में परिवर्तन, बाढ़ें	भूमि की उत्पादकता में गिरावट

■ 2.5 धारणीय विकास का माप (Measurement of Sustainable Development)

धारणीय विकास के माप के लिए **हरित राष्ट्रीय आय लेखांकन प्रणाली** (Green National Accounting System) को विकसित किया गया है। धारणीय विकास का माप निम्नलिखित समुच्चयों (Aggregates) के रूप में किया जाता है:

(1) हरित शुद्ध राष्ट्रीय आय (Green Net National Income)

हरित शुद्ध राष्ट्रीय आय शुद्ध राष्ट्रीय आय तथा प्राकृतिक पूंजी की घिसावट का अंतर है। इसका अनुमान लगाने के लिए निम्नलिखित धारणाओं का ज्ञान आवश्यक है:

(a) शुद्ध राष्ट्रीय आय (Net National Income): शुद्ध राष्ट्रीय आय से अभिप्राय एक वर्ष की अवधि में किसी देश के निवासियों द्वारा उत्पादित अन्तिम वस्तुओं तथा सेवाओं के बाजार मूल्य से है।

(b) प्राकृतिक पूंजी की घिसावट (Depreciation of Natural Capital): घिसावट से अभिप्राय पूंजी के निरन्तर प्रयोग के फलस्वरूप उसके मूल्य में होने वाली कमी से है। प्राकृतिक पूंजी से अभिप्राय प्राकृतिक साधनों एवं पर्यावरण से है। अतएव प्राकृतिक पूंजी की घिसावट से अभिप्राय किसी देश के प्राकृतिक साधनों के निरन्तर प्रयोग के फलस्वरूप उनके मूल्यों में होने वाली कमी से है।

(2) हरित राष्ट्रीय आय का अनुमान (Estimation of Green National Income)

उपरोक्त धारणाओं के आधार पर हरित राष्ट्रीय आय का अनुमान निम्नलिखित प्रकार से लगाया जा सकता है:

जब वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन होता है तथा जनसंख्या में वृद्धि होती है तो प्राकृतिक पूंजी में घिसावट होती है। प्राकृतिक पूंजी की घिसावट से अभिप्राय प्राकृतिक साधनों में होने वाली कमी तथा पर्यावरण अवनति से है।

(a) हरित राष्ट्रीय आय (Green National Income) = **शुद्ध राष्ट्रीय आय – प्राकृतिक साधनों में होने वाली कमी – पर्यावरण अवनति**

हरित राष्ट्रीय आय में होने वाली वृद्धि धारणीय विकास का सूचक है।

प्राकृतिक पूंजी एवं मनुष्य निर्मित पूंजी में अन्तर

प्राकृतिक पूंजी से अभिप्राय किसी देश में प्रकृति के नि:शुल्क उपहारों के रूप में सभी प्रकार के प्राकृतिक साधनों एवं पर्यावरण से है। इसके विपरीत मनुष्य निर्मित पूंजी से अभिप्राय उन सभी वस्तुओं के स्टॉक, जैसे मशीनों से है, जो मनुष्य द्वारा उत्पादन के साधनों के रूप में उत्पादित किया जाता है।

(b) विशुद्ध बचतें (Genuine Savings) धारणीय विकास का दूसरा माप विशुद्ध बचतें (Genuine Savings) हैं। विशुद्ध बचत से अभिप्राय बचत की उस दर से है जो मनुष्य द्वारा निर्मित पूंजी में होने वाली घिसावट तथा प्राकृतिक पूंजी में होने वाली कमी के द्वारा समन्वित होती है। (The Genuine Saving is the rate of saving adjusted not only for depreciation of man-made capital but also for loss of value of the natural capital)

विशुद्ध बचतें (Genuine Savings) = **बचत की दर – मनुष्य-निर्मित पूंजी की घिसावट – प्राकृतिक पूंजी की घिसावट** (प्राकृतिक साधनों की कमी और पर्यावरण अवनति)। विशुद्ध बचतों में वृद्धि धारणीय विकास की उच्च दर को प्रदर्शित करती है।

■ 3. आर्थिक संवृद्धि, आर्थिक विकास तथा धारणीय विकास में अन्तर

(Difference among Economic Growth, Economic Development and Sustainable Development)

आर्थिक संवृद्धि, आर्थिक विकास तथा धारणीय विकास में मुख्य अन्तर निम्नलिखित हैं:

आर्थिक संवृद्धि (Economic Growth)	आर्थिक विकास (Economic Development)	धारणीय विकास (Sustainable Development)
1. इसका अर्थ है प्रति व्यक्ति वास्तविक आय में दीर्घकालीन वृद्धि।	1. प्रति व्यक्ति वास्तविक आय तथा आर्थिक कल्याण में दीर्घकालीन वृद्धि।	1. प्रति व्यक्ति वास्तविक आय, आर्थिक कल्याण तथा भावी पीढ़ी के आर्थिक कल्याण को बनाए रखना।
2. इसका प्रयोग सामान्यत: विकसित अर्थव्यवस्थाओं के लिए किया जाता है।	2. इसका प्रयोग सामान्यत: अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं के लिए किया जाता है।	2. इसका प्रयोग विकसित तथा अल्पविकसित दोनों प्रकार की अर्थव्यवस्थाओं के लिए किया जाता है।
3. इसमें आय के वितरण की अवहेलना की जाती है।	3. इसमें आय के वितरण की अवहेलना नहीं की जाती है।	3. इसमें वर्तमान तथा भावी पीढ़ी में होने वाले आय के वितरण की अवहेलना नहीं की जाती है।
4. यह पर्यावरण संरक्षण तथा प्रदूषण की अवहेलना करती है।	4. यह पर्यावरण संरक्षण तथा प्रदूषण को विशेष महत्व नहीं देता है।	4. यह पर्यावरण संरक्षण तथा प्रदूषण से बचाव को विशेष महत्व देता है।
5. इसमें प्राकृतिक सम्पत्ति स्टॉक का काफी सीमा तक शोषण होता है।	5. इसके अंतर्गत प्राकृतिक संपत्ति स्टॉक का शोषण होता है।	5. इसमें प्राकृतिक संपत्ति स्टॉक का विचारपूर्ण तथा उचित प्रयोग होता है जिससे भावी पीढ़ी को कोई हानि न हो।
6. अर्थव्यवस्था में यह संरचनात्मक तकनीकी तथा संस्थागत परिवर्तनों के लिए उत्तरदायी नहीं है।	6. यह अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक, संस्थागत तथा तकनीकी परिवर्तनों पर विशेष बल देता है।	6. यह अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक तकनीकी तथा संस्थागत परिवर्तन पर कोई विशेष बल नहीं देता है।

■ जीवन की गुणवत्ता (Quality of Life)

जीवन की गुणवत्ता से अभिप्राय है लोगों का स्वास्थ्यप्रद एवं शिक्षित जीवन। इसके लिए आवश्यक है कि लोगों की प्रति व्यक्ति वास्तविक आय इतनी पर्याप्त होनी चाहिए कि वे अपने जीवन की आवश्यकताओं अर्थात् भोजन, कपड़े, मकान की आवश्यकताओं, आरामदायक वस्तुओं तथा कुछ सीमा तक विलासिता की लाभदायक वस्तुओं का, उपभोग कर सकें। उनका जीवन स्तर ऊंचा होना चाहिए। जीवन दीर्घता लम्बी होनी चाहिए तथा वे शिक्षित होने चाहिएं। आर्थिक विकास का मुख्य लक्ष्य जीवन की गुणवत्ता में निरन्तर वृद्धि कायम करना है। जीवन की गुणवत्ता तथा पर्यावरण संरक्षण एक दूसरे के पूरक हैं। धारणीय विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए जीवन की गुणवत्ता में वृद्धि करना तथा प्राकृतिक साधनों का कुशलतापूर्वक प्रयोग करना, पर्यावरण को शुद्ध रखना तथा अर्थव्यवस्था का प्रदूषण से बचाव करना आवश्यक है।

प्रश्न (QUESTIONS)

■ I. वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

सभी प्रश्न अनिवार्य हैं (Attempt all the Questions)

1. पिछले बीस वर्षों से अर्थशास्त्रियों ने आर्थिक विकास की जिस धारणा को विकसित किया है उसका नाम है (धारणीय विकास, वैज्ञानिक विकास)
2. धारणीय विकास वह प्रक्रिया है जो वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं को पूरा करती है परन्तु किसकी योग्यताओं को हानि नहीं पहुँचाती (भावी पीढ़ी, पिछली पीढ़ी)
3. धारणीय विकास के अपनाने से भावी पीढ़ी के जीवन की गुणवत्ता (घटेगी, नहीं घटेगी)
4. धारणीय विकास के अपनाने से देश के प्राकृतिक संसाधन रहेंगे (सुरक्षित, असुरक्षित)
5. आय की असमानता में गिरावट लाने के लिए जरूरत है (धारणीय विकास की, असन्तुलित विकास की) (K.U. 2006)

उत्तर: (1) धारणीय विकास, (2) भावी पीढ़ी, (3) नहीं घटेगी, (4) सुरक्षित, (5) धारणीय विकास की।

■ II. लघु/परिभाषा रूपी प्रश्न (Short/Definitional Type Questions)

1. धारणीय विकास की परिभाषा दें। (K.U. 2007, M.D.U. 2009)

   अथवा

   धारणीय विकास से आप क्या समझते है? (K.U. 2009)
2. धारणीय विकास की दो मुख्य विशेषताएं बतलाएं।
3. धारणीय विकास प्राप्त करने की दो आवश्यक शर्तें बतलाएं।
4. प्राकृतिक पूंजी तथा भौतिक पूंजी में अन्तर बतलाएं।
5. धारणीय विकास के महत्व की दो बातें बतलाएं।
6. धारणीय विकास के सूचक क्या हैं?
7. धारणीय विकास को कैसे मापा जा सकता है?

■ III. निबन्ध रूपी प्रश्न (Eassy Type Questions)

1. What is Sustainable Development? Explain the conditions of Sustainable Development.

   धारणीय विकास क्या है? धारणीय विकास की शर्तों की व्याख्या करें। (M.D.U. 2008)

2. Define Sustainable Development. What is the significance of Sustainable Development? How is it measured?

   धारणीय विकास की परिभाषा दीजिए। धारणीय विकास की धारणा का क्या महत्व है? इसे कैसे मापा जाता है?

3. Distinguish between the concepts of Economic Growth, Economic Development and Sustainable Development.

   आर्थिक संवृद्धि, आर्थिक विकास तथा धारणीय विकास की धारणाओं में अन्तर बताइए।

4. Define sustainable development. What are the indicators of sustainable development?

   धारणीय विकास की परिभाषा दें। धारणीय विकास के कौन-से सूचक हैं? (K.U. 2005)

5. Highlight features and importance of Sustainable Development. Also discuss indicators of sustainable development.

   धारणीय विकास की विशेषताओं तथा महत्त्व को स्पष्ट कीजिए। धारणीय विकास के सूचकों (Indicators) की भी व्याख्या कीजिए। (K.U. 2008)

16

अन्तर्क्षेत्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार

(INTER-REGIONAL AND INTERNATIONAL TRADE)

■ 1. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के अर्थ (Meaning of International Trade)

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के अध्ययन का प्रमुख केन्द्र-बिन्दु विभिन्न राष्ट्रों के बीच वस्तुओं, सेवाओं व साधनों के आदान प्रदान से सम्बन्धित है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार वह व्यापार है जो विभिन्न देशों के नागरिकों के बीच होता है। (International Trade is between us and them.) सामान्य अर्थ में वस्तुओं के क्रय-विक्रय को व्यापार कहा जाता है। एक देश के व्यापार को दो भागों में बांटा जा सकता है। (1) **अन्तर्क्षेत्रीय/आन्तरिक व्यापार** (Inter-regional, Internal or Domestic Trade): आन्तरिक व्यापार वह व्यापार है जो एक देश के विभिन्न स्थानों या क्षेत्रों के बीच होता है। इसे **राष्ट्रीय व्यापार** (National Trade), **अन्तर-क्षेत्रीय व्यापार** (Inter-regional Trade) या **घरेलू व्यापार** (Domestic Trade) कहा जाता है। पंजाब, हरियाणा या हिमाचल प्रदेश के बीच होने वाला व्यापार अन्तर्क्षेत्रीय/आन्तरिक व्यापार है। (2) **अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार** (International Trade): अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार वह व्यापार है जो दो या दो से अधिक देशों के बीच होता है। भारत और अमेरिका के बीच होने वाले व्यापार को अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार या **विदेशी व्यापार** (Foreign Trade) कहा जाता है। भारत से अमेरिका को जो सामान भेजा जायेगा उसे भारत के **निर्यात** (Export) कहा जाएगा। इसके विपरीत भारत, अमेरीका से जो सामान मंगवायेगा उसे भारत के **आयात** (Import) कहा जाएगा।

■ 2. परिभाषा (Definition)

(1) पेन्गुविन शब्दकोश के अनुसार, "**एक देश तथा दूसरे देश के मध्य होने वाले वस्तुओं तथा सेवाओं के विनिमय को अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार कहते हैं।**" (The exchange of goods and services between one country and another is called international trade – **Penguin Dictionary**)

(2) एनातोल मुराद के अनुसार, "**अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार राष्ट्रों के बीच होने वाला व्यापार है।**" (International trade is a trade between nations. – **Anatol Murad**)

(3) वाजरमैन तथा हाल्टमैन के अनुसार, "**अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का सम्बन्ध उस लेन देन से होता है जो विभिन्न देशों के बीच होता है।**" (International trade consists of transactions between residents of different countries. **–Wasserman and Haltman**)

(4) एजवर्थ के अनुसार, "**अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का सरल अंग्रेजी में अर्थ विभिन्न राष्ट्रों के मध्य व्यापार है।**" (International trade meaning in plain English is trade between nations. – **Edgeworth**)

■ 3. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का आधार (Basis of International Trade)

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के मुख्य आधार निम्नलिखित हैं:

(1) **अन्तर्राष्ट्रीय विशिष्टीकरण** (International Specialisation): अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का एक मुख्य कारण अन्तर्राष्ट्रीय विशिष्टीकरण है। इसका अभिप्राय यह है कि संसार के विभिन्न देश उन वस्तुओं के उत्पादन में विशिष्टीकरण प्राप्त करते हैं जिनके उत्पादन के लिए उनके पास विशेष साधन उपलब्ध होते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय विशिष्टीकरण श्रम विभाजन का परिणाम है। प्रो०हैरोड के अनुसार,

''साधारणतया, विनिमय श्रम विभाजन का आवश्यक परिणाम है। जब श्रम विभाजन राष्ट्रीय सीमाओं को पार कर जाता है तब विदेशी व्यापार उत्पन्न होता है। यह अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, श्रम विभाजन का अनिवार्य परिणाम है।''

(2) किसी एक विशेष साधन का उपलब्ध न होना (Non-availability of a Specific Factor): प्रत्येक देश में विभिन्न प्रकार के सभी साधन उपलब्ध नहीं होते। किसी एक देश में कुछ साधन उपलब्ध होते हैं तथा दूसरे देश में अन्य प्रकार के साधन पाये जाते हैं। जैसे इंग्लैंड में चाय तथा जापान में लोहा नहीं होता। ये उन्हें आयात करने पड़ते हैं। इसी प्रकार भारत टीन का आयात करता है क्योंकि यहां टीन नहीं पाया जाता।

(3) लागतों में अन्तर (Difference in Costs): अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का एक महत्त्वपूर्ण कारण विभिन्न देशों में विभिन्न वस्तुओं की लागतों में पाया जाने वाला अन्तर भी है। यह अन्तर दो प्रकार का हो सकता है।

(i) निरपेक्ष लागत अन्तर (Absolute Cost Differences): इससे अभिप्राय यह है कि एक देश किसी दूसरे देश की तुलना में किसी वस्तु को अधिक सस्ती उत्पन्न कर सकता है। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री **एडम स्मिथ** के अनुसार, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का मुख्य आधार निरपेक्ष लागतों में पाया जाने वाला अन्तर है।

(ii) तुलनात्मक लागतों में अन्तर (Comparative Cost Differences): इससे अभिप्राय यह है कि एक देश दूसरे देश की तुलना में सभी वस्तुयें कम लागत पर उत्पन्न करता है परन्तु इनमें से कुछ वस्तुओं के उत्पादन की तुलनात्मक लागत दूसरी वस्तुओं की अपेक्षा कम होती है। रिकार्डो का विचार था कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का मुख्य आधार लागतों में पाया जाने वाला तुलनात्मक अन्तर है।

(4) वस्तु भिन्नता (Product Differentiation): कई बार एक देश किसी एक वस्तु का उत्पादन करते हुए भी उसी वस्तु का आयात करता है। जैसे, हमारे देश में कपड़ा बहुत मात्रा में बनता है और हम उसका निर्यात भी करते हैं परन्तु कई प्रकार का कपड़ा जैसे जापान की बनी हुई साड़ियां हम आयात भी करते हैं। यह इसलिए किया जाता है ताकि हम विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का उपभोग कर सकें।

■ 4. अन्तर्क्षेत्रीय/आन्तरिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की तुलना
(Comparison between Inter-regional/Internal and International Trade)

आन्तरिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में कई समानतायें तथा असमानतायें पाई जाती हैं। इनकी मुख्य समानताओं तथा असमानताओं का विवरण नीचे दिया गया है:

■ 4.1 अन्तर्क्षेत्रीय/आन्तरिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में समानताएं
(Similarities between Inter-regional Internal and International Trade)

(1) विशिष्टीकरण (Specialisation): अन्तर्क्षेत्रीय/आन्तरिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का आधार विशिष्टीकरण है जो श्रम विभाजन का परिणाम है। एक देश में जब एक राज्य किसी वस्तु के उत्पादन में विशिष्टीकरण प्राप्त कर लेता है तो देश में अन्य राज्य उस वस्तु का उत्पादन न करके उसी राज्य से उस वस्तु को खरीद लेते हैं। उदाहरण के लिए महाराष्ट्र तथा गुजरात ने कपड़े तथा चीनी में और पंजाब ने हौजरी में विशिष्टीकरण प्राप्त कर लिया है। इन प्रदेशों से कपड़ा, चीनी तथा हौजरी अन्य प्रदेशों में जाती है। इसी कारण विभिन्न देश जब किसी वस्तु के उत्पादन में विशिष्टीकरण प्राप्त कर लेते हैं तो वहां से वह वस्तु अन्य देशों को जाने लगती है। उदाहरण के लिए बंगला देश ने पटसन की वस्तुओं में तथा अमेरिका ने मशीनों में विशिष्टीकरण प्राप्त कर लिया है। इसलिए अमेरिका मशीनों का तथा बांगला देश पटसन की वस्तुओं का निर्यात करते हैं।

(2) लागत (Cost): अन्तर्क्षेत्रीय/आन्तरिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार दोनों का उद्देश्य कम लागत पर वस्तुओं का उत्पादन करना है। एक देश में जिस स्थान पर वस्तुओं की उत्पादन लागत कम होती है वहां से वस्तुएं दूसरे स्थान पर जाती हैं। इसी प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में जिस देश में वस्तु की उत्पादन लागत कम होती है अन्य देश वहां से उस वस्तु का आयात करते हैं। इस प्रकार आन्तरिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार दोनों का ही उद्देश्य कम मूल्य पर अधिकतम सन्तुष्टि प्रदान करना है।

(3) विनिमय (Exchange): दोनों प्रकार के व्यापार का उद्देश्य विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का परस्पर लेन-देन या विनिमय करना है। विनिमय का उद्देश्य उन वस्तुओं के बदले में, जो किसी स्थान पर अधिक मात्रा में पाई जाती हैं, उन वस्तुओं को प्राप्त करना है, जो उस स्थान पर कम मात्रा में होती है या बिल्कुल नहीं होती। इसलिए यह कहा जा सकता है कि आन्तरिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार दोनों का ही उद्देश्य विनिमय है।

(4) लाभ (Profit): अन्तर्क्षेत्रीय/आन्तरिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार दोनों में ही उत्पादक का उद्देश्य लाभ कमाना होता है। आन्तरिक व्यापार में एक उत्पादक अपनी वस्तुओं को वहां बेचना चाहता है जहां उसे अधिक से अधिक लाभ प्राप्त हो सके। इसी प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में भी एक देश का उत्पादक उन देशों में अपनी वस्तु का निर्यात करेगा जहां पर वस्तुएं अधिक महंगी हों जिससे उन्हें अधिक लाभ प्राप्त हो सकें।

(5) पारस्परिक सहयोग (Mutual Co-operation): अन्तर्क्षेत्रीय/आन्तरिक व्यापार में व्यापारियों का एक राज्य से दूसरे राज्य में आना-जाना होता रहता है, इस प्रकार उनमें घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो जाते हैं। जिससे सहयोग की भावना उत्पन्न हो जाती है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में भी आर्थिक सम्बन्ध स्थापित होने के पश्चात् विभिन्न देशों में सामाजिक तथा राजनीतिक क्षेत्रों में भी सहयोग बढ़ जाता है।

(6) ऐच्छिक सौदे (Voluntary Transactions): दोनों प्रकार के व्यापार में होने वाले सौदे लोगों की इच्छा पर निर्भर करते हैं। किसी देश की सरकार व्यापार सीमित कर सकती है अथवा उन पर प्रतिबन्ध लगा सकती है। परन्तु देश के लोगों को किसी वस्तु विशेष को खरीदने या बेचने के लिए बाध्य नहीं कर सकती।

(7) उपभोक्ता की प्रभुत्ता (Consumer's Sovereignty): अन्तर्क्षेत्रीय/आन्तरिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार दोनों में ही उत्पादक, उपभोक्ताओं की पसन्द को ध्यान में रखते हुए वस्तुओं का निर्माण करते हैं। उपभोक्ता जिन वस्तुओं को अधिक पसन्द करते हैं उन्हीं वस्तुओं में आन्तरिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार अधिक होता है।

(8) अधिकतम सन्तुष्टि (Maximum Satisfaction): दोनों का उद्देश्य वस्तुओं एवं सेवाओं के विनिमय द्वारा अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त करना है। जो वस्तुएं एक स्थान पर नहीं मिलती उन्हें आन्तरिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के द्वारा वहां उपलब्ध कराया जाता है।

संक्षेप में, हम कह सकते हैं कि अन्तर्क्षेत्रीय/आन्तरिक और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में कोई मौलिक अन्तर नहीं है। इसलिए ओहलिन के अनुसार, **''अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, अन्तर्क्षेत्रीय व्यापार का एक विशिष्ट रूप मात्र है।''** (International trade is only a special case of Inter-Regional trade.– **Ohlin**)

■ 5. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा अन्तर्क्षेत्रीय/आन्तरिक व्यापार में अन्तर
(Difference between International and Inter-regional/Internal Trade)

या

■ अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए पृथक सिद्धान्त के पक्ष में तर्क
(Arguments in Favour of a Separate Theory for International Trade)

यद्यपि अन्तर्क्षेत्रीय/आन्तरिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में कई प्रकार की समानताएं हैं परन्तु कुछ क्षेत्रों में इन दोनों प्रकार के व्यापार में भिन्नता पाई जाती है। इसलिए परम्परावादी अर्थशास्त्री अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए एक पृथक सिद्धान्त के पक्ष में थे। **प्रो॰ हैवरलर** के अनुसार, **''परम्परावादी विचारकों का यह विश्वास था कि घरेलू व्यापार एवं विदेशी व्यापार में मूलभूत अन्तर है।''** (The classical school believed nevertheless that there was a fundamental difference between home trade and foreign trade. – **Haberler**)

प्रो॰ किण्डलबर्गर (Kindleberger) के अनुसार, **''अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का पृथक विषय के रूप में विवेचन करने का कारण इसकी परम्परा, वास्तविक विश्व में अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक प्रश्नों द्वारा खड़ी की गई आवश्यक तथा महत्त्वपूर्ण समस्याएं,**

घरेलू व्यापार से भिन्न नियमों का पालन तथा इसके अध्ययन द्वारा अर्थशास्त्र के हमारे ज्ञान को अधिक सम्पन्न करना है।'' आन्तरिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में मुख्य विभिन्नताएं निम्नलिखित हैं:

(1) उत्पादन के साधनों की गतिहीनता (Immobility of the Factors of Production): परम्परावादी अर्थशास्त्रियों का मत है कि उत्पादन के साधन जैसे श्रम और पूंजी एक देश की सीमाओं में तो गतिशील होते हैं अर्थात् एक स्थान से दूसरे स्थान या एक उद्योग से दूसरे उद्योग में सुविधा से आ और जा सकते हैं। परन्तु एक देश से दूसरे देश में उत्पादन के साधन साधारणतया **गतिहीन** (Immobile) होते हैं। **एडम स्मिथ** के अनुसार, ''**सब प्रकार के सामान में से मनुष्य की गतिशीलता में सबसे अधिक कठिनाई है।**'' (Of all sorts of luggage man is most difficult to be transported. – **Adam Smith**) अधिक मजदूरी मिलने पर भी मनुष्य अपने देश से दूसरे देश में नहीं जाना चाहता। इसका कारण यह है कि अपने देश में उसके सगे सम्बन्धी, मित्र, भूमि, सम्पत्ति इत्यादि होती हैं। इसलिए उनको छोड़ कर वह दूसरे देश में जाना नहीं चाहता। इसके अतिरिक्त स्वदेश प्रेम तथा दूसरे देश में भाषा की कठिनाई भी एक बहुत बड़ी अड़चन होती है। इसी प्रकार से प्रत्येक व्यक्ति दूसरे देश में पूंजी लगाने से घबराता है। एक व्यक्ति को यह ज्ञान नहीं होता कि दूसरे देश में लाभ की सम्भावनाएं क्या हैं, उसे वहां न्याय मिलेगा या नहीं, उसकी पूंजी को कहीं ज़ब्त ही न कर लिया जाए, इत्यादि। इसलिए पूंजी की गतिशीलता में भी, कठिनाई आती है। दो देशों में उत्पादन के साधनों की इस **गतिहीनता** (Immobility) के कारण साधनों में पूर्ण प्रतियोगिता नहीं होती इसलिए दो देशों में वस्तु की लागत और कीमतों में भिन्नता पाई जाती है। इस भिन्नता के कारण ही अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार होता है।

(2) उत्पादन परिस्थितियों में भिन्नता (Different Production Conditions): दो देशों में उत्पादन परिस्थितियों में अन्तर होना स्वाभाविक है, प्रत्येक देश में उत्पादन की **तकनीक** (Technology), कर प्रणाली, श्रम सम्बन्धी नियम, सामाजिक रीति रिवाज, उत्पादन की सुविधाएं इत्यादि भिन्न होती हैं। कुछ देशों में उत्पादन को प्रोत्साहित करने के लिए सरकार वित्तीय सहायता, करों में छूट, यातायात तथा शक्ति जैसे साधनों का सुचारु प्रबन्ध करने की सुविधाएं प्रदान करती है। इसलिए इन देशों में उत्पादन लागतें कम होती है। **हैरोड** (Harrod) के अनुसार, ''**वास्तविक लागत का सामान्य स्तर एक देश से दूसरे देश की तुलना में इसलिए नीचा हो सकता है कि सरकार ने अधिक सुविधाएं दे रखी हैं।**'' इसलिए विभिन्न देशों में एक वस्तु की कीमत अलग-अलग हो सकती है। परन्तु एक ही देश में उत्पादन परिस्थितियों में अधिक अन्तर नहीं होता।

(3) विभिन्न मुद्रा प्रणालियां (Different Currencies): संसार के विभिन्न देशों में मुद्रा प्रणाली तथा मौद्रिक नीति अलग-अलग होती है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए विभिन्न देशों की मुद्राओं में विनिमय दरें निर्धारित करना और फिर उन दरों को स्थायी रखने की समस्या होती है। इसके अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए **विदेशी विनिमय** (Foreign Exchange) की भी कठिनाई उत्पन्न होती है। अर्थात् जिस देश से हमें वस्तुएं आयात करनी हैं उस देश की मुद्रा की भी आवश्यकता होती है। इसके परिणामस्वरूप भुगतान संतुलन की समस्या भी उत्पन्न होती है। इसके विपरीत एक देश के सभी राज्यों में एक ही मुद्रा प्रणाली तथा मौद्रिक नीति होती है। एक देश के अन्दर व्यापार करते समय मुद्रा के सम्बन्ध में ये समस्याएं उत्पन्न नहीं होतीं।

(4) बाज़ार परिस्थितियों में भिन्नता (Different Market Conditions): अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में क्रेताओं और विक्रेताओं के बीच भौगोलिक दूरी के अतिरिक्त बाज़ार की परिस्थितियों जैसे, परम्पराओं, रुचि, रीति-रिवाज, माप-तोल, बिक्री की शर्तों इत्यादि में भिन्नता होने के कारण बहुत-सी कठिनाइयां आती हैं। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में वस्तु की **पैकिंग** (Packing) यदि ठीक प्रकार से न हो तो रास्ते में ही वस्तु के चोरी या टूट-फूट का भी खतरा रहता है। इस प्रकार की कोई दुर्घटना होने पर या अन्य किसी प्रकार की गलती होने पर उसमें सुधार करने के लिए पर्याप्त समय लगने के अतिरिक्त काफी खर्च भी आता है। इसके विपरीत घरेलू व्यापार में इस प्रकार की कठिनाइयां उत्पन्न होने की सम्भावनाएं कम होती हैं।

(5) प्राकृतिक साधनों तथा भौगोलिक परिस्थितियों में अन्तर (Differences in Natural Resources and Geographical Conditions): प्रत्येक देश में प्राकृतिक साधन तथा भौगोलिक परिस्थितियां भिन्न होती हैं। जैसे भारत में अभ्रक, मैगनीज तथा लोहा के पर्याप्त भण्डार हैं जबकि कुवैत तथा इराक में तेल के भण्डार पाए जाते हैं। इसी प्रकार जलवायु, वर्षा तथा मिट्टी में

भिन्नता होने के कारण कृषि उत्पादन तथा उद्योगों में भी भिन्नता पाई जाती है। इन भिन्नताओं के कारण प्रत्येक देश में वस्तु की लागत में अन्तर होता है।

(6) आयात और निर्यात पर प्रतिबन्ध (Import and Export Restrictions): एक देश के विभिन्न भागों में वस्तुओं के क्रय-विक्रय पर साधारणत: प्रतिबन्ध नहीं लगाए जाते परन्तु राष्ट्रीय विकास और सुरक्षा की दृष्टि से विभिन्न देशों की सरकारें कुछ वस्तुओं के आयात और निर्यात पर प्रतिबन्ध लगा देती हैं इसके अतिरिक्त कुछ अन्य वस्तुओं के आयात और निर्यात को निरुत्साहित करने के लिए **तटकर** (Tariffs) अधिक मात्रा में लगाये जाते हैं। इसके विपरीत आन्तरिक व्यापार में इस प्रकार के प्रतिबन्ध अथवा कर नहीं लगाये जाते। इन प्रतिबन्धों के फलस्वरूप भी अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के पृथक सिद्धान्त की आवश्यकता होती है। **प्रो० हैबरलर** (Haberler) ने ठीक ही कहा है कि **''तटकर की दीवार विदेशी तथा देशी व्यापार में अन्तर उत्पन्न करती है।''**

(7) वस्तुओं की गतिशीलता में अन्तर (Difference in the Mobility of Goods): आन्तरिक व्यापार के लिए वस्तुओं को देश में एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजने के लिये यातायात के साधनों जैसे रेलों, सड़कों, हवाई मार्ग तथा जलमार्ग का सरलता से प्रयोग किया जा सकता है। इसके विपरीत अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में वस्तुओं को एक देश से दूसरे देश में भेजने के लिये हवाई मार्ग तथा जलमार्ग का सरलता से प्रयोग किया जा सकता है। परन्तु प्रत्येक देश के पास हवाई जहाजों या समुद्री जहाजों की उचित व्यवस्था नहीं होती। इसलिए आन्तरिक व्यापार की तुलना में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में वस्तुओं की गतिशीलता में काफी कठिनाइयां होती हैं।

(8) अन्तर्राष्ट्रीय संगठन (International Organisation): विश्व के विभिन्न देश कुछ गुटों में बंटे हुए हैं। इन गुटों की कुछ परस्पर राजनीतिक तथा आर्थिक समस्याएं होती हैं जो अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को प्रभावित करती हैं, परन्तु राष्ट्रीय व्यापार पर कोई प्रभाव नहीं डालती। जैसे यूरोपियन यूनियन (EU) का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर काफी प्रभाव पड़ा है।

(9) विशिष्ट समस्याएं (Specific Problems): अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर कुछ विशिष्ट समस्याएं जैसे, अन्तर्राष्ट्रीय तरलता, अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक सहयोग, अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक समस्याएं इत्यादि भी अपना प्रभाव डालती हैं। ये समस्याएं आन्तरिक व्यापार को प्रभावित नहीं करती।

(10) आर्थिक राष्ट्रवाद (Economic Nationalism): वर्तमान काल में राष्ट्रवाद की मनोवैज्ञानिक भावना (Psychological Concept) ने अन्तर्राष्ट्रीय तथा आन्तरिक व्यापार के अन्तर को और भी अधिक स्पष्ट कर दिया है। हमारे देश में स्वदेशी आन्दोलन (Swedeshi Movement) इसी भावना का परिचायक है। प्रत्येक देश की सरकार इस प्रकार की आर्थिक नीति अपनाती है जिससे उस देश के उद्योग अधिक विकसित हों तथा उस देश के नागरिकों का अधिकतम कल्याण हो। इस प्रकार की नीति से यदि दूसरे देशों को हानि भी होती है तब भी सरकार कोई चिन्ता नहीं करती। परन्तु देश के विभिन्न भागों के बीच में होने वाले व्यापार के सम्बन्ध में ऐसी नीतियां नहीं अपनाई जाती। **फ्रेडरिक लिस्ट** के अनुसार, **''घरेलू व्यापार हम लोगों के बीच में है जबकि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार हमारे और उनके बीच में है।''** (Domestic trade is among us, International trade is between us and them.– **Fredric List**)

(11) भिन्न राष्ट्रीय नीतियां (Different National Policies): अन्तर्राष्ट्रीय और अन्तर्क्षेत्रीय व्यापार में कराधान, व्यापार, वाणिज्य तथा समाजिक रीतियों सम्बन्धों में भिन्नता भी पाई जाती है। एक देश में व्यापार, वाणिज्य, कराधान इत्यादि नीतियां एक समान होती हैं। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में एक देश से दूसरे देश में जाने वाली वस्तुओं पर कई प्रकार के प्रतिबन्ध लगाए जाते हैं। अन्तर्क्षेत्रीय व्यापार में वस्तुओं और सेवाओं के आदान-प्रदान पर इस प्रकार के प्रतिबन्ध नहीं होते हैं।

(12) व्यापार की शर्तें (Terms of Trade): अन्तर्क्षेत्रीय व्यापार में व्यापार की शर्तों में सामान्यत: स्थिरता रहती है, जब कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में इन शर्तों में शीघ्रता से परिवर्तन होते रहते हैं।

उपरोक्त व्याख्या से यह स्पष्ट है कि आन्तरिक व्यापार तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में पर्याप्त अन्तर है और इसलिए अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए पृथक सिद्धान्त की आवश्यकता है।

■ 6. पृथक सिद्धान्त के विपक्ष में तर्क (Arguments against a Separate Theory)

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा अन्तर्क्षेत्रीय/घरेलू व्यापार में जो उपरोक्त अन्तर बताया गया है वह आधारभूत प्रकार (Kinds) का नहीं है बल्कि केवल मात्रा (Degree) का है। इसीलिए स्वीडिश अर्थशास्त्री **ओहलिन** ने कहा है कि, "**अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार आन्तरिक व्यापार का एक विशेष रूप मात्र है।**" (International trade is only a special case of inter-regional trade.- **Bertil Ohlin**) **आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने पृथक सिद्धान्त के विपक्ष में निम्नलिखित तर्क दिये हैं:**

(1) उत्पादन साधनों की गतिशीलता (Mobility of the Factors of Production): पिछले चालीस वर्षों में विभिन्न देशों में उत्पादन के साधनों की गतिशीलता में पर्याप्त मात्रा में वृद्धि हुई। यह सोचना भ्रमपूर्ण है कि देशों में श्रम तथा पूंजी की गतिशीलता अपूर्ण होती है और एक देश में ये साधन पूर्णतया गतिशील होते हैं। हरियाणा से केरल में जाना अधिक कठिन है जबकि स्विट्ज़रलैंड से जर्मन या यू॰एस॰ए॰ से कनाडा जाना अधिक सरल है। एक ही देश के विभिन्न क्षेत्रों में श्रम की गतिहीनता पाई जा सकती है। **केयरनेस** (Cairness) के अनुसार, "**एक ही देश के अन्दर प्रतियोगिता रहित समूह होते हैं। इनमें एक समूह में कार्य करने वाले लोग दूसरे समूह में कार्य नहीं करना चाहते।**" बैंकिंग सुविधाओं एवं विस्तार के कारण पूंजी निवेश के सम्बन्ध में विभिन्न देशों ने भी उदारवादी नीति अपना ली है। इसलिये यह कहना उचित नहीं है कि एक देश में श्रम तथा पूंजी गतिशील होते हैं। परन्तु विभिन्न देशों में गतिहीन होते हैं।

(2) तुलनात्मक लागत (Comparative Cost): आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार तुलनात्मक लागत का सिद्धान्त केवल अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर ही लागू नहीं होता, यह घरेलू व्यापार पर भी लागू होता है। **ओहलिन** के अनुसार, "**क्षेत्र और राष्ट्र जिन कारणों से विशिष्टता प्राप्त करते हैं और व्यापार करते हैं उन्हीं कारणों से व्यक्ति भी विशिष्टता प्राप्त करते हैं और व्यापार करते हैं।**" **पैरिटो** ने इसकी पुष्टि करते हुए लिखा है कि, "**सापेक्षिक लाभ का विचार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की ही विशेषता नहीं है। इसे उन व्यक्तियों पर भी लागू किया जा सकता है जो एक आर्थिक इकाई बनाते हैं।**" (The consideration of relative advantage is not peculiar to international trade. It can be applied also to individuals, who form an economic unit.– **Pareto**)

(3) विभिन्न मुद्रा प्रणालियां (Different Currencies): जहां तक मुद्रा प्रणालियों की भिन्नता का प्रश्न है अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (I.M.F.) की स्थापना के पश्चात् अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की कोई महत्त्वपूर्ण समस्या नहीं रही है। अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष द्वारा विभिन्न देशों की मुद्राओं के विनिमय की सुविधायें तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में भुगतान सुविधाओं का प्रदान किया जाना एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। इसलिये यह भिन्नता पृथक् सिद्धान्त का आधार नहीं बन सकती।

(4) उत्पादन परिस्थितियां (Production Conditions): उत्पादन परिस्थितियों में पाये जाने वाले अन्तर भी आन्तरिक और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में भिन्नता का कोई महत्त्वपूर्ण आधार नहीं है। एक ही देश के विभिन्न क्षेत्रों में ही उत्पादन की आधारभूत सुविधाओं में अत्यधिक अन्तर पाया जाता है। उदाहरण के लिए पंजाब में उत्पादन सुविधाओं के अधिक मिलने के कारण से लोगों की उत्पादन क्षमता, प्रति व्यक्ति उत्पादन तथा प्रति व्यक्ति आय, मध्य प्रदेश, राजस्थान या बिहार की तुलना में बहुत अधिक है। इसलिए यह स्पष्ट है कि उत्पादन परिस्थितियों में भिन्नता दो देशों में ही नहीं बल्कि एक देश के दो क्षेत्रों में भी हो सकती है।

(5) प्राकृतिक साधन तथा भौगोलिक परिस्थितियां (Natural Resources and Geographical Conditions): विश्व के बड़े देशों जैसे भारत, चीन, रूस इत्यादि के विभिन्न क्षेत्रों में प्राकृतिक साधनों तथा भौगोलिक परिस्थितियों से सम्बन्धित भिन्नता होना एक सामान्य बात है। उदाहरण के लिए, भारत में बिहार और बंगाल में कोयले की खाने हैं, मध्य प्रदेश में अभ्रक मिलता है जबकि पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश में खनिज पदार्थ नहीं मिलते परन्तु वहां की मिट्टी अधिक उपजाऊ है। इसी प्रकार राजस्थान की जलवायु में सूखापन है जबकि असम की जलवायु में नमी है। इसीलिए इस प्रकार की भिन्नता दो देशों में ही नहीं बल्कि एक देश के विभिन्न क्षेत्रों में भी पाई जाती है।

(6) आयात और निर्यात पर प्रतिबन्ध (Import and Export Restrictions): विभिन्न देशों में आयात तथा निर्यात के प्रतिबन्ध कम होते जा रहे हैं। यूरोपियन यूनियन के रूप में साझे बाज़ार की स्थापना इसका उदाहरण है। इन देशों में व्यापारिक प्रतिबन्ध

धीरे-धीरे समाप्त किए जा रहे हैं। इसके विपरीत एक ही देश में विभिन्न राज्यों अथवा क्षेत्रों में अनाज, चीनी, सीमेंट इत्यादि में लाने , ले जाने पर प्रतिबन्ध लगा दिए जाते हैं। इसलिए यह तर्क भी पृथक् सिद्धान्त के लिए आधार नहीं हो सकता।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा आन्तरिक व्यापार में कोई आधारभूत अन्तर नहीं है। इसलिए अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए एक पृथक् सिद्धान्त की कोई आवश्यकता नहीं है। **केनन** (Cannan) के अनुसार, **''रिकार्डो से लेकर अब तक के अर्थशास्त्रियों ने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए एक पृथक सिद्धान्त देकर एक भारी भूल की है।''** इसी प्रकार एजवर्थ (Edgeworth) का मत है कि **''अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर भी वही मौलिक सिद्धान्त लागू होता है जो घरेलू व्यापार पर लागू होता है।''** परन्तु विभिन्न देशों की सरकारों की विभिन्न नीतियां, मुद्रा प्रणाली के अन्तर तथा स्वदेशी की मनौवैज्ञानिक भावना के कारण अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए एक अलग सिद्धान्त की आवश्यकता पड़ती है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की समस्याओं को हल करने के लिए बहुत से अन्तर्राष्ट्रीय संगठन काम कर रहे हैं। जैसे– World Bank, IMF, UNCTAD तथा GATT जिसे अब WTO में बदल दिया गया है। इन संगठनों का आन्तरिक व्यापार से कोई सम्बन्ध नहीं है।

■ 7. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लाभ (Advantages or Merits of International Trade)

या

■ अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का महत्त्व (Importance of International Trade)

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के मुख्य लाभ निम्नलिखित हैं:

(1) प्राकृतिक साधनों का पूरा उपयोग (Full use of Natural Resources): अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के कारण प्राकृतिक साधनों का पूरा उपयोग किया जा सकता है अविकसित देश अपने खनिज पदार्थों का स्वयं उपयोग नहीं कर पाते हैं। ये देश कच्चे माल का निर्यात विकसित देशों में करते हैं जहां उसका पूरी तरह उपयोग किया जा सकता है। **मार्शल** के अनुसार, **''विदेशी व्यापार से दोहरा लाभ मिलता है, देश में उपलब्ध साधनों का अनुकूलतम प्रयोग किया जा सकता है और साथ ही विदेशों से वस्तुएं उपलब्ध कर के देश के लोगों की आवश्यकताएं भी सन्तुष्ट की जा सकती है।''**

(2) सस्ती वस्तुएं (Cheap Goods): अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के कारण सभी देशों को सस्ती वस्तुएं उपभोग करने को मिल जाती हैं। इसका कारण यह है कि प्रत्येक देश उन वस्तुओं का उत्पादन करता है जिनके बनाने में तुलनात्मक लागत कम आती है। **वेस्टवेल** के शब्दों में, **''ऐसी अनेक वस्तुयें है जो कि पर्याप्त मात्रा में न तो उत्पादित की जा सकती हैं और न ही ग्राहकों को आकर्षित करने हेतु कम मूल्य पर प्राप्त हो पाती है , परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय विनिमय द्वारा सरलता से प्राप्त हो जाती है।''**

(3) प्राकृतिक संकटों का मुकाबला करने की शक्ति (Power to Face Natural Calamities): जब किसी देश पर किसी प्रकार के प्राकृतिक संकट जैसे अकाल, बाढ़, महामारी इत्यादि का प्रकोप होता है तो अन्य उसकी सहायता करते हैं। इस प्रकार सब देशों में इस प्रकार के संकटों का मुकाबला करने की शक्ति बढ़ जाती है।

(4) विभिन्न प्रकार की वस्तुएं (Varities of Goods): अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की सहायता से उपभोक्ताओं को भिन्न-भिन्न देशों में बनी हुई, विभिन्न प्रकार की वस्तुएं उपभोग करने का अवसर प्राप्त होता है। इस प्रकार से सभी देशों के उपभोग में वृद्धि होती है और जीवन स्तर ऊंचा उठता है। **वाल्टरक्राज** के अनुसार, **''अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार अधिक लोगों को जीवित रहने, कई प्रकार की रुचियों को सन्तुष्ट करने और ऊंचे जीवन स्तर का आनन्द लेने का अवसर, जो इसकी अनुपस्थिति में सम्भव न हो, प्रदान करता है।''** (International trade permits more people to live, to gratify more varied tastes and to enjoy a higher standard of living than would be possible in its absence.- **Walter Krause**)

(5) अतिरिक्त उत्पादन (Surplus Production): अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के कारण प्रत्येक देश को अपने अतिरिक्त उत्पादन को बेचने का अवसर मिलता है। कुछ देश अपनी आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का उत्पादन करते हैं। इन अतिरिक्त वस्तुओं को अन्य देशों में बेच कर कीमतों में होने वाली कमी को रोका जा सकता है। इसके फलस्वरूप वस्तुओं का निर्यात करने वाले देश को विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है तथा वह देश आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न होता है। **एडम स्मिथ** के अनुसार, **''चाहे किन्हीं स्थानों के बीच विदेशी व्यापार**

क्यों न किया जाए, इससे दो लाभ होते हैं - इससे देश की भूमि और श्रम के उत्पादन का वह अतिरेक काम में आता है जिस की देश में कोई मांग नहीं होती और इसके बदले में उसे वह कुछ मिल जाता है जिसकी मांग देश में होती है।''

(6) प्रतियोगिता (Competition): अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के फलस्वरूप विभिन्न देशों में वस्तुओं के उत्पादन में प्रतियोगिता होती है प्रत्येक देश का यह प्रयत्न रहता है कि बढ़िया तथा कम कीमत पर वस्तुओं का उत्पादन करें।

(7) विस्तृत बाज़ार (Wider Market): अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के कारण बाज़ार का विस्तार हो जाता है। प्रत्येक देश अधिक से अधिक मात्रा में विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन करने का प्रयत्न करता है। इसके परिणामस्वरूप उत्पादन की **आन्तरिक व बाहरी बचतें** (Internal and External economies) प्राप्त होती हैं और उद्योग में बढ़ते प्रतिफल का नियम लागू होता है। इसलिए उत्पादन लागत कम हो जाती है।

(8) एकाधिकारी प्रवृत्ति का अन्त (End of Monopolistic Tendency): जब विभिन्न देशों में वस्तुओं का परस्पर आयात और निर्यात होता है तो उत्पादन के अधिक अवसर प्राप्त होने के कारण नये उद्यमी बाज़ार में प्रवेश करते हैं और इस प्रकार एकाधिकारी प्रवृत्ति समाप्त होती है।

(9) कच्चे माल की उपलब्धता (Availability of Raw Material): विश्व में कुछ देश तकनीकी ज्ञान की दृष्टि से उन्नत होते हैं, परन्तु उनमें कच्चे माल की कमी होती है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के कारण ये देश विदेशों से कच्चा माल मंगवा कर औद्योगिक दृष्टि से उन्नत हो सकते हैं। उदाहरण के लिए जापान में कच्चे लोहे की कमी है। जापान ने दूसरे देशों से कच्चा लोहा मंगवा कर ही औद्योगिक उन्नति के शिखर को प्राप्त कर लिया है।

(10) विशिष्टीकरण (Specialisation): अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के कारण विभिन्न देश केवल उन्हीं वस्तुओं के उत्पादन में विशिष्टता प्राप्त करते हैं जिनमें उत्पादन परिस्थितियां अनुकूलतम होती हैं इसके परिणामस्वरूप वस्तुएं अधिक मात्रा में, उत्तम तथा सस्ती बनती हैं। **मैकोनल** के अनुसार, **''अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एक ऐसा साधन है जिसमें राष्ट्र विशिष्टता प्राप्त कर सकते हैं, साधनों की उत्पादकता को बढ़ा सकते हैं और इस प्रकार इसके अभाव में होने वाले उत्पादन की तुलना में अधिक उत्पादन कर सकते हैं।''** (International trade is a means by which nations can specialise, increase the productivity of their resources and thereby realize a larger output than otherwise.-**McConnell**)

(11) आर्थिक विकास की सम्भावना (Possibility of Economic Development): अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में विभिन्न देशों के आर्थिक विकास की सम्भावनाएं बहुत बढ़ जाती हैं। अविकसित देश विकसित देशों से मशीनरी, तकनीकी ज्ञान तथा अन्य सहायक उपकरणों का आयात करके देश में उपलब्ध कच्चे माल का लाभ उठाते हुए उत्पादन में वृद्धि करते हैं, निर्यातों को बढ़ाते हैं और इस प्रकार आर्थिक विकास की स्थिति को प्राप्त कर सकते हैं। **डा०रोबर्टसन** के अनुसार, **''अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार विकास का इन्जन है।''** (International Trade is an engine of growth.-**Robertson**)

(12) उत्पादन विधियों में सुधार (Improvement in Techniques of Production): अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के कारण उद्यमियों में प्रतियोगिता की भावना उत्पन्न होती है। वस्तुओं का बढ़िया तथा कम लागत पर उत्पादन करने के लिए उत्पादन के नये-नये तरीकों का आविष्कार होने लगता है। तकनीकी विकास आर्थिक उन्नति का आधार है।

(13) राष्ट्रीय आय में वृद्धि (Increase in National Income): अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के कारण उत्पादन के प्रत्येक क्षेत्र में वृद्धि होती है। निर्यात उद्योगों में अधिक पूंजी का निवेश किया जाता है। इसका देश की अर्थव्यवस्था पर दोहरा प्रभाव होता है। एक तो अधिक लोगों को रोज़गार मिलता है और दूसरे निर्यात में वृद्धि होती है। इन दोनों प्रक्रियाओं के कारण आय तथा विदेशी व्यापार गुणक (Income and Foreign Trade Multiplier) कार्य करते हैं और राष्ट्रीय आय में कई गुना वृद्धि होती है।

(14) अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग (International Co-operation): अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से विभिन्न देशों में परस्पर सहयोग की भावना का जन्म होता है। इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार द्वारा विश्व के देशों में मित्रता बढ़ती है और विश्व शान्ति की सम्भावना अधिक बढ़ जाती है।

(15) विभिन्न वर्गों को लाभ (Advantage to Different Classes): अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से किसी एक विशेष वर्ग को ही नहीं बल्कि सब प्रकार के वर्गों जैसे उत्पादकों, उपभोक्ताओं श्रमिकों इत्यादि को लाभ होता है।

(16) अधिक रोज़गार (More Employment): अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से सब क्षेत्रों जैसे कृषि, उद्योग, यातायात, बैंकिंग प्रणाली, व्यापार इत्यादि का विकास होता है। इसलिए इन सब क्षेत्रों में रोज़गार के अवसरों में पर्याप्त मात्रा में वृद्धि होती है।

(17) सांस्कृतिक सम्बन्ध (Cultural Relations): अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार वस्तुओं के आदान-प्रदान तक ही सीमित नहीं रहता बल्कि इसके फलस्वरूप व्यापार करने वाले देशों में सांस्कृतिक सम्बन्ध भी स्थापित हो जाते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर खेलों, फिल्मों, नाच-गानों की प्रतियोगिताएं तथा विभिन्न सामाजिक, राजनीतिक विषयों पर गोष्ठियों का आयोजन भी होता है। इस प्रकार विभिन्न देश एक दूसरे की सभ्यता को प्रभावित करते हैं। **हेनरी गोमेज** के अनुसार, **''अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार लोगों को सभ्य बनाने का सबसे बड़ा माध्यम है।''** (International Trade is the greatest civilizing agency. – **Henry Gomez**) संक्षेप में, **पाल॰वी॰होर्ण तथा हेनरी** ने तो यहां तक कहा है कि, **''इसमें भाग लेने वाले सभी देशों को लाभ होता है और इससे किसी को हानि नहीं होती।''** (It results in benefits to all participating nations and injury to none. – **Paul. V. Horn and Henry**)

■ 8. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की हानियां (Disadvantages or Demerits of International Trade)

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के जहां इतने लाभ हैं वहां इसकी कुछ हानियां भी हैं जो निम्नलिखित हैं:

(1) प्राकृतिक साधनों की समाप्ति (Exhaustion of Natural Resources): अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का एक प्रमुख दोष यह है कि एक अविकसित देश कच्चे माल का निर्यात करके अपने प्राकृतिक साधनों को समाप्त कर लेता है। इसमें अविकसित देश को दोहरी हानि होती है। एक तो सस्ते दामों पर कच्चा माल निर्यात करना और दूसरा महंगे दामों पर निर्मित माल का आयात करना पड़ता है।

(2) राजनीतिक दासता (Political Slavery): अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक सम्बन्धों के कारण अविकसित देश केवल वस्तुओं का आयात ही नहीं करते बल्कि धनी देशों से ऋण भी लेते हैं। धीरे-धीरे यह धनी देश अविकसित देशों की राजनीति तथा प्रशासन में हस्तक्षेप करना प्रारम्भ कर देते हैं और अन्त में उन पर राज्य करने लगते हैं। अंग्रेज भारत में व्यापारी बनकर आये थे और स्वामी बन बैठे। अंग्रेजी में कहावत है Flag follows the trade, अर्थात् व्यापार के साथ-साथ झण्डा (जो कि राजनीतिक प्रमुखता का प्रतीक है) चलता है।

(3) विदेशी प्रतियोगिता (Foreign Competition): अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के कारण विभिन्न देशों में प्रतियोगिता बढ़ती है। कई क्षेत्रों में घरेलू उद्योगों को भीषण प्रतियोगिता का सामना करना पड़ता है और वहां उद्योग पनप नहीं पाते। भारत में कुटीर उद्योगों के पतन का यही मुख्य कारण है।

(4) राशिपातन (Dumping): विकसित देश निर्धन देशों की विदेशी मण्डियों पर अधिकार करने के लिए निर्धन देशों में लागत से भी कम कीमत पर वस्तुओं का निर्यात करने लगते हैं। इस प्रक्रिया को राशिपातन (Dumping) कहते हैं। इसके परिणामस्वरूप अविकसित देशों के उद्योग नहीं पनप पाते तथा वे देश आर्थिक दृष्टि से पिछड़े रह जाते हैं।

(5) अन्तर्राष्ट्रीय द्वेष (International Rivalry): अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के एक ही देश की मण्डी पर अधिकार करने के लिए कई देश प्रयत्न करते हैं कि उनकी इस प्रतिस्पर्धा के कारण अन्तर्राष्ट्रीय द्वेष का जन्म होता है। विश्व में दो महायुद्ध इसी के परिणामस्वरूप हुए हैं।

(6) कीमतों में वृद्धि (Increase in Prices): कई उत्पादक अधिक आय के लालच में अथवा सरकार द्वारा विदेशी मुद्रा प्राप्त करने के लिए कुछ आवश्यक वस्तुओं का निर्यात कर देते हैं। इसके फलस्वरूप देश में इन वस्तुओं की कमी हो जाती है और कीमतें बढ़ जाती हैं। अत: देश के लोगों का जीवन स्तर गिरने लगता है। भारत में प्याज और सीमेंट की कीमत में वृद्धि का मुख्य कारण यही था। इसी प्रकार भारत द्वारा बंगलादेश को चीनी का निर्यात करने से भारत में चीनी की कीमत बढ़ गई थी।

(7) हानिकारक आयात (Harmful Imports): अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में कई बार ऐसी नशीली या विलासिता की वस्तुओं का आयात किया जाता है जिनसे देश के स्वास्थ्य, चरित्र तथा कार्यकुशलता पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है।

(8) निर्भरता (Dependence): विदेशी व्यापार के कारण कई बार बढ़िया तथा सस्ती वस्तुओं का देश में आयात होने के कारण विदेशों पर निर्भरता इतनी अधिक बढ़ जाती है कि देश में उन वस्तुओं का उत्पादन बन्द हो जाता है। परन्तु युद्ध अथवा अन्य किसी प्रकार का आर्थिक संकट आने पर यदि इन वस्तुओं का आयात बन्द हो जाए तो देश को काफी कठिनाई उठानी पड़ती है।

(9) कृषि प्रधान देशों को हानि (Loss to Agricultural Countries): अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के फलस्वरूप कृषि प्रधान देशों को सबसे अधिक हानि होती है। कृषि वस्तुओं की मांग बेलोचदार होने के कारण उनकी कीमत कम होने पर भी मांग में कोई विशेष वृद्धि नहीं होती। इसके साथ-साथ कृषि में घटते प्रतिफल का नियम शीघ्र लागू होता है। जबकि आयात की जाने वाली निर्मित वस्तुओं की मांग अधिक लोचदार होती है और उन पर बढ़ते प्रतिफल का नियम लागू होता है।

(10) अति उत्पादन (Over Production): अधिक निर्यात करके विदेशी विनिमय कमाने के लालच में वस्तुओं का अत्यधिक उत्पादन किया जाता है। यदि विदेशों में मांग एक दम कम हो जाए तो अति उत्पादन की स्थिति पैदा हो जाती है। देश में मन्दी की लहर फैल जाती है जिसके परिणामस्वरूप मज़दूरों की छंटनी करनी पड़ती है। यह प्रभाव अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में फैल जाता है और देश के लिए बड़ा हानिकारक सिद्ध होता है।

(11) असन्तुलित विकास (Lopsided Development): अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के कारण एक देश केवल उन्हीं वस्तुओं का उत्पादन करता है जिनमें अधिकतम तुलनात्मक लाभ हो। इसके परिणामस्वरूप विविध प्रकार के उद्योगों का विकास न होकर कुछ ही उद्योग उन्नत होते हैं। इस प्रकार देश का असंतुलित विकास हो पाता है।

(12) आर्थिक बुराइयों का प्रभाव (Effect of Economic Evils): अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के कारण देश की आर्थिक बुराइयां या संकट दूसरे देश में भी प्रवेश कर जाते हैं और इस प्रकार सारा विश्व आर्थिक संकट का शिकार बन जाता है। 1929-30 की महामन्दी सोवियत रूस को छोड़कर सभी देशों में फैली हुई थी। सोवियत रूस का उस समय दूसरे देशों के साथ व्यापार नहीं था।

(13) विशिष्टीकरण एक बुराई (Specialisation an Evil): यद्यपि विशिष्टीकरण के कई लाभ हैं, परन्तु कई बार ये हानिकारक भी सिद्ध होता है। जब एक देश कुछ वस्तुओं में विशिष्टीकरण प्राप्त करता है तो अन्य उद्योगों का विकास रुक जाता है। इसके कारण देश में लोगों को रोज़गार मिलने की सम्भावना कम हो जाती है।

(14) अल्पविकसित देशों के लिए हानिकारक (Harmful to Under-developed Countries): कई प्रसिद्ध अर्थशास्त्रियों जैसे **गुनर मिर्डल, सिंगर** आदि के अनुसार, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के फलस्वरूप अल्पविकसित देशों को हानि उठानी पड़ी है। इसका कारण यह है कि **व्यापार की शर्तें** (Terms of Trade) विकसित देशों के अनुकूल तथा अल्पविकसित देशों के प्रतिकूल होती हैं।

(15) भुगतान सन्तुलन की समस्या (Problem of Balance of payments) : विदेशी व्यापार में विकसित देशों के सम्पर्क में आने के कारण विकासशील देशों में उपभोग प्रवृत्ति तथा आयात प्रवृति बढ़ जाती है जो अविकसित देशों के लिए हानिकारक सिद्ध होती है। **नर्कसे के अनुसार**, ''सम्पन्न देशों के सम्पर्क में आने पर निर्धन देश अपनी मौद्रिक आय तथा व्यय को अपनी उत्पादन क्षमता से अधिक रखने के लिए निरंतर प्रेरित होते रहते हैं। इससे देश में मुद्रा स्फीति आ जाती है तथा भुगतान सन्तुलन में असन्तुलन की स्थायी प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है।''

संक्षेप में, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लाभ तथा हानियों के वर्णन का सैद्धान्तिक महत्त्व तो हो सकता है परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से संसार का प्रत्येक देश अपने विदेशी व्यापार के विकास के लिए प्रयत्नशील है हमारी प्रत्येक पंचवर्षीय योजना में विदेशी व्यापार को अधिक से अधिक महत्त्व दिया गया है। इससे सिद्ध होता है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का प्रत्येक देश के लिए महत्त्व है।

प्रश्न (QUESTIONS)

I. वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

सभी प्रश्न अनिवार्य हैं (Attempt all the questions)

1. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार वह व्यापार है जो होता है किन नागरिकों के बीच (विभिन्न देशों के, विभिन्न नगरों के)
2. अन्तर्क्षेत्रीय व्यापार से अभिप्राय उस व्यापार से है जो होता है (एक ही देश के विभिन्न क्षेत्रों में, विभिन्न देशों के क्षेत्रों में)
3. भारत तथा कनाडा के बीच होने वाला व्यापार है (अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, अन्तर्क्षेत्रीय व्यापार)(K.U. 2006, M.D.U. 2007)
4. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का आधार है (अन्तर्राष्ट्रीय विशिष्टता, लागतों में समान अन्तर) (K.U. 2005)
5. अन्तर्क्षेत्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय दोनों व्यापारों को उद्देश्य अधिकतम सन्तुष्टि प्रदान करना है। (कम कीमत पर, उचित कीमत पर)
6. 'अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, अन्तर्क्षेत्रीय व्यापार का, एक विशिष्ट रूप मात्रा है', यह कथन किसका है। (ओहलिन का, पीगू का)
7. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा अन्तर्क्षेत्रीय व्यापार में अन्तर है (तुलनात्मक लागत का, साधनों की अगतिशीलता का)
8. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार राजनैतिक ________ की ओर लाता है। (दासता, स्वतन्त्रता) (M.D.U. 2009)
9. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के पृथक सिद्धान्त के पक्ष में थे। (रिकार्डो, ओहलिन) (M.D.U. 2007)
10. कर्नाटक तथा गुजरात के बीच होने वाला व्यापार ________ व्यापार है। (आन्तरिक, अन्तर्राष्ट्रीय)(K.U. 2009)

उत्तर (Answers): (1) विभिन्न देशों के, (2) एक ही देश के विभिन्न क्षेत्रों में, (3) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, (4) अन्तर्राष्ट्रीय विशिष्टता, (5) कम कीमत पर, (6) ओहलिन का, (7) साधनों की अगतिशीलता का, (8) दासता, (9) रिकार्डो, (10) आन्तरिक।

II. लघु/परिभाषा रूपी प्रश्न (Short/Definitional Type Questions)

1. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से क्या अभिप्राय है?
2. अन्तर्राष्ट्रीय तथा अन्तर्क्षेत्रीय व्यापार में दो प्रमुख अन्तर क्या है?
3. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के दो लाभ बतलाएं।
4. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का आधार बताइये।
5. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की दो हानियां लिखिए। (K.U. 2006)
6. राशिपतन की परिभाषा दीजिए। (K.U. 2008)

III. निबन्ध रूपी प्रश्न (Essay Type Questions)

1. What are advantages and disadvantages of International trade from India's point of view?
   अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की लाभ तथा हानियां क्या हैं? भारत के दृष्टिकोण से व्याख्या कीजिये।
2. *'International Trade is only a special case of Interregional trade.'* Do you agree with this view of Ohlin? Give reasons in support of your answer.
   'अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार अन्तर्क्षेत्रीय व्यापार का केवल एक विशेष रूप है।' क्या आप ओहलिन के इस कथन से सहमत हैं? अपने उत्तर के पक्ष में तर्क दें।

   Or

   Distinguish between internal and international trade and point out the necessity of a separate theory of international trade.
   आन्तरिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में क्या अन्तर है? अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के पृथक सिद्धान्त की क्या आवश्यकता है?
   (K.U. 2006)

3. What do you mean by International trade? Examine briefly the advantages of international trade.
   अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से आपका क्या अभिप्राय है? अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लाभों का संक्षेप में वर्णन करें।
4. Distinguish between inter-regional and international trade. Give arguments against a separate theory of international trade.
   अन्तर्क्षेत्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में विभेद कीजिए। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिये एक अलग सिद्धान्त की आवश्यकता नही है। तर्क दीजिये।
5. Differentiate between inter-regional and international trade. Write the advantages and disadvantages of international trade.
   अन्तर्क्षेत्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में अंतर बताएं। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लाभ तथा हानियाँ लिखें।
   (M.D.U. 2009)

17

तुलनात्मक लागत का सिद्धान्त
(THEORY OF COMPARATIVE COSTS)

■ 1. भूमिका (Introduction)

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के शुद्ध सिद्धान्त (Pure Theory of International Trade) का सम्बन्ध विभिन्न देशों में वस्तु विनिमय प्रणाली (Barter) के आधार पर वस्तुओं के विनिमय से है। इसके अन्तर्गत विभिन्न देशों में होने वाले मौद्रिक अथवा पूंजीगत हस्तांतरण का अध्ययन नहीं किया जाता।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के शुद्ध सिद्धान्त से सम्बन्धित दो मुख्य समस्याएं हैं:

(1) विभिन्न देशों में विभिन्न वस्तुओं का उत्पादन क्यों किया जाता है, तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार क्यों होता है?

(2) वे कौन से कारण हैं जो अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की शर्तें (Terms of Trade) निर्धारित करते हैं।

इन दोनों समस्याओं को सुलझाने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के दो सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है।

(1) तुलनात्मक लागत का सिद्धान्त (Theory of Comparative Costs) तथा

(2) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का आधुनिक सिद्धान्त (Modern Theory of International Trade)।

इस अध्याय में हम अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के तुलनात्मक लागत के सिद्धान्त की विवेचना करेंगे।

■ 2. तुलनात्मक लागत का सिद्धान्त (Theory of Comparative Costs)

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के तुलनात्मक लागत के सिद्धान्त की विवेचना प्रसिद्ध अर्थशास्त्री डेविड रिकार्डो ने अपनी पुस्तक Principles of Political Economy and Taxation,- 1817 में तथा टेरेन्स (Torrens) ने अपने एक पैम्फलैट An Essay on the External Corn Trade, 1815 में की थी। इस सिद्धान्त को **तुलनात्मक लाभ का सिद्धान्त** (Theory of Comparative Advantages) भी कहा जाता है। इस सिद्धान्त में जे० एस० मिल०, केयरनेस (Cairness), **बैस्टेबल, टाजिंग** तथा हैबरलर आदि अर्थशास्त्रियों ने कई सुधार किये हैं।

इस सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक देश को उत्पादन में विशिष्टता प्राप्त करनी चाहिये अर्थात् उन वस्तुओं का निर्यात करना चाहिये जिनमें उसके तुलनात्मक लाभ अधिक है तथा उन वस्तुओं का आयात करना चाहिये जिनमें उसकी तुलनात्मक हानि अधिक है। रिकार्डो ने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से सम्बन्धित पहले प्रश्न का उत्तर देते हुए बताया कि तुलनात्मक लागत के सिद्धान्त से यह ज्ञात होता है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार क्यों होता है? इसके विपरीत जे० एस० मिल० ने बताया है कि व्यापार की शर्तों या कीमत निर्धारण का कार्य अनुवर्ती मांग (Reciprocal Demand) का नियम करता है।

■ 2.1 परिभाषा (Definition)

(1) वेलेस के अनुसार, ''तुलनात्मक लागत का सिद्धान्त बताता है कि यदि दो देशों की विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन की कुशलता का अनुपात विभिन्न है तो ये देश उन वस्तुओं का उत्पादन करेंगे जिनमें उनकी कुशलता अपेक्षाकृत अधिक है अथवा अकुशलता अपेक्षाकृत कम है तथा वे एक दूसरे से व्यापार करेंगे।'' (The law of comparative costs states that if two

countries have different ratios of efficiency in the production of different commodities, those countries will tend to produce the commodities in which their efficiency is relatively greatest or their ineffeciency is least, and they will trade with one another. – **Wallace**)

(2) एडवर्डस का यह विचार है कि, ''**तुलनात्मक लागत सिद्धान्त के अनुसार विभिन्न देश उन वस्तुओं के उत्पादन में विशेषता प्राप्त करते हैं और उनका निर्यात करते हैं जिनमें उनके तुलनात्मक वास्तविक लाभ अधिकतम होते हैं तथा न्यूनतम हानि होती है तथा इनके स्थान पर उन वस्तुओं का आयात करते हैं जिनमें इनके लाभ न्यूनतम तथा हानि अधिकतम होती है।**'' (The theory of comparative costs lays down that countries concentrate on the production of those goods in which they have the greatest comparative real cost advantages or least disadvantage, exporting them and importing in exchange goods for which they have least advantage or greatest disadvantage. –**Edwards**)

(3) शौन के अनुसार, ''**एक देश उस वस्तु का निर्यात करेगा जिसमें उसे तुलनात्मक लाभ है तथा उस वस्तु का आयात करेगा जिसमें उसे तुलनात्मक हानि है।**'' (A country will export goods in which it has a comparative advantage and import goods for which it has a comparative disadvantage – **R. Shone**)

(4) सैम्युअलसन के शब्दों में, ''**प्रत्येक देश उस वस्तु में विशिष्टता प्राप्त करता है जिसमें उसे तुलनात्मक लाभ है और उस वस्तु के आधिक्य के निर्यात से विदेशों से आयात करता है।**'' (Each country will specialise in the commodity in which it has a comparative advantage, exporting its surplus of that product for imports from abroad. – **Samuelson**.)

■ 2.2 मान्यताएं (Assumptions)

तुलनात्मक लागत सिद्धान्त निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है:

(1) केवल दो देश हैं तथा वे दो वस्तुओं का उत्पादन करते हैं।

(2) श्रम उत्पादन का एक मात्र साधन है। उत्पादन लागत को श्रम की इकाइयों में मापा जाता है।

(3) श्रम की सब इकाइयां एक समान (homogeneous) हैं।

(4) उत्पादन पर **समान प्रतिफल का नियम** (Law of Constant Return) लागू हो रहा है।

(5) उत्पादन के साधन देश के अन्दर गतिशील हैं। परन्तु दो देशों के बीच पूर्णतया **गतिहीन** (Immobile) है।

(6) यातायात की कोई लागत नहीं है।

(7) वस्तु की मांग स्थिर है।

(8) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सभी सरकारी नियन्त्रण से मुक्त है।

(9) संबंधित देशों में पूर्ण रोजगार है।

(10) वस्तु बाजार तथा साधन बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता है।

■ 2.3 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का आधार (Basis of International Trade)

इस सिद्धान्त के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का आधार विभिन्न देशों में विभिन्न वस्तुओं की वास्तविक लागतों में पाया जा वाला तुलनात्मक अन्तर है। लागतों में तीन प्रकार का अन्तर हो सकता है:

(i) **लागतों में निरपेक्ष अन्तर** (Absolute Difference in Costs)

(ii) **लागतों में तुलनात्मक अन्तर** (Comparative Difference in Costs)

(iii) **लागतों में समान अन्तर** (Equal Difference in Costs)

(1) लागतों में निरपेक्ष अन्तर (Absolute Difference in Costs)

एडम स्मिथ के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का मुख्य आधार निरपेक्ष लागतों में पाया जाने वाला अन्तर है। लागतों में **निरपेक्ष अन्तर उस समय पाया जाता है** जबकि कोई एक देश किसी वस्तु को दूसरे देश की तुलना में काफी कम लागत पर उत्पादित कर लेता है तथा दूसरा देश किसी अन्य वस्तु को पहले देश की तुलना में काफी कम लागत पर उत्पादित कर लेता है। यह तब सम्भव होता है जबकि एक देश में विशेष प्रकार की भूमि, जलवायु, परिस्थितियां तथा सुविधाएं पाई जाती हैं। इस प्रकार एक देश एक वस्तु में विशिष्टता प्राप्त करके उसका अधिक उत्पादन करता है तथा उसका निर्यात करता है तथा दूसरी वस्तु का दूसरे देश से आयात करता है। जिसमें कि दूसरा देश विशिष्टता प्राप्त करता है। इसको तालिका 1 तथा चित्र 1 द्वारा स्पष्ट किया गया है:

लागतों में निरपेक्ष अन्तर

तालिका 1. Absolute Difference in Costs

(एक श्रमिक का एक दिन का उत्पादन)

देश	व्यापार से पहले का उत्पादन		व्यापार के बाद का उत्पादन		उत्पादन में परिवर्तन	
	चावल	गेहूं	चावल	गेहूं	चावल	गेहूं
भारत	2	4	0	8	- 2	+ 4
नेपाल	4	2	8	0	+ 4	- 2
कुल	6	6	8	8	+ 2	+2

तालिका 1 से स्पष्ट है कि भारत में श्रम की एक इकाई द्वारा एक दिन में 2 इकाई चावल या 4 इकाई गेहूं उत्पादित किया जाता है। जबकि नेपाल देश में श्रम की एक इकाई द्वारा एक दिन में 4 इकाइयां चावल या 2 इकाइयां गेहूं उत्पादित किया जाता है। इससे स्पष्ट है कि:

भारत में 1 इकाई चावल = 2 इकाई गेहूं

नेपाल में 1 इकाई चावल = 1/2 इकाई गेहूं

उपरोक्त उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है कि भारत को गेहूं के उत्पादन में तथा नेपाल को चावल के उत्पादन में निरपेक्ष लाभ प्राप्त हैं। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की **यह न्यूनतम शर्त है कि दो देशों में वस्तुओं की उत्पादन लागत का अनुपात भिन्न होना चाहिए।** भारत में चावल के लिए गेहूं की लागत अनुपात 1:2 है तथा नेपाल में 1:1/2 है। यदि ये दोनों देश दोनों वस्तुओं का ही उत्पादन करें और परस्पर व्यापार न हो तो दोनों देशों में दो दिन के श्रम के फलस्वरूप गेहूं का कुल उत्पादन 6 इकाइयां और चावल का उत्पादन 6 इकाइयां ही होगा। मान लो भारत गेहूं में तथा नेपाल चावल में विशिष्टता प्राप्त करते हैं और व्यापार करते हैं। इस स्थिति में दो दिन के श्रम का कुल उत्पादन 8 इकाइयां गेहूं और 8 इकाइयां चावल होगा। इस प्रकार दोनों देशों को कुल लाभ = (8 इकाइयां गेहूं + और 8 इकाइयां ावल होगा) - (6 इकाई गेहूं + 6 इकाई चावल) = 2 इकाई गेहूं + 2 इकाई चावल होगा।

नेपाल को यदि एक इकाई चावल देकर 0.5 से अधिक इकाई गेहूं मिल जाए तो नेपाल को लाभ होगा, और भारत को दो इकाई से म गेहूं देकर एक इकाई चावल मिल जाएं तो भारत को लाभ होगा। इस प्रकार लागतों में निरपेक्ष अन्तर होने पर यदि दोनों देश एक-एक तु में विशिष्टता प्राप्त करते हैं तो दोनों देशों को लाभ होता है। अतएव लागतों में निरपेक्ष (Absolute) अन्तर के कारण अन्तर्राष्ट्रीय ार होता है। लागतों के निरपेक्ष अन्तर को चित्र 1 द्वारा दिखा सकते हैं।

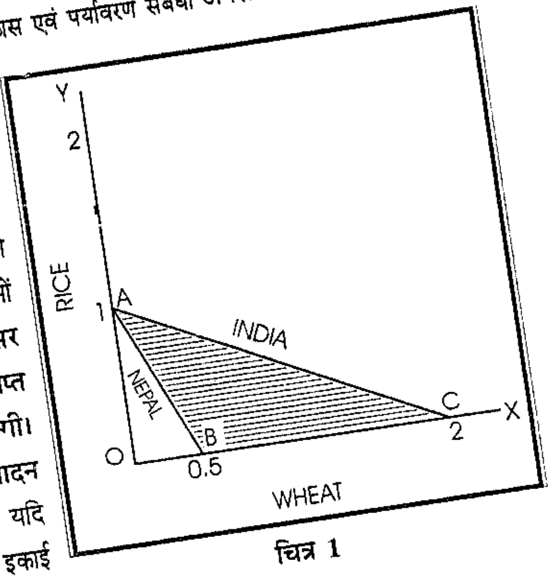

चित्र 1

चित्र 1 में AB नेपाल तथा AC भारत की **उत्पादन सम्भावना रेखा** (Production Possibility Curve) है। उत्पादन सम्भावना वक्र से यह ज्ञात होता है कि उत्पादन के साधनों की निश्चित मात्राओं के फलस्वरूप किसी वस्तु की एक इकाई का अधिक उत्पादन करने के लिए दूसरी वस्तु को कितनी इकाइयों का त्याग करना पड़ेगा। इन रेखाओं की ढलान द्वारा विभिन्न वस्तुओं की **अवसर लागत** (Opportunity Costs) स्पष्ट हो जाती है। **अवसर लागत से अभिप्राय यह है कि किसी वस्तु की एक इकाई अधिक प्राप्त करने के लिए दूसरी वस्तुओं की कितनी इकाइयां त्याग करनी पड़ेंगी।** यह रेखाचित्र समान लागत के नियम पर आधारित है। इसलिए उत्पादन **सम्भावना रेखाएं सीधी रेखाएं हैं।** AB रेखा से ज्ञात होता है कि यदि नेपाल चावल की एक इकाई का उत्पादन करता है तो उसे गेहूं की 0.5 इकाई का त्याग करना पड़ेगा। इसलिए यदि उसे चावल की एक इकाई देकर गेहूं की 0.5 इकाई से अधिक प्राप्त हो जाती है तो उसे लाभ होगा। इसी प्रकार AC रेखा से ज्ञात होता है कि यदि भारत चावल की एक इकाई का उत्पादन करेगा तो उसे गेहूं की 2 इकाई का त्याग करना पड़ेगा इसलिये यदि भारत को गेहूं की 2 से कम इकाई देने पर चावल की एक इकाई प्राप्त हो जाती है तो भारत को गेहूं का उत्पादन करने में लाभ होगा। चित्र 1 में व्यापार से होने वाले लाभों को ABC क्षेत्र की सहायता से प्रदर्शित किया गया है। इन दोनों देशों में लाभ का बंटवारा दोनों देशों के बीच स्थापित व्यापार की शर्तों के आधार पर होगा। व्यापार की शर्तें **अनुवर्ती मांग** (Reciprocal Demand) के द्वारा निर्धारित होती हैं। अत: यह स्पष्ट हो जाता है कि निरपेक्ष लागत का अन्तर होने पर दोनों देशों के बीच व्यापार होता है।

(2) लागतों में सापेक्ष या तुलनात्मक अन्तर (Comparative Difference in Costs)

रिकार्डो के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार लागतों के तुलनात्मक अन्तर के कारण होता है। लागतों के तुलनात्मक अन्तर से अभिप्राय यह है कि एक देश दोनों ही वस्तुओं का उत्पादन दूसरे देश की तुलना में कम लागत पर कर लेता है परन्तु उसे दोनों में से एक का उत्पादन करने में **तुलनात्मक** (Comparative) लाभ अधिक है। जबकि दूसरी वस्तु के उत्पादन में तुलनात्मक लाभ कम है। दूसरा देश दोनों ही वस्तुओं का उत्पादन अधिक लागत पर करता है, परन्तु उसकी दोनों में से एक वस्तु का उत्पादन करने में तुलनात्मक हानि कम है जबकि दूसरी वस्तु का उत्पादन करने में तुलनात्मक हानि अधिक है। उदाहरण के लिए अम्बाला में एक सबसे उत्तम वकील है जो एक बहुत अच्छा टाईपिस्ट भी है। उसका एक मुन्शी टाईप जानता है, परन्तु वकालत का एक अक्षर भी नहीं जानता। यद्यपि वकील दोनों कार्यों में योग्य है, परन्तु टाईप की तुलना में वकालत में अधिक समय लगाने से उसे तुलनात्मक लाभ अधिक होगा। मुन्शी दोनों कार्यों में ही उससे अयोग्य है परन्तु टाईप करने में उसकी तुलनात्मक हानि कम है। वकील को स्वयं वकालत करने तथा मुन्शी से टाईप कराने की अपेक्षाकृत लाभ अधिक होगा। **वैस्टैबल** ने इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार दिया है, ''**एक डाक्टर बगीचे के काम में अपने माली से भी अधिक निपुण हो सकता है। परन्तु डाक्टरी के काम में यह बगीचे के काम से अधिक निपुण है। यदि वह सारा समय डाक्टरी में जिसमें कि वह अधिक निपुण है, नहीं लगाता है तो उसे हानि होगी। पूरा समय माली का काम करने के स्थान पर डाक्टरी का काम करने में ही उसे लाभ होगा। इसी प्रकार एक देश दूसरे देश की अपेक्षा प्रत्येक वस्तु अधिक सस्ती बना सकता है तो भी उसके लिए सबसे लाभदायक यही होगा कि वह उसी वस्तु का उत्पादन करे जिसके उत्पादन से दूसरे देश की अपेक्षा इसे तुलनात्मक लाभ अधिक है। दूसरी ओर कम निपुण देश के लिए भी यह लाभदायक है कि वह भी केवल उसी वस्तु का उत्पादन करे जिसमें उसे तुलनात्मक हानि सबसे कम है।**''

इसे निम्नलिखित तालिका 2 तथा चित्र 2 से स्पष्ट किया जा सकता है।

तालिका 2. लागतों में तुलनात्मक अन्तर(Comparative Difference in Costs)
(एक श्रमिक का एक दिन का उत्पादन)

	व्यापार से पहले का उत्पादन		व्यापार के बाद का उत्पादन		उत्पादन में परिवर्तन	
	चावल	गेहूं	चावल	गेहूं	चावल	गेहूं
भारत	10	10	20	0	+ 10	− 10
नेपाल	4	8	0	16	− 4	+8
कुल	14	18	20	16	+ 6	− 2

तालिका 2 से स्पष्ट हो जाता है कि भारत गेहूं तथा चावल दोनों वस्तुओं के उत्पादन में ही नेपाल की तुलना में अधिक कुशल है। परन्तु भारत की निपुणता नेपाल की तुलना में चावल के उत्पादन में ढाई गुणा अधिक है। जबकि गेहूं में केवल सवा गुणा अधिक है इसलिए भारत को चावल में विशिष्टता प्राप्त करने में तुलनात्मक लाभ अधिक है। भारत में लागत उत्पादन अनुपात निम्नलिखित होगा।

चावल का लागत अनुपात निम्नलिखित होगा

$$\frac{\text{भारत में 10 इकाई चावल}}{\text{नेपाल में 4 इकाई चावल}} = \frac{10}{4} = 2.5$$

गेहूं का लागत अनुपात निम्नलिखित होगा

$$\frac{\text{भारत में 10 इकाई गेहूं}}{\text{नेपाल में 8 इकाई गेहूं।}} = \frac{10}{8} = 1.25$$

उपरोक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि भारत में चावल का लागत अनुपात गेहूं की तुलना में अधिक है इसलिए भारत को गेहूं की अपेक्षा चावल के उत्पादन में अधिक तुलनात्मक लाभ प्राप्त होगा। अतएव भारत चावल का उत्पादन करेगा।

इसी प्रकार हम यह भी सिद्ध कर सकते हैं कि नेपाल को गेहूं के उत्पादन में कम तुलनात्मक हानि होती है। नेपाल के लागत अनुपात को निम्नलिखित प्रकार से ज्ञात किया जा सकता है:

गेहूं का लागत उत्पादन अनुपात निम्नलिखित होगा

$$\frac{\text{नेपाल में 8 इकाई गेहूं}}{\text{भारत में 10 इकाई गेहूं}} = \frac{8}{10} = 0.8$$

चावल का लागत उत्पादन अनुपात निम्नलिखित होगा

$$\frac{\text{नेपाल में 4 इकाई चावल}}{\text{भारत में 10 इकाई चावल}} = \frac{4}{10} = 0.4$$

उपरोक्त विवरण से ज्ञात होता है नेपाल में गेहूं के उत्पादन में तुलनात्मक हानि कम है। इसलिए नेपाल को गेहूं का उत्पादन करना ए तथा चावल का भारत से आयात करना चाहिए।

तुलनात्मक लागत के सिद्धान्त के अनुसार दोनों देशों में व्यापार होगा। इसका कारण यह है कि

भारत में 10 इकाई चावल = 10 इकाई गेहूं

लागत उत्पादन अनुपात = 1 : 1

नेपाल में 4 इकाई चावल = 8 इकाई गेहूं

लागत उत्पादन अनुपात = 1 : 2

इस तालिका के अनुसार:

भारत में 1 इकाई चावल =1 इकाई गेहूँ

नेपाल में 1 इकाई चावल =2 इकाई गेहूं।

जब दोनों देशों में व्यापार होता है तो भारत को एक इकाई चावल के बदले में यदि 1 इकाई से **अधिक** गेहूं मिल जाए तो भारत को लाभ होगा और यदि नेपाल को 1 इकाई चावल लेने के लिए 2 इकाइयों से **कम** गेहूं देना पड़े तो उसके लिए भी लाभदायक है। तालिका 2 से ज्ञात होता है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के कारण जहां चावल की 6 इकाइयों का अधिक उत्पादन होगा वहां गेहूं की केवल 2 इकाइयों का कम उत्पादन होगा। अन्य शब्दों में कुल उत्पादन में 4 इकाई की वृद्धि होगी जिससे दोनों देशों को लाभ होगा। इस प्रकार प्रत्येक देश को ऐसी वस्तु के उत्पादन में विशिष्टता प्राप्त करनी चाहिये **जिसमें उसका तुलनात्मक लाभ अधिकतम हो या तुलनात्मक हानि कम से कम हो।** अतएव भारत चावल का तथा नेपाल गेहूं का उत्पादन करेगा। **जैकब वाईनर** के अनुसार, ''**प्रत्येक देश के लिए उन वस्तुओं का उत्पादन करना आवश्यक नहीं जिन्हें वह दूसरे देश से सस्ती बना सकता है बल्कि उन वस्तुओं का उत्पादन करना आवश्यक है जिनमें तुलनात्मक लाभ अधिकतम हो अर्थात् तुलनात्मक लागत कम हो।**'' (Each country tends to produce not necessarily what it can produce more cheaply than another country but those articles which it can produce at the greatest relative advantage, i.e. at the lowest comparative cost. – **Jacob Viner)**

लागतों में तुलनात्मक अन्तर को चित्र 2 द्वारा स्पष्ट किया गया है। चित्र 2 में AB भारत की उत्पादन सम्भावना वक्र है तथा AC नेपाल की सम्भावना वक्र है। इससे ज्ञात होता है कि भारत को 1 इकाई चावल प्राप्त करने के लिए एक इकाई गेहूं का त्याग करना पड़ता है तथा नेपाल 1 इकाई चावल का त्याग करके 2 इकाई गेहूं को प्राप्त कर सकता है। स्पष्ट है कि भारत को चावल के उत्पादन में तुलनात्मक लाभ अधिक है तथा नेपाल को गेहूं के उत्पादन में तुलनात्मक हानि कम है। भारत नेपाल को चावल की एक इकाई देकर गेहूं की एक से अधिक इकाई प्राप्त कर सकता है तथा नेपाल भारत को गेहूं की 2 से कम इकाई देकर चावल की 1 इकाई प्राप्त कर सकता है। दोनों देशों को होने वाला लाभ छायादार भाग ABC से ज्ञात होता है। इस लाभ का वितरण दोनों देशों के बीच विद्यमान व्यापार की शर्तों के आधार पर होगा। व्यापार की शर्तों का निर्धारण पारस्परिक मांग के द्वारा होगा।

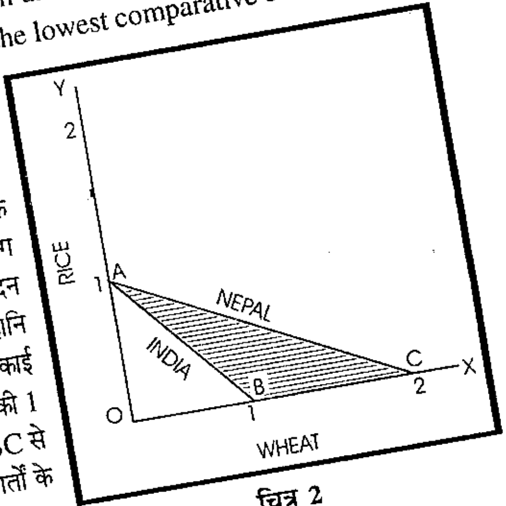

चित्र 2

■ (3) लागतों में समान अन्तर (Equal Difference in Costs)

लागतों में समान अन्तर उस समय कहा जाता है जबकि दोनों देशों में दो वस्तुओं के उत्पादन का अनुपात एक समान होता है। ऐसी स्थिति में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सम्भव नहीं होगा क्योंकि किसी देश को इससे लाभ प्राप्त नहीं होंगे। इसे दिए गए उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया गया है:

तालिका 3. लागतों में समान अन्तर (Equal Differences in Costs)

देश	एक श्रमिक का एक दिन का उत्पादन (इकाइयों में)	
	चावल	गेहूं
भारत	4	8
नेपाल	3	6

उपरोक्त उदाहरण में

भारत में 1 इकाई चावल = 2 इकाई गेहूं

नेपाल में 1 इकाई चावल =2 इकाई गेहूं।

इस स्थिति में दोनों देशों में व्यापार सम्भव नहीं होगा क्योंकि भारत 1 इकाई चावल के बदले 2 इकाई से अधिक गेहूं लेना चाहेगा और नेपाल 1 इकाई चावल लेने के लिए 2 इकाई से कम गेहूं देना चाहेगा। इसलिए व्यापार नहीं हो सकता। अत: स्पष्ट है कि उत्पादन लगातों में **निरपेक्ष अथवा तुलनात्मक अन्तर होने पर ही अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार हो सकता है, समान अन्तर होने पर व्यापार नहीं हो सकता।**

इसे निम्नलिखित चित्र 3 स्पष्ट किया जा सकता है।

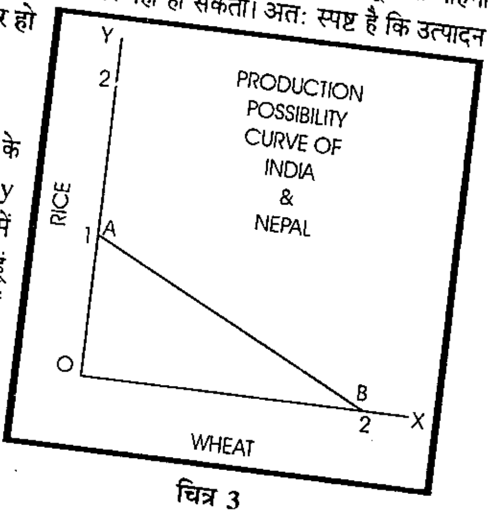

चित्र 3

इस चित्र से ज्ञात होता है कि दोनों देशों में समान लागत अन्तर होने के कारण दोनों वस्तुओं की **उत्पादन सम्भावना वक्र** (Production Possibility Curve) एक ही (AB) होगी। भारत अपने देश में ही 1 इकाई चावल के बदले में 2 इकाई गेहूं उत्पन्न कर सकता है या 1 इकाई चावल के बदले में 2 इकाई गेहूं आयात कर सकता है। इसी प्रकार नेपाल अपने देश में 1 इकाई चावल के बदले में 2 इकाई गेहूं स्वयं उत्पन्न कर सकता है या 1 इकाई चावल के बदले में 2 इकाई गेहूं आयात कर सकता है। इस स्थिति में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से किसी देश को लाभ नहीं होगा। अतएव दो देशों में व्यापार के लिए न्यूनतम शर्त यह है कि दोनों देशों में दो वस्तुओं का **लागत अनुपात एक समान नहीं होना चाहिए।**

संक्षेप में, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार उसी स्थिति में होता है जब वस्तुओं की **लागत में तुलनात्मक अन्तर पाया जाता है।**

■ 2.4 सिद्धान्त की आलोचनाएं (Criticisms of The Theory)

रिकार्डो द्वारा प्रतिपादित तुलनात्मक लागत सिद्धान्त अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है। **प्रो० सैम्यूअलसन** के अनुसार, "**तुलनात्मक लाभ के सिद्धान्त में सत्य की एक महत्त्वपूर्ण झलक प्रकट होती है।**" (The theory of comparative advantage has in it a most important glimpse of truth. – **Samuelson**) इस सिद्धान्त के तर्कपूर्ण दृष्टि से युक्तिसंगत होने पर भी इसके कई दोष हैं। **प्रो० ओहलिन**, फ्रैंक ग्राहम आदि ने इस सिद्धान्त की निम्नलिखित आलोचनाएं की हैं:

(1) केवल आदर्शात्मक सिद्धान्त है (Only a Normative Theory): रिकार्डो का तुलनात्मक सिद्धान्त अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का केवल एक आदर्शात्मक सिद्धान्त है। इससे यह ज्ञात होता है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के फलस्वरूप आर्थिक कल्याण में कैसे वृद्धि हो सकती है तथा साधनों का कुशलतम प्रयोग कैसे किया जा सकता है। परन्तु इसके द्वारा यह ज्ञात नहीं होता कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की रचना अर्थात् आयात या निर्यात किन वस्तुओं का होता है। इनकी कौन सी समस्याएं हैं। यह अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की **वास्तविक विवेचना** (Positive Explanation) नहीं है। **प्रो० जगदीश भगवती** का यह विचार है कि, "**रिकार्डो के सिद्धान्त का उद्देश्य केवल एक कल्याणात्मक मॉडल का निर्माण करना है। यह सिद्धान्त स्वतन्त्र व्यापार का समर्थन मात्र है। इसके द्वारा स्वतन्त्र व्यापार के तथ्यों की व्याख्या नहीं होती है।**"

(2) श्रम के लागत सिद्धान्त पर आधारित (Based on Labour Theory of Value): तुलनात्मक लागत का सिद्धान्त श्रम के लागत सिद्धान्त पर आधारित है। इस सिद्धान्त के अनुसार किसी वस्तु की लागत इसके निर्माण के लिए आवश्यक श्रम की मात्रा पर निर्भर करती है। परन्तु वास्तव में किसी वस्तु की लागत पर श्रम के अतिरिक्त अन्य साधनों जैसे पूंजी, भूमि आदि के मूल्य का भी प्रभाव पड़ता है। इस सिद्धान्त की यह मान्यता भी गलत है कि उत्पादन के विभिन्न साधनों का एक **निश्चित अनुपात** में ही प्रयोग किया जाता है। अतएव इस सिद्धान्त के आलोचक श्रम लागत के स्थान पर मुद्रा लागत के रूप में इस सिद्धान्त की विवेचना करना पसन्द करते हैं।

(3) श्रम तथा पूंजी की गतिहीनता (Immobility of Labour and Capital): परम्परावादी अर्थशास्त्रियों की यह मान्यता कि श्रम तथा पूंजी एक देश में तो पूर्णतया गतिशील हैं तथा दो देशों के बीच गतिहीन हैं, अवास्तविक है। वास्तविकता यह है कि श्रम तथा पूंजी एक देश के विभिन्न प्रदेशों में पूर्णतया गतिशील नहीं होते और न ही वे देशों के बीच पूर्णतया गतिहीन होते हैं। **प्रो० ओहलिन** के अनुसार, **''एक देश के विभिन्न उद्योगों तथा क्षेत्रों में उत्पादन के साधन पूर्णत: गतिशील नहीं होते हैं। यही कारण है कि विभिन्न देशों में मजदूरी तथा ब्याज की दर भिन्न-भिन्न होती है।''** एक ही देश में रहने वाले विभिन्न वर्गों के लोग एक व्यवसाय से दूसरे व्यवसाय में नहीं जाते।

(4) परिवहन लागतों की अवहेलना (Transport Costs Ignored): तुलनात्मक लागत सिद्धान्त में एक प्रमुख दोष यह भी है कि इसमें परिवहन लागतों का विचार नहीं किया गया। कुछ वस्तुओं की परिवहन लागतें उत्पादन लागतों से भी अधिक होती हैं। इसलिए वस्तुओं का आयात या निर्यात करते समय उत्पादन लागत तथा यातायात लागतों दोनों को मिलाकर कुल लागतों का विचार किया जाना चाहिये। यातायात लागतें अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को अत्यधिक प्रभावित करती हैं, इसलिए हम इन लागतों की अवहेलना नहीं कर सकते।

(5) स्थिर लागतों के नियम पर आधारित (Based on the Law of Constant Costs): इस सिद्धान्त की यह मान्यता है कि उत्पादन में कमी या वृद्धि करने पर प्रति इकाई उत्पादन लागत समान रहती है। यह मान्यता अवास्तविक ही नहीं, अवैज्ञानिक भी है। साधारणतया यह देखा गया है कि उत्पादन पर बढ़ती **हुई लागत का नियम** (Law of Increasing Costs) या घटती **हुई लागत का नियम** (Law of Diminishing Costs) लागू होता है। कभी-कभी और वह भी बहुत थोड़े समय के लिए **स्थिर लागत के नियम** (Law of Constant Cost) के लागू होने की सम्भावना रहती है।

(6) सुरक्षात्मक तत्त्वों की उपेक्षा (Strategic Factors are Ignored): इस सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक वस्तु जिसकी तुलनात्मक लागत अधिक हो उसका आयात किया जाना चाहिए। सुरक्षात्मक वस्तुओं अर्थात् युद्ध के लिए आवश्यक वस्तुओं पर यह सिद्धान्त लागू नहीं होता क्योंकि कोई भी देश सुरक्षात्मक दृष्टि से किसी अन्य देश पर निर्भर नहीं रह सकता। प्रत्येक देश सुरक्षात्मक दृष्टि से आत्मनिर्भर होना चाहता है बेशक उसकी तुलनात्मक लागत अधिक ही क्यों न हो। यह कहा गया है, **'' सुरक्षा सम्पन्नता से अधिक महत्त्वपूर्ण है।''** (Defence is more important than Opulence.)

(7) पूर्ण विशिष्टिकरण की असम्भावना (Impossibility of Complete Specialisation): अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में भाग लेने वाले देशों का कुछ वस्तुओं में पूर्ण रूप से विशिष्टीकरण करना सम्भव नहीं। मान लीजिए भारत और नेपाल व्यापार करते हैं। भारत सूती कपड़े में विशिष्टता प्राप्त करता है और नेपाल ऊनी कपड़े में। नेपाल एक बहुत छोटा-सा देश होने के कारण भारत के ऊनी कपड़े की मांग को पूरा नहीं कर सकता और न ही नेपाल में भारत से निर्यात हो सकने वाले कुल सूती कपड़े की मांग हो सकती है। इसलिए भारत को सूती कपड़ा तथा ऊनी कपड़ा दोनों ही बनाने पड़ेंगे। इससे हम इस निष्कर्ष तक पहुंचते हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तभी संभव है जबकि दो समान मूल्य वाली वस्तुओं का दो समान आकार वाले देशों में व्यापार हो। **फ्रैंक ग्राहम** (F.D.Graham) के अनुसार, **''परम्परावादी अर्थशास्त्रियों के निष्कर्ष को केवल तभी सही ठहराया जा सकता है जबकि हम मान लें कि समान उपभोग मूल्य की वस्तुओं का समान आर्थिक महत्त्व के दो देशों के बीच व्यापार हो रहा है।''**

(8) लाभ के वितरण की अवहेलना (Ignores the Distribution of the Gains of the Trade): यह सिद्धान्त केवल इस तथ्य का स्पष्टीकरण करता है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार उत्पादन लागत में अन्तर के कारण होता है। इस सिद्धान्त में यह स्पष्ट नहीं किया गया कि दो देशों के बीच लाभ का बंटवारा किस प्रकार होगा या व्यापार की शर्तें किस आधार पर तय होंगी। आधुनिक अर्थशास्त्रियों

ने इसका स्पष्टीकरण देते हुए बताया है कि व्यापार की शर्तें उस देश के अनुकूल होंगी जिस देश की विदेशी वस्तुओं के लिए मांग की लोच अधिक होगी तथा इनके बीच व्यापार की शर्तें उस देश के प्रतिकूल होंगी जिस देश की विदेशी वस्तुओं के लिए मांग की लोच कम होंगी। यह सिद्धान्त मांग की लोच के प्रभाव की उपेक्षा करता है।

(9) दो से अधिक वस्तुएं (More than two Goods): इस सिद्धान्त में यह मानकर चलते हैं कि व्यापार केवल दो ही वस्तुओं में होता है। एक देश में जिस वस्तु की तुलनात्मक लागत कम होती है, उसका उत्पादन किया जाता है और दूसरी वस्तु, जिसकी तुलनात्मक लागत अधिक होती है, उसका आयात किया जाता है। वास्तविकता यह है कि एक देश बहुत-सी वस्तुओं का आयात तथा बहुत-सी वस्तुओं का निर्यात करता है इसलिए इस दृष्टि से यह सिद्धान्त अवास्तविक है।

(10) दो से अधिक देश (More than two Countries): यह सिद्धान्त इस मान्यता पर आधारित है कि व्यापार केवल दो देशों में होता है परन्तु वास्तविकता यह है कि व्यापार दो से अधिक देशों में भी हो सकता है।

(11) स्वतन्त्र व्यापार पर आधारित (Based on the Free Trade): परम्परावादी अर्थशास्त्री यह मानकर चलते हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सब प्रकार के प्रतिबन्धों से स्वतन्त्र है तथा बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता पाई जाती है। आधुनिक युग में स्थिति इससे सर्वथा भिन्न है। आज के युग में कोई भी देश दूसरे पर निर्भर नहीं रहना चाहता। इसके अतिरिक्त बहुत-सी अन्य परिस्थितियां जैसे अपूर्ण प्रतियोगिता, व्यापार प्रतिबन्ध, राज्य व्यापार (State Trading), आयात-निर्यात कर तथा आर्थिक नियोजन के कारण भी यह सिद्धान्त लागू नहीं होगा।

(12) स्थिर दशाएं (Static Conditions): इस सिद्धान्त में यह मान्यता भी निहित है कि दो देशों में लोगों की रुचि तथा उत्पादन क्रियाओं में परिवर्तन नहीं आता। इसके अतिरिक्त भूमि, पूंजी तथा श्रम की पूर्ति स्थिर है। परन्तु वास्तव में संसार में इस प्रकार के परिवर्तन समय-समय पर होते रहते हैं। इसलिए यह मान्यता निराधार है।

(13) एक पक्षीय (One Sided): रिकार्डो द्वारा प्रतिपादित अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का सिद्धान्त एक पक्षीय सिद्धान्त है। यह सिद्धान्त व्यापार के पूर्ति पक्ष को तो ध्यान में रखता है परन्तु व्यापार के लिए मांग की अवहेलना करता है। इस सिद्धान्त से यह तो ज्ञात होता है कि एक देश कौन-सी वस्तुओं का आयात तथा निर्यात करता है परन्तु यह ज्ञात नहीं होता कि व्यापार की शर्तें तथा विनिमय की दर कैसे निर्धारित होती है।

(14) अल्पविकसित देशों पर लागू नहीं होता (It does not apply to Underdeveloped Countries): रिकार्डो का तुलनात्मक लागत का सिद्धान्त पूंजीवादी विकसित अर्थव्यवस्थाओं पर तो लागू हो सकता है परन्तु यह सिद्धान्त अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं जैसे भारत आदि के सम्बन्ध में लागू नहीं होता है। इसका एक मुख्य कारण तो यह है कि यह सिद्धान्त कई मान्यताओं जैसे पूर्ण रोजगार, पूर्ण प्रतियोगिता, समान प्रतिफल के नियम आदि पर आधारित है। अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं में ये मान्यताएं लागू नहीं होती। दूसरा कारण यह है कि यह सिद्धान्त स्वतन्त्र व्यापार की नीति का समर्थक है। परन्तु अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं में स्वतन्त्र व्यापार के स्थान पर संरक्षण की नीति पाई जाती है।

(15) पूर्ण प्रतियोगिता की अवास्तविक मान्यता (Unrealistic Assumption of Perfect Competition): इस सिद्धान्त की यह मान्यता कि वस्तु बाजार तथा साधन बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता पाई जाती है अवास्तविक है। व्यवहार में समस्त विश्व में एकाधिकारी प्रतियोगिता पाई जाती है।

■ 2.5 तुलनात्मक लागत सिद्धान्त में सुधार
(Modification in the Theory of Comparative Costs)

परम्परावादी अर्थशास्त्रियों द्वारा प्रतिपादित तुलनात्मक लागत सिद्धान्त कुछ ऐसी मान्यताओं पर आधारित है जो कि अवास्तविक है। **प्रो॰ कैयरनेस (Cairness), वैस्टेवल, टॉजिग (Taussig) तथा हैबरलर** (Haberler) आदि ने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के तुलनात्मक लागत सिद्धान्त में अग्रलिखित सुधार किए हैं:

(1) लागत का मौद्रिक माप (Monetary Measure of Costs): आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने वस्तु की उत्पादन लागत का मापदण्ड श्रम न रख कर मुद्रा को रखा है। ये अर्थशास्त्री **मूल्य के श्रम सिद्धान्त** (Labour Theory of Value) में विश्वास नहीं रखते थे। उनका मत है कि वस्तु के उत्पादन में केवल श्रम का ही नहीं बल्कि भूमि, पूंजी तथा उद्यमी का भी महत्त्वपूर्ण योगदान है। इसके अतिरिक्त विभिन्न देशों में श्रम की इकाइयों में कीमत तथा कुशलता की दृष्टि से भी भिन्नता पाई जाती है। इसलिए **टॉज़िग** (Taussig) ने मुद्रा के रूप में सीमान्त लागत को मूल्य का आधार बनाया और तुलनात्मक लागत सिद्धान्त को भी सीमान्त लागत के आधार पर व्यक्त किया है। इसे नीचे दिए गए उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया गया है।

तालिका 4. लागतों में तुलनात्मक अंतर (Comparative Differences in Costs)

देश	एक श्रमिक का एक दिन का उत्पादन (इकाइयों में)	
	चावल	गेहूं
भारत	10	10
नेपाल	4	8

उपरोक्त उदाहरण द्वारा यह पहले ही स्पष्ट कर दिया गया है कि भारत को चावल के विशिष्टीकरण में तुलनात्मक लाभ अधिक हैं तथा नेपाल को गेहूं के विशिष्टीकरण में तुलनात्मक हानि कम है। मान लीजिए भारत तथा नेपाल में दैनिक मज़दूरी क्रमशः 6 रुपए और 4 रुपए हैं। तब मुद्रा के रूप में तुलनात्मक लाभ इस प्रकार होगा।

तालिका 5. मौद्रिक रूप में लागतों की गणना (Calculation of Costs in Terms of Money)

देश	दैनिक मजदूरी	कुल लागत	कुल उत्पादन (इकाइयों में)	प्रति इकाई लागत (रु० में)
भारत	20 रु० 20 रु०	20 रु० 20 रु०	चावल की 10 इकाइयां गेहूं की 10 इकाइयां	2.00 2.00
नेपाल	12रु० 12 रु०	12 रु० 12 रु०	चावल की 4 इकाइयां गेहूं की 8 इकाइयां	3.00 1.50

उपरोक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि भारत में चावल की प्रति इकाई उत्पादन लागत 2.00 रुपये है जबकि नेपाल में 3.00 रु० है। भारत में गेहूं की प्रति इकाई उत्पादन लागत 2.00 रुपये है जबकि नेपाल में 1.50 रुपये है इसलिए अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार होने पर भारत को चावल के उत्पादन में तुलनात्मक लाभ अधिक है तथा नेपाल को गेहूं के उत्पादन में तुलनात्मक हानि कम है।

(2) अवसर लागत (Opportunity Cost): **प्रो० टॉजिग** द्वारा उपयोग की गई मौद्रिक लागत की धारणा भी अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में होने वाले लाभ अथवा हानि को स्पष्ट नहीं कर पाई। **प्रो० हैबरलर** (Haberler) ने अवसर लागत की सहायता से इसे स्पष्ट करने का प्रयास किया है। **लिप्सी** के अनुसार **"Y के रूप में X की अवसर लागत Y की इकाइयों की वह संख्या है जिसका कि हमें X की एक अधिक इकाई का उत्पादन करने के लिए अवश्य ही त्याग करना पड़ता है।"** (The opportunity cost of X in terms of Y is the number of units of Y that must be sacrificed in order to produce one more unit of X. - **Lipsey**) उदाहरण के लिए एक टन गेहूं का उत्पादन करने के लिए यदि दो टन चने का त्याग करना पड़ता है तो एक टन गेहूं की अवसर लागत दो टन चने हैं जिन्हें त्याग दिया गया है। **हैबरलर** का मत है कि उत्पादन के साधनों के वैकल्पिक उपयोग होते हैं। इसलिए वस्तुओं की विनिमय दर उनकी अवसर लागत के बराबर होती है। इसे नीचे दिए गए उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया गया है:

मान लीजिए भारत में साधनों की एक इकाई 6 क्विंटल चावल या 10 क्विंटल गेहूं उत्पन्न कर सकती है। इसलिए भारत में एक इकाई गेहूं की अवसर लागत 0.6 इकाई चावल तथा एक इकाई चावल की अवसर लागत 1.67 इकाई गेहूं होगी। इसके विपरीत नेपाल में

साधनों की एक इकाई 8 क्विंटल चावल और 4 क्विंटल गेहूं उत्पन्न कर सकती है। इसलिए नेपाल में 1 इकाई गेहूं की अवसर लागत 2 इकाई चावल तथा 1 इकाई चावल की अवसर लागत 0.5 इकाई गेहूं होगी। इसे निम्नलिखित तालिका द्वारा स्पष्ट किया गया है:

तालिका 6. एक इकाई गेहूँ तथा एक इकाई चावल की अवसर लागत
(Opportunity Cost of one Unit of Wheat and one Unit of Rice)

देश (Country)	एक इकाई गेहूँ की अवसर लागत (Opportunity Cost of One Unit of Wheat)	एक इकाई चावल की अवसर लागत (Opportunity Cost of One Unit of Rice)
भारत	0.6 चावल की इकाई	1.67 गेहूँ की इकाई
नेपाल	2.0 गेहूँ की इकाई	0.5 चावल की इकाई

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि भारत में 1 इकाई चावल के लिए गेहूं की एक से अधिक इकाइयों का त्याग करना पड़ता है और नेपाल में एक इकाई गेहूं के लिए चावल की एक से अधिक इकाइयों का त्याग करना पड़ता है। इसलिए दोनों देशों को उस समय लाभ होगा जबकि भारत गेहूं में तथा नेपाल चावल में विशिष्टीकरण प्राप्त करें और परस्पर व्यापार करें।

(3) अनेक वस्तुएं तथा अनेक देश (Multiple Commodities and Countries): **प्रो॰ वैस्टेबल** के अनुसार यह सिद्धान्त दो से अधिक देशों तथा दो से अधिक वस्तुओं के लिए भी उपयुक्त है। **प्रो॰ ग्राहम तथा टॉज़िग** (Graham and Taussig) ने भी अंकगणित की सहायता से दो से अधिक देशों तथा दो से अधिक वस्तुओं के लिए इस सिद्धान्त की उपयुक्तता को स्पष्ट किया है। वास्तविकता भी यह है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार दो देशों तथा दो वस्तुओं तक ही सीमित नहीं रहता बल्कि कई देश कई वस्तुओं में परस्पर व्यापार करते हैं।

(4) मजदूरी का प्रभाव (Effect of Wages): तुलनात्मक लागत सिद्धान्त के प्रतिपादकों का यह विश्वास था कि जिन देशों में मज़दूरी की दर कम होती है वहां उत्पादन लागत कम होगी और वे देश अपनी वस्तुओं का उन देशों में निर्यात करते हैं जिनमें मज़दूरी की दर अधिक होती है। इसके विपरीत आधुनिक अर्थशास्त्रियों का विश्वास है कि **ऊंची मज़दूरी सस्ती पड़ सकती है और कम मज़दूरी महंगी पड़ सकती है।** (High wages are low wages and low wages are high wages.) उनका मत है कि जहां मज़दूरी दर अधिक होती है वहां के मज़दूरों की कार्यकुशलता अधिक होती है इसलिये उत्पादन कम लागत पर होता है जबकि कम मज़दूरी वाले देशों में कार्य कुशलता कम होने के कारण उत्पादन लागत अधिक उठानी पड़ती है।

(5) परिवहन लागतों का प्रभाव (Effect of Transport Costs): तुलनात्मक लागत सिद्धान्त में केवल **श्रम लागत** (Labour Cost) अर्थात् उत्पादन लागत का ही विचार किया गया है। इसमें कच्चे माल तथा वस्तु को एक स्थान से दूसरे स्थान पर लाने ले जाने के कारण होने वाले खर्चों को सम्मिलित नहीं किया जाता है। इस सम्बन्ध में **हैबरबर** (Haberler) ने कहा है कि, **"किसी वस्तु का निर्यात अथवा आयात उस समय तक नहीं किया जाएगा जब तक दो देशों में उस वस्तु के उत्पादन व्यय का अन्तर उसके एक देश से दूसरे देश की परिवहन लागत से अधिक नहीं है। किसी भी देश की निर्यात करने की क्षमता केवल उसकी तुलनात्मक लागत पर निर्भर नहीं करती बल्कि यह परिवहन लागत पर भी निर्भर करती है।"**

(6) उत्पादन के नियमों का प्रभाव (Effect of the Laws of Production): तुलनात्मक लागत सिद्धान्त में हम यह मान कर चलते हैं कि उत्पादन में **स्थिर प्रतिफल का नियम** (Law of Constant Returns) लागू होता है। **वैस्टेबल तथा टॉज़िग** ने यह स्पष्ट किया है कि उत्पादन पर साधन के घटते प्रतिफल तथा बढ़ते प्रतिफल के नियमों का भी प्रभाव होता है। जब उत्पादन पर साधन के बढ़ते प्रतिफल का नियम (Law of Increasing Returns) लागू होता है तब प्रति इकाई लागत कम होती चली जाती है, इसलिए तुलनात्मक लाभ अधिक, होता जाता है। इसके परिणामस्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में वृद्धि होती है। इसके विपरीत घटते प्रतिफल के नियम के लागू होने पर तुलनात्मक लाभ कम हो जाता है और इसके कारण अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में कमी आ जाती है।

(7) मांग की लोच का प्रभाव (Effect of Elasticity of Demand): परम्परावादी अर्थशास्त्रियों के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में दो वस्तुओं के बीच विनिमय दर वस्तुओं के मोल-भाव द्वारा निर्धारित होती है। आधुनिक अर्थशास्त्रियों का मत है कि व्यापार की शर्तें मोल-भाव द्वारा नहीं बल्कि एक देश की मांग की लोच पर निर्भर करती हैं। जिस देश में विदेशी वस्तुओं के लिए मांग की लोच अधिक होगी, व्यापार की शर्तें उस देश के अनुकूल होंगी। इसके विपरीत जिस देश में विदेशी वस्तुओं के लिए मांग की लोच कम होगी, व्यापार की शर्तें उस देश के प्रतिकूल होंगी। इसलिए दो देशों के बीच **पारस्परिक मांग** (Reciprocal Demand) अथवा इनकी मांग की लोच तथा विनिमय अनुपात, व्यापार की शर्तों तथा लाभ की मात्रा को निर्धारित करती है।

प्रश्न (QUESTIONS)

■ I. वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

सभी प्रश्न अनिवार्य हैं (Attempt all the questions)

1. तुलनात्मक लागत सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था (रिकार्डो ने, मार्शल ने)
2. तुलनात्मक लागत सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक देश उन वस्तुओं का निर्यात करे जिनमें उसे प्राप्त होता है तुलनात्मक (लाभ, हानि)
3. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार होता है जब लागतों में होता है (समान अन्तर, निरपेक्ष अन्तर) (K.U. 2008)
4. तुलनात्मक लागत सिद्धांत की यह मान्यता है कि श्रम की सभी इकाइयां होती हैं (एक समान, विभिन्न)
5. तुलनात्मक लागत सिद्धान्त की यह मान्यता है कि उत्पादन पर लागू होता है (समान प्रतिफल का नियम, बढ़ते प्रतिफल का नियम)
6. लागतों में निरपेक्ष अन्तर की धारणा का प्रतिपादन किया था (जे. एस. मिल ने, एडम स्मिथ ने)
7. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के परम्परावादी सिद्धान्त का सुधार किया था (हेबरलर ने, मिर्डाल ने)
8. तुलनात्मक लागत सिद्धान्त का एक दोष है कि इसमें की गई है यातायात लागतों की (अवहेलना, अवहेलना नहीं)
9. रिकार्डो का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का सिद्धान्त है (एक पक्षीय, द्विपक्षीय)
10. आधुनिक अर्थशास्त्री मापते हैं उत्पादन लागत को (श्रम रूप में, मौद्रिक रूप में)
11. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के तुलनात्मक लागत सिद्धान्त के लिए अवसर लागत धारणा का प्रतिपादन किया था (टॉजिग ने, हैबरलर ने)
12. आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार व्यापार की शर्तें प्रभावित होती हैं (आपसी मोल-भाव द्वारा, मांग की लोच द्वारा)
13. दो देशों के बीच व्यापार संभव होता है (वस्तुओं की दुर्लभता के कारण, लागतों में तुलनात्मक अन्तर के कारण)
14. प्रसिद्ध पुस्तक 'Principles of Political Economy and Taxation' लिखी गई है। (डेविड रिकार्डो द्वारा, ओहलिन द्वारा) (K.U. 2008)

उत्तर (Answers): (1) रिकार्डो ने, (2) लाभ, (3) निरपेक्ष अन्तर, (4) एक समान, (5) समान प्रतिफल का नियम, (6) एडम स्मिथ ने, (7) हेबरलर ने, (8) अवहेलना, (9) एक पक्षीय, (10) मौद्रिक रूप में, (11) हेबरलर ने, (12) मांग की लोच द्वारा, (13) लागतों में तुलनात्मक अन्तर के कारण (14) डेविड रिकार्डो द्वारा।

■ II. लघु/परिभाषा रूपी प्रश्न (Short/Definitional Type Questions)

1. तुलनात्मक लागत सिद्धान्त का प्रतिपादन किसने किया?

2. तुलनात्मक लागत सिद्धान्त का आधार क्या है? (M.D.U. 2008)
3. लागतों में निरपेक्ष अन्तर से क्या अभिप्राय है?
4. लागतों में तुलनात्मक अन्तर से क्या अभिप्राय है?
5. लागतों में समान अन्तर का क्या अर्थ है?
6. तुलनात्मक लागत सिद्धान्त की दो मान्यताएं लिखें।
7. तुलनात्मक लागत सिद्धान्त की दो आलोचनाएं दें।
8. हेबरलर अवसर लागत की सहायता से तुलनात्मक लागत सिद्धान्त की व्याख्या कैसे करता है?
9. क्या यातायात लागतें किसी देश की निर्यात क्षमता को प्रभावित करती हैं?
10. मांग की लोचें व्यापार की शर्तों को कैसे प्रभावित करती है?

III. निबन्ध रूपी प्रश्न (Essay Type Questions)

1. Explain Comparative Cost Theory of international trade in terms of monetary costs and opportunity costs.
   मौद्रिक लागत तथा अवसर लागत के रूप में अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के तुलनात्मक लागत सिद्धान्त का वर्णन करें।
2. Explain the theory of comparative costs. What are its assumptions and limitations?
   तुलनात्मक लागतों के सिद्धान्त का वर्णन करें। इसकी मान्यताएं तथा सीमाएं कौन-सी हैं?
   (K.U. 2005, M.D.U. 2007)
3. Difference in Costs is the basis of international trade. Discuss with the help of diagrams.
   लागत में अन्तर अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का आधार है। रेखाचित्रों की सहायता से इस कथन की विवेचना करें।
4. Explain with diagrams the comparative cost theory of international trade.
   अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के लागतों के तुलनात्मक सिद्धान्त की रेखाचित्रों सहित व्याख्या करें।

   Or

   State and explain critically the comparative cost theory of international trade.
   अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के तुलनात्मक लागत सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या करें। (K.U. 2007)
5. ''A country will specialise in the production of the commodity for which its unit labour cost is comparatively lowest.'' Discuss critically.
   ''एक देश उस वस्तु के उत्पादन में विशेषता प्राप्त करेगा जिसकी प्रति इकाई श्रम लागत तुलनात्मक रूप से न्यूनतम होगी'' आलोचनात्मक व्याख्या करें।
6. Does international trade differ from inter-regional trade? How and why does international trade occur?
   क्या अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार अन्तर्क्षेत्रीय व्यापार से भिन्न है? अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार कैसे और क्यों संभव होता है?

18

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का आधुनिक सिद्धान्त या हैक्शर–ओहलिन सिद्धान्त

(MODERN THEORY OF INTERNATIONAL TRADE OR HECKSCHER – OHLIN THEORY)

■ 1. भूमिका (Introduction)

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के आधुनिक सिद्धान्त का प्रतिपादन स्वीडिश अर्थशास्त्री **हैक्शर** (Heckscher) ने सन् 1919 में लिखे गए एक लेख द्वारा किया। इसका विकास उनके शिष्य **बर्टिल ओहलिन** (Bertil Ohlin) द्वारा पहले अपने शोध निबन्ध में सन् 1924 में और फिर अपनी पुस्तक *International and Interregional Trade* —1933 में किया गया था। यह सिद्धान्त अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के तुलनात्मक लागत सिद्धान्त का खंडन नहीं करता बल्कि उसका समर्थन करता है। तुलनात्मक लागत सिद्धान्त के अनुसार तुलनात्मक लागतों में पाये जाने वाले अन्तर के कारण अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार होता है, परन्तु इस सिद्धान्त से यह स्पष्ट नहीं होता कि तुलनात्मक लागत में अन्तर का वास्तविक कारण क्या है? आधुनिक सिद्धान्त यह स्पष्ट करता है कि तुलनात्मक लागतों में पाये जाने *वाले अन्तर का मुख्य कारण क्या है? इस सिद्धान्त के अनुसार संसार के विभिन्न देशों में* **साधन सम्पन्नता** (Factor Endowment) में भिन्नता पाई जाती है। उदाहरण के लिये कुछ देशों में श्रम की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक होती है। जबकि कुछ देशों में पूंजी की मात्रा *अपेक्षाकृत अधिक होती है। साधन सम्पन्नता की विभिन्नता के कारण साधनों की कीमतों में अन्तर पाया जाता है।* साधनों की कीमतों में अन्तर साधनों की सापेक्ष **दुर्लभता** (Scarcity) अथवा **बहुलता** (Abundance) पर निर्भर करता है। साधनों की कीमतों में अन्तर होने के कारण वस्तुओं की लागतों में भी अन्तर पाया जाता है। अतएव् इस सिद्धान्त से ज्ञात होता है कि **तुलनात्मक लागतों में अन्तर का मुख्य कारण साधन सम्पन्नता की विभिन्नता है। अतएव साधन सम्पन्नता की विभिन्नता तथा कीमतों में अन्तर के कारण अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार होता है।** प्रत्येक देश उस वस्तु का निर्यात करेगा जिसके उत्पादन में उस साधन का प्रयोग किया जाता है जो सापेक्ष रूप से सस्ता है तथा अधिक मात्रा में उपलब्ध है। इसके विपरीत उस वस्तु का आयात करेगा जिसके उत्पादन में उस साधन का प्रयोग किया जाता है जो सापेक्ष रूप से महंगा है तथा कम मात्रा में उपलब्ध है। इस सिद्धान्त के अनुसार केवल पूर्ति की दशायें ही अन्तर्राष्ट्रीय **व्यापार के स्वरूप** (Pattern of Trade) को निर्धारित करती हैं।

■ 1.1. परिभाषा (Definition)

सालवातोर के अनुसार, **''हैक्शर-ओहलिन सिद्धान्त के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का महत्त्वपूर्ण कारण राष्ट्रों के बीच साधन सम्पन्नता तथा साधनों की कीमतों में पाया जाने वाला सापेक्षिक अन्तर है। इस सिद्धान्त का भविष्य कथन है कि प्रत्येक देश उस वस्तु का निर्यात करेगा जिसके उत्पादन में उस देश में सापेक्ष रूप में बहुतायत में उपलब्ध तथा सस्ते साधन का अधिक प्रयोग किया जाता है तथा उस वस्तु का आयात करेगा जिसके उत्पादन में सापेक्ष रूप से दुर्लभ तथा महंगे साधन का प्रयोग किया जाता है। इस सिद्धान्त का यह भी भविष्य कथन है कि व्यापार के कारण विभिन्न देशों में साधनों की कीमतों में**

अन्तर घटता जाता है।'' (The Heckscher-Ohlin theory states that difference in relative factor endowments and factor prices between nations is the most important cause of trade. This theory predicts that each nation will export the commodity in the production of which a great deal of relatively abundant and cheap factor is used and import the commodity in the production of which a great deal of its relatively scarce and expensive factor is used. The theory also predicts that trade will lead to the reduction in the difference in factor prices between nations.—**Salvatore**)

■ 2. सिद्धान्त की मान्यताएं (Assumptions of the Theory)

(i) यह सिद्धान्त दो देशों, दो वस्तुओं और दो साधनों से सम्बन्धित है। इसलिये इसे 2×2×2 का **मॉडल** (Model) **कहते हैं।**

(ii) दो देशों में किसी एक वस्तु के लिये एक ही **उत्पादन फलन** (Production Function) होता है परन्तु विभिन्न वस्तुओं के लिये विभिन्न उत्पादन फलन होते हैं।

(iii) एक देश के अन्दर साधन गतिशील हैं, परन्तु दो देशों के बीच गतिहीन है।

(iv) सभी बाज़ारों में पूर्ण प्रतियोगिता है। इसके कारण (a) सभी साधन काम पर लगे हुए (Fully Employed) हैं। (b) साधनों को उनके सीमान्त उत्पादन के अनुसार पुरस्कार मिलता है, (c) वस्तुओं की कीमत सीमान्त लागत के बराबर रखी जाती है।

(v) वस्तुओं के विनिमय पर किसी प्रकार का नियन्त्रण नहीं है अर्थात् स्वतन्त्र व्यापार होता है।

(vi) विभिन्न देशों की **रुचियां** (Tastes) समान हैं।

(vii) उत्पादन की समान तकनीक का प्रयोग किया जाता है।

(viii) यातायात की कोई लागत नहीं हैं।

(ix) विभिन्न देशों में विभिन्न **साधन सम्पन्नताएं** (Factor Endowments) पाई जाती हैं।

(x) वस्तुओं का उनकी **साधन प्रधानता** (Factor Intensity) के रूप में वर्गीकरण किया जा सकता है जैसे **पूंजी प्रधान वस्तुयें** (Capital Intensive Goods) तथा **श्रम प्रधान वस्तुयें** (Labour Intensive Goods) आदि।

(xi) सभी वस्तुओं का उत्पादन फलन **प्रथम डिग्री का समरूप उत्पाद फलन** (Production functions are homogeneous of the first degree) है। इसका अभिप्राय है कि यदि उत्पादन के साधनों को दुगना कर दिया जाये तो उत्पाद भी दुगना हो जायेगा।

■ 3. सिद्धान्त की व्याख्या (Explanation of the Theory)

ओहलिन के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार **अन्तर्क्षेत्रीय व्यापार** (Inter-regional Trade) की एक विशेष स्थिति है। ओहलिन का कथन है कि विभिन्न क्षेत्रों में **साधन सम्पन्नता** (Factor Endowments) भिन्न-भिन्न होती हैं अर्थात् कई स्थानों पर श्रम अधिक होता है तथा पूंजी कम होती है। इसके विपरीत कई स्थानों पर पूंजी अधिक होती है तथा श्रम कम होता है। विभिन्न वस्तुओं का **उत्पादन फलन** (Production Function) भी भिन्न-भिन्न होता है अर्थात् विभिन्न वस्तुओं का उत्पादन करने के लिये साधनों का विभिन्न अनुपात में संयोग किया जाता है। कुछ वस्तुओं के उत्पादन के लिये सापेक्षिक रूप से श्रम का अधिक अनुपात में तथा पूंजी का कम अनुपात में प्रयोग किया जाता है। जबकि कुछ वस्तुओं के उत्पादन में अधिक पूंजी तथा कम श्रम की आवश्यकता होती है। इस प्रकार प्रत्येक क्षेत्र उन्हीं वस्तुओं को उत्पादित करने के लिये उपयुक्त होता है जिनके उत्पादन के लिए आवश्यक साधन **सापेक्षिक** रूप से अधिक मात्रा में उपलब्ध होते हैं। एक क्षेत्र उन वस्तुओं के उत्पादन के लिये उपयुक्त नहीं होता जिनके उत्पादन के लिये ऐसे साधनों की अधिक मात्रा में आवश्यकता है जो कि वहां कम मात्रा में पाये जाते हैं या बिल्कुल उपलब्ध नहीं है। इस प्रकार विभिन्न क्षेत्रों की विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन करने की क्षमता भिन्न-भिन्न होती है। अत: साधनों की सम्पन्नता में **अन्तर, अन्तर्क्षेत्रीय व्यापार** (Inter-regional Trade) के साथ-साथ, **अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार** (International Trade) का भी मुख्य कारण है।

ओहलिन के अनुसार, **''अन्तर-क्षेत्रीय व्यापार के होने का हमेशा तात्कालिक कारण है वस्तुएं घर में पैदा की जाने की अपेक्षा बाहर से मुद्रा के रूप में सस्ती खरीदी जा सकती है और यह ही अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का कारण है''** (Immediate cause of inter-regional trade is always that goods can be bought cheaper in terms of money than they can be produced at home and here is the case of international trade.—**Ohlin**)

हैक्शर ने सन् 1919 में अपने लेख "The Effect of Foreign Trade on the Distribution of Income." में परम्परावादी **तुलनात्मक लागत सिद्धान्त** का समर्थन करते हुए यह माना था कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तुलनात्मक लागतों के अन्तर के कारण होता है। परन्तु परम्परावादी सिद्धान्त से यह ज्ञात नहीं होता कि तुलनात्मक लागतों में अन्तर क्यों पाया जाता है, हैक्शर ने इस प्रश्न का उत्तर देते हुए बताया है कि तुलनात्मक लागतों में अन्तर निम्नलिखित दो कारणों से पाया जाता है:

(a) दो देशों में उत्पादन साधनों की सम्पन्नता में अन्तर (Difference in Factor Endowments)

(b) विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन के लिये साधनों के विभिन्न अनुपात में अन्तर (Difference in Factor Intensities)

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के **हैक्शर ओहलिन सिद्धान्त** के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय **व्यापार का तुरन्त कारण वस्तुओं की सापेक्ष कीमतों में पाया जाने वाला अन्तर है** (The immediate cause of international trade is the difference in relative commodity prices.) *वस्तुओं की सापेक्ष कीमतों में पाये जाने वाले अन्तर का कारण यह है कि दो देशों के बीच* **साधन सम्पन्नताओं** (Factor Endowments) जैसे पूंजी तथा श्रम की मात्रा में अन्तर होता है। इसके फलस्वरूप साधनों की सापेक्ष मांग तथा पूर्ति में *अन्तर पाया जाता है। इनमें पाये जाने वाले अन्तर के कारण साधनों की कीमतों में अन्तर उत्पन्न हो जाता है। साधन कीमतों में पाये जाने* वाले अन्तर के फलस्वरूप ही वस्तुओं की सापेक्ष कीमतों में अन्तर उत्पन्न होता है तथा इनमें पाया जाने वाला अन्तर ही अन्तर्राष्ट्रीय *व्यापार का मुख्य कारण है। जिन वस्तुओं के उत्पादन के लिये दुर्लभ साधनों की बड़ी मात्रा में आवश्यकता होती है, उनका* **आयात** *किया* जाता है क्योंकि उनकी घरेलू कीमतें ऊंची होती है। इसके विपरीत जिन वस्तुओं के उत्पादन के लिये **प्रचुर साधनों** (Abundant Factors) *की बड़ी मात्रा में आवश्यकता होती है, उनका* **निर्यात** *किया जाता है क्योंकि उनकी घरेलू कीमतें नीची होती हैं।* उदाहरण के लिये यदि जर्मनी में पूंजी प्रचुर मात्रा में पाई जाती है तो वह सापेक्षतया सस्ती होगी। इसलिये जर्मनी उन वस्तुओं का निर्यात करेगा जो **पूंजी प्रधान** (Capital Intensive) *हैं। इसके विपरीत यदि भारत में श्रम प्रचुर मात्रा में पाया जाता है तो वह सापेक्षतया सस्ता होगा।* इसलिये भारत उन वस्तुओं का निर्यात करेगा जो **श्रम प्रधान** (Labour Intensive) होंगी। हैक्शर-ओहलिन सिद्धान्त की साधनों की **प्रचुरता या दुर्लभता** (Abundance or Scarcity of Factors) की व्याख्या दो मापदंडों (Criteria) के आधार पर की गई है:
(i) कीमत मापदण्ड (Price Criterion) तथा **(ii) भौतिक मापदण्ड** (Physical Criterion)। हम हैक्शर-ओहलिन सिद्धान्त की व्याख्या इन दोनों मापदण्डों के आधार पर करेंगे।

■ (i) साधन प्रचुरता या दुर्लभता का कीमत मापदण्ड
(Price Criterion of Factor Abundance or Scarcity)

साधन प्रचुरता या दुर्लभता के कीमत मापदण्ड से अभिप्राय यह है कि जिस देश में पूंजी सापेक्ष रूप से सस्ती है तथा श्रम सापेक्ष रूप से महंगा है तो उसे **पूंजी सम्पन्न** (Capital Abundant) देश कहा जायेगा, चाहे उस देश में पूंजी की मात्रा सापेक्षतया कम ही क्यों न हो। इसके विपरीत यदि पूंजी अपेक्षाकृत महंगी है तथा श्रम अपेक्षाकृत सस्ता है तो उसे **पूंजी दुर्लभ** (Capital Scarce) देश कहा जायेगा, चाहे उस देश में पूंजी की मात्रा सापेक्ष रूप से अधिक ही क्यों न हो। अन्य शब्दों में, **साधन की सम्पन्नता या दुर्लभता की कसौटी साधन की मात्रा नहीं है, बल्कि साधन की कीमत है।**

■ रेखाचित्रीय व्याख्या (Diagrammatic Explanation)

मान लीजिए भारत तथा जर्मनी दो देश हैं। जर्मनी पूंजी प्रधान देश है तथा भारत श्रम प्रधान देश है। इसलिए जर्मनी में पूंजी की कीमत तथा श्रम की कीमत का अनुपात भारत में पूंजी की कीमत तथा श्रम की कीमत के अनुपात की तुलना में कम है अर्थात्

$$\underset{\text{जर्मनी}}{\left(\frac{P_K}{P_L}\right)} < \underset{\text{भारत}}{\left(\frac{P_K}{P_L}\right)}$$

यहाँ

P_K = पूंजी की कीमत

P_L = श्रम की कीमत

< = Less than (कम है)

अतएव जर्मनी एक पूंजी प्रधान देश है तथा उसमें पूंजी अपेक्षाकृत सस्ती है। भारत श्रम प्रधान देश है क्योंकि भारत में श्रम अपेक्षाकृत सस्ता है। इन दोनों देशों में दो वस्तुओं **घड़ियां** जो पूंजी प्रधान वस्तु है तथा **कमीजें** जो श्रम प्रधान वस्तु है का उत्पादन किया जाता है।

हैक्शर-ओहलिन सिद्धान्त के अनुसार, जर्मनी पूंजी प्रधान वस्तुओं अर्थात् घड़ियों का निर्यात करेगा तथा भारत श्रम प्रधान वस्तुओं अर्थात् कमीजों का निर्यात करेगा। इस सिद्धान्त की व्याख्या निम्नलिखित चित्र की सहायता से की जा सकती है।

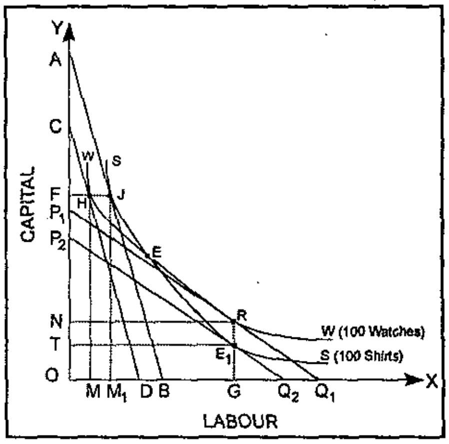

चित्र 1

चित्र 1 में OX अक्ष पर श्रम (L) तथा OY अक्ष पर पूंजी (K) को प्रकट किया गया है। WW,100 घड़ियों की सम उत्पाद वक्र (Iso-quant) है तथा SS, 100 कमीजों की सम-उत्पाद वक्र है।

जर्मनी की **सम-लागत रेखाएं** (Iso-Cost Lines) AB तथा CD हैं। ये दोनों रेखाएं समानान्तर हैं इसलिए इनके द्वारा प्रकट साधन कीमत अनुपात बराबर है।

अर्थात्

$$\frac{OA}{OB} = \frac{OC}{OD}$$

ये वक्र **OY अक्ष की ओर अधिक झुकी हुई (Steeper)** हैं जिससे ज्ञात होता है कि जर्मनी में पूंजी अपेक्षाकृत अधिक सस्ती है तथा श्रम अपेक्षाकृत अधिक महंगा है। इसी प्रकार भारत की **सम-लागत** रेखायें P_1Q_1 तथा P_2Q_2 है। ये रेखाएं OX- अक्ष की ओर अधिक झुकी हुई (Steeper) हैं। इनसे ज्ञात होता है कि भारत में श्रम अपेक्षाकृत अधिक सस्ता तथा पूंजी अपेक्षाकृत अधिक महंगी है। ये दोनों रेखायें भी समानान्तर हैं इसलिए इनके द्वारा प्रकट साधन कीमत अनुपात बराबर है। अर्थात् $\frac{OP_1}{OQ_1} = \frac{OP_2}{OQ_2}$

> **(1) सम-उत्पाद वक्र क्या है? (What is Iso-Product Curve?):** सम-उत्पाद वक्र वह वक्र है जो दो उत्पादन साधनों जैसे पूंजी तथा श्रम के विभिन्न संयोगों को प्रकट करती है जिनसे उत्पादन की समान मात्रा प्राप्त होती है।
>
> **(2) सम-लागत रेखा क्या है? (What is Iso-Cost Line?):** सम-लागत रेखा वह रेखा है जो साधनों के उन संयोगों को प्रकट करती है जो एक समान लागत पर प्राप्त किये जा सकते हैं। इसे बजट रेखा भी कहते हैं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि उत्पादक **एक समान लागत पर साधनों के** कौन-कौन से विभिन्न संयोग प्राप्त कर सकता है। सम-लागत **रेखा द्वारा साधन** कीमत अनुपात भी ज्ञात होता है।

सम उत्पाद रेखाएं (Iso-quants) WW तथा SS केवल एक ही बिन्दु E पर एक दूसरे को काट रही हैं। इससे सिद्ध होता है कि **साधन गहनता का कोई व्युत्क्रम अर्थात् बदलाव** (No Reversal of Factor Intensity) नही है अर्थात् घड़ियां दोनों देशों में पूंजी प्रधान हैं तथा कमीजें दोनों देशों में श्रम प्रधान हैं। **यह निष्कर्ष हैक्शर-ओहलिन सिद्धान्त की इस मान्यता पर आधारित है कि दोनों देशों में घड़ियों तथा कमीजों का उत्पादन एक समान है।**

इस चित्र से ज्ञात होता है कि जर्मनी में घड़ियों की सम-लागत रेखा CD घड़ियों की सम उत्पाद वक्र WW को H बिन्दु पर स्पर्श कर रही है। अतएव जर्मनी के लिए

100 घड़ियों की उत्पादन लागत = OF पूंजी + OM श्रम है।

जर्मनी की कमीजों की सम-लागत रेखा AB कमीजों की सम उत्पाद वक्र SS को J बिन्दु पर स्पर्श कर रही है। इसलिए जर्मनी के लिए

100 कमीजों की उत्पादन लागत = OF पूंजी + OM_1 श्रम है।

अतएव जर्मनी में घड़ियों तथा कमीजों की पूंजी लागत OF है परन्तु कमीजों की श्रम लागत OM_1 है तथा घड़ियों की श्रम लागत OM है। इसलिए कमीजों की श्रम लागत (OM_1–OM=MM_1) MM_1 अधिक है। इससे प्रकट होता है कि जर्मनी घड़ियों का उत्पादन अपेक्षाकृत कम लागत पर कर सकता है। इसलिए **जर्मनी घड़ियों के उत्पादन में विशिष्टीकरण करेगा तथा उनका निर्यात करेगा।**

भारत की P_1Q_1 सम-लागत रेखा सम उत्पादन वक्र WW को बिन्दु R पर स्पर्श कर रही है। इसलिए भारत के लिए

100 घड़ियों की उत्पादन लागत = ON पूंजी + OG श्रम है।

भारत की सम-लागत रेखा P_2Q_2 सम उत्पादन वक्र SS को बिन्दु E_1 पर स्पर्श कर रही है इसलिए भारत में

100 कमीजों की उत्पादन लागत = OT पूंजी + OG श्रम है।

उपरोक्त विवरण से ज्ञात होता है कि भारत में घड़ियों तथा कमीजों की श्रम लागत OG है परन्तु घड़ियों की पूंजी लागत ON तथा कमीजों की पूंजी लागत OT है। अतएव कमीजों की पूंजी लागत (ON–OT = NT) NT कम है। इससे प्रकट होता है कि भारत कमीजों का उत्पादन अपेक्षाकृत कम लागत पर कर सकता है। इसलिए भारत कमीजों के उत्पादन में विशिष्टीकरण करेगा तथा उसका निर्यात करेगा।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि **कीमत मापदण्ड के अनुसार जर्मनी में पूंजी के अपेक्षाकृत सस्ता होने के कारण वहां से पूंजी प्रधान वस्तु अर्थात् घड़ियों का निर्यात किया जाएगा। इसके विपरीत भारत में श्रम के अपेक्षाकृत सस्ता होने के कारण वहां से श्रम प्रधान वस्तु अर्थात् कमीजों का निर्यात किया जायेगा।**

■ (ii) साधन प्रचुरता या दुर्लभता का भौतिक मापदण्ड
(Physical Criterion of Factor Abundance or Scarcity)

साधन प्रचुरता या दुर्लभता के भौतिक मापदण्ड से अभिप्राय यह है कि यदि किसी देश में दूसरे देश की तुलना में पूंजी का अनुपात श्रम से अधिक है तो उसे पूंजी सम्पन्न कहा जायेगा। इसी प्रकार जिस देश में दूसरे देश की तुलना में श्रम का अनुपात पूंजी से अधिक है तो उसे श्रम सम्पन्न कहा जायेगा। अन्य शब्दों में, इस मापदण्ड का आधार **साधनों की मात्रा** (Physical Quantity) है। इस मापदण्ड के आधार पर अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की व्याख्या निम्नलिखित उदाहरण के द्वारा की जा सकती है।

हैक्शर-ओहलिन के अनुसार दो देशों जैसे जर्मनी तथा भारत में जर्मनी उस दशा में पूंजी सम्पन्न तथा भारत श्रम सम्पन्न होगा जब जर्मनी में पूंजी तथा श्रम का अनुपात भारत में पूंजी तथा श्रम के अनुपात से अधिक होगा अर्थात्

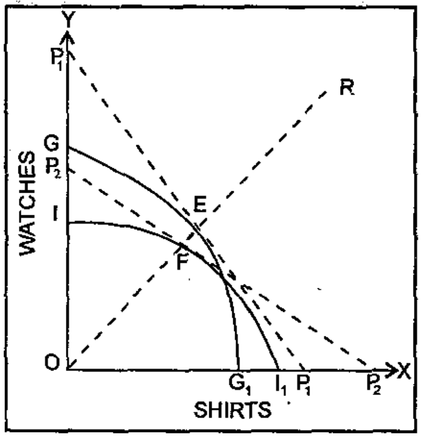

चित्र 2

जर्मनी भारत

$$\left(\frac{K_G}{L_G}\right) > \left(\frac{K_I}{L_I}\right)$$

(यहां K_G = जर्मनी में पूंजी की मात्रा; L_G जर्मनी में श्रम की मात्रा; K_I = भारत में पूंजी की मात्रा; L_I = भारत में श्रम की मात्रा।)

जर्मनी पूंजी प्रधान वस्तुओं तथा भारत श्रम प्रधान वस्तुओं का उत्पादन करेगा। इसे चित्र 2 द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। जर्मनी की उत्पादन सम्भावना वक्र GG_1 तथा भारत की II_1 है।

OX अक्ष पर श्रम प्रधान उत्पादन कमीज़ों को प्रकट किया गया है। OY अक्ष पर पूंजी प्रधान उत्पादन घड़ियों को प्रकट किया गया है। यदि दोनों देश एक ही अनुपात में दोनों वस्तुओं का उत्पादन करेंगे तो वे OR रेखा (OR- Ray) के साथ उत्पादन करेंगे। जर्मनी अपनी उत्पादन सम्भावना वक्र GG_1 के बिन्दु E पर उत्पादन करेगा। भारत अपनी उत्पादन सम्भावना वक्र II_1 के बिन्दु F पर उत्पादन करेगा। रेखाचित्र से ज्ञात होता है कि E बिन्दु पर जर्मनी के उत्पादन सम्भावना वक्र का ढलान अधिक **झुका हुआ** (Steeper) है तथा F बिन्दु पर भारत की उत्पादन सम्भावना वक्र का ढलान अधिक **चपटा** (Flatter) है। यह इस बात से स्पष्ट होता है कि जर्मनी की कीमत रेखा P_1P_1 भारत की कीमत रेखा P_2P_2 से अधिक **झुकी हुई** (Steeper) है। इससे सिद्ध होता है कि जर्मनी में घड़ियां अधिक सस्ती हैं तथा भारत में कमीज़ें अधिक सस्ती हैं। जर्मनी को पूंजी प्रधान वस्तु घड़ियों का अधिक उत्पादन करना चाहिये। **यह ध्यान रखना चाहिये कि उपरोक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट नहीं होता कि जर्मनी घड़ियों का निर्यात करेगा तथा भारत कमीज़ों का निर्यात करेगा। इस प्रश्न का उत्तर इन वस्तुओं की मांग पर निर्भर करेगा। यदि जर्मनी में घड़ियों की घरेलू मांग उत्पादन से कम होगी तब ही जर्मनी घड़ियों का निर्यात करेगा अथवा नहीं। इसी प्रकार भारत कमीजों का निर्यात तभी करेगा जब कमीजों की घरेलू मांग उसके उत्पादन से कम होगी।**

■ 3.1 साधन कीमत समानता (Factor Price Equality)

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के आधुनिक सिद्धान्त के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के फलस्वरूप संबंधित देशों के साधन की कीमतों में समानता आ जाती है। मान लीजिए दो देशों भारत तथा जर्मनी के मध्य व्यापार होता है। भारत में श्रम अधिक मात्रा में होने के कारण मज़दूरी की दर कम होगी तथा श्रम प्रधान वस्तुयें निर्मित होगीं। इसके विपरीत जर्मनी में पूंजी अधिक मात्रा में होने के कारण ब्याज की दर कम होती है तथा पूंजी प्रधान वस्तुयें निर्मित होती है। इसलिये भारत जर्मनी को श्रम प्रधान वस्तुयें निर्यात करेगा तथा जर्मनी भारत को पूंजी प्रधान वस्तुयें निर्यात करेगा। जैसे-जैसे भारत श्रम प्रधान वस्तुओं का अधिक मात्रा में निर्यात करेगा श्रम की मांग में वृद्धि होती जायेगी तथा उसकी कीमत अर्थात् मज़दूरी बढ़ती जायेगी। इसके साथ ही जैसे-जैसे भारत द्वारा पूंजी प्रधान वस्तुओं का अधिक आयात किया जायेगा। भारत में पूंजी की मांग कम होती जायेगी तथा पूंजी की कीमत अर्थात् ब्याज की दर भी कम हो जायेगी। इसी प्रकार जर्मनी में पूंजी महंगी होगी तथा श्रम सस्ता हो जायेगा। अन्त में ऐसी स्थिति आयेगी जिसमें भारत में श्रम की बढ़ती कीमत जर्मनी में श्रम की घटती कीमत के बराबर हो जायेगी। अतएव यह कहा जा सकता है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के कारण भारत तथा जर्मनी में उत्पादन के साधनों की कीमतें बराबर हो जायेंगी।

■ 4. ओहलिन के सिद्धान्त की श्रेष्ठता या परम्परावादी सिद्धान्त व आधुनिक सिद्धान्त की तुलना (Superiority of Ohlin's Theory or Comparison between Classical and Modern Theory)

ओहलिन का सिद्धान्त परम्परावादी सिद्धान्त का खण्डन नहीं करता बल्कि यह उसी का एक स्पष्ट तथा सुधरा हुआ रूप है। इस सिद्धान्त की श्रेष्ठता निम्नलिखित तत्त्वों द्वारा सिद्ध होती है:

(1) परम्परावादी सिद्धान्त का आधार विभिन्न देशों में तुलनात्मक लागतों में पाया जाने वाला अन्तर है। जबकि आधुनिक सिद्धान्त का आधार तुलनात्मक लागत के अन्तर के कारणों की व्याख्या है।

(2) परम्परावादी सिद्धान्त श्रम के मूल्य पर आधारित है जो कि अवास्तविक है जबकि ओहलिन का सिद्धान्त मुद्रा लागत पर आधारित है जो कि अधिक वास्तविक है।

(3) परम्परावादी सिद्धान्त केवल श्रम को ही उत्पादन का महत्त्वपूर्ण साधन मानता है जबकि ओहलिन ने उत्पादन के दो साधनों अर्थात् पूंजी और श्रम को महत्त्व दिया है।

(4) परम्परावादी सिद्धान्त **आंशिक** (Partial) सन्तुलन का सिद्धान्त है। क्योंकि इसमें केवल श्रम मूल्य का ही अध्ययन किया गया है, परन्तु ओहलिन ने मूल्य के **सामान्य** (General) **सन्तुलन** को आधार माना है।

(5) *परम्परावादी सिद्धान्त अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा घरेलू व्यापार को एक-दूसरे से बिल्कुल अलग मानता है।* परन्तु ओहलिन के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार वास्तव में अन्तर्क्षेत्रीय व्यापार का ही एक विशिष्ट रूप है। यह एक अधिक वास्तविक विचारधारा है।

(6) ओहलिन का सिद्धान्त परम्परावादी सिद्धान्त से श्रेष्ठ है क्योंकि इसके अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के ढांचे का मुख्य आधार साधनों की पूर्ति में पाये जाने वाला अन्तर है। परम्परावादी सिद्धान्त ने इस आधार का कोई उल्लेख नहीं किया है।

(7) परम्परावादी सिद्धान्त केवल वस्तुओं के सापेक्षिक मूल्य का अध्ययन करता है जबकि ओहलिन ने साधनों के सापेक्षिक मूल्य का अध्ययन किया है। ये वस्तुओं के सापेक्षिक मूल्य को प्रभावित करते हैं। यह एक अधिक वास्तविक स्थिति है।

(8) परम्परावादी सिद्धान्त दो देशों के मध्य होने वाले व्यापार के लाभ का वर्णन करता है। यह मुख्य रूप से एक **कल्याणकारी सिद्धान्त** है। जबकि आधुनिक सिद्धान्त अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के आधार का वर्णन करता है। यह एक वास्तविक सिद्धान्त है।

(9) परम्परावादी सिद्धान्त **उत्पादन फलन** (Production Function) की भिन्नता पर आधारित है जबकि ओहलिन ने उत्पादन फलन की समानता को स्वीकार किया है।

(10) ओहलिन के सिद्धान्त में यह स्पष्ट किया गया है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के कारण वस्तुओं की कीमतों तथा साधनों की कीमतों में समानता की प्रवृत्ति पाई जाती है। जबकि परम्परावादी सिद्धान्त में यह स्पष्ट नहीं किया गया है।

(11) आधुनिक सिद्धान्त अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के **स्थान** तत्त्व (Space Factor) को ध्यान में रखता है जबकि परम्परावादी सिद्धान्त द्वारा इसकी उपेक्षा की गई है।

■ 5. आलोचनाएं (Criticisms)

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के आधुनिक सिद्धान्त की मुख्य आलोचनाएं निम्नलिखित हैं:

(1) अवास्तविक मान्यताएं (Unrealistic Assumptions): ओहलिन का सिद्धान्त कई सरलतम तथा अवास्तविक मान्यताओं पर निर्भर है इस सिद्धान्त की $2 \times 2 \times 2$ अर्थात् 2 देश, 2 वस्तुएं तथा 2 साधनों की मान्यता अवास्तविक है। इस सिद्धान्त की पूर्ण प्रतियोगिता तथा पूर्ण रोजगार की मान्यताएं भी अवास्तविक हैं।

(2) लियोन्टिफ का विरोधाभास (Leontief's Paradox): नोबेल पुरस्कार विजेता अर्थशास्त्री **लियोन्टिफ** ने अमेरिका के आयात तथा निर्यात सम्बन्धी आंकड़ों की सहायता से यह सिद्ध किया कि हैक्शर-ओहलिन सिद्धान्त का यह निष्कर्ष गलत है कि एक पूंजी प्रधान देश पूंजी प्रधान वस्तुओं का निर्यात करता है तथा श्रम प्रधान देश श्रम प्रधान वस्तुओं का निर्यात करता है **लियोन्टिफ** का निष्कर्ष

इस धारणा के बिल्कुल विपरीत या विरुद्ध था। इसलिये लियोन्टिफ के निष्कर्ष को **लियोन्टिफ विरोधाभास** (Leontief Paradox) कहा जाता है। **लियोन्टिफ** ने 1947 को आधार वर्ष मान कर अमेरिका के 192 उद्योगों के लिये **इनपुट-आउटपुट** (Input-Output) सारणी तैयार की। इस सारणी के आधार पर 10 लाख डालर के निर्यात तथा उतने ही मूल्य के **आयात प्रतिस्थापन** (Import Substitution) के लिये श्रम तथा पूंजी की खपत की गणना की। इस सम्बन्ध में यह निष्कर्ष निकाला गया कि अमेरिका **एक पूंजी प्रधान** (Capital Intensive) देश होते हुए भी श्रम प्रधान वस्तुओं का निर्यात तथा पूंजी प्रधान वस्तुओं का आयात करता है। इसको ही **लियोन्टिफ का विरोधाभास** (Leontief's Paradox) कहा जाता है।

क्योंकि ऐसा तभी हो सकता है जब साधनों की कीमतें पूर्ति की तुलना में मांग द्वारा निर्धारित हो, इसका कारण यह है कि एक पूंजी प्रधान देश में पूंजी की मांग अधिक होने के कारण पूंजी महंगी तथा श्रम सस्ता होगा। इसलिये पूंजी प्रधान वस्तुएं महंगी तथा श्रम प्रधान वस्तुएं सस्ती होंगी। अतएव् वह देश श्रम प्रधान वस्तुओं का निर्यात करेगा तथा पूंजी प्रधान वस्तुओं का आयात करेगा। इस प्रकार वास्तविकता यह है कि साधनों की कीमत निर्धारण पर मांग का भी महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। इस पर केवल पूर्ति का ही प्रभाव नहीं पड़ता जैसा कि आधुनिक सिद्धान्त की धारणा है।

(3) अगत्यात्मक सिद्धान्त (Static Theory): यह सिद्धान्त अगत्यात्मक है। इससे केवल यह ज्ञात होता है कि समय के एक निश्चित बिन्दु पर किसी देश में साधनों की क्या स्थिति है परन्तु इससे यह ज्ञात नहीं होता कि उत्पादन दशाओं में परिवर्तन होने पर अर्थव्यवस्था का विकास किस प्रकार होगा।

(4) आंशिक सन्तुलन विश्लेषण (Partial Equilibrium Analysis): **हैबरलर** ने इस सिद्धान्त की आलोचना करते हुए कहा है कि ओहलिन का सिद्धान्त **व्यापक सामान्य सन्तुलन प्रणाली** (Comprehensive General Equilibrium System) को विकसित करने में असफल रहा है। यह तो केवल एक **आंशिक सन्तुलन विश्लेषण** ही है।

(5) साधन समरूप नहीं होते (Factors are not Homogeneous): ओहलिन के सिद्धान्त की यह मान्यता भी अवास्तविक है कि देशों में पाया जाने वाला उत्पादन का साधन समरूप है। उत्पादन का साधन तो एक देश में ही समरूप नहीं होता। उदाहरण के लिये श्रम कई प्रकार का होता है जैसे कुशल, अकुशल आदि।

(6) उत्पादन तकनीक समरूप नहीं होती (Production Techniques are not Homogeneous): आधुनिक सिद्धान्त की यह मान्यता भी अवास्तविक है कि दो देशों में किसी वस्तु की उत्पादन तकनीक समरूप होती है। उदाहरण के लिये, भारत में कपड़े का उत्पादन हथकरघे तथा अधिक श्रमिकों की सहायता से किया जाता है जबकि जापान में आधुनिक मशीनों तथा कम श्रमिकों की सहायता से किया जाता है।

(7) वस्तु कीमत निर्धारण की असंगत तर्क (Illogical Argument of the Determination of Goods Prices): **विजनहोल्डस** (Wiganholds) के अनुसार ओहलिन का यह तर्क असंगत है कि वस्तुओं की कीमतों का निर्धारण साधनों की कीमतों द्वारा नहीं होता बल्कि साधनों की कीमतों का निर्धारण वस्तुओं की कीमतों द्वारा होता है। वास्तव में अन्तिम वस्तुओं की कीमतें उनकी उपयोगिता अर्थात् मांग तथा साधनों की कीमतें उनकी लागत अर्थात् पूर्ति द्वारा निर्धारित होती है। अतएव यह सिद्धान्त असंगत तर्क पर आधारित है।

(8) उपभोक्ताओं की रुचि स्थिर नहीं रहती (No Constant Tastes): ओहलिन के सिद्धान्त की यह मान्यता भी वास्तविक नहीं है कि उपभोक्ताओं की रुचि स्थिर रहती है। परन्तु वास्तव में उपभोक्ताओं की रुचि स्थिर नहीं रहती। उपभोक्ताओं की रुचि में परिवर्तन होने के फलस्वरूप वस्तु कीमत अनुपात लागत अनुपातों को व्यक्त नहीं करेंगे।

(9) सीमित व्याख्या (Limited Explanation): आलोचकों के अनुसार साधन सम्पन्नता में अन्तर अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का केवल एक ही कारण है। ओहलिन के सिद्धान्त में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के अनेक कारणों जैसे साधन गुणों में भिन्नता, उत्पादन तकनीक में भिन्नता, पैमाने का बढ़ता हुआ प्रतिफल आदि की अवहेलना की गई है। अतएव यह सिद्धान्त अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की केवल एक सीमित व्याख्या है।

(10) परस्पर विरोधी निष्कर्ष (Contradictory Conclusions): आलोचकों के अनुसार यदि इस सिद्धान्त का यह तर्क उचित है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के कारण साधन कीमतों में समानता स्थापित हो जाती है तो अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार ही समाप्त हो जाएगा। क्योंकि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तो साधन कीमतों में पाए जाने वाले अन्तर के कारण ही सम्भव होता है। इसलिये इस सिद्धान्त के निष्कर्ष परस्पर विरोधी हैं।

संक्षेप में, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के आधुनिक सिद्धान्त की उपरोक्त आलोचनाओं के होते हुए भी, यह सिद्धान्त परम्परावादी सिद्धान्त से अधिक तर्कसंगत, वास्तविक तथा उचित सिद्धान्त है।

प्रश्न (QUESTIONS)

■ I. वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

सभी प्रश्न अनिवार्य हैं। (Attempt all the questions)

1. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के आधुनिक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था। (हैक्शर ने, रिकार्डो ने) (M.D.U. 2009)
2. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के आधुनिक सिद्धान्त के अनुसार तुलनात्मक लागतों में अन्तर का मुख्य कारण है (साधन सम्पन्नता में अन्तर, साधन सम्पन्नता में समानता)
3. हैक्शर-ओहलिन सिद्धान्त के अनुसार राष्ट्रों के बीच साधन सम्पन्नता तथा साधनों की कीमतों में पाया जाने वाला अन्तर है (व्यापार का कम महत्त्वपूर्ण कारण, व्यापार का अधिक महत्त्वपूर्ण कारण)
4. हैक्शर-ओहलिन सिद्धान्त की मान्यता है दो देशों के बीच प्रयोग की गई तकनीक रहती है (समान, असमान)
5. हैक्शर-ओहलिन सिद्धान्त की मान्यता है कि विभिन्न देशों के बीच _______ साधन सम्पन्नता पाई जाती है (एक जैसी, विभिन्न) (K.U. 2007, 2009)
6. हैक्शर-ओहलिन सिद्धान्त के अनुसार जिन वस्तुओं के उत्पादन के लिए दुर्लभ साधनों की बड़ी मात्रा में आवश्यकता होती है उनका आयात किया जाता है क्योंकि उनकी घरेलू कीमतें होती हैं (ऊँची, नीची)
7. हैक्शर-ओहलिन के अनुसार जिन वस्तुओं के उत्पादन के लिए प्रचुर साधनों की बड़ी मात्रा में आवश्यकता होती है उनका निर्यात किया जाता है क्योंकि उनकी घरेलू कीमतें होती हैं (ऊँची, नीची)
8. हैबरलर ने ओहलिन के सिद्धान्त की आलोचना करते हुए कहा है कि यह एक सिद्धान्त है (आंशिक सन्तुलन विश्लेषण का, सामान्य सन्तुलन विश्लेषण का) (K.U. 2005)

उत्तर (Answer): (1) हैक्शर ने, (2) साधन सम्पन्नता में अंतर, (3) व्यापार का अधिक महत्त्वपूर्ण कारण, (4) समान, (5) विभिन्न, (6) ऊँची, (7) नीची, (8) आंशिक सन्तुलन विश्लेषण।

■ II. लघु/पारिभाषा रूपी प्रश्न (Short/Definitional Type Questions)

1. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के आधुनिक सिद्धान्त का क्या आधार है?
2. ओहलिन के व्यापार सिद्धान्त की दो मुख्य मान्यताएं दें। (M.D.U. 2007)
3. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के आधुनिक सिद्धान्त की परम्परावादी सिद्धान्त की तुलना में श्रेष्ठता की दो बातें दें।
4. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के आधुनिक सिद्धान्त की दो मुख्य आलोचनाओं का वर्णन करें।
5. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की कीमत मापदंड की व्याख्या करें।
6. साधन सम्पन्नता की व्याख्या करें।

7. साधन प्रचुरता या दुर्लभता के भौतिक मापदण्ड की व्याख्या करें।
8. साधन कीमत समानता से क्या अभिप्राय है?
9. लियोन्टिफ विरोधाभास क्या है?

III. निबन्ध रूपी प्रश्न (Essay Type Questions)

1. Evaluate Heckscher-Ohlin theory of International Trade.
   अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के हैक्शर-ओहलिन सिद्धान्त का मूल्यांकन कीजिए। (K.U. 2008)

   Or

   Examine modern theory of international trade.
   अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के आधुनिक सिद्धान्त का परीक्षण करें। (M.D.U. 2007)

   Or

   Explain the modern theory of International Trade.
   अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के आधुनिक सिद्धान्त की व्याख्या करें। (M.D.U. 2008)
2. What is the basis of Modern Theory of International Trade?
   अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के आधुनिक सिद्धान्त का क्या आधार है?
3. Describe the superiority of modern theory over classical theory of international trade.
   अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के आधुनिक सिद्धान्त की परम्परावादी सिद्धान्त की तुलना में श्रेष्ठता का वर्णन करें।
4. Critically examine modern theory of international trade.
   अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के आधुनिक सिद्धान्त की आलोचनात्मक समीक्षा करें। (K.U. 2006)

   Or

   Make critical appraisal of the Heckscher-Ohlin theory of international trade.
   अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के हैक्शर-ओहलिन सिद्धान्त का आलोचनात्मक विश्लेषण करें।
5. Show how Heckscher-Ohlin theory of international trade is superior to Ricardo's theory?
   हैक्शर तथा ओहलिन का सिद्धान्त रिकार्डो के सिद्धान्त से किस प्रकार श्रेष्ठ है? व्याख्या करें।

   Or

   How is modern theory of international trade superior to classical theory of international trade?
   अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का आधुनिक सिद्धान्त परम्परावादी सिद्धान्त से कैसे श्रेष्ठ है?
6. Explain Heckscher-Ohlin theory in terms of factor endowment.
   साधन संपन्नता के आधार पर हैक्शर-ओहलिन सिद्धान्त की व्याख्या करें।

19

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लाभ

(GAINS FROM INTERNATIONAL TRADE)

■ 1. भूमिका (Introduction)

वाणिज्यवादी (Mercantilist) तथा परम्परावादी अर्थशास्त्रियों के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के फलस्वरूप **अन्तर्राष्ट्रीय श्रम विभाजन** तथा **विशिष्टीकरण** संभव होता है। इसके फलस्वरूप संसार के सभी देशों को लाभ प्राप्त होता है। **तुलनात्मक लागत पर आधारित अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के कारण विशिष्टीकरण और श्रम विभाजन के फलस्वरूप व्यापार करने वाले सभी देशों को जो लाभ प्राप्त होता है उसे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से लाभ** (Gain from International Trade) कहा जाता है। **मिल, मार्शल, सैम्युल्सन, केम्प** (Kemp) और **हैबरलर** आदि ने भी विदेशों से प्राप्त होने वाले लाभों को स्पष्ट किया है। इन अर्थशास्त्रियों ने परम्परावादी अर्थशास्त्रियों की विचारधारा का समर्थन करते हुए कहा है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में सम्मिलित देश विशिष्टीकरण के आधार पर उत्पादन एवं विनिमय करके अपने आर्थिक लाभ को अधिकतम करते हैं। **हार्न** तथा **गोमेज** के अनुसार, "**अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में भाग लेने वाले सभी पक्षों को लाभ होता है तथा किसी का अनिष्ट नहीं होता।**" (International trade renders benefit to all participating nations and injury to none. – **Horn and Gomez**)।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार अनेक आर्थिक लाभों को जन्म देता है, जिनमें प्रमुख निम्नलिखित हैं:

(i) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के कारण अन्तर्राष्ट्रीय श्रम विभाजन संभव होता है। इसके फलस्वरूप विश्व के साधनों का अनुकूलतम वितरण (Optimum Distribution) होता है जिससे उनका कुशलतम प्रयोग किया जा सकता है। (ii) इसके फलस्वरूप विश्व के कुल उत्पादन में वृद्धि होती है (iii) प्रत्येक देश में विनिमय की जा सकने वाली वस्तुओं के उत्पादन तथा मूल्य में वृद्धि होती है। (iv) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के कारण प्रत्येक देश उपभोग की विभिन्न वस्तुओं को अधिक मात्रा में प्राप्त कर सकता है। (v) प्रत्येक देश के कल्याण में वृद्धि होती है तथा विश्व की समृद्धि बढ़ती है।

■ 2. परिभाषा (Definition)

(i) **सोडरस्टन** के अनुसार, "**अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में सम्मिलित होने के कारण समूची विश्व अर्थव्यवस्था या किसी एक देश के कल्याण में होने वाली वृद्धि को व्यापार से लाभ कहा जाता है। यह लाभ दो स्रोतों से प्राप्त होता है, एक तो विनिमय की सम्भावना तथा दूसरे विशिष्टीकरण में वृद्धि की संभावना से।**" (Gains from trade means the increase in welfare to the world economy as a whole or to an individual country depending on the view point, as a result of engaging in international trade. The gains originate in two sources, which are the possibility of exchange and the possibility of increased specialisation. – **Sodersten**.)

(ii) **आधुनिक अर्थशास्त्र के शब्दकोश** के अनुसार, "**अन्तर्राष्ट्रीय श्रम विभाजन के फलस्वरूप होने वाले आधिक्य उत्पादन को व्यापार से लाभ कहा जाता है। इस लाभ का व्यापार में भाग लेने वाले देशों में वस्तुओं के विनिमय सम्बन्धी परस्पर समझौते के अनुसार बंटवारा हो जाता है।**" (The surplus production arising out of international division of labour represents gains from trade and it is distributed among trading partners according to agreed rates of exchange for goods. –**Dictionary of Modern Economics**).

(iii) प्रो. हैरोड के शब्दों में,, **"एक देश को विदेशी व्यापार से लाभ उस समय प्राप्त होता है जब उस देश के व्यापारियों को यह मालूम होता है कि विदेशों में कीमत-अनुपात उनके देश में प्रचलित कीमत-अनुपात की तुलना में बहुत अधिक मिलता है। ऐसे समय में जो वस्तुएं उन्हें सस्ती प्रतीत होती हैं उन्हें खरीदते हैं तथा जो महंगी मालूम होती हैं उन्हें बेचते हैं। इस प्रकार उनको ज्ञात हुए निम्नतम एवं उच्चतम बिन्दुओं में जितना अधिक अन्तर होता है तथा उन वस्तुओं का महत्त्व जितना अधिक होगा उतना ही व्यापार से अधिक लाभ प्राप्त होगा।"** (A country gains by foreign trade if and when the traders find that there exists abroad, a ratio of prices very different from that to which they are accustomed at home. They buy what to them seem cheep and sell at what to them seem good prices. The bigger the gap between what to them seems low points and high points, and the more important the articles affected, the greater will the gain from trade be. – **R.F. Harrod**)

अतएव अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से लाभ से अभिप्राय उस लाभ की मात्रा से है जो अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में सम्मिलित होने वाले विभिन्न देश, विशिष्टीकरण और श्रम विभाजन के कारण प्राप्त करते हैं। इन लाभों के फलस्वरूप ही विभिन्न देश अपने संसाधनों का कुशलतम उपयोग करके अपने देश के उत्पादन को अधिकतम करते हैं, बाजार का विस्तार करते हैं और राष्ट्रीय आय में वृद्धि करते हैं।

■ 3. व्यापार के लाभ के स्रोत (Sources of Gains from Trade)

व्यापार के लाभ के मुख्य स्रोत निम्नलिखित हैं:

(1) **श्रम विभाजन** (Division of Labour): रिकार्डो के अनुसार **तुलनात्मक लागत** सिद्धान्त से यह स्पष्ट हो जाता है कि *यदि संसार के विभिन्न देश उन वस्तुओं का उत्पादन करेंगे जिनमें उनके तुलनात्मक लाभ अधिक तथा तुलनात्मक हानि कम हैं तो सभी* देशों को व्यापार से लाभ होगा। अतएव व्यापार के लाभ का एक मुख्य स्रोत, तुलनात्मक लागत के आधार पर किया गया श्रम विभाजन है।

(2) **अन्तर्राष्ट्रीय विशिष्टीकरण** (International Specialisation): तुलनात्मक लागत के लाभ पर आधारित विशिष्टीकरण अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लाभ का मुख्य स्रोत है। इसके फलस्वरूप बड़े पैमाने पर उत्पादन करना संभव होता है। बड़े पैमाने के उत्पादन के फलस्वरूप आन्तरिक तथा बाह्य बचतें प्राप्त होती हैं। ये बचतें व्यापार से लाभ को जन्म देती हैं।

(3) **बाजार का व्यापक विस्तार** (Wide Extent of Market): बाजार के व्यापक विस्तार के फलस्वरूप उत्पादन का पैमाना बढ़ता है। इसके कारण श्रम विभाजन तथा विशिष्टीकरण का क्षेत्र विस्तृत हो जाता है। इसके फलस्वरूप उत्पादन लागत घटती है *तथा वस्तु की कीमत घट जाती है। यह भी अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का ही लाभ है।*

■ 4. व्यापार के लाभ का माप (Measurement of the Gains From Trade)

व्यापार के लाभ के माप करने से सम्बन्धित दो मुख्य सिद्धान्त हैं:

(1) **परम्परावादी सिद्धान्त** (Classical Theory)

(2) **आधुनिक सिद्धान्त** (Modern Theory)।

■ 4.1 परम्परावादी सिद्धान्त (Classical theory)

जैकब वाइनर (Jacob Viner) के अनुसार व्यापार से लाभ को मापने के लिये परम्परावादी अर्थशास्त्रियों ने निम्नलिखित तीन तरीके अपनाये थे:

(i) **तुलनात्मक लागत विधि या रिकार्डो का सिद्धान्त** (Comparative Cost or Ricardo's Approach): तुलनात्मक लागत विधि के अनुसार कुल वास्तविक लागत को कम करना ही लाभ का आधार माना गया है जिस पर कि एक निश्चित आय प्राप्त की जा सकती है। इस सम्बन्ध में रिकार्डो का मत है कि विशिष्टीकरण तथा श्रम विभाजन के फलस्वरूप साधनों के उपयोग में बचत की जा सकती है। इसके फलस्वरूप व्यापार दो प्रकार से लाभों में वृद्धि करता है (a) इससे सामान्य उपभोग की वस्तुओं में वृद्धि

होती है। (b) इससे आय प्राप्त करने के साधनों के योग में वृद्धि होती है। रिकार्डो के तुलनात्मक लागत सिद्धान्त के अनुसार कोई देश उन वस्तुओं का निर्यात करेगा जिनमें उसकी तुलनात्मक लागतें कम होगी तथा उन वस्तुओं का आयात करेगा जिनकी तुलनात्मक लागतें अधिक होगी। इस प्रकार देश साधनों के उपभोग में बचत करता है। इसके फलस्वरूप उसे साधनों की दी हुई मात्रा के बदले में अधिक आय प्राप्त होती है। इसके विपरीत यदि वह प्रत्येक वस्तु का उत्पादन स्वयं करता है तो उसे साधनों की दी हुई मात्रा के बदले में अपेक्षाकृत कम आय प्राप्त होगी। इस प्रकार उसे व्यापार से जो लाभ प्राप्त होगा उसे चित्र 1 द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है:

चित्र 1 में OX अक्ष पर X वस्तु तथा OY अक्ष पर Y वस्तु प्रकट की गई है। मान लीजिये व्यापार की स्थिति में PM **उत्पादन सम्भावना वक्र** (Production Possibility Curve) है जो श्रम की दी हुई मात्रा पर X वस्तु तथा Y वस्तु के विभिन्न संयोगों को प्रकट कर रही है। वक्र PM पर देश बिन्दु E पर सन्तुलन की अवस्था में है। व्यापार में शामिल होने के बाद उत्पादन सम्भावना वक्र ऊपर की ओर खिसक कर QM हो जाती है। QM रेखा का ढलान उस देश के अन्तर्राष्ट्रीय कीमत अनुपात को प्रकट करता है। मान लीजिये यह देश LN रेखा के F बिन्दु पर सन्तुलन में है। यदि वह देश बिन्दु F से प्रकट किये गये X वस्तु तथा Y वस्तु का देश में ही उत्पादन करता है तो श्रम की मात्रा को इतना बढ़ाना पड़ेगा कि घरेलू उत्पादन सम्भावना वक्र PM से सरक कर LN हो जायेगी। इस प्रकार व्यापार से होने वाले लाभ की मात्रा को $\frac{MN}{OM}$ द्वारा मापा जायेगा।

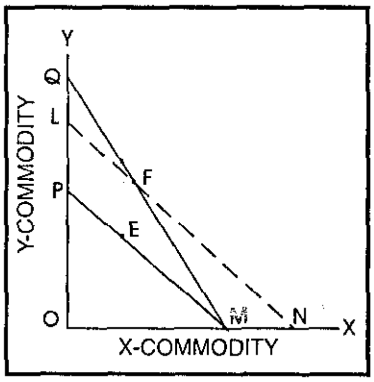

चित्र 1

आलोचनाएं (Criticisms): व्यापार से लाभ के तुलनात्मक लागत या रिकार्डो के सिद्धान्त की मुख्य आलोचनाएं की जाती हैं:

(a) **माल्थस** के अनुसार रिकार्डो ने लाभ का अनुमान आवश्यकता से अधिक लगाया है। रिकार्डो का सिद्धान्त वहां लागू नहीं होता जहां आयातित वस्तुओं को अपने देश में पैदा नहीं किया जा सकता या उन्हें केवल ऊंची कीमतों पर ही पैदा किया जा सकता है।

(b) **मिल** के अनुसार रिकार्डो के सिद्धान्त से यह तो ज्ञात होता है कि व्यापार क्यों किया जाता है परन्तु यह ज्ञात नहीं होता कि व्यापार से कितना लाभ मिलता है तथा उसका बंटवारा विभिन्न देशों में किस प्रकार किया जाता है?

(ii) **व्यापार की शर्तें या मिल का सिद्धान्त** (Terms of Trade or Mill's Approach): मिल के अनुसार पारस्परिक मांग (Reciprocal Demand) व्यापार की शर्तों को निर्धारित करती है जिनसे प्रत्येक देश के लाभ का निर्धारण होता है। व्यापार की शर्तें शब्द दो देशों के बीच वस्तु विनिमय की शर्तों को बताता है अर्थात् किसी देश के निर्यातों की दी हुई मात्रा के लिये आयातों की मात्रा के अनुपात को प्रकट करता है। लाभ की गणना **पारस्परिक मांग** के आधार पर की जा सकेगी अर्थात् दो परस्पर व्यापार कर रहे देशों की उनके अपने उत्पादन के रूप में एक-दूसरे के उत्पादन की मांग की सापेक्ष शक्ति और लोच पर वस्तु विनिमय अनुपात तथा लाभ की मात्रा निर्भर करेगी।

आलोचना (Criticisms): **जेवन्स** (Jevons) ने मिल की धारणा की आलोचना की है। उनके अनुसार वस्तु विनिमय की व्यापार की शर्तें व्यापार के लाभ की गणना करने का पर्याप्त आधार नहीं है। इसका कारण यह है कि लाभ की कुल मात्रा **कुल उपयोगिता** (Total Utility) पर निर्भर करती है जबकि वस्तु विनिमय व्यापार की शर्तों का सम्बन्ध **सीमान्त उपयोगिता** (Marginal Utility) से है। **जेवन्स** का यह मत था कि लाभ की गणना इस आधार पर करनी चाहिये कि निर्यात की गई वस्तुओं में परित्याग की गई उपयोगिता की तुलना में आयात की गई वस्तुओं से कुल कितनी उपयोगिता प्राप्त होती है।

(iii) वास्तविक आय में वृद्धि विधि (Increase in Real Income Approach): व्यापार से लाभ की गणना का एक आधार यह भी है कि व्यापार न होने की स्थिति में एक देश को सापेक्षिक रूप से वास्तविक आय में कमी तथा लागत में वृद्धि के रूप के फलस्वरूप कितना नुकसान होगा। यदि वस्तुओं को विदेशों से आयात करके उपभोग करने की अपेक्षा उनका देश में ही उत्पादन तथा

उपभोग किया जाये तो अपेक्षाकृत जितना नुकसान होगा वह ही अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लाभ की गणना का आधार होगा। इस विधि के द्वारा की गई गणना से लाभ की मात्रा का जो अनुमान लगाया जायेगा वह **व्यापार से अधिकतम लाभ** (Maximum Gain From Trade) होगा। इसके विपरीत यदि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से प्राप्त वस्तुओं का उपभोग उसी अनुपात में किया जाएगा जिस अनुपात में उन्हें देश में उत्पादित कर उपभोग किया जाता है तो जो आय में वृद्धि होगी वह **व्यापार का न्यूनतम लाभ** (Minimum Gain From Trade) होगा। व्यापार से वास्तविक लाभ इन्हीं अधिकतम तथा न्यूनतम सीमाओं के बीच होता है।

■ 4.2 आधुनिक सिद्धान्त (Modern Theory)

व्यापार के लाभ (Gains from Trade) के आधुनिक सिद्धान्त का प्रतिपादन **मार्शल, सेम्युअलसन, केम्प** तथा **हैबरलर** आदि अर्थशास्त्रियों ने किया है।

मार्शल ने अपनी पुस्तक 'Money, Credit and Commerce' में **उपभोक्ता की बचत** (Consumer's Surplus) के सिद्धान्त का प्रयोग करते हुये व्यापार के **वास्तविक लाभ** (Net Gain from Trade) का विवेचन किया है। **मार्शल** के अनुसार, **व्यापार से लाभ की गणना आयात की अनुमानित उपयोगिता तथा निर्यात की अनुमानित अनुपयोगिता** (Expected Disutility) के अन्तर द्वारा की जाती है।

सेम्युअलसन के विचार (Views of Samuelson): 1939 में प्रकाशित अपने प्रसिद्ध लेख 'The Gains From International Trade' में **प्रो. सेम्युअलसन** ने स्पष्ट किया कि आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था की तुलना में कोई भी देश अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से जुड़ कर लाभ प्राप्त कर सकता है। सेम्युअलसन की यह विचारधारा निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है:

(i) अर्थव्यवस्था पूर्ण प्रतियोगिता पर आधारित है।

(ii) उत्पादन फलन विशेषकर तकनीकी स्तर अपरिवर्तनशील रहता है।

(iii) स्थिर पैमाने के प्रतिफल लागू होते हैं।

(vi) आगतों (Inputs) की कीमतें उनकी पूर्ति को प्रभावित करती हैं।

(v) देश का आकार बहुत छोटा है और वह विश्व बाजार की कीमतों को प्रभावित करने की स्थिति में नहीं होता।

प्रो. सेम्युअलसन ने 1962 में प्रकाशित अपने ही लेख 'The Gains From International Trade Once Again' में पूर्व मान्यता (छोटे देश की मान्यता) का परित्याग करके बड़े देश को अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से मिलने वाले लाभ का विवेचन किया और साथ ही यह स्पष्ट किया कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से देश के कल्याण में वृद्धि होती है क्योंकि जब कोई बड़ा देश अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से जुड़ता है तब उसकी व्यावसायिक क्रियाओं का विस्तार होता है जिसके परिणामस्वरूप उसके आयात महंगे तथा निर्यात सस्ते हो जाते हैं।

केम्प (M.C. Camp) ने अपनी पुस्तक "A Pure Theory of International Trade" में **सेम्युअलसन** के सिद्धान्त की अधिक सामान्य एवम् श्रेष्ठ व्याख्या की है। उन्होंने सेम्युअलसन के सिद्धान्त का विस्तार कर यह स्पष्ट किया है कि प्रत्येक देश के लिये **क्षतिपूर्ति वाला सीमित व्यापार** (Compensated Restricted Trade) भी आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था से श्रेष्ठ है।

हैबरलर (Haberler) ने सेम्युअलसन के प्रमाण का प्रयोग करते हुये निम्नलिखित रेखाचित्र की सहायता से स्पष्ट किया है कि विदेशी व्यापार से राष्ट्रीय आय तथा आर्थिक कल्याण में वृद्धि होती है।

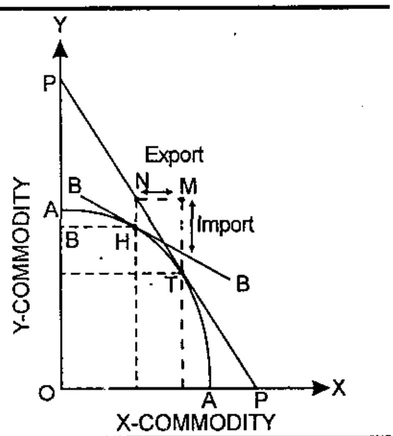

चित्र 2

चित्र 2 से स्पष्ट होता है कि A A देश का **उत्पादन सम्भावना वक्र** (Production Possibility curve) है। व्यापार के पहले की स्थिति में H उत्पादन उपभोग का सन्तुलन बिन्दु है तथा B B का ढलान व्यापार के पहले X

और Y दोनों वस्तुओं के कीमत अनुपात को दिखाता है। व्यापार होने के बाद कीमत अनुपात P P रेखा द्वारा दिखाया गया है। नयी कीमत रेखा पर उत्पादन सन्तुलन बिन्दु T है तथा उपभोग बिन्दु N है। N बिन्दु पर देश X वस्तु की NM मात्रा का निर्यात करता है और Y वस्तु की MT मात्रा का आयात करता है।

तटस्थता वक्र द्वारा यह सिद्ध किया जा सकता है N बिन्दु H बिन्दु की तुलना में श्रेष्ठ है। चूंकि N को स्पर्श करती हुई तटस्थता वक्र H की तुलना में ऊंची होगी, अतः यह कहा जा सकता है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से लाभ होता है।

■ 4.3 ओहलिन की विचारधारा (Ohlin's Views)

आधुनिक आर्थिक विश्लेषण में **प्रो. ओहलिन** का यह कहना है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से मिलने वाले कुल लाभ (Total Gain) अथवा व्यापार करने वाले देशों के बीच इसके (लाभ) विभाजन की व्याख्या करना उचित नहीं है। व्यापार से अन्ततः साधनों की कीमतों में समानीकरण (Equalisation) हो जाता है, इसलिए अन्तर्राष्ट्रीय विशिष्टीकरण से प्राप्त होने वाला लाभ सामान्यतः समाप्त हो जाता है। इसके अतिरिक्त आज के गत्यात्मक संसार में अपरिवर्तनशील स्थितियों की मान्यता पर व्यापार से लाभ का कोई भी विश्लेषण करना निरर्थक है। जब व्यापार व्यापारिक देशों में कई सुधारवादी परिवर्तन (Radical Changes) लाता है जैसे मांग के प्रतिमान (Pattern) में परिवर्तन, नई वस्तुओं का समावेश, नई विधियाँ, नई वस्तुएं, नए क्षेत्रों में नए उत्पादन साधन, तब इसके कारण कुल लाभ (Total Gain) का आधार ही समाप्त हो जाता है।

परन्तु ओहलिन का यह कहना है कि व्यापार में थोड़े बहुत परिवर्तन के कारण लाभ की धारणा का उत्पादन के सूचकांक में वृद्धि करने में महत्त्व अवश्य है। ऐसा सूचकांक जो मांग प्रतिमान तथा आय के वितरण में कोई परिवर्तन नहीं लाता परन्तु देश की आर्थिक अवस्था में सुधार अवश्य लाता है, स्पष्ट रूप से लाभ के आकार को व्यक्त करता है।

■ 4.4 व्यापार से लाभ तथा आय वितरण

(The Gains from Trade and the Income Distribution)

व्यापार के लाभ से होने वाला आय वितरण मुख्यतया **'व्यापार की शर्तों' पर निर्भर करता है। व्यापार की शर्तों से अभिप्राय उस दर से है जिस पर एक देश की वस्तु का दूसरे देश की वस्तु से विनिमय होता है। इससे अभिप्राय व्यापार की वस्तु विनिमय शर्तों/दरों से है जिसको जे. एस. मिल** ने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से मिलने वाले लाभों का निर्धारण करने एवं लाभों के वितरण के लिए प्रयोग किया था। वह देश जिसके लिए व्यापार की शर्तें अनुकूल हैं वह अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से अधिक लाभ प्राप्त करेगा और उसके सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP) में वृद्धि भी होगी। इसलिए यदि अन्य बातें समान रहें, तो GNP जितना अधिक होगा, आय वितरण उतना ही अधिक अनुकूल होगा। इसके विपरीत ऐसा देश जिसकी व्यापार की शर्तें अनुकूल नहीं हैं, उसे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से लाभ भी कम प्राप्त होगा, इसलिए उस देश के सकल राष्ट्रीय उत्पाद में वृद्धि भी कम होगी। इसके फलस्वरूप आय वितरण कम मात्रा में होगा। इस संदर्भ में अल्पविकसित देश, व्यापार शर्तों के अनुकूल न होने के कारण, विकसित देशों की तुलना में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लाभों से अधिक लाभान्वित नहीं होंगे।

यह एक सामान्य तथ्य है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के फलस्वरूप एक देश की स्थिति पहले से बेहतर हो जाती है। परन्तु यह आवश्यक नहीं कि इसके फलस्वरूप उस देश के सभी नागरिकों की स्थिति भी पहले से बेहतर हो जाए। इस समस्या के हल के लिए निम्नलिखित बाक्स रेखा चित्र 3 (Box Diagram) और उत्पादन संभावना वक्र का प्रयोग किया गया है।

चित्र 3 (b) में RR देश की उत्पादन संभावन वक्र है, जो चित्र (a) के बाक्स रेखाचित्र की सहायता से खींची गई है। व्यापार से पहले, देश उत्पादन संभावना वक्र RR के S′ बिन्दु पर उत्पादन तथा उपभोग करता है। व्यापार से पहले सापेक्ष वस्तु कीमतें P_0P_0 रेखा द्वारा व्यक्त की गई हैं, यह P_0P_0 रेखा उत्पादन संभावना वक्र RR को S′ पर छू रही है अर्थात् उसका Tangent है। बाक्स रेखाचित्र 3(a) में सम्पर्क रेखा (Contract Curve) जो बिन्दु S′ को व्यक्त कर रहा है, वह S है।

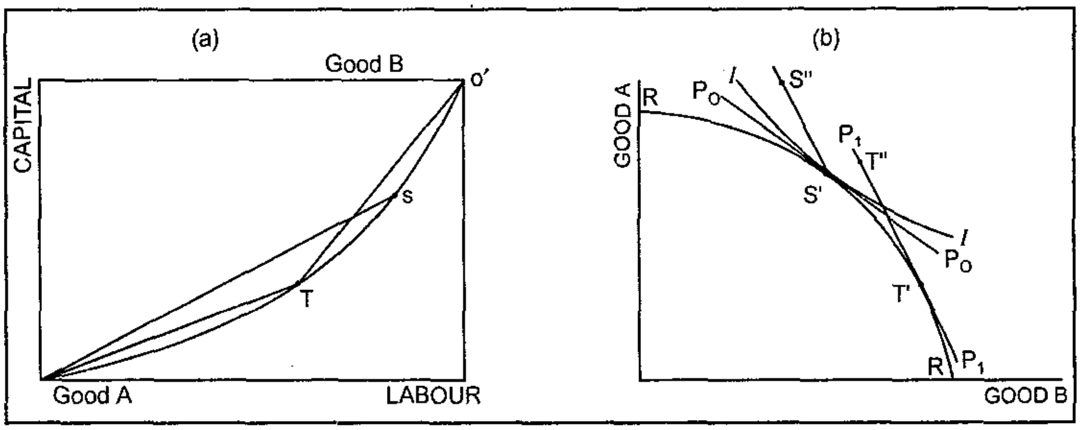

चित्र 3

व्यापार के शुरू हो जाने से व्यापार की नई शर्तों को रेखा P_1P_1 व्यक्त कर रही है। चूंकि अब वस्तु B अधिक महंगी हो जाती है, इसलिए देश B वस्तु का उत्पादन अधिक करता है अर्थात् वह उत्पादन संभावना वक्र RR पर T' बिन्दु पर सरक जाता है, इस T' बिन्दु पर P_1P_1 रेखा उत्पादन संभावना वक्र को छू रहा है इसी प्रकार यदि देश व्यापार के कारण बिन्दु T" पर पहुंच जाता है तो T" पर पहुंच जाने से देश की स्थिति व्यापार के कारण पहले से अच्छी हो जाती है।

साधन कीमतों का व्यापार पर प्रभाव (The Implication of Trade on Factor Prices): इसके लिए सम्पर्क रेखा पर बिन्दु S तथा बिन्दु T की तुलना करनी होगी। यह सरलता से स्पष्ट हो जाता है कि बिन्दु S की तुलना में बिन्दु T पर दोनों उद्योगों में उत्पादन अधिक श्रम प्रधान (Labour Intensive) है। इसका अर्थ यह है कि बिन्दु S की तुलना में बिन्दु T पर मजदूरी दरें कम और पूंजी से प्राप्त प्रतिफल अधिक है। इसलिए यहाँ आय वितरण श्रम की तुलना में पूंजी के स्वामियों के लिए अधिक अनुकूल होगा। इससे यह प्रकट होता है कि पूंजी के स्वामियों (Owners of Capital) को सामान्य रूप में श्रमिकों की तुलना में स्वतन्त्र व्यापार से अधिक लाभ प्राप्त होगा। इसलिए स्वतन्त्र व्यापार की नीति के साथ-साथ ऐसे उपाय भी सोचे जाने चाहिएं कि जिनसे आय का पुनर्वितरण हो और प्रत्येक की स्थिति पहले से अच्छी हो जाए।

परन्तु पूंजी के स्वामी (Capital Owners) यदि उन व्यक्तियों की क्षतिपूर्ति करने के लिए तैयार नहीं, जिनको कि व्यापार से हानि हुई है या जिनकी आय कम हो गई है, तब भी सम्पूर्ण समाज की दृष्टि से व्यापार की यह स्थिति लाभदायक है। इस स्थिति को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है। श्रमिक उद्योग A को छोड़कर उद्योग B में जाने के लिए तैयार नहीं होंगे परन्तु चूंकि कीमत रेखा S'S" (जो P_1P_1 के समानान्तर है) हो जाएगी। इसलिए बिन्दु S' पर उत्पादन करेगा और S" पर उपभोग करेगा, S" बिन्दु तटस्थता वक्र II के दाईं ओर है। उपभोग के स्तर में इस खिसकाव (*Shift*) से देश की स्थिति निश्चित रूप में पहले से बेहतर हो जाएगी। इससे प्रकट होता है कि प्रतिबंधित व्यापार (Restricted Trade) न-व्यापार करने (No Trade) की तुलना में बेहतर है। परन्तु स्वतन्त्र व्यापार की तुलना में प्रतिबंधित व्यापार संभावित रूप से कम लाभदायक है।

■ 4.5 बड़े और छोटे देशों को व्यापार से लाभ

(The Gains from Trade in the Case of Large and Small Country)

यदि देश के आकार को लिया जाए, तो **बड़े देश के मुकाबले छोटे देश को व्यापार से अपेक्षाकृत अधिक लाभ होते हैं।** छोटे देश के पास बहुत विविध संसाधन नहीं होते और उसके घरेलू बाजार का आकार भी सीमित होता है। इसलिए घरेलू विशिष्टीकरण और विनिमय के लाभ सीमित ही होते हैं। इसके विपरीत किसी विशाल देश के पास बहुत विविध संसाधन होते हैं और उसका घरेलू बाजार भी बड़ा होता है, इसलिए वह देश के भीतर ही विशिष्टीकरण और विनिमय के लाभ प्राप्त कर लेता है।

जब अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार शुरू होता है तो छोटा देश उन वस्तुओं के उत्पादन में विशिष्टीकरण प्राप्त करता है जिनमें उसे अधिक तुलनात्मक लाभ होता है, और वह विश्व के बाजार में अपने उत्पादों का विनिमय करता है। घरेलू बाजार की कीमतों से विश्व बाजार की कीमतें जितनी अधिक भिन्न होंगी, छोटा देश उतने ही अधिक लाभ प्राप्त कर सकेगा। हैलर (Heller) ने स्पष्ट किया है कि यदि यह मान

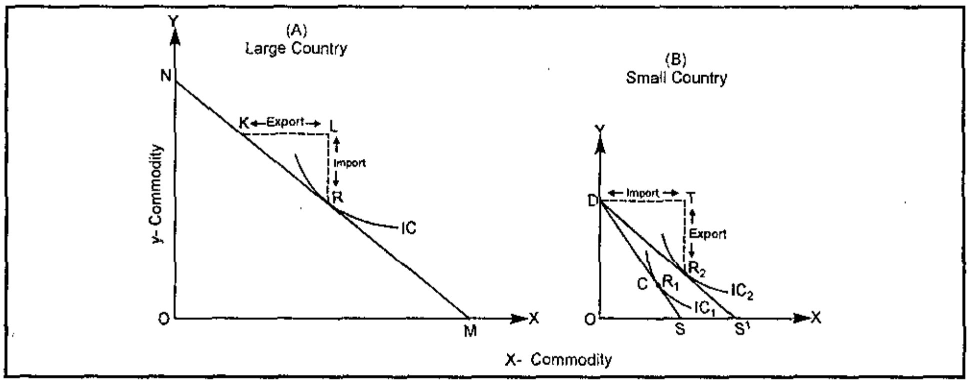

चित्र न० 4

लिया जाए कि अवसर लागत (Opportunity Cost) स्थिर रहती है और बड़े देश की व्यापार शर्तों में कोई परिवर्तन नहीं होता। इस स्थिति को चित्र 4 (A) तथा (B) में स्पष्ट किया गया है। चित्र 4 (A) में बड़े देश का उत्पादन संभावना वक्र NM है। व्यापार न होने की स्थिति में देश A बिन्दु R पर उत्पादन तथा उपभोग करता है, जहां पर सामुदायिक तटस्थता वक्र (Community Indifference Curve) इस देश की उत्पादन संभावना वक्र NM को स्पर्श करता है। इसी प्रकार छोटा देश भी बिन्दु R_1 पर उत्पादन तथा उपभोग करता है जहां सामुदायिक तटस्थता वक्र IC_1 इसके उत्पादन संभावना वक्र DS को स्पर्श करता है। जैसा कि चित्र 4 (B) में दिखाया गया है। क्योंकि देश A एक बड़ा देश है, इसलिए NM वक्र द्वारा व्यक्त किए गए घरेलू कीमत अनुपात को अन्तर्राष्ट्रीय कीमत अनुपात मान लिया गया है। अब मान लो कि छोटे देश B के मामले में यह संभावना प्रस्तुत होती है कि वह NM के समानान्तर DS_1 वक्र द्वारा व्यक्त अन्तर्राष्ट्रीय कीमत अनुपात पर अपनी वस्तु का विनिमय करे। उसे लाभ तभी होगा जब वह केवल Y-वस्तु के उत्पादन में विशिष्टता (Specialisation) प्राप्त करे और बिन्दु D पर उत्पादन करे। चित्र 4 (B) में यह सामुदायिक तटस्थता वक्र IC_2 के बिन्दु R_2 पर x-वस्तु का उपभोग भी बढ़ा देता है। चूंकि बड़े देश के कीमत अनुपात (व्यापार-शर्तों) में कोई परिवर्तन नहीं होता, इसलिए यह देश केवल अपने उत्पादन ढांचे में परिवर्तन करता है ताकि छोटे देश की व्यापार आवश्यकताओं को पूरा कर सके। इसलिए यह बिन्दु K पर चला जाता है। छोटा देश बड़े देश को Y-वस्तु की TR_2 मात्रा का निर्यात करेगा, जिसे चित्र 4 (A) में बड़े देश के LR आयातों के रूप में दिखाया गया है और बड़े देश से X-वस्तु की TD मात्रा आयात करेगा जिसे बड़े देश के LK निर्यातों के रूप में दिखाया गया है।

इस प्रकार छोटे देश को बड़े देश से व्यापार करने से विशिष्टीकरण और विनिमय दोनों से लाभ हुआ है, जबकि बड़े देश को बिल्कुल कोई लाभ नहीं हुआ। एच.आर.हैलर **(H.R. Heller)** के अनुसार, **"बढ़ती हुई अवसर लागत और विभिन्न मांग ढांचों के अन्तर्गत संभावना यह है कि व्यापार की अन्तर्राष्ट्रीय शर्तों में नया सन्तुलन स्थापित होगा जो दोनों देशों में पाए जाने वाले घरेलू व्यापार-पूर्व कीमत अनुपातों के बीच कहीं होगा। उस स्थिति में व्यापार से दोनों देशों को लाभ होगा और प्रत्येक देश को होने वाले लाभों का अनुपात इस बात पर निर्भर करेगा कि व्यापार की अन्तर्राष्ट्रीय शर्तों में व्यापार-पूर्व कीमत अनुपातों से कितना परिवर्तन हुआ है। सम्भावनाएं ये हैं कि ये कीमत परिवर्तन छोटे देश में अधिक स्पष्ट होंगे और इसलिए अधिकांश लाभ छोटे देश के निवासियों को प्राप्त होंगे।"**

5. लाभ की मात्रा को निर्धारित करने वाले तत्त्व (Factors Affecting Gains from Trade)

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से प्राप्त होने वाले लाभ पर निम्नलिखित तत्त्वों का प्रभाव पड़ता है:

(1) लागत अनुपातों में अन्तर (Difference in Cost Ratios): हैरड (Harrod) के अनुसार व्यापार से होने वाला लाभ व्यापार करने वाले देशों के तुलनात्मक लागत अनुपातों के अन्तर पर निर्भर करता है। दो देशों में लागत के अनुपात में जितना अधिक अन्तर होगा। व्यापार से लाभ भी उतना ही अधिक होगा। हैरड के अनुसार, **''लाभ के कारण जब व्यापार का विस्तार किया जाता है तो एक ऐसी स्थिति आएगी जब एक देश में अनुपात लागत, दूसरे देश के बराबर हो जाएगी। एक देश को विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन में विस्तार और संकुचन उस समय तक करना चाहिए जब तक उस देश के लागत-अनुपात विदेश के लागत-अनुपात के बराबर नहीं हो जाते।''**

(2) देश की उत्पादन क्षमता (Production Capacity of the Country): व्यापार से होने वाले लाभ पर देश की उत्पादन क्षमता का भी प्रभाव पड़ता है। यदि एक देश की उत्पादन क्षमता बढ़ती है तो इससे दूसरे देश को लाभ होगा क्योंकि इससे दूसरे देश के लिये व्यापार की शर्तें अधिक अनुकूल हो जायेंगी। इसके विपरीत यदि देश की उत्पादन क्षमता घटती है तो प्रतिकूल व्यापार की शर्तों के माध्यम से दूसरे देश को हानि होगी। उत्पादन क्षमता बढ़ने से दूसरे देश के लिये व्यापार की शर्तें इसलिये अनुकूल हो जाती हैं क्योंकि पहले देश में लागत तथा कीमतों में कमी होती है। इसके फलस्वरूप व्यापार का विस्तार होता है जिससे दूसरे देश को लाभ होता है।

(3) व्यापार की शर्तें (Terms of Trade): व्यापार की शर्तें भी व्यापार से लाभों को प्रभावित करती हैं। व्यापार की शर्तों से अभिप्राय उस दर से है जिसके अनुसार एक देश की वस्तुओं का दूसरे देश की वस्तुओं से विनिमय होता है। व्यापार की शर्तें निर्यात कीमतों तथा आयात कीमतों में सम्बन्ध व्यक्त करती हैं। देश के व्यापार की शर्तों में सुधार होने का अर्थ है कि व्यापार से लाभ में वृद्धि होगी। इसके विपरीत व्यापार की शर्तों के प्रतिकूल होने पर व्यापार से लाभ में कमी होती है।

(4) पारस्परिक मांग (Reciprocal Demand): मिल के अनुसार पारस्परिक मांग का भी व्यापार से लाभ पर प्रभाव पड़ता है। एक देश में दूसरे देश के उत्पादन की मांग जितनी अधिक बेलोचदार होगी, पहले देश के लिये व्यापार की शर्तें प्रतिकूल होंगी अर्थात् उसे व्यापार से कम लाभ प्राप्त होंगे। इसके विपरीत मांग लोचदार होने पर व्यापार की शर्तें अनुकूल होंगी अर्थात् व्यापार से लाभ अधिक होंगे। टाजिग (Taussig) के अनुसार, **''व्यापार से उस देश को सबसे अधिक लाभ होता है जिसकी वस्तुओं की मांग विदेशों में अधिक होती है तथा स्वयं उसकी विदेशी वस्तुओं की मांग कम होती है।''** पूर्ति की लोच का भी व्यापार से लाभ पर प्रभाव पड़ता है। यदि किसी देश से निर्यात की जाने वाली वस्तुओं की पूर्ति लोचदार है तो व्यापार की शर्तें उसके लिये अनुकूल होंगी अर्थात् व्यापार से लाभ अधिक होंगे। इसके विपरीत वह देश जिन वस्तुओं का आयात करता है यदि उनकी विदेशों में पूर्ति बेलोचदार है तो देश में व्यापार की शर्तें उसके अनुकूल होंगी अर्थात् व्यापार से लाभ अधिक होंगे। इनसे विपरीत स्थितियों में व्यापार से लाभ कम होंगे।

(5) देश का आकार (Size of the Country): अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से छोटे देशों को बड़े देशों की तुलना में अधिक लाभ होगा इसका कारण यह है कि छोटे देश विश्व बाजार में अपने विनिमय अनुपात में परिवर्तन किये बिना किसी एक वस्तु के उत्पादन में विशिष्टीकरण कर सकते हैं। इसके विपरीत यदि एक बड़ा देश एक वस्तु के उत्पादन में विशिष्टीकरण करेगा तो उस वस्तु की पूर्ति बहुत अधिक बढ़ जायेगी। इसके फलस्वरूप उसकी कीमत कम हो जायेगी तथा व्यापार से लाभ कम हो जायेंगे।

(6) व्यापार की सुविधायें (Facilities for Trade): व्यापार से लाभ पर व्यापार के लिये प्राप्त होने वाली सुविधाओं का भी प्रभाव पड़ता है। यदि व्यापार की सुविधायें अधिक हैं जैसे परिवहन लागत कम है तो वस्तुओं की बिक्री में कोई कठिनाई नहीं होगी, व्यापार से लाभ में वृद्धि होगी। कुशल बिक्री कला के कारण भी व्यापार से लाभ बढ़ते हैं।

(7) विदेशी व्यापार की मात्रा (Volume of Trade): व्यापार से लाभ पर व्यापार की मात्रा का भी प्रभाव पड़ता है। विदेशी व्यापार की मात्रा जितनी अधिक होगी व्यापार से लाभ भी उतना ही अधिक होगा। मिल (Mill) के अनुसार यदि कोई देश किसी ऐसी वस्तु का भारी मात्रा में उत्पादन करता है जिसकी विदेशों में अधिक मांग है तथा केवल उसका ही निर्यात करके वह अपने समस्त आयातों की व्यवस्था कर सकता है तो व्यापार से उसे अधिक लाभ होंगे।

(8) परिवहन लागत (Transport Cost): अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से मिलने वाला लाभ परिवहन लागत से भी प्रभावित होता है। परिवहन लागत में कमी होने पर विदेश व्यापार का क्षेत्र विस्तृत हो जाता है और साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से प्राप्त होने वाला लाभ भी अधिक हो जाता है। इसके विपरीत परिवहन लागत बढ़ जाने पर विदेशी व्यापार का क्षेत्र सीमित हो जाता है और विदेशी व्यापार से मिलने वाला लाभ भी घट जाता है।

संक्षेप में प्रत्येक देश व्यापार से लाभ बढाने के लिये प्रयत्नशील रहता है। व्यापार से लाभ विशिष्टीकरण तथा श्रम विभाजन के परिणामस्वरूप प्राप्त होते हैं।

■ 6. संभावित एवं वास्तविक लाभ में समानता (Equalisation of Potential and Actual Gain)

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से होने वाले संभावित लाभ की मात्रा का निर्धारण लागत अनुपातों (Cost Ratios) के अन्तर से होता है। जब दो देशों के बीच स्वतंत्र व्यापार होता है तथा प्रशुल्क (Customs) जैसी कोई बाधाएं नहीं होतीं तब अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का प्रभाव यह होगा कि दो देशों के लागत अनुपातों में समानता (Equality) स्थापित होने की प्रवृत्ति होगी तथा इस पर केवल परिवहन लागत का ही प्रभाव पड़ेगा। इसके विपरीत, यदि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में बाधा उपस्थित होती है तो वस्तुओं की कीमतों एवं लागत अनुपातों में समानता नहीं होगी तथा कीमतें ऊंची होंगी।

यदि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार स्वतंत्र है तो एक देश के लिए उस सीमा तक विशिष्टीकरण करना लाभदायक होगा जहां उसकी कीमतें, विश्व बाजार की कीमतों के बराबर हो जाती हैं तथा इसी सीमा पर उसका लाभ अधिकतम होगा। अत: स्वतंत्र व्यापार, लाभ अधिकतम करने की पूर्व शर्त है।

हैरोड (Harrod) के अनुसार व्यापार से लाभ अधिकतम करने के लिए निम्नलिखित तीन शर्तों का पूरा होना आवश्यक है:

(i) व्यापार में पूर्ण स्वतंत्रता होनी चाहिए ताकि वस्तुओं की कीमतों में देश तथा विदेश में समानता स्थापित हो सके।

(ii) विभिन्न व्यवसायों में उत्पादन के साधनों का पुरस्कार एक समान होना चाहिए। अन्य शब्दों में यह कहा जा सकता है कि उत्पादन के साधनों में पूर्ण प्रतियोगिता होनी चाहिए तथा उनका विभिन्न व्यवसायों में इस प्रकार वितरण होना चाहिए कि बिना उत्पादन को कम किए, उनका एक व्यवसाय से अन्य व्यवसाय में स्थानान्तरण संभव न हो। इस प्रकार साधनों की कीमत उनकी सीमान्त उत्पादकता के बराबर होगी।

(iii) उत्पादकों को अपनी वस्तुओं का उत्पादन बढ़ा कर उस सीमा तक ले जाना चाहिए जहां वस्तुओं की मौद्रिक लागत उनकी कीमतों के बराबर हो जाती है।

उपरोक्त शर्तों के अन्तर्गत ही, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से लाभ अधिकतम हो सकता है और वास्तविक लाभ, संभावित लाभ के, बराबर हो सकता है।

प्रश्न (QUESTIONS)

■ I. वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

सभी प्रश्न अनिवार्य हैं (Attempt all the questions)

1. अन्तर्राष्ट्रीय श्रम विभाजन के फलस्वरूप होने वाले आधिक्य उत्पादन को व्यापार से लाभ कहा जाता है और इसका बंटवारा हो जाता है (व्यापारिक भागीदारों में, गैर-व्यापारिक भागीदारों में)
2. व्यापार से लाभ का एक मुख्य स्रोत है श्रम विभाजन जो आधारित है (तुलनात्मक लागतों पर, समान लागतों पर)
3. मिल के अनुसार अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से लाभ को किस आधार पर आंका जा सकता है (पारस्परिक मांग, पारस्परिक पूर्ति)
4. माल्थस, मिल तथा जेवन्स लाभ को किस दृष्टि से व्यक्त करते हैं (उपभोग, उत्पादन)

5. व्यापार से लाभ प्रभावित होता है (व्यापार की अधिक मात्रा द्वारा, व्यापार की कम मात्रा द्वारा)
6. देश के आकार को देखते हुए व्यापार से लाभ अधिक मात्रा में प्राप्त होते हैं (छोटे देश को, बड़े देश को) (K.U. 2005)

उत्तर (Answer): (1) व्यापारिक भागीदारों में, (2) तुलनात्मक लागतों पर, (3) पारस्परिक मांग, (4) उपभोग, (5) व्यापार की अधिक मात्रा द्वारा, (6) छोटे देश को।

■ II. लघु/परिभाषा रूपी प्रश्न (Short/Definitional Type Questions)

1. व्यापार से लाभ की परिभाषा दें।
2. व्यापार से लाभ के स्रोतों की दो बातें बतलाएं।
3. व्यापार से लाभ के प्रति जे.एस. मिल का क्या दृष्टिकोण है?
4. व्यापार से लाभ के बारे में मार्शल का क्या कहना है?
5. व्यापार से लाभ के बारे में हैबरलर के विचार व्यक्त करें।
6. व्यापार से लाभ को प्रभावित करने वाले दो मुख्य तत्त्व बतलाएं।
7. व्यापार की शर्तों का निर्धारण कैसे होता है? (M.D.U. 2008)
8. व्यापार की शर्तों की संक्षिप्त व्याख्या कीजिए। (M.D.U. 2009)

■ III. निबन्ध रूपी प्रश्न (Essay Type Questions)

1. Discuss Classical and Modern theories of gains from trade.
   व्यापार के लाभ के पंरपरावादी तथा आधुनिक सिद्धांत की विवेचना कीजिए। (K.D.U. 2009)
2. 'Gains from trade is the result of specialisation and division of labour.' Explain this statement.
   'व्यापार से लाभ विशिष्टीकरण तथा श्रम विभाजन का परिणाम है।' इस कथन की व्याख्या करें।
3. What are the main sources of gains from trade?
   व्यापार से लाभ के मुख्य स्रोत कौन-से हैं?
4. Explain the classical theory of the measurement of gains from trade.
   व्यापार से लाभ की धारणा के परम्परावादी सिद्धान्त की व्याख्या करें।
5. Examine the modern theory of the measurement of gains from the trade.
   व्यापार से लाभ की गणना के आधुनिक सिद्धान्त की विवेचना करें।
6. Discuss the factors which govern the gains from Trade.
   व्यापार से लाभ को प्रभावित करने वाले कारकों का वर्णन करें।
7. Give a brief note on equalisation of potential and actual gain from international trade.
   अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से संभावित एवं वास्तविक लाभ में समानता पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखें।
8. Define gains from International trade. Discuss theories of measurement of gains from trade.
   अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लाभ की परिभाषा दीजिए। व्यापार के लाभ को मापने के सिद्धान्तों की विवेचना कीजिए। (K.U. 2008)

Or

Explain the theories for the measurement of gains from international trade.
अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से होने वाले लाभों को मापने के सिद्धांतों की व्याख्या करें। (M.D.U. 2009)

20

विदेशी व्यापार तथा आर्थिक विकास

(FOREIGN TRADE AND ECONOMIC GROWTH)

■ 1. भूमिका (Introduction)

पिछले कुछ वर्षों से अर्थशास्त्रियों की विचारधारा में यह प्रश्न महत्त्वपूर्ण स्थान बनाए हुए है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से प्राप्त लाभों तथा विकास से प्राप्त लाभों के बीच क्या कोई संघर्ष है? देश के विकास में विदेशी व्यापार की क्या **महत्त्वपूर्ण भूमिका** हो सकती है? अथवा इसके विपरीत क्या विदेशी व्यापार के निर्देश त्वरक विकास की जरूरत से मेल नहीं खाते? इस संदर्भ में परम्परावादी तथा नवपरम्परावादी अर्थशास्त्रियों का कहना है कि देश के आर्थिक विकास में विदेशी व्यापार का महत्त्वपूर्ण योगदान हो सकता है। उत्पादक कुशलता प्राप्त करने के लिए व्यापार न केवल सरल रूप में एक उपकरण है बल्कि यह **संवृद्धि का एक इंजन** (Engine of Growth) भी है। अन्य शब्दों में, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार व्यापारिक राष्ट्रों के उच्च कल्याण का मार्गदर्शक है और अधिक विशिष्टीकरण तथा कम लागतों एवं कीमतों के द्वारा उत्पादन तथा उपभोग को प्रोत्साहित करता है।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि कई देशों का आर्थिक विकास बड़े बाजारों और अधिक उत्पादन के कारण निर्यातों में वृद्धि तथा परिणामत: औद्योगिक एवं व्यापारिक क्रान्ति के कारण संभव हुआ है। हाल ही के वर्षों में, **ताईवान** तथा **कोरिया** अथवा तेल पैदा करने वाले मध्य-पूर्व के कुछ देशों को छोड़कर, व्यापार विकास को बढ़ावा देने वाला कोई प्रमुख तन्त्र नहीं था। परन्तु आधारिक विचारार्थ विषय यह है कि निर्यातों द्वारा विकास हो सकता है या विकास द्वारा निर्यात बढ़ सकते हैं और ये दोनों एक दूसरे से सम्बन्धित हैं। सैद्धान्तिक रूप से प्रश्न यह है कि कौन-सी कड़ी इनको जोड़ती है। **आर्थिक विकास किस प्रकार व्यापार को प्रभावित करता है अथवा किस प्रकार यह व्यापार द्वारा प्रभावित होता है,** इस अध्याय में इसी विषय का विवेचन किया जाएगा।

■ 2. व्यापार का आर्थिक विकास पर प्रभाव (Impact of Trade on Economic Growth)

विदेशी व्यापार के आर्थिक विकास पर निम्नलिखित प्रभाव पड़ते हैं:

(i) निर्यात और विकास (Export and Growth): निर्यात आर्थिक विकास के लिए मार्ग खोलता है। किसी देश से होने वाले अधिक निर्यातों के फलस्वरूप आधारिक संरचना, कृषि, उद्योग, बैंकिंग तथा यातायात का विकास होता है। उपभोग तथा पूंजी वस्तुओं का निर्यात वस्तु बाजार तथा साधन बाजार को प्रभावित करता है और इसके द्वारा अर्थव्यवस्था के उत्पादन, रोजगार तथा आय में वृद्धि होती है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का उत्पादकता सिद्धान्त व्यापार को गत्यात्मक बल बतला कर विकास को अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से जोड़ता है, जिससे आगे बाजार के आकार और श्रम विभाजन का विस्तार होता है, मशीनरी के प्रयोग में वृद्धि होती है, नवप्रवर्तनों को प्रोत्साहन मिलता है, तकनीकी अविभाज्यताओं को कम किया जाता है, श्रम की उत्पादकता में वृद्धि होती है और निर्यातकर्ता देश के बढ़ते प्रतिफल तथा आर्थिक विकास के लाभ प्राप्त करने के योग्य हो जाता है। **मिल** (Mill) के अनुसार सभी लाभ **"अप्रत्यक्ष प्रभाव हैं जिन्हें ऊँची अवस्था के लाभ माना जाना चाहिए।"** (These gains are indirect effects which must be counted as benefits of high order – **J.S. Mill**)।

(ii) आयात तथा विकास (Imports and Growth): विदेशी व्यापार के प्रभाव का एक और पक्ष है आयातों द्वारा विकास को प्रेरणा मिलना। दोनों उपभोग तथा पूंजी पदार्थों के आयात भी वस्तु बाजार तथा साधन बाजार को प्रभावित करते हैं और उनके द्वारा देश का व्यय तथा आय विकास प्रभावित होता है। अल्पविकसित देशों में आयात पूंजी निर्माण को प्रोत्साहित करते हैं, इनसे आय तथा

उत्पादन प्रभावित होता है। उपभोग वस्तुओं के आयात से वस्तु बाजार और निवेश वस्तुओं के आयात से साधन बाजार विकसित होता है इससे अधिक उपभोग तथा अधिक निवेश को बल मिलता है, परन्तु यह तब ही संभव हो सकता है जब आयातों को उत्पादक ढंग से प्रयोग किया जाता है और आयात नियन्त्रण अर्थव्यवस्था में क्षमता के प्रयोग अथवा अधिक उत्पादन के संदर्भ में विकास संभावनाओं में प्रवाहित होते हैं।

अतएव यह कहा जा सकता है कि विदेशी व्यापार क्षेत्र द्वारा आय में वृद्धि संभव तथा वास्तविक है चाहे इसे लेखांकन के रूप में (Accounting Sense) में लिया जाए अथवा धारणात्मक रूप (Conceptual Sense) में। **निर्यात और आयात दोनों देश के आर्थिक विकास को प्रोत्साहन देने में तथा आय व रोजगार में वृद्धि लाने के लिए मुख्य भूमिका निभाते हैं।** आज के गत्यात्मक विश्व में, विदेशी क्षेत्र तथा घरेलू क्षेत्र दोनों में अन्तर्व्यवहार (Interaction) चलता है जिसके फलस्वरूप अर्थव्यवस्थाओं की अधिक अंत:निर्भरता, आपसी लाभ तथा चहुंमुखी विकास होता है।

(iii) जुड़ाव- अग्रगामी और पश्चगामी (Linkages - Forward and Backward): व्यापार और विकास के बीच परम्परावादी कड़ी (Traditional Links) को निम्नलिखित संदर्भ में व्यक्त किया जा सकता है: (a) बाजारों का विस्तार अथवा नए बाजारों का खोलना, (b) निर्यात की जाने वाली वस्तुओं का अधिक उत्पादन, तथा (c) उत्पादन के चुने हुए क्षेत्रों में विशिष्टीकरण प्राप्त करना ताकि लागतें, कीमतें आदि कम की जा सकें। इससे उन शक्तियों को बल मिलेगा जिनसे उत्पादन, आय तथा रोजगार में वृद्धि होती है। **प्रो. हिरशमैन** के अनुसार, **वह प्रक्रिया जिसके द्वारा एक वस्तु का उत्पादन अन्य वस्तुओं के उत्पादन को प्रोत्साहित करता है 'जुड़ाव' कहलाता है।** अग्रगामी तथा पश्चगामी दोनों जुड़ाव उत्पादन को प्रोत्साहित करते हैं। अग्रगामी जुड़ाव (Forward Linkage) से वे उद्योग *विकसित होते हैं जो पदार्थ को साधन (Product as Input)* के रूप में प्रयोग करते हैं और ***पश्चगामी जुड़ाव*** (Backward Linkage) से वे उद्योग प्रोत्साहित होते हैं जो उपरोक्त उत्पाद को सहायक या गौण वस्तुओं (Ancillaries) तथा साधन (Inputs) प्रदान करते हैं। इसके अतिरिक्त गुणक प्रक्रिया (Multiplier Process) द्वारा **'प्रदर्शन प्रभाव'** के रूप में विकास की संभावना है। कुछ उद्योगों के विकास से सामान्य रूप से विकास प्रक्रिया प्रोत्साहित होती है और अन्यों के विकास को प्रोत्साहन मिलता है जैसे अल्पविकसित देशों में बागान (Plantations) और मध्य-पूर्व में तेल। ऐसे जुड़ाव देश में उत्पादन, उपभोग तथा वितरण में परिवर्तन लाते हैं।

(iv) राष्ट्रीय आय तथा व्यापार (निर्यात) [National Income and Trade (Exports)]: निर्यात बाजारों के लिए उत्पादन में परिवर्तन द्वारा विदेशी व्यापार राष्ट्रीय आय एवं उत्पाद को प्रभावित करता है। समष्टि रूप में राष्ट्रीय आय समीकरण (Identity) में घरेलू उत्पाद + विदेशों से शुद्ध प्रवाह राष्ट्रीय आय के बराबर होते हैं। खुली अर्थव्यवस्था में

राष्ट्रीय आय (Y) = उपभोग (C) + निवेश (I) + (निर्यात – आयात)

या

$$Y = C + I + (X - M)$$

अगत्यात्मक स्थिति में, आयातों की तुलना में निर्यातों के अधिक होने से विदेशी व्यापार आय में वृद्धि लाएगा, जिससे विदेशी बचतें अधिक होंगी। गत्यात्मक स्थिति में, बचतों के निवेशित होने से देश की आय तथा उत्पादन में और अधिक वृद्धि होगी। आय तथा उत्पादन में यह वृद्धि विदेशी व्यापार गुणक तथा त्वरक पर निर्भर करेगी। अतएव

निवेश = घरेलू बचतें + विदेशी बचतें

$$I = S_d + S_f$$

एक निश्चित अवधि में, निवेश (I) में प्रारम्भिक वृद्धि के फलस्वरूप आय में कई गुणा वृद्धि होती है, आय में कई गुणा वृद्धि न केवल घरेलू निवेश में वृद्धि के कारण बल्कि विदेशी निवेश के कारण भी होती है। इसे **विदेशी व्यापार गुणक** (Foreign Trade Multiplier) कहा जाता है।

•

सामान्य सन्तुलन मॉडल में, हमें आय समीकरण (Income Equation) तथा भुगतान शेष समीकरण (Balance of Payments Equation) दोनों को लेना होता है और फिर इन दोनों के लिए एक साथ (Simultaneous) हल खोजना होता है। भुगतान शेष या व्यापार समीकरण आय में वृद्धि लाएगा, जिससे घरेलू क्षेत्र या देश के भीतर निवेश में अधिक वृद्धि होगी तथा निर्यात (X) भी अधिक होंगे, इसके फलस्वरूप आय पर त्वरक प्रभाव (Accelerator Effect) पड़ेगा। आय समीकरण में गुणक के कार्यकरण के कारण निवेश से आय बढ़ती है। आय में वृद्धि से अधिक निवेश होगा और फिर आगे त्वरक के कार्य करने से आय में और आगे वृद्धि होगी। यहां निवेश आय में वृद्धि का फलन बन गया है (Investment is made a function of increments in income)। गुणक तथा त्वरक दोनों घरेलू अर्थव्यवस्था के लिए विदेशी क्षेत्र के प्रभाव के कारण कार्य करते हैं।

■ 3. व्यापार तथा विकास का एक दूसरे के लिए योगदान
(Contribution of Trade and Growth to Each Other)

अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास के लिए अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के योगदान से सम्बन्धित समस्या अर्थशास्त्र की एक प्राचीन एवं विवादास्पद समस्या है। 16वीं शताब्दी में **वाणिज्यवादी अर्थशास्त्रियों** (Mercantilists), **19वीं शताब्दी में परम्परावादी अर्थशास्त्रियों** तथा **20वीं शताब्दी में नव परम्परावादी अर्थशास्त्रियों** तथा कई आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को आर्थिक विकास के लिए अत्यन्त लाभदायक एवं महत्त्वपूर्ण माना है। प्रो. **हैबरलर** का विचार था कि, "**मेरा यह निष्कर्ष है कि 19वीं शताब्दी में अल्पविकसित देशों के विकास के लिये अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का बहुत ही महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है तथा भविष्य में भी उतने ही महत्त्वपूर्ण योगदान की सम्भावना है।**" (My overall conclusion is that international trade has made a tremendous contribution to the development of less developed countries in the 19th and 20th centuries and can be expected to make an equally well contribution in the future. - **Haberler**)

इस विचारधारा के विपरीत कई अर्थशास्त्रियों जैसे **रायल प्रेबिश** (Raul Prebisch), **मिर्डल** (Myrdal), **नर्कसे** (Nurkse), **सिंगर** आदि के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार **विकसित देशों** (Developed Countries) के लिए तो लाभदायक सिद्ध हुआ ही है परन्तु **अल्पविकसित देशों** (Underdeveloped Countries) के आर्थिक विकास में इसका योगदान महत्त्वपूर्ण नहीं रहा है वरन् इसके फलस्वरूप इन देशों की अर्थव्यवस्थाएं असन्तुलित हो गई हैं।

प्रो. मिर्डल (Myrdal) ने यह विचार व्यक्त किया है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार ने अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करने की बजाए उनमें **दोहरी अर्थव्यवस्था** (Dual Economy) पैदा कर दी है। अल्पविकसित देशों में दोहरी अर्थव्यवस्था उत्पन्न होने के प्रमुख कारण हैं- **एक,** इन देशों की संरचना एवं परिस्थितियों के कारण विकास प्रक्रिया का **प्रतिधावन प्रभाव** (Backwash Effect) उसके **प्रसरण प्रभाव** (Spread Effect) से अधिक शक्तिशाली होता है, जिससे क्षेत्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय असमानताएं बढ़ती हैं; **दूसरे,** इन देशों में भुगतान सन्तुलन के प्रतिकूल होने की प्रवृत्ति पाई जाती है।

प्रो. एम. पी. टोडारो (M.P. Todaro) के अनुसार व्यापार से सम्बन्धित निम्नलिखित पांच समस्याओं के विश्लेषण के पश्चात् ही हम किसी निष्कर्ष पर पहुंच सकते हैं:

(1) अल्पविकसित देशों के विकास की दर, संरचना व प्रकृति (Rate, Structure and Character) को अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार किस प्रकार प्रभावित करता है।

(2) क्या अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार विदेशी एवम् घरेलू समानता तथा असमानता का कारण है? (Is Trade a force for international and domestic equality and inequality?)

(3) वे कौन-सी शर्तें हैं जिनके आधार पर व्यापार, अल्पविकसित देशों के विकास में सहायक हो सकता है।

(4) क्या अल्पविकसित देश स्वयं यह निर्धारित कर सकते हैं कि उनके व्यापार की मात्रा (Volume) कितनी होनी चाहिये।

(5) पुराने अनुभवों एवम् भविष्य को ध्यान में रखते हुए अल्पविकसित देशों को स्वतन्त्र व्यापार या बाहरी दृष्टिकोण (Outward Looking) की नीति अपनानी चाहिये अथवा संरक्षण या आन्तरिक दृष्टिकोण (Inward Looking) की नीति अपनानी चाहिये।

उपरोक्त समस्याओं का विश्लेषण करने से पहले **अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के विकास पर पड़ने** वाले लाभदायक तथा हानिकारक प्रभावों का अध्ययन आवश्यक हो जाता है।

■ 3.1 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के विकास पर लाभदायक प्रभाव

(Beneficial Effects of Trade on Development)

प्रो. डैनिस रोबर्टसन के अनुसार, "**व्यापार विकास का इंजन है।**" (Trade is an Engine of Growth)। व्यापार के विकास पर निम्नलिखित लाभदायक प्रभाव पड़ते हैं:

(1) व्यापार के फलस्वरूप निर्धनता का दुश्चक्र तोड़ने में सहायता मिलती है (Trade Helps in Breaking Vicious Circle of Poverty): अल्पविकसित देशों में निर्धनता का दुश्चक्र पाया जाता है। अर्थात् **आय कम होने के कारण मांग कम होती है तथा मांग कम होने के कारण पूर्ति कम होती है। पूर्ति कम होने से आय कम होती है। व्यापार के कारण अल्पविकसित देश उन वस्तुओं का अधिक निर्माण करने लगते हैं जिनमें उनके अनुसार तुलनात्मक लाभ** (Comparative Advantage) अधिक होते हैं। इसके फलस्वरूप इन देशों में उत्पादन बढ़ जाता है, रोजगार बढ़ता है, लोगों की आय बढ़ती है तथा मांग में वृद्धि होती है। मांग में होने वाली वृद्धि कुछ समय तक घरेलू उत्पादन से तथा बाकी विदेशों से किए गए आयात द्वारा पूरी की जा सकती है। अतएव् वस्तुओं के निर्यात और आयात निर्धनता के दुश्चक्र को तोड़ने में सहायक होते हैं। इस प्रकार विकास की गति को तीव्र करते हैं।

(2) निवेश की प्रेरणा (Inducement to Invest): अल्पविकसित देशों में मांग की कमी तकनीकी सुधारों की कमी तथा सामाजिक ऊपरी लागत (Social Overhead Cost) की कमी के कारण आर्थिक विकास की गति बहुत धीमी होती है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के फलस्वरूप निवेश को प्रोत्साहन मिलता है। निर्यात के लिए विशेष उद्योग स्थापित किये जाते हैं। विदेशी ज्ञान प्राप्त करके अर्थात् विदेशी कम्पनियों की साझेदारी में देश में नए उद्योग स्थापित किए जाते हैं। विदेशी पूंजी तथा तकनीकी की सहायता से देश के आर्थिक विकास के लिए आवश्यक अद्योसंरचना (Infrastructure) जैसे सड़कें, रेलें, बिजली, सिंचाई आदि का उपयुक्त मात्रा में विकास किया जाता है। इनके फलस्वरूप उद्योगपतियों के लाभ की सम्भावनाएं बढ़ती हैं और उन्हें अधिक निवेश करने की प्रेरणा मिलती है।

(3) बाजार के आकार में विस्तार (Expansion in the Extent of the Market): अल्पविकसित देशों का अधिकतर उत्पादन **प्राथमिक वस्तुओं** जैसे रबड़, चाय, कॉफी अथवा खनिज पदार्थों का होता है। इन देशों में प्राथमिक उत्पादन तथा खनिज पदार्थों के बाजार का आकार सीमित होता है। इन देशों में जो थोड़ा बहुत औद्योगिक उत्पादन होता है उसका बाजार सीमित होता है। इसका कारण यह है कि लोगों की आय कम होती है इसलिए उनकी व्यय करने की क्षमता भी कम होती है। व्यापार के कारण इन देशों द्वारा उत्पादित वस्तुओं के बाजार का विस्तार होगा, लोगों की आय में वृद्धि होगी। उनका जीवन स्तर ऊंचा उठ सकेगा तथा आर्थिक विकास की गति तीव्र हो जाएगी। बाजार के आकार में विस्तार होने के कारण उत्पादन में वृद्धि होती है तथा देश को कई बाहरी और आन्तरिक बचतें (External and Internal Economies) प्राप्त होती हैं।

(4) तकनीकी प्रगति (Technical Progress): व्यापार के कारण अल्पविकसित देशों को विकसित देशों की नई तकनीकी नवप्रवर्तनों (Innovations) तथा नए आविष्कारों को प्रयोग करने का अवसर प्राप्त होता है। इसके फलस्वरूप अल्पविकसित देशों में आधारभूत तथा भारी उद्योगों (Basic & Heavy Industries) जैसे: लोहा इस्पात, मशीनें, जहाज आदि की स्थापना से सहायता मिलती है। नई तकनीकों का प्रयोग करने से लागत कम होती है, कीमतें कम होती हैं तथा इन देशों के उत्पादन की विदेशों में मांग बढ़ती है। इसके फलस्वरूप आय और रोजगार में वृद्धि होती है आर्थिक विकास में सहायता मिलती है।

(5) उत्पादन के साधनों का कुशल उपयोग (Efficient use of means of Production): **प्रो. जे. एस. मिल** (Prof. J.S. Mill) के अनुसार विदेशी व्यापार का एक प्रत्यक्ष लाभ यह होता है कि इसके कारण उत्पादन की कुशलता में वृद्धि होती है। अल्पविकसित देशों में **कृषि पिछड़ी तथा जीवन निर्वाह** (Subsistence and Backward Farming) होती है। व्यापार के कारण कृषि तथा औद्योगिक क्षेत्र में नई तथा उन्नत तकनीकों का प्रयोग सम्भव हो जाता है। इसके फलस्वरूप उत्पादन के साधनों की

कार्यकुशलता में वृद्धि होती है। कृषि क्षेत्र का उत्पादन बढ़ता है तथा उसका **व्यापारीकरण** (Commercialisation) सम्भव हो जाता है। इसी प्रकार नए-नए उद्योगों की स्थापना होती है तथा कुछ उद्योग तो केवल निर्यातित वस्तुओं का उत्पादन करने के लिए स्थापित किए जाते हैं। अरब देशों में पेट्रोलियम के साधनों का कुशल उपयोग व्यापार के कारण ही सम्भव हो सका है। इसके फलस्वरूप ही वे संसार के सबसे अधिक धनी देश बन सके हैं।

(6) पूंजीगत वस्तुओं का आयात तथा प्राथमिक वस्तुओं का निर्यात (Import of Capital Goods & Export of Primary Goods): अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास के लिए विदेशी व्यापार का एक महत्त्वपूर्ण लाभ यह होता है कि इनके फलस्वरूप ये देश आर्थिक विकास के लिए आवश्यक पूंजीगत वस्तुओं जैसे मशीनरी-अर्धनिर्मित वस्तुएं तथा औद्योगिक कच्चे माल का आयात करके अपने देश का औद्योगिकीकरण कर सकते हैं। इनके बदले में वे अपने देश में उत्पादित प्राथमिक वस्तुओं का निर्यात करके भुगतान सन्तुलन की समस्या का भी समाधान कर पाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि अल्पविकसित देश व्यापार के फलस्वरूप **प्रत्यक्ष उत्पादित क्रियाओं** (Directly Productive Activities) की स्थापना करके विकास की गति को बढ़ा सकते हैं।

(7) महत्त्वपूर्ण शैक्षणिक प्रभाव (Important Educational Effects): अल्पविकसित देशों में कुशल इंजीनियरों, प्रबन्धकों, तकनीकी विशेषज्ञों आदि की कमी पाई जाती है। व्यापार के कारण इन देशों में तकनीकी शिक्षा का प्रसार बढ़ता है। लोगों की कार्यकुशलता तथा वैज्ञानिक ज्ञान में वृद्धि होती है। **प्रो. हैबरलर** के शब्दों में, **"तकनीकी ज्ञान के प्रसार, विचारों के संचार, ज्ञान कुशलताओं, प्रबन्धकीय क्षमताओं तथा उद्यमता के आयातों के लिए विदेशी व्यापार साधन तथा परिवहन दोनों ही है।"** (Foreign trade is the means and vechicle for the dissemination of technical knowledge, the transmission of ideas, for the importation of know-how, skill, managerial talents and entrepreneurship. – **G. Haberler**) अल्पविकसित देशों को विकसित देशों की सफलताओं और असफलताओं से सीखने का अवसर प्राप्त होता है। विदेशी व्यापार के फलस्वरूप अल्पविकसित देश विकसित देशों के तकनीकी ज्ञान, नए आविष्कारों और कुशल प्रबन्ध को ग्रहण करके अपनी साधन सम्पन्नताओं (Factor inducement) के अनुसार उन्हें ढाल कर अपने साधन सम्बन्धों के अनुसार उनका प्रयोग करके अपनी विकास की गति को तीव्र कर सकते हैं।

(8) विदेशी पूंजी के आयात का आधार (Basis of Import of Foreign Capital): अल्पविकसित देशों को व्यापार के कारण विदेशी पूंजी के आयात का आधार प्राप्त होता है। विदेशी पूंजी की मात्रा विदेशी व्यापार पर निर्भर करती है। व्यापार की मात्रा जितनी अधिक होगी उतनी ही आसानी से अल्पविकसित देश विदेशी ऋणों और उनके ब्याज को वापस कर सकेगा। इसके फलस्वरूप बाजार में उसकी साख बनेगी तथा वह अपने आर्थिक विकास के लिए कम ब्याज की दर पर अधिक विदेशी पूंजी प्राप्त कर सकेंगे। **जे. एस. मिल** के अनुसार, **"विदेशी पूंजी जो कि उत्पादन की वृद्धि को पूर्ण रूप से देशवासियों की मितव्ययता पर निर्भर नहीं रहने देती, चाहे जनसंख्या की वास्तविक स्थिति में सुधार न करे परन्तु उनके सम्मुख महत्त्वपूर्ण उदाहरण रखकर और उनके मस्तिष्क में नए विचार बिठाकर तथा पुराने विचारों की शृंखला को तोड़कर उनमें नई इच्छाएं, बढ़ती लालसा और भविष्य के लिए अधिक चिन्तन उपस्थित करती है।"** (The foreign capital, that does not allow increased production to be exclusively dependent on the thrift of the natives, may not improve the real condition of the population yet it presents an important example before them and fills their mind with new ideas, new desires and ambitions and gives them food for thought for the future. It breaks the series by orthodox concepts and nations. – **J. S. Mill**) विदेशी पूंजी केवल रोजगार, आय तथा उत्पादन बढ़ाने में ही सहायक नहीं होती बल्कि भुगतान शेष को सन्तुलित करने तथा कीमत स्थिरता के लक्ष्य को भी प्राप्त करने में सहायक होती है।

(9) स्वस्थ प्रतियोगिता (Healthy Competition): विदेशी व्यापार देश में स्वस्थ प्रतियोगिता को जन्म देता है इसके फलस्वरूप उत्पादन की कुशलता में वृद्धि होती है। वस्तुओं की लागतें कम होती हैं तथा समस्त जनता को लाभ प्राप्त होता है। स्वस्थ प्रतियोगिता के कारण देश की जनता का **अकुशल एकाधिकारी** (Inefficient Monopolist) शोषण नहीं कर पाते हैं। देश में कुशल निर्यात उद्योगों की स्थापना सम्भव होती है। इसका आर्थिक विकास पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है।

(10) तुलनात्मक लाभ (Comparative Advantage): विदेशी व्यापार द्वारा विभिन्न देश अपने साधनों का उपयुक्त उपयोग कर सकते हैं। प्रत्येक देश उसी उत्पाद को बनाता है, जिसके निर्माण में वह तुलनात्मक रूप से अधिक सक्षम है। इस उत्पाद को बनाकर उसका निर्यात भी करता है। दूसरी तरफ यह देश ऐसे उत्पाद को स्वयं नहीं बनाता, जिसके निर्माण में यह अधिक सक्षम नहीं है। अपितु ऐसे उत्पाद को उन देशों से आयात करता है जिनकी इस उत्पाद के निर्माण में अधिक निपुणता व कुशलता है। अन्य शब्दों में, विदेशी व्यापार के कारण प्रत्येक देश अपनी जरूरत के सभी उत्पादों को स्वयं नहीं बनाता, बल्कि उन्हीं उत्पादों को बनाता है जिसमें इसका विशिष्टीकरण है। इससे विशिष्टीकरण के लाभ जैसे- उत्पादन की कम लागत, कम कीमतें, उत्पाद की अच्छी क्वालिटी आदि प्राप्त होती है। अत: विदेशी व्यापार द्वारा साधनों का सर्वोत्तम प्रयोग होता है।

(11) मुद्रा-स्फीति पर नियन्त्रण में सहायक (Helps to Check Inflation): विकासशील देशों में प्राय: जनसंख्या बहुत अधिक होती है। इससे अर्थव्यवस्था में कुल मांग बहुत अधिक होती है। इन देशों में कृषि व उद्योग भी पिछड़े होते हैं। इनकी उत्पादकता कम होने के कारण आवश्यक उत्पादों की पूर्ति कम होती है। इस तरह अधिक मांग व कम-पूर्ति के कारण मुद्रा स्फीति का दबाव बना रहता है। कई बार आवश्यक उत्पादों की कीमतें इतनी अधिक बढ़ जाती हैं कि जन-साधारण उन ऊँची कीमतों का भुगतान करने में असमर्थ हो जाते हैं। ऐसी दशा में आयात द्वारा आवश्यक उत्पादों की पूर्ति बढ़ाकर इनकी बढ़ती कीमतों को रोका जा सकता है।

(12) प्राकृतिक आपदा का सामना करने में सहायक (Helps to Face Natural Calamity): प्राकृतिक आपदा बाढ़, सूखा, सुनामी, भूचाल आदि के रूप में हो सकती है। बाढ़ व सूखा कृषि-उत्पादन को कुप्रभावित करते हैं। इससे कृषि पर आधारित उद्योगों को भी नुकसान होता है। इसी तरह उद्योग-प्रस्त-क्षेत्रों (Industrial belts) में यदि भूचाल आ जाये तो इससे औद्योगिक इकाइयों को बहुत नुकसान होता है। ऐसी दशा में प्राकृतिक आपदा से पीड़ित क्षेत्रों में आवश्यक उत्पादों की कमी हो जाती है। इस कमी को आयात द्वारा पूरा किया जा सकता है।

(13) रोजगार अवसरों का सृजन (Creation of Employment Opportunities): विदेशी व्यापार प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से रोजगार अवसर उत्पन्न करता है। आयात व निर्यात व्यवसाय में संलग्न व्यक्तियों के लिये यह प्रत्यक्ष रोजगार उत्पन्न करता है। इसके अलावा निर्यात किये जाने वाले उत्पादों के निर्माण में भी कई व्यक्ति संलग्न हैं। अत: विदेशी व्यापार निर्यात-उत्पादों के निर्माण में लगे व्यक्तियों के लिए भी अप्रत्यक्ष रूप से रोजगार अवसर उत्पन्न करता है।

(14) औद्योगिकीकरण को बढ़ावा (Promotes Industrialisation): अल्पविकसित देशों के औद्योगिक विकास के लिए विदेशी व्यापार का एक महत्वपूर्ण लाभ यह होता है कि इनके फलस्वरूप ये देश औद्योगिक विकास के लिए आवश्यक पूंजीगत वस्तुओं जैसे मशीनरी, मध्यवर्ती वस्तुएं तथा औद्योगिक कच्चे माल का आयात करके अपने देश का औद्योगिकीकरण कर सकते हैं। औद्योगिकीकरण से आर्थिक विकास में तेजी आती है।

संक्षेप में, प्रो. हिक्स (Prof. Hicks) के अनुसार, **''विदेशी व्यापार के फलस्वरूप अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास की गति में तीव्र वृद्धि होती है। उनको उन्नत तकनीक के अवसर प्राप्त होते हैं। बाजार के क्षेत्र का विस्तार होता है बाहरी तथा आन्तरिक वस्तुएं प्राप्त होती हैं। देश में उत्पादन आय तथा रोजगार में वृद्धि होती है। अरब देशों, सिंगापुर, ब्राजील, मलाया, जापान, कोरिया, ताईवान, हांगकांग आदि देशों की उन्नति का मूल कारण विदेशी व्यापार है।''** प्रो. टोडारो (Todaro) के अनुसार परम्परावादी तथा नवपरम्परावादी सिद्धान्तों के आधार पर विकास तथा व्यापार के सम्बन्ध में जो पांच समस्याएं उत्पन्न होती हैं, वे निम्नलिखित प्रकार से विकास के लिए लाभदायक सिद्ध होंगी:

(1) **व्यापार के फलस्वरूप अल्पविकसित देशों के विकास की दर, संरचना और प्रकृति पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। व्यापार आर्थिक विकास का महत्त्वपूर्ण प्रेरक है।** (Trade is an important stimulator of economic growth): व्यापार के फलस्वरूप देश की उपभोग क्षमता बढ़ती है। संसार के उत्पादन में वृद्धि होती है। बाजार का विस्तार होता है जिसके बिना अल्पविकसित देश अपना विकास नहीं कर सकते।

(2) **व्यापार के फलस्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय तथा घरेलू समानता में वृद्धि होती है** (Trade tends to promote greater international and domestic equality): व्यापार के कारण साधनों की कीमत में समानता होती है। वास्तविक आय में वृद्धि होती है तथा देशों के साधनों का उचित उपयोग हो पाता है।

(3) व्यापार के फलस्वरूप अल्पविकसित देश उन क्षेत्रों का विकास करके जिनमें **उनके तुलनात्मक लाभ अधिक होते हैं, आर्थिक विकास के उद्देश्य को प्राप्त कर सकते हैं।**

(4) स्वतन्त्र व्यापार की दशा में ***राष्ट्रीय कल्याण के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय*** *कीमतें तथा उत्पादन लागतें* यह निर्धारित करती हैं कि किसी देश को कितनी मात्रा में व्यापार करना चाहिये।

(5) आर्थिक विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए अल्पविकसित देशों को **स्वतन्त्र व्यापार** (Free Trade) की नीति अपनानी चाहिए।

■ 3.2 विदेशी व्यापार के आर्थिक विकास पर हानिकारक प्रभाव

(Harmful Effects of Foreign Trade on Development)

कई प्रमुख अर्थशास्त्री जैसे ***नर्कसे, पाल रोविश, मिण्ट (Mint), मिर्डल*** *आदि का यह विचार है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के* फलस्वरूप अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास की गति धीमी हुई है तथा उस पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। नोबेल पुरस्कार विजेता अर्थशास्त्री **गुर्नर मिर्डल** के अनुसार, **"दो देशों के बीच जिनमें से एक औद्योगिक तथा दूसरा अल्पविकसित है- स्वतन्त्र व्यापार का स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि अल्पविकसित देश की दरिद्रता और गतिहीनता की बढ़ती हुई प्रवृत्ति आरम्भ हो जाती है।"** (A quite normal result of unhampered trade between two countries of which one is industrial and *the other underdeveloped is the initiation of a cumulative process towards the impoverishment and* stagnation of the latter. – **Myrdal.**) नर्कसे का यह विचार है कि व्यापार से नए देशों के आर्थिक विकास को शायद कुछ लाभ पहुंचा हो। परन्तु **अधिकतर अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास में व्यापार बाधक सिद्ध हुआ है।** विदेशी व्यापार के अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास के लिए निम्नलिखित प्रभाव हानिकारक सिद्ध हुए हैं:

(1) असन्तुलित विकास (Lopsided Development): प्रो. नर्कसे के अनुसार विदेशी व्यापार के कारण अल्पविकसित देशों में **दोहरी अर्थव्यवस्था** (Dual Economy) उत्पन्न हो गई है। इसका अभिप्राय यह है कि इन देशों के कुछ थोड़े से भाग में जहां निर्यात वस्तुओं के उद्योग स्थापित हुए हैं, विकास हुआ है। परन्तु देश का अधिकतर भाग निर्धन और पिछड़ा हुआ रह गया है। इस प्रकार देश में क्षेत्रीय असमानता बढ़ी है। **नर्कसे** के शब्दों में, **"विदेशी व्यापार के फलस्वरूप इन देशों का असन्तुलित विकास हुआ है।** ***इसमें विदेशी पूंजी के बहुत अधिक निवेश के फलस्वरूप देश के एक भाग में तो निर्यात के लिए प्राथमिक वस्तुओं के उत्पादन*** **में वृद्धि हुई है। जबकि घरेलू अर्थव्यवस्था पूरी तरह पिछड़ी हुई तो नहीं परन्तु अल्पविकसित रह गई है।"** (Foreign trade led to a lopsided pattern of growth in which production of primary products for export was carried on with the aid of substantial investment of foreign capital, while the domestic economy remained far less developed, if not altogether primitive. - **Nurkse**) अत: व्यापार के कारण अल्पविकसित देशों की अर्थव्यवस्थाएं असन्तुलित हो गई हैं।

(2) सीमित लाभ की सम्भावना (Limited Possibility of Gain): **प्रो. नर्कसे** का यह भी विचार है कि अल्पविकसित देशों को विदेशी व्यापार से मिलने वाली लाभ की सम्भावनाएं भी बहुत सीमित हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि अल्पविकसित देश मुख्य रूप से **प्राथमिक पदार्थों** *(Primary Products)* का निर्यात करते हैं। परन्तु उनके निर्यातों को निम्नलिखित कारणों से हानि उठानी पड़ रही है (i) विकसित देशों में भारी उद्योगों की स्थापना की प्रवृत्ति बढ़ जाने के फलस्वरूप अल्पविकसित देशों द्वारा निर्यात किये जाने वाली प्राथमिक वस्तुओं की मांग कम होती जा रही है। (ii) विकसित देशों के कुल उत्पादन में सेवाओं का योगदान बढ़ता जा रहा है। (iii) विकसित देशों में अधिकतर कृषि उत्पादन की मांग की **आय लोच** (Income Elasticity) कम है। (iv) कई विकसित देश कृषि पदार्थों के आयात के सम्बन्ध में संरक्षण की नीति अपना रहे हैं। (v) कृषि पदार्थों के स्थान पर कृत्रिम वस्तुओं (Synthetic) का प्रयोग

बढ़ता जा रहा है। उपरोक्त कारणों के फलस्वरूप प्राथमिक पदार्थों के निर्यात से अल्पविकसित देशों को होने वाली आय निरन्तर कम होती जा रही है। इसलिए व्यापार को विकास का इंजन नहीं माना जा सकता।

(3) **विदेशी पूंजी का प्रतिकूल प्रभाव** (Adverse Effects of Foreign Capital): **प्रो. सिंगर** (Prof. Singer) का यह विचार है कि विकसित देशों से अल्पविकसित देशों की ओर विदेशी पूंजी के प्रवाह के कारण उनका एक पक्षीय विकास हुआ है। विदेशी पूंजी के निवेश के फलस्वरूप निर्यात की प्राथमिक वस्तुओं का उत्पादन हुआ है। इन वस्तुओं के उत्पादन का क्षेत्र **पूंजी गहन स्थिर गुणांक क्षेत्र** (Labour Intensive Fixed Coefficient Sector) है। इसके फलस्वरूप श्रम का अधिक प्रयोग नहीं होने पाता। इसके विपरीत अल्पविकसित देशों का **घरेलू उत्पादन क्षेत्र श्रम गहन स्थिर गुणांक क्षेत्र** (Labour Intensive Fixed Coefficient) है। यह क्षेत्र पिछड़ा हुआ है। इस क्षेत्र में निवेश भी कम हुआ है। इसके फलस्वरूप इन देशों में छिपी हुई बेरोजगारी में वृद्धि हुई है तथा रोजगार के अधिक अवसर उत्पन्न नहीं हो सके हैं। विदेशी पूंजी के निवेश का एक बुरा प्रभाव यह भी हुआ है कि इसके फलस्वरूप निर्यात क्षेत्र के उद्योगों में एकाधिकारी (Monopolistic) प्रवृत्ति उत्पन्न हो गई है। इसके फलस्वरूप श्रमिकों को कम मजदूरी देकर उनका शोषण किया गया है। विदेशी पूंजी की सहायता से जो उद्योग स्थापित किए गए उनसे प्राप्त अधिकतर लाभ तथा उन पर दिए जाने वाला ब्याज के रूप में बहुत अधिक धन विदेशों को भेजा गया। इसका अल्पविकसित देशों की अर्थव्यवस्थाओं पर बुरा प्रभाव पड़ा।

(4) **अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनकारी प्रभाव का हानिकारक प्रभाव** (Adverse Effect of International Demonstration Effect): **मिर्डल** का विचार यह था कि विदेशी व्यापार का अल्पविकसित देशों पर पड़ने वाला प्रदर्शनकारी प्रभाव उनके विकास के लिए हानिकारक सिद्ध हुआ। इसका अभिप्राय यह है कि विदेशी व्यापार के कारण अल्पविकसित देशों के लोगों में भी विदेशों में उत्पन्न विलासिता तथा दिखावट की वस्तुओं की मांग बढ़ जाती है। इस प्रकार इन देशों के लोग अपनी बढ़ती हुई आय का अधिक भाग पूंजी निर्माण में लगाने के स्थान पर विदेशी उपभोग वस्तुओं को खरीदने में खर्च कर देते हैं। यदि सरकार इन वस्तुओं के आयात पर प्रतिबन्ध लगाती भी है तो लोग **चोर बाजार** (Black Market) में इन वस्तुओं को खरीदने लगते हैं। इसके फलस्वरूप देश में स्मगलिंग, चोर बाजारी और भ्रष्टाचार को प्रोत्साहन मिलता है। इसका इन देशों की अर्थव्यवस्था पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

(5) **व्यापार की शर्तों में दीर्घकालीन ह्रास** (Secular Deterioration in the Terms of Trade): **आर. प्रैबिश** (Raul Prebisch) के अनुसार, ''व्यापार के फलस्वरूप अल्पविकिसत देशों की व्यापार शर्तों में दीर्घकालीन ह्रास हुआ है। इसका अभिप्राय यह है कि अल्पविकसित देशों से विकसित देशों को आय का हस्तांतरण होता रहा है। अन्य देशों में अल्पविकसित देशों की लागत पर विकसित देशों को अधिक लाभ हुआ है। अल्पविकसित देशों की आय का स्तर तथा उनके विकास की क्षमता घट गई है। **प्रो. रॉल प्रैबिश** के शब्दों में, ''पिछले सत्तर वर्षों में अल्पविकसित देशों को अपनी आयात क्षमता में निरन्तर दुर्बल होते जाने के घातक प्रभाव सहन करने पड़े हैं। इसके फलस्वरूप उनके अपनी बढ़ती हुई जनसंख्या का पालन-पोषण करने के प्राथमिक उत्पादन उद्योगों की क्षमता कम हो गई है। इसका परिमाण यह हुआ है कि वह उन तकनीकी प्रगति के लाभों का प्रसार करने में असफल रहे हैं। इसके फलस्वरूप उनकी व्यापार शर्तों में दीर्घकालीन ह्रास हुआ है, बेकारी बढ़ी है और **भुगतान शेष** (Balance of Payments) में असन्तुलन उत्पन्न हुआ है।''

(6) **साधन कीमतों में समानता नहीं** (No Equality in Factor Prices): अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार करने वाले देशों में उत्पादन के साधनों की कीमतें बराबर हो जाती हैं। आलोचकों का कहना है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार ने साधनों की कीमतों में समानता स्थापित करने के स्थान पर असमानता उत्पन्न की है, इससे संचयी प्रवृत्ति को जन्म मिला है जिससे साधन अनुपातों में समानता तथा उनकी कीमतों में समानता से सन्तुलन-बिन्दु दूर हटता गया है। इससे देश के विभिन्न क्षेत्रों में भी साधनों और उनकी कीमतों में समानता स्थापित नहीं हो सकी है। वास्तविकता तो यह है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से आय के अन्तर्राष्ट्रीय वितरण में असमानता आई है। **मिर्डल** इसे **संचयी-कार्य-कारण** (Cumulative Causation) का सिद्धान्त कहता है।

■ 4. सारांश (Conclusion)

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के विकास पर पड़ने वाले उपरोक्त **अनुकूल** (Favourable) और **प्रतिकूल** (Unfavourable) प्रभावों का अध्ययन करने के पश्चात् हम इस स्थिति में हैं कि **प्रो. टोडारो** द्वारा ऊपर उठाए गए पांचों प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयत्न कर सकें।

(1) **व्यापार का अल्पविकिसत देशों के विकास की गति, संरचना तथा प्रकृति पर अधिकांश दशाओं में अच्छा प्रभाव पड़ा है।** सन् 1960 के पश्चात् कई अल्पविकसित देशों जैसे ब्राजील, ताईवान, दक्षिणी कोरिया तथा तेल उत्पादन करने वाले देशों (OPEC) के तीव्र गति से आर्थिक विकास का मुख्य कारण विदेशी व्यापार है। इसके फलस्वरूप श्रम और पूंजी का उपयुक्त एवं लाभदायक प्रयोग किया जा सका है। इस सम्बन्ध में यह ध्यान रखना चाहिए कि विदेशी व्यापार का आर्थिक विकास पर तभी लाभदायक प्रभाव पड़ेगा जब व्यापार के फलस्वरूप बढ़ती हुई आय का प्रवाह देश में ही रहे तथा विदेशों की ओर न हो और इसके कारण अर्थव्यवस्था के अधिकांश भाग का विस्तार हो। इसके विपरीत यदि विदेशी व्यापार के फलस्वरूप अल्पविकसित देश की आय तथा उत्पादन में जो वृद्धि होती है यदि उसका अधिक प्रवाह विदेशों की ओर हो जाता है तथा विदेशी व्यापार के फलस्वरूप देश की केवल कुछ ही उत्पादन क्रियाओं का विकास होता है तो विदेशी व्यापार का विकास पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ेगा।

(2) **व्यापार के आय के वितरण पर पड़ने वाले प्रभाव के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि व्यापार के फलस्वरूप विकसित देशों को अल्पविकसित देशों की तुलना में अधिक लाभ हुआ है।**

(3) **व्यापार तथा विकास से सम्बन्धित तीसरी समस्या यह है कि अल्पविकसित देश किन दशाओं में व्यापार के द्वारा विकास के लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं।** इस सम्बन्ध में **टोडारो** का यह विचार है कि, "इस समस्या का समाधान मुख्यत: अल्पविकसित देशों की इस योग्यता पर निर्भर करता है कि वे विकसित देशों से व्यापार सम्बन्धित कितनी रियायतें प्राप्त कर सकते हैं। विशेष रूप से अल्पविकसित देशों द्वारा **श्रम निहित** (Labour Intensive) तैयार वस्तुओं पर लगाए जाने वाले प्रतिबन्धों को कम कराने के सम्बन्ध में उन्हें कितनी सफलता प्राप्त होती है। दूसरे, अल्पविकसित देशों के साधारण नागरिकों को विदेशी व्यापार के फलस्वरूप मिलने वाला लाभ इस बात पर निर्भर करेगा कि इन देशों द्वारा किए जाने वाले निर्यातों के उत्पादन के लिए सीमित पूंजीगत साधनों का कितनी कुशलतापूर्वक प्रयोग किया जाता है तथा अल्प रोजगार और बेरोजगार श्रम शक्ति का कितना अधिक से अधिक प्रयोग किया जा सकता है। तीसरे, इस समस्या का समाधान इस बात पर भी निर्भर करेगा कि अल्पविकसित देश **बहुराष्ट्रीय निगमों** (Multinational Corporations) द्वारा देश में प्राप्त लाभ का अधिक से अधिक कितना भाग अपने नागरिकों को दिलाने में सफल होते हैं।"

(4) **अल्पविकसित देशों को कितना व्यापार** (How much they trade) करना चाहिए यह विभिन्न देशों की विशेष परिस्थितियों पर निर्भर करता है। संसार के लगभग 32 अल्पविकसित देश ऐसे हैं जो खाद्यान्न के लिए विदेशों पर निर्भर रहते हैं उन्हें तो व्यापार अधिक करना ही पड़ेगा। इसी प्रकार पेट्रोल तथा खनिज पदार्थ, बागान वाले देशों को भी अधिक मात्रा में व्यापार करना पड़ता है। बाकी देशों के लिए इस सम्बन्ध में कोई निश्चित निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता। उदाहरण के लिए भारत सरकार अधिक से अधिक मात्रा में निर्यात बढ़ाने के लिए प्रत्यनशील रहती है।

(5) व्यापार तथा विकास से सम्बन्धित स्वतन्त्र व्यापार और संरक्षण की नीति के सम्बन्ध में अधिकतर अर्थशास्त्री इस पक्ष में हैं कि स्वतन्त्र व्यापार से अल्पविकसित देशों को हानि तथा विकसित देशों को लाभ हुआ है। ये विकसित देशों से स्वतन्त्र व्यापार के पक्ष में नहीं हैं। उनके अनुसार अल्पविकसित देशों को **सामूहिक आत्म निर्भरता** (Collective Self Reliance) की नीति अपनानी चाहिए। अर्थात् व्यापार में परस्पर सहयोग की नीति अपनानी चाहिए। उन्हें एक **'नवीन अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक संघ'** (New International Economic Order) की स्थापना करनी चाहिए जिससे व्यापार उनके शोषण के स्थान पर उनके विकास का प्रतीक बन सके।

संक्षेप में, व्यापार तथा विकास का परस्पर सम्बन्ध एक विवादग्रस्त विषय है। सैद्धान्तिक तर्क इस बात का समर्थन करता है कि व्यापार से आर्थिक विकास प्रोत्साहित होता है। ऐतिहासिक प्रमाण विपरीत तथ्य प्रस्तुत करता है, इसलिए कोई एक (uniform) निष्कर्ष नहीं निकल पाता। यह ध्यान देने योग्य है कि आर्थिक विकास को केवल विदेशी व्यापार ही प्रभावित नहीं करता है। विकास को प्रभावित करने वाले यदि अन्य कारक (Factors) तटस्थ (Neutral) रहें या विकास का पक्ष लें तब एक विशेष संदर्भ में हम यह कह सकते हैं कि विदेशी व्यापार आर्थिक विकास के लिए अनुकूल है अथवा नहीं। ऐसी अवस्था में भविष्य में क्या स्थिति होगी यह कहना कठिन है क्योंकि हमें उन कारकों की ओर भी अपना ध्यान केन्द्रित करना होगा जिनका सम्बन्ध देश की भीतरी व्यवस्था के सुधारने से है, यदि भीतरी व्यवस्था का सही प्रकार से नियमन हो जाता है, तब आर्थिक विकास के लिए अनुकूल स्थितियां पैदा हो सकती हैं। निर्यात क्षेत्र से सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के लिए प्राप्ति कुछ अधिक करनी है, इसके लिए आवश्यक है कि घरेलू बाधाओं को दूर किया

जाए, जैसे भूमि सुधार किए जाएं, एकाधिकारी प्रवृत्तियों को समाप्त किया जाए, पूंजी बाजार का विस्तार किया जाए तथा अधिक साख सुविधाएं उपलब्ध कराई जाएं, विदेशी बाजारों का सर्वेक्षण किया जाए, तकनीकी सुधार लाएं जाएं आदि।

■ 5. अल्पविकसित देशों में व्यापार तथा विकास

(Trade and Growth in Under-developed Countries)

वर्तमान परिस्थितियों में क्या अल्पविकसित देश, विकास के संदर्भ में, व्यापार से लाभ प्राप्त कर सकते हैं, यह एक विवादास्पद विषय है। आर. प्रैबिश (R. Prebisch) तथा कई अन्य अर्थशास्त्रियों का यह विचार है कि अल्पविकसित देशों में व्यापार द्वारा विकास होने की परिस्थितियों का निम्नलिखित अलाभकारी कारणों से अभाव पाया जाता है:

(i) व्यापार की शर्तें (Terms of Trade): निर्यात होने वाली वस्तुओं की पूर्ति तथा विदेशी वस्तुओं की मांग बेलोचदार होने के कारण अल्पविकसित देशों की व्यापार की शर्तें उनके प्रतिकूल हो रही हैं। अल्पविकसित देशों में **सन्तापकारी विकास का सिद्धान्त** (Theory of Immisersing Growth) लागू होता है। यह सिद्धान्त विकासशील देशों की व्यापार शर्तों के ह्रास से सम्बन्ध रखता है। **एजवर्थ** (Edgeworth) पहला अर्थशास्त्री था जिसने इस संभावना को बताया कि हो सकता है कि आर्थिक विकास के फलस्वरूप विकासशील देशों की व्यापार शर्तें इस सीमा तक बिगड़ जाएं कि विकास के फलस्वरूप होने वाले उत्पादन के लाभ को व्यापार की प्रतिकूल शर्तें समाप्त कर दें। **जगदीश भगवती** ने इस स्थिति को **सन्तापकारी वृद्धि** (Immisersing Growth) का नाम दिया है। उसके अपने शब्दों में, "आर्थिक विस्तार से उत्पादन बढ़ता है, पर हो सकता है कि उससे व्यापार-शर्तें इतनी अधिक बिगड़ जाएं कि विस्तार के लाभदायक प्रभाव को समाप्त कर दें और विकासशील देश की वास्तविक आय को घटा दें।"

(ii) अनिश्चित निर्यात प्राप्तियाँ (Unstable Export Earnings): कुछ ही कृषि पदार्थों पर अधिक निर्भरता के कारण इन देशों की विदेशी आमदनी अनिश्चित है, कृषि पदार्थों की विदेशों में मांग भी बेलोचदार है। मौसम की अनिश्चितता के कारण इन वस्तुओं की पूर्ति में उतार-चढ़ाव (Fluctuation) आता रहता है क्योंकि ये कृषि वस्तुएं हैं।

(iii) विदेशी पदार्थों के लिए लोचदार मांग (Elastic Demand for Foreign Products): अल्पविकसित देशों में विदेशी वस्तुओं की मांग लोचदार है, जबकि इनकी वस्तुओं की विदेशी मांग बेलोचदार है, इससे इन देशों की आय तथा कीमत लोचों के संदर्भ में स्थिति इनके प्रतिकूल हो जाती है।

(iv) तटीय अवरोध (Tariff Barriers): विकसित देशों द्वारा शुल्क से सम्बन्धित लगाए गए तटीय व गैर-तटीय अवरोध भी अल्पविकसित देशों के निर्यात बाजार एक बहुत बड़ी बाधा है।

(v) लागत-कीमत समताएं (Cost-price Parities): कम उत्पादकता के कारण अल्पविकसित देशों में ऊंची लागत-कीमत समताएं इनको अलाभकारी स्थिति में डाल देती हैं।

(vi) बहु-राष्ट्रीय फर्में (Multi-national Firms): विदेशों में पाई जानेवाली बहु-राष्ट्रीय तथा एकाधिकारी फर्में भी इन देशों (UDCs) की वस्तुओं को अन्तर्राष्ट्रीय बाजार से बाहर रखती हैं।

(vii) आर्थिक समानताएं (Economic Disparities): **प्रो. मिर्डाल** (Myrdal) का कहना है कि विकसित तथा अल्पविकसित देशों के बीच व्यापार उनकी सीमान्त उत्पादन तथा साधन आय के बीच समानता लाने में बहुत पीछे है, इसके फलस्वरूप वहाँ स्थिति सन्तुलन से दूर बनी रहती है। उत्पादकता में अन्तराल (Gap) बढ़ता रहता है। धनी तथा निर्धन देशों के बीच आर्थिक असमानताएं कम होने की बजाए बढ़ रही हैं।

(viii) दोहरा रूप (Dualistic Character): **प्रो. हेगन** (Hagen) का यह कहना है कि निर्यात व्यापार के विकसित होने के कारण, इन देशों में विकास का दोहरा रूप बन गया है और अर्थव्यवस्था दो भागों में बंट गई है- **एक विकसित निर्यात क्षेत्र और दूसरा बड़ा अविकसित देशी क्षेत्र** (Indeginous Sector)। निर्यात क्षेत्र अच्छी तकनीक का प्रयोग करता है, ऊँची मजदूरी देता है, परन्तु देश के अन्य अविकसित भाग को यह कोई प्रोत्साहन नहीं देता। निर्यात क्षेत्र का मुख्य सम्बन्ध विदेशी व्यापार केन्द्र से है और यह लगभग विकसित अर्थव्यवस्था का एक भाग बन चुका है। व्यापक ग्रामीण क्षेत्र अभी भी अविकसित एवं गतिहीन है।

(ix) ऋण का बढ़ता हुआ भार (Increasing Burden of Debt): अल्पविकसित देशों की विदेशी व्यापार की सबसे बड़ी समस्या यह है कि इन पर विकसित देशों द्वारा दिए गए ऋण एवं ब्याज की अदायगी का भारी बोझ है, जो अधिकांश रूप से प्रतिकूल व्यापार सन्तुलन का परिणाम है। इस ऋण के फलस्वरूप अल्पविकसित देशों के प्रारम्भिक निवेश पर भारी आर्थिक दबाव पड़ता है तथा उन्हें अपनी विकास परियोजना में भारी मात्रा में कटौती करनी पड़ती है। इसके फलस्वरूप इन देशों की उत्पादन क्षमता घटती है और वे अन्तर्राष्ट्रीय बाजारों में प्रतियोगिता नहीं कर पाते।

(x) उद्यमी वर्ग का अभाव (Paucity of Entrepreneurs): विदेशी व्यापार के प्रोत्साहन एवं निर्यात वृद्धि के लिए यह आवश्यक है कि देश में उत्पादन पर्याप्त मात्रा में हो। यह तभी संभव है जब देश में उद्यमी प्रतिभा विद्यमान हो ताकि वे पर्याप्त पूंजी का निवेश करके निर्यात बढ़ाने के लिए, उत्पादन में वृद्धि कर सकें। परन्तु अल्पविकसित देशों में विकास के लिए वांछित पूंजी निवेश करने वाले निजी पूंजीपतियों का पर्याप्त रूप से विकसित वर्ग नहीं है। ऐसी स्थिति में यह आवश्यक है कि जहां एक ओर निजी निवेश को प्रोत्साहन दिया जाए, वहीं दूसरी ओर सरकार को भी पूंजी-निवेश करना चाहिए।

(xi) विकसित देशों द्वारा संरक्षणवादी नीति (Protectionist Policy of Developed Countries): अल्पविकसित देशों के विदेशी व्यापार को बड़ा धक्का इसलिए भी लगा कि विकसित देशों ने अल्पविकसित देशों के आयातों पर कई प्रकार के प्रतिबन्ध लगा दिए हैं। विकसित देशों की इन संरक्षणात्मक नीतियों का विरोध करने के लिए अल्पविकसित देशों के पास न तो आर्थिक क्षमता है और न ही राजनीतिक शक्ति।

(xii) विदेशी पूंजी पर अत्यधिक निर्भरता (Too Much Dependence on Foreign Capital): अल्पविकसित देशों की विदेशी व्यापार की एक समस्या यह भी है कि वे अपने निर्यात क्षेत्र के विस्तार के लिए विदेशी पूंजी पर निर्भर रहते हैं जिसका परिणाम प्रत्यक्ष विदेशी निवेश में वृद्धि होता है। यह निवेश, घरेलू मांग की अवहेलना कर, प्राथमिक उत्पादन पर केन्द्रित होता है, जिसका मुख्य उद्देश्य निर्यातों में वृद्धि करना होता है क्योंकि विदेशी निवेशकर्ताओं का मुख्य उद्देश्य विदेशी मुद्रा कमाना होता है न कि देश के आर्थिक विकास में योगदान देना। निर्यातों से होने वाली आय की तुलना में विदेशी पूंजी के प्रभाव से अधिक उतार-चढ़ाव होते हैं तथा यह देखने में आया है कि विदेशी पूंजी की कमी के साथ निर्यातों में भी कमी आई है। विदेशी पूंजी में उतार-चढ़ाव के साथ घरेलू अर्थव्यवस्था में अस्थिरता आती है,इसलिए विकास का कार्यक्रम ठीक प्रकार से नहीं चलता।

उपरोक्त दोषों के कारण अल्पविकसित देश मुख्यतया आयात प्रतियोगी वस्तुओं (Import-competing Goods) या घरेलू बाजारों पर ही निर्भर है, इसके विपरीत विकसित देश निर्यात-परक (Export-oriented) विकास को अपनाए हुए हैं।

अल्पविकसित देशों की विदेशी व्यापार संबंधी समस्याओं को देखते हुए, तेजी से एक नई अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की आवश्यकता महसूस की जा रही है जिससे समृद्ध राष्ट्र इन देशों को ऋण में छूट देंगे, अधिक आयात करेंगे तथा निर्यात की कीमतों में कमी करेंगे, एवं कच्चे माल का उचित दाम देंगे तथा आवश्यक वस्तुओं के भण्डारण की ऐसी व्यवस्था करेंगे कि उनकी कीमतों में अनावश्यक उतार-चढ़ाव नहीं होगा। परन्तु विकसित तथा अल्पविकसित देशों में स्पष्ट मतभेद उभरकर सामने आ गए हैं तथा यह बात साफ हो गई है कि नई अर्थव्यवस्था के निर्माण के इच्छुक देशों को काफी संघर्ष करना पड़ेगा क्योंकि सरलता से वे अपने आपको विदेशी व्यापार एवं अन्य प्रकार के शोषण से मुक्त नहीं कर सकते।

प्रश्न (QUESTIONS)

■ I. वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

सभी प्रश्न अनिवार्य हैं (Attempt all the questions)

1. आर्थिक विकास तथा विदेशी व्यापार प्रभावित होते हैं (एक दूसरे के द्वारा, किसी के द्वारा नहीं)
2. विकास का अर्थशास्त्र अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में कौन-सा तत्त्व लाता है (गत्यात्मकता का, अगत्यात्मकता का)
3. उत्पादन के सभी साधनों की एक समान वृद्धि के फलस्वरूप उत्पादन संभावना वक्र जाती है (ऊपर की ओर, पीछे की ओर)
4. आर्थिक विकास तब तटस्थ होता है जब यह निर्यातित तथा आयातित वस्तु की वृद्धि करता है (एक ही अनुपात में, विभिन्न अनुपात में)

5. निर्यातित वस्तुओं के अधिक उपभोग से होती है (व्यापार की मात्रा में कमी, व्यापार की मात्रा में वृद्धि।)
6. निर्यात-अभिनत तकनीकी विकास सम्पन्न साधन बढ़ेगा और इससे आगे विस्तार होगा (निर्यातों में, आयातों में)
7. अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं में उनकी निर्यात वस्तुओं की पूर्ति तथा विदेशी वस्तुओं की मांग के बेलोचदार होने के कारण व्यापार की शर्तें हो गई हैं (उनके अनुकूल, उनके प्रतिकूल)
8. निर्यात व आयात कार्य करते हैं विकास के लिए (प्रेरणा का, अप्रेरणा का)

उत्तर (Answers): (1) एक दूसरे के द्वारा, (2) गत्यात्मकता का, (3) ऊपर की ओर, (4) एक ही अनुपात में, (5) व्यापार की मात्रा में कमी, (6) निर्यातों में, (7) उनके प्रतिकूल, (8) प्रेरणा का।

■ II. लघु/परिभाषा रूपी प्रश्न (Short/Definitional Type Questions)

1. क्या व्यापार विकास के लिए लाभप्रद है?
2. साधन सम्पन्नता में परिवर्तन व्यापार को कैसे प्रभावित करते हैं?
3. तकनीकी परिवर्तन विदेशी व्यापार को कैसे प्रभावित करते हैं?
4. निर्यात-अभिनत तकनीकी परिवर्तन क्या है?
5. सन्तापकारी विकास के सिद्धान्त से क्या अभिप्राय है?
6. अल्पविकसित देशों में निर्यात-आमदनी अस्थिर क्यों है?
7. विकास का दोहरा रूप क्या है?
8. अग्रगामी तथा पश्चगामी जुड़ाव में अन्तर बतलाएं।
9. क्या विदेशी व्यापार राष्ट्रीय आय को प्रभावित करता है?
10. व्यापार के विकास पर पड़ने वाले दो लाभदायक प्रभाव बतलाएं।
11. विकास पर व्यापार के कारण होने वाले दो हानिकारक प्रभाव दें। (K.U. 2006)

■ III. निबन्ध रूपी प्रश्न (Essay Type Questions)

1. Discuss the impact of International Trade on economic growth.
   अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के आर्थिक विकास पर पड़ने वाले प्रभाव की व्याख्या करें।
2. What are the beneficial effects of trade on economic growth?
   आर्थिक विकास पर व्यापार के लाभदायक प्रभाव क्या हैं?
3. Discuss the harmful effects of foreign trade on economic growth.
   विदेशी व्यापार के आर्थिक विकास पर पड़ने वाले हानिकारक प्रभावों की व्याख्या करें।
4. What is the position of trade and growth in under-developed economies?
   अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं में व्यापार तथा विकास की क्या स्थिति है?
5. How does international trade promote economic development?
   अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार आर्थिक विकास को कैसे प्रोत्साहित करता है? (K.U. 2005)
6. 'Trade is an engine of growth.' Disucss the statement.
   'व्यापार विकास का इंजन है।' इस कथन की व्याख्या कीजिए। (K.U. 2009)
7. "International trade may be as much a hindrance as a help in the economic development of a country." Disucss.
   "किसी देश के आर्थिक विकास में अंतर्राष्ट्रीय व्यापार इतना ही बाधक हो सकता है जितना कि सहायक हो सकता है।" व्याख्या कीजिए। (K.U. 2007)
8. Explain the effect of International Trade on Economic Development.
   अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के आर्थिक विकास पर पड़ने वाले प्रभाव की व्याख्या करें। (M.D.U. 2008)

21

भुगतान शेष
(BALANCE OF PAYMENTS)

■ 1. भूमिका (Introduction)

भुगतान शेष विषय का सम्बन्ध किसी एक विशेष देश द्वारा संसार के अन्य देशों के साथ किये गये आर्थिक लेन-देन या व्यवहारों के लेखांकन से है। प्रत्येक देश को विश्व के अन्य देशों के साथ आर्थिक आदान-प्रदान करने पड़ते हैं जिनके फलस्वरूप उस देश को अन्य देशों के साथ कुछ भुगतान करने पड़ते हैं एवं कुछ प्राप्तियां होती हैं। **भुगतान शेष इन्हीं प्राप्तियों एवं भुगतानों का विवरण पत्र होता है।**

■ आर्थिक लेन-देन (Economic Transactions)

ये वे लेन-देन हैं जिनके कारण **मूल्य का हस्तांतरण** (Transfer of Value) होता है। विदेशी लेन-देन के संदर्भ में, एक देश के निवासियों द्वारा दूसरे देश के निवासियों को मूल्य का हस्तांतरण होता है। उदाहरणत: जब A-देश से B-देश को वस्तुओं (या सेवाओं) का निर्यात किया जाता है तब B-देश द्वारा A-देश को मूल्य (= निर्यात प्राप्तियाँ) का हस्तांतरण किया जाता है। देशों के बीच, मूल्य का हस्तांतरण विदेशी विनिमय के रूप में किया जाता है (अर्थात् विदेशी विनिमय के रूप में सभी भुगतान किए तथा लिए जाते हैं।)।

अन्तर्राष्ट्रीय सौदों का कारण दो प्रकार की आर्थिक क्रिया होती हैं: (i) चालू उत्पादन संबंधी क्रिया जिसके फलस्वरूप वस्तुओं तथा सेवाओं का आयात-निर्यात किया जाता है। (ii) वह क्रिया जिसका संबंध व्यापार के भागीदारों की संचित तथा वर्तमान परिसम्पत्तियों के क्रय-विक्रय से होता है। ये परिसम्पत्तियां वास्तविक (जैसे मशीनरी प्लांट) या वित्तीय (जैसे शेयर) दोनों प्रकार की हो सकती है।

किसी देश को प्राय: **तीन प्रकार की मदों** में दूसरे देशों से व्यवहार करना पड़ता है। यह हैं - **(1) दृश्य मदें** (Visible Items): इसमें समस्त प्रकार की भौतिक वस्तुयें, जिनका आयात-निर्यात होता है शामिल की जाती हैं। **(2) अदृश्य मद** (Invisible Items): इसमें उन समस्त सेवाओं इत्यादि को शामिल किया जाता है जिनका आयात-निर्यात दृश्य नहीं होता और तीसरे प्रकार की (3) **पूंजी अन्तरण** (Capital Transfers) मदें कहलाती हैं जिनका सम्बन्ध पूंजी के लेन-देन से होता है।

एक सामान्य व्यापारी की भांति प्रत्येक देश को भी अन्य देशों के साथ उपरोक्त तीनों प्रकार की मदों के सम्बन्ध में किये गये लेन-देनों का, एक निश्चित अवधि के पश्चात् लेखांकन कर, शेष निकालना पड़ता है ताकि यह मालूम हो सके कि देश को कुल मिलाकर कितनी प्राप्तियां हुई हैं और कितना भुगतान किया गया है और शेष की स्थिति क्या है। लेखा शेष की तीन अवस्थायें **बराबर** (संतुलित), **ऋणात्मक** या **धनात्मक** हो सकती हैं। इसी धारणा को भुगतान संतुलन या **भुगतान शेष** (Balance of Payments) कहा जाता है। **जब केवल भौतिक मदों अर्थात् दृश्य मदों या वस्तुओं के आयात-निर्यात का अन्तर निकाला जाता है तो इसे व्यापार शेष** (Balance of Trade) **कहा जाता है।** लेकिन जब यह दृश्य, अदृश्य एवं पूंजी तीनों मदों के आयात-निर्यात के सम्बन्ध में अन्तर निकाला जाता है तो इसे **भुगतान शेष** (Balance of Payments) कहा जाता है। **इस प्रकार भुगतान शेष या भुगतान संतुलन एक निश्चित अवधि के लिये किसी देश के अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवहारों का लेखांकन होता है।** (Balance of payments is thus an overall record of all economic transactions of a country, in a given period, with the rest of the world.)।

■ 2. परिभाषा (Definition)

(1) किन्डलबर्गर के शब्दों में, "एक देश का भुगतान शेष उस देश के निवासियों तथा विदेशियों में किये गये सभी आर्थिक सौदों का क्रमबद्ध लेखा है।" (The balance of payments of a country is a systematic record of all economic transactions between its residents and residents of foreign countries. - **Kindleberger**)

(2) बैन्हम के अनुसार, "किसी देश का भुगतान शेष किसी दिये हुये समय में संसार के साथ उनके मौद्रिक लेन-देन का लेखा है।" (Balance of Payments of a country is a record of the monetary transactions over a period with the rest of the world. - **Benham**)

(3) जेम्स ओ० इन्ग्राम के अनुसार, "भुगतान शेष उन सभी आर्थिक सौदों का संक्षिप्त लेखा है जो एक देश के निवासियों तथा शेष संसार के मध्य एक निश्चित समय में किया जाता है।" (The Balance of Payments is a summary record of all economic transactions between residents of one country and the rest of the world during a given period of time: – **James O. Ingram**)

■ 3. भुगतान शेष की विशेषताएं (Features of Balance of Payments)

भुगतान शेष की मुख्य विशेषतायें निम्नलिखित हैं:

(1) **क्रमबद्ध लेखा रिकार्ड** (Systematic Record): यह एक देश का अन्य देशों के साथ किये गये आदान-प्रदानों सम्बन्धी भुगतानों व प्राप्तियों का क्रमबद्ध लेखा होता है।

(2) **निश्चित समय अवधि** (Fixed Period of Time): यह समय की एक निश्चित अवधि प्राय: एक वर्ष का लेखा-जोखा होता है।

(3) **व्यापकता** (Comprehensiveness): इसमें सभी प्रकार की दृश्य , अदृश्य एवं पूंजी अन्तरण की मदों को शामिल किया जाता है।

(4) **दोहरी अंकन प्रणाली** (Double Entry System): दोहरी लेखा अंकन प्रणाली के आधार पर ही भुगतान व प्राप्तियों को लेखाबद्ध किया जाता है।

(5) **स्व: संतुलित** (Self-Balanced): दोहरी लेखांकन प्रणाली, लेखा दृष्टिकोण से स्वत: ही लेखे को संतुलन में रखती है।

(6) **अन्तर समायोजन** (Adjustment of Differences): वास्तविक व्यवहारों में जब कभी कुल प्राप्तियों व भुगतानों में अन्तर हो जाता है, तो इनको समायोजित करने की आवश्यकता पड़ती है।

(7) **सभी मदें-सरकारी व गैर-सरकारी** (All items-Government and Non-government): भुगतान शेष में सरकारी व गैर सरकारी सभी मदों की प्राप्तियों तथा भुगतानों को सम्मिलित किया जाता है।

■ 4. व्यापार शेष एवं भुगतान शेष - एक तुलनात्मक अध्ययन
(Balance of Trade and Balance of Payments - A comparative Study)

■ 4.1 व्यापार शेष (Balance of Trade)

जैसा कि पहले स्पष्ट किया जा चुका है कि अन्तर्राष्ट्रीय लेन-देन (Transactions) या प्राप्तियों व भुगतानों (Receipts and Payments) के सम्बन्ध में दो मुख्य धारणायें हैं: (1) **व्यापार शेष या व्यापार सन्तुलन** (Balance of Trade) एवं (2) **भुगतान शेष या भुगतान संतुलन** (Balance of Payments)। **व्यापार शेष** (Balance of Trade) से तात्पर्य दृश्य भौतिक वस्तुओं (Visible Material Goods) के आयात-निर्यात मूल्यों के कुल अन्तर शेष (Balance of difference) से है।

व्यापार शेष (Balance of Trade) = दृश्य मदों का निर्यात – दृश्य मदों का आयात

प्रो॰ बेन्हम के अनुसार, "**किसी देश का व्यापार सन्तुलन एक दिये समय में उसके आयात तथा निर्यात के मूल्यों का सम्बन्ध है।** " (Balance of Trade of a country is the relation over a period between the values of her exports and the values of her imports.–**Benham**)। वस्तुओं का बन्दरगाहों पर हिसाब-किताब रखा जाता है इसलिए उन्हें आयात तथा निर्यात की **दृश्य मदें** (Visible Items) कहा जाता है। व्यापार शेष वास्तव में भुगतान शेष का एक भाग होता है। व्यापार शेष तीन प्रकार का हो सकता है:

(i) अनुकूल व्यापार शेष (Surplus or Favourable Balance of Trade): अनुकूल व्यापार शेष अथवा व्यापार शेष किसी देश के पक्ष में उस समय होता है जब उस देश से वस्तुओं के निर्यात (Exports) उनके आयात (Imports) से अधिक होते हैं। (Exports > Imports)

(ii) प्रतिकूल व्यापार शेष (Deficit or Unfavourable Balance of Trade): प्रतिकूल व्यापार शेष या किसी देश के विपक्ष में व्यापार शेष उस समय होता है जब उस देश की वस्तुओं के आयात उनके निर्यात से अधिक होते हैं। (Imports > Exports)

(iii) संतुलित व्यापार शेष (Equilibrium in Balance of Trade): व्यापार शेष उस स्थिति में सन्तुलन में होता है जब उस देश की वस्तुओं के निर्यात तथा आयात बराबर होते हैं (Exports = Imports)।

व्यापार शेष में निम्नलिखित को शामिल नहीं किया जाता:

(i) सेवाओं का आयात-निर्यात, जैसे- जहाजरानी, बीमा बैंकिंग आदि (ii) देशों के बीच ब्याज तथा लाभांश का भुगतान और (iii) पर्टयकों द्वारा किया गया व्यय।

यह जानने के लिए कि **भुगतान शेष** धनात्मक है या ऋणात्मक, सभी आर्थिक सौदों पर विचार किया जाता है, जैसे (i) दृश्य मदें, (ii) अदृश्य मदें, और (iii) पूंजी अन्तरण। इस प्रकार भुगतान शेष एक देश के शेष विश्व के साथ आर्थिक सौदों का एक व्यापक चित्र प्रस्तुत करता है।

■ 4.2 व्यापार शेष तथा भुगतान शेष में अन्तर

(Difference between Balance of Trade and Balance of Payments)

(1) भुगतान शेष एक विस्तृत शब्द है। इसके अन्तर्गत व्यापार शेष भी शामिल होता है। अत: व्यापार शेष अपेक्षाकृत एक संकुचित धारणा है। यह भुगतान शेष का ही एक अंग होता है।

(2) व्यापार शेष में केवल वस्तुओं या दृश्य मदों के आयात और निर्यात को शामिल किया जाता है। इसके विपरीत भुगतान शेष में सभी प्रकार की मदों अर्थात् वस्तुओं, सेवाओं तथा पूंजी के आयात निर्यात को शामिल किया जाता है। इसके अन्तर्गत दृश्य (Visible) *तथा अदृश्य* (Invisible) *सभी मदों को शामिल किया जाता है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि व्यापार शेष* (Balance of Trade) वास्तव में भुगतान शेष (Balance of Payments) का ही एक भाग है।

(3) किसी देश का व्यापार शेष, संतुलित या असंतुलित हो सकता है किन्तु भुगतान शेष सदैव संतुलित होता है।

(4) व्यापार शेष के प्रतिकूल होने पर उसके घाटे को भुगतान शेष द्वारा पूरा किया जा सकता है। परन्तु भुगतान शेष के घाटे को व्यापार शेष द्वारा पूरा नहीं किया जा सकता है।

(5) आर्थिक विश्लेषण की दृष्टि से व्यापार शेष की तुलना में भुगतान शेष का अधिक महत्त्व है। प्रत्येक देश, विदेशी व्यापार की *नीति बनाते समय भुगतान शेष की मदों को ध्यान में रखता है।* इसके आधार पर यह ज्ञात होता है कि यदि एक देश की दूसरे देशों को दी जाने वाली देनदारियां अधिक हैं तो इसका देश की राष्ट्रीय आय, रोज़गार आदि नीतियों पर काफी प्रभाव पड़ता है।

संक्षेप में, व्यापार शेष तथा भुगतान शेष का मुख्य अन्तर यह है कि व्यापार शेष अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का एक आंशिक लेखा (Partial Record) है। जबकि भुगतान शेष अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का पूर्ण लेखा (Complete Record) है। **व्यापार शेष, भुगतान शेष का ही एक अंश है।**

■ 5. भुगतान शेष की संरचना एवं स्वरूप (Structure and Forms of Balance of Payments)

भुगतान शेष की संरचना एवं स्वरूप का अध्ययन निम्न प्रकार से किया जा सकता है:

■ 5.1 भुगतान शेष की संरचना (Structure of Balance of Payments)

भुगतान शेष एक देश का दूसरे देशों के साथ एक निश्चित अवधि के मध्य किये गये आर्थिक लेन-देन या प्राप्तियों (Receipts) व भुगतान (Payments) का लेखा-ब्यौरा होता है। कुल प्राप्तियों (Total Receipts) को लेनदारियां (Credit) व कुल भुगतानों (Payments) को देनदारियां (Debit) कहा जाता है। इस प्रकार भुगतान शेष की संरचना के दो पक्ष होते हैं:

(i) लेनदारी पक्ष (Credit Side) तथा **(ii) देनदारी पक्ष** (Debit Side)।

लेनदारी पक्ष में उन समस्त मूल्यों को दर्शाया जाता है जो विदेशों से प्राप्त हुए हैं या होने हैं। इसे **जमा पक्ष** भी कहते हैं। जबकि **देनदारी पक्ष** (Debit Side) में समस्त प्रकार के भुगतानों को लिया जाता है। इसे **नाम पक्ष** भी कहा जाता है। भुगतान शेष की संरचना को निम्न प्रकार से प्रकट किया जाता है:

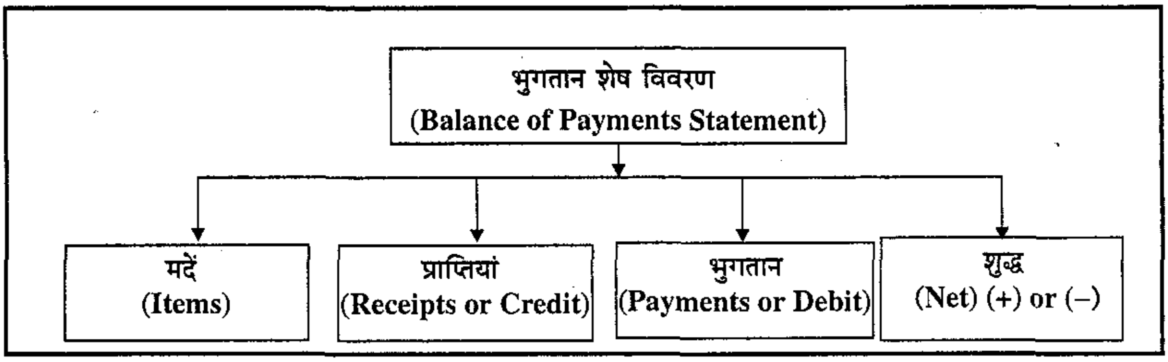

■ 5.2 भुगतान शेष का स्वरूप (Forms of Balance of Payments)

स्वरूप की दृष्टि से भुगतान शेष के तीन रूप होते हैं: (1) चालू खाता, (2) पूंजी खाता व (3) समुचित खाता।

(1) चालू खाता (Current Account)

भुगतान शेष का चालू खाता अल्पकालीन वास्तविक लेन-देनों का लेखांकन होता है। इसमें दृश्य (Visible) तथा अदृश्य (Invisible) दोनों प्रकार की मदों के आयात-निर्यात मूल्यों को अंकित किया जाता है। चालू खाते के लेन-देन को वास्तविक लेन-देन का खाता कहा जाता है, क्योंकि इसमें सम्मिलित की जाने वाली समस्त मदों का वास्तविक रूप में लेन-देन किया जाता है। इन मदों का अर्थव्यवस्था के आय, उत्पादन व रोज़गार पर सीधा प्रभाव पड़ता है।

> **चालू खाते का भुगतान शेष = (दृश्य + अदृश्य निर्यात) – (दृश्य + अदृश्य आयात)**
> Balance of Payments on Current Account = (Visible + Invisible Exports) – (Visible + Invisible Imports)

चालू खाते का भुगतान शेष, संतुलित या असंतुलित – (घाटे के रूप में या आधिक्य के रूप में) दोनों रूपों में हो सकता है। इस असंतुलन को प्राय: पूंजी खाते के माध्यम से संतुलित किया जाता है।

(2) पूंजी खाता (Capital Account)

पूंजी खाता वित्तीय लेन-देन से सम्बन्धित है। सभी प्रकार के अल्प व दीर्घकालीन अन्तर्राष्ट्रीय पूंजीगत अन्तरणों (Capital Transfers), स्वर्ण का आदान-प्रदान, निजी-भुगतान, राष्ट्रीय संस्थाओं से सम्बन्धित भुगतान तथा प्राप्तियां तथा सरकारी ऋण,

ब्याज, अनुदान आदि को पूंजी खाते में शामिल किया जाता है। **पूंजी खाते में सभी लेन-देन केवल वित्तीय अन्तरणों से ही सम्बन्धित होते हैं।** इसलिये इसका देश के उत्पादन, आय व रोज़गार पर कोई सीधा प्रभाव नहीं पड़ता।

(3) समुचित भुगतान शेष (Overall Balance of Payments)

देश के चालू खाते व पूंजी खाते के कुल जोड़ को समुचित भुगतान शेष कहा जाता है। समुचित भुगतान शेष सदैव ही संतुलन में होता है क्योंकि चालू खाते के घाटे या आधिक्य को पूंजी खाता पूर्ण कर देता है और इसी प्रकार पूंजी खाते को चालू खाता।

■ 6. भुगतान शेष के भाग अथवा मदें (Components or Items of Balance of Payments)

जैसा कि ऊपर वर्णित किया जा चुका है कि भुगतान शेष के मुख्य दो भाग होते हैं। (1) चालू खाता एवं (2) पूंजी खाता। इन दोनों लेखों में सम्मिलित की जाने वाली मदों को भुगतान संतुलन के अनुभाग (Component) या मदें (Items) कहा जाता है। प्रत्येक खाते के अनुभागों या मदों का विवरण निम्न प्रकार है:

■ 6.1 चालू खाते की मदें (Components or Items of Current Account)

चालू खाते में मुख्यत: निम्नलिखित मदों को शामिल किया जाता है: (i) वस्तुओं का निर्यात तथा आयात (अथवा दृश्य मदें); (ii) सेवाओं का निर्यात तथा आयात (अथवा अदृश्य मदें) तथा (iii) एक देश से दूसरे देश को एक पक्षीय अन्तरण (Unilateral Transfers)। इसका विस्तार सहित विवरण नीचे दिया गया है:

(1) दृश्य वस्तुओं का आयात व निर्यात (Export and Import of Visible Goods)

दृश्य भौतिक वस्तुओं व बहुमूल्य धातुओं का आयात व निर्यात – अर्थात् व्यापार शेष में शामिल समस्त वस्तुएं चालू खाते की मुख्य मदें होती हैं।

(2) अदृश्य मदें-सेवाएं (Invisible items - Services)

अदृश्य वस्तुएं जैसे कि विभिन्न प्रकार की सेवाओं का आदान-प्रदान भी चालू खाते में शामिल किया जाता है। मुख्य अदृश्य मदें निम्नलिखित हैं:

सेवाएं (Services): मुख्य अदृश्य मदें (सेवाएं) निम्नलिखित हैं:

(i) व्यापारिक कम्पनियों की सेवाएं (Services Rendered by Commercial Undertakings): किसी देश विशेष की या विदेशों की व्यापारिक कम्पनियां जैसे कि जहाजरानी कम्पनियां, बीमा कम्पनियां व बैंक इत्यादि एक दूसरे देशों में अपनी सेवाओं का आदान-प्रदान करते रहते हैं। इन सेवाओं के आदान-प्रदान को चालू खाते में शामिल किया जाता है।

(ii) विशेषज्ञों की सेवाएं (Services of Experts): प्राय: प्रत्येक देश दूसरे देशों के विशेषज्ञों जैसे कि डाक्टरों, इन्जीनियरों व सैनिक इत्यादि की सेवाओं को प्राप्त करता है और अपने देश के विशेषज्ञों को दूसरे देशों में भेजता रहता है। इस प्रकार एक देश जो बाहरी सेवाएं प्राप्त करता है उस देश के लिये ये सेवाएं आयात के समान होती हैं और जो देश दूसरे देशों को ऐसी ही सेवाएं प्रदान करता है वे निर्यात के समान होती हैं।

(iii) यात्राएं (Travellings): यात्राएं भी भुगतान शेष की एक मुख्य अदृश्य मद होती हैं। यात्राएं किसी भी प्रकार से या कारण से की जा सकती हैं- जैसे कि व्यापार, शिक्षा, स्वास्थ्य, कन्वेन्शन या मनोरंजन आदि के लिये। जिस देश में यात्राएं की जाती हैं उसके लिये निर्यात व दूसरे देश के लिए आयात समान मानी जाती हैं।

(iv) यातायात एवं परिवहन (Transportation): वस्तुओं का अन्तर्राष्ट्रीय परिवहन व यातायात एक अदृश्य मद के रूप में चालू भुगतान शेष को प्रभावित करता है। घरेलू यातायात व परिवहन का विदेशियों द्वारा प्रयोग निर्यात तुल्य व विदेशी यातायात का स्वदेशियों द्वारा प्रयोग आयात के समान प्रभावी होता है।

(v) निवेश आय (Investment Income): ब्याज, लगान, लाभांश एवं लाभ भी भुगतान शेष की एक मद होते हैं। जब देश विदेशों में किये गये निवेशों से आय प्राप्त करता है तो यह उसके प्राप्ति पक्ष में और जब विदेशी निवेश देश से आय अर्जित करता है तो यह भुगतान पक्ष में लिखा जाता है।

(vi) सरकारी लेन-देन (Governmental Transactions): प्रत्येक सरकार विदेशों में अपने दूतावास, हाई कमिश्नर व अन्य प्रकार के मिशनों की स्थापना करती है एवं उनके रख-रखाव पर व्यय करती है। इन संस्थाओं पर किया गया व्यय प्रत्येक देश के लिए भुगतान पक्ष में गिना जाता है। इसके अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं को दिये गये चन्दे इत्यादि भी इसी कोटि में आते हैं।

(vii) दान व उपहार (Donations and Gifts): विदेशों से प्राप्त दान व उपहार आदि प्राप्ति पक्ष और अन्य देशों को दिये गये दान व उपहार भुगतान पक्ष में रखे जाते हैं।

(viii) मिश्रित (Miscellaneous): विज्ञापन (Advertisement), कमीशन, किराये, पेटेन्ट फीस, रायल्टियां, सदस्यता शुल्क आदि मिश्रित मदें कहलाती हैं और अदृश्य मदें होती हैं। विदेशों से प्राप्त ऐसी रकमें प्राप्तियां (Credit Item) होती हैं और विदेशों को दी गई ऐसी रकमें भुगतान (Debit Item) होती हैं।

(3) एक पक्षीय अन्तरण (Unilateral Transfers)

ये अन्तरण एक देश से दूसरे देश को एक तरफा किए जाते हैं। इनका व्यापारिक लेन-देन (Trading Transactions) से कोई संबंध नहीं होता, अर्थात् प्राप्तियों के बदले कोई भुगतान नहीं किए जाते।

महत्त्वपूर्ण अवलोकन (Important Observation).

भुगतान शेष के चालू खाते के संदर्भ में कुछ महत्त्वपूर्ण अवलोकन इस प्रकार हैं:

(i) **सभी निर्यातों** (वस्तुओं तथा सेवाओं) **को धनात्मक** (+) मदों में गिना जाता है क्योंकि इनके फलस्वरूप देश में विदेशी विनिमय का प्रवाह होता है।

(ii) **सभी आयातों** (वस्तुओं और सेवाओं) **को ऋणात्मक** (–) मदों में गिना जाता है क्योंकि इनके परिणामस्वरूप विदेशी विनिमय का प्रवाह देश के बाहर होता है।

(iii) वस्तुओं के निर्यात और आयात के शेष को दृश्यगत व्यापार का शेष कहा जाता है।

(iv) सेवाओं के निर्यात तथा आयात के शेष को अदृश्य व्यापार का शेष कहा जाता है।

(v) एक पक्षीय प्राप्तियों को धनात्मक मदें माना जाता है।

(vi) एक पक्षीय भुगतानों को ऋणात्मक मदें माना जाता है।

(vii) तीनों शेषों (i) दृश्य व्यापार शेष (ii) अदृश्य व्यापार शेष तथा (iii) एक पक्षीय अन्तरण शेष के शुद्ध मूल्य (Net Value) को चालू खाते का शेष कहा जाता है।

■ 6.2 पूंजी खाता (Capital Account)

पूंजीगत खाता वह खाता है जो एक देश के निवासियों एवं शेष संसार के निवासियों के द्वारा किए गए उन सब लेनदेनों से संबंधित हैं जिनसे किसी देश की सरकार और निवासियों की परिसम्पत्तियों और दायित्वों में परिवर्तन होता है। (Capital Account is that account which records all such transactions between residents of a country and rest of the world which cause a change in the asset or liability status of the residents of a country or its government.)

■ पूंजी खाते की मदें (Components of Capital Account)

पूंजी खाते की मुख्य मदें निम्नलिखित हैं:

(1) **निजी विदेशी ऋण प्रवाह** (Private Foreign Loan Flow): निजी क्षेत्र द्वारा प्राप्त किये गये विदेशी ऋण (Foreign Loans) जमा मद व वापिस किये गये ऋण- नाम मद में गिने जाते हैं।

(2) **बैंक पूंजी प्रवाह** (Movement in Banking Capital): केन्द्रीय बैंक के अतिरिक्त, बैंकिंग पूंजी का अन्तर प्रवाह (Inflow) जमा मद में और बाह्य प्रवाह (Outflow) नाम मद में गिनती किया जाता है।

(3) **सरकारी पूंजी का लेन-देन** (Official Capital Transactions): सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा विदेशों से व अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) से प्राप्त ऋण जमा खाते (Credit Items) में और वापिस किये गये ऋणों को नाम खाते (Debit Items) में दर्शाया जाता है।

(4) **कोष एवं मौद्रिक सोना** (Reserve, Monetary Gold and SDR): सरकारी विदेशी मुद्रा सम्पत्तियां, केन्द्रीय बैंक के स्वर्ण भंडार, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से क्रय किए गए SDR व ऐसे ही दूसरे पूंजी व्यापार में परिवर्तन आदि, जमा पक्ष तथा इन मदों से सम्बन्धित समस्त प्रकार के भुगतान नाम पक्ष को प्रकट करते हैं।

(5) **स्वर्ण प्रवाह** (Gold Movement): जब एक देश का बैंक विदेशों से सोने का क्रय करता है तो वह विदेशी विक्रेताओं को भुगतान करता है इसलिये उसको अपने भुगतान शेष में देनदारी पक्ष एवं इसके विपरीत यदि वह स्वर्ण विक्रय करता है तो लेनदारी पक्ष में दर्शाता है।

(6) **मिश्रित** (Miscellaneous): उपरोक्त मदों के अतिरिक्त अन्य सभी प्रकार की समस्त सरकारी पूंजी प्राप्तियां जिनमें केन्द्रीय बैंक की प्राप्तियां भी सम्मिलित हैं, जमा मद (Credit Side) एवं ऐसे वे समस्त प्रकार के भुगतान नाम मद (Debit Side) में आते हैं।

■ महत्त्वपूर्ण अवलोकन (Important Observations)

(i) वे सभी पूंजीगत लेन-देन (सौदे) जिनके कारण विदेशी विनिमय का प्रवाह देश में होता है उन्हें भुगतान शेष के पूंजी खाते में **धनात्मक मदों** (Positive Items) के रूप में लिखा जाता है।

उदाहरण: शेष विश्व से ऋण अथवा गैर-निवासियों द्वारा हमारे देश में प्रत्यक्ष निवेश।

(ii) वे सभी पूंजीगत लेन-देन (सौदे) जिनके कारण विदेशी विनिमय का प्रवाह देश से बाहर को जाता है उन्हें भुगतान शेष के पूंजी खाते में **ऋणात्मक मदों** (Negative Items) के रूप में लिखा जाता है।

उदाहरण: टाटा कम्पनी द्वारा विदेश में किसी फर्म को खरीदना।

(iii) (a) **प्रत्यक्ष निवेश** तथा (b) **पोर्टफोलियो निवेश** के शुद्ध मूल्य को पूंजी खाते के शेष में लिखा जाता है।

■ 7. भुगतान शेष की अन्य मदें - चालू तथा पूंजी खाते की मदों के अतिरिक्त
(Other items of BOP - Other than the items of Current and Capital Accounts)

(i) **भूल-चूक** (Errors and Omissions): भूल-चूक भुगतान शेष के खातों में सन्तुलन लाने वाली एक मद है। सौदों की संख्या अत्यधिक होने के कारण प्राय: यह सम्भव नहीं होता कि सभी का 100% सही-सही रिकार्ड रखा जाए। इसलिए भूल-चूक सौदों का रिकार्ड रखने में हुई गलती को दर्शाने वाली मद होती हैं।

(ii) **सरकारी रिजर्व सौदे** (Official Reserve Transactions): सरकारी रिजर्व सौदे भुगतान शेष के अन्य सभी सौदों से भिन्न होते हैं। ये सौदे अलग इसलिये हैं क्योंकि:

(a) ये सौदे केवल सरकार **या सरकार की ओर से देश के केन्द्रीय बैंक द्वारा किए जाते हैं**; और

(b) ये सौदे **अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक नीति** को ध्यान में रख कर किए जाते हैं।

फलस्वरूप सरकारी रिज़र्व सौदों का देश के भुगतान शेष पर या शेष विश्व के साथ उस की विनिमय दर पर प्रभाव पड़ता है।

इसमें निम्नलिखित सौदों को सम्मिलित किया जाता है:

(i) देश के 'सरकारी रिजर्व' ('Official Reserves' of the Country): अर्थात् सरकार के पास विदेशी विनिमय के रिजर्व। विदेशों में सरकार के खर्चों को पूरा करने के लिए ये रिज़र्व बढ़ भी और घट भी सकते हैं। "रिजर्व" के घटने का अर्थ है विदेशी विनिमय का क्रय और इसके बढ़ने का अर्थ है विदेशी विनिमय का विक्रय। सरकारी रिज़र्व में परिवर्तन करके सरकार विदेशी विनिमय की पूर्ति/मांग की स्थिति में परिवर्तन लाती है। ऐसा अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा बाजार में विनिमय दर को प्रभावित करने के लिए भी किया जा सकता है।

> **महत्त्वपूर्ण** (Important)
> भुगतान शेष में सरकारी रिज़र्व में होने वाली कमी को धनात्मक (+) मद के रूप में दिखाया जाता है क्योंकि उनके विक्रय से विदेशी विनिमय का प्रवाह देश के अन्दर होता है। इसके विपरीत, सरकारी रिजर्व में वृद्धि को ऋणात्मक (–) मद के रूप में दिखाया जाता है क्योंकि उनके क्रय (विदेशी विनिमय द्वारा) से विदेशी विनिमय का प्रवाह देश के बाहर होता है।

(ii) हमारे देश में शेष विश्व की सरकारी परिसम्पत्तियाँ (Official Assets of the Rest of the World in Our Economy): इन परिसम्पत्तियों में वृद्धि का सामान्यत: अर्थ रुपयों के रिज़र्व में वृद्धि है। गैर-निवासियों को अपने रुपयों के रिज़र्व बढ़ाने के लिए विदेशी विनिमय को खर्चना होता है। अत: इस रिजर्व में वृद्धि को भुगतान शेष के खाते में धनात्मक (+) मद के रूप में दिखाया जाता है। इसके विपरीत, इस रिजर्व में कमी के कारण विदेशी विनिमय का प्रवाह देश के बाहर होने लगता है अत: इसे भुगतान शेष के खाते में ऋणात्मक (–) मद के रूप में दिखाया जाता है।

■ 7.1 भुगतान शेष की स्वायत्त या स्वप्रेरित तथा समायोजक मदें
(Autonomous and Accommodating Items in BOP)

भुगतान शेष के खाते में दो प्रकार की मदों के समूह पाए जाते हैं, जैसे- (i) स्वायत्त मदें तथा (ii) समायोजक मदें। इनका उल्लेख इस प्रकार है:

● **स्वायत्त या स्वप्रेरित मदें** (Autonomouns Items)

ये भुगतान शेष के खाते की वे मदें हैं:

(i) जिनका सम्बन्ध ऐसे सौदों से होता है जो लाभ को अधिकतम करने के उद्देश्य द्वारा निर्धारित किए जाते हैं।

(ii) जिनका संबंध देश के भुगतान शेष की स्थिति- धनात्मक/ऋणात्मक अथवा अनुकूल/प्रतिकूल- से नहीं होता।

(iii) जिनका उद्देश्य भुगतान शेष की समानता स्थापित करना नहीं होता।

> **भुगतान शेष में स्वायत्त मदों को प्राय: 'रेखा के ऊपर की मदें' कहा जाता है।**

● **समायोजक मदें** (Accommodating Items)

समायोजक मदें भुगतान शेष के खाते की वे मदे हैं:

(i) जिनका संबंध ऐसे सौदों से नहीं होता जो लाभ को अधिकतम करने के उद्देश्य द्वारा निर्धारित किए जाते हैं।

(ii) जिनका संबंध देश के भुगतान शेष की धनात्मक अथवा ऋणात्मक स्थिति से होता है।

> **भुगतान शेष की स्वायत्त तथा समायोजक मदों में मूल अन्तर**
> दोनों मदों में मूल अन्तर इस प्रकार है: जबकि भुगतान शेष के घाटे या बचत का कारण स्वायत्त मदें (आर्थिक उद्देश्यों द्वारा निर्धारित) होती हैं; समायोजक मदों का उद्देश्य भुगतान शेष की समानता को बनाए रखना होता है। समायोजक मदों के कारण ही भुगतान शेष सदा संतुलन में बना रहता है। **उदाहरण:** यदि BOP का चालू खाता घाटे वाला होता है (स्वायत्त मदों के कारण) तो सरकार BOP की समानता (Identity) को पुन: स्थापित करने के लिए IMF या विश्व बैंक से घाटे की राशि के बराबर ऋण लेती है। (ऐसे ऋण को ही समायोजक मद कहा जाता है)।

(iii) जिनका उद्देश्य भुगतान शेष की **समानता** (Identity) स्थापित करना होता है।

भुगतान शेष के खातें में समायोजक मदों को प्राय: 'रेखा के नीचे की मदें' कहा जाता है।

भुगतान संतुलन का विवरण पत्र (रू० करोड़ों में)

लेनदारी **(Receipt or Credit)**	देनदारी **(Payment or Debit)**
चालू खातें की मदें **(Items or Components of Current Accounts)**	
(1) वस्तुओं का निर्यात	(1) वस्तुओं का आयात
(2) सेवायें (निर्यात)	(2) सेवायें (आयात)
(i) स्वदेशी व्यापारिक कम्पनियों द्वारा प्रदत्त सेवाएं	(i) विदेशी कम्पनियों द्वारा प्रदत्त सेवायें
(ii) स्वदेशी विशेषज्ञों की सेवायें	(ii) विदेशी विशेषज्ञों की सेवायें
(3) विदेशियों द्वारा यात्रायें	(3) स्वदेशियों द्वारा यात्रायें
(4) घरेलू परिवहन व यातायात का विदेशी प्रयोग	(4) विदेशी परिवहन व यातायात का स्वदेशी प्रयोग
(5) विदेशों से स्वदेशी निवेश आय	(5) स्वदेश से विदेशियों को निवेश आय
(6) स्वदेश में विदेशी सरकारी खर्च	(6) विदेश में स्वदेशी सरकारी खर्च
(7) विदेशों से प्राप्त दान तथा उपहार	(7) विदेशियों को दिये दान तथा उपहार
(8) स्वदेश में विदेशी मिश्रित खर्च	(8) विदेशों में स्वदेशी मिश्रित खर्च
(9) शेष विश्व से एक पक्षीय अन्तरण	(9) शेष विश्व को एक पक्षीय अन्तरण, जैसे उपहार तथा अनुदान
पूंजी खातें की मदें **(Items or Components of Capital Accounts)**	
(10) विदेशी निजी ऋणों की प्राप्ति	(10) स्वदेशी निजी ऋणों की वापसी
(11) बैंकिंग पूंजी का आन्तरिक प्रवाह	(11) बैंकिंग पूंजी का बाह्य प्रवाह
(12) सरकारी क्षेत्र द्वारा प्राप्त ऋण	(12) सरकारी क्षेत्र द्वारा ऋणों का भुगतान
(13) रिज़र्व एवं मौद्रिक स्वर्ण प्राप्तियां	(13) रिज़र्व एवं मौद्रिक स्वर्ण अन्तरण भुगतान
(14) स्वर्ण अन्तर विक्रय	(14) स्वर्ण क्रय
(15) पूंजीगत प्राप्तियां	(15) पूंजीगत भुगतान

■ 8. भुगतान शेष सदैव संतुलित रहता है (Balance of Payments Always Balances)

सामान्यत: यह माना जाता है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहारों (Transactions) के सम्बन्ध में देश का भुगतान शेष सदैव संतुलन में रहता है क्योंकि दोहरी लेखा विधि (Double Entry System) के अनुसार प्राप्तियां (Receipts) व भुगतान (Payments) जिसे

साधारण भाषा में लेनदारियां व देनदारियां कहा जाता है, सदैव एक-दूसरे के समान होती हैं। इस विषय की निम्नलिखित दृष्टिकोणों से व्याख्या की जा सकती है:

(1) **लेखांकन दृष्टि से भुगतान शेष** (Balance of Payments in Accounting Sense)

(2) **व्यावहारिक दृष्टि से भुगतान शेष** (Balance of Payments in Operational Sense)

(1) **लेखांकन दृष्टि से भुगतान शेष** (Balance of Payments in Accounting Sense): लेखांकन की दृष्टि से देश का भुगतान शेष सदैव संतुलन में रहता है क्योंकि भुगतान शेष लेखे हमेशा दोहरी अंकन प्रणाली के आधार पर तैयार किये जाते है। इस विधि के अनुसार प्राप्ति पक्ष (Receipts Side) सदैव भुगतान पक्ष (Payment Side) के बराबर रहता है। अत: इस दृष्टि से भुगतान शेष सदैव संतुलन में रहता है।

(2) **व्यावहारिक दृष्टि से भुगतान शेष** (Balance of Payments in Operational Sense): प्रचालन अथवा व्यावहारिक दृष्टिकोण से यह आवश्यक नहीं है कि भुगतान शेष सदैव संतुलन में ही हो, यह असंतुलित भी हो सकता है। व्यावहारिक दृष्टिकोण से भुगतान शेष को आर्थिक संतुलन (Economic Balance) भी कहा जाता है। जब चालू खाते (Current Account) में घाटा या आधिक्य (Deficit or Surplus) हो तो पूंजी खाते (Capital Account) की सहायता से उसमें संतुलन स्थापित किया जाता है अर्थात् चालू खाते के घाटे को पूंजी खाते के आधिक्य से संतुलित किया जाता है और चालू खाते के आधिक्य से पूंजी खाते के घाटे को पूरा किया जाता है। इस प्रकार चालू खाते और पूंजी खाते के अन्तरणों (Transfers) से भुगतान शेष को संतुलित किया जाता है।

टॉजिग के अनुसार, "**किसी देश के व्यापार का प्रवाह ज्वार-भाटे की तरह है। यह बहुत काल तक एक ही दिशा में नहीं रह सकता। शीघ्रता से या देर से उसे बदलना ही है। कारण कि एक देश से धात्विक मुद्रा दूसरे देश को चली जाएगी तो आर्थिक शक्तियां इस तरह कार्य करने लगेंगी कि व्यापार पुन: पूर्व स्थिति को वापिस होने लगेगा।**" (The current of trade can not forever continue in one direction any more than the tide of the sea; sooner or later it must change, and after metallic money has been taken out of a country, there are natural forces which tend to bring it back again –**Taussig**)। विदेशी व्यापार की इस प्रक्रिया में यह आवश्यक नहीं कि किसी देश का भुगतान शेष प्रत्येक दूसरे के साथ, जिससे कि उसका व्यापारिक सम्बन्ध है, पृथक रूप में सन्तुलन की स्थिति में रहे। यह आवश्यक नहीं है और व्यावहारिक जीवन में ऐसा होता भी नहीं है। व्यावहारिक जीवन में भारत का भुगतान शेष इंग्लैड के साथ **अनुकूल** (Favourable) और अमेरिका के साथ **प्रतिकूल** (Unfavourable) हो सकता है। परन्तु कुल मिला कर अर्थात् सभी देशों के साथ एक निश्चित अवधि में भुगतान शेष अवश्य सन्तुलित होना चाहिए।

अत: निष्कर्ष स्वरूप यह कहा जा सकता है कि चालू खाते का भुगतान शेष सदैव सन्तुलित नहीं होता यह घाटे का या प्रतिकूल (Unfavourable) या पक्ष का (Favourable) हो सकता है परन्तु समुचित दृष्टिकोण से समुचित भुगतान शेष (Overall balance of payments) सदैव संतुलित ही रहता है या किया जाता है इसे तालिका 1 द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। सांकेतिक भाषा (Symbolically) में

व्यापार शेष	=	**चालू शेष**	+	**पूंजी शेष**
(X – M)	=	S + E + U		+ C + G = 0

X = निर्यात (Exports)

M = आयात (Imports)

S = शुद्ध निर्यातित सेवायें (Net Exported Services)

E = शुद्ध विदेशी निवेश आय (Net Income from Foreign Investments)

U = शुद्ध एक पक्षीय प्राप्तियां (Net Unilateral Transfers Receipts)

C = शुद्ध पूंजी अन्तर प्रवाह (Net Capital Inflow)

G = शुद्ध स्वर्ण विक्रय (Net Sale of Gold)

तालिका 1. भुगतान शेष

लेनदारी (Credit)		देनदारी (Debit)	
1. वस्तुओं का निर्यात	550	1. वस्तुओं का आयात	800
2. सेवाओं का निर्यात (बैंकिंग, शिपिंग, बीमा, टूरिज्म आदि)	150	2. सेवाओं का आयात (बैंकिंग, शिपिंग, बीमा, टूरिज्म आदि)	50
3. शेष विश्व से हस्तांतरण भुगतान (उपहार, सहायता आदि)	100	3. शेष विश्व को हस्तांतरण भुगतान (उपहार, सहायता आदि)	80
4. पूंजीगत प्राप्तियां (कर्जे, विदेशियों को सम्पत्ति की बिक्री, पूंजी की प्राप्ति आदि)	200	4. पूंजीगत भुगतान (विदेशियों को ऋण, विदेशियों से परिसम्पत्ति की प्राप्ति, विदेशियों की पूंजी का भुगतान) आदि	70
कुल प्राप्तियां	1,000	कुल देनदारियां	1,000

उपरोक्त तालिका से ज्ञात होता है कि **लेखांकन की दृष्टि** (Accounting Sense) से भुगतान शेष सन्तुलित है क्योंकि कुल प्राप्तियां तथा कुल देनदारियां एक-दूसरे के बराबर (1,000) हैं। इस तालिका का विश्लेषण करने से निम्नलिखित तथ्य प्रकट होते हैं:

(1) व्यापार शेष (Balance of Trade): व्यापार शेष वस्तुओं के निर्यात तथा आयात का अन्तर है। यह सदैव सन्तुलित नहीं होता। यह सन्तुलित भी हो सकता है तथा असन्तुलित भी हो सकता है। **असन्तुलन की स्थिति में** यह घाटे (Deficit) का या प्रतिकूल अथवा आधिक्य (Surplus) या अनुकूल का हो सकता है।

उपरोक्त तालिका से ज्ञात होता है कि व्यापार शेष अर्थात् **वस्तुओं का निर्यात** (दृश्य निर्यात Visible Exports) तथा **वस्तुओं के आयात** (दृश्य आयात Visible Imports) का अन्तर ऋणात्मक है अर्थात् आयात अधिक है तथा निर्यात कम है। अन्य शब्दों में यह कहा जा सकता है कि

व्यापार शेष = वस्तुओं के निर्यात − वस्तुओं के आयात = 550 − 800 करोड़ = (− 250 करोड़) (प्रतिकूल)

अर्थात् व्यापार शेष **घाटे का** या प्रतिकूल है। यह **असन्तुलित** है।

(2) चालू खाते का भुगतान शेष (Balance of Payments on Current Account): चालू खाते का भुगतान शेष, व्यापार शेष की तुलना में एक विस्तृत धारणा है। इसमे (a) व्यापार शेष के अतिरिक्त (b) सेवाओं के निर्यात् तथा आयात का अन्तर और (c) हस्तांतरण भुगतान की प्राप्तियों तथा देनदारियों का अन्तर भी शामिल होता है। यह भी **असन्तुलित** हो सकता है अर्थात् सदैव सन्तुलित नहीं होता। उपरोक्त तालिका से ज्ञात होता है कि

चालू खाते का भुगतान शेष (Balance of Payments) = **व्यापार शेष** (वस्तुओं का निर्यात् − वस्तुओं का आयात) + **सेवाओं का शेष** (सेवाओं का निर्यात − सेवाओं का आयात) + **हस्तांतरण शेष** (हस्तांतरण प्राप्तियां − हस्तांतरण भुगतान)

= (550 − 800) + (150 − 50) + (100 − 80)

= (−) 250 + 100 + 20 **करोड़** = **(−) 130 करोड़**

अतएव चालू खाते का भुगतान शेष घाटे (– 130 करोड़) का है अर्थात असन्तुलित है।

(3) पूंजीगत खाते के भुगतान शेष (Balance of Payment on Capital Account): पूंजीगत खाते का भुगतान शेष पूंजी की प्राप्ति तथा भुगतान का अन्तर है। पूंजी की प्राप्ति में उन सब सौदों को शामिल किया जाता है जिनसे विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है जैसे विदेशों से प्राप्त ऋण, विदेशियों को बेची गई परिसम्पत्ति, विदेशियों को दिये गये ऋणों की वापसी (Repayment by Foreigners), सोने तथा विदेशी मुद्रा के स्टॉक में परिवर्तन आदि। इसके विपरीत पूंजी के भुगतान में उन सब सौदों को शामिल किया जाता है जिनके फलस्वरूप विदेशी मुद्रा देश से बाहर जाती है। इसके अन्तर्गत विदेशों को दिए गये कर्जे, विदेशियों को उनसे लिये गये कर्जों की वापसी, विदेशों में खरीदी गई परिसम्पत्ति आदि। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित दो तथ्य महत्त्वपूर्ण हैं:

पूंजीगत खाते का भुगतान शेष = 200 –70 = + 130

(1) यदि विदेशी किसी देश में कोई कम्पनी या कोई सम्पत्ति खरीदता है तो इसे **पूंजी का आयात** (Import of Capital) माना जायेगा। इसका कारण यह है कि इस सौदे के फलस्वरूप देश की ओर विदेशी पूंजी का प्रवाह होगा। इसके विपरीत यदि कोई देश, विदेश में कोई कम्पनी या परिसम्पत्ति खरीदता है तो इसे **पूंजी का निर्यात** (Export of Capital) कहा जायेगा। अतएव् एक देश दो प्रकार से विदेशी मुद्रा प्राप्त कर सकता है: (1) वस्तुओं तथा सेवाओं का निर्यात् कर के तथा (2) पूंजी का आयात करके। इसी प्रकार एक देश दो प्रकार से विदेशी मुद्रा का प्रयोग कर सकता है। (i) वस्तुओं तथा सेवाओं का आयात करके तथा (ii) पूंजी का निर्यात करके। **अन्य शब्दों में वस्तुओं तथा सेवाओं के निर्यात और पूंजी के आयात को लेनदारी (Credit) की ओर, और वस्तुओं तथा सेवाओं के आयात और पूंजी के निर्यात् को देनदारी (Debit) की ओर लिखा जाता है।**

(2) व्यापार शेष तथा चालू खाते का भुगतान शेष प्रवाह सम्बन्धी धारणायें (Flow Concepts) हैं। इनका सम्बन्ध समय की एक निश्चित अवधि अर्थात् प्रतिवर्ष या प्रतिमाह से है। इसके विपरीत **पूंजीगत खाते का भुगतान शेष एक स्टॉक** धारणा है। इसका सम्बन्ध समय के एक निश्चित बिन्दु से है। इसमें से आवश्यकता के अनुसार धनराशि निकाली जा सकती है।

उपरोक्त तालिका 1 से निम्नलिखित विदेश शेष (External Balances) ज्ञात होते हैं।

(1) **व्यापार शेष** (Balance of Trade) (वस्तुओं का निर्यात – वस्तुओं का आयात)	550 – 800 = – 250
(2) **सेवाओं का शेष** (Balance of Services)	150 – 50 = 100
(3) **हस्तांतरण भुगतानों का शेष** (Balance of Transfer Payments)	100 – 80 = 20
(4) **चालू खाते का भुगतान शेष** (Balance of Payments on Current Account)	800 – 930 = – 130
(5) **पूंजीगत खाते का भुगतान शेष** (Balance of Payments on Capital Account)	200 – 70 = 130
(6) **समुचित भुगतान शेष** (Overall Balance of Payments)	1,000 – 1,000 = 0

उपरोक्त विवरण से ज्ञात होता है कि लेखांकन की दृष्टि से भुगतान शेष सदैव सन्तुलित होगा क्योंकि चालू खाते के भुगतान शेष में जो कमी या आधिक्य होगा, उसे पूंजीगत खाते के भुगतान शेष से सन्तुलित किया जाता है। अतएव् यह प्रश्न उठता है कि भुगतान शेष **किस दृष्टि से असन्तुलित हो सकता है?** उपरोक्त तालिका से ज्ञात होता है कि देश में पूंजी का प्रवाह 200 के बराबर है। इसमें से 70 तो विदेशियों को देश में परिसम्पत्ति बेच कर प्राप्त किया गया परन्तु बाकी 130 देश की विदेशी मुद्रा के कोष को कम करके या विदेशों से उधार ले कर प्राप्त की गई है। **यह राशि ही भुगतान शेष के घाटे की सूचक है।**

अतएव भुगतान शेष के असन्तुलन से अभिप्राय चालू खाते के उस घाटे या आधिक्य से है जिसे पूंजीगत खाते में विदेशी मुद्रा के रिजर्व को कम करके, सोने का निर्यात करके या विदेशों से ऋण लेकर पूरा किया जाता है।

■ 9. भुगतान शेष में असंतुलन (Disequilibrium in Balance of Payment)

जैसा कि ऊपर वर्णन किया गया है कि लेखांकन की दृष्टि से भुगतान शेष सदैव सन्तुलन में ही रहता है, परन्तु व्यवहार में कभी-कभी इसके विपरीत भी होता रहता है। कई कारणों से, विशेष कर आयात-निर्यात मूल्यों के अन्तरों के कारण, भुगतान शेष में असंतुलन उत्पन्न हो जाया करते हैं। असंतुलन कभी ऋणपक्ष (Minus Side) अर्थात् घाटा या प्रतिकूल दिशा (Unfavourable) की ओर, और कभी-कभी धनात्मक पक्ष (Plus Side) अर्थात् आधिक्य या अनुकूल (Favourable) पक्ष की ओर हो जाता है। प्रतिकूल या अनुकूल भुगतान शेष को निम्न प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है:

प्रतिकूल व अनुकूल भुगतान शेष (Unfavourable or Favourable Balance of Payments): **जब देश में देनदारियां (भुगतान), लेनदारियों (प्राप्तियों) से अधिक हो जाती हैं तो भुगतान शेष को प्रतिकूल कहा जाता है और इसके विपरीत जब देनदारियां (भुगतान), लेनदारियों (प्राप्तियों) से कम होती हैं तो भुगतान शेष को अनुकूल शेष कहा जाता है अर्थात् भुगतान शेष तीन प्रकार का हो सकता है।**

(1) **संतुलित भुगतान शेष** (Balanced Balance of Payments): जब किसी देश की कुल प्राप्तियां या निर्यात (दृश्य तथा अदृश्य) तथा कुल देनदारियां तथा आयात (दृश्य तथा अदृश्य) बराबर होते हैं तो भुगतान शेष संतुलित होता है।

$$\boxed{B = R - P = 0}$$

(यहां B = संतुलित भुगतान शेष; R = प्राप्तियां या निर्यात; P = भुगतान या आयात।)

(2) **पक्ष का भुगतान शेष** (Favourable Balance of Payments): जब किसी देश की प्राप्तियों तथा भुगतान को बराबर करने के लिए देश में सोने की प्राप्ति होती है या अल्पकालीन ऋण देना पड़ता है तो भुगतान से प्राप्तियां अधिक होती हैं तथा भुगतान शेष पक्ष का होता है।

$$\boxed{B_F = R - P > 0}$$

(यहाँ B_F = पक्ष का भुगतान शेष; $R - P > 0$ = प्राप्ति, भुगतान से अधिक है अर्थात् इसका अन्तर धनात्मक है।

(3) **विपक्ष या घाटे का भुगतान शेष** (Unfavourable Balance of Payments): भुगतान शेष तब घाटे का सौदा होता है जब किसी देश को अपनी प्राप्ति तथा भुगतान को बराबर करने के लिये स्वर्ण देना पड़ता है या अल्पकालीन ऋण लेने पड़ते हैं।

$$\boxed{B_u = R - P < 0}$$

(यहां B_u = विपक्ष का भुगतान शेष; $R - P < 0$ = प्राप्ति भुगतान से कम है अर्थात् इनका अन्तर ऋणात्मक है।

संक्षेप में, यदि भुगतान शेष की देनदारी को पूरा करने के लिये विदेशों को सोना देना पड़ता है या अल्पकालीन कर्जे लेने पड़ते हैं तो भुगतान शेष **विपक्ष** (Unfavourable) का है। इसके विपरीत यदि लेनदारी को पूरा करने के लिये विदेशों से सोना प्राप्त होता है या विदेशों को अल्पकालीन ऋण देने पड़ते हैं तो भुगतान शेष पक्ष (favourable) का माना जायेगा।

■ 10. असंतुलन के प्रकार (Types of Disequilibrium)

भुगतान शेष के असंतुलन मुख्यत: निम्न प्रकार के हो सकते हैं:

(1) **चक्रीय असन्तुलन** (Cyclical Disequilibrium): व्यापार चक्रों के कारण से उत्पन्न होने वाले असंतुलनों को चक्रीय असंतुलन कहा जाता है। व्यापार चक्रों के कारण व्यापार की शर्तों (Terms of Trade) और व्यापार के विकास (Growth of Trade)

में परिवर्तन आ जाते हैं। जिसके कारण भुगतान शेष प्रभावित होता है। चक्रीय असंतुलन को आयात-निर्यात समायोजन द्वारा सुधारा जा सकता है।

(2) स्थायी असंतुलन (Secular Disequilibrium): अर्थव्यवस्था में गहन परिवर्तनों के कारण, भुगतान शेष में स्थायी या दीर्घकालीन असंतुलन उत्पन्न हो जाते हैं।

(3) संरचनात्मक असंतुलन (Structural Disequilibrium): भुगतान शेष में संरचनात्मक असंतुलन उस समय उत्पन्न होते हैं जबकि अर्थव्यवस्था के कुछ क्षेत्रों में संरचनात्मक परिवर्तन हो रहे होते हैं और जो देश के आयात-निर्यात के व्यापार को प्रभावित करते हैं।

(4) मौलिक असंतुलन (Fundamental Disequilibrium): किसी देश के निरन्तर और दीर्घकालीन भुगतान असंतुलन को अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) ने मौलिक असंतुलन की संज्ञा दी है।

(5) अस्थायी असन्तुलन (Temporary Disequilibrium): भुगतान शेष में अस्थायी असन्तुलन अल्पकालीन कारणों से उत्पन्न होता है। उदाहरण के लिए भारत में किसी एक क्षेत्र में बाढ़ आने के कारण फसलें पूरी तरह से नष्ट हो जाएं और हमें पर्याप्त मात्रा में अनाज का आयात करना पड़े और निर्यात पहले जितने ही रहें तो भुगतान शेष प्रतिकूल हो जाएगा। इस प्रकार के असन्तुलन को अस्थायी या अल्पकालीन असन्तुलन कहते हैं।

■ 11. भुगतान शेष के असंतुलन के कारण

(Causes of Disequilibrium in Balance of Payments)

भुगतान शेष के असंतुलन के मुख्य कारण मुख्यत: अनेक प्रकारों से स्पष्ट हो जाते हैं। फिर भी मुख्य-मुख्य कारणों को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है:

(1) प्राकृतिक कारण (Natural Causes): प्राकृतिक कारण जैसे कि अकाल, सूखा, भूकम्प इत्यादि भुगतान शेष में असन्तुलन उत्पन्न कर देते हैं। प्राकृतिक प्रकोप के प्रभाव से परिवर्तित अर्थव्यवस्था निर्यातों के स्थान पर आयातों पर अधिक निर्भर हो जाती है जिससे भुगतान शेष प्रभावित होता है।

(2) आर्थिक कारण (Economic Causes): निम्नलिखित आर्थिक कारण भी भुगतान शेष को प्रभावित करते हैं:

(i) आर्थिक विकास योजनायें (Economic Development Plans): विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में भुगतान असंतुलन का मुख्य कारण विकास के लिए किया गया अत्यधिक निवेश है। विकासशील देशों को आर्थिक विकास के लिए विदेशों पर निर्भर रहना पड़ता है। इन देशों को विकसित व अन्य देशों से आधुनिक मशीनरी, कच्चा माल आदि का आयात करना पड़ता है, जिसके फलस्वरूप उनके आयात निर्यातों से बढ़ जाते हैं। इस प्रकार भुगतान शेष में असंतुलन उत्पन्न हो जाता है।

(ii) लागत कीमत प्रभाव (Price-Cost Effect): विकास नियोजन के प्रभाव से निर्यात उद्योगों में प्राय: लागतें व कीमतें बढ़ जाती हैं जिससे निर्यात की मात्रा कम हो जाती है और भुगतान शेष में असंतुलन उत्पन्न कर देती है।

(iii) व्यापारिक उतार-चढ़ाव (Cyclical Fluctuations): अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में आने वाले व्यापारिक चक्र या उतार-चढ़ाव भी देश के भुगतान शेष में असंतुलन पैदा कर देते हैं।

(iv) विदेशी विनिमय दर में परिवर्तन (Change in Foreign Exchange Rates): विदेशी विनिमय दरों में परिवर्तन भी भुगतान शेष को असंतुलित कर देते हैं। मुद्रा के विदेशी मूल्यों (External Value) के बढ़ जाने से आयात सस्ते हो जाते हैं और निर्यात महंगे हो जाते हैं। इस प्रकार आयात बढ़ जाते हैं और निर्यात कम होकर भुगतान शेष को बिगाड़ देते हैं।

(v) विदेशी मांग में कमी (Decline in Foreign Demand): जिस समय विदेशी उपभोक्ताओं की रुचियों, फैशन व आदतों आदि में परिवर्तन आ जाता है तो एक देश की वस्तुओं की विदेशी मांग कम हो जाती है। इस परिवर्तन के फलस्वरूप भुगतान शेष प्रतिकूल हो जाता है।

(vi) व्यापार शर्तों में परिवर्तन (Change in Terms of Trade): यदि किसी देश की व्यापार शर्तें दूसरे देश की तुलना में प्रतिकूल हो जायें तो इससे उस देश के आयात मूल्य, निर्यात मूल्यों से बढ़ जायेंगे और इससे भुगतान शेष पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा।

(vii) प्रदर्शन प्रभाव (Demonstration Effects): **प्रो॰ नर्कसे** के अनुसार कम विकसित देशों के लोग विकसित देशों के उपभोग की नकल करने का प्रयास करते हैं। इस प्रदर्शन प्रभाव के कारण कम विकसित देशों के आयात बढ़ जाते हैं और भुगतान शेष में असंतुलन उत्पन्न कर देते हैं।

(viii) जनसंख्या में तीव्र वृद्धि (Population Explosion): अल्पविकसित देशों में जनसंख्या की तीव्र वृद्धि के कारण देश का घरेलू उपभोग बढ़ जाता है। जिसके फलस्वरूप निर्यात आधिक्य (Export Surplus)) कम हो जाता है। इस प्रकार निर्यात आय कम हो जाने के कारण भुगतान शेष असंतुलित हो जाता है।

(ix) विदेशी पूंजी निवेश प्रवाह (Foreign Capital Investment Flow): अधिक लाभ प्रेरणा (Profit Inducement) से जब कोई देश विदेशों में अधिक पूंजी निवेश करता है तो पूंजी निर्यातक देश से पूंजी के बाह्य प्रवाह (Capital Outflow) के कारण भुगतान शेष पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है जबकि पूंजी प्राप्त करने वाले देश के भुगतान शेष पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है।

(x) अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवहार एवं नीतियां (International Economic Practices and Policies): अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं एवं विदेशों के आर्थिक व्यवहारों एवं नीतियों का सीधा प्रभाव देश के भुगतान शेष पर पड़ता है। अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक जगत द्वारा अपनाई गई सहयोग, प्रतिबन्ध (Sanctions), तटकर, कस्टम व चुनीन्दा (Selective) व्यापारिक नीतियों व अन्य प्रकार की सुविधा विस्तारों एवं प्रतिबन्धों से देश का भुगतान शेष अनुकूल या प्रतिकूल रूप से प्रभावित होता है। लीबिया व इराक पर संयुक्त राष्ट्र संघ के आर्थिक प्रतिबन्ध व यूरोपियन इकोनोमिक कम्युनिटी (EEC) द्वारा भारतीय सिले-सिलाये कपड़ों पर अधिक आयात कर लगाये जाने के कारण इन देशों के भुगतान शेष पर पड़ने वाले प्रतिकूल प्रभाव इसके जीवित उदाहरण हैं।

(3) राजनीतिक कारण (Political Factors): आर्थिक तत्त्वों के अतिरिक्त राजनीतिक कारण भी देश के भुगतान शेष को असंतुलित करते हैं। मुख्य राजनीतिक तत्त्व निम्न हैं:

(i) दूतावासों का विस्तार (Expansion of Embassies and their Upkeep): दूतावासों के विस्तार व उनके रखरखाव (Upkeep) पर किया गया ऊँचा व्यय देश के लिए आयात तुल्य होता है और इसका भुगतान शेष पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

(ii) राजनीतिक अस्थिरता (Political Instability): देश की राजनीतिक अस्थिरता भी देश के भुगतान शेष पर प्रतिकूल रूप से प्रभावकारी होती है।

(iii) अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध (International Relationship): एक देश के अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध मधुर, खिचाव पूर्ण, तनावपूर्ण एवं युद्धमय हो सकते हैं। इनके कारण देश विशेष के भुगतान शेष पर अनुकूल या प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

(iv) देश विभाजन एवं एकीकरण (Partition or Unification of Country) : देशों के विभाजन या एकीकरण का भी भुगतान शेष पर प्रतिकूल या अनुकूल प्रभाव पड़ता है। भारत, पाकिस्तान, यू॰ एस॰ एस॰ आर॰, यूगोस्लाविया विभाजित अर्थव्यवस्था और जर्मनी एकीकृत अर्थव्यवस्था के उदाहरण हैं।

***(4) सामाजिक कारक** (Social Factors):*

(a) रुचि एवं प्राथमिकताओं में अन्तर (Change in Tastes and Preferences): विश्व के विभिन्न भागों में लोगों की रुचियाँ तथा प्राथमिकताओं में परिवर्तन होने के कारण अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में मांग का स्वरूप भी बदल जाता है। यदि परिवर्तन अनुकूल हैं तो बचत का और यदि प्रतिकूल हैं तो घाटे का भुगतान शेष हो जाता है।

(b) विभिन्न देशों में पूर्वाग्रह (Prejudices Among Different Countries): विभिन्न देशों में पूर्वधारणाएं या पूर्वाग्रह कई बार देशों (जैसे भारत तथा पाकिस्तान) को महंगे आयात खरीदने तथा सस्ते निर्यात बेचने पर विवश कर देते हैं। ऐसी स्थिति में अर्थव्यवस्था को भुगतान शेष के घाटे वाले असन्तुलन का सामना करना पड़ता है।

■ 12. प्रतिकूल भुगतान शेष के परिणाम या प्रभाव

(Results or Effects of Adverse Balance of Payments)

देश के प्रतिकूल भुगतान शेष के कारण (1) देश की अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक विश्वसनीयता कम हो जाती है। (2) देश की अर्थव्यवस्था की विदेशों पर निर्भरता बढ़ जाती है। (3) देश की अर्थव्यवस्था का शोषण होने लगता है। (4) देश के विदेशी विनिमय भंडार कम हो जाते हैं। (5) सोने व बहुमूल्य धातुओं के भंडार कम होने लगते हैं क्योंकि सोना व बहुमूल्य धातुयें देश से बाहर जाने लगती हैं। (6) विदेशी निर्भरता कभी-कभी राजनीतिक निर्भरता व परतंत्रता का रूप धारण कर लेती है। (7) देश के आर्थिक विकास की गति अवरुद्ध हो जाती है। (8) देश के आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक क्षेत्रों में विदेशी हस्तक्षेप बढ़ने लगता है।

■ 13. प्रतिकूल भुगतान शेष को सुधारने के उपाय अथवा भुगतान शेष के असन्तुलन को ठीक करने के उपाय

(Measures to Correct Adverse Balance of Payments Or Methods of Correcting Disequilibrium in BOP)

जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया गया है, प्रतिकूल भुगतान शेष देश के लिए अत्यधिक हानिकारक होता है। प्रतिकूल भुगतान शेष को सुधारने के उपायों को निम्नलिखित वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है:

(1) **आर्थिक उपाय** (Economic Measures)

(2) **राजनीतिक उपाय** (Political Measures)

(3) **सामाजिक उपाय** (Social Measures)

(4) **अन्तर्राष्ट्रीय उपाय** (International Measures)

इन उपायों का मुख्य उद्देश्य देश के **निर्यातों को बढ़ाना** (Export Promotion) तथा **आयात कम** (Reduction in Imports) करना है।

(1) आर्थिक उपाय (Economic Measures)

आर्थिक उपायों को मुख्यत: दो भागों में विभाजित किया जा सकता है: (A) मौद्रिक उपाय (Monetary Measures), (B) अमौद्रिक उपाय (Non-monetary Measures)।

(A) मौद्रिक उपाय (Monetary Measures)

(i) मुद्रा विस्फीति (Deflation): विस्फीति का अर्थ उस मौद्रिक नीति से है जिसके अन्तर्गत चलन मुद्रा की मात्रा को कम किया जाता है ताकि कीमतें और लोगों की मुद्रा आय कम हो जाये। केन्द्रीय बैंक, बैंक दरों में वृद्धि, खुले बाजार की क्रियाओं व अन्य उपायों द्वारा अर्थव्यवस्था में साख की मात्रा कम कर देता है। इससे कीमतों में कमी आ जाती है और लोगों की मौद्रिक आय कम हो जाती है। कीमतों में कमी के कारण निर्यातों में वृद्धि होती है और लोगों की मौद्रिक आय कम होने के कारण आयात कम हो जाते हैं, जिससे प्रतिकूल भुगतान शेष में सुधार हो जाता है।

(ii) अवमूल्यन (Devaluation): अवमूल्यन से अभिप्राय ऐसी नीति से है जिसके अन्तर्गत एक देश की सरकार अपनी मुद्रा के मूल्य को विदेशी मुद्राओं के मुकाबले में घटा देती है। इसके फलस्वरूप आयात महंगे हो जाते हैं और निर्यात सस्ते। फलस्वरूप देश के प्रतिकूल भुगतान शेष की स्थिति में सुधार होता है।

(iii) विनिमय ह्रास (Exchange Depreciation): यदि अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में विनिमय दर लोचशील हो तो सरकार को अवमूल्यन की नीति नहीं अपनानी पड़ेगी। लोचशील विनिमय दर प्रणाली के अन्तर्गत विदेशी मुद्रा की मांग तथा पूर्ति की शक्तियां मुद्रा के विदेशी मूल्य को निर्धारित करती है। यदि एक देश का भुगतान शेष प्रतिकूल है तो विनिमय दर में स्वत: ही कमी आ जाती है, क्योंकि विदेशी मुद्रा की पूर्ति की कमी व मांग के अधिक होने के कारण व स्वदेशी मुद्रा की पूर्ति की अधिकता के कारण स्वदेशी मुद्रा की विनिमय दर कम हो जायेगी। परिणाम स्वरूप निर्यात बढ़ेंगे और भुगतान की प्रतिकूलता समाप्त हो जायेगी। विनिमय ह्रास बाजार की शक्तियों द्वारा तय होता है जबकि अवमूल्यन सरकार द्वारा किया जाता है।

(iv) विनिमय नियन्त्रण (Exchange Control): इस विधि का अर्थ है कि देश का केन्द्रीय बैंक विदेशी मुद्रा के प्रयोग को निजी नियन्त्रण में ले लेता है। विदेशी मुद्रा का एक मात्र भंडार केन्द्रीय बैंक के पास रहता है और उसी की आज्ञा से विदेशी मुद्रा उपलब्ध होती है। इस उपाय से आयात नियन्त्रित एवं सीमित हो जाते हैं और देश के भुगतान शेष में सुधार होता है।

(v) विदेशी ऋण (External Debts): भुगतान शेष की प्रतिकूलता को दूर करने के लिए सरकार विदेशों से या अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं से ऋण प्राप्त कर सकती है। इस प्रकार प्राप्त धन राशि एक देश की लेनदारी बन जाती है और इससे उस देश के भुगतान शेष में सुधार होता है।

(B) गैर-मौद्रिक उपाय (Non-Monetary Measures)

(1) आयातों को हतोत्साहित करना (Discouraging Imports): भुगतान शेष के असन्तुलन को ठीक करने के लिये आयात कम किए जाने चाहिए। इसके लिए निम्नलिखित उपाय किए जा सकते हैं:

(i) आयात कर (Imports Duties): एक देश की सरकार भुगतान शेष के सुधार हेतु आयात कर लगा कर या पहले से लगाये गये आयात करों की दर में वृद्धि करके आयात मूल्यों में वृद्धि कर सकती है। आयात कर लगने या बढ़ने से आयात महंगे हो जायेंगे और इनकी मांग में कमी हो जायेगी। आयात मूल्यों में वृद्धि या उनकी मांग में कमी होने से भुगतान शेष की स्थिति में सुधार होगा।

(ii) आयात कोटे (Import Quotas): आयात कोटा निश्चित कर, आयात को घटाया जा सकता है। आयात कोटे के अन्तर्गत सरकार किसी वस्तु के आयात के लिए अधिकतम मात्रा या मूल्य निश्चित कर देती है। इस प्रकार आयातों को सीमित कर भुगतान शेष में सुधार किया जाता है।

(iii) आयात प्रतिस्थापनों को उत्साहित करना (Encouraging Import Substitutions): आयात प्रतिस्थापन का अर्थ है आयातित वस्तुओं के प्रतिस्थापनों को देश में ही उत्पन्न करना। इससे विदेशी वस्तुओं की मांग कम हो जाती है और भुगतान शेष पर घाटे का दबाव कम हो जाता है।

(2) निर्यातों को प्रोत्साहन देना (Export Promotion): निर्यात में वृद्धि द्वारा भुगतान शेष की स्थिति में सुधार करना सबसे उत्तम उपाय माना जाता है। प्रतिकूल भुगतान शेष के सुधार के लिए देश के निर्यातों को प्रोत्साहित करना चाहिये। निर्यात पर लगे सभी प्रतिबन्ध अथवा कर हटा देने चाहिए तथा निर्यात उद्योगों को विशेष सुविधायें प्रदान करनी चाहिए। विदेशों में देशी वस्तुओं की मांग बढ़ाने के लिए प्रचार तथा विज्ञापनों का सहारा लेना चाहिए और विदेशों में देशी वस्तुओं की प्रदर्शनियां लगानी चाहिए। इस प्रकार निर्यात उद्योग का उत्पादन तथा निर्यात क्षमता बढ़ेगी और भुगतान शेष की स्थिति में सुधार होगा।

(3) विदेशी निवेश को प्रोत्साहन (Encouragement to Foreign Investment): प्रतिकूल भुगतान शेष के सुधार का एक और उपाय विदेशी निवेश को प्रोत्साहन देना है। विदेशी पूंजी का निवेश देश के लिये एक प्रकार की लेनदारी बन जाता है जिससे भुगतान शेष पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। विदेशी निवेश को अनेकों प्रकार की सुविधाओं व प्रलोभनों द्वारा ही आकर्षित किया जा सकता है।

(4) विदेशी पर्यटकों को आकर्षित करना (Attraction to Foreign Tourists): भुगतान शेष की स्थिति में सुधार के लिये मनोरंजन के कार्यक्रमों व आकर्षणों के विस्तार द्वारा विदेशी पर्यटकों को आकृष्ट करना, एक सरल उपाय है। पर्यटकों के देश में आगमन से देश को विदेशी विनिमय प्राप्ति का लाभ होता है जो कि देश के भुगतान शेष पर अनुकूल प्रभाव डालता है।

(5) औद्योगिक नीति का उदारीकरण (Liberal Industrial Policy): औद्योगिक नीति के उचित परिवर्तन विशेषत: उदारीकरण का भुगतान शेष पर उचित प्रभाव पड़ता है जैसाकि भारत 1991-92 से उदारीकरण की नीति का अनुसरण कर रहा है।

(6) राज्य व्यापार (State Trading): अल्प विकसित देशों में सामान्यत: भुगतान शेष प्रतिकूल रहता है। ऐसी स्थिति में राज्य आयातों व निर्यातों को अपने हाथ में ले कर अनावश्यक आयातों पर रोक लगा सकता है और निर्यातों को प्रोत्साहन दे सकता है। परन्तु इस तरीके को वही देश अपना सकता है जो विदेशी दबाव में ना रहे।

(2) राजनीतिक उपाय (Political Measures)

राजनीतिक उपायों को भी भुगतान शेष के सुधार के लिए प्रयोग किया जा सकता है। मुख्य राजनीतिक उपाय निम्नलिखित हो सकते हैं:

(i) दूतावासों पर कम खर्च (Less Expenses on Embassies): दूतावासों व विदेशों में स्वदेशी, राजनीतिक व प्रशासनिक निकायों को सीमित करना एवं उनके प्रसार पर रोक लगाना। इससे विदेशी मुद्रा व्यय में बचत होगी और देश का भुगतान शेष सुधरेगा।

(ii) राजनीतिक गठबन्धनों की समाप्ति (End of Political Alliances): कई स्वतंत्र प्रभुत्ता सम्पन्न देश परस्पर समझौतों के आधार पर एक संयुक्त देश के रूप में गठबन्धन कर लेते हैं जैसे कि पहले के यू॰ एस॰ एस॰ आर॰ (USSR) ने किया था। इसके विघटन के अनुभव के आधार पर ऐसे देशों को गठबन्धन मुक्त हो जाना चाहिये ताकि स्वतंत्र वातावरण में भुगतान शेष का सुधार किया जा सके।

(iii) राजनीतिक व प्रशासनिक मितव्ययता (Political and Administrative Thriftness): राजनीतिक व प्रशासनिक सम्बन्धी मितव्ययता को अपनाना चाहिये। सभी प्रकार के अनावश्यक विदेशी दौरे आदि पर रोक लगा कर विदेशी विनिमय की बचत द्वारा भुगतान शेष को सुधारा जा सकता है।

(iv) राजनीतिक आधार दर्शन में परिवर्तन (Changes in Basic Political Ideology): समाजवाद, पूँजीवाद व राष्ट्रवाद आदि आधारभूत राजनीतिक दर्शनों के परिवर्तन भी भुगतान शेष को सुधारने में सहायक होते हैं। यू॰ एस॰ एस॰ आर॰ (USSR) व अन्य अनेकों समाजवादी देशों का समाजवादी ढाँचे से मुक्त बाजार व्यवस्था में परिवर्तन, भारत की उदार औद्योगिक नीति राजनीतिक आधारों के परिवर्तनों के कुछ उदाहरण हैं।

(v) अप्रवासी स्वदेशियों की भागीदारी (Participation of Non-Residents): विकासशील देशों के नागरिक जो प्राय: अन्य विकसित देशों में निवास करते हैं आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न होते हैं। उनकी स्वदेश वापसी या सक्रिय सहयोग देश के भुगतान शेष की कठिनाई को दूर कर सकता है।

(3) सामाजिक उपाय (Social Measures)

समाज के मनोविज्ञान के माध्यम से भुगतान शेष में सुधार लाया जा सकता है। उदाहरणार्थ स्वस्थ स्वदेशी भावना के जागरण से ब्रिटिश इंडिया के भुगतान शेष पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा था। वर्तमान में भारत में पेट्रोलियम का आयात भुगतान शेष की प्रतिकूलता का मुख्य कारण है। यदि समाज के मनोविज्ञान को पेट्रोलियम के संयमित प्रयोग के लिए प्रेरित किया जाये तो भुगतान शेष पर अच्छा प्रभाव पड़ सकता है। उदाहरण के लिए श्री लाल बहादुर शास्त्री ने प्रत्येक सोमवार को व्रत रखने की प्रेरणा देकर खाद्य समस्या को हल किया, इसी प्रकार सप्ताह में एक दिन अपने वाहन न चला कर पेट्रोल की समस्या को हम हल कर सकते हैं। इसी प्रकार समाज के मनोविज्ञान को भुगतान शेष में सुधार लाने के लिये अन्य क्षेत्रों में भी प्रयोग किया जा सकता है।

(4) अन्तर्राष्ट्रीय उपाय (International Measures)

नये क्षेत्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय गठबन्धन या बाज़ार संगठनों के निर्माण या पूर्व निर्मित संगठनों की भागीदारी से भुगतान शेष की प्रतिकूलता को दूर करने में सहायता मिलती है। **सार्क** (SAARC), **नाम** (NAM), **ई०ई०सी०** (EEC) व **विश्व व्यापार संगठन** (WTO), **अंकटाड** (UNCTAD) आदि इस प्रकार के संगठन हैं।

■ 14. अवमूल्यन का भुगतान शेष पर प्रभाव

(Effect of Devaluation on Balance of Payments)

अवमूल्यन का भुगतान शेष पर पड़ने वाला प्रभाव निम्नलिखित तत्त्वों पर निर्भर करता है:

(1) निर्यात वस्तुओं की कीमत में वृद्धि नहीं होनी चाहिए (No increase in prices of exports): कोई देश अवमूल्यन के द्वारा भुगतान शेष को सन्तुलित करने का उद्देश्य तभी प्राप्त कर सकता है जब निर्यात कीमतों में विशेष रूप से निर्यात वस्तुओं की कीमतों में वृद्धि न हो। यदि अवमूल्यन के बाद कीमतों में वृद्धि हो जाती है तो देश के निर्यातों में वृद्धि की सम्भावना कम हो जाती है। विदेशों में, अवमूल्यन करने वाले देश के निर्यात सस्ते नहीं होंगे तथा उनमें वृद्धि नहीं होगी। इसके फलस्वरूप भुगतान शेष की प्रतिकूलता समाप्त नहीं होगी तथा भुगतान शेष के घाटे की समस्या बनी रहेगी। इसलिये यह आवश्यक हो जाता है कि अवमूल्यन वाले देश की सरकार कीमत नियंत्रण की नीति अपनाए।

(2) आयातों की मांग अधिक लोचदार होनी चाहिए (Demand for Imports Must be Highly Elastic): अवमूल्यन द्वारा भुगतान शेष के घाटे को तभी कम किया जा सकता है जब आयातों की मांग अधिक लोचदार होगी। इसके फलस्वरूप अवमूल्यन के कारण आयातों की कीमतों में जितनी वृद्धि होगी उनकी मांग में उसकी तुलना में कई गुणा अधिक कमी होगी। इसे निम्नलिखित रेखाचित्र 1 द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है:

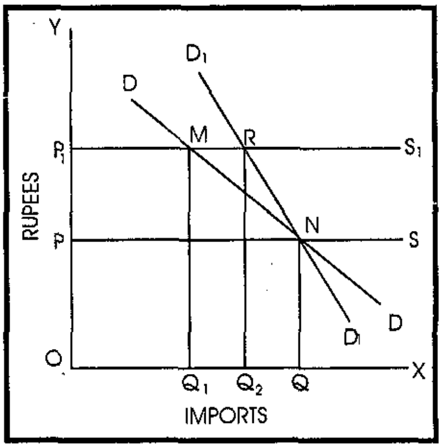

चित्र 1

चित्र 1 में OX अक्ष पर आयात तथा OY अक्ष पर आयातों का मूल्य रुपये के रूप में प्रकट किया गया है। DD आयात की लोचदार मांग वक्र है तथा D_1D_1 कम लोचदार मांग वक्र है। PS आयात के अवमूल्यन से पहले का पूर्ति वक्र है। अवमूल्यन का लोचदार आयात मांग तथा बेलोचदार आयात मांग पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन निम्नलिखित ढंग से किया जा सकता है:

(i) आयात की लोचदार मांग (Elastic Demamd of Imports): अवमूल्यन से पहले वस्तु की कीमत OP रुपये है तथा आयात की मात्रा OQ है। इस प्रकार आयात का कुल मूल्य $OQ \times OP = OPNQ$ है। अवमूल्यन होने के पश्चात् मुद्रा के रूप में आयातों के मूल्य में अवमूल्यन के बराबर प्रतिशत कमी हो जायेगी। अतएव आयात का मूल्य बढ़ कर OP_1 हो जायेगा। परिणामस्वरूप आयातों की मात्रा जैसा कि मांग वक्र DD से ज्ञात होता है, कम होकर OQ_1 हो जायेगी। आयातों में QQ_1 के बराबर कमी होगी तथा कुल आयात मूल्य $OP_1\ MQ_1$ के बराबर हो जायेगा। इस प्रकार अवमूल्यन से पहले कुल आयात OPNQ मूल्य के किये जाते हैं तथा अवमूल्यन के बाद $OP_1\ MQ_1$ मूल्य के किये जाते हैं। आयात $OP_1\ MQ_1$ आयात OPNQ से कम है। ($OP_1\ MQ_1 < OPNQ$) अर्थात् अवमूल्यन के पश्चात् अवमूल्यन से पहले की तुलना में कम मूल्य का आयात किया जायेगा। इसका कारण यह है कि आयात की मांग वक्र लोचदार है।

(ii) आयात की बेलोचदार मांग (Inelastic Demand for Imports): मान लीजिए आयातों की मांग वक्र D_1D_1 है यह मांग वक्र पहली मांग वक्र (DD) से कम लोचदार है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि आयात की मांग की लोच कम है। इस स्थिति में अवमूल्यन के बाद आयात की कुल मांग OQ_2 हो जायेगी तथा कुल आयात मूल्य OP_1RQ_2 होगा जबकि अवमूल्यन के पहले आयात

का कुल मूल्य OPNQ है। रेखा चित्र से स्पष्ट हो जाता है कि $OP_1 RQ_2$ का क्षेत्र OPNQ से अधिक है। ($OP_1 RQ_2 > OPNQ$) अर्थात् अवमूल्यन के बाद आयात का कुल मूल्य अवमूल्यन से पहले किये गये आयात के कुल मूल्य से अधिक होगा। इस प्रकार आयात की मांग के कम लोचदार होने पर अवमूल्यन के कारण कुल आयात मूल्य कम नहीं होगा तथा अवमूल्यन अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो सकेगा।

(3) देश के निर्यातों की मांग अधिक लोचदार होनी चाहिए (Demand for Exports Should be Highly Elastic): अवमूल्यन की सफलता के लिये यह भी आवश्यक है कि विदेशों में अवमूल्यन वाले देश द्वारा किये जाने वाले निर्यातों की मांग अधिक लोचदार होनी चाहिए। इसका अभिप्राय यह है कि अवमूल्यन के कारण निर्यातों के मूल्य में विदेशी मुद्रा के रूप में जितनी कमी होगी निर्यात की मांग में उसकी तुलना में अधिक अनुपातिक वृद्धि होगी। इसके फलस्वरूप अवमूल्यन के कारण अधिक मूल्य का निर्यात किया जाने लगेगा। इसके विपरीत यदि निर्यात की मांग कम लोचदार है तो अवमूल्यन के फलस्वरूप निर्यातों का कुल मूल्य बढ़ने की जगह कम हो जायेगा तथा अवमूल्यन अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो सकेगा।

इस स्थिति को निम्नलिखित रेखाचित्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है:

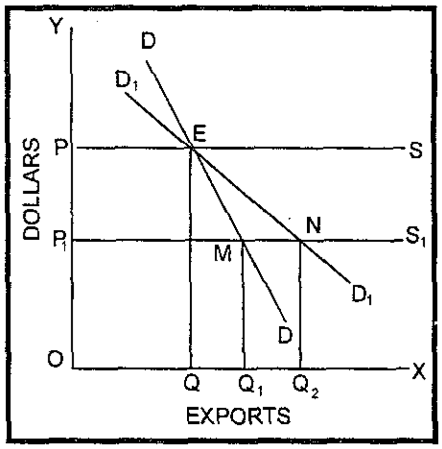

चित्र 2

चित्र 2 में OX अक्ष पर भारत के निर्यात तथा OY अक्ष पर डालर व्यक्त किये गये हैं। DD बेलोचदार मांग वक्र है तथा D_1 D_1 लोचदार मांग वक्र है। अवमूल्यन के लोचदार निर्यात मांग तथा बेलोचदार निर्यात मांग पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन निम्नलिखित ढंग से किया जा सकता है:

(i) निर्यात की बेलोचदार मांग वक्र (Inelastic Demand for Exports): मान लीजिए अवमूल्यन से पहले पूर्ति वक्र PS है तो DD बेलोचदार मांग वक्र से ज्ञात होता है कि OP कीमत पर OQ निर्यात की मांग की जायेगी। अतएव निर्यात का कुल मूल्य OPEQ होगा। अवमूल्यन के बाद डालर के रूप में भारतीय निर्यात सस्ते हो जायेंगे। उनकी कीमत OP से कम होकर OP_1 हो जायेगी। इस नई कीमत पर OQ_1 निर्यात की मांग की जायेगी। कुल निर्यात मूल्य $OP_1 MQ_1$ निर्धारित होगा। इस प्रकार अवमूल्यन के बाद कुल निर्यात मूल्य $OP_1 MQ_1$ अवमूल्यन से पहले के कुल निर्यात मूल्य OPEQ से कम होगा अर्थात् ($OP_1 MQ_1 < OP EQ$) तथा अवमूल्यन का कोई लाभ नहीं होगा।

(ii) निर्यात की लोचदार मांग वक्र (Elastic Demand Curve for Exports): D_1 D_1 निर्यात की लोचदार मांग वक्र है। अवमूल्यन के बाद निर्यात की मांग बढ़ कर OQ_2 हो जाती है। कुल निर्यात मूल्य $OP_1 NQ_2$ होगा। अतएव अवमूल्यन के बाद का कुल निर्यात मूल्य $OP_1 NQ_2$ अवमूल्यन के पहले के निर्यात मूल्य OPEQ से अधिक होगा अर्थात् ($OP_1 NQ_2 > OPEQ$) अतएव् यदि निर्यातों की मांग काफी लोचदार होती है तो अवमूल्यन के कारण निर्यातों में वृद्धि होगी तथा अवमूल्यन का लाभ प्राप्त किया जा सकेगा।

(4) निर्यात वस्तुओं की पर्याप्त उपलब्धि (Adequate Availability of Export Goods): अवमूल्यन के लिये यह आवश्यक है कि निर्यात के लिये पर्याप्त मात्रा में वस्तुएं उपलब्ध हों अर्थात् देश का उत्पादन अधिक होना चाहिए।

(5) अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग (International Co-operation): अवमूल्यन की सफलता के लिये यह आवश्यक है कि संसार के अन्य देश अवमूल्यन करने वाले देश के साथ सहयोग करें। एक तो अन्य देशों को अपनी मुद्रा का अवमूल्यन नहीं करना चाहिए तथा दूसरे, अन्य देशों को अवमूल्यन करने वाले देश के माल पर आयात कर बढ़ाने, आयात पर प्रतिबन्ध लगाने आदि के तरीकों का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

(6) **आयात प्रतिस्थापन की सम्भावना** (Possibility of Import Substitution): अवमूल्यन की सफलता के लिये यह आवश्यक है कि अवमूल्यन करने वाले देश के लिये आयात प्रतिस्थापन की सम्भावना होनी चाहिए। यदि आयात प्रतिस्थापन की सम्भावना नहीं है तो अवमूल्यन के बाद भी देश के आयात कम नहीं हो सकेंगे तथा अवमूल्यन अपने उद्देश्य को प्राप्त नहीं कर सकेगा।

(7) **अर्थव्यवस्था में विदेशी व्यापार का महत्त्व** (Importance of Foreign Trade in the Country's Economy): किसी देश में अवमूल्यन की सफलता के लिये आवश्यक है कि उस देश की अर्थव्यवस्था में विदेशी व्यापार तथा विदेशी पूंजी का बहुत महत्त्व होना चाहिए।

■ 15. भुगतान शेष का महत्त्व (Importance of Balance of Payments)

आर्थिक दृष्टि से किसी देश के लिये भुगतान शेष का बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह निम्नलिखित तथ्यों से स्पष्ट हो जाता है।

(1) **आर्थिक दशा एवं दिशा दर्शक** (Guide to Economic Conditions and Direction) : भुगतान शेष अर्थव्यवस्था की स्थिति एवं दिशा का बोध करवाता है। जिन देशों का भुगतान शेष सदैव अनुकूल रहता है उनकी स्थिति व दिशा उचित मानी जाती है जबकि प्रतिकूल भुगतान शेष की स्थिति में अर्थव्यवस्था को ठीक नहीं समझा जाता।

(2) **आर्थिक परिवर्तनों का मानचित्र** (Pictogram of Economic Changes) : समय की विभिन्न अवधियों में अर्थव्यवस्था में आने वाले परिवर्तनों का दिग्दर्शन भुगतान शेष से ही लगाया जा सकता है।

(3) **विदेशी निर्भरता का प्रतीक** (Indicator of Foreign Dependency) : भुगतान शेष से ज्ञात किया जा सकता है कि कोई देश किस सीमा तक कितना विदेशों पर निर्भर है?

(4) **विदेशी प्राप्तियों एवं भुगतानों का ज्ञान** (Knowledge of Foreign Receipts and Payments) : विदेशों को किये गये कुल भुगतानों व प्राप्तियों का ज्ञान भुगतान शेष से लगाया जा सकता है।

(5) **विदेशी निवेश आय का ज्ञान** (Knowledge of Foreign Investment) : भुगतान शेष से ज्ञात हो जाता है कि विदेशियों द्वारा किसी देश में किये गये निवेश से उनको कितनी आय प्राप्त हुई है और इसी प्रकार किसी देश द्वारा विदेशों में किये निवेश से क्या लाभ हो रहा है।

(6) **विदेशी व्यापार स्थिति का सूचक** (Indicator of Foreign Trade) : भुगतान शेष के अध्ययन से देश के विदेशी व्यापार की स्थिति का ज्ञान होता है। जिसके आधार पर देश अपनी व्यापार नीति तय करता है।

(7) **राष्ट्रीय नियोजन में सहायक** (Helpful in National Planning) : भुगतान शेष सम्बन्धी आंकड़े देश के आयोजन के लिये महत्त्वपूर्ण सूचना प्रदान करते हैं।

(8) **राष्ट्रीय आर्थिक नीति में निर्धारक** (Determinant of National Economic Policy) : भुगतान शेष राष्ट्रीय आर्थिक नीति के निर्माण में महत्त्वपूर्ण योगदान देता है। कभी-कभी भुगतान शेष के आधार पर ही देश की आर्थिक नीतियों में आमूल व संरचनात्मक परिवर्तन करने पड़ते हैं, जैसा कि भारत में किया जा रहा है।

(9) **अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं के लिए सहायक** (Helpful for International Financial Organisations) : भुगतान शेष की स्थिति के आधार पर ही अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाएं किसी देश के लिये सहायता राशि का निर्धारण करती हैं। जैसा कि वर्तमान में अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष (IMF) ने भारत के सम्बन्ध में किया है।

प्रश्न (QUESTIONS)

I. वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

सभी प्रश्न अनिवार्य हैं। (Attempt all the questions)

1. किसी देश द्वारा संसार के अन्य देशों के साथ किए गए आर्थिक देन-देन के लेखांकन को कहा जाता है। (भुगतान शेष, व्यापार शेष) (K.U. 2006)
2. दृश्य निर्यात तथा दृश्य आयात का अन्तर कहलाता है (भुगतान शेष, व्यापार शेष) (K.U. 2005)
3. भुगतान शेष में वे सौदे जिन्हें दृश्य मदों, अदृश्य मदों तथा पूंजी अन्तरण के रूप में वर्गीकृत किया जाता है उन्हें कहा जाता है (आर्थिक सौदे, सामाजिक सौदे)
4. जब किसी देश की आयातित वस्तुओं का कुल मूल्य निर्यातित वस्तुओं के कुल मूल्य से अधिक होता है, तब व्यापार शेष होता है (अनुकूल, प्रतिकूल)
5. जिस खाते में दृश्य मदों, अदृश्य मदों तथा एकपक्षीय अन्तरण का रिकार्ड रखा जाता है उसे कहते हैं (चालू खाता, पूंजी खाता)
6. जिस खाते में उन सौदों का रिकार्ड रखा जाता है जो एक देश के निवासियों अथवा उनकी सरकार की परिसम्पत्तियों अथवा देनदारियों की स्थिति में परिवर्तन लाते हैं उसको कहा जाता है (पूंजी खाता, चालू खाता)
7. एक पक्षीय प्राप्तियों को माना जाता है (धनात्मक मदें, ऋणात्मक मदें)
8. एक पक्षीय भुगतानों को माना जाता है (धनात्मक मदें, ऋणात्मक मदें)
9. वे मदें जो उन सौदों से संबंधित होती हैं जिनका निर्धारण लाभ को ध्यान में रख कर किया जाता है, उन्हें कहते हैं (स्वायत्त मदें, समायोजक मदें)
10. वे मदें जिनका निर्धारण लाभ को ध्यान में रखकर नहीं किया जाता, उन्हें कहा जाता है (स्वायत्त मदें, समायोजक मदें)
11. किसी देश की मुद्रा के विदेशी मूल्य में गिरावट को कहा जाता है (अवमूल्यन, अतिमूल्यन)(K.U. 2007)
12. व्यापार चक्रों के कारण से उत्पन्न होने वाले असंतुलन को कहा जाता है (चक्रीय असंतुलन, स्थाई असंतुलन)
13. किसी देश की सरकार द्वारा अपनी इच्छानुसार मुद्रा इकाई के मूल्य को स्वर्ण अथवा अन्य देशों की मुद्रा की तुलना में कम करने का अर्थ है (ह्रास, अवमूल्यन) (K.U. 2008)
14. _______ से भुगतान संतुलन में सुधार लाया जाता है (अवमूल्यन/विमुद्रीकरण) (M.D.U. 2009)
15. _______ शेष में केवल दृश्य मदों के आयात-निर्यात को शामिल किया जाता है। (व्यापार, भुगतान) (K.U. 2009)

उत्तर (Answers): (1) भुगतान शेष, (2) व्यापार शेष, (3) आर्थिक सौदे, (4) प्रतिकूल, (5) चालू खाता, (6) पूंजी खाता, (7) धनात्मक मदें, (8) ऋणात्मक मदें, (9) स्वायत्त मदें, (10) समायोजक मदें, (11) अवमूल्यन, (12) चक्रीय असंतुलन, (13) अवमूल्यन, (14) अवमूल्यन, (15) व्यापार।

II. लघु/परिभाषा रूपी प्रश्न (Short/Definitional Type Questions)

1. भुगतान शेष की परिभाषा दें। (K.U. 2007)
2. चालू खाते के भुगतान शेष की परिभाषा दें।
3. पूंजी खाते के भुगतान शेष की परिभाषा लिखिए।
4. भुगतान शेष की दृश्य मदों से क्या अभिप्राय है?
5. भुगतान शेष की अदृश्य मदों को बतलाइए।
6. भुगतान शेष तथा व्यापार शेष में क्या अंतर है? (M.D.U. 2007, K.U. 2008)
7. अनुकूल भुगतान शेष का अर्थ बतलाइए।
8. प्रतिकूल भुगतान शेष क्या है?
9. आर्थिक सौदे क्या होते हैं?

10. स्वायत्त मदें क्या होती हैं?
11. समायोजक मदों का क्या अर्थ है?
12. अवमूल्यन से क्या अभिप्राय है? (M.D.U. 2007)
13. भुगतान सन्तुलन में असन्तुलन के दो कारणों की व्याख्या कीजिए। (M.D.U. 2008)
14. भुगतान शेष के असन्तुलन को ठीक करने के दो उपाय बतलाएं।
15. भुगतान शेष में स्थाई असन्तुलन से क्या अभिप्राय है?
16. अवमूल्यन तथा ह्रास में क्या अंतर है? (K.U. 2009)

III. निबन्ध रूपी प्रश्न (Essay Type Questions)

1. What do you mean by Balance of Payments? Explain the items consisting the balance of payments of a country. What is the importance of Balance of Payments?
   भुगतान शेष से आप क्या समझते हैं? किसी देश के भुगतान शेष की विभिन्न मदों की व्याख्या करें। भुगतान शेष का क्या महत्व है?
2. Define the concept of Balance of Payments. What are its components? Discuss in detail.
   भुगतान शेष की धारणा की परिभाषा दें। इसके कौन-से घटक हैं? विस्तार से वर्णन करें।
3. Explain Balance of Payments. Write the measures to correct adverse balance of payments.
   भुगतान शेष की व्याख्या करें। प्रतिकूल भुगतान शेष को ठीक करने के उपाय लिखे। (M.D.U. 2009)

   Or

   Explain the concept of Balance of payments. Suggest remedies to solve the problem of adverse Balance of payments.
   भुगतान शेष की व्याख्या करें। प्रतिकूल भुगतान शेष को ठीक करने के उपायों का वर्णन करें।
4. What is meant by balance of payments? Analyse the causes of adverse balance of payments. How is it corrected?
   भुगतान शेष से क्या अभिप्राय है? प्रतिकूल भुगतान शेष के कारणों की विवेचना करें। इसे कैसे ठीक किया जाता है? (M.D.U. 2007)
5. *Critically examine devaluation as an instrument of BOP adjustment using elasticity approach.*
   मांग की लोच के दृष्टिकोण का प्रयोग करते हुए BOP को सन्तुलित करने के तरीके के रूप में अवमूल्यन की आलोचनात्मक विवेचना करें।
6. *Distinguish between balance of trade and balance of payments. Under what conditions balance of* payments is in disequilibrium? How they can be corrected?
   भुगतान शेष तथा व्यापार शेष में अन्तर बताइये। भुगतान शेष किन दशाओं में असन्तुलित हो सकता है? इसे कैसे ठीक किया जा सकता है?
7. Balance of Payments is always balances. Explain it.
   भुगतान शेष सदैव सन्तुलन में होता है। व्याख्या करें।
8. *Discuss how devaluation helps in the correction of adverse BOP of a country. Is this measure equally* applicable to the developing countries exporting mainly primary goods?
   किसी देश के प्रतिकूल भुगतान शेष को अवमूल्यन किस प्रकार ठीक करने में मदद करता है। क्या यह विधि प्राथमिक वस्तुओं का निर्यात करने वाले विकासशील देशों पर भी पूरी तरह लागू होती है?
9. On what factors does the balance of payments depend?
   भुगतान शेष कौन-से तत्त्वों पर निर्भर करता है?

22

विदेशी व्यापार गुणक

(FOREIGN TRADE MULTIPLIER)

■ 1. भूमिका (Introduction)

अर्थशास्त्र में गुणक का सिद्धांत सर्वप्रथम कैम्ब्रिज के एक प्रसिद्ध अर्थशास्त्री आर. एफ. काहन (R.F. Kahn) ने अपने एक प्रसिद्ध लेख "The Relation of Home Investment to Unemployment" में सन् 1931 में प्रतिपादित किया था। काहन द्वारा दिए गए गुणक को **रोजगार गुणक** (Employment Multiplier) कहा जाता है। **लार्ड केन्ज** (Keynes) ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "The General Theory of Employment, Interest and Money"- 1936 में **निवेश गुणक** (Investment Multiplier) का प्रतिपादन किया है। आर्थिक विश्लेषण में इस सिद्धान्त को आज जो स्थान प्राप्त है, इसका श्रेय केन्ज को जाता है।

■ 2. विदेशी व्यापार गुणक का अर्थ (Meaning of Foreign Trade Multiplier)

विदेशी व्यापार गुणक, जिसे **निर्यात गुणक** (Export Multiplier) भी कहा जाता है, लार्ड केन्ज के निवेश गुणक की भाँति ही कार्य करता है। विदेशी व्यापार गुणक की धारणा आयातों पर निर्यातों की वृद्धि के फलस्वरूप, एक **खुली अर्थव्यवस्था** (Open Economy) में राष्ट्रीय आय तथा रोजगार पर पड़ने वाले अनुमानित प्रभाव को प्रकट करती है। **अतएव विदेशी व्यापार गुणक, आयातों पर निर्यातों में प्रारम्भिक शुद्ध वृद्धि के फलस्वरूप, आय में अन्तिम वृद्धि का अनुपात है** (Thus foreign trade multiplier is the ratio of the final increase in income due to an initial net increase in exports over imports)।

आयातों पर निर्यातों के आधिक्य के परिणामस्वरूप एक देश जो आय अर्जित करता है, इसे क्रयशक्ति में एक समावेश (Injection) समझा जाता है, जिसका आय तथा रोजगार पर वही गुणक प्रभाव पड़ता है जो अन्य किसी निवेश वृद्धि का पड़ता है। जब विदेशी लोग हमारे देश से वस्तुओं का आयात करते हैं तो इससे हमारे निर्यात उद्योगों को आय प्राप्त होती है। जो लोग निर्यात उद्योगों में काम कर रहे होते हैं उनकी आय में वृद्धि होगी। वे आय में होने वाली इस वृद्धि को उपभोग वस्तुओं को खरीदने पर खर्च करेंगे। इसका प्रभाव यह होगा कि उन लोगों की आय में वृद्धि होगी जो उपभोग की वस्तुओं का उत्पादन कर रहे होते हैं। अन्य शब्दों में निर्यात-आय में वृद्धि के फलस्वरूप कुल आय में अन्तिम वृद्धि, प्रारम्भिक आय में वृद्धि की तुलना में, कई गुणा अधिक होगी।

इस प्रकार विदेशी व्यापार बढ़ने के फलस्वरूप कुल आय में जितने गुणा वृद्धि होती है उसे ही **विदेशी व्यापार गुणक** (Foreign Trade Multiplier) कहते हैं। अन्य शब्दों में, **विदेशी व्यापार गुणक निर्यात से प्राप्त होने वाली आय वृद्धि के फलस्वरूप कुल आय में होने वाली वृद्धि का अनुपात है।** (Foreign Trade Multiplier is the ratio of change in total income to change in the income from exports)। **इस प्रकार विदेशी व्यापार के आकार के अनुरूप आय प्रजनन प्रक्रिया** (Income generating Process) स्वयं ही गुणा होती चली जाती है। इसे निम्नलिखित समीकरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है:

$$K_f = \frac{\Delta Y}{\Delta X}$$

(यहाँ K_f = विदेशी व्यापार गुणक, ΔY = राष्ट्रीय आय में परिवर्तन, ΔX = निर्यात में परिवर्तन)

यदि निर्यात-आय में 5 करोड़ रुपये की वृद्धि के फलस्वरूप राष्ट्रीय आय में 10 करोड़ रुपये की वृद्धि होती है, तब उपरोक्त समीकरण के अनुसार विदेशी व्यापार गुणक 2 होगा।

$$K_f = \frac{\Delta Y}{\Delta X} = \frac{\text{Rs. 10 crore}}{\text{Rs. 5 Crore}} = 2$$

जिस प्रकार **निवेश गुणक** (Investment Multiplier) सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति (MPC) पर निर्भर करता है, उसी प्रकार विदेशी व्यापार गुणक (K_f) घरेलू बचत (Domestic Savings) और सीमान्त आयात प्रवृत्ति (Marginal Propensity to Import) पर निर्भर करता है। घरेलू बचत तथा सीमान्त आयात प्रवृत्ति जितनी अधिक होती है, विदेशी व्यापार गुणक उतना ही कम होता है, इसके विपरीत यह प्रवृत्ति जितनी कम होती है विदेशी व्यापार गुणक उतना ही अधिक होता है। अत: विदेशी व्यापार या निर्यात गुणक तथा दोनों प्रवृत्तियों (बचत प्रवृत्ति तथा सीमान्त आयात प्रवृत्ति) के बीच **विपरीत संबंध** (Inverse Relationship) होता है। इसे निम्नलिखित समीकरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है:

$$K_f = \frac{1}{IS}$$ (यहां IS = सीमान्त आयात तथा बचत प्रवृत्ति)

यदि $IS = \frac{1}{2}$ हो, तो $K_f = \frac{1}{\frac{1}{2}} = 2$ होगा। इससे प्रकट होता है कि

सीमान्त आयात और बचत प्रवृत्ति (IS) तथा विदेशी गुणक (K_f) के बीच विपरीत संबंध क्यों?

IS और K_f के बीच विपरीत संबंध इसलिए है क्योंकि निवेश के फलस्वरूप आय में वृद्धि होने से, बढ़ी हुई आय का यदि अधिकांश भाग आयातों पर खर्च कर दिया जाता है या बचत के रूप में रख लिया जाता है तो यह आय प्रवाह या आय प्रजनन में रिसाव (Leakage) का कार्य करेगा। इससे विदेशी व्यापार गुणक की आगे की क्रिया (Forwarding Working) कम हो जाएगी या रुक जाएगी।

यदि निर्यातों से प्राप्त आय 5 करोड़ रुपये बढ़ती है तो विदेशी व्यापार गुणक 2 होने के फलस्वरूप कुल आय $5 \times 2 = 10$ करोड़ रुपये बढ़ेगी।

■ 2.1 विदेशी व्यापार गुणक की मान्यताएं (Assumptions of Foreign Trade Multiplier)

(i) अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार की स्थिति है, (ii) यह विश्लेषण केवल दो देशों पर लागू होता है, (iii) यह तात्कालिक क्रिया पर आधारित है, (iv) घरेलू निवेश स्थिर रहता है, (v) सरकारी व्यय को भी स्थिर माना गया है, (vi) सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति (MPC) तथा सीमान्त आयात प्रवृत्ति (MPM) स्थिर रहती है, (vii) देश में प्रशुल्क (Tariff) या आयात नियंत्रण या संरक्षण की नीति अपनाई नहीं जाती, अर्थात् अर्थव्यवस्था खुली है और आयात-निर्यात में पूर्ण छूट है।

■ 2.2 निर्यात फलन तथा आयात फलन (Export Function and Import Function)

किसी भी देश की आय पर विदेशी व्यापार के प्रभाव का अध्ययन करते समय निर्यात तथा आयात दोनों पर ध्यान देना आवश्यक है। देश की आय को प्रभावित करने में निर्यात तथा आयात का जो कार्य होता है, उसे क्रमश: **निर्यात फलन** तथा **आयात फलन** कहते हैं, जो निम्न प्रकार हैं:

(i) निर्यात फलन (Export Function): **इसमें निर्यातों का राष्ट्रीय आय पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन किया जाता है। अनुकूल व्यापार** (Favourable Trade) होने पर निर्यातों में वृद्धि होने से राष्ट्रीय आय में भी वृद्धि होती है। कई विकसित देशों का विदेशी व्यापार का इतिहास इस बात का प्रमाण है कि निर्यातों के कारण उन देशों की राष्ट्रीय आय में काफी वृद्धि हुई है। यदि राष्ट्रीय आय के प्रतिशत के रूप में हम देखें तो ज्ञात होता है कि देश के आकार (Size) और निर्यात की मात्रा में विपरीत संबंध होता है

अर्थात् बड़े या विकसित देश राष्ट्रीय आय के कम प्रतिशत का निर्यात करते हैं जबकि छोटे या अल्पविकसित देश अधिक प्रतिशत का निर्यात करते हैं।

विदेशी व्यापार गुणक की सहायता से निर्यातों का राष्ट्रीय आय पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन किया जा सकता है।

(ii) *आयात फलन* (Import Function): *आयात को राष्ट्रीय आय पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन आयात फलन* में किया जाता है। राष्ट्रीय आय (Y) सदैव उपभोग (C) व निवेश (I) के योग के बराबर होती है, अर्थात $Y = C + I$। अत: यदि आयात के कारण उपभोग अथवा निवेश में वृद्धि होती है, तो उससे राष्ट्रीय आय में भी वृद्धि होगी। उपभोग में वृद्धि होने से या तो देशों में उपभोग बढ़ता है या निर्यातों में वृद्धि हो जाती है। इसी प्रकार विदेशी व्यापार की स्थिति में निवेश या तो देश में किया जा सकता है या विदेशों में किया जा सकता है अथवा विदेशियों द्वारा भी देश में निवेश किया जा सकता है।

■ 2.3 सीमान्त आयात प्रवृत्ति और औसत आयात प्रवृत्ति
(Marginal Propensity to Import and Average Propensity to Import)

राष्ट्रीय आय पर आयातों के प्रभाव को जानने के लिए सीमान्त और औसत आयात प्रवृत्ति की जानकारी आवश्यक है।

सीमान्त आयात प्रवृत्ति (Marginal Propensity to Import – MPM): यदि आयात में होने वाले परिवर्तन (वृद्धि या कमी) को आय में होने वाले परिवर्तन (वृद्धि या कमी) से भाग दे दिया जाए तो हम सीमान्त आयात प्रवृत्ति (MPM) ज्ञात कर सकते हैं। इसे निम्न सूत्र द्वारा व्यक्त किया जा सकता है:

$$MPM = \frac{\Delta M}{\Delta Y}$$

[यहाँ, MPM = सीमान्य आयात प्रवृत्ति; ΔM = आयात में होने वाला परिवर्तन (वृद्धि या कमी); ΔY = आय में होने वाला परिवर्तन (वृद्धि या कमी)]

मान लीजिए यदि आय में 50 करोड़ रुपये की वृद्धि होती है और इसके फलस्वरूप आयात में 10 करोड़ रुपये की वृद्धि होती है तब उपरोक्त सूत्र के अनुसार सीमान्त आयात प्रवृत्ति $\left(\frac{10}{50}\right)\frac{1}{5}$ या 0.2 होगी।

औसत आयात प्रवृत्ति (Average Propensity to Import - APM): यदि कुल आयातों के मूल्य को कुल राष्ट्रीय आय से भाग दे दिया जाए तो औसत आयात प्रवृत्ति ज्ञात की जा सकती है।

निम्न सूत्र इसको व्यक्त करता है:

$$APM = \frac{M}{Y}$$

[यहाँ, APM = औसत आयात प्रवृत्ति; M = कुल आयातों का मूल्य; Y = कुल राष्ट्रीय आय]

यह मान लिया जाता है कि एक देश की राष्ट्रीय आय में जैसे ही वृद्धि होती है, उसके कुल आयातों में वृद्धि होती है, भले ही यह आनुपातिक (Proportional) न हो। इसके कारण सीमान्त आयात प्रवृत्ति (MPM) तथा औसत आयात प्रवृत्ति (APM) दोनों में ही वृद्धि होती है। कुछ विशेष दशाओं में इन दोनों में अन्तर हो सकता है।.

■ 3. खुली अर्थव्यवस्था में राष्ट्रीय आय का निर्धारण: विदेशी व्यापार गुणक
(The Determination of National Income in an Open Economy : The Foreign Trade Multiplier)

गुणक की धारणा बतलाती है कि सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति (MPC) शून्य से अधिक या इकाई से कम होती है (MPC > O or <1), अतएव निवेश में वृद्धि के फलस्वरूप आय में होने वाली अन्तिम वृद्धि, निवेश में हुई प्रारम्भिक वृद्धि की तुलना में, अधिक होगी, वह इसलिए क्योंकि व्यय का क्रम निरन्तर (Successive rounds of spending) चलता रहता है।

जब बन्द अर्थव्यवस्था (Closed Economy) सन्तुलन में होती है तब,

$$Y = C + I = C + S$$

(यहां, Y= राष्ट्रीय आय, C = उपभोग, S = बचत तथा I = निवेश)

उपरोक्त समीकरण से स्पष्ट हो जाता है कि सन्तुलन की अवस्था में निवेश बचत के बराबर अवश्य होता है (I = S)

सन्तुलन के लिए बचतों तथा निवेश के बीच समानता एक आवश्यक शर्त है, क्योंकि बचतें आय प्रवाह में से **रिसाव** (Leakage) को प्रकट करती हैं, जबकि निवेश आय प्रवाह में **समावेश** (Injection) को व्यक्त करता है। जब निवेश बचत के बराबर (1=S) होता है, आय प्रवाह में से जो भी रिसाव हो जाता है, उसकी उतनी ही मात्रा में निवेश के समावेश से पूर्ति होती जाती है।

खुली अर्थव्यवस्था (Open Economy) में, निवेश तथा बचत के अतिरिक्त दो अन्य चरों (Variables) को भी ध्यान में रखा जाता है, वे हैं निर्यात तथा आयात। निर्यातों को हम X द्वारा और आयातों को M द्वारा व्यक्त करेंगे।

■ 3.1 रिसाव तथा समावेश (Leakage and Injection)

(i) बचतों की भांति **आयात, रिसाव** (Leakage) को व्यक्त करते हैं। जब हम आयात करते हैं, तब देश की मुद्रा देश से बाहर प्रवाहित होती है और इसलिए आयातों को रिसाव समझा जाता है। (ii) इसके विपरीत **निर्यात** से अभिप्राय है विदेशी लोगों द्वारा हमारे देश के भीतर व्यय करना। इसलिए निर्यात अर्थव्यवस्था के लिए एक **समावेश** (Injection) का कार्य करते हैं।

खुली अर्थव्यवस्था में, सन्तुलन की आवश्यक शर्त को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है:

$$S + M = I + X$$

(यहाँ, S+M= बचतों और आयातों का जोड़ तथा 1+X= निवेश तथा निर्यातों का जोड़)

खुली अर्थव्यवस्था में राष्ट्रीय आय के सन्तुलन स्तर को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है:

$$Y = C + I + X = C + S + M$$

(यहाँ, Y = राष्ट्रीय आय; C = कुल उपभोग; I = कुल निवेश; S = कुल बचत; X = निर्यात और M= आयात)

■ 3.2 निर्यात वृद्धि का आय पर प्रभाव (Effect of Increase in Exports on Income)

जैसा कि ऊपर व्यक्त किया गया है कि निर्यात (X), निवेश (I) की भाँति आय के समावेश को व्यक्त करते हैं, ये घरेलू वस्तुओं तथा सेवाओं पर व्यय (Spending) को प्रकट करते हैं, इसलिए निर्यात उत्पादन के घरेलू साधनों के लिए आय का एक स्रोत है। **अतएव निवेश की भाँति निर्यातों का भी गुणक प्रभाव हो सकता है।** यदि निर्यात से प्राप्त अतिरिक्त आय में से कोई रिसाव (Leakage) न हो, तो भी आय अनन्त रूप से स्वयं ही गुणा (Multiply) होती जाएगी। परन्तु दो रिसावों की संभावना हो सकती है। **एक तो नई समावेशित आय में से कुछ राशि बचत के रूप में रख लेना और दूसरे आय बढ़ जाने पर आयातों का बढ़ जाना। अतएव, निर्यातों में वृद्धि के कारण समावेशित आय में से दो संभव रिसाव बचतें तथा आयात हैं।** इसलिए विदेशी व्यापार/निर्यात गुणक को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है:

$$K_f = \frac{I}{S + M}$$

[(यहां K_f = विदेशी व्यापार/निर्यात गुणक, S = बचत की सीमान्त प्रवृत्ति (MPS) तथा M = आयात की सीमान्त प्रवृत्ति (MPM)]।

विदेशी व्यापार गुणक का हल (Derivation of Foreign Trade Multiplier)

बीजगणित की दृष्टि से विदेशी व्यापार गुणक निम्न प्रकार से ज्ञात किया जा सकता है:

हम जानते हैं कि एक खुली अर्थव्यवस्था में राष्ट्रीय आय समरूपता (Identity) को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जाता है:

$Y = C + I + X - M$

(यहां, Y = राष्ट्रीय आय; C = राष्ट्रीय उपभोग; I = कुल निवेश; X = निर्यात; तथा M = आयात)

उपरोक्त संबध को निम्न प्रकार से प्रकट किया जा सकता है:

$Y - C = I + X - M$

$S = I + X - M$ (चूंकि $S = Y - C$)

$S + M = I + X$

इस प्रकार आय के सन्तुलन स्तर पर बचतों और आयातों का जोड़ (S+M) निवेश तथा निर्यातों के जोड़ (I+X) के बराबर होना चाहिए।

एक खुली अर्थव्यवस्था में निवेश (I) को दो भागों में विभाजित किया जाता है: घरेलू निवेश (I_d) तथा विदेशी निवेश (I_f)

क्योंकि $I = S$

इसलिए $I_d + I_f = S$ ....(i)

विदेशी निवेश (I_f) वस्तुओं तथा सेवाओं के निर्यातों एवं आयतों का अन्तर होता है।

$I_f = X - M$ ....(ii)

समीकरण (ii) को (i) में स्थानापन्न करने से

$I_d + X - M = S$ अथवा $I_d + X = S + M$

यह खुली अर्थव्यवस्था में राष्ट्रीय आय के सन्तुलन की शर्त है। जैसा कि ऊपर बतलाया गया है कि विदेश व्यापार गुणक अर्थात्

$$K_f = \frac{\Delta y}{\Delta x}$$

और $\Delta X = \Delta S + \Delta M$

दोनों पक्षों को ΔY से भाग देने पर, हम प्राप्त करते हैं:

$$\frac{\Delta X}{\Delta Y} = \frac{\Delta S + \Delta M}{\Delta Y} \text{ अथवा } \frac{I}{K_f} = \frac{\Delta S + \Delta M}{\Delta Y} \quad (\because K_f = \frac{\Delta Y}{\Delta X})$$

अथवा $$K_f = \frac{\Delta Y}{\Delta S + \Delta M}$$

$$\therefore \quad k_f = \frac{1}{\frac{\Delta S}{\Delta Y} + \frac{\Delta M}{\Delta Y}} \quad (\Delta Y \text{ से भाग देकर})$$

अतएव $$K_f = \frac{1}{MPS + MPM}$$ (यहाँ, MPS $\left(\frac{\Delta S}{\Delta Y}\right)$ = सीमान्त बचत प्रवृत्ति और MPM $\left(\frac{\Delta M}{\Delta Y}\right)$ = आयात प्रवृत्ति)

$$K_f = \frac{1}{S + M}$$

आप याद रखें कि एक बन्द अर्थव्यवस्था में निवेश गुणक $K = \frac{1}{MPS}$ परन्तु एक खुली अर्थव्यवस्था में, एक अतिरिक्त रिसाव M (अर्थात् आयात) भी है, इसलिए यहाँ विदेशी व्यापार गुणक $K_f = \frac{I}{S+M}$ के रूप में व्यक्त किया जाता है।

उपरोक्त समीकरण से स्पष्ट हो जाता है कि जितना रिसाव कम होगा (अर्थात् बचत तथा आयात की सीमान्त प्रवृत्ति जितनी कम होगी) निर्यातों में वृद्धि से गुणक प्रभाव उतना ही अधिक होगा। उदाहरण के लिए यदि S = 0.2 है और M = 0.2 है तब

$$K_f = \frac{1}{0.2+0.2} = \frac{1}{0.4} = 2.5$$

इसके विपरीत, यदि S = 0.3 और M = 0.2 है, तब

$$K_f = \frac{1}{0.5} = 2$$

अर्थात् यदि $K_f = 2$ है तब निर्यातों में 100 करोड़ रुपये की स्वचालित वृद्धि से राष्ट्रीय आय में 200 करोड़ रुपये की वृद्धि होगी, विदेशी व्यापार गुणक की निम्नलिखित रेखाचित्र 1 की सहायता से व्याख्या की जा सकती है:

विदेशी व्यापार गुणक (Foreign Trade Multiplier)

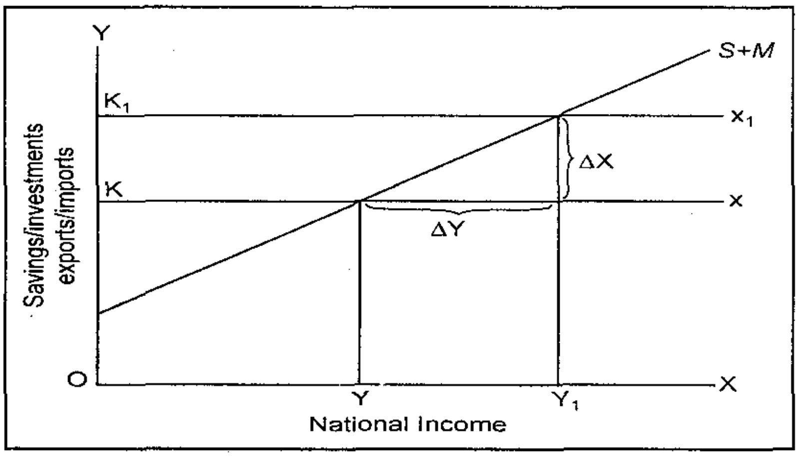

चित्र 1

इस रेखाचित्र में राष्ट्रीय आय को X-अक्ष पर और बचत, निवेश, निर्यातों तथा आयातों को OY-अक्ष पर दिखाया गया है। क्षितिज के समानान्तर सीधी रेखा Kx निर्यातों को प्रकट करती है। बचत तथा आयात फलन को धनात्मक ढाल वाली S+M रेखा द्वारा प्रकट किया गया है।

(i) निर्यातों में स्वचालित वृद्धि (Autonomous Increase in Exports): मान लो आय के OY स्तर पर अर्थव्यवस्था संतुलन में है जहाँ बचत जमा आयात निर्यातों के बराबर है। अब मान लो कि निर्यातों में स्वचालित वृद्धि होती है और निर्यात रेखा KX से सरक कर K_1X_1 हो जाती है। हो सकता है, निर्यातों में यह स्वचालित वृद्धि, हमारी निर्यात वस्तुओं के अनुकूल विदेशों में रुचियों में परिवर्तन के कारण हुई हो। निर्यातों में इस वृद्धि के फलस्वरूप देश की आय में समावेश (Injection of Income) होता है। निर्यातकर्ता देश में, नए निर्यात समावेश के कारण बढ़ी आय राशि की तुलना में, कुल आय में वृद्धि अधिक होगी क्योंकि लोग अब अतिरिक्त आय (Additional Income) के सारे अथवा अधिकांश भाग को घरेलू वस्तुओं और सेवाओं पर खर्च करेंगे; अतिरिक्त आय का केवल कुछ भाग ही बचतों तथा आयातों के रूप में रिसाव (Leakage) होगा। मान लो निर्यातों में स्वचालित वृद्धि 100 करोड़ रुपये की होती है, इसमें से बचत और अतिरिक्त आयातों के लिए प्रयोग की गई राशि मान लो 50 करोड़ रुपये है, तब आय में कुल वृद्धि 200 करोड़ रुपये होगी, क्योंकि S+M=0.5 है।

रेखाचित्र मे नया सन्तुलन बिन्दु आय के OY_1 स्तर पर स्थापित होगा जहां बचतें तथा आयात निर्यातों के नए स्तर के बराबर हैं। चित्र 1 में निर्यातों में स्वचालित वृद्धि से गुणक प्रभाव को स्पष्ट रूप से दिखाया गया है, क्योंकि $\Delta Y > \Delta X$ अर्थात् आय में परिवर्तन (वृद्धि) निर्यातों में परिवर्तन (वृद्धि) से अधिक है। निर्यातों में वृद्धि के फलस्वरूप राष्ट्रीय आय पर **फैलाव प्रभाव** (Expansionary Effect) कितना अधिक होगा, यह इस बात पर निर्भर करता है कि बचत-आयात रेखा (S+M Schedule) का ढलान क्या है, यह ढलान, स्पष्ट रूप से, बचत तथा आयात की सीमान्त प्रवृत्तियों पर निर्भर करता है। **इन प्रवृत्तियों का जोड़ जितना कम होगा, रेखा का ढलान भी उतना ही कम होगा और निर्यातों में वृद्धि के फलस्वरूप राष्ट्रीय आय पर फैलाव प्रभाव उतना ही अधिक होगा।**

■ 3.3 आय पर आयात वृद्धि का प्रभाव (Effect of Increase in Imports on Income)

(ii) आयातों में स्वचालित वृद्धि (Autonomous Increase in Imports): आयातों में स्वचालित वृद्धि के फलस्वरूप राष्ट्रीय आय पर इसका विपरीत प्रभाव पड़ेगा। मान लो घरेलू वस्तुओं की तुलना में विदेशी वस्तुओं के लिए रुचियों या पसन्दों के बढ़ जाने के कारण आयातों में वृद्धि होती है। इसका अभिप्राय है कि स्वदेशी या घरेलू वस्तुओं की मांग में कमी आ जाएगी। घरेलू वस्तुओं की मांग में कमी आने के कारण, इनका उत्पादन कम किया जाएगा, इससे रोजगार में कमी होगी। इसके फलस्वरूप आय तथा घरेलू वस्तुओं के लिए मांग घटेगी, जिससे आय तथा कुल मांग में आगे और कमी आएगी। गुणक प्रभाव के कारण आय में यह क्रम तब या तभी तक जारी रहेगी जब तक अन्तत: निम्न राष्ट्रीय आय पर नया सन्तुलन स्थापित नहीं हो जाता।

नीचे रेखाचित्र 2 आयातों में स्वचालित वृद्धि के फलस्वरूप राष्ट्रीय आय पर पड़ने वाले इसके **संकुचन प्रभाव** (Contractionary Effect) को दिखाया गया है।

राष्ट्रीय आय पर आयातों की वृद्धि का संकुचन प्रभाव
(Contractionary Effect of Increase in Imports on National Income)

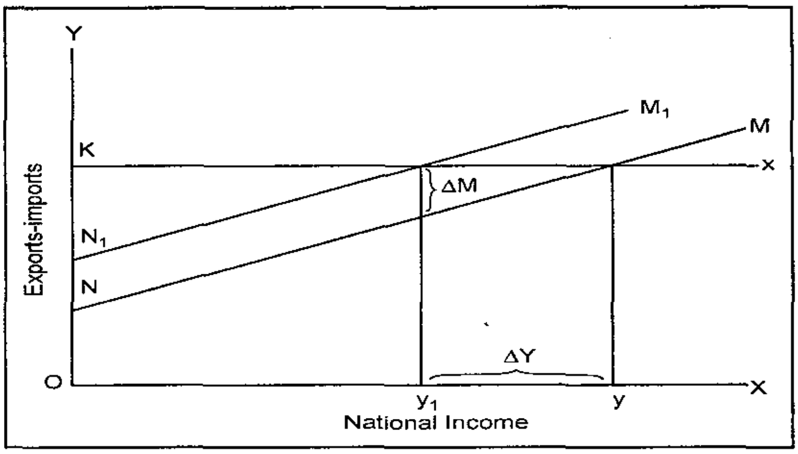

चित्र 2

रेखाचित्र में निर्यात अनुसूची (Export Schedule) को Kx रेखा द्वारा और आयात अनुसूची (Import Schedule) को NM रेखा द्वारा दिखाया गया है। अर्थव्यवस्था प्रारम्भ में y बिन्दु (अर्थात् OY आय) पर सन्तुलन में है। आयातों में स्वचालित वृद्धि के कारण आयात रेखा NM से सरक कर N_1M_1 हो जाती है, इसके फलस्वरूप नया सन्तुलन आय के निम्न स्तर y_1 (अर्थात् OY_1 आय) पर स्थापित होता है। आयातों में वृद्धि के फलस्वरूप गुणक प्रभाव के कारण आय का संकुचन होता है। रेखाचित्र में $\Delta Y > \Delta M$ अर्थात् आयातों में परिवर्तन (वृद्धि) की तुलना में आय में परिवर्तन (कमी) अधिक है।

■ खुली अर्थव्यवस्था में व्याख्या (Explanation in an Open Economy)

एक खुली अर्थव्यवस्था में, आय समावेश का कुल निवेश (Total Investment of Income Injection), **घरेलू निवेश तथा विदेशी निवेश या निर्यातों से मिलकर, बनता है। और कुल रिसाव (Total Leakage) बचतों तथा आयातों का जोड़ होता है। अतएव, सन्तुलन की स्थिति, जैसे ऊपर व्यक्त किया गया है, वहां होगी जहाँ,**

$$I + X = S + M$$

राष्ट्रीय आय पर निवेश तथा निर्यातों में वृद्धि का फैलाव प्रभाव
(Expansionary Effect of Increase in Investment and Export on National Income)

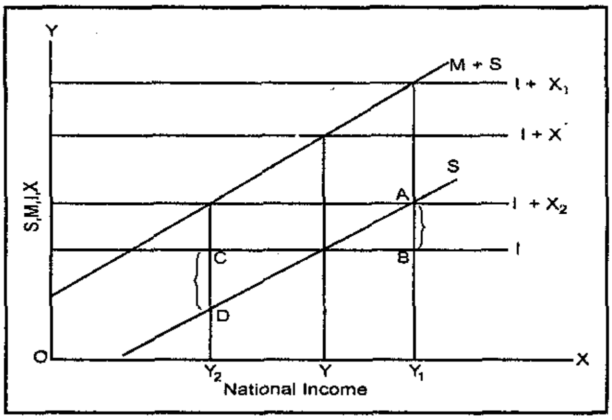

चित्र 3

ऊपर बने रेखाचित्र 3 में, I = घरेलू निवेश की अनुसूची, X= निर्यात तथा M + S = आयातों तथा बचतों को प्रकट करते हैं। I+X कुल निवेश अनुसूची को व्यक्त कर रहा है, जिसमें घरेलू निवेश तथा निर्यात शामिल हैं। शुरू में अर्थव्यवस्था राष्ट्रीय आय के OY स्तर पर सन्तुलन में है। राष्ट्रीय आय के इस स्तर पर, भुगतान शेष का चालू खाता भी सन्तुलन में है क्योंकि इस स्तर पर बचतें घरेलू निवेश के बराबर हैं (S = I) और निर्यात आयातों के बराबर हैं (X = M)।

निर्यात-घरेलू निवेश रेखा I+X का सरक कर $I+X_1$ हो जाना निर्यातों में स्वचालित वृद्धि को व्यक्त करता है। इसके परिणामस्वरूप फैलाव गुणक प्रभाव (Expansionary Multiplier Effect) y_1 पर नया सन्तुलन स्थापित करता है, जहां एक बार फिर निर्यात जमा घरेलू निवेश (Exports + Domestic Investment) बचत तथा आयातों (Saving + Imports) के बराबर है। परन्तु नए सन्तुलन बिन्दु Y_1 (अर्थात् नया आय स्तर OY_1) पर भुगतान शेष का चालू खाता (Balance of the Current Account) सन्तुलन में नहीं है, क्योंकि अब कुल बचतें घरेलू निवेश से अधिक हैं। Y_1 बिन्दु पर बचत तथा घरेलू निवेश के बीच अन्तर A-B द्वारा प्रकट किया गया है। इसका अभिप्राय यह है कि उसी राशि द्वारा निर्यात, आयातों से, अधिक है और देश पूंजी का निर्यात कर रहा है।

निर्यातों में कमी का राष्ट्रीय आय पर संकुचनात्मक प्रभाव (Contractive Effect) पड़ेगा। मान लो घरेलू निवेश जमा निर्यात घट कर $I+X_2$ हो जाते हैं, इससे आय घट कर OY_2 हो जाएगी, जहां नया सन्तुलन (अर्थात् Y_2) स्थापित होगा। आय के इस स्तर (OY_2) पर घरेलू निवेश बचतों से, अधिक है जो C-D के अन्तर द्वारा प्रकट हो रहा है। इसका अभिप्राय है कि उसी राशि पर आयात निर्यातों से अधिक है और देश के भुगतान शेष का चालू खाता घाटे में है।

■ 4. निर्यात-आयातों में परिवर्तन के अन्य देशों पर प्रभाव

(Effect of Changes in Exports-Imports on other Countries)

उपरोक्त विश्लेषण में, विदेशी व्यापार गुणक की व्याख्या एक देश की दृष्टि से की गई है। परन्तु वास्तव में विभिन्न देश, विदेशी व्यापार अथवा व्यापारिक संबंधों द्वारा, आपस में अन्तर-संबंधित (Inter-related) होते हैं। एक देश के निर्यातों अथवा आयातों का दूसरे देश की राष्ट्रीय आय पर भी प्रभाव पड़ता है और आगे दूसरा देश भी पहले देश के विदेशी व्यापार तथा राष्ट्रीय आय को प्रभावित करता है। इस प्रभाव को **विदेशी प्रति-प्रभाव** (Foreign Repercussion) या **अतिनिर्यात प्रभाव** (Backwash Effect) कहा जाता है। इसका अर्थ है कि कोई भी देश अपने भुगतान शेष में आधिक्य या घाटा अन्य देशों में ऐसी स्थितियां पैदा कर सकता है जिनसे भुगतान शेष में यह असन्तुलन दूर हो सकता है। अन्य शब्दों में, एक देश के भुगतान शेष में असन्तुलन दोनों पक्षों द्वारा दूर हो जाता है।

यदि एक देश, दूसरे व्यापारिक देश की तुलना में छोटा है, तब उस छोटे देश पर, बड़े देश की अपेक्षा, **विदेश प्रति प्रभाव** कम होगा क्योंकि छोटे देश के आयातों में वृद्धि से बड़े देश की आय में विशेष वृद्धि नहीं होगी। इसके विपरीत एक बड़े देश के लिए विदेशी **प्रति प्रभाव** अधिक होगा क्योंकि ऐसे देश की राष्ट्रीय आय में परिवर्तन होने से महत्त्वपूर्ण (Significant) विदेशी प्रति प्रभाव या अति निर्यात प्रभाव होंगे।

अब मान लो विदेशी प्रति-प्रभाव या अतिनिर्यात प्रभाव की निम्नलिखित स्थितियां हैं:

$Y_a = f(Y_b)$........(i)

और $Y_b = f(Y_a)$..........(ii)

(यहाँ, Y_a = A देश की राष्ट्रीय आय; Y_b = B देश की राष्ट्रीय आय; f (फलन), यहाँ इसका यह अभिप्राय है कि एक देश की राष्ट्रीय आय दूसरे देश की राष्ट्रीय आय का फलन है।

शर्त (i) यह बतलाती है कि A देश की राष्ट्रीय आय B देश की राष्ट्रीय आय के स्तर पर निर्भर है। इसी प्रकार शर्त (ii) बतलाती है कि B देश की राष्ट्रीय आय A देश की राष्ट्रीय आय पर निर्भर है। इसलिए देश की अर्थव्यवस्था में यदि हम कोई नीति परिवर्तन लाना चाहते हैं, तब हमें केवल अपनी राष्ट्रीय आय को ही नहीं बल्कि दूसरे देश की राष्ट्रीय आय के स्तर को भी देखना होगा। उदाहरण के लिए यदि **अधिक विकसित देश, कम विकसित देशों को**, अधिक निर्यात करना चाहते हैं तब उन्हें कम विकसित देशों के आय स्तर को भी देखना होगा क्योंकि उनके राष्ट्रीय आय स्तर पर पड़ने वाले बुरे प्रभाव का अधिक विकसित देशों के आय स्तरों पर भी वैसा ही बुरा प्रभाव पड़ेगा।

विदेशी व्यापार गुणक के उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि उपभोग, निवेश तथा सरकारी व्यय का सामूहिक प्रभाव (Combined Effect) राष्ट्रीय आय पर पड़ता है (अर्थात् $Y = C + I + G$)। जिस प्रकार घरेलू निवेश देश के उत्पादन व रोजगार पर प्रभाव डालता है, उसी प्रकार से अतिरिक्त निर्यात व विदेशी निवेश भी देश के उत्पादन, रोजगार व आय पर समावेश प्रभाव (Injection Effect) डालते हैं। विदेशी व्यापार से प्राप्त आय से व्यय में वृद्धि होती है और विदेशी व्यापार गुणक के कारण राष्ट्रीय आय में कई गुणा वृद्धि हो जाती है।

■ 5. विदेशी व्यापार गुणक में सावधानियाँ (Precautions in Foreign Trade Multiplier)

विदेशी व्यापार गुणक में निम्नलिखित सावधानियां प्रयोग में लाई जानी चाहिए:

(i) आयात प्रवृत्तियों पर ध्यान: समय व्यतीत होने के साथ-साथ आयात प्रवृत्तियों में परिवर्तन होते रहते हैं, अतएव इस पर उचित ध्यान दिया जाना चाहिए।

(ii) सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति तथा सीमान्त बचत प्रवृत्ति: गुणक को ज्ञात करते समय सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति (MPC) तथा सीमान्त बचत प्रवृत्ति (MPS) में अनेक कारणों से परिवर्तन होते रहते हैं, अत: इनका प्रयोग सावधानी से किया जाना चाहिए।

(iii) बचत तथा निवेश: गुणक प्रभाव को ज्ञात करने के लिए बचत तथा निवेश को पूर्ण रूप से आय पर निर्भर माना है, तथा यह भी माना है कि आय में वृद्धि के साथ इनमें भी उसी अनुपात में वृद्धि हो जाती है। परन्तु यह मान्यता वास्तविक न होने के कारण, इसका उपयोग सावधानी से किया जाना चाहिए।

■ 6. विदेशी व्यापार गुणक का अल्पविकसित देशों में लागू होना

(Application of Foreign Trade Multiplier to Underdeveloped Countries)

अल्पविकसित देशों के सन्दर्भ में विदेशी व्यापार गुणक एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। अल्पविकसित देश इस गुणक की सहायता से विदेशी व्यापार संबंधी विभिन्न नीतियों का निर्माण कर सकते हैं। विदेशी व्यापार गुणक उन देशों के लिए विशेष रूप से उपयोगी है जिसमें विदेशी व्यापार का योगदान राष्ट्रीय आय में अधिक होता है। इसलिए विदेशी व्यापार गुणक के अल्पविकसित देशों में लागू होने के आधार की व्याख्या निम्न प्रकार से की जा सकती है:

(i) निर्यात-प्रोत्साहन नीतियों का आधार (Basis of Export-Promotion Policies): विदेशी व्यापार गुणक की धारणा अल्पविकसित देशों को ऐसी नीति निर्माण करने में सहायता देती है जिसके द्वारा निर्यातों को प्रोत्साहन मिल सके। निर्यात प्रोत्साहन के लिए आवश्यक है कि या तो आयात प्रशुल्क (Import Duty) लगाया जाए या आयात कोटा निश्चित कर दिया जाए अथवा आर्थिक सहायता (Subsidies) प्रदान की जाए। इस संदर्भ में यहां एक प्रश्न यह उठता है कि क्या आयातों के आकार को कम करना आवश्यक है? इस संबंध में **प्रो. लुईस** (Lewis) का यह विचार है कि निर्यात क्षेत्र के विस्तार के लिए यह आवश्यक है कि आयात प्रतिस्थापन की नीति को अपनाया जाए। परन्तु लुईस का यह भी कहना है कि निर्यात क्षेत्र तथा आयात क्षेत्र दोनों ही एक दूसरे के पूरक हैं।

(ii) भुगतान शेष में सुधार (Improvement in the Balance of Payments): अल्पविकसित देशों में भुगतान शेष के प्रतिकूल होने की समस्या निरन्तर बनी रहती है। ऐसी स्थिति में उपाय यह है कि निर्यातों को बढ़ाया जाए और आयातों को कम किया जाए ताकि भुगतान शेष के चालू खाते के असन्तुलन को कम किया जा सके। इन देशों में भुगतान शेष के असन्तुलन को कम करने के लिए विदेशी निवेश को भी प्रोत्साहित किया जा सकता है। परन्तु इस संदर्भ में पिछले कुछ वर्षों में यह देखा गया है कि अल्पविकसित देशों के विश्व बाजारों में आने से उनके निर्यातों में वृद्धि हुई है। इससे उन देशों के निर्यात क्षेत्रों का तो विकास हुआ है परन्तु अन्य क्षेत्रों की अवलेहना हुई है। इसके अतिरिक्त निर्यातों पर अत्यधिक निर्भरता ने इन देशों की वस्तुओं की मांग तथा कीमतों को अन्तर्राष्ट्रीय उतार-चढ़ावों (Fluctuations) के खतरे में डाल दिया है।

(iii) घरेलू उद्योगों के लिए प्रेरणा (Incentive for Domestic Industries): विदेशी व्यापार गुणक की धारणा आयातों को सीमित करके घरेलू उद्योगों की स्थापना के लिए मार्ग खोलती है। ऐसी अवस्था में सरकार ऐसे उद्योगों को कई रियायतें व छूट दे सकती है, जिससे इनके द्वारा उत्पादित वस्तुओं के निर्यात बढ़ सकें। परन्तु यहाँ यह बतला देना आवश्यक है कि अल्पविकसित देशों के अधिकांश घरेलू उद्योग अधिकतर पारंपरिक वस्तुओं (Traditional Goods) का ही उत्पादन करते हैं, अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में ऐसी वस्तुओं की मांग निरन्तर कम होती जा रही है। इसलिए आवश्यक है कि वर्तमान स्थिति में ये उद्योग उन वस्तुओं का उत्पादन करें जिनकी मांग अन्तर्राष्ट्रीय बाजारों में बढ़ रही है या बढ़ने की सम्भावना है।

(iv) विदेशी निवेश को प्रोत्साहन (Encouragement to Foreign Investment): अल्पविकसित देशों में अधिकतर वस्तुएं जैसे मशीनरी, भारी प्लाण्ट, कल-पुर्जे आदि विदेशों से मंगवाए जाते हैं। आयातों को कम करने के लिए इन देशों की सरकारें

विदेशी निवेश को भी प्रोत्साहित कर रही हैं। विदेशी वित्तीय सहायता से यदि आयात की जाने वाली वस्तुओं के कारखाने देश में ही स्थापित किए जाते हैं, तो इससे विदेशों पर निर्भरता कम हो सकती है। परन्तु यहां तस्वीर का दूसरा पहलू यह है कि विदेशी निवेश का अर्थव्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। विदेशी निवेशकर्ता अधिकतर निर्यात वस्तुओं के व्यापार में वृद्धि करते हैं और लाभों का अधिक भाग अपनी जेबों में डाल लेते हैं। इन लाभों का विदेशों में चले जाना एक प्रकार से आय प्रवाह में से वापसी (Withdrawal) है, इनका देश में पुन: निवेश नहीं होता। इससे संभाव्य वास्तविक बचतें भी सीमित हो जाती हैं।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि विदेशी व्यापार गुणक एक ओर तो निर्यातों को प्रोत्साहित करता है, घरेलू उद्योगों की स्थापना में सहायता प्रदान करता है तथा विदेशी निवेश को प्रोत्साहन देता है। परन्तु दूसरी ओर अन्तर्राष्ट्रीय शक्तियों के प्रति-प्रभावों की कार्यशीलता की ओर ध्यान भी केन्द्रित करता है।

■ 7. विदेशी व्यापार गुणक का महत्त्व (Significance of Foreign Trade Multiplier)

विदेशी व्यापार गुणक के महत्त्व को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है:

(i) आयात-निर्यात पर प्रभाव (Impact on Imports-Exports): आयातों की तुलना में निर्यातों के अधिक होने पर विदेशी व्यापार गुणक प्रभाव धनात्मक होता है। इससे देश में उत्पादन, आय तथा रोजगार में वृद्धि होती है। इसके विपरीत आयात अधिक होने पर गुणक प्रभाव ऋणात्मक हो जाता है और इसके **विपरीत दिशा में कार्य करने से** (Reverse Operation) से रोजगार तथा आय में कई गुणा कमी हो जाती है। जब आयात और निर्यात एक दूसरे के बराबर होते है, तब गुणक प्रभाव **तटस्थ** (Neutral) हो जाता है, तब इसका कोई भी प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है।

विदेशी व्यापार गुणक का वैश्वीय प्रभाव
(Global Impact of FTM)

विदेशी व्यापार गुणक के कारण ही एक देश का प्रभाव अन्य देशों की अर्थव्यवस्था पर पड़ता है तथा वह देश स्वयं भी प्रभावित हो जाता है। उदाहरण के लिए, एक देश में तेजी या मन्दी आने पर उसका प्रभाव अन्य देशों में भी पहुँच जाता है। तेजी आने पर निर्यातों में वृद्धि होकर उसका गुणक प्रभाव (Multiplier Effect) होता है और आय बढ़ने से आयातों में भी वृद्धि हो जाती है जिसमें अन्य देशों के निर्यात भी प्रोत्साहित होकर वहां गुणक क्रियाशील हो जाता है।

(ii) स्फीतिक प्रभाव (Inflationary Effect): यदि आयातों की तुलना में निर्यात अधिक हैं, तब इसका स्फीतिक प्रभाव पड़ता है क्योंकि निर्यातों के बढ़ने से अधिक मौद्रिक आय प्राप्त होती है, जिससे लोगों की क्रयशक्ति बढ़ जाती है। इसी प्रकार जब निर्यात तथा आयात दोनों में कमी हो जाती है और निर्यातों में कमी यदि धीमी गति से हो तो इसका भी स्फीतिक प्रभाव होता है और गुणक की आगे की प्रक्रिया शुरू हो जाती है।

(iii) राष्ट्रीय आय को बढ़ाना (Raising National Income): देश में राष्ट्रीय आय को बढ़ाने में विदेशी व्यापार गुणक महत्त्वपूर्ण योगदान देता है। बचत तथा आयात की सीमान्त प्रवृत्ति स्थिर रहने पर, निर्यातों में वृद्धि होने से, निर्यात उद्योगों में, उत्पादन तथा रोजगार में वृद्धि होती है, इसके फलस्वरूप देश की राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है।

■ 8 गुणक प्रभाव में रिसाव (Leakages in Multiplier Effect)

विदेशी व्यापार के फलस्वरूप आय में जो वृद्धि होती है, उसका पूर्ण प्रभाव राष्ट्रीय आय की वृद्धि पर नही होता है और बीच में ही कुछ रिसाव ऐसे हैं जो व्यापार गुणक के प्रभाव को कम कर देते हैं। ये रिसाव निम्नलिखित हैं:

(i) छोटे देश पर नगण्य प्रभाव (Negligible Effect on a Small Country): यदि विदेशी व्यापार गुणक विश्लेषण को एक छोटे देश पर लागू किया जाए तो अधिकांश आय का दूसरे क्षेत्रों में रिसाव होने से उस क्षेत्र पर गुणक के द्वितीयक प्रभाव नगण्य होते हैं।

(ii) घरेलू बचत में वृद्धि से रिसाव (Leakages Due to Increase in Domestic Savings): घरेलू बचतों में वृद्धि के फलस्वरूप भी रिसाव होता है। निर्यातों की वृद्धि से आय प्राप्त होने पर यदि उसे पूर्ण रूप से उपभोग पर व्यय न करके, उसके एक भाग की बचत करने से, *गुणक प्रभाव सीमित हो जाता है और अपना पूरा प्रभाव नहीं दिखा पाता।* **सैम्युअलसन** (Samuelson) के अनुसार, ''जब प्रत्येक अर्थव्यवस्था में आय का कुछ न कुछ अंश घरेलू बचत के रूप में रिस जाता है, निर्यातों के नए रुपयों (डालर) से आय तो बढ़ेगी पर उतनी अधिक नहीं कि पूरे एक रुपये (डालर) के बराबर आयात किया जा सके।''

(iii) आयातों पर व्यय (Spending on Imports): निर्यातों से प्राप्त होने वाली आय के यदि एक अंश को आयातों पर *व्यय कर दिया जाए, तो इससे आय का गुणा होना (Multiplication of Income) सीमित या कम हो जाता है। अतएव आयात* प्रवृत्ति विदेशी व्यापार गुणक का एक रिसाव है।

(iv) स्फीतिक कारण (Inflationary Causes): *कीमत स्तर में वृद्धि भी विदेशी व्यापार गुणक का एक रिसाव है।* कीमत स्तर में वृद्धि के फलस्वरूप, आय वृद्धि का एक अंश बेकार हो जाता है तथा उससे उपभोग, आय व रोजगार में वृद्धि नहीं हो पाती।

■ 9. विदेशी व्यापार गुणक की आलोचना (Criticism of Foreign Trade Multiplier)

पिछले पृष्ठों में व्यक्त की गई विदेशी व्यापार गुणक की धारणा तुलनात्मक अगत्यात्मक विश्लेषण (Comparative Static Analysis) तथा कुछ मान्यताओं पर आधारित है, इसके कारण यह धारणा अवास्तविक बन जाती है। गुणक की इस धारणा की मुख्य आलोचनाएं निम्नलिखित हैं:

(i) निर्यात तथा निवेश स्वतन्त्र नहीं है (Exports and Investments are not Independent): विदेशी व्यापार गुणक की धारणा इस मान्यता पर आधारित है कि घरेलू तथा विदेशी निर्यात एवं निवेश राष्ट्रीय आय के स्तर में परिवर्तन से स्वतंत्र हैं। परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। यह आवश्यक नहीं कि निर्यातों में वृद्धि से राष्ट्रीय आय में वृद्धि अवश्य हो, बल्कि कुछ पूंजी पदार्थों के आयातों से भी राष्ट्रीय आय में वृद्धि हो सकती है।

(ii) अन्तराल व्यक्त नहीं (Lags Not Mentioned): विदेशी व्यापार गुणक एक तात्क्षणिक प्रक्रिया (Instantaneous) है, अतएव इससे केवल अन्तिम परिणामों का ही पता चलता है। अपनी प्रक्रिया में यह अन्तराल या विलम्ब को नहीं बतलाता, इसलिए यह अवास्तविक है।

(iii) पूर्ण रोजगार की मान्यता (Assumption of Full Employment): विदेशी व्यापार गुणक की धारणा, अर्थव्यवस्था में, पूर्ण रोजगार की अवास्तविक मान्यता पर आधारित है। परन्तु जैसा कि **केन्ज** का कहना है कि प्रत्येक अर्थव्यवस्था में अपूर्ण रोजगार या अल्परोजगार की स्थिति पाई जाती है; अतएव यह धारणा उस अर्थव्यवस्था का पूर्ण चित्र चित्रित नहीं करती है जिसमें *अपूर्ण रोजगार की स्थिति पाई जाती है।*

(iv) दो-देश माडल पर लागू (Applicable to a Two-country Model): विदेशी व्यापार गुणक का पूर्ण विश्लेषण दो-देशों के मॉडलों पर लागू होता है। यदि देश दो से अधिक हैं तो इस सिद्धान्त के विदेशी प्रति प्रभावों (Foreign Repercussions) की व्याख्या तथा विश्लेषण करना जटिल बन जाता है।

इन *आलोचनाओं के होते हुए भी, विदेशी व्यापार गुणक की धारणा आर्थिक विश्लेषण में एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है और* नीति उपायों के निर्माण में सुयोग्य सहायता प्रदान करती है।

प्रश्न (QUESTIONS)

I. वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

सभी प्रश्न अनिवार्य हैं (Attempt all the Questions)

1. विदेशी व्यापार गुणक आय में अन्तिम वृद्धि का अनुपात निम्न में से किसकी प्रारम्भिक शुद्ध वृद्धि के फलस्वरूप होता है (आयातों पर निर्यातों की, निर्यातों पर आयातों की)
2. विदेशी व्यापार गुणक निर्भर करता है घरेलू बचतों के आकार तथा (निर्यात की सीमान्त प्रवृत्ति पर, आयात की सीमान्त प्रवृत्ति पर)
3. यदि घरेलू बचतों तथा आयात प्रवृत्ति का आकार अधिक है तब विदेशी व्यापार गुणक का आकार होगा (कम, अधिक)
4. निर्यात गुणक तथा आयात की सीमान्त प्रवृत्ति के बीच सम्बन्ध होता है (विपरीत, आनुपातिक)(K.U. 2009)
5. आयात, बचतों की भाँति बताते हैं अर्थव्यवस्था के (रिसाव, समावेश)
6. आयातों से स्वचालित वृद्धि के फलस्वरूप राष्ट्रीय आय पर पड़ने वाले प्रभाव होंगे (संकुचनात्मक, विस्तारात्मक)
7. अन्य व्यापारिक देश की तुलना में यदि एक देश छोटा होता है तब अति निर्यात प्रभाव होगा (कम महत्त्वपूर्ण, अधिक महत्त्वपूर्ण)
8. विदेशी व्यापार गुणक बराबर है $\left(k_f = \frac{\Delta Y}{\Delta x}, K_f = \frac{\Delta Y}{\Delta M}\right)$(K.U. 2006, M.D.U. 2007)

उत्तर (Answers): (1) आयातों पर निर्यातों की, (2) आयात की सीमान्त प्रवृत्ति पर, (3) कम, (4) विपरीत, (5) रिसाव, (6) संकुचनात्मक, (7) कम महत्त्वपूर्ण, 8. $\left(k_f = \frac{\Delta Y}{\Delta x}\right)$।

II. लघु/परिभाषा रूपी प्रश्न (Short/Definitional Type Questions)

1. विदेशी व्यापार गुणक का क्या अर्थ है?
2. विदेशी व्यापार गुणक किस पर निर्भर करता है?
3. यदि आयात तथा बचत की सीमान्त प्रवृत्ति अधिक है तो क्या विदेशी व्यापार गुणक का आकार भी अधिक होगा?
4. निवेश तथा बचतों के अतिरिक्त अन्य दो कौन से घटक हैं जिनका एक खुली अर्थव्यवस्था में ध्यान रखा जाता है?
5. विदेशी व्यापार गुणक के रिसाव क्या हैं?
6. फैलाव/विस्तारात्मक प्रभाव की परिभाषा दें।
7. संकुचनात्मक प्रभाव क्या हैं?
8. अति निर्यात प्रभाव क्या हैं?
9. विदेशी व्यापार गुणक के महत्त्व की दो बातें बतलाएं।
10. विदेशी व्यापार गुणक की आलोचना की दो बातें बतलाएं।

III. निबन्ध रूपी प्रश्न (Essay Type Questions)

1. Explain the concept of foreign trade multiplier.
   विदेशी व्यापार गुणक सिद्धान्त की व्याख्या करें। (M.D.U. 2008)
2. Define foreign trade multiplier and tell (a) effect of increase in exports on income and (b) effect of increase in imports on income.
   विदेशी व्यापार गुणक की परिभाषा दें और बताएं (a) निर्यातों में वृद्धि का आय पर प्रभाव और (b) आयातों में वृद्धि का आय पर प्रभाव।

3. Explain the determination of national income in an open economy with the help of foreign trade multiplier.
   विदेशी व्यापार गुणक की सहायता से एक खुली अर्थव्यवस्था में राष्ट्रीय आय के निर्धारण की व्याख्या करें। (K.U. 2005)
4. What is foreign trade multiplier? Can it be applicable in the case of underdeveloped countries?
   विदेशी व्यापार गुणक क्या है? क्या यह अल्पविकसित देशों के संदर्भ में लागू हो सकता है?
5. What do you mean by foreign trade multiplier? What is its importance? Tell its main leakages.
   विदेशी व्यापार गुणक से आपका क्या अभिप्राय है? इसका क्या महत्त्व है? इसके मुख्य रिसाव बतलाएं।
6. Critically examine the concept of foreign trade multiplier.
   विदेशी व्यापार गुणक की आलोचनात्मक परीक्षण करें।
7. What is foreign trade multiplier? Explain its forward and backward working.
   विदेशी व्यापार गुणक क्या है? इसकी आगे तथा पीछे की कार्यविधि की व्याख्या करें। (K.U. 2007)
8. Define Foreign Trade Multiplier. Explain its working.
   विदेशी व्यापार गुणक की परिभाषा दीजिए। इसकी कार्यशीलता की व्याख्या कीजिए। (K.U. 2008)

23

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष

(INTERNATIONAL MONETARY FUND)

■ 1. अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष क्या है? (What is International Monetary Fund?)

द्वितीय विश्वयुद्ध का विश्व की अर्थव्यवस्था पर बहुत प्रभाव पड़ा। इस अवस्था का सुधार करने के विचार से अमेरिका में जुलाई, 1944 में ब्रेटन वुड्स (Bretton Woods) के स्थान पर एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन बुलाया गया। इस सम्मेलन में 44 देशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया था। इस सम्मेलन में यह निश्चित किया गया कि सभी देशों के आर्थिक विकास के लिये दो संस्थाएं स्थापित की जायें। (1) **अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष** (International Monetary Fund) तथा (2) **अन्तर्राष्ट्रीय पुनर्निर्माण तथा विकास बैंक** (International Bank for Reconstruction and Development or World Bank)। **अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष** (IMF) की स्थापना 27 दिसम्बर, 1945 को हुई। इस कोष ने अपना कार्य 1 मार्च, 1947 को आरम्भ किया। **अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष वह अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्था है जिसकी स्थापना विश्व व्यापार के सन्तुलित विकास, अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक सहयोग तथा सदस्य देशों के भुगतान शेष** (Balance of Payments) **की अस्थायी असन्तुलन की समस्या को सुलझाने के उद्देश्य से की गई।**

■ 2. अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के उद्देश्य (Objectives of International Monetary Fund)

इस कोष के उद्देश्य निम्नलिखित हैं:

(1) **अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक सहयोग** (International Monetary Co-operation): इसका मुख्य उद्देश्य संसार के विभिन्न देशों में मौद्रिक सहयोग स्थापित करना है। यह अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं को सुलझाने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय परामर्श का अवसर देगा।

(2) **बहुपक्षीय भुगतान व व्यापार का विकास** (Multilateral Payment and Development of Trade): यह फंड द्विपक्षीय समझौतों (Bilateral Agreement) के स्थान पर बहुपक्षीय भुगतान तथा व्यापार प्रणाली (Multilateral Payments and Trade System) की स्थापना में सहायता प्रदान करेगा।

(3) **विनिमय दर में स्थिरता** (Stability in the Rate of Exchange): इस कोष का एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य यह है कि यह फंड सदस्य देशों के विनिमय दर को स्थायी बनाए रखने का प्रयत्न करेगा। अब इस उद्देश्य में संशोधन कर दिया गया है।

(4) **विनिमय नियन्त्रण का हटाना** (Abolition of Exchange Restriction): यह फंड सदस्यों द्वारा विदेशी विनिमय पर लगाये गये नियन्त्रणों को हटाने का प्रयत्न करेगा।

(5) **अन्तर्राष्ट्रीय भुगतान में सहायता** (Help in International Payments): यह कोष अपने सदस्य देशों को दूसरे देशों की मुद्राएं उधार देगा या बेचेगा। इससे विभिन्न देशों को अपने विदेशी विनिमय व्यापार में बाधाओं का सामना नहीं करना पड़ता।

(6) **संकट काल में सदस्यों की सहायता** (Aid to Members during Emergency): फंड का उद्देश्य संकट काल में सदस्य देशों को अल्पकालीन मौद्रिक सहायता देना है।

(7) **अन्तर्राष्ट्रीय भुगतान असन्तुलन को कम करना** (Reduction in the Disequilibrium in International Balance of Payments): इस फंड का उद्देश्य सदस्य देशों के अन्तर्राष्ट्रीय भुगतानों के असन्तुलन के समय तथा मात्रा को कम करने के लिये उन्हें मौद्रिक सहायता देना है।

(8) पूंजी का लाभप्रद निवेश (Profitable Investment of Capital): इस कोष का उद्देश्य सदस्य देशों को उनकी दीर्घकालीन पूंजी को लाभप्रद कार्यों में लगाने में भी मदद देना है। यह विशेष रूप से धनी देशों को निर्धन देशों में पूंजी का निवेश करने में सहायता देता है।

(9) संतुलित आर्थिक विकास में सहायता *(Help in Balanced Economic Development)*: इस कोष का उद्देश्य अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का विकास करने के साथ-साथ सदस्य राष्ट्रों को सन्तुलित आर्थिक विकास में सहयोग देना भी है। ताकि सभी राष्ट्रों में रोजगार व वास्तविक आय का ऊंचा स्तर कायम हो जाये।

■ 3. सदस्यता (Membership)

मुद्रा कोष के सदस्य दो प्रकार के होते हैं: (1) **मौलिक सदस्य** (Original Members) (2) **साधारण सदस्य** (Ordinary Members)। वे सब देश जिनके प्रतिनिधियों ने ब्रेटन वुड्स में भाग लिया था और जिन देशों ने 31 दिसम्बर, 1945 से पहले कोष का सदस्य बनना स्वीकार कर लिया था कोष के **मौलिक सदस्य** कहलाते हैं। जो सदस्य दिसम्बर 1945 के पश्चात् बने हैं उन्हें **साधारण सदस्य** कहा जाता है। कोई भी देश लिखित सूचना देकर कोष से अलग हो सकता है यदि कोई सदस्य कोष के नियमों का पालन नहीं करता तो कोष उसकी सदस्यता समाप्त कर सकता है। 1947 में फंड के 40 देश सदस्य थे। सन् 2004 में सदस्य देशों की संख्या 184 है। अब साम्यवादी देश जैसे चीन भी इसका सदस्य हो गया है।

■ 4. प्रबन्ध तथा संचालन (Organisation and Management)

कोष का प्रबन्ध करने के लिये निम्नलिखित प्रशासक मण्डल बनाये गये हैं:

(1) गवर्नर मण्डल (Board of Governers): इसमें प्रत्येक सदस्य देश एक गवर्नर तथा एक सहायक गवर्नर नियुक्त करता है। इसकी मीटिंग वर्ष में एक बार होती है। यह फण्ड की नीतियों का निर्धारण करता है।

(2) संचालक मंडल (Board of Directors): यह कोष के दैनिक कार्यों का संचालन करता है। इस समय इसके 21 सदस्य हैं जिनमें से 7 स्थायी तथा बाकी अस्थायी होते हैं। स्थायी संचालक उन सात देशों के होते हैं जिनका चन्दा दूसरों से अधिक है। इस समय ये देश अमेरिका, जापान, जर्मनी, ब्रिटेन, फ्रांस, इटली तथा कनाडा हैं। 14 संचालक अन्य देशों द्वारा निर्वाचित किये जाते हैं। भारत निर्वाचित सदस्यों में से एक है। **प्रबन्धक निदेशक** (Managing Director) इस फण्ड का मुख्य अधिकारी होता है। इसका चुनाव संचालक मण्डल करता है। परन्तु संचालक मण्डल अपने सदस्यों में से प्रबन्ध निदेशक नियुक्त नहीं कर सकता। जून, 1994 से **प्रबन्ध निदेशक** एक सहायक के स्थान पर 3 सहायक प्रबन्ध निदेशक नियुक्त कर सकता है।

■ 5. पूंजी (Capital)

इस फंड की पूंजी सदस्य देशों के लिये नियत किये गये अभ्यशों (Quotas) के कुल योग से बनती है। प्रत्येक देश का कोटा कोष का सदस्य बनने से पहले नियत कर दिया जाता है। आजकल हर सदस्य का कोटा SDR के रूप में निर्धारित किया जाता है। प्रत्येक देश को अपने कोटे की 25 प्रतिशत रकम फण्ड द्वारा निर्धारित आरक्षित परिसम्पत्ति (Reserve Assets) जैसे SDR या अन्य कोई प्रयोग योग्य करेंसी में देनी पड़ती है तथा 75 प्रतिशत रकम अपने देश की करेन्सी में देनी पड़ती है। एक देश को कोटे की रकम के द्वारा ही फण्ड के साथ उसके सम्बन्ध निर्धारित होते हैं। जैसे (a) सदस्य देश की वोट देने की शक्ति (Voting Power) कोटे की रकम पर निर्भर करती है। प्रत्येक देश के 250 न्यूनतम वोट होते हैं। इसके अतिरिक्त प्रत्येक एक लाख SDR पर एक वोट बढ़ जाता है। (b) किसी देश को भुगतान शेष के लिये फण्ड से मिलने वाली वित्तीय सहायता की अधिकतम सीमा कोटे की रकम पर निर्भर करती है। (c) SDR के आवंटन में किसी देश का हिस्सा उसके कोटे की रकम पर ही निर्भर करता है। फण्ड के कोटे में किये जाने वाले परिवर्तन हर पांच वर्ष के बाद तय किये जाते हैं। आरम्भ में इस फण्ड की कुल पूंजी 880 करोड़ डालर नियत की गई थी। फंड ने सदस्य देशों के कोटे में विभिन्न समय में परिवर्तन किया है। सदस्य देशों के कोटे में समय-समय पर वृद्धि होती रही है। 2004 में फंड ने कोटे को बढ़ा कर 415.8 करोड़ SDR कर दिया। एक सदस्य देश के कोटे से तीन बातें स्पष्ट होती हैं। (1) एक देश का फंड की पूंजी में कितना भाग होगा। (2) एक देश

फंड से कितना ऋण ले सकता है। (3) एक देश कितने वोट डाल सकता है। सबसे अधिक कोटा अमेरिका का है। यह फंड की कुल पूंजी का लगभग 23 प्रतिशत है।

सन् 2002 में फण्ड में विदेशी विनिमय तथा SDRs के रूप में 153 देशों के कुल कोष 228.1 बिलियन डालर थे।

■ I. फंड द्वारा ऋण लेना (Borrowings by the Fund)

IMF द्वारा नियन्त्रण और सलाहकार आदि कार्यों का निष्पादन करने के अतिरिक्त IMF एक मुख्य वित्तीय संस्था है। फंड के अधिकतर वित्तीय संसाधन सदस्य देशों से कोटा अंशदान के रूप में आते हैं। इसके अतिरिक्त यह सरकारों, केन्द्रीय बैंकों अथवा औद्योगिक देशों की निजी संस्थाओं, अन्तर्राष्ट्रीय परिशोधन बैंक, तथा OPEC देशों जैसे सऊदी अरब आदि से ऋण ले सकता है।

ऋण लेने का सामान्य समझौता (General Agreement to Borrow - GAB): फंड GAB के अन्तर्गत अपने 11 औद्योगिक सदस्यों से अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक प्रणाली की क्षति को रोकने अथवा उसका सामना कर सकने के लिए ऋण ले सकता है। GAB अक्तूबर 1962 से लेकर दिसम्बर 1998 तक लागू रहा। उस समय इसका कुल ऋण SDR 17 बिलियन था। ऋण के नए प्रबन्धों के अन्तर्गत विकसित देशों ने $25 बिलियन के ऋण अनुमोदित किए।

■ II. फंड द्वारा ऋण देना (Lending by the Fund)

ट्रेंच नीति के अन्तर्गत एक सदस्य देश आरक्षित ट्रेंच तथा चार क्रेडिट ट्रेंच प्रयोग कर सकता है। विशेष उद्देश्यों के लिए तीन स्थाई सुविधाएं निर्यात अस्थिरता के लिए क्षतिपूरक वित्तीय सुविधा (1963 में स्थापित तथा 1975 और 1979 में उदारीकृत), बफर स्टॉक वित्तीय सुविधा (1969 में स्थापित), तथा विस्तारित कोष सुविधा (1974 में स्थापित) तथा संरचनात्मक समायोजन सुविधा (SAF) (मार्च 1986 में स्थापित) सदस्यों द्वारा प्रयोग की जा सकती हैं। फंड द्वारा सदस्यों को ऋण अस्थाई तौर पर उनके चालू खातों के भुगतान शेष के असन्तुलित होने पर दिया जाता है। यदि सदस्य देश की मुद्रा का स्तर उसके कोटा से कम हो जाता है तो अन्तर को आरक्षित ट्रेंच कहा जाता है। यह अपने सन्तुलन आवश्यकताओं के लिए फंड को प्रतिवेदन करके स्वत: अपने आरक्षित ट्रेंच का 25 प्रतिशत तक निकाल सकता है। फंड उन आहरणों पर कोई ब्याज नहीं लेता है। उधार लेने वाले देश के द्वारा इन ऋणों का 3 से 5 वर्षों के बीच पुनर्भुगतान करना होता है।

क्रेडिट ट्रेंच (Credit Tranches): एक सदस्य देश के द्वारा क्रेडिट ट्रेंच में से 4 किस्तों में अपने शेष कोटा का 100 प्रतिशत तक निकाल सकता है। ऋण लेने वाले देश के द्वारा फंड को सन्तुष्ट करना होगा कि वित्तीय स्थिरता को सुनिश्चित करने के लिए व्यवहार्य कार्यक्रम शुरू किए गए हैं। इसका अभिप्राय है कि क्रेडिट ट्रेंच से आहरण शर्तयुक्त है। फंड द्वारा धीरे-धीरे सदस्यों द्वारा ऋण लेने की सीमा को बढ़ाया गया है ताकि वे अपनी भुगतान शेष की गम्भीर समस्या से निपट सकें। अब एक सदस्य फंड के संसाधनों में से अपने नए कोटा के 300 प्रतिशत तक ऋण ले सकते हैं। CCFF, BSAF, SAF, STF तथा ESAF के अन्तर्गत आहरण को 300 प्रतिशत की सीमा से अलग रखा गया है।

अन्य ऋण सुविधाएँ (Other Credit Facilities): 1960 से फंड द्वारा कई नई सुविधाएं शुरू की गई। ये सुविधाएं क्रेडिट ट्रेंच के अन्तर्गत लिए गए ऋणों के अतिरिक्त हैं तथा ये ऋण लम्बे समय के लिए उपलब्ध होते हैं। ये ऋण सुविधाएं हैं:

(1) बफर स्टॉक वित्तीय सुविधा (Buffer Stock Financing Facility - BSFF): इसकी स्थापना1969 में की गई थी। इसकी स्थापना सदस्य देशों की वस्तुओं के बफर स्टॉक के वित्त प्रबन्ध के लिए की गई थी। एक सदस्य देश इस शीर्षक के अन्तर्गत अपने कोटा के 30 प्रतिशत तक राशि आहरित कर सकता है। सदस्य को अपने देश में वस्तुओं के मूल्यों को स्थिर करने में फंड की सहायता करना आवश्यक है। पुन: क्रय (Repurchases) $3\frac{1}{4}$ वर्ष से लेकर 5 वर्षों में किया जाता है।

(2) विस्तारित फंड सुविधा (Extended Fund Facility - EFF): इस सुविधा की स्थापना 1974 में हुई थी। EFF के अन्तर्गत ऋण अपने भुगतान शेष की कमी को पूरा करने के लिए लिया जा सकता है। EFF के अन्तर्गत दी जाने वाली राशि उनके कोटा के अन्तर्गत दी जाने वाली ऋण सुविधा की राशि से अधिक होती है। यह सुविधा अधिकतम 10 वर्ष के लिए दी जाती है। EFF के

अन्तर्गत दी जाने वाली ऋण की राशि सदस्य के कोटा के 300 प्रतिशत तक स्वीकृत है। अनुमति निष्पादन मापदण्ड तथा आहरण की किस्तों पर आधारित होती है।

(3) अनुपूरक वित्तीय सुविधा (Supplementary Financing Facility - SFF): 1977 में अतिरिक्त अथवा सहारा प्रबन्धों के अन्तर्गत अनुपूरक वित्त प्रबन्ध के लिए एक अन्य सुविधा SFF की शुरुआत की गई थी। इसका मुख्य उद्देश्य सदस्य देशों को भुगतान शेष की कमी से निपटने के लिए ऋण प्रदान करना है। यह कमी उनकी अर्थव्यवस्थाओं अथवा उनके कोटा से ज्यादा होती है। यह सुविधा कम आय वाले विकासशील देशों को भी उपलब्ध है। 1980 में फंड ने एक आर्थिक सहायता खाता भी स्थापित किया था ताकि कम आय वाले विकासशील देशों द्वारा SFF के अन्तर्गत लिए गए ऋणों की लागत को कम किया जा सके। **आर्थिक सहायता खाते** (Subsidy Account) से अभिप्राय उस खाते से है जिसके माध्यम से फंड उधार लेने वाले देशों को आर्थिक सहायता का भुगतान करता है।

(4) संरचनात्मक समायोजन सुविधा (Structural Adjustment Facilty - SAF): इसकी स्थापना मार्च 1986 में की गई थी। इसका मुख्य उद्देश्य मध्यकालीन समष्टि आर्थिक तथा संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रम को चलाने के लिए छूट प्रदान करना था। उनको ऋण अपनी भुगतान शेष समस्या को सुलझाने के लिए भी दिया जाता है। ये ऋण गरीब देशों को अत्यधिक रियायती शर्तों पर उपलब्ध करवाए जाते हैं। उनसे लिए जाने वाले ब्याज की दर 0.5 से 1.0 प्रतिशत के बीच में होती है तथा पुनर्भुगतान की अवधि साढ़े पांच वर्ष से 10 वर्ष तक की होती है तथा 5 वर्ष की अनुग्रह अवधि (Grace Period) भी होती है। अदायगी वार्षिक आधार पर की जाती है तथा यह वार्षिक प्रबन्धों की स्वीकृति से जुड़ी है जिसमें सदस्य अपने कोटा के 15 प्रतिशत के बराबर प्रथम वर्ष में, 20 प्रतिशत दूसरे वर्ष में तथा 15 प्रतिशत तीसरे वार्षिक प्रबन्ध में ले सकते हैं। SAF का निर्माण SDR 2.7 बिलियन संसाधनों से हुआ था। संसाधन मुख्यत: ट्रस्ट फंड के ऋण के पुनर्भुगतान से आते हैं।

(5) विस्तृत संरचनात्मक समायोजन सुविधा (Enhanced Structural Adjustment Facility - ESAF): ESAF का सृजन दिसम्बर 1987 SDR 6 बिलियन संसाधनों के साथ हुआ था। इसकी स्थापना कम आय वाले देशों की मध्यकालीन वित्तीय आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए की गई थी। ESAF के उद्देश्य, योग्यता तथा आधारभूत कार्यक्रम वहीं हैं जो SAF के थे। दोनों में अन्तर सिर्फ दी जाने वाली सहायता की राशि का है। सदस्य कोटा के 100 प्रतिशत के बराबर 3 वर्ष की अवधि के कार्यक्रम के लिए राशि प्राप्त कर सकता है। परन्तु अपवादस्वरूप दशाओं में 250 प्रतिशत तक के ऋण का प्रावधान भी है। ESAF के अन्तर्गत अदायगी वार्षिक की बजाय छमाही में की जाती है।

(6) प्रतिपूरक तथा आकस्मिक वित्तीय सुविधा (Compensatory and Contingency Financing Facility - CCFF): CCFF का सृजन अगस्त 1988 में हुआ था। इसका मुख्य उद्देश्य अस्थाई कमी अथवा सदस्य के अनियन्त्रणीय तत्वों के कारण अनाज की लागत में वृद्धि की समय पर क्षतिपूर्ति करना था। यह सुविधा सदस्य को फंड द्वारा सहायता प्राप्त समायोजन कार्यक्रमों की गति को बनाए रखने के लिए दी जाती है। 1990 में फंड ने सदस्यों को खाड़ी युद्ध संकट से उबारने के लिए एक महत्वपूर्ण तत्व की शुरुआत अस्थाई तौर पर 1991 के अन्त तक की थी। यह CCFF के कोटा के 95 प्रतिशत तक थी। यह भी निर्णय लिया गया कि CCFF के कार्यक्षेत्र को बढ़ाया जाए। क्षतिपूरक वित्तीय सहायता में अब निर्यात् की कमी की गणना में श्रमिकों को भेजने तथा यात्रा प्राप्तियों, अन्य सेवाओं में कमी जैसे पाइपलाइन नहरों, जलपोत परिवहन, निर्माण तथा बीमा आदि से प्राप्तियों की कमी आदि सम्मिलित किए गए हैं।

(7) सुव्यवस्थित रूपान्तरण सुविधा (Systematic Transformation Facility - STF): अप्रैल 1993 में $ 6 बिलियन संसाधनों के साथ रूस तथा अन्य केन्द्रीय एशियन गणराज्यों को भुगतान शेष के संकट से निपटने में सहायता करने के लिए इसकी स्थापना की गई थी।

(8) आपातकालीन संरचनात्मक समायोजन ऋण (Emergency Structural Adjustment Loans - ESAL): ESAL सुविधा 1999 के शुरू में फंड द्वारा स्थापित की गई थी ताकि वित्तीय संकट से त्रस्त एशियन तथा लैटिन अमेरिकी देशों की

सहायता की जा सके। फंड द्वारा ली जाने वाली ब्याज की दर को साधारण ब्याज दर से अल्पकाल के लिए 3 प्रतिशत से 5 प्रतिशत अधिक रखा गया था।

(9) आकस्मिक ऋण रेखा (Contingency Credit-Line-CCL): अप्रैल 1999 में CCL की स्थापना मूल रूप से मजबूत देशों को अन्य देशों में फैल रही वित्तीय संकट की छूत से बचाने के लिए की गई थी। देश जो मध्यकालीन भुगतान शेष का आसानी से वित्त प्रबन्ध कर सकते हैं तथा वित्तीय क्षेत्रों का आनन्द लेते हैं तथा जिनके देनदारों और लेनदारों में अच्छे सम्बन्ध हैं वे इस ऋण के योग्य माने जाते हैं। किसी भी देश ने इस सुविधा के अन्तर्गत ऋण नहीं लिया है।

■ III. विनिमय दर नीति (Exchange Rate Policy)

समझौता अन्तर्नियमों (Articles of Agreement)के अन्तर्नियम I के अनुसार सदस्यों को फंड तथा अन्य सदस्यों के साथ सहयोग करना अनिवार्य है ताकि विनिमय प्रबन्धों को व्यवस्थित किया जा सके तथा विनिमय दर की एक स्थाई प्रणाली को प्रोत्साहित किया जा सके। अन्तर्नियमों के दूसरे संशोधन में सम्मिलित नए अन्तर्नियम IV के अनुसार मुद्रा दर नीतियों का पालन इस वचनबद्धता के साथ किया जाना चाहिए कि:

(i) "आर्थिक तथा वित्तीय नीतियों को कीमत स्थिरता के साथ व्यवस्थित आर्थिक विकास को अपनी दशाओं के अनुरूप प्रोत्साहित करने के उद्देश्यों की ओर निर्देशित करने का प्रयास करना";

(ii) विद्यमान आर्थिक तथा वित्तीय दशाओं तथा एक मौद्रिक प्रणाली जो अनियमितताओं को जन्म दे उसकी व्यवस्था को प्रोत्साहित करके स्थिरता को प्रोत्साहित करना;

(iii) अन्य सदस्यों से अनुचित प्रतिस्पर्द्धात्मक लाभ उठाने अथवा प्रभावपूर्ण भुगतान शेष समायोजन को रोकने के लिए मुद्रा दरों अथवा अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक प्रणाली को प्रभावित होने से बचाने के लिए।"

प्रत्येक सदस्य द्वारा इन उत्तरदायित्वों का पालन करने तथा अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक प्रणाली के क्रियाकलापों को प्रभावी बनाने के लिए **तीन सिद्धान्त** भी दिए गए हैं। द्वितीय संशोधन के अनुसार सदस्यों की मुद्रा दर नीतियों को निर्देशित करने के लिए इन सिद्धान्तों को अपनाना आवश्यक है। इनको निम्न प्रकार निरूपित किया गया है:

(i) "एक सदस्य को अन्य सदस्यों से अनुचित प्रतिस्पर्द्धात्मक लाभ उठाने अथवा प्रभावपूर्ण भुगतान शेष समायोजन को रोकने के लिए मुद्रा दरों अथवा अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक प्रणाली को प्रभावित करने से बचना चाहिए।

(ii) एक सदस्य को मुद्रा बाजार में हस्तक्षेप करना चाहिए यदि यह अव्यवस्थित दशाओं को विफल करने के लिए आवश्यक हो जो उसकी मुद्रा के विनिमय मूल्यों की अल्पकालीन प्रवृत्ति के विघटन से अभिलक्षित हो सकता है।

(iii) सदस्यों को अपनी हस्तक्षेप नीतियों में उन देशों समेत, जिनकी मुद्रा में वे हस्तक्षेप कर रहे हैं, अन्य सदस्यों के हितों का भी ध्यान रखना चाहिए।"

फंड के मूल समझौते में यह प्रावधान है कि प्रत्येक सदस्य देश का **सम मूल्य** (Par Value)निश्चित वजन तथा दुरुस्त सोने अथवा अमेरिकन डालर के रूप में व्यक्त किया जाना था। इसके पीछे व्यवस्थित तिरछी दरों (Cross Rates) सहित एक स्थाई विनिमय दर प्रणाली के सृजन का विचार था। बाद में, फंड विनिमय दरों में परिवर्तन के लिए तैयार हो गया जो कि मूल सम मूल्य का ±1 प्रतिशत से अधिक नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त ±1प्रतिशत का परिवर्तन फंड की अनुमति से किया जा सकता है। 1971 में इन प्रावधानों से स्थाई विनिमय दर लोचदार विनिमय दर में परिवर्तित हो गई। अब फंड का सदस्य देशों की विनिमय दर समायोजन नीतियों पर कोई नियन्त्रण नहीं है। सदस्य देश सम मूल्य को सोने अथवा डॉलर में बनाए रखने तथा स्थापित करने के उत्तरदायी नहीं हैं।

अब कोई भी देश, फंड को केवल सूचित करके अपनी मुद्रा के मूल्य में 10% की कमी या वृद्धि कर सकता है। यदि कोई देश 20% का परिवर्तन करना चाहता है तो उसे फंड से आज्ञा लेनी पड़ती है। फंड को अपना निश्चय 72 घण्टे में देना पड़ता है। यदि परिवर्तन 20 प्रतिशत से अधिक किया जाये तो फंड को अपना निश्चय करने के लिए अधिक समय दिया जाता है। यह निश्चय फंड के 2/3 सदस्यों द्वारा लिया जाता है। फंड भी बहुमत से सभी देशों की विनिमय दर में एक निश्चित अनुपात में परिवर्तन कर सकता है। यदि कोई

देश इस परिवर्तन को नहीं चाहता है तो उसे 72 घण्टे के अन्दर फंड को सूचित कर देना चाहिए। कोई भी देश अपने विनिमय दर में तभी परिवर्तन कर सकता है जब वह विदेशी भुगतान स्थिति में उत्पन्न हुई मौलिक विषमता (Fundamental Disequilibrium) को दूर करना चाहता है।

■ (IV) अन्य सुविधाएँ (Other Facilities)

IMF भुगतान शेष मुद्रा दर की समस्याओं तथा मौद्रिक और वित्तीय नीतियों आदि अन्य समस्याओं पर अपने सदस्य देशों को सलाह देता है। फंड ने सदस्य देशों की बैंकिंग तथा वित्तीय समस्याओं को सुलझाने के लिए तीन विभाग स्थापित किए हैं। ये विभाग हैं:

(i) केन्द्रीय बैंकिंग सेवा विभाग (Central Banking Service Department): यह विभाग सदस्य देशों को उनके केन्द्रीय बैंकों का प्रबन्ध करने तथा चलाने के लिए अपने विशेषज्ञों की सेवा प्रदान करता है। ये सेवाएँ खासतौर पर विकासशील देशों को अपनी बैंकिंग प्रणाली में सुधार करने के लिए प्रदान की जाती हैं।

(ii) वित्तीय कार्य विभाग (Fiscal Affairs Department): यह विभाग सदस्य देशों के वित्तीय मामलों पर सलाह देने के लिए स्थापित किया गया है।

(iii) IMF संस्थान (IMF Institute): यह वित्तीय, मौद्रिक, बैंकिंग तथा भुगतान शेष नीतियों के सम्बन्ध में सदस्य देशों के अधिकारियों को प्रशिक्षित करने के लिए अल्पकालीन प्रशिक्षण कोर्स चलाता है।

इसके अतिरिक्त, फंड का शोध विभाग विभिन्न रिपोर्टें छापता है जिसमें विभिन्न नीतिगत मापदण्डों से सम्बन्धित सामग्री होती है। मुख्य प्रकाशनों में IMF की वार्षिक रिपोर्ट तथा IMF के स्टॉफ पेपर, वित्त तथा विकास पत्रिका, आदि हैं।

■ 6. विशेष प्राप्ति अधिकार (Special Drawing Rights - SDRs)

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) तरलता (Liquidity) की समस्या को हल नहीं कर पाया तथा तरलता की वृद्धि के लिए जो योजनाएं प्रस्तुत की गई, उन्हें कुछ सीमाओं के कारण कार्यान्वित नहीं किया जा सका। युद्धोत्तरकाल में वस्तुओं के व्यापार में प्रतिवर्ष 8 प्रतिशत की दर से वृद्धि हुई, किन्तु स्वर्ण की पूर्ति केवल 2 प्रतिशत से बढ़ी। अत: तरलता की समस्या और भी जटिल हो गई। अतएव यह आवश्यक था कि इसे हल करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक प्रणाली में सुधार किया जाता।

इस समस्या को हल करने के लिए मुद्रा कोष के 10 महत्त्वपूर्ण सदस्यों ने 1967 में एक नई मौद्रिक योजना प्रस्तुत की जिसे **विशेष प्राप्ति अधिकार** (SDR) का नाम दिया गया एवं दिसम्बर 1971 से इसे लागू किया गया। इसे **कागजी स्वर्ण** (Paper Gold) का नाम भी दिया गया। दिसम्बर 1971 से अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के सभी लेन-देन विशेष प्राप्ति अधिकार (SDR) के रूप में व्यक्त किए जाते हैं।

■ विशेष प्राप्ति अधिकार क्या है? (What is Special Drawing Rights?)

जिस प्रकार कोई व्यक्ति या कम्पनी बैंक से यह व्यवस्था कर ले कि एक निश्चित राशि उसे बैंक से प्राप्त होती रहेगी, उसी प्रकार यह अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा प्राप्ति का अधिकार है। अधिकार तो क्या, अन्तर्राष्ट्रीय भुगतान चुकाने के लिए, एक निश्चित रकम तक विदेशी मुद्रा प्राप्त करने का, यह एक नया साधन है। विदेशी भुगतान में जिस प्रकार सोना समर्थ है, उसी प्रकार SDR से प्राप्त 'अधिकार' भी समर्थ है। अत: **"विशेष प्राप्ति अधिकार (SDR) एक नई अन्तर्राष्ट्रीय सम्पत्ति (Wealth) है जो अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के वर्तमान कोषों- स्वर्ण तथा मुद्राओं- का अभावपूर्ण पूरक का कार्य करेगी और अन्तर्राष्ट्रीय कोषों में स्थाई वृद्धि करेगी।"**

विशेष प्राप्ति अधिकार (SDR) एक प्रकार से नई अन्तर्राष्ट्रीय सम्पत्ति है जिसका प्रयोग केवल निम्न दो उद्देश्यों के लिए हो सकता है: (i) प्रतिकूल भुगतान को ठीक करने, तथा (ii) तरल कोषों में अप्रत्याशित कमी होने पर उन्हें सामान्य स्तर पर लाने के लिए। अत: यह सम्पत्ति अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के वर्तमान स्वर्ण कोषों तथा विदेशी विनिमय कोषों के पूरक का कार्य करके अन्तर्राष्ट्रीय तरलता में वृद्धि का अद्भुत साधन है। पुस्तक प्रविष्टि (Book Entry) से ही अन्तर्राष्ट्रीय भुगतान क्षमता के कारण इसे **कागजी सोना** भी कहा जा सकता है।

नई मौद्रिक योजना के अन्तर्गत मुद्रा कोष (IMF) को एक निश्चित आधार पर सदस्य देशों को SDR प्राप्त करने के लिए अधिकृत किया गया। जिस सदस्य को SDR का अधिकार दिया जाता है, वह अन्य सदस्य देशों से निश्चित मुद्रा प्राप्त कर सकता है। इसका आवंटन, कोष और सदस्य देशों के संयुक्त निर्णय के अनुसार किया जाता है। SDR के सृजन के पीछे मूल भावना यह थी कि IMF के सदस्यों को अधिक साधन उपलब्ध हो सकें, ताकि वे कोष के साधनों पर बिना दबाव डाले अपनी विदेशी विनिमय की कठिनाई को दूर कर सकें। इस प्रकार SDR अन्तर्राष्ट्रीय तरलता की विद्यमान रिजर्व परिसम्पत्ति के पूरक के रूप में है।

■ SDR का मूल्य निर्धारण (Value Determination of SDR)

1971 में एक SDR को एक डालर (या 0.88867 ग्राम सोना) के बराबर मूल्य दिया गया। अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में डालर का मूल्य गिरने के कारण SDR का मूल्य (डालर में) बढ़ने लगा। अप्रैल 1995 के अन्त से SDR तथा डालर का पारस्परिक संबंध है:
1SDR = $ 1.585

1 जनवरी, 1981 से पांच बड़े निर्यातक देशों की **मुद्राओं की एक पिटारी** (Basket of Currencies) बनाई गई जिसके आधार पर SDR का मूल्य तय किया जाने लगा। टोकरी में सम्मिलित मुद्राए हैं- **अमरीकी डालर, जर्मन मार्क, जापानी येन, फ्रांसीसी फ्रैंक** तथा **ब्रिटिश पाऊंड।**

टोकरी में सम्मिलित मुद्राओं का भार SDR के मूल्य निर्धारण में वर्ष 1991 के दौरान निम्न प्रकार रखा गया, जो वर्तमान में भी मान्य है:

अमेरिकी डॉलर	40 प्रतिशत
जर्मन मार्क	21 प्रतिशत
जापानी येन	17 प्रतिशत
ब्रिटिश पाऊंड	11 प्रतिशत
फ्रांसीसी फ्रैंक	11 प्रतिशत
	100 प्रतिशत

24 अगस्त, 1998 को एक SDR का मूल्य 1.3253 डालर के बराबर था और भारतीय रुपये में 1SDR का मूल्य 52.768 रुपये था।

IMF सदस्य देशों को उनके कुल S.D.R. कोटे पर 1.5 प्रतिशत वार्षिक दर से ब्याज देता है, तथा S.D.R. कोटे का प्रयोग करने पर IMF द्वारा इसी दर से ब्याज लिया जाता है। वर्तमान में ब्याज दर का निर्धारण चुने हुए पांच देशों के बाजार ब्याज दर की औसत के आधार पर किया जाता है। ये पांच देश- अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी तथा जापान हैं। एक जनवरी, 1999 को भारत का S.D.R. कोटा 4158.2 मिलियन डॉलर था। यह राशि IMF के कुल SDR कोटे का 1.96 प्रतिशत थी। IMF में भारत का वर्तमान S.D.R. कोटा भी 4158.2 मिलियन डॉलर ही है। कोटे की राशि के आधार पर भारत का स्थान तेरहवां (13) है। सबसे अधिक S.D.R. कोटा अमेरिका का है। सदस्य-देशों का कोटा प्रत्येक पांच वर्षों के बाद बढ़ाया जा सकता है, लेकिन इसके लिए कम से कम 85 प्रतिशत वोटिंग (Voting) की सहमति मिलना जरूरी है।

IMF के अधिकतम S.D.R. कोटा वाले देश निम्न तालिका में दर्शाए गए हैं:

IMF के अधिकतम S.D.R. कोटा वाले देश

देश (Country)	श्रेणी (Rank)	देश (Country)	श्रेणी (Rank)
अमेरिका	1	कनाडा	8
जापान	2	रूस	9
जर्मनी	3	निदरलैंड	10
फ्रांस	4	चीन	11
इंग्लैंड	5	बेल्जियम	12
इटली	6	भारत	13
सऊदी अरब	7		

■ SDR की विशेषताएं (Features of SDR)

विशेष प्राप्ति अधिकार (SDR) की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं:

(i) इसके पीछे कोई कोष नहीं रखा जाता है तथा केवल **पुस्तक प्रविष्टि** होती है।

(ii) इसके लिए मुद्रा कोष ने अलग से एक विशेष खाता खोल रखा है।

(iii) यह वर्तमान तरल कोषों को बढ़ाने की एक विधि है जिससे अन्तर्राष्ट्रीय तरलता में वृद्धि हुई है।

(iv) मुद्रा कोष के सदस्य देशों के जितने शेयर हैं, उसी अनुपात में SDR में उस देश का भाग होता है।

(v) SDR का प्रयोग सामान्यतया भुगतान शेष की अनुकूलता के लिए तथा तरल कोषों में अप्रत्याशित कमी की पूर्ति हेतु किया जाता है।

निर्यातक देश आयातक देश को जब अपनी मुद्रा उधार देता है तो उस राशि के SDR निर्यातक देश के खाते में जोड़ दिए जाते हैं तथा आयातक देश के खाते में से घटा दिए जाते हैं।

(vi) जनवरी, 1981 से SDR का मूल्यांकन 5 राष्ट्रों की मुद्राओं की टोकरी (Basket of Five Currencies) के आधार पर किया जाने लगा है। ये पांच देश विश्व के सबसे बड़े निर्यातक राष्ट्र होते हैं। 1 जनवरी, 1996 से SDR इकाई के भार एवं मूल्य में कुछ परिवर्तन किए गए हैं, क्योंकि SDR के भार एवं मूल्य में प्रति पांच वर्ष में परिवर्तन किए जाने की व्यवस्था है। इन मुद्राओं के मूल्य में परिवर्तन होने से SDR की एक इकाई का मूल्य भी बदलता रहता है।

(vii) जो देश SDR का प्रयोग करेगा, उसकी रिजर्व की मात्रा में कमी होगी तथा जो देश SDR के बदले विदेशी विनिमय प्रदान करेंगे उनके SDR संग्रह में वृद्धि होगी, अत: ऐसे देशों को SDR की मात्रा पर साधारण ब्याज देने का प्रावधान है जो वर्तमान में 1.5 प्रतिशत है।

■ विशेष प्राप्ति अधिकार के प्रयोग (Uses of SDRs)

SDR खातों की एक अन्तर्राष्ट्रीय इकाई है जिसमें कि फंड के विशेष आहरण खाते को नियन्त्रित किया जाता है। SDR का प्रयोग सदस्यों द्वारा भुगतान शेष की कमी को पूरा करने के लिए तथा फंड में अपने कुल संचय की स्थिति को बनाए रखने के लिए

भुगतान के रूप में किया जाता है। इनका उपयोग अन्य किसी उद्देश्य के लिए नहीं किया जा सकता है। SDR के तीन मुख्य उपयोग निम्न प्रकार हैं:

(1) समझौते द्वारा व्यवहार (Transaction by Agreement): फंड अन्य भागीदारों (Participants) के साथ समझौते द्वारा मुद्रा के लिए SDR के विक्रय को अनुमति देता है।

(2) सामान्य खाते में व्यवहार (Transactions with General Account): SDR का उपयोग सामान्य खाते में सभी व्यवहारों के लिए भी किया जा सकता है।

(3) निर्देशित व्यवहार (Transactions with Designation): फंड एक ऐसे भागीदार (Participant) को SDR प्रणाली में निर्दिष्ट कर सकता है जिसका सुदृढ़ भुगतान शेष तथा सुदृढ़ संचय स्थिति हो जिससे यह दूसरे भागीदार देश को SDR के बदले में अपनी मुद्रा दे सकता है जिसे उसकी मुद्रा की आवश्यकता हो। भागीदार तब तक SDR स्वीकार कर सकते हैं जब तक उनकी होल्डिंग उनकी आवंटित राशि के 3 गुना से कम है।

अन्तर्नियमों के द्वितीय संसोधन में SDR के ऊपर दिए गए 3 मुख्य उपयोगों के अतिरिक्त अन्य उपयोग इस प्रकार हैं:
(i) अदला-बदली प्रबन्धों में (ii) अग्रवर्ती क्रियाओं में (iii) ऋणों में (iv) वित्तीय आपत्ति के निपटारे में (v) वित्तीय उत्तरदायित्वों के निष्पादन के लिए जमानत के रूप में, तथा (vi) दान अथवा अनुदानों के रूप में।

विशेष आहरण खाते में SDR की सभी होल्डिंग पर फंड द्वारा ब्याज का भुगतान किया जाता है तथा भागीदारों से आवंटित राशि पर उसी दर से ब्याज लिया जाता है।

■ विशेष प्राप्ति अधिकार का आवंटन (Allocation of SDR)

फंड सदस्यों को उनके कोटा के अनुपात में ऊपर वर्णित उपयोगों के लिए SDR आवंटित करता है। 1970-72 में फंड द्वारा \$9.3 बिलियन के SDR का सृजन किया था। 1978 तक यह होल्डिंग जारी रही। 1979, 1980 तथा 1981 प्रत्येक वर्ष में \$4 बिलियन के SDR एकत्रित किए गए। परिणामस्वरूप, 1981 में SDR की कुल होल्डिंग \$21.4 बिलियन की थी। 1981 से फंड द्वारा SDR का और अधिक आवंटन नहीं किया गया है। वर्तमान में, SDR का लगभग 70 प्रतिशत 26 अमीर देशों तथा शेष 30 प्रतिशत विकासशील देशों में बांटा गया है। अप्रैल, 1998 में IMF के सदस्य देशों के शेयरों में हुई वृद्धि के फलस्वरूप SDR की कुल जमा राशि बढ़ कर 214 बिलियन SDR 293 बिलियन अमरीकी डालर हो गई है।

■ विशेष प्राप्ति अधिकार के लाभ (Merits of SDRs)

SDR के निम्नलिखित लाभ हैं:

(1) SDR अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा संचयों का नया रूप है जिसका सृजन अमेरिकन डॉलर पर निर्भरता कम करने के लिए किया गया था।

(2) SDR के प्रयोग के कारण सोने की आपूर्ति पर निर्भरता तथा सोने के मूल्यों के उतार-चढ़ाव में कमी आई है।

(3) सोने की उत्पादन लागत की तुलना में SDR की लागत कम होती है।

(4) SDR को सोने की तरह विमुद्रीकृत (Demonetize) नहीं किया जा सकता।

(5) SDR के उपयोग के कारण अन्तर्राष्ट्रीय तरलता में सुधार हुआ है।

(6) SDR खाते की एक इकाई तथा अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक प्रणाली के भुगतान साधन दोनों के रूप में कार्य करता है।

(7) SDR में भुगतान तथा भुगतान की वापसी आसान है तथा अधिक लचीली है।

■ विशेष प्राप्ति अधिकार के दोष (Demerits of SDRs)

SDR की आलोचना इस प्रकार है:

(1) फंड द्वारा SDR पर लिए जाने वाली ब्याज की दर काफी ज्यादा है।

(2) अमेरिका तथा अन्य विकसित देशों के अड़ियल व्यवहार (Rigid Attitude) के कारण फंड अन्तर्राष्ट्रीय तरलता आवश्यकताओं को पूरा करने में असफल रहा है।

(3) *SDR का बंटवारा असमान है क्योंकि इसका बंटवारा देशों के कोटा से सम्बन्धित है।*

(4) विकासशील देशों के लिए विकास वित्त की आवश्यकता के लिए SDR प्रणाली को अन्तर्राष्ट्रीय संचय के सृजन से जोड़ा नहीं गया है।

(5) **विलियमसन** (Williamson)तथा अन्यों ने SDR प्रणाली की आलोचना इसलिए की है कि SDR की सामाजिक बचत का बंटवारा विकासशील देशों को करने में फंड नाकामयाब रहा है।

■ SDRs तथा भारत (SDRs and India)

भारत को, भारत सरकार के नाम पर, जनवरी 1970 में SDRs आवंटित किए गए थे। ये SDR भारतीय रिजर्व बैंक के खाते में गिने नहीं जाते। 1979-81 के दौरान जनवरी 1979 के शुरू में फण्ड को दिए अपने कोटा के आधार पर, भारत, को और आवंटन (Allocation) किया गया। 1970-81 के दौरान SDR का लगभग 6,810 लाख भारत को कुल आवंटन प्राप्त था।

भारत भुगतान के लिए तथा फंड से पुन: खरीद (Repurchases) के लिए SDRs का प्रयोग सक्रिय रूप से कर रहा है। जनवरी 1987 के अन्त तक भारत की SDR जमाएँ 1980 लाख रुपए थीं। 1991 में किए आर्थिक सुधारों के बाद भारत के विदेशी मुद्रा कोष काफी सन्तोषजनक हैं। 2004 में भारत के पास SDR बढ़कर 41,850 लाख रुपये हो गए थे।

■ 7. अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा फंड के मुख्य कार्य (Main Functions of the IMF)

फंड किसी भी देश के केन्द्रीय बैंक या सरकार के साथ ही व्यवहार करता है। सदस्य देशों की अर्थव्यवस्था में हस्तक्षेप करने का इसे कोई अधिकार नहीं है। इस फंड के मुख्य कार्य निम्नलिखित हैं। इनमें से कई प्रमुख कार्यों को अब संशोधित किया जा रहा है:

(1) **प्रत्येक सदस्य द्वारा विनिमय दर निर्धारित करना** (Determination of the Rate of Exchange by Every Country): जब कोई देश फंड का सदस्य बनता है तो उसे सोने तथा डालर में अपनी मुद्रा का स्वर्ण मूल्य निश्चित करना पड़ता है। ऐसा होने पर विभिन्न देशों की विनिमय दरों के आपसी निर्धारण में कोई कठिनाई नहीं होती।

(2) **विदेशी मुद्रा का ऋण** (Loan of Foreign Currency): यदि किसी देश के भुगतान शेष में घाटा है तो फंड उस देश को वह विदेशी मुद्रा जिसकी उसे आवश्यकता है निश्चित विनिमय दर पर ऋण के रूप में देता है जिससे यह देश अपनी विदेशी देनदारी चुका सके। ऋण केवल अल्पकाल के लिये दिये जाते हैं।

(3) **विदेशी मुद्रा पर प्रतिबन्ध** (Restriction on Foreign Currency): यह फंड सदस्य देशों की विदेशी मुद्रा का क्रय-विक्रय करता है। जब कोई देश किसी दूसरे देश की मुद्रा को फंड से खरीदता है तो फंड उस मुद्रा को उस देश से खरीद कर प्राप्त करता है, जिसकी वह राष्ट्रीय मुद्रा होती है। परन्तु किसी एक वर्ष में कोई सदस्य देश कोष से अधिक से अधिक अपने कोटे की केवल 15% तक ही विदेशी मुद्रा को खरीद सकता है।

(4) **केन्द्रीय बैंकों का बैंक** (Bank of Central Bank): इस फंड को संसार के विभिन्न देशों में केन्द्रीय बैंकों का बैंक कहा जाता है क्योंकि जिस प्रकार देश का केन्द्रीय बैंक वहां के व्यापारिक बैंकों के नकद कोष (Cash Reserve) अपने पास जमा कर लेता है उसी प्रकार मुद्रा कोष भी सदस्य देशों के केन्द्रीय बैंकों के साधनों को एकत्रित करता है।

(5) **तकनीकी सहायता** (Technical Assistance): यह कोष अपने सदस्य देशों को तकनीकी सहायता भी देता है। यह अपने कर्मचारियों को प्रतिनिधि के रूप में भेजकर सदस्य देशों को विनिमय नियन्त्रण, विदेशी भुगतान, साख मुद्रा, केन्द्रीय बैंकिंग तथा आर्थिक नीति के सम्बन्ध में सलाह देता है। फंड कई मैगज़ीन तथा पत्रिकाएं भी प्रकाशित करता है।

(6) प्रशिक्षण (Training): मुद्रा फंड सदस्य देशों के प्रतिनिधियों को प्रशिक्षण देने का कार्यक्रम भी चला रहा है। यह प्रशिक्षण केन्द्रीय बैंक और सरकार के वित्त विभागों के उच्च अफसरों को दिया जाता है। सन् 1975 में एक प्रशिक्षण केन्द्र (Training Centre) भी स्थापित किया गया था।

(7) संकटकालीन सुविधाएं (Facilities during Emergency): अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष विदेशी विनिमय तथा विदेशी व्यापार सम्बन्धी सभी प्रतिबन्धों के विरुद्ध हैं, परन्तु सदस्य देशों को संकटकाल में विनिमय नियन्त्रण तथा प्रतिबन्धों के बनाये रखने का अधिकार दिया गया है। यद्यपि यह आशा प्रकट की गई है कि ऋणी देश इन्हें शीघ्रातिशीघ्र हटाने का प्रयत्न करेगा।

(8) यह अल्पकालीन ऋण संस्था के रूप में कार्य करता है (It Serves as a Short-Term Credit Institution): फंड किसी भी सदस्य के विपरीत BOP की कठिनाई को अस्थायी तौर पर दूर करता है। यह रक्षा की दूसरी पंक्ति है। इसका अभिप्राय है कि सदस्य देश अपने पृथक विदेशी मुद्रा संचय बनाएगा तथा भुगतान पहले इसमें से किया जाएगा तथा शेष का भुगतान फंड में से किया जाता है।

(9) फंड अल्पकालीन BOP स्थिति को सुधारने के लिए एक प्रणाली प्रदान करता है (The Fund Provides a Mechanism for Improving Short-Term BOP Position): इस उद्देश्य से, इसके नियम मुद्रा का व्यवस्थित समायोजन प्रदान करते हैं। एक देश अपनी मुद्रा दर में परिवर्तन कर सकता है यदि वह महसूस करे कि उसकी मुद्रा दर उसकी अर्थव्यवस्था से मेल नहीं खा रही है। परन्तु ये परिवर्तन फंड के अधिकारियों के साथ वार्तालाप के बाद ही किए जा सकते हैं।

(10) फंड अन्तर्राष्ट्रीय परामर्श के लिए कार्य प्रणाली प्रदान करता है (The Fund Provides Machinery for International Consultations): फंड ने मुख्य देशों को इकट्ठे बैठने और अपने प्रतिकूल दावों को सुलझाने के लिए सुनहरा अवसर प्रदान किया है।

(11) यह मुद्रा दरों के समायोजन को व्यवस्थित करके मुद्रा स्थायित्व (Exchange Stability) **को प्रोत्साहित करता है।**

(12) यह भुगतान शेष में समस्या तथा अन्य सम्बन्धों के सम्बन्ध में **सदस्य देशों को तकनीकी विशेषज्ञ उपलब्ध करता है।**

अत: फंड वित्तीय, निरीक्षण तथा नियन्त्रण कार्यों का निष्पादन करता है।

■ 7.1 फंड तथा साधनों की तरलता (The Fund and Liquidity of Resources)

इस बात की सम्भावना रहती है कि ऋणी देश अपनी मुद्रा के बदले में अन्य मुद्रा खरीदते चले जायें जिससे कोष के पास ऐसी मुद्राओं की पूर्ति बढ़ जाए जिसकी मांग नहीं है और ऐसी मुद्राओं की पूर्ति समाप्त हो जाए जिनकी मांग बहुत है। अतएव् साधनों की तरलता रखने के लिए तीन उपाय रखे गये हैं: (1) जो सदस्य देश स्वर्ण के बदले में कोई विदेशी मुद्रा खरीदना चाहे वह ऐसा कर सकता है। (2) यदि फंड के पास किसी सदस्य की मुद्रा उसके कोटे से अधिक है तो वह कोष से अपनी अतिरिक्त मुद्रा सोना देकर खरीद सकता है। (3) प्रत्येक देश को कोष के पास रखी अपनी मुद्रा का कुछ भाग स्वर्ण या प्रतिभूतियां देकर प्रतिवर्ष दोबारा खरीदना होगा।

■ 7.2 कोष की योजना में स्वर्ण का स्थान (The Position of Gold in Fund's Planning)

मुद्रा कोष की योजना में स्वर्ण का स्थान इस प्रकार था: (a) प्रत्येक सदस्य को अपने कोटे का एक भाग सोने में देना होता था। (b) प्रत्येक सदस्य को अपनी मुद्रा का मूल्य स्वर्ण में निर्धारित करना पड़ता है। (c) किसी मुद्रा के दुर्लभ होने की दशा में उसे स्वर्ण में खरीदने की व्यवस्था की गई है। कुछ अर्थशास्त्रियों जैसे प्रो॰ विलियम्ज (Williams) के अनुसार, "**कोष की योजना स्वर्णमान** (Gold Standard) **के समान है।**" परन्तु **लार्ड केन्ज** (Lord Keynes) के अनुसार, **"कोष की योजना में अन्तर्राष्ट्रीय समझौते के द्वारा एक ऐसी प्रणाली का निर्माण किया गया है जो स्वर्णमान की पुरानी दूषित प्रणाली से बहुत दूर है।"** इसका कारण यह है कि (a) स्वर्णमान की तरह इस फंड की योजना में मुद्रा के प्रचलन का आधार नहीं है। (b) कोष की योजना में मुद्रा का मूल्य स्वर्ण के रूप में सदा के लिये स्थिर नहीं है। (c) स्वर्णमान में स्वर्ण को स्वामी का स्थान प्राप्त है परन्तु कोष की योजना में स्वर्ण को सेवक का स्थान प्राप्त है। फंड नियमावली में किये जाने वाले सुधारों के अनुसार 1976 से फंड में स्वर्ण के स्थान को समाप्त करा दिया गया है।

8. अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की सफलताएं तथा विफलताएं (Successes and Failures of International Monetary Fund)

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष को कार्य करते हुए काफी समय हो चुका है। इस अवधि में कोष ने अपने उद्देश्य में सफलताएं भी प्राप्त की हैं तथा इसके कार्यक्रम की आलोचना भी की जाती है।

8.1 सफलताएं (Successes)

प्रो॰ हॉम (Halm) के अनुसार, **"फंड एक अन्तर्राष्ट्रीय रिज़र्व बैंक** (International Reserve Bank) **के समान है।"** **क्राउथर** (Crowther) का विचार था कि, **"यह कोष अन्तर्राष्ट्रीय करेन्सी की व्यवस्था की आवश्यकताओं को पूरा करने का एक मौलिक साधन है।"** इस कोष ने अपने उद्देश्यों की सफलताओं को प्राप्त करने के लिये निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण कार्य किये हैं, जैसे:

(1) अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक सहयोग (International Monetary Cooperation): मुद्रा कोष का एक प्रमुख उद्देश्य एक ऐसा मंच प्रस्तुत करना था जहां संसार के अधिकतर देश परस्पर सहयोग द्वारा मौद्रिक समस्याओं का समाधान कर सके। अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष इस उद्देश्य की प्राप्ति में सफल हुआ है।

(2) यूरोपियन देशों का पुनर्निर्माण (Reconstruction of European Countries): मुद्रा कोष के प्रयत्नों के कारण ही अमेरिका जैसे धनी देशों ने यूरोप के पुनर्निर्माण के लिये **मार्शल योजना** (Marshall Plans) के अन्तर्गत आर्थिक सहायता दी थी। इसके फलस्वरूप यूरोप का पुनर्निर्माण सम्भव हो सका था।

(3) विदेशी भुगतान की बहुमुखी व्यवस्था (Multilateral Systems of Foreign Payments): मुद्रा कोष की स्थापना के समय लगभग सभी देशों में विदेशी विनिमय सम्बन्धी नियन्त्रण लगे हुए थे। विदेशी व्यापार पर भी अनेक प्रतिबन्ध थे। मुद्रा कोष इन्हें कम करने तथा विदेशी भुगतान की बहुमुखी व्यवस्था स्थापित करने में सफल हुआ है।

(4) अन्तर्राष्ट्रीय तरलता में वृद्धि (Increase in International Liquidity): अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में होने वाली वृद्धि के अनुरूप मुद्रा कोष अन्तर्राष्ट्रीय तरलता में वृद्धि करने में सफल हुआ है। एक ओर कोष के द्वारा अपने स्थायी साधनों को 2,920 करोड़ SDR से बढ़ा कर 21,200 करोड़ SDR कर दिया है। वहां दूसरी ओर फंड ने **विशेष प्राप्ति अधिकार** (SDR) के रूप में नई तरल सम्पत्ति का निर्माण किया है। इसके फलस्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय तरलता में काफी वृद्धि हुई है।

(5) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में वृद्धि (Increase in International Trade): मुद्रा कोष को अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का विस्तार करने तथा इसे बाधाहीन बनाने में काफी सफलता मिली है। मुद्रा कोष ने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सम्बन्धी भुगतान को सरल बनाया है। असन्तुलित व्यापार वाले देशों की मदद कर उनके व्यापार को बढ़ाने में सहायता दी है। इसका परिणाम यह हुआ है कि संसार के निर्यातों का मूल्य जो 1948 में 53 अरब डालर था अब बढ़कर 2,000 अरब डालर से भी अधिक हो गया है।

(6) विकासशील देशों की विशेष सहायता (Special Aid to Developing Countries): मुद्रा कोष ने विकासशील देशों की समस्याओं को सुलझाने में विशेष कार्य किया है। यह कोष उनके भुगतान शेष एवम् मौद्रिक स्थिरता की दिशा में तत्परता से सहायता देता रहा है। इन देशों को अपनी मौद्रिक, आयात-निर्यात, एवम् विनिमय नीति निर्धारण करने में मुद्रा कोष में पर्याप्त सहायता प्राप्त होती रही है। मुद्रा कोष ने विकासशील देशों के अधिकारियों के प्रशिक्षण की भी व्यवस्था की है। इन देशों को तकनीकी सहायता भी दी गई है।

(7) संकट में सहायता (Helpful in Times of Difficulties): मुद्रा कोष ने सभी सदस्य देशों की आर्थिक संकट के समय काफी सहायता की है। पेट्रोल की कीमतें बढ़ जाने के कारण संसार के कई देशों में विदेशी विनिमय की कमी महसूस होने लगी है। फंड ने इस समस्या के समाधान के लिये **पेट्रोल सुविधा कोष** (Petrol Facility Fund) की स्थापना की।

8.2 असफलताएं (Failures)

मुद्रा कोष अपने कई उद्देश्यों की प्राप्ति में असफल रहा है। इसकी मुख्य असफलताएं निम्नलिखित हैं:

(1) विनिमय स्थिरता का अभाव (Lack of Exchange Stability): मुद्रा कोष विनिमय स्थिरता के मुख्य उद्देश्य को प्राप्त करने में असफल रहा है। सन् 1971 तक इस कोष ने स्थिर **विनिमय दर** (Fixed Rate of Exchange) निर्धारित करने में सफलता प्राप्त की थी। परन्तु सन् 1971 के पश्चात् विनिमय दर दुबारा परिवर्तनशील हो गई। विनिमय दर में स्थिरता का अभाव मुद्रा कोष की सबसे बड़ी असफलता है।

(2) स्वर्ण के मूल्य में स्थिरता का अभाव (Lack of Stability in the Prices of Gold): मुद्रा कोष ने स्वर्ण की कीमतों में स्थिरता लाने का काफी प्रयत्न किया था परन्तु वह इस उद्देश्य में सफल नहीं हो सका। सन् 1971 तक सोने का मूल्य 35 डालर प्रति औंस स्थिर रखा गया परन्तु इसके पश्चात् यह मूल्य स्थिर नहीं रह सका तथा बढ़कर 1,500 डालर प्रति औंस तक पहुंच गया।

(3) विनिमय नियन्त्रणों को दूर करने में असमर्थता (Inability to Remove Exchange Control): मुद्रा कोष विदेशी व्यापार पर लगाये गये प्रतिबन्धों तथा विनिमय नियन्त्रण को खत्म करने में असमर्थ रहा है। संसार के कई देशों ने संरक्षण की नीति में और अधिक वृद्धि कर दी है।

(4) धनी देशों का क्लब (Rich Countries Club): आलोचकों के अनुसार मुद्रा कोष केवल धनी देशों का क्लब है। यह कोष केवल अमेरिका, ब्रिटेन आदि धनी देशों की इच्छानुसार कार्य करता है तथा उनके समर्थक देशों को ही सहायता देता है। उसकी नीति भेदभाव पूर्ण होती है।

(5) दानी संस्था (Charitable Institution): आलोचकों के अनुसार मुद्रा कोष केवल एक दानी संस्था है। इसका मुख्य कार्य कुछ धनी देशों के धन का प्रयोग उनके समर्थक राष्ट्रों को सहायता देने के रूप में, करने से है जिससे वे अपने भुगतान शेष को ठीक कर सके। इसके फलस्वरूप उनका आर्थिक विकास होने की बजाय उनकी लापरवाही तथा विदेशी ऋणग्रस्तता बढ़ती है।

(6) अन्तर्राष्ट्रीय तरलता का समाधान नहीं हो पाया (No Solution of International Liquidity): मुद्रा कोष अन्तर्राष्ट्रीय तरलता का उचित समाधान नहीं कर पाया। यद्यपि फंड ने अपने स्थायी कोष में काफी वृद्धि की है तथा **विशेष प्राप्ति अधिकार** (SDR) के रूप में नई करेन्सी का निर्माण भी किया है। लेकिन इसके बावजूद भी तरलता की समस्या बनी हुई है। इसके फलस्वरूप मुद्रा कोष के लिये विकासशील देशों को धन उधार देना कठिन हो जायेगा तथा उनके भुगतान सन्तुलन के घाटे को पूरा करने के लिये सहायता देना सम्भव नहीं होगा।

(7) बहुमुखी विनिमय दर समाप्त नहीं हुई (No Elimination of Multiple Exchange Rates): मुद्रा कोष का एक मुख्य उद्देश्य बहुमुखी विनिमय दर प्रणाली को समाप्त करना था परन्तु वह इसमें सफल नहीं हो सका। बहुमुखी विनिमय प्रणाली वह प्रणाली है जिसमें कोई देश विभिन्न सौदों के लिये विभिन्न विनिमय दर अपनाता है। उदाहरण के लिये सन् 1971 में फ्रांस ने दो प्रकार की विनिमय दरों को अपनाया था एक वास्तविक व्यापार के लिये स्थिर विनिमय दर तथा दूसरी सट्टा हेतु सौदों (Speculation ansaction) के लिये परिवर्तनशील विनिमय दर को अपनाया गया था।

(8) सन् 1971 के मौद्रिक संकट का समाधान नहीं हो पाया (Inability to Tackle the Monetary Crisis of gust 1971): सन् 1971 में अमेरिका द्वारा डालर की स्वर्ण में परिवर्तनशीलता समाप्त करने तथा उसका अवमूल्यन करने के संसार में मौद्रिक संकट उत्पन्न हो गया। मुद्रा कोष इस संकट का समाधान नहीं कर पाया। बल्कि इस संकट के फलस्वरूप मुद्रा कोष वर्णमान तथा स्थिर विनिमय दर के उद्देश्यों का त्याग करना पड़ा। यह मुद्रा कोष की सबसे बड़ी असफलता थी।

(9) विभेदात्मक नीतियाँ (Discriminatory Policies): फंड की आलोचना का एक मुख्य कारण इसकी विकसित देशों तथा विकासशील देशों के विपक्ष में विभेदात्मक नीतियाँ भी हैं। अमेरिका तथा अन्य विकसित देशों ने फंड पर अधिकार किया लांकि इसके अधिकतर सदस्य विकासशील देश हैं। साधारणतया, विकसित देशों खासतौर पर अमेरिका द्वारा विकासशील देशों प्रदान करने के सम्बन्ध में सख्त रुख अपनाया गया है।

उपरोक्त विवरण से ज्ञात होता है कि अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में काफी सीमा तक विफल रहा है। इसी कारण कई विकसित देश इसके पुनर्गठन की मांग कर रहे हैं।

■ निष्कर्ष (Conclusion)

ऊपर वर्णित कमियों के बावजूद यह माना जा सकता है कि फंड एक असाधारण सफलता है। फंड के आकार में वृद्धि, बनावट तथा संसाधनों के विकास आदि पर विचार करते हुए फंड को काफी ज्यादा सफलता मिली है। इसने सफलतापूर्वक अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक समस्याओं को सुलझाया है तथा अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक नीतियों का निर्माण किया है। यह बिना किसी सन्देह के अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में सफल रहा है।

■ IMF में सुधार के उपाय (Suggestions for Reforms in the IMF)

प्रो. अन्ना स्कवार्ट्ज (Anna Schwartz) तथा **फ्रायडमैन** (Friedman) ने फंड की अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संकट के लिए आलोचना की है तथा इसे समाप्त करने की सिफारिश की है। दूसरी ओर **प्रो. सैम्यूलसन** (Samuelson) ने 1997 में प्रकाशित अपने निबन्ध Three Cheers for the IMF में IMF की कार्यप्रणाली तथा उपलब्धियों की प्रशंसा की है। **होस्ट कोहलर** (Horst Kohler), IMF के नए प्रबन्ध संचालक ने स्वयं माना है कि **"IMF भगवान नहीं है जो सब कुछ जानते हैं।"** इसका अभिप्राय है कि फंड को अपनी नीतियों में सुधार करना चाहिए। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित उपाय विभिन्न आर्थिक मंचों पर सुझाए गए हैं-

(1) संक्रामक प्रभाव (Contagion Effect): IMF द्वारा उन देशों को रियायती दरों पर वित्तीय सहायता उपलब्ध करानी चाहिए जिन पर दूसरे देशों के वित्तीय संकट का संक्रामक प्रभाव पड़ सकता है।

(2) सुरक्षा जाल (Safety Net): फंड को एक योजना तैयार करनी चाहिए जो आर्थिक संकट के समय देशों के लिए एक सुरक्षा जाल का कार्य करे।

(3) न्यायोचित विश्वव्यापी व्यापार प्रणाली (Justifiable Global Trading System): फंड को एक ऐसी मुक्त विश्वव्यापी व्यापार प्रणाली स्थापित करनी चाहिए जो कि विकासशील देशों के प्रति उचित तथा न्यायोचित हो।

(4) मताधिकार का एक समान वितरण (Equitable Distribution of Voting Right): भागीदार देशों के बीच मताधिकार का एक समान वितरण किया जाना चाहिए। इसके लिए कोटा को पुनः निश्चित किया जा सकता है।

(5) पारदर्शिता (Transparency): फंड द्वारा पारदर्शिता को बढ़ाने के लिए ऋण सम्बन्धी व्यवहारों को बदलना चाहिए। राशि
को शीघ्रता से वापिस प्राप्त करने के लिए फंड को भुगतान अवधि कम करनी चाहिए तथा चूक की अवस्था में, एक दण्डनीय ब्याज दर
ब्याज लिया जाना चाहिए।

(6) शर्तयुक्त ऋण (Conditional Loans): फंड के द्वारा सदस्यों को उन शर्तों पर ऋण उपलब्ध कराना चाहिए जो उन
अपने आन्तरिक संसाधनों में वृद्धि करने के लायक बनाए तथा जिससे वे दीर्घकाल में अपने आर्थिक कार्यक्रमों के लिए स्वत: वित्त प्र
कर सकें।

(7) विकसित देशों के लिए समष्टि आर्थिक नीतियां (Macro Economic Policies for Devel
Countries): IMF द्वारा विकसित देशों के लिए वे समष्टि-आर्थिक नीतियां बनानी चाहिएं जो विश्व के उत्पादन तथा व्यापार के
को सुरक्षित करे। उन्हें विश्वव्यापी अर्थव्यवस्था के लिए अत्यधिक प्रभावी सुरक्षा जाल के रूप में कार्य करना चाहिए।

■ 9. अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष तथा भारत (International Monetary Fund and India)

भारत अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष का प्रमुख संस्थापक सदस्य (Founder Member) है। मुद्रा कोष की योजना पर विचा
लिये जब ब्रेटन वुड्स (Bretton Woods) में सम्मेलन बुलाया गया, तब सर **जैरमी रईसमन** (Sir Jermy Raiesman)
में 6 सदस्यों का प्रतिनिधि मंडल भारत की ओर से भेजा गया था। अक्तूबर, 1947 को भारत मुद्रा कोष का सदस्य बन गया। उ
कोष की सदस्यता से मना कर दिया था तब भारत मुद्रा कोष की संचालक समिति (Board of Directors) का स्थ

(Permanent Executive Director) बन गया। परन्तु अब भारत का स्थान नौवां है। जापान, कनाडा तथा इटली का कोटा भारत से अधिक हो गया है। भारत अब स्थायी डायरेक्टर नहीं है परन्तु निर्वाचित डायरेक्टर है।

सदस्यता के आरम्भ में भारत का कोटा 40 करोड़ डालर था। 1951 में यह बढ़कर 60 करोड़ डालर हो गया था। 2000 में भारत का कोटा बढ़कर 416 करोड़ SDR हो गया। फण्ड की कुल पूंजी में भारत का भाग केवल 2.9% है। भारत ने अपने रुपये का स्वर्ण सममूल्य (Gold Parity Rate) 0.268601 ग्राम सोना या 30.255 सेन्टस तय किया। 1949 में रुपये का अवमूल्यन होने के कारण ये मूल्य क्रमश: 0.186621 ग्राम सोना अथवा 21 सेन्टस हो गया। 6 जून, 1966 को रुपए का मूल्य कम होकर 0.118489 रह गया। अब भारत भी अपनी मुद्रा की दर उन देशों की विनिमय दर के औसत के रूप में व्यक्त करता है जिनका भारत के साथ अधिक व्यापार होता है।

9.1 अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की सदस्यता से भारत को लाभ

(Advantages to India of the Membership of IMF)

कोष का सदस्य बन जाने से भारत को निम्नलिखित लाभ प्राप्त हुए हैं:

(1) विदेशी मुद्रा मिलने में सुविधा (Facility of Foreign Exchange): फंड का सदस्य बन जाने के कारण भारत को आवश्यकतानुसार विदेशी मुद्राएं IMF से मिलने में सुविधा हो गई। भारत के पास कुल SDR 4185 मिलियन है, 2004 में भारत की कोटा प्रधारित तुलनात्मक स्थिति अन्य सदस्य देशों की तुलना में तेरहवीं है। इससे एक ओर भारत अपनी आर्थिक उन्नति के लिये विदेशों से पूंजीगत सामान आयात कर सकता है तथा दूसरी ओर भुगतान असन्तुलन के घाटे को पूरा करने का प्रयत्न कर सकता है। भारत ने मुद्रा कोष से 31 मार्च, 1971 तक 818 करोड़ की मुद्रा खरीदी थी। यह सब वापस कर दी गई। 1948-49 में इस कोष ने भारत को 10 करोड़ डालर का ऋण दिया जो 1959 में वापिस कर दिया गया। 1957 में भुगतान शेष को सन्तुलित करने के लिये 20 करोड़ डालर का ऋण मुद्रा कोष से लिया गया। जुलाई 1961 में भारत ने कोष से 25 करोड़ डालर का नया ऋण छ: देशों की मुद्रा में पुन: प्राप्त किया। 1964 में 20 करोड़ डालर का नया ऋण प्राप्त किया गया जो 1974 में समाप्त किया गया। सन् 1966 में कोष ने अकाल आदि के कारण 22 करोड़ डालर का ऋण दिया। 1975-76 में भारत ने मुद्रा कोष से 1 करोड़ डालर का ऋण लिया था। 1981 में भारत ने मुद्रा कोष को 30 करोड़ डालर का भुगतान किया है। इस प्रकार 1981 तक भारत ने मुद्रा कोष से 13 बार 275 करोड़ डालर SDR की सहायता प्राप्त की थी। IMF से सन् 2001 तक भारत की विदेशी ऋण सेवा (External Debt Service) 92,830 लाख डालर थी। भारत ने कोष की सुविधाओं का अधिकतम प्रयोग किया है। भारत के सम्बन्ध में कोष ने इस प्रतिबन्ध को ढीला कर दिया कि कोई सदस्य देश किसी वर्ष में अपने कोटे के 25% से अधिक दूसरे देशों की मुद्राएं कोष से उधार नहीं ले सकता।

(2) स्टर्लिंग से स्वतन्त्र (Freedom From Sterling): कोष का सदस्य हो जाने से पहले भारतीय रुपया स्टर्लिंग के द्वारा ही अन्य मुद्राओं में बदला जा सकता था, परन्तु अब रुपये का मूल्य स्वर्ण में निश्चित हो जाने के कारण, यह स्वतन्त्रतापूर्वक किसी भी देश की मुद्रा में बदला जा सकता है।

(3) विश्व बैंक की सदस्यता (Membership of the World Bank): फंड का सदस्य होने के कारण भारत विश्व बैंक का सदस्य हो गया है। भारत के आर्थिक विकास के लिये इस बैंक से कई ऋण प्राप्त हुए हैं।

(4) रिज़र्व बैंक द्वारा विदेशी विनिमय का क्रय-विक्रय (Sale and Purchase of Foreign Exchange): फंड ने रिज़र्व बैंक को 2 लाख रुपये से अधिक की विनिमय के क्रय-विक्रय का कार्य सौंप दिया। रिजर्व बैंक 2 लाख रुपये से कम की मुद्राओं का क्रय-विक्रय नहीं कर सकता है।

(5) अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भारत का महत्त्व (Importance of India in International Sector): भारत उन पांच देशों में से था जो फंड के संचालक मण्डल के स्थायी सदस्य हैं। इसके कारण मुद्रा कोष की नीति के निर्माण में महत्वपूर्ण भाग लेता था और इसी कारण अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में भारत का महत्त्व बढ़ गया। अब भारत स्थायी सदस्य के स्थान पर एक निर्वाचित सदस्य है।

(6) आर्थिक परामर्श (Economic Consultation): पंचवर्षीय योजनाओं के अर्थ प्रबन्ध में मुद्रा कोष ने समय-समय पर भारत सरकार को बहुमूल्य परामर्श दिये हैं। समय-समय पर इस कोष ने भारत के आर्थिक विकास के सम्बन्ध में सुझाव देने के लिये कई आर्थिक मिशन भेजे हैं।

(7) संकटकाल में सहायता (Help during Emergency): भारत को प्राकृतिक विपदाओं जैसे बाढ़, भूकम्प, अकाल आदि के समय तथा चीन और पाकिस्तानी हमले के कारण, उत्पन्न आर्थिक कठिनाइयों में कोष से काफी आर्थिक सहायता प्राप्त हुई थी। तेल की कीमतें बढ़ जाने के कारण भारत को व्यापार शेष के घाटे को पूरा करने के लिये 1979 में फंड की **तेल सुविधा** (Oil Facility) से 2,025 लाख SDR का ऋण मिला। सन् 1991 में भारत को मुद्रा कोष ने 5,000 करोड़ डालर के ऋण देना स्वीकार किया था। ये ऋण तीन वर्ष की अवधि में दिये जाने थे। भारत ने इसमें से 4,070 करोड़ डालर के ऋण जनवरी 2000 तक लिये हैं। भारत ने बाकी ऋण नहीं लेने का निर्णय किया है।

(8) पंचवर्षीय योजनाओं के लिये सहायता (Help for Five Year Plans): भारत ने इस कोष से दूसरी योजना के दौरान कई ऋण प्राप्त किये। इस योजना काल में भारत को 127 करोड़ डालर के बराबर विदेशी सहायता प्राप्त हुई है। तीसरी योजना में भारत ने मुद्रा कोष की सलाह से अपने रुपये का अवमूल्यन किया था। क्षतिपूरक वित्त सुविधा के अन्तर्गत अगस्त 1980 में मुद्रा कोष द्वारा भारत को 283 करोड़ रुपये की स्वीकृति दी गई। भारत उन 69 अल्पविकसित देशों में से एक है जो मुद्रा कोष द्वारा स्थापित उपदान खाते (Subsidy Account) से पूरक सहायता के रूप में फण्ड प्राप्त कर सकते हैं। यह उपदान 3 प्रतिशत वार्षिक से अधिक नहीं होगा।

(9) विशेष प्राप्ति अधिकार (Special Drawing Rights): भारत का SDR का कोटा 14 करोड़ से बढ़कर 2000 में 68 करोड़ SDR हो गया। संसार के कुल कोटे में भारत का भाग 3.2 प्रतिशत से कम होकर 2.9 प्रतिशत हो गया है।

(10) सोने की बिक्री से लाभ (Profit from the Sale of Gold): सन् 1980 के अन्त तक अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ने 200 लाख औंस सोने की बिक्री की है। बिक्री से प्राप्त लाभ विकसित देशों में बांटा जाना था। भारत को सोने की बिक्री में से होने वाले लाभ में से 127 करोड़ रुपये का हिस्सा मिला है। भारत को 8 लाख औंस सोना, 35 डालर प्रति औंस की दर से भी प्राप्त हुआ है। इस प्रकार IMF का सदस्य होने के कारण भारत के सोने के स्टॉक में वृद्धि हुई है।

(11) विदेशी विनिमय संकट में सहायता (Help in Foreign Exchange Crisis): सन् 1991 में भारत को विदेशी विनिमय के संकट का सामना करना पड़ा है। देश की विदेशी विनिमय निधि कम होकर 1990-91 में केवल 4,388 करोड़ रुपये रह गई। भारत को विदेशी विनिमय की बहुत अधिक आवश्यकता थी। इस संकट के अवसर पर भारत ने अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से 1992-93 में 480 करोड़ SDR के ऋण प्राप्त किये तथा 1993-94 में 500 करोड़ SDR की सहायता प्राप्त हुई। भारत में विनिमय संकट समाप्त होने के कारण भारत फण्ड से नया ऋण नहीं ले रहा है।

संक्षेप में भारत को अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) के सदस्य बनने से काफी लाभ प्राप्त हुए हैं जैसे (1) भारतीय रुपया अन्तर्राष्ट्रीय भुगतान के लिये एक स्वतन्त्र मुद्रा बन गयी है। (2) भारत को विदेशी भुगतान शेष ठीक रखने में सहायता मिली है। (3) कोष की सदस्यता के कारण भारत विश्व बैंक का सदस्य बन गया है। इसके फलस्वरूप भारत को काफी आर्थिक सहायता प्राप्त हुई है।
(4) फंड से भारत को तकनीकी सहायता भी प्राप्त हुई है। (5) संकटकालीन परिस्थितियों में भारत को यह आशा रहती है कि वह मुद्रा कोष से आवश्यक सहायता प्राप्त कर सकेगा। (6) मुद्रा कोष की नीति निर्धारण में भारत का महत्त्वपूर्ण स्थान है। जिसके फलस्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक क्षेत्र में भारत का काफी महत्त्व है। भारत बीस सदस्य देशों की कमेटी का भी सदस्य है।

प्रश्न (QUESTIONS)

I. वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

सभी प्रश्न अनिवार्य हैं (Attempt all the Questions)

1. अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ने अपना कार्य आरम्भ किया (1 मार्च 1947 को, 1 मार्च 1949 को) (K.U. 2005)
2. फण्ड का उद्देश्य हैं सदस्य देशों को अल्पकालीन मौद्रिक सहायता दें (संकटकाल में, सभी समय)
3. फण्ड के अधिकतर वित्तीय संसाधन किन के कोटा अंशदान से प्राप्त होते हैं (सदस्य देशों से, कुछ देशों से)
4. विस्तारित फंड सुविधा (EFF) के अन्तर्गत ऋण लिया जा सकता है किसको पूरा करने के लिए (भुगतान शेष का घाटा, व्यापार शेष का घाटा)
5. अब फंड का सदस्य देशों की विनिमय दर समायोजन नीतियों पर (पूर्ण नियन्त्रण है, कोई नियन्त्रण नहीं)
6. विशेष प्राप्ति अधिकार कागज के नोट अथवा मुद्रा (है, नहीं है)
7. SDR के उपयोग के कारण अन्तर्राष्ट्रीय तरलता में सुधार (हुआ है, नहीं हुआ है)
8. अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष का सदस्य बनने से भारत को लाभ हुआ है (अधिक, कम)
9. अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ________ में बनाया गया था। (1945, 1969) (M.D.U. 2009)

उत्तर (Answers): (1) 1 मार्च 1947 को, (2) संकट काल में, (3) सदस्य देशों से, (4) भुगतान शेष का घाटा, (5) कोई नियन्त्रण नहीं, (6) नहीं है, (7) हुआ है, (8) अधिक, (9) 1945।

II. लघु/परिभाषा रूपी प्रश्न (Short/Definitional Type Questions)

1. IMF की स्थापना कब हुई थी?
2. विशेष आहरण अधिकार की परिभाषा दीजिए। (K.U. 2008)

   Or

   SDRs से आप क्या समझते हैं? (M.D.U. 2007, 2008)
3. IMF के कोई दो उद्देश्य बतलाएं। (K.U. 2006)

   Or

   अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) के दो उद्देश्यों को बताइए। (M.D.U. 2008)
4. ऋण लेने का सामान्य समझौता क्या है?
5. अनुपूरक वित्त सुविधा (SFF) से क्या अभिप्राय है?
6. SDRs के दो लाभ बतलाएं।
7. SDRs की दो हानियाँ बतलाएं।
8. फंड के दो मुख्य कार्य बतलाएँ।
9. IMF की दो विफलताएँ बतलाएँ।
10. IMF के सदस्य बनने से भारत को मिलने वाले दो लाभ बतलाएँ।
11. SDRs में किन देशों की करेंसियों को शामिल किया गया है?

■ III. निबन्ध रूपी प्रश्न (Essay Type Questions)

1. Indicate the chief features of IMF. Has its membership been beneficial to India?
   अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के मुख्य लक्षण बताइए। भारत को इसकी सदस्यता से कहां तक लाभ हुआ है?
2. Why was the International Monetary Fund established? How far has it succeeded in achieving its objectives?
   अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की स्थापना क्यों हुई थी? यह अपने लक्ष्यों में कहां तक सफल हो पाया है?
3. What are the aims of IMF? How does it help a country having adverse balance of payments on current account?
   अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के क्या उद्देश्य हैं? जिस देश का चालू खाते का भुगतान शेष प्रतिकूल हो उसकी अन्तर्राष्ट्रीय कोष किस प्रकार सहायता करता है?
4. Examine the achievements and failures of IMF.
   अन्तर्राष्ट्रीय कोष की प्राप्तियों तथा असफलताओं का वर्णन करें।
5. Evaluate the beneficial effects enjoyed by India by her membership of IMF.
   अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की सहायता से भारत को होने वाले लाभदायक प्रभावों का वर्णन करें।

   या

   What benefits India had received from the membership of IMF?
   अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की सदस्यता से भारत को क्या लाभ प्राप्त हुए हैं?
6. Write a critical note on the working and achievements of IMF?
   अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के कार्यकरण तथा उपलब्धियों पर एक आलोचनात्मक टिप्पणी लिखिए।
7. Discuss the nature and uses of special drawing rights (SDRs) by the members countries of the IMF.
   अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के सदस्य देशों को विशेष प्राप्ति अधिकार (SDRs) के प्रयोगों तथा प्रकृति की व्याख्या करें।
8. Write the objectives of International monetary fund. How far has it succeded in achieving its aims?
   अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के उद्देश्य लिखें। अपने लक्ष्यों को पूरा करने में यह कहां तक सफल हो पाया है?
   (M.D.U. 2009)
9. Explain the main features of IMF. What contribution it has made in the development of India?
   IMF (अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष) के मुख्य लक्षण बताइए। भारत के विकास में इसका क्या योगदान है?
   (K.U. 2009)

24

अन्तर्राष्ट्रीय पुनर्निर्माण तथा विकास बैंक या विश्व बैंक

(INTERNATIONAL BANK FOR RECONSTRUCTION AND DEVELOPMENT OR WORLD BANK)

■ 1. विश्व बैंक अथवा अन्तर्राष्ट्रीय पुनर्निर्माण तथा विकास बैंक क्या है? (What is World Bank or International Bank for Reconstruction and Development?)

द्वितीय महायुद्ध के दौरान सन् 1944 में अमेरिका के ब्रेटन वुड्स में होने वाले सम्मेलन में दो संस्थाओं की स्थापना का निर्णय लिया गया। (1) **अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष** (International Monetary Fund) तथा (2) **अन्तर्राष्ट्रीय पुनर्निर्माण तथा विकास बैंक** (International Bank for Reconstruction and Development) या **विश्व बैंक** (World Bank)। मुद्रा कोष का मुख्य उद्देश्य अस्थायी भुगतान शेष के असन्तुलन को दूर करके विदेशी विनिमय दरों में स्थिरता स्थापित करना था। इसके विपरीत विश्व बैंक (अथवा अन्तर्राष्ट्रीय पुनर्निर्माण तथा विकास बैंक) का उद्देश्य दूसरे विश्व युद्ध के फलस्वरूप नष्ट होने वाली अर्थव्यवस्थाओं के पुनर्निर्माण तथा अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास के लिये पूंजी की व्यवस्था करना था। इस बैंक ने जून 1945 से अपना कार्य आरम्भ किया। विश्व बैंक एक अन्तर-सरकारी (Inter-governmental) संस्था है तथा यह एक प्रकार का निगम है। इसकी पूंजी इसके सदस्य देशों के पूर्ण स्वामित्त्व में है।

■ 1.1 विश्व बैंक के उद्देश्य (Objectives of World Bank)

विश्व बैंक के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं:

(1) पुनर्निर्माण तथा विकास (Reconstruction and Development): विश्व बैंक का प्रमुख उद्देश्य युद्ध के फलस्वरूप नष्ट होने वाली अर्थव्यवस्थाओं जैसे **ब्रिटेन, फ्रांस, हालैण्ड आदि के पुनर्निर्माण तथा भारत, पाकिस्तान, श्री लंका, बर्मा आदि अल्पविकसित देशों को आर्थिक विकास के लिये आर्थिक सहायता प्रदान करना है।**

(2) पूंजी निवेश को प्रोत्साहन (Encouragement to Capital Investment): विश्व बैंक का दूसरा महत्त्वपूर्ण उद्देश्य निजी निवेशकर्त्ताओं को अल्पविकसित देशों में पूंजी निवेश करने के लिये उत्साहित करना है। इसके लिये बैंक निवेशकर्त्ताओं को पूंजी निवेश के फलस्वरूप होने वाली सम्भावित हानि स्वयं उठाने की गारन्टी देता है अथवा उनके द्वारा दिये जाने वाले ऋणों में स्वयं भी भाग लेता है। यदि निजी पूंजी पर्याप्त मात्रा में उचित शर्तों पर उपलब्ध नहीं होती तो बैंक अपनी पूंजी में से ऐसे देशों को उत्पादन कार्यों के लिये ऋण देता है।

(3) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को प्रोत्साहन (Encouragement to International Trade): इस बैंक का तीसरा उद्देश्य अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को प्रोत्साहित करना है। इस बैंक का उद्देश्य विदेशी व्यापार के दीर्घकालीन सन्तुलित विकास के लिये सहायता प्रदान करना है। जिसके फलस्वरूप सदस्य देशों के लोगों का जीवन स्तर ऊंचा उठ सके।

(4) **शान्तिकालीन अर्थव्यवस्था की स्थापना** (Establishment of Peace Time Economy): विश्व बैंक का चौथा उद्देश्य सदस्य देशों की युद्ध कालीन अर्थव्यवस्था को शान्तिकालीन अर्थव्यवस्था में परिवर्तित करना है।

(5) **पर्यावरण सुरक्षा** (Environmental Protection): विश्व बैंक का एक उद्देश्य विश्व के **पर्यावरण की सुरक्षा** (Global Environmental Protection) भी है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये विश्व बैंक उन अल्पविकसित देशों को जो पर्यावरण की सुरक्षा के लिये कार्य कर रहे हैं, काफी वित्तीय सहायता प्रदान करता है।

■ 2. सदस्यता (Membership)

कोई भी देश जो मुद्रा कोष का सदस्य है वह विश्व बैंक का भी सदस्य स्वत: ही बन जाता है। जिन देशों ने 31 दिसम्बर, 1945 को मुद्रा कोष की सदस्यता स्वीकार कर ली थी वे सभी विश्व बैंक के **मूल सदस्य** (Founder Member) माने जाते हैं। इसके बाद जो भी देश विश्व बैंक के सदस्य बनते हैं। उन्हें तत्कालीन सदस्यों का दो तिहाई मत प्राप्त करना आवश्यक होता है। इस समय विश्व बैंक के 184 देश सदस्य हैं। कोई भी देश बैंक को सूचना देकर इसकी सदस्यता त्याग सकता है। यदि कोई देश बैंक के नियमों का पालन नहीं करता तो उसे सदस्यता से हटाया जा सकता है।

■ 3. विश्व बैंक की पूंजी (Capital of the World Bank)

विश्व बैंक की स्थापना के समय इसकी पूंजी 10 अरब डालर थी जो एक-एक लाख डालर के एक लाख हिस्सों में बंटी हुई थी। प्रत्येक सदस्य देश को अपने कोटे का 20 प्रतिशत भाग सदस्यता प्राप्त करते ही देना पड़ता है। इसमें से 2 प्रतिशत स्वर्ण के रूप में तथा 18 प्रतिशत सदस्य देश को अपनी मुद्रा के रूप में देना पड़ता है। शेष 80 प्रतिशत भाग विश्व बैंक जब चाहे सदस्य देश से मांग सकता है। विश्व बैंक की पूंजी को सदस्य देशों की अनुमति से समय-समय पर बढ़ाया गया है। विश्व बैंक की पूंजी के हिस्से में **अमेरिका का प्रथम स्थान है, जापान का दूसरा तथा भारत का आठवां** स्थान है। सन् 2000 में विश्व बैंक की पूंजी बढ़कर 18,860 करोड़ डालर हो गई है। इस बैंक की अधिकृत पूंजी 19,081 करोड़ डालर है।

बैंक की शेयर पूँजी में सदस्य देशों द्वारा किया गया योगदान निम्न प्रकार से है:

(i) 2 प्रतिशत हिस्सा सोना तथा अमेरिकन डालर के रूप में। विश्व बैंक इस राशि को स्वतन्त्र रूप से ऋण देने के लिए प्रयोग करता है।

(ii) 18 प्रतिशत शेयर पूंजी अपनी मुद्रा के रूप में। विश्व बैंक द्वारा यह राशि भी ऋण प्रदान करने के लिए प्रयोग की जाती है।

(iii) 80 प्रतिशत शेयर पूंजी बैंक के आग्रह पर देय होती है। बैंक द्वारा यह राशि ऋण प्रदान करने के लिए प्रयोग नहीं की जाती है, परन्तु बैंक इस राशि का प्रयोग अपने उत्तरदायित्वों को निभाने के लिए कर सकता है।

■ 4. विश्व बैंक का प्रबन्ध (Management of the World Bank)

विश्व बैंक का प्रबन्ध मुख्य रूप से निम्नलिखित चार समितियों द्वारा चलाया जाता है:

(1) **प्रशासक मंडल** (Board of Governors): प्रशासक मंडल बैंक की साधारण परिषद (General Council) है। प्रशासक मंडल में प्रत्येक सदस्य देश अपना एक गवर्नर तथा एक स्थानापन्न गवर्नर (Alternative Governer) नियुक्त करता है। इनका कार्यकाल पांच वर्ष होता है। स्थानापन्न गवर्नर को गवर्नर की अनुपस्थिति में ही मत देने का अधिकार होता है। प्रशासक दल अपने सदस्यों में से किसी एक को अपना अध्यक्ष चुन लेता है जो उसकी वार्षिक सभा की अध्यक्षता करता है। इस मंडल की प्रति वर्ष एक साधारण सभा होती है जो मुद्रा कोष की साधारण सभा के साथ किसी भी सदस्य देश में बुलाई जाती है। प्रत्येक गवर्नर की वोट शक्ति उसकी सरकार के वित्तीय अंशदान के अनुपात में होती है। यह बोर्ड बैंक की नीति का निर्धारण करता है। इस बोर्ड को निम्नलिखित अधिकार प्राप्त हैं: (1) नये सदस्यों का प्रवेश (2) सदस्यता की समाप्ति (3) पूंजी में परिवर्तन (4) बैंक की आय का वितरण (5) अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं के साथ समझौता तथा (6) बैंक का समापन (Liquidation)।

(2) संचालक मंडल (Board of Executive Directors): संचालक मंडल के 22 सदस्य होते हैं। इनमें से 5 सदस्य सबसे अधिक कोटे वाले होते हैं। ये देश हैं – अमेरिका, जापान, जर्मनी, ब्रिटेन तथा फ्रांस। शेष सदस्य विश्व बैंक के अन्य सदस्य देशों से चुने जाते हैं। इनका कार्यकाल दो वर्ष होता है। संचालक मंडल किसी व्यक्ति को जो गवर्नर या संचालक मंडल का सदस्य नहीं है अपना **अध्यक्ष** (President) नियुक्त करता है। यह बैंक का प्रमुख अधिकारी होता है। यह संचालक मंडल के निर्देशन में काम करता है तथा अपने प्रत्येक कार्य के लिये बोर्ड के प्रति उत्तरदायी होता है। इसी के द्वारा बैंक के अन्य अधिकारी नियुक्त किये जाते हैं। संचालक मंडल बैंक के नियमित कार्य संचालन के लिये उत्तरदायी हैं।

(3) सलाहकार परिषद (Advisory Council): इसके कम से कम 7 सदस्य होते हैं। इनकी नियुक्ति बोर्ड ऑफ गवर्नर द्वारा की जाती है। इस परिषद् के सदस्य विभिन्न विषयों जैसे बैंकिंग, विदेशी व्यापार, उद्योग, श्रम, कृषि आदि के विशेषज्ञ होते हैं। इसकी वर्ष में साधारणतया एक बैठक होती है। यह परिषद् बैंक को विभिन्न विषयों पर सलाह देती है।

(4) ऋण समितियां (Loan Committees): सदस्य देशों द्वारा ऋण की मांग करने पर संचालक मंडल समिति की नियुक्ति करता है। यह समिति ऋण की छान-बीन करके ऋण की उपयुक्तता के विषय में रिपोर्ट देती है।

■ बैंक की गतिविधियाँ (Activities of the Bank)

विश्व बैंक की गतिविधियों के आधारभूत उद्देश्य निम्नलिखित हैं:

(1) 'बैंक का सभी प्रशंसनीय परियोजनाओं (Meritorious Projects) के पुनर्निर्माण तथा विकास के लिए आवश्यक बाहरी वित्त (External Financing) प्रदान करने का कोई इरादा नहीं है (परन्तु) यह एक उत्प्रेरक (catalyst) प्रदान करेगा जिसके द्वारा साधारणतया उत्पादन को प्रेरित किया जा सके तथा निजी निवेश को बढ़ावा मिले।'

(2) 'बैंक द्वारा यह सुनिश्चित करने के लिए कि उसके द्वारा दिए गए ऋण वास्तव में उत्पादक सिद्ध हो, इसके लिए उसे सदस्य सरकारों को आवश्यक कार्यवाही के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। सुदृढ़ वित्तीय कार्यक्रमों को प्रोत्साहित करने के लिए, अनावश्यक रुकावटों को दूर करना, तथा उत्पादन ऋणों का क्षेत्रीय एकीकरण आदि कुछ क्षेत्र हैं जहां पर आवश्यकता के अनुसार बैंक एक सहयोगपूर्ण प्रभाव डालने का प्रयास कर सकता है'; तथा

(3) 'बैंक को निष्क्रिय भूमिका के स्थान पर एक सक्रिय भूमिका अदा करनी चाहिए (तथा अपने अन्तर्राष्ट्रीय सहकारी लक्षण का लाभ उठाना चाहिए) जिससे योजनाओं की शुरुआत से अन्त तक विकास में बैंक का संसाधनों को न केवल निवेशकों के दृष्टिकोण से अपितु विश्व के दृष्टिकोण से भी बुद्धिमानीपूर्वक प्रयोग किया जाए।'

विश्व बैंक मुख्यत: उत्पादन को बढ़ाने, ऋण लेने वाले देश के लोगों का जीवन-स्तर उठाने तथा ऋणी सदस्य देश में और अधिक निवेश के अवसर उपलब्ध कराने आदि को सुनिश्चित करने से सम्बन्धित है।

■ 5. बैंक की निधिकरण रणनीति (Funding Strategy of the Bank)

बैंक की निधिकरण रणनीति के चार मुख्य उद्देश्य हैं:

(1) बाजार में कोषों की उपलब्धता को सुनिश्चित करना।

(2) जब ब्याज दर के बढ़ने के आसार हों तो उस समय उचित मुद्रा मिश्रण (Currency Mix) द्वारा ऋण लेने वालों को न्यूनतम लागत पर कोष उपलब्ध कराना।

(3) शुद्ध आय तथा ऋण के कुल प्रभारों में चंचलता को नियन्त्रित करना।

(4) अपने ऋण देने तथा लेने के बीच परिपक्वता रूपान्तरण (Maturity Transformation) की उचित मात्रा प्रदान करना है। परिपक्वता रूपान्तरण बैंक की दीर्घकाल के लिए ऋण लेने के स्थान पर ऋण देने की क्षमता को प्रदर्शित करता है।

■ 5.1 बैंक द्वारा ऋण लेना (Bank's Borrowings)

बैंक का मुख्य कार्य जरूरतमन्द देशों को ऋण देना है। ऋण देने की गतिविधियों के लिए, इसे धन की आवश्यकता होती है तथा इसलिए यह ऋण लेता है।

स्रोत (Sources): बैंक निम्न स्रोतों से ऋण लेता है:

(1) बैंक अन्तर्राष्ट्रीय बाजार से दीर्घकाल तथा अल्पकाल दोनों समयावधियों के लिए ऋण लेता है।

(2) बैंक मुद्रा अदला-बदली प्रबन्धों (Currency Swap Agreements) के अन्तर्गत भी ऋण लेता है।

(3) बैंक कटौती-पत्र कार्यक्रम (Discount-Note Programme) के अन्तर्गत भी दो विधियों से ऋण लेता है। **पहला**, यह अपने सदस्यों को सीधे बॉण्ड तथा नोट-पत्र देता है। **दूसरा**, यह निवेशकर्ताओं तथा सार्वजनिक बाजारों में निर्गमन करता है।

बैंक द्वारा दो नए ऋण प्रपत्र विकसित किए गए हैं। **पहला केन्द्रीय बैंक सुविधा तथा अमेरिकन डॉलर शासित सुविधा है।** विश्व बैंक सदस्य देशों के केन्द्रीय बैंकों से ऋण लेता है। **चल-दर प्रपत्र** (Floating Rate Notes) **दूसरी** युक्ति है। विश्व बैंक वाणिज्यिक बैंकों तथा अन्य वित्तीय संस्थाओं से इन प्रपत्रों के माध्यम से ऋण लेता है।

■ 5.2 बैंक द्वारा ऋण प्रदान करने सम्बन्धी गतिविधियां (Bank's Lending Activities)

बैंक अपने सदस्यों को निम्न में से किसी एक अथवा सभी तरीकों से ऋण प्रदान करता है:

(1) अपने कोषों से सीधे ऋण प्रदान करके अथवा भागीदारी करके;

(2) सदस्य के वित्त बाजार से एकत्रित कोषों में से अथवा बैंक द्वारा अन्यथा लिए गए ऋणों में से ऋण प्रदान करके; तथा

(3) निजी निवेशकों द्वारा निवेश माध्यम से दिए गए ऋणों की पूर्ण अथवा आंशिक गारण्टी देकर।

बैंक द्वारा दिए गए अथवा गारण्टी प्रदान किए गए प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष ऋणों की कुल बकाया राशि इसकी अक्षत प्रार्थित पूंजी (Unimpaired Subscribed Capital), संसाधनों तथा आधिक्यों के जोड़ के 100 प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए। बैंक ऋण प्रदान करते समय निम्नलिखित शर्तें लगाता है:

(1) बैंक सन्तुष्ट है कि ऋण लेने वाला व्यक्ति प्रचलित बाजार दशाओं में उचित शर्तों पर ऋण लेने में असमर्थ है।

(2) परियोजना जिसके लिए ऋण चाहिए वह समर्थ सत्ता (Competent Authority) द्वारा परियोजना की ध्यानपूर्वक जांच के पश्चात् लिखित रिपोर्ट के रूप में अनुशंसित होनी चाहिए।

(3) ऋण उत्पादकीय उद्देश्यों के लिए होने चाहिए।

(4) ऋण लेने वाले अथवा गारण्टी देने वाले के द्वारा ऋण तथा ऋण पर ब्याज के भुगतान की उचित सम्भावना है।

(5) यदि परियोजना सदस्य की सीमा में स्थित है परन्तु वह स्वयं ऋण नहीं ले रहा है तब सदस्य अथवा केन्द्रीय बैंक को ऋण के पुनर्भुगतान ऋण पर ब्याज तथा ऋणों पर अन्य प्रभारों (Other Charges) के भुगतान की गारण्टी देनी होगी।

1991 में, बैंक के कार्यकारी मण्डल ने पुनर्भुगतान की शर्तों में संशोधन किया जिसमें मध्यम आय वाले देशों के लिए पुनर्भुगतान की अवधि को 3 वर्ष से बढ़ाकर 5 वर्ष तथा मध्यम आय वाले देशों का पुनर्भुगतान, शर्तों का पुनरावलोकन आदि सम्मिलित हैं।

■ विश्व बैंक की ऋण देने की शर्तें (Terms and Conditions of World Bank Lending)

- **IBRD ऋण**

  परिपक्वता अवधि – 20 वर्ष (5 वर्षों की अतिरिक्त अवधि समेत)

  ब्याज दर – लिबोर + 0.40

[लिबोर (LIBOR) - London Inter bank Offered Rate - लंदन के बैंक द्वारा दी जाने वाली ब्याज दर]'

- **अंतर्राष्ट्रीय विकास संघ (International Development Association – IDA) ऋण**

 (IDA – विश्व बैंक की सहायक संस्था)

 परिपक्वता अवधि – 35 वर्ष (10 वर्षों की अतिरिक्त अवधि समेत)

 ब्याज दर – Nil

 सेवा भार – 0.5 से 0.75 प्रतिशत

■ 6. सुविधाएं (Facilities)

बैंक सदस्य देशों को निम्नलिखित सुविधाएं प्रदान करता है:

(1) संरचनात्मक समायोजन सुविधा (Structural Adjustment Facility - SAF): भुगतान शेष की कमी को कम करने अथवा उनके आर्थिक विकास को बनाए रखने या पुन: प्राप्ति के लिए विश्व बैंक ने 1985 में SAF की शुरुआत की थी। इसके कोषों का प्रयोग सहमत अपवादों जैसे विलासात्मक तथा सैनिक वस्तुओं के आयात के अतिरिक्त अन्य साधारण आयात के लिए वित्त प्रदान करने के लिए किया जाता है। ये कोष ऋणी देशों को दो भागों में तथा 5 संरचनात्मक समायोजन सुविधाओं की एक शृंखला में दिए जाते हैं। साधारणतया बैंक इनके लिए कठोर शर्तें लगाता है। ये कोष 5 से 7 वर्षों तक के कार्यक्रमों की सहायता के लिए प्रदान किए जाते हैं।

(2) वर्धित संरचनात्मक समायोजन सुविधा (Enhanced Structural Adjustment Facility - ESAF): दिसम्बर, 1987 में ESAF की स्थापना सदस्य देशों को रियायती दरों पर संसाधन उपलब्धता को बढ़ाने के लिए की गई थी। यह नए SDR 6 बिलियन के रियायती संसाधन प्रदान करता है जिसके लिए विशेष ऋणों तथा विकसित एवं OPEC देशों के अंशदान द्वारा वित्त प्रदान किया जाता है। ऋण देने का उद्देश्य वही है अर्थात् ऋण लेने वाले देशों के भुगतान शेष की कमी को कम करने के लिए विकास को प्रोत्साहित करने के लिए। बैंक द्वारा ऋण पर 0.5 प्रतिशत ब्याज लिया जाता है जिसका भुगतान 10 अर्द्ध वार्षिक किस्तों में करना होता है जो भुगतान के साढ़े 5 वर्षों के पश्चात् शुरू होता है।

(3) विशिष्ट कार्यवाही कार्यक्रम (Special Action Programme -SAP): 1983 में सदस्य देशों के वर्तमान आर्थिक वातावरण में सहायता करने के लिए, बैंक के सामर्थ्य को मजबूत करने के लिए विशिष्ट कार्यवाही कार्यक्रम (SAP) शुरू किया गया था। इसके चार मुख्य तत्व हैं:

(i) संरचनात्मक समायोजन नीति परिवर्तनों, निर्यात प्रधान उत्पादन, वर्तमान क्षमता के पूर्ण उपयोग तथा महत्वपूर्ण मूलभूत ढांचे के रख-रखाव के लिए ऋण प्रदान करता है।

(ii) उच्च प्राथमिकता वाली परियोजनाओं के समय पर कार्यान्वयन के लिए वित्त प्रदान करता है।

(iii) नीतियों के सम्बन्ध में परामर्शदाता की सेवाएं प्रदान करता है।

(iv) बैंक तथा IMF के कार्यक्रमों के पक्ष में अन्य दाताओं द्वारा किए गए तीव्र सहायता विवरण के सुपरिचित प्रयासों को सूचीबद्ध करना है।

■ 7. बैंक की अन्य क्रियाएं (Other Activities of the Bank)

ऋण देने की क्रियाओं के अतिरिक्त बैंक निम्न क्रियाएं भी करता है:

(1) प्रशिक्षण (Training): 1956 में बैंक ने सदस्य देशों के वरिष्ठ अधिकारियों को प्रशिक्षित करने के लिए एक स्टॉफ कॉलेज की स्थापना की थी। यह कॉलेज आर्थिक विकास संस्थान (EDI) के नाम से जाना जाता है। यह संस्थान अधिकारियों को अपनी अर्थव्यवस्था के प्रबन्ध में सुधार लाने तथा अपने विनियोग कार्यक्रमों में कार्यकुशलता को बढ़ाने में सहायता करता है। EDI वाशिंगटन तथा विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में क्षेत्रीय संस्थाओं के सहयोग से सम्मेलन आयोजित करता है।

(2) तकनीकी सहायता (Technical Assistance): विश्व बैंक अपने सदस्य देशों को तकनीकी सहायता भी प्रदान करता है। इस सहायता में सम्मिलित है:

(i) इंजीनियरिंग-सम्बन्धित (Engineering Related): इसमें व्यवहार्य अध्ययन, इंजीनियरिंग डिजाइन तथा निर्माण निरीक्षण सम्मिलित है।

(ii) संस्था-सम्बन्धित (Institution Related): इसमें निदान नीति तथा संस्थागत अध्ययन, प्रबन्ध सहायता तथा प्रशिक्षण सम्मिलित हैं।

तकनीकी सहायता प्रदान करने का मूल तरीका ऋणों के माध्यम से अपनाया जाता है जो कि निरीक्षण, कार्यान्वयन तथा इंजीनियरिंग सेवाओं, ऊर्जा, शक्ति, परिवहन, जल आपूर्ति आदि के लिए दिए जाते हैं। 1975 में बैंक ने परियोजनाओं की तैयारी तथा संस्था निर्माण के अन्तर को पूरा करने के लिए परियोजना सज्जा सुविधा (Project Preparation Facility) शुरू की थी। बैंक संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (UNDP) द्वारा वित्त प्राप्त परियोजनाओं के लिए कार्यकारी एजेंसी के रूप में भी कार्य करता है।

(3) अन्तर-संगठनात्मक सहयोग (Inter-Organisational Co-operation): विश्व बैंक अन्तर-संगठनात्मक सहयोग के कार्य में भी लगा हुआ है। यह इसके तथा अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के बीच औपचारिक समझौते पर आधारित होता है जैसे इसके तथा FAO, UNESCO, WHO, GATT, UNCTAD, UNEP (United Nations Environment Programmes), UNDP, UNDO (United Nations Development Organisations), ILO, African Development Bank, Asian Development Fund, International Fund for Agriculture Development (IFAD) आदि के बीच के समझौते।

(4) आर्थिक तथा सामाजिक शोध (Economic and Social Research): 1983 में, बैंक ने एक शोध नीति परिषद (Research Policy Council) की स्थापना की। यह निर्देशन, सहयोग तथा सभी बैंक शोध के मूल्यांकन में नेतृत्व प्रदान करता है। बैंक का अपना शोध स्टॉफ स्वयं तथा बाह्य शोधकर्ताओं के सहयोग से शोध क्रियाएं करता है।

(5) प्रक्रिया मूल्यांकन (Operations Evaluation): बैंक ने प्रक्रिया मूल्यांकन विभाग (OED) की स्थापना बैंक से सहायता प्राप्त परियोजनाओं के बाद के मूल्यांकन में ऋणी की सहायता करने के लिए की है। ऋणी सदस्यों का स्टॉफ परियोजना पूर्ण रिपोर्ट तैयार करने में सहायता लेने के लिए विभाग में जाते हैं।

(6) निवेश झगड़ों का निपटारा (Settlement of Investment Disputes): बैंक ने देशों तथा अन्य देशों के नागरिकों के मध्य झगड़े के निपटारे के लिए निवेश झगड़े निपटारा केन्द्र की स्थापना की है। बैंक ने कई अन्तर्राष्ट्रीय निवेश झगड़ों का निपटारा सफलतापूर्वक किया है जैसे भारत तथा पाकिस्तान के बीच नदी-जल विवाद तथा मिस्र और इंग्लैण्ड के बीच स्वेज नहर (Suez Canal) के झगड़े का निपटारा।

नोट: ये सभी क्रियाएं विश्व बैंक के कार्यों (Functions) में ही शामिल की जाती हैं। इन क्रियाओं के अतिरिक्त बैंक के **मुख्य कार्यों** (Main Functions) का विवरण नीचे दिया गया है।

■ 8. कार्य (Functions)

विश्व बैंक अपनी सहयोगी संस्थाओं **(i) अन्तर्राष्ट्रीय विकास संघ** (International Development Association) या (IDA) तथा **(ii) अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम** (International Finance Corporation) **(iii) बहुराष्ट्रीय निवेश गारन्टी एजेन्सी** (Multinational Investment Guarantee Agency – MIGA) के साथ कई कार्य करता है। विश्व बैंक के मुख्य कार्य निम्नलिखित हैं:

(i) अग्रिम ऋण देना (To Advance Loans): विश्व बैंक का मुख्य कार्य सदस्य देशों की सरकारों अथवा उनकी गारन्टी पर निजी निवेशकर्ताओं को उत्पादन कार्यों के लिये ऋण देना है। ये ऋण देश के केन्द्रीय बैंक के माध्यम से दिये जाते हैं। विश्व बैंक अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन दोनों प्रकार के ऋण देता है। विश्व बैंक मुख्य रूप से तीन प्रकार के ऋण देता है: (1) **प्रत्यक्ष ऋण**

(Direct Loans): विश्व बैंक अपने कोष से अथवा खुले बाजार से ऋण लेकर सदस्य देशों को कर्जे देता है। (2) **गारन्टी युक्त ऋण** (Guarantee Loans): विश्व बैंक निजी निवेशकर्ताओं को गारण्टी देकर उनकी पूंजी को किसी अन्य देश को उधार दिला सकता है। (3) **संयुक्त ऋण** (Joint Loans): विश्व बैंक अन्य व्यापारिक बैंक के साथ मिलकर भी ऋण देता है। ऋणी देश को ऋण का भुगतान सोने में अथवा उस देश की मुद्रा में करना होता है जिसमें उसने ऋण प्राप्त किया था। बैंक सदस्य देशों की उन परियोजनाओं के बारे में सूचनाएं प्राप्त करता है जिनके लिये ऋण दिया जाता है। सन् 1947 से 2000 तक में विश्व बैंक ने 32,700 करोड़ डालर के ऋण दिये हैं।

(ii) तकनीकी सहायता (Technical Assistance): विश्व बैंक सदस्य देशों को तकनीकी सहायता भी प्रदान करता है। यह सहायता दो प्रकार की होती है एक विकास सम्बन्धी योजना बनाने के लिये और दूसरी अर्थव्यवस्थाओं के अध्ययन, विश्लेषण तथा सुधार से सम्बन्धित होती है। विश्व बैंक सदस्य देशों में अपने विशेषज्ञों को भेजकर उन्हें तकनीकी सहायता प्रदान करता है।

(iii) प्रशिक्षण (Training): विश्व बैंक ने सदस्य देशों के अधिकारियों को योजनाओं, आर्थिक विकास, सार्वजनिक वित्त तथा आर्थिक कार्यों के लिये प्रशिक्षण देने का भी प्रबन्ध किया है। इसके लिये कई प्रशिक्षण कार्यक्रम आरम्भ किये गये हैं। सन् 1956 में विश्व बैंक ने प्रशिक्षण देने के लिये **आर्थिक विकास संस्थान** (Economic Development Institute) की स्थापना की थी।

(iv) समन्वित विकास सहायता (Coordinated Development Assistance): विश्व बैंक सदस्य देश को कई स्रोतों से दी जाने वाली सहायता का समन्वय भी करता है। इसके द्वारा विकास सम्बन्धी प्रयत्नों को प्रभावशाली बनाने का प्रयत्न करता है। इस दिशा में प्रथम प्रयत्न 1958 में **भारत सहायता क्लब** (Aid India Club) की स्थापना के रूप में किया गया था। इस प्रकार के क्लब कई देशों के लिये बना दिये गये हैं।

(v) अन्तर्राष्ट्रीय विवादों का निपटारा (Settlement of International Disputes): विश्व बैंक अन्तर्राष्ट्रीय विवादों के समाधान के लिये मध्यस्थ का कार्य भी करता है। सन् 1960 में **भारत-पाक नदी जल विवाद** (Indo-Pakistan River Water Dispute) तथा **स्वेज नहर विवाद** का निपटारा विश्व बैंक के प्रयत्नों द्वारा ही सम्भव हो सका है।

■ 9. मूल्यांकन (Evaluation)

विश्व बैंक को अपने 60 वर्ष के इतिहास में अपने उद्देश्यों की प्राप्ति में काफी सहायता भी मिली है तथा कई दिशाओं में असफलतायें भी हासिल हुई हैं। विश्व बैंक के कार्यकरण का मूल्यांकन निम्नलिखित ढंग से किया जा सकता है:

■ 9.1 विश्व बैंक की सफलताएं या उपलब्धियाँ (Successes Or Achievements of the World Bank)

विश्व बैंक की मुख्य सफलतायें निम्नलिखित हैं:

(1) पूंजी में वृद्धि (Increase in Capital): विश्व बैंक ने अपनी पूंजी में वृद्धि करने में काफी सफलता प्राप्त की है। इस बैंक ने अपनी शेयर पूंजी में लगभग 80 प्रतिशत वृद्धि की है। इसके अतिरिक्त विश्व बैंक ने प्रतिभूतियां बेचकर भी पूंजी बढ़ाने का प्रयत्न किया है। इसके फलस्वरूप बैंक की ऋण देने की क्षमता में काफी वृद्धि हुई है।

(2) अल्पविकसित तथा विकसित सभी देशों को उचित महत्त्व (Due Attention to the Developed and Underdeveloped Countries): विश्व बैंक ने विकसित तथा अल्पविकसित सभी देशों को उचित महत्त्व दिया है। इस बैंक द्वारा दिये गये कुल ऋणों का लगभग 70 प्रतिशत भाग एशिया, अफ्रीका तथा अन्य अल्पविकसित देशों को उनके आर्थिक विकास के लिये दिया गया है। इसके साथ ही विश्व बैंक ने विकसित देशों के पुनर्निर्माण के लिये भी काफी रकम के ऋणों की व्यवस्था की है। 1997 में निर्धनता दूर करने के उद्देश्य से बैंक ने **निर्धनता उन्मूलन तथा आर्थिक प्रबन्ध** (Poverty Reduction and Economic Management - PREM) विभाग स्थापित किया है।

(3) उत्पादक उद्देश्यों के लिये ऋण (Loans for Productive Purposes): विश्व बैंक सदस्य देशों को केवल उत्पादक उद्देश्यों के लिये ऋण देता है। यह बैंक विशेष रूप से बिजली, शक्ति, परिवहन आदि के विकास के लिये ऋण देता है। इसका कारण यह है

कि किसी भी देश के आर्थिक विकास के लिये इन सुविधाओं का होना आवश्यक है। इनके अभाव में कोई भी अल्पविकसित देश अपना आर्थिक विकास नहीं कर सकता। परन्तु इन परियोजनाओं के लिये बहुत अधिक पूंजी की आवश्यकता होती है। अल्पविकसित देशों के पास पूंजी की कमी होती है। इसलिये विश्व बैंक की सहायता के बिना वे अपना आर्थिक विकास उचित रूप में नहीं कर पाते। सन् 2000 में अल्पविकसित देशों को विश्व बैंक ने 1,530 करोड़ डालर के ऋण दिये थे।

(4) तकनीकी सहायता (Technical Assistance): विश्व बैंक ने संसार के लगभग सभी अल्पविकसित सदस्य देशों को तकनीकी सहायता प्रदान की है। बैंक द्वारा स्थापित संस्थाओं में कई देशों के अधिकारी प्रशिक्षण प्राप्त कर चुके हैं। इसके फलस्वरूप इन देशों का योजनात्मक विकास सम्भव हो सका है।

(5) विश्व की तीसरी खिड़की (Third Window of World): विश्व बैंक तथा अन्तर्राष्ट्रीय विकास संघ (IDA) द्वारा अल्पविकसित देशों को दिये जाने वाले ऋण अपर्याप्त होते हैं। इस कमी को पूरा करने के लिये इन दोनों संस्थाओं ने मिल कर सन् 1975 में एक **तीसरी खिड़की** का उद्घाटन किया है। इस खिड़की द्वारा विकासशील देशों को कम ब्याज पर काफी मात्रा में ऋण प्रदान किये गये हैं। इस खिड़की से भारत, पाकिस्तान, लंका, घाना, यूगांडा आदि कई देशों को ऋण उपलब्ध हुये हैं।

(6) ऋणदाता देशों के ऋण सम्बन्धी कार्यों का समन्वय (Coordination of the Lending activities of the Lender Countries): **विश्व बैंक** के द्वारा उन ऋणदाता देशों के ऋण सम्बन्धी कार्यों का समन्वय किया जाता है जो अल्पविकसित देशों को ऋण देना चाहते हैं। विश्व बैंक उनकी मीटिंगें बुला कर उन्हें विभिन्न अल्पविकसित देशों को ऋण देने के लिये प्रोत्साहित करता है। **भारत सहायता क्लब या भारतीय विकास फोरम** (Aid India Club or Indian Development Forum) इसी उद्देश्य के लिये विश्व बैंक द्वारा आयोजित किया गया है।

(7) राष्ट्रों के विवादों का निपटारा (Settlement of Disputes Among Nations): **विश्व बैंक** ने सदस्य देशों के पारस्परिक आर्थिक विवादों का निपटारा करने के लिये काफी प्रयत्न किये हैं। भारत-पाकिस्तान, सिन्धु घाटी जल विवाद और स्वेज नहर कम्पनी के अंशों की क्षतिपूर्ति सम्बन्धी विवाद का निपटारा विश्व बैंक की मध्यस्थता के फलस्वरूप ही सम्भव हो सका है।

(8) निर्धनता के विरुद्ध युद्ध (War against Poverty): विश्व बैंक अपनी ऋण नीति, सलाह तथा तकनीकी सहायता के द्वारा निर्धनता को कम करने तथा विकासशील देशों के लोगों के जीवन स्तर को ऊंचा उठाने सम्बन्धी योजनाओं को लागू करने में सहायक होता है। निर्धनता के विरुद्ध विश्व स्तर पर युद्ध का लक्ष्य यह है कि संसार के सभी देशों में प्रत्येक परिवार को सुखी जीवन व्यतीत करने का अवसर प्राप्त हो। बीसवीं सदी में निर्धनता को दूर करने एवं लोगों के जीवन स्तर को ऊंचा उठाने में जितनी प्रगति हुई है उतनी संसार के इतिहास में किसी भी अवधि में नहीं हुई थी।

(9) कृषि तथा ग्रामीण विकास (Agriculture and Rural Development): कृषि तथा ग्रामीण विकास को बढ़ावा देने के लिए, विश्व बैंक ने 'कृषि विकास के लिए अन्तर्राष्ट्रीय कोष' की स्थापना की है। इस कोष से गरीब देशों के कृषि एवं ग्रामीण विकास के लिए वित्तीय सहायता दी जाती है।

(10) प्रशिक्षण (Training): विश्व बैंक सदस्य देशों के वरिष्ठ अधिकारियों को प्रशिक्षण देता है। यह प्रशिक्षण आर्थिक नियोजन, विकासात्मक नीतियों, कृषि अनुसंधान, हैल्थ केयर, ऊर्जा प्रबन्ध, पेय जल प्रबन्ध, मुख्य सिंचाई परियोजनाएँ, रेलवे आदि क्षेत्रों में दिया जाता है।

(11) अनुसंधान (Research): विश्व बैंक विभिन्न अनुसंधान संबंधी कार्य भी करता है। विश्व बैंक अनुसंधान कार्य की रिपोर्ट को इसके द्वारा प्रकाशित जर्नलों में प्रकाशित किया जाता है। 'World Development Report' विश्व बैंक द्वारा प्रकाशित एक प्रसिद्ध जर्नल है। बैंक द्वारा किये गये अनुसंधान कार्य सदस्य देशों के आर्थिक नियोजन तथा घरेलू अनुसंधान में काम आते हैं।

(12) कल्याणकारी संस्थाओं को वित्तीय सहायता *(Financial Assistance to Welfare Institutions): विश्व* बैंक कुछ कल्याणकारी संस्थाओं को वित्तीय सहायता देता है जैसे- यूनीसेफ (UNICEF), यूनेस्को (UNESCO), विश्व स्वास्थ्य

संगठन (WHO), अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (ILO), खाद्य एवं कृषि संगठन (FAO) आदि। इस तरह विश्व बैंक कल्याणकारी कार्यों को बढ़ावा दे रहा है।

(13) सहायक संस्थाओं की स्थापना (Establishment of Subsidiary Institutions): विश्व बैंक ने तीन सहायक संस्थाओं की स्थापना भी की है। ये संस्थायें हैं:

(i) अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम (International Finance Commission): इसकी स्थापना जुलाई, 1956 में की गई थी। इसका उद्देश्य सदस्य देशों में निजी क्षेत्र को प्रोत्साहन देना है।

(ii) अन्तर्राष्ट्रीय विकास संघ (International Development Association): इस संस्था की स्थापना सन् 1960 में अल्पविकसित देशों को कम ब्याज पर ऋण देने के लिये की गई है।

(iii) बहुराष्ट्रीय निवेश गारन्टी एजेन्सी (Multinational Investment Guarantee Agency – MIGA) की स्थापना 1988 में की गई है। इसका उद्देश्य निजी विदेशी निवेश को प्रोत्साहित करना है।

(10) पर्यावरण संरक्षण (Environment Protection): हाल ही के वर्षों में विश्व बैंक ने विश्व की पर्यावरण प्रदूषण से रक्षा के लिए कई महत्वपूर्ण कार्य किए हैं। पर्यावरण संरक्षण के लिए बैंक ने एक विश्व पर्यावरण सुविधा योजना आरंभ की है। इसके अधीन कम प्रतिव्यक्ति आय वाले देशों के लिए अनुदान देने का प्रावधान है।

संक्षेप में विश्व बैंक ने सदस्य देशों के पुनर्निर्माण तथा आर्थिक विकास के लिए महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

■ 9.2 विश्व बैंक की असफलतायें (Failures of World Bank)

विश्व बैंक की मुख्य असफलतायें निम्नलिखित हैं:

(1) अपर्याप्त वित्तीय सहायता (Inadequate Financial Help): आलोचकों के अनुसार विश्व बैंक की पूंजी सदस्य देशों की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये पर्याप्त नहीं है। अल्पविकसित देशों को यह बैंक उनकी आवश्यकताओं की तुलना में बहुत कम वित्तीय सहायता दे पाता है।

(2) पक्षपातपूर्ण व्यवहार (Discriminating Behaviour): विश्व बैंक का धनी तथा निर्धन देशों के मध्य में व्यवहार पक्षपातपूर्ण रहा है। यूरोप के देशों के प्रति यह बैंक अधिक उदार रहा है। इसके विपरीत अल्पविकसित देशों को अपेक्षाकृत कम ऋण दिये गये हैं ऋणों की शर्तें भी काफी कठिन रही हैं।

(3) ऊंची ब्याज तथा कमीशन दरें (High Rate of Interest and Commission): आलोचकों के अनुसार विश्व बैंक की ब्याज दरें तथा कमीशन दरें बहुत ऊंची है। अल्पविकसित देश इन ऊंची दरों को देने में कठिनाई महसूस करते हैं।

(4) त्रुटिपूर्ण ऋण नीति (Defective Loan Policy): विश्व बैंक की ऋण नीति बहुत कठोर (Rigid) है। इससे ऋण प्राप्त करने में काफी समय लग जाता है। बैंक ऋण देने से पहले उसे वापिस करने की क्षमता को अधिक महत्त्व देता है। परन्तु यह नीति अल्पविकसित देशों के दृष्टिकोण से उचित नहीं है क्योंकि उनमें ऋण चुकाने की क्षमता ऋण लेने से पहले नहीं होती बल्कि ऋण लेने के बाद उत्पन्न होती है क्योंकि इन ऋणों के कारण ही उनकी उत्पादन क्षमता में वृद्धि होती है।

(5) सीमित उद्देश्यों के लिये ऋण (Loans for Limited Objective): विश्व बैंक की इसलिये भी आलोचना की जाती है क्योंकि इसके द्वारा केवल सीमित उद्देश्यों के लिए ही ऋण दिये जाते हैं। अल्पविकसित देशों को तो पूर्ण विकास के लिये ऋणों की आवश्यकता होती है उन्हें तो बिना किसी बन्धन के इस प्रकार के ऋण चाहियें जिनका प्रयोग वे अपनी प्राथमिकता के अनुसार कर सकें।

(6) विदेशी मुद्रा में ऋणों का भुगतान (Repayment of Loans in Foreign Currency): आलोचकों के अनुसार विश्व बैंक की यह प्रथा कि ऋणों का भुगतान उस देश की करेन्सी में ही किया जाये जिसमें वह लिया गया है। अल्पविकसित देशों के लिये उपयुक्त नहीं है। इन देशों के लिये विदेशी करेन्सी में ऋणों का भुगतान करना कई बार कठिन हो जाता है।

(7) विभेदात्मक (Discriminatory): बैंक की आलोचना इसके द्वारा विकासशील देशों के प्रति अपनाई गई उद्देश्य तथा क्षेत्रीय आधार पर सहायता की विभेदात्मक नीतियों के कारण भी की जाती है। सन् 1990 में बैंक ने अपनी रणनीति, विकासशील देशों के पक्ष में कृषि, ग्रामीण विकास, ऊर्जा, परिवहन, संवहन, जल आपूर्ति, सीवरेज, मानवीय संसाधन विकास तथा वातावरण, आदि के विकास के लिए निर्देशित कर दी है।

(8) कठोर शर्तें (Hard Conditions): SAF तथा ESAF ने ऋणी देशों पर कठोर शर्तें लगाई हैं जैसे स्वतन्त्र व्यापार, सार्वजनिक बजट में सुधार तथा ऋण प्रबन्ध, कीमत नीतियों में संशोधन, सार्वजनिक निवेश का श्रेष्ठ नियोजन तथा सार्वजनिक उपक्रमों का प्रबन्ध आदि। SAF द्वारा ऋण की दूसरी किस्त समय-बद्ध सुधार कार्यक्रमों के पुनरावलोकन (Review) के बाद ही दी जाती है।

बैंक के कुल निष्पादन (Performance) की परख ना केवल इसकी ऋण देने की क्रियाओं से बल्कि तकनीकी सहायता प्रदान करने में इसकी भूमिका तथा विभिन्न परियोजनाओं के लिए आवश्यक परामर्श आदि के आधार पर भी करनी चाहिए। बैंक सार्वजनिक क्षेत्र के अतिरिक्त वित्तीय, ऊर्जा, दूर संचार, सूचनात्मक तकनीक, तेल एवं गैस आदि क्षेत्रों में भी सहायता प्रदान करता है। बैंक, शिक्षा, जनसंख्या नियन्त्रण, स्वास्थ्य तथा आहार (Nutrition) और पर्यावरण के द्वारा मानवीय विकास पर अधिक बल देता है।

संक्षेप में, उपरोक्त दोषों के बावजूद भी विश्व बैंक का संसार के सभी देशों के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

■ 10. भारत तथा विश्व बैंक (India and World Bank)

भारत मुद्रा कोष (IMF) के साथ-साथ विश्व बैंक का संस्थापक सदस्य है। भारत उन 17 देशों में से एक है, जिन्होंने 1944 में ब्रेटन वुडस कान्फ्रेंस का एजेन्डा तैयार किया था। बैंक की स्थापना के लिये सबसे पहले जिन 44 देशों ने अन्तिम प्रारूप पर हस्ताक्षर किये थे भारत उनमें से एक देश था। वास्तव में यह कहा जाता है कि इस बैंक का वर्तमान नाम, **"अन्तर्राष्ट्रीय पुनर्निर्माण तथा विकास बैंक"** (International Bank for Reconstruction and Development) के नाम का सुझाव भारत ने ही दिया था। भारत को विश्व बैंक की सदस्यता से निम्नलिखित लाभ प्राप्त हुये हैं:

(1) कार्यकारी सदस्य (Executive Director): भारत कई वर्षों तक संचालक मण्डल का स्थायी सदस्य रहा है।

(2) ऋण (Loans): भारत को अपनी विकासात्मक योजना के लिये विश्व बैंक से काफी ऋण प्राप्त हुए हैं। विश्व-बैंक ने सबसे अधिक ऋण भारत को दिए हैं। वर्ष 2004-05 में भारत को विश्व बैंक से 2.9 बिलियन US डॉलर के ऋण प्राप्त हुए। ऋणों की यह राशि पिछले वर्ष 2003-04 में मिले 1.4 बिलियन US डॉलर के ऋण से दुगने से भी अधिक थी। भारत को विभिन्न विकासात्मक परियोजनाओं जैसे- सड़क निर्माण, ऊर्जा, जल-आपूर्ति आदि के लिए आगामी तीन वर्षों (2005-06, 2006-07 तथा 2007-08) में विश्व बैंक से 9 बिलियन U.S. डॉलर के ऋण मिलने की संभावना है। वर्ष 2006-07 में भारत को विश्व बैंक से 4 बिलियन डॉलर (18000 करोड़ रुपये) के ऋण प्राप्त हुए। मार्च, 2006 तक भारत को विश्व बैंक से अब तक कुल 65.8 बिलियन डॉलर के ऋण प्राप्त हुए हैं। भारत को विशेष रूप से निम्नलिखित परियोजनाओं के विकास के लिए ऋण प्राप्त हुए हैं: (1) रेलवे (2) दामोदर घाटी निगम की बिजली परियोजनाएं (3) सिंचाई योजनाएं (4) एयर इण्डिया द्वारा हवाई जहाज खरीदने के लिये (5) बन्दरगाहों के विकास के लिये (6) महाराष्ट्र की कोयला बिजली परियोजना (7) कोयला उद्योग (8) टाटा लोहा तथा इस्पात कम्पनी (9) भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (IDBI) तथा भारतीय औद्योगिक साख एवं निवेश निगम (ICICI) को वित्तीय सहायता (10) टेलिकम्युनिकेशन (11) जलपूर्ति तथा सफाई (12) सड़क निर्माण (13) समुद्र से पेट्रोल निकालने की योजनाएं तथा पेट्रोल शोधन (14) सीमेंट, रबर तथा इलेक्ट्रॉनिक्स उद्योग आदि। 30 जून, 2005 को विश्व बैंक ने भारत की 64 कार्यशील विकासात्मक परियोजनाओं के लिए कुल 12.8 बिलियन US डॉलर के ऋण दिए। विश्व बैंक से मिलने वाले ऋणों का विभिन्न क्षेत्रों में बंटवारा इस प्रकार है:

Table 1. IBRD's Sector-wise Lending to India (as on June, 2005)

Sector	Amount of Loan (inbillion dollars)	% of Total Loan
(1) Energy and Infrastructure	6.8	52
(2) Human Development	2.7	21
(3) Agricultural and Rural Development	2.4	19
(4) Poverty Reduction	0.6	5
(5) Environmental Protection	0.1	1
(6) Others	0.2	2
Total	**12.8**	**100**

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि अब विश्व बैंक से भारत बहुत कम ऋण ले रहा है।

(3) **भारत सहायता क्लब** (Aid India Club or Consortium): भारत के योजनात्मक विकास के लिये वित्तीय सहायता तथा विदेशी विनिमय का प्रबंध करने के लिये विश्व बैंक के प्रयत्नों से अगस्त 1950 में भारत सहायता क्लब की स्थापना की गई है। इस क्लब के अमेरिका, इंग्लैण्ड, जापान, जर्मनी, कनाडा जैसे देश सदस्य हैं। इस क्लब ने भारत को विदेशी विनिमय के रूप में महत्त्वपूर्ण धनराशि के ऋण दिये हैं। 21 जून, 1993 को भारत को इस क्लब से 670 करोड़ डालर के ऋण तथा सहायता प्राप्त हुई है। अब इसे **भारतीय विकास फोरम** (Indian Development Forum) कहा जाता है। 29 जुलाई, 1994 में होने वाली इस फोरम की पहली बार की मिटिंग में कई **बहुराष्ट्रीय निगमों** तथा भारत की 15 निजी निगमों को आमंत्रित किया गया। इस मिटिंग में यह निर्णय लिया गया कि **संरचनात्मक समन्वय** (Structural Adjustment) के लिये भारत को 600 करोड़ डालर के ऋण दिये जाये।

(4) **पाकिस्तान के साथ नहरी पानी विवाद में मध्यस्थता** (Mediation between Indo-Pak River Water Dispute): भारत तथा पाकिस्तान में पंजाब की नदियों के जल विभाजन को लेकर तीव्र विवाद हो गया था। विश्व बैंक ने इस विवाद को सुलझाने में मध्यस्थ का कार्य किया था। बैंक की मध्यस्थता के फलस्वरूप 1952 में दोनों देशों के बीच वार्ता आरम्भ हुई तथा 1959 में इस विवाद का निपटारा हो गया।

(5) **सामान्य ऋणों की सुविधा** (Facilities for General Loans): भारत को विश्व बैंक से सामान्य ऋण की सुविधा भी उपलब्ध हुई है। इसका अभिप्राय यह है कि भारत को विश्व बैंक से इस प्रकार के ऋण भी उपलब्ध हुये हैं जिनका वह अपनी इच्छा से प्रयोग कर सकता है।

(6) **विश्व बैंक की सहायक संस्थाओं की सदस्यता से लाभ** (Advantages from Membership of Sister Institution of the World-Bank): विश्व बैंक का सदस्य होने के कारण भारत को उसकी निम्नलिखित सहायक संस्थाओं का सदस्य बनने का भी लाभ प्राप्त हुआ है। (1) **अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम** (International Finance Commission): इस निगम की स्थापना सन् 1960 में सदस्य देशों के निजी क्षेत्र को ऋण दिलाने के लिये की गई थी। इस निगम के द्वारा अब तक भारत की 57 कम्पनियों को121 करोड़ डालर का निवेश प्राप्त हो चुका है। (2) **अन्तर्राष्ट्रीय विकास संघ** (International Development Association): इस संघ की स्थापना 1960 में निर्धन देशों को ब्याज की रियायती दरों पर ऋण देने के लिये की गई थी। 1997 में भारत को इस संघ से 90.3 करोड़ डालर के ऋण प्राप्त हुये हैं। ये ऋण मुख्य रूप से कृषि, जनसंख्या नियन्त्रण तथा सड़कों के विकास के लिये प्राप्त हुये हैं। (3) **बहुराष्ट्रीय निवेश गारन्टी एजेन्सी** (Multinational Investment Guarantee Agency) की स्थापना 1988 में की गई। इसका उद्देश्य विकासशील देशों में निजी क्षेत्र के विदेशी निवेश को प्रोत्साहित करने के लिए जोखिम के विरुद्ध गारन्टी देना है। भारत 1993 में इसका सदस्य बना है।

(7) **तकनीकी सहायता** (Technical Assistance): भारत की परियोजनाओं के लिये विश्व बैंक ने समय-समय पर उपयुक्त तकनीकी सहायता प्रदान की है। विश्व बैंक ने अपने लगभग 15 विशेषज्ञ दलों को भारत भेजा है। इन विशेषज्ञों ने भारत की

विकास योजनाओं का मूल्यांकन करके कई महत्त्वपूर्ण सुझाव दिये हैं। बैंक के विशेषज्ञों ने भारत के विभिन्न क्षेत्रों का सर्वेक्षण करके उनके विकास के सम्बन्ध में कई सुझाव दिये हैं। विश्व बैंक ने नई दिल्ली में अपना एक **स्थानिक प्रतिनिधि** (Resident Representative) नियुक्त किया है। यह अधिकारी विकास परियोजनाओं के विषय में भारत सरकार से निरन्तर सम्पर्क रखता है।

(8) जनसंख्या नियन्त्रण सहायता (Population Control Assistance): विश्व बैंक ने भारत के जनसंख्या नियन्त्रण प्रोग्राम को प्रभावपूर्ण ढंग से लागू करने तथा शहरी विकास के लिये लगभग 495 करोड़ डालर के ऋण दिये हैं।

(9) गैर-सरकारी संगठनों की सहायता (Help to Non-Government Organisations): विश्व बैंक द्वारा जनकल्याण के कार्यों से सम्बन्धित कई-गैर सरकारी संगठनों को भी वित्तीय सहायता दी गई है। इनमें से मुख्य योजनायें हैं **(1) राष्ट्रीय कोढ़ निवारण** (National Leprosy Elimination) **(2) बेसिक शिक्षा परियोजना** (Basic Education Project) **(3) बाल विकास सेवा परियोजना** (Child Development Services Project) आदि।

(10) मानवीय विकास परियोजनाएं (Human Development Projects): विश्व बैंक भारत को शिक्षा व स्वास्थ्य परियोजनाओं में सहायता दे रहा है। शिक्षा के क्षेत्र में 'सर्व शिक्षा अभियान' व पेशेवर शिक्षा में विश्व बैंक भारत को सहायता दे रहा है। स्वास्थ्य के क्षेत्र में कुछ बीमारियाँ जैसे टी.वी., एडस आदि के उन्मूलन में विश्व बैंक भारत को सहायता दे रहा है।

■ आलोचनाएं (Criticisms)

भारत से सम्बन्धित विश्व बैंक के निर्णयों की कई कारणों से आलोचनायें की जाती हैं जैसे (1) विश्व बैंक तीसरी योजना के बाद से भारतीय नियोजन के आधार को कम करने के लिये प्रयत्नशील रहा है। इस बैंक ने ऐसी दशायें उत्पन्न कर दीं कि जिनके फलस्वरूप योजना आयोग का महत्त्व कम होता गया। (2) विश्व बैंक ने शुरू से ही भारत की आर्थिक नीतियों में हस्तक्षेप व इसको प्रभावित किया है। इसका उद्देश्य भारत में विदेशी पूंजी के निवेशों को प्रोत्साहित करना रहा है। (3) विश्व बैंक ने सार्वजनिक क्षेत्र के स्थान पर निजी क्षेत्र के विकास को अधिक महत्त्व दिया है। (4) विश्व बैंक की सलाह पर ही 1966 तथा 1991 में भारतीय रुपये का अवमूल्यन किया गया। (5) भारत की विश्व बैंक पर निर्भरता बढ़ती गई है। इसके फलस्वरूप भारत को अपनी आर्थिक नीतियां विश्व बैंक के अनुसार ही बनानी पड़ती है। इसका देश की आर्थिक स्वतन्त्रता पर बुरा प्रभाव पड़ा है। (6) सन् 1991 में घोषित आर्थिक सुधारों के लिये विश्व बैंक काफी सीमा तक जिम्मेदार है। परन्तु आलोचकों के अनुसार इन सुधारों का लाभ केवल बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को हुआ है। देश की निर्धन जनता को इनसे कोई लाभ नहीं हुआ है।

संक्षेप में आलोचकों के अनुसार विश्व बैंक की सदस्यता ने भारत की आर्थिक स्वतन्त्रता को खतरे में डाल दिया है।

प्रश्न (QUESTIONS)

■ I. वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

सभी प्रश्न अनिवार्य हैं (Attempt all the questions)

1. विश्व बैंक या अन्तर्राष्ट्रीय पुनर्निर्माण तथा विकास बैंक की स्थापना _______ में हुई (1945, 1954)
   (K.U. 2006, 2008, 2009, M.D.U. 2007)
2. विश्व बैंक का मुख्य उद्देश्य किन देशों को आर्थिक सहायता प्रदान करना है (अल्पविकसित देशों को, विकसित देशों को)
3. विश्व बैंक का एक उद्देश्य किसको प्रोत्साहित करना है (अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को, अन्तर्क्षेत्रीय व्यापार को)
4. विश्व बैंक सदस्य देशों को ऋण देता है केवल (उत्पादक उद्देश्यों के लिए, उपभोग उद्देश्यों के लिए)
5. बैंक की शर्त है कि लिए गए ऋण का भुगतान किया जाए (उसी विदेशी मुद्रा में, किसी भी विदेशी मुद्रा में)
6. भारत ने विश्व बैंक से सुविधाएँ प्राप्त की हैं। (सामान्य ऋणों के लिए, विशेष ऋणों के लिए)

7. IBRD का पूरा रूप (अन्तर्राष्ट्रीय पुनर्निर्माण तथा विकास बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय ग्रामीण तथा विकास बैंक) (M.D.U. 2009)

उत्तर (Answer): (1) 1945 में, (2) अल्पविकसित देशों को, (3) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को, (4) उत्पादक उद्देश्यों के लिए, (5) उसी विदेशी मुद्रा में, (6) सामान्य ऋणों के लिए, (7) अन्तर्राष्ट्रीय पुनर्निर्माण तथा विकास बैंक।

■ II. लघु/परिभाषा रूपी प्रश्न (Short/Definitional Type Questions)

1. विश्व बैंक की स्थापना कब हुई थी?
2. विश्व बैंक के दो उद्देश्य बतलाएं। (K.U. 2005)
3. बैंक किस प्रकार की सहायता प्रदान करता है?
4. बैंक किस स्रोत से मुद्रा प्राप्त करता है?
5. विश्व बैंक की सफलता/उपलब्धियों की दो बातें बतलाएं।
6. विश्व बैंक की असफलता की दो बातें बतलाएं।
7. विश्व बैंक से संबद्ध संस्थाएँ कौन-सी हैं?

■ III. निबन्ध रूपी प्रश्न (Essay Type Questions)

1. Why was World Bank Established? What are its main functions?
   विश्व बैंक की स्थापना क्यों हुई? इसके मुख्य कार्य क्या हैं?
2. How does World Bank work? What contribution has it made in the economic development of the world?
   विश्व बैंक किस प्रकार कार्य करता है? इसने संसार के आर्थिक विकास में क्या योगदान दिया है?
3. Discuss the objectives of the "World Bank" and evaluate its achievements.
   विश्व बैंक के उद्देश्यों की व्याख्या करें और उसकी सफलताओं का मूल्यांकन करें।
4. Discuss the objectives and functions of IBRD/World Bank. How far has the IBRD/World Bank proved useful to India?
   अन्तर्राष्ट्रीय पुनर्निर्माण तथा विकास बैंक/विश्व बैंक के उद्देश्यों तथा कार्यों का वर्णन करें। यह बैंक भारत के लिए कहां तक लाभदायक सिद्ध हुआ है? (K.U. 2006, M.D.U. 2007)
5. Write a critical note on the working and achievements of IBRD with special reference to less developed countries.
   कम विकसित देशों के संदर्भ में विश्व बैंक की कार्यप्रणाली तथा उपलब्धियों पर आलोचनात्मक नोट लिखें।
6. Explain the role of International Bank for Reconstruction and Development in assisting the economic growth of underdeveloped countries.
   अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास में अन्तर्राष्ट्रीय पुनर्निर्माण तथा विकास बैंक के योगदान की व्याख्या करें।
7. What is the Funding Strategy of the Bank? Tell the other activities of the Bank.
   बैंक की निधिकरण ऋण नीति क्या है? बैंक की अन्य क्रियाओं का वर्णन करें।

25

विश्व व्यापार संगठन

(WORLD TRADE ORGANISATION)

■ 1. भूमिका (Introduction)

साठ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं जब कि **ब्रेटन वुड्स समझौते** (Bretton Woods Agreements) ने अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF), **विश्व बैंक** (World Bank) और कुछ वर्षों बाद **सीमा शुल्क और व्यापार पर सामान्य समझौते** (The General Agreement on Tariff and Trade or GATT) के नेतृत्व में अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा प्रणाली व व्यापार को प्रबन्धित करने के लिए एक प्रणाली की स्थापना की थी। **उरूग्वे दौर** (Uruguay Round) में समझौते की बातचीत (Negotiations) के आठ वर्ष पश्चात् 124 राष्ट्र शामिल हुए और उन्होंने 15 अप्रैल 1994 को **मोराको में माराकेश** के स्थान पर **सीमा शुल्क तथा व्यापार पर सामान्य समझौते** (GATT) पर हस्ताक्षर किए, इस समझौते का मुख्य उद्देश्य सीमा शुल्क को घटा कर, कोटा कम करके तथा स्वतन्त्र बाजार की पहुंच में सुधार करके **बहुपक्षीय विश्व व्यापार** (Multilateral World Trade) को बढ़ावा देना था। उन्होंने यह निर्णय लिया कि सदस्य देशों के समझौते के प्रावधानों को लागू करने की दृष्टि से अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व बैंक जैसा स्थाई अन्तर्राष्ट्रीय संगठन, जिसे, '**विश्व व्यापार संगठन**', (WTO) कहा गया, स्थापित किया जाए। परिणामस्वरूप **विश्व व्यापार संगठन** 1 जनवरी, 1995 से **प्रचलन** (Operation) में है और इसने विधिवत अपना कार्य शुरू कर दिया है।

■ 1.1 विश्व व्यापार संगठन की प्रस्तावना (The Preamble of WTO)

विश्व व्यापार संगठन की स्थापना से संबंधित समझौते की प्रस्तावना बतलाती है कि "**यह सुनिश्चित करने के लिए सकारात्मक प्रयासों की आवश्यकता है कि विकासशील देश, विशेषकर उनमें बहुत कम विकसित देश, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की वृद्धि में वह भाग प्राप्त कर सकें जो उनकी आर्थिक विकास सम्बन्धी आवश्यकताओं के अनुरूप हो।**" (There is a need for positive efforts designed to ensure that developing countries, and especially the least developing among them, secure a share in the growth of international trade commensurate with the needs of their economic development.) विकासशील देश निर्यात वृद्धि से लाभान्वित होंगे और अन्य WTO सदस्यों द्वारा अपनाए गए उपायों से बेहतर व्यवहार प्राप्त करेंगे। विकासशील देश के **आभार** (Obligation) को मानते हुए और WTO के अधीन बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली के लाभों को अधिक प्रभावशाली महसूस करते हुए, उन्हें तकनीकी सहायता प्रदान की जायेगी।

■ 2. विश्व व्यापार संगठन क्या है? (What is World Trade Organisation - WTO?)

गैट (GATT) के संरक्षण (Auspices) में हुए समझौते के अधीन, WTO ने GATT का स्थान ले लिया है और WTO विश्व बाजार प्रतिस्पर्धा की वृद्धि द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को बढ़ावा देगा। बहुपक्षीय व्यापार सम्बन्धों के इतिहास में विश्व व्यापार संगठन WTO एक **सीमाचिह्न** (Landmark) है। **WTO संसार के विभिन्न देशों के बीच अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को प्रोत्साहित करने तथा सीमा शुल्क के बन्धनों को कम करने के लिए किया गया आवश्यक सिद्धान्तों तथा नियमों से संबंधित बहुपक्षीय समझौता और बन्धनमुक्त** (Loose) **संगठन है। यह एक बहुपक्षीय सन्धि है जो अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के नियमों का निर्धारण करती है।** (The WTO embodies an international trade organisation having set of rules and principles, mutually designed and agreed upon to promote international trade in general and reduction of tariff

barriers and removal of import restriction in particular.) यह एक नई विश्व व्यापार प्रणाली है। 15 दिसम्बर, 1993 को गैट समझौते की **बातचीत** (Negotiations) के आठवें दौर (जिसे उरुग्वे दौर भी कहते हैं) में पहुंचने पर WTO ने इस समझौते को लागू करने के लिए गैट का स्थान ले लिया है। आठवें दौर के समझौते में वे 28 द्विपक्षीय समझौते शामिल हैं जिन पर सम्मिलित होने वाले सभी देशों ने हस्ताक्षर किए हैं। संक्षेप में, विश्व व्यापार संगठन WTO, गैट के स्थान पर नया नाम लेने वाला, विश्व मान्यता प्राप्त एक व्यापार संगठन है, इसे अब नया दृष्टिकोण (Vision) और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को सख्ती से लागू करने का अधिकार प्राप्त है। WTO में अब **वस्तुओं, सेवाओं तथा बौद्धिक सम्पदा अधिकारों** (Intellectual property rights) की परिषदें (Councils) हैं। WTO अब, विश्व बैंक तथा IMF के साथ मिलकर, विश्व व्यापार नीति को काफी मात्रा में प्रभावित करेगा। **विश्व आर्थिक नीति निर्माण में अधिक सम्बद्धता** (Coherence) प्राप्त करने के लिए WTO के अंशदान की घोषणा यह अभिनिर्धारण या पहचान (Identify) करती है कि **विश्व आर्थिक नीति निर्माण** में अधिक सम्बद्धता की स्थापना के लिए WTO, IMF तथा विश्व बैंक की क्रियाओं के बीच के सम्बन्ध को अधिक शक्तिशाली बनाने की आवश्यकता है।

1 जनवरी, 1995 को विश्व व्यापार संगठन (WTO) के 77 सदस्य देश थे, जिनकी संख्या नवम्बर, 2003 में बढ़कर 144 हो गई। भारत इसके संस्थापक सदस्यों में से है। उल्लेखनीय है कि **दोहा सम्मेलन** (9-13 नवम्बर, 2001) में चीन व ताइवान को WTO का सदस्य बना लिया गया है।

■ 2.1 गैट तथा विश्व व्यापार संगठन में अन्तर (Difference between GATT and WTO)

विश्व व्यापार संगठन गैट का एक विस्तृत रूप नहीं है बल्कि उसका उत्तराधिकारी (Successor) है। WTO ने गैट को पूरी तरह से बदल दिया है और इसकी अलग से एक विशेषता है। इन दोनों में मुख्य अन्तर निम्नलिखित हैं:

GATT	WTO
1. यह नियमों तथा बहुपक्षीय समझौतों का समूह था। इसका कोई वैधानिक अस्तित्व नहीं था।	यह एक स्थाई संस्था है तथा इसका वैधानिक अस्तित्व है।
2. GATT ढांचे में कुछ अन्य महत्वपूर्ण समझौते सम्मिलित थे।	यह समझौतों का एक एकत्रित पैकेज प्रशासित करता है जिसमें सभी सदस्य वचनबद्ध होते हैं।
3. यह एक छोटा सचिवालय था जिसका प्रबन्ध डायरेक्टर जनरल द्वारा किया जाता था।	इसका बड़ा सचिवालय है तथा विस्तृत संगठनात्मक ढांचा है।
4. GATT के नियम केवल वस्तुओं के व्यापार पर लागू होते हैं।	इसमें न केवल वस्तुओं एवं सेवाओं का व्यापार सम्मिलित है बल्कि व्यापार सम्बन्धी तथ्य बौद्धिक सम्पदाएं भी सम्मिलित हैं।
5. इसका विवाद सुलझाने का तरीका धीमा था तथा पक्षों पर कोई बाध्यता नहीं थी।	इसका विवाद सुलझाने का तरीका स्वचालित, तीव्र है तथा पक्षकार भी बाध्य होते हैं।
6. यह एक ऐसा फोरम था जहाँ सदस्य देश बहुत लम्बे समय के बाद व्यापार सम्बन्धी समस्याओं को सुलझाने के लिए मिलते थे।	यह नियमों पर आधारित उचित प्रकार संस्थापित किया गया विश्व व्यापार संगठन है जहां समझौतों पर निर्णय समय पर लिया जाता है।

■ 2.2 WTO का संगठनात्मक ढांचा (Organisational Structure of WTO)

WTO का संगठन ढांचा चार श्रेणीबद्ध स्तरों पर आधारित है। ये श्रेणियां निम्नलिखित हैं:

(1) मंत्रालय की कान्फ्रेंस (Ministerial Conference): यह संगठनात्मक ढांचे का एक उच्चतम श्रेणीबद्ध स्तर है। यह सभी सदस्यों के प्रतिनिधियों द्वारा संगठित किया जाता है जो कि दो वर्षों में कम से कम एक बार अवश्य मिलते हैं। यह नीति एवं योजना

बनाने वाली संस्था है। मंत्रालय की कान्फ्रेंस में किसी भी बहुपक्षीय व्यापार समझौते के अन्तर्गत सभी मामलों पर निर्णय लिया जाता है। यह WTO के कार्यों का प्रतिपादन करते हैं तथा आवश्यक कार्यवाही करते हैं।

(2) सामान्य परिषद् (General Council): सामान्य परिषद् WTO की अधिकारी संस्था है। मन्त्रालय की कान्फ्रेंस में नीतियों तथा योजनाओं का प्रतिपादन किया जाता है तथा सामान्य परिषद् द्वारा इन्हें कार्यान्वित किया जाता है। सामान्य परिषद् में WTO के सभी सदस्य देशों के प्रतिनिधि होते हैं। सामान्य परिषद् निम्न के लिए उत्तरदायी होती हैं:

(i) विवादों के निपटारे को शासित करने वाले नियम तथा प्रक्रिया के समझौते के अनुसार विवाद निपटारा संस्था के रूप में अपने उत्तरदायित्वों को पूरा करना है। इसे विवाद निवारण पैनेल तथा अपील संस्था द्वारा सहायता प्राप्त है।

(ii) जैसा कि व्यापार नीति पुनरावलोकन मकेनिज्म (TPRM) में उल्लेख किया गया है इसे व्यापार नीति पुनरावलोकन संस्था के उत्तरदायित्वों को भी निभाना है।

इन दोनों संस्थाओं के अपने-अपने अध्यक्ष हो सकते हैं तथा अपने उत्तरदायित्वों को पूरा करने के लिए अपने-अपने नियम तथा कार्य प्रणालियाँ बना सकते हैं।

(3) सामान्य परिषद् के अन्तर्गत कार्यकारी परिषद् (Functional Councils under the General Council): सामान्य परिषद् के अन्तर्गत तीन कार्यकारी परिषद् हैं-

(i) वस्तुओं के व्यापार के लिए परिषद् (Council for Trade in Goods): यह परिषद् वस्तुओं के व्यापार से संबंधित बहुपक्षीय व्यापार समझौतों (MTA) के कार्यों का उत्तरदायित्व लेती हैं।

(ii) सेवाओं के व्यापार के लिए परिषद् (Council for Trade in Services): यह परिषद् सेवाओं के व्यापार से संबंधित बहुपक्षीय समझौतों की कार्यवाही का उत्तरदायित्व लेती है।

(iii) बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के व्यापार संबंधित तथ्यों के लिये परिषद् (Council for Trade-Related Aspects of Intellectual Property Rights (TRIPs)): यह परिषद् इस क्षेत्र से संबंधित सभी समझौतों के कार्यों का प्रतिपादन करने का उत्तरदायित्व लेती है।

(4) समिति तथा प्रबन्ध संस्थाएं (Committee and Management Bodies): मंत्रालय कान्फ्रेंस अपने कार्यों के प्रतिपादन के लिए तीन कार्यकारी समितियां स्थापित करती है। ये समितियां इस प्रकार हैं:

(a) व्यापार तथा विकास समिति (Committee on Trade and Development): यह समिति विशेषतया विकासशील देशों से संबंधित मामलों पर विचार करती है तथा विकसित देशों के कुछ मामलों से संबंधित है।

(b) भुगतान शेष समिति (Committee on Balance of Payments): यह समिति व्यापार प्रतिबन्धात्मक उपायों, जो कि कुछ देशों द्वारा अपनी भुगतान शेष की समस्याओं का सामना करने के लिए अपनाए गए, से संबंधित सदस्य देशों के बीच वार्तालाप का प्रबन्ध करती हैं।

(c) बजट, वित्त तथा प्रशासन समिति (Committee on Budget, Finance and Administration): यह समिति WTO के बजट, वित्त तथा प्रशासन सम्बन्धी मामलों पर ध्यान देती है।

■ 2.3 प्रबन्ध संस्थाएँ (Management Bodies)

WTO के बहुपक्षीय समझौतों की प्रबन्ध संस्थाएं हैं। ये प्रबन्ध संस्थाएँ सामान्य परिषद् को भी प्रतिवेदन प्रस्तुत करती हैं। कुछ बहुपक्षीय समझौते जिनकी प्रबन्ध संस्थाएँ हैं उनमें- नागरिक एयरक्राफ्ट, सरकारी प्रबन्ध, डेयरी उत्पाद, गौमांस आदि सम्मिलित हैं।

WTO का सचिवालय डायरेक्टर जनरल द्वारा नियन्त्रित किया जाता है। डायरेक्टर जनरल की नियुक्ति मन्त्रालय कान्फ्रेन्स द्वारा की जाती है जो इसके अधिकार, कर्तव्य, सेवा की शर्तें तथा कार्यालय के नियम निर्धारित करती है। डायरेक्टर जनरल की अवधि 4 वर्ष होती है। डायरेक्टर जनरल के अन्य सदस्य देशों के चार प्रतिनिधि होते हैं। वह सचिवालय के स्टॉफ के सदस्यों की नियुक्ति करता है तथा

उनकी सेवाओं के कर्तव्य तथा शर्तें निर्धारित करता है। डायरेक्टर जनरल WTO का वार्षिक बजट तथा वित्तीय विवरण 'बजट, वित्त तथा प्रशासन समिति' में प्रस्तुत करता है।

WTO के निर्णय एकमत द्वारा लिए जाते हैं। एकमत की अनुपस्थिति में निर्णय 2/3 बहुमत द्वारा लिया जाता है तथा सदस्य के आभारों के अधित्याग की अवस्था में 3/4 सदस्यों के बहुमत की आवश्यकता होती है।

■ 2.4 WTO के कार्य (Functions of WTO)

WTO के निम्नलिखित कार्य हैं:

(1) WTO बहुपक्षीय व्यापार समझौतों (MTAs) तथा बहुसंख्यक व्यापार समझौतों (PTAs) के प्रबन्ध को उनके दायित्वों को पूरा करने के लिए सुविधाएं प्रदान करता है।

(2) यह सदस्य देशों के बीच हुए MTA तथा PTA समझौते से संबंधित बहुपक्षीय व्यापार सम्बन्धों का मोल-तोल करता है।

(3) यह मन्त्रालय कान्फ्रेन्स द्वारा निर्णीत समझौतों के परिणामों के परिपालन के लिए सुविधा प्रदान करता है।

(4) यह विवादों के निपटारे को प्रभावित करने वाले नियम तथा कार्यप्रणालियों पर समझौते करता है।

(5) यह व्यापार नीति पुनरावलोकन यंत्रावली (TPRM), जो कि समझौते का एक संगठित हिस्सा है, का प्रशासन करने के लिए उत्तरदायी है।

(6) यह UNO का अन्य संस्थाओं जैसे IBRD तथा IMF के साथ आर्थिक नीति निर्माण में समन्वय स्थापित करने का साधन है।

(7) विश्व संसाधनों का अनुकूलतम प्रयोग करता है।

■ 3. समझौते की प्रकृति (Nature of Agreement)

उरुग्वे दौर (Uruguay Round) में समझौते की बातचीत (Negotiations) में 2,631 दिन लगे, 120 से अधिक देशों ने भाग लिया और हजारों वाद-विवाद हुए। अन्तत: **15 अप्रैल**, 1994 को **माराकेश (मोराको)** में हस्ताक्षर हुए। इस समझौते के आधार पर WTO की स्थापना हुई है और इसने 1 जनवरी, 1995 से कार्य करना शुरू कर दिया है भारत द्वारा समझौते के संशोधन (Rectification) से उसे WTO के संस्थापक सदस्य (Founder-member) का सम्मान प्राप्त हुआ है। WTO 5 अरब डालर की वस्तुओं व सेवाओं की अन्तर्राष्ट्रीय अव्यवस्था को दूर करने का प्रयास करेगा। OECD के हाल ही के अध्ययन के अनुसार यदि आठवें दौर के प्रावधान पूर्ण रूप से लागू किए जाते हैं तो 2002 तक विश्व की आय 2,74,000 करोड़ डालर बढ़ जाती है (और 2005 तक यह 500 बिलियन डालर प्रतिवर्ष होती)। इसमें से 8,600 करोड़ डालर आय विकासशील देशों को प्राप्त होती। 6 दिसम्बर, 1993 को लोकसभा में दिए सरकारी वक्तव्य के अनुसार भारत के निर्यात 150 से 200 करोड़ डालर वार्षिक, सामान्य वृद्धि के साथ-साथ बढ़ जाएंगे।

■ 4. विश्व व्यापार संगठन के उद्देश्य (Objectives of WTO)

WTO के महत्त्वपूर्ण उद्देश्य निम्नलिखित हैं:

(i) WTO का प्राथमिक उद्देश्य समझौते के अन्तर्गत नई विश्व व्यापार प्रणाली को लागू करना है।

(ii) विश्व व्यापार को इस तरीके से बढ़ावा देना है कि प्रत्येक देश उससे लाभान्वित हो।

(iii) यह आश्वस्त होना कि अल्पविकसित देश अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के विस्तार से प्राप्त लाभ का, अपनी विकास की आवश्यकताओं के अनुसार, बेहतर सन्तुलन प्राप्त कर सकें।

(iv) खुली विश्व व्यापार प्रणाली की सभी रुकावटों को दूर करना तथा नई आर्थिक जागृति (Economic Renaissance) का मार्गदर्शन करना क्योंकि आर्थिक विकास की वृद्धि के लिए विश्व व्यापार एक प्रभावशाली यन्त्र है।

(v) उपभोक्ताओं को लाभान्वित करने तथा विश्व समन्वय की सहायता के लिए सभी व्यापारिक भागीदारों में प्रतियोगिता को बढ़ावा देना।

(vi) पर्यावरण रक्षा के साधनों का विस्तार आर्थिक विकास के विभिन्न स्तरों की आवश्यकताओं और समस्याओं के अनुरूप हो।

(vii) बहुपक्षीय संगठित व्यापार प्रणाली को विकसित करना।

(viii) व्यापारिक एवं पर्यावरण संबंधी नीतियों तथा पोषणीय विकास (Sustainable Development) से संबंध स्थापित करना।

(ix) प्रशुल्क और व्यापार की रुकावटों तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार संबंधों में पक्षपाती व्यवहार को हटाना।

(x) विश्व में रोज़गार के स्तर को बढ़ाने के विचार से उत्पादन के स्तर तथा उत्पादकता को बढ़ाना।

(xi) संसार के संसाधनों का अधिकतम मात्रा में विस्तार तथा उपयोग करना।

(xii) विश्व की जनसंख्या के जीवन स्तर में सुधार लाना और सदस्य राष्ट्रों के आर्थिक विकास की गति को तेज करना।

WTO के ये उद्देश्य गैट के उद्देश्यों से काफी सीमा तक मिलते-जुलते हैं। फिर भी WTO के ये उद्देश्य, निर्यात् प्रतिस्पर्धा की नीति, बाज़ार पहुँच (Market access) और स्वतन्त्र व्यापार को अधिक सख्ती से लागू करके, प्राप्त करने का प्रयास किया जाएगा।

■ 5. विश्व व्यापार संगठन का क्षेत्र (Scope of WTO)

गैट का सम्बन्ध उन वस्तुओं के व्यापार से था जो मुख्यत: प्राथमिक तैयार वस्तुएँ थीं। **सेवाओं में व्यापार पर सामान्य समझौता** (The General Agreement on Trade in Services - GATS) व्यापार पर पहला बहुपक्षीय समझौता है जिसका उद्देश्य सेवाओं में व्यापार का **प्रगतिशील उदारीकरण** (Progressive liberalisation) है। यह समझौता सभी सेवा क्षेत्रों तथा सभी रूपों में सेवा की आपूर्ति को अपने क्षेत्र में लेता है परन्तु गैट की तुलना में WTO का क्षेत्र अधिक विस्तृत है क्योंकि समझौते में यह उन क्षेत्रों को भी शामिल करता है जो वस्तुओं की उत्पादन प्रक्रिया में भी शामिल होते हैं। कृषि, जो कि एक विवादग्रस्त क्षेत्र है, को शामिल किया गया है और अन्य क्षेत्र, जिनमें वस्तुओं की उत्पादन प्रक्रिया आती है, को भी शामिल किया गया है। अन्य क्षेत्र निम्नलिखित हैं:

(1) उत्पाद से संबंधित व्यापार
(Trade in Goods)

(2) व्यापार से संबंधित बौद्धिक सम्पदा अधिकार,
(Trade Related Intellectual Property Rights - TRIPS)

(3) व्यापार से संबंधित निवेश उपाय,
(Trade Related Investment Measures - TRIMS)

(4) सेवाओं में व्यापार पर सामान्य समझौता,
(General Agreement on Trade in Services - GATS)

■ 6. विश्व व्यापार संगठन - कुछ समझौते (World Trade Organisation - Some Agreements)

■ 6.1 कृषि व्यापार (Trade in Agriculture)

WTO ने कृषि से संबंधित निम्न प्रावधान बनाए हैं:

(1) घरेलू अनुदानों में कटौती करना (Reduction in Domestic Subsidies): विश्व व्यापार संगठन ने कृषि क्षेत्र को दिये जाने वाले अनुदानों को कम करने के लिये, सदस्य देशों से अपील की। कृषि अनुदान दो प्रकार के होते हैं:

(a) **कृषि-आगतों** (Agriculture-inputs) जैसे बीज, खाद, कीटनाशक दवाइयों आदि पर दिये जाने वाले अनुदान।

(b) **कृषि-उत्पादों** (Agriculture-outputs) पर दिये गये अनुदान। इसके अन्तर्गत समर्थन मूल्य (Support-price) को निर्धारित किया जाता है। समर्थन मूल्य का अर्थ कृषि फसलों के लिये सरकार द्वारा न्यूनतम गारंटेड कीमत (Minimum Guaranteed Price) देने से है। यह मूल्य किसानों के हित को ध्यान में रखकर निर्धारित किया जाता है।

WTO समझौतों के अनुसार घरेलू बाजार में दिये जा रहे इन दोनों तरह के अनुदानों को कम किया जाना है। लेकिन विकासशील देश फसल के बाजार मूल्य के 10 प्रतिशत तक अनुदान दे सकते हैं।

(2) निर्यात-अनुदानों में कमी (Reduction in Export-Subsidies): कुछ देशों में कृषि-उत्पादों के निर्यात को बढ़ाने के लिये सरकार द्वारा निर्यात अनुदान दिये जा रहे हैं। WTO-समझौतों के अनुसार इन निर्यात-अनुदानों को धीरे-धीरे कम करना है। वर्ष 2001 में हुए दोहा समझौते (Doha-Agreement) के अनुसार, WTO ने सभी सदस्य देशों को यह निर्देश दिया कि सभी तरह के निर्यात-अनुदानों को समाप्त कर दिया जाए। वर्ष 2005 में WTO के मंत्रीस्तरीय सम्मेलन में यह तय किया गया, कि वर्ष 2013 तक कृषि क्षेत्र के निर्यात अनुदानों को समाप्त कर दिया जायेगा।

(3) बाजार-पहुँच में सुधार (Improvement in Market Access): अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में बाजार-पहुंच में सुधार लाने के लिये WTO ने निम्न सुझाव दिए:

(a) कृषि-उत्पादों के आयात पर टैरिफ में कटौती (Reduction in Tariff on Agricultural Products): WTO ने विभिन्न कृषि उत्पादों के आयात पर टैरिफ आयात करों की अधिकतम सीमा निर्धारित कर दी है। सदस्य देश इस सीमा से कम टैरिफ तो लगा सकते हैं, लेकिन अधिक नहीं।

(b) गैर-टैरिफ बाधाओं (Non-Tariff Barriers) को समाप्त करना अर्थात् विदेशी व्यापार में आने वाली रुकावटें जैसे आयात-निर्यात कोटा, आयात लाइसेंसिंग आदि को समाप्त करना।

(c) विकासशील व अति-अल्प-विकसित देशों को टैरिफ व गैर-टैरिफ बाधाओं को समाप्त करने के प्रावधान में कुछ रियायतें दी गयी है। भुगतान शेष प्रतिकूल होने पर ये देश खाद्यान्नों के आयात पर टैरिफ व गैर-टैरिफ प्रतिबंध लगा सकते हैं।

(4) सार्वजनिक वितरण व्यवस्था (Public Distribution System – PDS): निर्धन लोगों को खाद्यान्न-सुरक्षा के लिये उन्हें सार्वजनिक वितरण-प्रणाली के अन्तर्गत सरकार द्वारा कम कीमतों पर खाद्यान्न उपलब्ध करवाये जाते हैं। इस व्यवस्था के अन्तर्गत सरकार खाद्यान्नों पर अनुदान देकर, खाद्यान्नों को बाजार-मूल्य से कम कीमत पर उपलब्ध करवाती है। WTO समझौतों के अनुसार, विकसित देश इस व्यवस्था के अन्तर्गत दिए गए अनुदान को समाप्त कर देंगे। लेकिन विकासशील देश यह अनुदान दे सकते हैं।

■ 6.2 कपड़ा क्षेत्र में व्यापार (Trade in Textile and Clothing Sector)

पिछले बहुत से वर्षों से कपड़ा क्षेत्र में व्यापार के सम्बन्ध में बहु-फाइबर व्यवस्था (Multi-Fibre Arrangement-MFA) प्रचलित थी। इस व्यवस्था में कपड़े के आयात पर परिमाणात्मक प्रतिबंध (Quantitative Restrictions) लगाये जाते हैं। बहु-फाइवर व्यवस्था में विकसित देशों ने कपड़े के आयात पर परिमाणात्मक प्रतिबन्ध लगाये हुए थे। इससे अल्पविकसित देश कपड़े का निर्यात नहीं कर पा रहे थे। WTO समझौते में कपड़ा क्षेत्र में व्यापार से संबंधित निम्न नियम बनाए गए:

(1) MFA को हटाना (Elimination of MFA): WTO समझौते के कपड़े के आयात पर परिमाणात्मक प्रतिबन्धों को लगाए जाने की प्रणाली यानि बहु-फाइबर व्यवस्था (MFA) को समाप्त कर दिया गया। इस समझौते में यह तय किया गया कि अगले दस वर्षों में (1995 से 2004 तक की अवधि में) कपड़े के आयात पर लगे सभी तरह के आयात कोटा व परिमाणात्मक प्रतिबन्ध समाप्त कर दिए जाएंगे। अर्थात् 1 जनवरी, 2005 से कपड़े के व्यापार से सभी परिमाणात्मक प्रतिबन्ध समाप्त हो गए हैं।

(2) कपड़े के व्यापार पर आयात करों में कटौती (Reduction in Tariff on Textiles and Clothing): कपड़ा-उत्पाद के आयात पर लगे टैरिफ को निम्न तरह से कम किया गया:

(a) 1 जनवरी, 1995 तक 16 प्रतिशत आयात को टैरिफ मुक्त कर दिया गया।

(b) 1 जनवरी, 1998 तक अगले 17 प्रतिशत आयात को टैरिफ मुक्त कर दिया गया।

(c) 1 जनवरी, 2002 तक अगले 18 प्रतिशत आयात को टैरिफ मुक्त कर दिया गया।

(d) शेष 49 प्रतिशत आयात को 1 जनवरी, 2005 तक टैरिफ मुक्त कर दिया गया।

इस तरह कपड़े के आयात पर लगे टैरिफ को 1 जनवरी, 2005 तक पूरी तरह से समाप्त कर दिया गया है। इससे कपड़ा निर्यातक देशों, जैसे- भारत, चीन, कोरिया आदि को फायदा होगा।

(3) सुरक्षात्मक उपाय (Safeguard Mechanism): विकासशील देशों के हित की सुरक्षा के लिये W.T.O. समझौते में सुरक्षात्मक प्रावधान बनाये गये हैं। इनके अन्तर्गत विकासशील देश कपड़े के आयात पर अधिकतम तीन वर्षों तक गैर-टैरिफ प्रतिबन्ध लगा सकते हैं। लेकिन ऐसी छूट तभी दी जायेगी जब आयातों के कारण विकासशील देश के घरेलू उद्योग को नुकसान होने का भय हो।

■ 6.3 व्यापार से संबंधित बौद्धिक सम्पदा के अधिकार

(Trade Related Intellectual Property Rights – TRIPs)

ट्रिप्स (TRIPs) '**व्यापार से संबंधित बौद्धिक सम्पदा अधिकार पेटेंट** की व्यवस्था करती है। ट्रिप्स के अन्तर्गत पेटेन्ट का स्वामी निश्चित अवधि के लिए पेटेन्ट को अपने नाम पर पंजीकृत करवा लेता है। जो भी व्यक्ति इस पेटेन्ट को प्रयोग करना चाहे, उसे पेटेन्ट के स्वामी को रॉयल्टी का भुगतान करना होगा। अल्पविकसित देशों को पेटेन्ट व्यवस्था अपनाने के लिए दस वर्ष का समय दिया गया है। पेटेंट व्यवस्था को समझने के लिए यह जानना जरूरी है कि किन वस्तुओं को पेटेंट कराया जा सकता है। इस विषय में स्थिति यह है कि केवल उसका पेटेंट कराया जा सकता है जो नया हो, जिसमें आविष्कार की क्रिया शामिल हो और जिसका औद्योगिक इस्तेमाल किया जा सकता हो। लेकिन पौधों का पेटेन्ट नहीं हो सकता। गैट-प्रस्तावों में पौध-प्रजनकों (Plant-breeders) के हित को सुरक्षित रखने के लिये 'स्वे-जेनेरिस (Sui-Generis) व्यवस्था' अपनाने को कहा गया। इस व्यवस्था में पौध-प्रजनकों को ही नये पौधों की व्यापारिक-बिक्री (Commercial-Sale) का अधिकार होगा। इसके अन्तर्गत किसानों को अपनी तैयार फसल में से अगली बुवाई के लिये बीज रखने की अनुमति दी गयी है। अर्थात् किसान एक बार पेटेंट-बीजों को खरीद कर, अपनी उपज में से अगली बुवाई के लिये बीज रख सकता है। इस तरह किसानों को अगली बुवाई में प्रयोग किए गए बीजों पर कोई रॉयल्टी नहीं देनी होगी। लेकिन किसान फालतू बीजों को किसी ब्रांड नाम के अन्तर्गत बेच नहीं पायेंगे। बीजों व पौध की व्यापारिक-बिक्री की अनुमति केवल पौध-प्रजनकों (Plant-breeders) को ही दी गई है। इस व्यवस्था को 'Plant-Breeders Right' भी कहा जाता है। संरक्षित पौध का प्रयोग करने के लिये किसान इस पौध के संरक्षक को रॉयल्टी का भुगतान करेंगे। ट्रिप्स के अनुसार पेटेन्टों की अवधि निम्न तरह से निर्धारित की गई है:

(a) सामान्य पेटेन्ट - 20 वर्ष (b) कॉपीराइट - 50 वर्ष

(c) ट्रेड-मार्क - 7 वर्ष (d) औद्योगिक-डिजाइन - 10 वर्ष

(e) दवाइयां - 10 वर्ष

सार्वजनिक-हित के लिए कुछ बौद्धिक सम्पत्तियों जैसे- जीवन रक्षक दवाइयों को पेटेंट के प्रावधानों से मुक्त रखा गया है।

■ 6.4 व्यापार से संबंधित निवेश उपाय (Trade Related Investment Measures – TRIMs)

व्यापार से संबंधित निवेश उपाय के अनुसार विदेशी निवेश पर सभी प्रकार के प्रतिबंध हटा देने होंगे। प्रत्येक सदस्य देश को विदेशी निवेशकर्ताओं को वे सभी सुविधाएं देनी होंगी जो वे घरेलू निवेशकर्ताओं को दे रहे हैं। WTO समझौतों के अनुसार विदेशी पूंजी के निवेश को पूर्ण स्वतन्त्रता दी गई है। इससे विकासशील देशों में औद्योगिकीकरण प्रोत्साहित होगा, उन्नति और विकास की गति तीव्र होगी और भुगतान सन्तुलन की समस्या के समाधान में सहायता मिलेगी। ट्रिम्स की मुख्य विशेषताएं निम्न हैं:

(i) विदेशी निवेशकों को घरेलू निवेशकों के समान सुविधाएं व व्यवहार प्रदान करना।

(ii) बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा अर्जित लाभांश, ब्याज, रॉयल्टी को मूलभूत देशों में भेजने पर लगे प्रतिबन्ध हटाना।

(iii) कुछ दशाओं में विदेशी निवेशकों को 100 प्रतिशत समता अंशों में भागीदारी की अनुमति देना।

(iv) विदेशी-कम्पनियों को किसी भी क्षेत्र या स्थान में निवेश करने की अनुमति देना।

संक्षेप में, WTO में TRIMs के प्रावधान विदेशी निवेशकों को विश्व में किसी भी आर्थिक क्रिया में निवेश करने के अवसर देते हैं। समझौता यह आश्वासन देता है कि सभी इकाइयां चाहें देशी हो या विदेशी, के साथ बिना भेदभाव के व्यवहार किया जाएगा।

■ 6.5 सेवाओं में व्यापार पर सामान्य समझौता

(General Agreement on Trade in Services –GATS)

WTO में सेवाओं में व्यापार पर सामान्य समझौते - GATS के अधीन सेवाओं के विदेशी व्यापार से भी प्रतिबन्ध हटाने का समझौता किया गया है। GATS के अनुसार सेवा क्षेत्र जैसे बैंकिंग, बीमा, संचार, यातायात, पर्यटन आदि के सम्बन्ध में उदारवादी नीति अपनाई गयी है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को सेवाओं के क्षेत्र में छूट देनी होगी और उनके साथ वैसा ही व्यवहार करना होगा जैसा इन क्षेत्रों की स्वदेशी संस्थाओं के साथ किया जाता है। आजकल सेवा क्षेत्र का महत्त्व बहुत अधिक बढ़ गया है। उत्पादक क्रियाओं में 50 प्रतिशत से अधिक भाग सेवा क्षेत्र का है। GATS में केवल उन्हीं सेवाओं को मुक्त व्यापार करने के लिये चुना गया है जिनके लिए उच्च किस्म की तकनीक की आवश्यकता है, जैसे बैंकिंग, शिपिंग, यातायात, बीमा, टेलीकम्यूनिकेशन्स, सूचना-तकनीकी सेवाएं, बिजनेस आऊट-सोर्सिंग (कॉल सेन्टर), मीडिया सेवाएं आदि। विदेशी कम्पनियों को इन सेवाओं को प्रदान करने की पूर्ण स्वतन्त्रता दी जाएगी।

अत: अब WTO के सेवाओं के व्यापार के समझौते के बाद विदेशी सेवाओं और घरेलू सेवाओं के बीच कोई अन्तर नहीं किया जाएगा। कोई भी देश विदेशी सेवाओं के अन्तरप्रवाह पर रोक नहीं लगाएगा। इससे विकासशील देशों में अधिक विदेशी सेवाएं उपलब्ध हो सकेंगी और विकासशील देशों को विदेशी सेवाओं के उच्च तकनीकी ज्ञान का लाभ प्राप्त होगा।

■ 6.6 विवाद-निपटारा (Dispute Settlement)

WTO की विवाद निपटारा कार्यविधि तीव्र है और यह सदस्य देशों पर अनिवार्य रूप से लागू है। अर्थात् WTO में विवादों का निपटारा बिना अधिक विलम्ब के हो जाता है और इसके द्वारा लिये गये निर्णय सदस्य देशों को मानने पड़ते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से संबंधित विवादों का निपटारा करने के लिए WTO में विवाद निवारण समिति (Dispute Settlement Body – DSB) गठित की गई है। विवाद की अवस्था में सबसे पहले यह समिति विवाद के दोनों पक्षों से विवाद के बारे में विमर्श करती है। WTO का डायरेक्टर जनरल, विवाद को निपटाने के लिये मध्यस्थ का कार्य करता है। शिकायत करने वाला देश विवाद निवारण समिति (DSB) को विवाद निवारण के लिये एक पैनल (Panel) बनाने को कह सकता है। DSB द्वारा नियुक्त पैनल, द्वारा दिया गया निर्णय दोनों पक्षों को बिना किसी शर्त के स्वीकार करना होगा। यह पैनल 60 से 90 दिन के बीच अपनी रिपोर्ट DSB को सौंप देगा और DSB इस रिपोर्ट पर आधारित निर्णय 30 दिन के अन्दर लागू करेगा। विवाद निपटारा समझौते का उद्देश्य कम समय में विवादों का सन्तोषजनक हल ढूंढना है।

■ 6.7 निर्यात-अनुदानों पर समझौता (Agreement on Export-Subsidies)

WTO समझौते निर्यात अनुदानों पर रोक लगाते हैं। निर्यात-अनुदान स्वतन्त्र अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्द्धा में बाधा डालते हैं। अत: स्वतन्त्र अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिये निर्यात-अनुदानों को वर्ष 2013 तक समाप्त कर दिया जाएगा। लेकिन जिन विकासशील देशों की प्रति-व्यक्ति आय 1000 डालर से कम है या उस देश का विश्व-व्यापार में हिस्सा 3.25 प्रतिशत से कम है, तो ऐसे देशों को निर्यात अनुदान समाप्त करने के लिए 5 अतिरिक्त वर्ष दिए गए हैं। अर्थात वह देश निर्यातों पर 2018 तक अनुदान दे सकते हैं।

■ 6.8 राशिपातन की रोक के लिए समझौते (Anti-Dumping Agreements)

राशिपातन के अन्तर्गत एक देश दूसरे देश में उत्पादों को बहुत ही कम कीमत पर बेचकर उस देश के घरेलू उद्योगों को नुकसान पहुंचाता है। जब उस उत्पाद के घरेलू उद्योग कमजोर पड़ जाते हैं या बंद हो जाते हैं, तो उस उत्पाद की कीमत को बढ़ा दिया जाता है। WTO द्वारा, राशिपातन को रोकने के लिये, सदस्य-देशों को यह निर्देश दिया गया है कि वे राशिपातन द्वारा किसी देश के घरेलू उद्योग को नुकसान नहीं पहुंचायेंगे। यदि कोई देश दूसरे देश के घरेलू बाजार में राशिपातन करता है, तो इसके विरुद्ध WTO में शिकायत की जा सकती है। यदि डंप (Dump) किये गये आयात की मात्रा उस देश के घरेलू बाजार में बिकने वाले उस उत्पाद की कुल मात्रा का एक प्रतिशत से भी कम है, तो इस दशा में इस डंपिंग को नाममात्र ही माना जायेगा और WTO इसकी सुनवाई नहीं करेगा। वर्ष 2005 के छठे (Sixth) मंत्रीस्तरीय सम्मेलन में राशिपातन को रोकने के लिये बहुत से सुरक्षात्मक उपाय किये गये।

■ 6.9 सदस्य देशों की व्यापारिक नीतियों का पुनरावलोकन करना (Reviewing Trade Policies of Member Countries)

WTO के अन्तर्गत व्यापारिक नीति समीक्षा निकाय (Trade Policies Review Body – TPRB) बनाई गई है। यह समिति सदस्य देशों की आर्थिक व व्यापारिक नीतियों का निरीक्षण करती है। यह उन्हें आवश्यक सुधारों के बारे में सलाह भी देती है। इसके लिये सदस्य देश अपनी व्यापारिक व आर्थिक नीतियों संबंधी रिपोर्ट TPRB को नियमित रूप से भेजते हैं। TPRB चार मुख्य व्यापारिक देशों/समूहों (यूरोपियन समुदाय, U.S.A., जापान, कनाडा) का प्रत्येक दो वर्ष में, अगले 16 प्रमुख देशों/समूहों का प्रत्येक चार वर्ष में, तथा अन्य देशों का प्रत्येक 6 वर्ष के बाद, उनकी व्यापारिक नीतियों का निरीक्षण करता है। यह निकाय सदस्य देशों को भविष्य में बनाई जाने वाली आर्थिक नीतियों के निर्माण में मार्गदर्शन भी करती है।

■ 7. अल्पविकसित देशों के लिए उलझनें (Implications for Underdeveloped Countries)

संसार में कोई ही ऐसा देश होगा जो WTO के लाभ या हानि से संबंधित समझौते के प्रस्तावों से पूर्णत: सहमत हो। भारत में कोई भी मुद्दा (Issue) इतना विवादग्रस्त (Controversial) नहीं रहा है जितना कि समझौते के प्रस्ताव, इसने कई उलझनें, वाद-विवादों (Debates) और आन्दोलनों (Agitation) को जन्म दिया है।

गैट में विकासशील देशों का विशेष दर्जा (Status) WTO में भी पहचान प्राप्त करता रहेगा। WTO की प्रस्तावना कहती है कि **"यह सुनिश्चित करने के लिए सकारात्मक प्रयासों की आवश्यकता है कि विकासशील या अल्पविकसित देश, विशेषकर उनमें बहुत ही कम विकसित देश, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की वृद्धि में वह भाग प्राप्त करें जो उनकी आर्थिक विकास सम्बन्धी आवश्यकताओं के अनुरूप हों।"** बहुत ही कम विकसित (Least Developed) देशों को, जहां तक विशेष ध्यान का सम्बन्ध है, **अन्तिम अधिनियम** (Final Act) में बिल्कुल ही अलग (Single out) कर दिए गए हैं। कम विकसित देशों के पक्ष में ऐसे उपायों का प्रावधान किया गया है जिसमें "विकास के लिए तकनीकी सहायता, उनके उत्पादन को सशक्त बनाना तथा विविधीकरण करना और सेवाओं तथा व्यापार प्रोत्साहन के लिए निर्यात आधार का बनाना शामिल है।"अपने कार्यों के परिणामस्वरूप व्यापार तथा विकास पर कमेटी (जनरल काऊंसिल की सहायक) कम विकसित देशों के पक्ष में विशेष प्रावधानों की समय-समय अनुसार समीक्षा (Review) करेगी और उपयुक्त कार्यवाही के लिए WTO की सामान्य परिषद् (General council) को रिपोर्ट करेगी।

अल्पविकसित देशों से औद्योगिक देशों द्वारा सभी प्रकार के औद्योगिक पदार्थों पर औसत सीमा शुल्क (पेट्रोल को छोड़ कर) करीब 30 प्रतिशत कम हो जाएगा और कम हो जाने के बाद औसत सीमा शुल्क करीब 5 प्रतिशत हो जाएगा। जापान, जो विकासशील एशिया के राष्ट्रों से औद्योगिक निर्यातों का लगभग 25 प्रतिशत खरीदता है, इस बात के लिए राज़ी हो गया है कि वह इन देशों से खरीदी गई वस्तुओं पर सीमा-शुल्क 50 प्रतिशत कम कर देगा। इस प्रकार उपरोक्त समझौता सभी देशों में व्यापारियों के लिए वास्तविक लाभ (Gain) प्रदान करने की तलाश करेगा। विश्व भर में बाजार पहुँच, महत्त्वपूर्ण सीमा शुल्क कटौती और स्वैच्छिक निर्यात प्रतिबन्ध जैसे गैर-सीमा शुल्क उपायों की कटौती द्वारा सीमा-शुल्क बाध्यता (Tariff-binding) में वृद्धि से काफी सुधार आएगा (सीमा-शुल्क बाध्यता में एक विशेष स्तर से ऊपर, सिवाय समझौते की बातचीत के, सीमा-शुल्क में वृद्धि न करने वाला समझौता शामिल है) यह समझौता निस्संदेह दोनों अल्पविकसित तथा विकसित देशों के लिए लाभदायक होगा। हाल ही के अध्ययन यह भविष्यवाणी करते हैं कि WTO के प्रयासों के फलस्वरूप विश्व की वार्षिक आय 1/4 ट्रिलियन डालर बढ़ जाएगी। विश्व बैंक द्वारा किया गया एक अध्ययन बतलाता है कि विश्व में **आर्थिक गुरुत्व** (Economic Gravity) का केन्द्र अल्पविकसित देशों की ओर बदलता दिख रहा है और वह भी एशिया की ओर क्योंकि पूर्व एशियन अर्थव्यवस्थाएँ भौतिक तथा मानवीय पूंजी-गहन पदार्थों के उत्पादन में तुलनात्मक लाभ प्राप्त करती हैं। इन सब दृश्यों में व्यापार उदारीकरण का महत्त्व अत्यधिक (Overwhelming) है। परन्तु अन्तिम परिणाम WTO के प्रावधानों के लागू होने पर निर्भर करेगा।

■ 8. विश्व व्यापार संगठन तथा भारत (WTO and India)

भारत WTO के संस्थापक सदस्यों में से है। भारत का 90 प्रतिशत व्यापार उन देशों से होता है जो WTO के सदस्य हैं। भारत में इस विषय पर काफी वाद-विवाद रहा है कि भारत को WTO का सदस्य रहने से या डंकेल ड्राफ्ट पर हस्ताक्षर करने से लाभ होगा या हानि उठानी पड़ेगी। भारत के WTO के सदस्य बने रहने के पक्ष तथा विपक्ष में निम्नलिखित तर्क दिये जा सकते हैं:

■ 8.1 भारत को संभावित हानियां या विश्व व्यापार संगठन के विपक्ष में तर्क

(Probable Disadvantages to India or Arguments against WTO)

आलोचकों के अनुसार, WTO या गैट समझौतों के प्रावधानों पर होने वाले समझौते से केवल विकसित देशों को लाभ होगा तथा भारत जैसे अल्पविकसित देशों को इसके फलस्वरूप हानि उठानी पड़ेगी। देश में विदेशी कम्पनियों के प्रवेश से हमारी संस्कृति और परम्पराएं लुट जाएँगी और ईस्ट-इण्डिया कम्पनी की भांति देश को लूटा जाएगा।

साम्यवादी नेता **श्री सोमनाथ चटर्जी** के अनुसार, "**गैट या WTO का अन्तिम रूप भारत को फिर से विकसित देशों का उपनिवेश बनाने वाले दस्तावेज हैं। देश की भावी पीढ़ियां शासक दल को इस पर कभी माफ नहीं करेंगी।**" गैट या WTO के विपक्ष में निम्नलिखित तर्क दिए जाते हैं:

(1) कृषि क्षेत्र को हानि (Disadvantage to Agricultural Sector): कृषि को गैट समझौते या WTO में शामिल करने से यह आशंका व्यक्त की जा रही है कि इससे किसानों को कृषि सम्बन्धी तकनीक एवम् उन्नत बीजों के लिए बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का मोहताज हो जाना पड़ेगा। किसान फसल से उन्नत बीज का संचय नहीं कर सकेंगे और उन्हें हर बार बहुराष्ट्रीय कम्पनियों से कीटनाशक, खाद, कृषि यन्त्र इत्यादि ऊंची कीमतों पर खरीदने के लिए मजबूर होना पड़ेगा। खेती से संबंधित उन्नत तकनीक का लाभ बड़े कृषक ही उठा पायेंगे। इन सब का सम्मिलित प्रभाव यह होगा कि छोटे किसान जो संख्या में अधिक हैं, अपनी भूमि बेचने को विवश हो जायेंगे और ग्रामीण क्षेत्र में बेरोजगारी की समस्या और भी अधिक बढ़ जायेगी। पेड़-पौधों और जानवरों के जीवन रक्षक उत्पाद, पेटेंट के अन्तर्गत आ जाने से उन पर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का आधिपत्य हो जायेगा जिससे भारतीय कृषि को काफी हानि होगी। इस प्रस्ताव से कृषि पदार्थों के समर्थन मूल्यों की घोषणा और सार्वजनिक वितरण प्रणाली भी प्रभावित होगी।

(2) सब्सिडी में कमी (Reduction in Subsidy): आलोचकों के अनुसार, WTO या गैट समझौतों के बाद कृषि क्षेत्र को मिलने वाली सरकारी सहायता कम कर दी जायेगी। इसका निर्धन किसानों पर बुरा प्रभाव पड़ेगा।

(3) खाद्यान्नों का आयात (Import of Foodgrains): यह आशंका व्यक्त की गई है कि WTO या गैट समझौते के बाद देश में बड़ी मात्रा में विकसित देशों के **आधिक्य खाद्यान्नों** (Surplus Foodgrains) का आयात किया जायेगा। इसका देश के भुगतान सन्तुलन पर बुरा प्रभाव पड़ेगा।

(4) ब्रांड बीजों के प्रयोग पर प्रतिबंध (Restrictions on the use of Brand Seeds): WTO के अनुसार वैज्ञानिक एवं कृषक, ब्रांड बीजों का प्रयोग व्यापारिक उद्देश्य से नहीं कर सकेंगे, ऐसी स्थिति में विदेशी महंगे बीजों को बड़े किसान ही खरीद सकेंगे। उन्नत किस्म के बीजों का प्रयोग छोटे तथा सीमान्त कृषकों के लिए कठिन होगा। इससे आर्थिक विषमता की खाई बढ़ने की प्रबल सम्भावना है।

(5) प्राकृतिक पदार्थों के पेटेंट अधिकार (Patent Rights of Natural Products): यदि विदेशी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने पहल करके भारत की छोटी-छोटी प्राकृतिक उपजों पर पेटेंट अधिकार प्राप्त कर लिया तो भारतीय कृषि अर्थव्यवस्था के लिए घातक परिणाम हो सकते हैं। जैसे नीम से साबुन, टूथपेस्ट, दवाइयां आदि बनाये जा सकते हैं। ऐसे ही इसबगोल की विदेशों में बहुत मांग है। इनका विदेशी पेटेंट भारत के लिए महंगा साबित हो सकता है।

(6) पौधों की किस्म का संरक्षण (Plant Breeding Protection): WTO के अनुसार पौधों की किस्म का संरक्षण **स्वे-जेनेरिस कानून** द्वारा निर्धारित किया गया है। भारत के किसानों को नये तथा उत्तम किस्म के पौधों को प्राप्त करने के लिए काफी धन खर्च करना पड़ेगा तथा उनकी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों पर निर्भरता बढ़ जायेगी।

(7) ट्रिम्स के विपक्ष में तर्क (Arguments against TRIMS): WTO के अनुसार भारत विदेशी निवेश पर कोई नियन्त्रण नहीं लगा सकेगा। इसके फलस्वरूप बहुराष्ट्रीय कम्पनियां भारत में अपने उद्योग स्थापित करने के लिये पूर्ण रूप से स्वतंत्र होंगी। इसका घरेलू उद्योगों पर बुरा प्रभाव पड़ेगा। इससे स्वदेशी निवेशकर्ता को हानि होगी क्योंकि आर्थिक दृष्टि से स्वदेशी निवेशकर्ता बहुराष्ट्रीय कम्पनियों से प्रतियोगिता करने में असमर्थ होंगे। इसके फलस्वरूप एक ओर तो देश का उत्पादन हतोत्साहित होगा और बेरोजगारी फैलेगी वहीं दूसरी ओर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का आधिपत्य अर्थव्यवस्था पर बढ़ता जायेगा और मुनाफे में भी निरन्तर वृद्धि होती रहेगी जिससे हमारी अर्थव्यवस्था को हानि उठानी पड़ेगी।

(8) व्यापार से संबंधित बौद्धिक सम्पत्ति के अधिकार (Trade Related Intellectual Property Rights): भारत इस समय दवाओं, खाद्यान्न उत्पादों तथा रसायन के क्षेत्र के उत्पाद, पेटेंट को मान्यता नहीं देता। अधिकांश विकसित देश उत्पाद पेटेंट को मान्यता प्रदान करते हैं। समझौते की व्यवस्थाओं के लागू होने पर WTO के सभी सदस्य देशों को उत्पाद पेटेंट को मान्यता प्रदान करनी होगी। भारत को पेटेन्ट व्यवस्था करने के लिए दस वर्ष का समय दिया गया है। आलोचकों के अनुसार, नई व्यवस्था लागू होने के बाद देश में वर्तमान दवाओं के दाम अंधाधुंध बढ़ जायेंगे। बहुराष्ट्रीय कम्पनियां किसी भी पेटेन्ट के बारे में विश्व व्यापार संगठन के सम्मुख नकल करने का दावा पेश कर सकती हैं। नकल न करने को साबित करने में भारतीय अनुसंधानकर्ताओं को अनावश्यक उलझन में पड़ना होगा। उनका समय तथा धन नष्ट होगा। इस सन्दर्भ में यह भी विचारणीय है कि कोई भी विवाद, प्रस्तावित पक्षकार अपने देश में दर्ज करेगा। भारत में विवाद का न्यायीकरण सस्ता है तथा क्षतिपूर्ति की राशि भी कम रहेगी, जबकि अमेरिका आदि विकसित देशों में चलाये हुए विवादों में भारतीयों को अपना बचाव करने में काफी व्यय करना पड़ेगा। इस प्रकार दूसरे देशों का न्याय भारत की तुलना में महंगा होगा। पेटेंटस सम्बन्धी समझौते का भारत के दवाई उद्योग पर विशेष प्रभाव पड़ेगा। बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ कई दवाइयों की अधिक कीमत लेंगी।

(9) पौधे तथा जानवरों का विदेशी स्वामित्त्व (Foreign Ownership of Plants and Animals): पौधे और जानवरों को WTO में शामिल किया गया है और इन्हें विदेशी कम्पनियों द्वारा खरीदा जा सकता है तो यह भारतीय अर्थव्यवस्था के हित में नहीं होगा। जैसा कि इस सम्बन्ध में **मद्रास विकास संस्थान** के अध्यक्ष कृषि अर्थशास्त्री प्रोफेसर **मेलकम आदिशेष्ट्या** ने चिन्ता जताई है।

(10) ट्रिप्स के विपक्ष में तर्क (Arguments Against TRIPS): ट्रिप्स अर्थात् व्यापार से संबंधित बौद्धिक संपदा अधिकार के विपक्ष में यह तर्क दिया जाता है कि इसका देश के शोध तथा अनुसंधान कार्यों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। आलोचना करने वालों के अनुसार ट्रिप्स के अन्तर्गत बौद्धिक संपदा अधिकारों के मानक (Standard) सभी देशों के लिये एक समान रखना अनुचित है, क्योंकि यह मानक प्रत्येक देश के आर्थिक एवम् तकनीकी विकास के अनुसार भिन्न-भिन्न होता है। विकसित देशों में तकनीक का जो स्तर है, वह विकासशील देशों का कदापि नहीं हो सकता है। अत: भारत को इससे हानि होगी। शोध और अनुसंधान के कार्य के प्रभावित होने से हमारी कृषि पिछड़ जायेगी और चिकित्सा सेवायें आम आदमी की पहुँच से बाहर चली जायेंगी। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि दवाइयों के मूल्यों में 10 गुणा से 15 गुणा वृद्धि हो जायेगी।

(11) सेवा क्षेत्र को हानि (Disadvantages to Service Sector): WTO के अन्तर्गत यह आशंका व्यक्त की गई है कि इससे हमारे सेवाक्षेत्र के व्यापार को हानि होगी। हमारी बैंकिंग, बीमा, यातायात, शिक्षा तथा होटल आदि व्यवस्थायें बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की सेवाओं से प्रतियोगिता नहीं कर सकेगी। परिणामस्वरूप धीरे-धीरे इन सेवाओं के क्षेत्र में कार्यरत स्वदेशी संस्थायें बन्द हो जायेंगी और हमारी आर्थिक स्वतन्त्रता छिन जायेगी।

(12) पेटेन्टीकरण की हानि (Disadvantage of Patentisation): WTO में पेटेन्ट की अवधि 20 वर्ष करने की व्यवस्था के विरुद्ध सबसे ज्यादा आशंका व्यक्त की जा रही है क्योंकि इस लम्बी अवधि का भारतीय अर्थव्यवस्था, विशेषकर वैज्ञानिक और औषधि अनुसंधान पर अत्यंत प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। इसके फलस्वरूप अधिकतर वस्तुओं के मूल्यों में 6 गुणा से 20 गुणा तक की वृद्धि होने की संभावना है।

■ निष्कर्ष (Conclusion)

उपरोक्त आशंकाएं वर्तमान की ओर स्पष्ट संकेत करती हैं कि WTO के अच्छे परिणाम हमारे सामने नहीं आ रहे हैं, जैसा कि निम्नलिखित विवरण से स्पष्ट हो जाता है:

(i) भारतीय कृषि तथा उद्योग पर अन्तर्राष्ट्रीय दबाव स्पष्ट रूप से नजर आने लगा है। भारत की टेक्सटाइल वस्तुओं, चमड़े की वस्तुओं, चाय, कॉफी तथा अन्य वस्तुओं के निर्यात पर विकसित देशों द्वारा किसी न किसी प्रकार की बाधाएं खड़ी की जा रही हैं। विकासशील देशों में कम मजदूरी लागत (Low Wage Cost) पर बनी कम लागत वाली वस्तुओं को पर्यावरण संरक्षण के नाम पर विदेशी बाजारों में पहुंचने से रोकने का प्रयास किया जा रहा है।

(ii) विकसित देशों द्वारा पैदा की जाने वाली गैर-व्यापारिक बाधाओं का भारत सहित अन्य अल्पविकसित देशों द्वारा विरोध किया जा रहा है। अल्पविकसित देशों की सरकारें तथा कम्पनियां पर्यावरण मानक (Environmental Standards) हेतु लिए जाने वाले प्रमाण-पत्र ISO-14000 को गंभीरता से ले रही हैं।

(iii) सकल राष्ट्रीय आय (GDP) की वृद्धि दर 80 के दशक की तुलना में, कोई विशेष प्रगति नहीं हुई है।

(iv) कृषि विकास की दर बढ़ने की बजाए घटी है।

(v) विदेशी व्यापार का घाटा घटने की बजाए अत्यधिक तेजी से बढ़ा है।

(vi) सरकारी व्यय और ऋण में तीव्र गति से वृद्धि हुई है।

(vii) कृषकों तथा गैर-कृषकों के बीच आर्थिक विषमता तेजी से बढ़ी है।

(viii) निर्धनता रेखा से नीचे जीवन निर्वाह करने वालों की संख्या में कमी की बजाए वृद्धि हुई है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि विश्व व्यापार समझौता राष्ट्रीय अर्थतन्त्र को सुधारने में पूरी तरह विफल रहा है। सुधार के निर्णय, वे किसी व्यक्ति अथवा राष्ट्र के हों, सफल तभी होते हैं जब वे अपने विवेक से लिए जाते हैं। हमारे तथाकथित सुधार वे हैं जो विदेशी शक्तियों ने हमारे ऊपर **'विश्व व्यापार समझौते'** के नाम पर थोप दिए हैं। उनकी रुचि केवल इसमें है कि उनकी पूंजी और उत्पादों के भारत के द्वार खुल जाएं, उन्हें इसमें कोई रुचि नहीं है कि देश में जनसाधारण की दशा सुधरे, कृषि विकास गतिशील हो और पूरी अर्थव्यवस्था के लिए ठोस आधार बन सके।

निराशाजनक परिणामों का मूल कारण यह है कि हमारी प्रतिस्पर्धा करने की शक्ति अत्यंत कम है। अमेरिका जैसे आधुनिकतम जानकारियों और नवीनतम यन्त्रों से सुसज्जित देशों का मुकाबला ऐसे देश नहीं कर सकते जिनमें आधे निरक्षर हों तथा जो अभी भी पुराने एवं परम्परावादी यन्त्रों पर निर्भर हों। यह बात न केवल औद्योगिक क्षेत्र के लिए लागू है, बल्कि कृषि क्षेत्र पर भी लागू होती है।

समझौता वही सार्थक होता है जो लगभग बराबर शक्ति वालों के बीच होता है। वस्तुत: **अति सम्पन्न** और **अति विपन्न** के बीच न तो कोई न्यायसंगत समझौता संभव है, और न ही उस पर अमल किया जा सकता है। भारत का कुल निर्यात भी विश्व के निर्यात का केवल 0.6 प्रतिशत है। सोचने की बात है कि जिस देश की पूरे विश्व की आय में और विश्व व्यापार में योगदान क्रमश: 1.2 तथा 0.6 प्रतिशत ही हो, उसकी बात कौन सुनेगा।

■ 8.2 विश्व व्यापार संगठन से भारत को लाभ या WTO के पक्ष में तर्क

(Advantage of WTO For India Or Arguments in favour of WTO)

WTO के विरुद्ध उपरोक्त तर्क दिये गये हैं जबकि वास्तविकता कुछ और है। यदि ध्यान दें तो यह प्रतीत होता है कि विपक्ष के ये तर्क प्रस्ताव का एक पक्षीय मूल्यांकन प्रस्तुत करते हैं। कुछ तर्क तो बिल्कुल निराधार हैं। इस प्रस्ताव से भारत को प्राप्त होने वाले कुछ मुख्य लाभ अग्रलिखित होने की सम्भावना है:

(i) सामान्य लाभ (General Advantages): विश्व व्यापार संगठन (WTO) से भारत को निम्नलिखित सामान्य लाभ होने की सम्भावना है:

(1) विदेशी व्यापार में वृद्धि (Increase in Foreign Trade): WTO से भारत के विदेशी व्यापार को बहुत बढ़ावा मिला है। WTO का सदस्य होने से भारत के WTO के 149 अन्य सदस्य देशों के साथ व्यापारिक सम्बन्ध बन गये हैं। WTO समझौतों के अन्तर्गत विभिन्न देशों ने टैरिफ एवं गैर-टैरिफ रुकावटों को कम किया है, इससे भारत के लिये नए बाजार खुले हैं। अब भारत का वस्तुओं व सेवाओं दोनों का विदेशी व्यापार बहुत तेज गति से बढ़ रहा है।

(2) कृषि उत्पादों के निर्यात में वृद्धि (Increase in Exports of Agricultural Goods): विकसित देशों द्वारा कृषि पर दी जा रही सरकारी सहायता में कमी से विश्व की मंडियों में भारतीय खाद्यान्नों की मांग बढ़ेगी। इससे भारत को कृषि पदार्थों का निर्यात बढ़ाने का अवसर प्राप्त होगा। WTO ने सीमा शुल्क और आयात संबंधी प्रतिबन्धों में कमी करने की सिफारिश की है। इसके फलस्वरूप भारत का कृषि निर्यात काफी प्रोत्साहित होगा। वर्ष 2005-06 में भारतीय कृषि उत्पादों का निर्यात 10,549 मिलियन अमेरिकी डॉलर था और अगले पाँच वर्षों में इसके दुगुने होने की सम्भावना है।

(3) विदेशी निवेश के अन्तरप्रवाह में वृद्धि (Increase in Inflow of Foreign Investment): ट्रिम्स (TRIMs) के अनुसार, WTO के सभी सदस्य देश विदेशी निवेश के अन्तरप्रवाह पर लगी सभी रुकावटों को हटा देंगे। इससे भारत में भी विदेशी निवेश का अन्तरप्रवाह बढ़ा है, भारत में बहुत-सी बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ जैसे L.G., सैमसंग, सोनी आदि निवेश कर रही हैं। इससे भारतीय अर्थव्यवस्था में निवेश बढ़ा है। विकास की दर में तेजी आई है तथा रोजगार के अवसरों में वृद्धि हुई है।

(4) बेहतर तकनीक व अच्छी किस्म के उत्पादों का अन्तरप्रवाह (Inflow of Better Technology and Better Quality Products): विदेशी व्यापार और विदेशी निवेश के बढ़ने से बेहतर तकनीक का अंतरप्रवाह होता है और देश में अच्छी किस्म के उत्पादों की उपलब्धता होती है। इससे जन सामान्य के जीवन-स्तर में सुधार होता है तथा औद्योगिक विकास में प्रगति होती है।

(5) बहुपक्षीय व्यापार व्यवस्था के लाभ (Benefits of Multilateral Trade System): WTO के अन्तर्गत जब कोई व्यापारिक समझौता किया जाता है, तब यह समझौता एक सदस्य देश का उन सभी देशों के साथ होता है जिन्होंने इस व्यापारिक समझौते पर हस्ताक्षर किये हैं। WTO में किये गये व्यापारिक समझौते 150 देशों के बीच एक साथ लागू हो जाते हैं। बहुपक्षीय व्यापारिक समझौतों से विदेशी-व्यापार में बहुत वृद्धि हुई है। यदि विश्व व्यापार संगठन की बहुपक्षीय व्यापार व्यवस्था न होती, तो भारत को विभिन्न देशों के साथ पृथक-पृथक व्यापारिक समझौते करने पड़ते। तब भारत के इतने अधिक देशों के साथ व्यापारिक संबंध न होते।

(6) पेटेन्ट के कारण अनुसंधान को प्रोत्साहन (Promotion to Research Because of Patent): पेटेन्ट प्रणाली से अनुसंधानकर्ताओं को प्रोत्साहन मिलेगा। शोध कार्य करने पर यदि शोधकर्ता कोई नया उत्पाद ढूंढता है, तो वह इस नए उत्पाद के पेटेन्ट का पंजीकरण करवा सकता है। पेटेन्ट पर वह शोधकर्ता रॉयल्टी के रूप में बहुत आय अर्जित कर सकता है। इस तरह पेटेन्ट प्रणाली शोधकार्यों को बढ़ावा देती है।

(7) अच्छी किस्म के बीजों तथा पौधों की नई किस्मों के लाभ (Benefits of using Quality Seeds and New Varieties of Plants): भारतीय किसान एक बार रॉयल्टी का भुगतान करके अच्छी किस्म के बीजों तथा पौधों की नई किस्मों को प्राप्त कर सकते हैं। इससे कृषि उत्पादन व कृषि उत्पादकता में वृद्धि होगी तथा किसानों को लाभ होगा इसके अलावा किसान अपनी उपज का एक हिस्सा, आगे बोई जाने वाली फसलों में बीज के रूप में प्रयोग कर सकते हैं। इसके लिए उन्हें अलग से रॉयल्टी देने की आवश्यकता नहीं होगी, अर्थात् किसान अपनी फसल में से अगली फसलों के लिये बीज रखने के लिये स्वतंत्र हैं।

(8) राशिपातन पर प्रतिबंध (Restricts Dumping): यदि कोई देश अपने अतिरिक्त-उत्पादन को अन्य देश में बहुत ही कम कीमत पर बेचता है, ताकि उस देश के घरेलू उद्योगों को नष्ट किया जा सके, तो ऐसे देश के विरुद्ध विश्व व्यापार संगठन में शिकायत की जा सकती है। विश्व व्यापार संगठन की विवाद-निपटारा-समिति ऐसे देश के विरुद्ध कार्यवाही करती है। इस तरह विश्व व्यापार संगठन राशिपातन क्रियाओं को रोकने में योगदान देता है।

(ii) विशेष लाभ (Particular Advantages)

(1) भारत शुरू से ही बहुपक्षीय व्यापार वार्ताओं (Multilateral Trade Negotiations) के पक्ष में है क्योंकि इसके फलस्वरूप सभी सदस्य देशों को **सर्वाधिक अनुग्रह प्राप्त राष्ट्र** (Most Favoured Nation –MFN) के लाभ प्राप्त होते हैं। WTO का सदस्य बने रहने से भारत के 124 देशों के साथ बहुपक्षीय समझौते संभव हो जायेंगे। इन देशों के साथ द्विपक्षीय समझौते नहीं करने पड़ेंगे। इसके अलावा सीमा शुल्क की दरों में कमी और नई मंडियां खुलने से व्यापार में वृद्धि होती है। अनुमान है कि WTO समझौते के फलस्वरूप विश्व व्यापार में 2,000 से 3,000 करोड़ डालर की वृद्धि होगी। इसके फलस्वरूप भारत अपने व्यापार में 150 से 200 करोड़ डालर की वृद्धि कर सकता है। यह वृद्धि भारत के विदेशी व्यापार में सामान्य वृद्धि के अलावा है।

(2) सब्सिडी में कमी नहीं होगी (No Reduction in Subsidies): WTO के विपक्ष में यह तर्क गलत है कि इसके फलस्वरूप कृषि क्षेत्र को दी जाने वाली सब्सिडी में कमी होगी। यह प्रस्ताव सब्सिडी में कमी की बात तभी करता है जब उक्त सब्सिडी उत्पादन कीमत से 10 प्रतिशत से अधिक है। भारत में इस प्रकार की सब्सिडी 10 प्रतिशत से काफी कम है। वर्तमान समय में भारत सरकार द्वारा कृषि को दी जा रही सब्सिडी 3.5 प्रतिशत है। अतः यह मानना कि WTO के कारण कृषि को मिलने वाली सब्सिडी में कटौती की जायेगी निराधार है। वास्तविकता यह है कि इस प्रस्ताव को स्वीकार करने से सब्सिडी की मात्रा में वृद्धि की सम्भावना बढ़ जाती है। WTO के कारण भारत में गरीबों को खाद्य सुरक्षा प्रदान करने के लिये चलाई जा रही **सार्वजनिक वितरण प्रणाली** अथवा उचित दर की दुकानों पर बेचे जा रहे खाद्यान्नों को मिलने वाली सहायता में भी कोई कमी नहीं की जायेगी।

(3) खाद्यान्न के आयात में वृद्धि आवश्यक नहीं है (No Need of Increase in Imports of Foodgrains): WTO समझौते के कारण भारत के खाद्यान्न में वृद्धि करना आवश्यक नहीं है। इसका कारण यह है कि खाद्यान्न का आयात उन देशों के लिये आवश्यक नहीं होता जो भुगतान सन्तुलन की कठिनाइयों का सामना कर रहे हैं और जिन्होंने वस्तुओं के आयात पर मात्रा सम्बन्धी प्रतिबन्ध लगा रखे हैं। भारत भुगतान सन्तुलन की कठिनाइयों का सामना कर रहा है इसलिये भारत के लिए खाद्यान्न का आयात आवश्यक नहीं है। इसके अतिरिक्त भुगतान सन्तुलन की समस्या के कारण भारत आयात पर रोक लगाने या उसे नियंत्रित करने के लिए परिमाणात्मक अथवा अन्य प्रतिबन्ध लागू कर सकता है। यह भी सच है कि भारत में सदा भुगतान सन्तुलन की समस्या नहीं रहेगी। कृषि संबंधी समझौता 6 वर्ष के लिये है। परन्तु यदि भारत को खाद्यान्न का आयात भी करना पड़ा तो आयात शुल्क खाद्यान्न पर 100 प्रतिशत, खाद्य संसाधित (Processed Food) वस्तुओं पर 150 प्रतिशत तथा खाद्य तेलों पर 300 प्रतिशत तक के आस-पास होंगे। इतने अधिक आयात शुल्क की अदायगी के बाद देशी मंडियों के ऐसे अनाज के भाव बहुत अधिक हो जायेंगे। इसलिये देश में खाद्यान्न के आयात का सवाल ही पैदा नहीं होता।

(4) खाद्यान्न के निर्यात में वृद्धि (Increase in Exports of Foodgrains): विकसित देशों द्वारा कृषि पर दी जा रही सरकारी सहायता में कमी से विश्व की मंडियों में कुछ विशेष किस्म के भारतीय खाद्यान्नों की मांग बढ़ेगी। इससे भारत को कृषि पदार्थों का निर्यात बढ़ाने का अवसर प्राप्त होगा। WTO ने सीमा शुल्क और आयात संबंधी प्रतिबन्धों में कमी करने की सिफारिश की है। इसके फलस्वरूप भी भारत का कृषि निर्यात काफी प्रोत्साहित होगा। इस प्रस्ताव के कारण भारत के लिये जापान, दक्षिण कोरिया जैसे देशों में चावल का निर्यात सम्भव हो सकेगा।

(5) बीजों के प्रयोग की स्वतन्त्रता (Freedom to Use Seeds): WTO के भूतपूर्व महानिदेशक ने यह स्पष्ट कर दिया है कि किसान अपनी उपज में से बचाये गये बीजों से अगली फसल लेने को पूरी तरह स्वतंत्र होंगे। वे अन्य किसानों के साथ उन बीजों की अदला-बदली भी कर सकेंगे। अनुसंधानकर्त्ता एक सुरक्षित किस्म (Reserved Variety) से अन्य किस्म भी तैयार कर सकेंगे। उन्हें इसके लिये **मूल प्रजनक** (Original Breeder) की अनुमति लेनी पड़ेगी।

(6) बीजों को पेटेन्ट तथा स्वे-जेनेरिस व्यवस्था (Patent and *Sui Generis* System): सरकार ने स्पष्ट किया है कि भारत में बीजों को पेटेन्ट नहीं किये जाने की व्यवस्था है और न ही भविष्य में इस व्यवस्था को बदलने का कोई इरादा है। सरकार ने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि पौध किस्मों के संरक्षण (स्वे-जेनेरिस) के मामले में वह अपनी व्यवस्था अपनाएगी जिसके अन्तर्गत **पौध प्रजनकों** (Plant Breeders) के अधिकार के लिये प्रमाण पत्र दिये जायेंगे। भारत ने यह स्पष्ट कर दिया है कि इस प्रकार की संरक्षण व्यवस्था में

किसानों के अधिकारों और अनुसंधानकर्ताओं के अधिकारों की व्यवस्था होगी। पौध प्रजनकों के अधिकारों की व्यवस्था के माध्यम से किसानों को ज्यादा सुधरे हुए और परिष्कृत बीज (Purified Seeds) बाजार में मिल सकेंगे और इससे भारत के कृषि अनुसंधान संस्थानों को ही ज्यादा लाभ मिलेंगे। 'स्वे-जेनेरिस' व्यवस्था से कृषि क्षेत्र में अनुसंधान और विकास निवेश बढ़ेगा और अधिक उपज देने वाली बेहतर किस्मों का विकास होगा।

(7) **डंकल ड्राफ्ट तथा कृषि** (Dunkel Draft and Agriculture): WTO से पहले बने डंकल ड्राफ्ट का हमारे किसानों के हितों पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा बल्कि इससे कृषि वस्तुओं के निर्यात, देश में कृषि अनुसंधान और अधिक उपज देने वाली फसलों के विकास को बढ़ावा मिलेगा। हमारे कृषि विकास की सभी प्रमुख योजनायें समझौते की व्यवस्थाओं से बाहर हैं। WTO समझौते के लागू हो जाने के बाद हमें किसानों को दी जा रही सब्सिडी में कोई कमी नहीं करनी होगी। हमें किसी भी देश की कृषि उपज के लिये अपनी मंडियों के द्वार नहीं खोलने होंगे। किसानों को अपनी उपज का बीजों के रूप में स्वयं प्रयोग या उनकी अदला-बदली करने का पूरा अधिकार होगा। खाद्यान्नों की वसूली, खाद्य सुरक्षा के लिये खाद्यान्नों के भंडार बनाना और सार्वजनिक वितरण व्यवस्था को मिलने वाली सरकारी सहायता में कोई कमी नहीं आयेगी। डॉ. **मनमोहन सिंह** के अनुसार, **''WTO से खेती में विविधता आयेगी, भारत दूसरे देशों के साथ उन्नत कृषि और वैज्ञानिक जानकारी का जो आदान-प्रदान करेगा, उससे भारतीय किसानों का उत्पादन बेहतर होगा और कई गुणा बढ़ जायेगा, सरकार खेती के लिये सब्सिडी और संरक्षण बढ़ाएगी।''**

(8) **व्यापार संबंधित बौद्धिक संपदा अधिकार या ट्रिप्स** (Trade Related Intellectual Property Rights - $TRIP_S$): WTO के सदस्य बनने से पहले डंकेल प्रस्ताव में कापीराइट, ट्रेड मार्क, ट्रेड सीक्रेटस, औद्योगिक डिजाइन, विद्युत आपूर्ति, भौगोलिक संकेतक (Indicators) और पेटेन्टस को बौद्धिक संपदा अधिकार के अन्तर्गत रखा गया है। इस प्रस्ताव से भारत को कोई विशेष हानि होने वाली नहीं है क्योंकि केवल पेटेन्टस को छोड़ अन्य सभी क्षेत्रों में भारत की न्यायिक और प्रशासनिक पद्धति अंतर्राष्ट्रीय स्तर की है। पेटेन्टस विशेषकर दवाओं से संबंधित पेटेन्टस के संदर्भ में भारतीय कानून और डंकेल प्रस्ताव के पेटेन्टस प्रावधानों में अन्तर है। इसलिये यह संभव है कि दवाइयों की कीमत में थोड़ी वृद्धि हो जाये। लेकिन यहां पर ध्यान देने योग्य बात यह है कि भारत में कुल उपलब्ध दवाइयों में से केवल 10 प्रतिशत से 15 प्रतिशत दवाइयाँ ही पेटेन्ट सूची के अन्तर्गत हैं अतएव् अत्यधिक आशांकित होने की बात नहीं है। **विश्व स्वास्थ्य संगठन** (World Health Organisation) ने अनिवार्य और जीवन रक्षक दवाइयों को डंकल प्रस्ताव या WTO से बाहर रखा है। फिर हमारे देश में गैट पेटेन्टस दवाइयाँ सामान्य रूप से उपलब्ध हैं जो निश्चित ही पेटेन्ट सूची की दवाइयों की बढ़ती हुई कीमतों को नियंत्रित करने में सहायक होंगी। ऐसे भी WTO प्रस्ताव स्वीकार करने के बावजूद सन् 1998 तक तो दवाओं की नकल की जा सकती है। पेटेन्ट सम्बन्धी प्रावधान 10 वर्षों की अवधि के बाद से लागू होंगे। इस अवधि में यदि भारतीय वैज्ञानिकों को पर्याप्त सुविधा दी जाये तो वे नई और अच्छी दवाइयों का निर्माण कर सकते हैं।

(9) **व्यापार संबंधी निवेश की कार्यवाही** (Trade Related Investment Measures - TRIMs): व्यापार से संबंधित पूंजी निर्माण के अन्तर्गत WTO प्रस्ताव के जो प्रावधान हैं, उनसे भारत को लाभ होगा। ट्रिम्स जो विदेशी निवेशकर्ताओं को भी स्वदेशी निवेशकों के समान अधिकार दिलाता है, के संबंध में सरकार को यह पूर्ण अधिकार है कि व्यापार में पूंजी निवेश के लिये किस सीमा तक अर्थव्यवस्था का द्वार खोले और यह भी निर्णय लेने की उसे स्वतन्त्रता है कि किस प्रकार की विदेशी पूंजी का निवेश अपने देश में होने दें। भुगतान सन्तुलन की दृष्टि से निर्यात की बाध्यता के लिये कौन-सी शर्त पूरी की जाये, इसका निर्धारण भी स्वयं सरकार को ही करना है। इसलिये WTO के प्रस्तावों का देश की आर्थिक प्रभुसम्पन्नता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

(10) **सेवाएं** (Services): WTO प्रस्ताव के अन्तर्गत सेवा क्षेत्र के व्यापार को शामिल कर लेने से भारत जैसे विकासशील देशों को लाभ प्राप्त होगा। इस प्रस्ताव के अनुसार विकसित देश अल्पविकसित राष्ट्रों में अनेक व्यापारिक एवम् सेवा के प्रतिष्ठानों जैसे बैंक, बीमा, यातायात, होटल आदि खोलेंगे। इसके बदले में विकसित राष्ट्र भारत को अपनी वस्तुएं बेचने के लिये व्यापक बाजार उपलब्ध करायेंगे। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को देश में व्यापारिक प्रतिष्ठानों को खोलने की अनुमति देने से एक ओर तो सेवाओं का व्यापार व्यापक होगा। वहीं दूसरी ओर भारत के करोड़ों बेरोजगारों को रोजगार के व्यापक अवसर प्राप्त होंगे। उचित अवसर के अभाव में लोगों का विदेशों में पलायन भी घटेगा और ब्रेन ड्रेन की समस्या समाप्त हो जायेगी।

(11) **कपड़ा उद्योग** (Cloth and Textile Industry): WTO के प्रस्ताव से भारत के कपड़ा उद्योग को सबसे अधिक लाभ होगा। बहु-रेशा व्यवस्था (Multi-Fiber Arrangement) के अन्तर्गत हमारा कपड़ा और सिले-सिलाए कपड़ों के व्यापार पर कोटा संबंधी प्रतिबन्ध लागू थे। अब WTO प्रस्ताव के अनुसार ये सब प्रतिबन्ध अगले दस वर्षों में समाप्त कर दिये जायेंगे। कोटा निर्धारण प्रक्रिया समाप्त हो जाने से भारतीय वस्त्रों का निर्यात अमरीका और यूरोप के देशों को अधिक होने लगेगा। इससे वस्त्र उद्योग प्रोत्साहित होगा और इस क्षेत्र में रोजगार के नये अवसर पैदा होंगे।

निष्कर्ष (Conclusion): संक्षेप में, उपरोक्त तथ्यों के विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकलता है कि WTO के प्रस्ताव से भारत को लाभ अवश्य होगा। इस प्रस्ताव के सम्बन्ध में विरोध व आशंकाएं बढ़ा-चढ़ा कर व्यक्त की गई हैं। सी. एल. सिंगला (C.L.Singla) के अनुसार, "**स्वतन्त्र व्यापार, विदेशी निवेश, विदेशी तकनीक तथा विदेशी विचारों के प्रवेश के लिए WTO एक 'प्रवेश द्वार' है जो तृतीय विश्व के देशों के लिए उपलब्ध हो सकता है व होगा, इसकी उनके विकास तथा आत्म-निर्भरता के लिए आवश्यकता भी है और इसके द्वारा वहां के लोग नए विषयों से परिचित होंगे और वे वस्तुएं उन्हें सुलभता से उपलब्ध होंगी जिनकी प्राप्ति के बारे में उन्होंने पहले सोचा ही नहीं था।**" तीन संस्थाएं (Trinity) - अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व बैंक तथा विश्व व्यापार संगठन की भूमिका निर्धन राष्ट्रों के हितों की सहायता तथा सुरक्षा करेंगी।

WTO की स्थापना बेशक देर से हुई है परन्तु फिर भी नए अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार क्रम के निर्माण की ओर एक सही कदम है जिसकी अल्प-विकसित देशों के आर्थिक विकास तथा पारदर्शकता (Transparency) पर नए बल की आवश्यकता है और WTO को व्यापार समझौते के **निक्षेपागार** (depository) के रूप में अपनी भूमिका के निर्माण का प्रयत्न करना चाहिए। भारत, जो WTO के संस्थापक सदस्य के रूप में शामिल हुआ, इससे बाहर नहीं रह सकता और न ही शेष विश्व से अलग-थलग हो सकता है। यदि ऐसा किया जाता है तो यह भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए आत्महत्या के समान है। आवश्यकता इस बात की है कि भारत के हितों की रक्षा करते हुए WTO के प्रस्तावों का प्रयोग किया जाए और सरकार इस बात का निरन्तर प्रयास भी करती रहे।

■ WTO के विरुद्ध गलत धारणाएं (False Apprehensions against WTO)

WTO के विरुद्ध कुछ गलत धारणायें इस प्रकार हैं:

(a) **कृषि क्षेत्र में सब्सिडी/अनुदानों को कम करना अनिवार्य नहीं** (No Compulsory Reduction in Subsidies in Agriculture Sector): WTO के विपक्ष में यह तर्क गलत है कि इसके फलस्वरूप कृषि क्षेत्र को दी जाने वाली सब्सिडी में कमी होगी। यह प्रस्ताव सब्सिडी में कमी की बात तभी करता है जब उक्त सब्सिडी उत्पाद के बाजार मूल्य के 10 प्रतिशत से अधिक है। भारत में इस प्रकार की सब्सिडी 10 प्रतिशत से काफी कम है। वर्तमान समय में भारत सरकार द्वारा कृषि को दी जा रही सब्सिडी लगभग 3 प्रतिशत है। अत: यह मानना कि WTO के कारण कृषि क्षेत्र को मिलने वाली सब्सिडी में कटौती की जायेगी निराधार है।

(b) **सार्वजनिक वितरण प्रणाली को बदलने की आवश्यकता नहीं** (No Disturbance to Public Distribution System): WTO के आलोचकों का यह मत है कि WTO समझौतों में अनुदानों में अनिवार्य कटौती करने का समझौता हमारे सार्वजनिक वितरण प्रणाली पर बुरा प्रभाव डालेगा। लेकिन वास्तविकता में WTO समझौते सार्वजनिक वितरण प्रणाली के विरुद्ध नहीं है। इन समझौतों के बाद भी भारत निर्धनता रेखा के नीचे रह रहे लोगों को रियायती दरों पर आवश्यक खाद्य पूर्ति की उपलब्धता करा पाएगा। क्योंकि विश्व व्यापार संगठन विकासशील देशों को इसकी अनुमति देता है।

(c) **खाद्यान्नों के आयात में वृद्धि आवश्यक नहीं है** (No Need of Increase in Imports of Foodgrains): WTO समझौते के कारण भारत के खाद्यान्न के आयात में वृद्धि करना आवश्यक नहीं है। इसका कारण यह है कि खाद्यान्न का आयात उन देशों के लिये आवश्यक नहीं होगा जो भुगतान सन्तुलन की कठिनाइयों का सामना कर रहे हैं। भुगतान सन्तुलन की समस्या के कारण भारत आयात पर रोक लगाने या उसे नियंत्रित करने के लिए परिमाणात्मक अथवा अन्य प्रतिबन्ध लागू कर सकता है। अत: WTO के आलोचकों का यह मानना कि WTO समझौतों के बाद भारत के खाद्यान्नों के आयातों में वृद्धि हो जाएगी, निराधार है।

(d) **दवाइयों की कीमतों में वृद्धि का गलत डर** (False Fear of Increase in Prices of Medicines): ऐसा सोचा जा रहा है कि WTO समझौतों के अन्तर्गत दवाइयों के पेटेन्ट होने से भारत में दवाइयों की कीमतें बढ़ जायेगी। परन्तु भारत में कुल

उपलब्ध दवाइयों में से केवल 10 प्रतिशत से 15 प्रतिशत दवाइयां ही पेटेन्ट सूची में आती है, अत: अत्यधिक परेशान होने की बात नहीं है। **विश्व स्वास्थ्य संगठन** ने अनिवार्य और जीवन रक्षक दवाइयों को WTO से बाहर रखा है। फिर हमारे देश में गैर पेटेन्ट दवाइयां सामान्य रूप से उपलब्ध हैं जो निश्चित ही पेटेन्ट सूची की दवाइयों की बढ़ती हुई कीमतों को नियंत्रित करने में सहायक होंगी। इसके अलावा यदि भारतीय वैज्ञानिकों को पर्याप्त सुविधाएं दी जायें तो भारत में अच्छी दवाइयों का उत्पादन किया जा सकता है।

(e) **निर्यात-सब्सिडी में कटौती की बाध्यता नहीं** (No Compulsory Reduction in Export Subsidies): आलोचकों का यह मानना है कि WTO समझौतों से निर्यात अनुदान वर्ष 2013 तक बन्द हो जाएंगे। परन्तु WTO समझौते में वह विकासशील देश अपने निर्यातों पर 5 अतिरिक्त वर्षों के लिए अनुदान दे सकता है जिसकी प्रति व्यक्ति आय 1000 डालर से कम है तथा जिसका विश्व व्यापार में हिस्सा 3.25 प्रतिशत से कम है। हमारी प्रति व्यक्ति आय केवल 720 डॉलर है और हमारा कुल विश्व व्यापार में हिस्सा केवल 0.9 प्रतिशत है। अत: दोनों आधारों पर, भारत निर्यातों पर वर्ष 2018 तक निर्यात-सब्सिडी दे सकता है।

विश्व व्यापार संगठन के समझौतों के पक्ष व विपक्ष में दिए गए तर्कों के विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकलता है कि WTO के प्रस्ताव से भारत को *अवश्य ही लाभ होगा। इससे भारत की वस्तुओं व सेवाओं के विदेशी व्यापार को बढ़ावा मिलेगा। भारत में विदेशी* निवेश का अन्तरप्रवाह बढ़ेगा, विदेशी तकनीक व उन्नत बीजों के प्रयोग से आर्थिक विकास की गति बढ़ेगी। इसके अलावा विश्व के 150 देश इस संगठन के सदस्य हैं, अत: भारत इस संगठन की सदस्यता छोड़कर *अन्य देशों से अलग-थलग नहीं रह सकता।* आवश्यकता इस बात की है कि हमें अपनी कुशलता में सुधार करना है, ताकि WTO से होने वाले कुप्रभावों से बचा जा सके। इसके अलावा सभी समझौते एक ही देश के लिए लाभप्रद नहीं हो सकते। क्योंकि ये समझौते बहुत से सदस्य देशों के हितों को ध्यान में रखकर बनाए जाते हैं।

■ 9. विश्व व्यापार संगठन के प्रति भारत की वचनबद्धताओं की पूर्ति में प्रगति
(Progress in Fulfilment of India's Commitment to World Trade Organisation)

विश्व व्यापार संगठन के प्रति भारत की वचनबद्धताओं की पूर्ति में निम्नलिखित प्रगति हुई है:

(1) **टैरिफ व गैर-टैरिफ रुकावटों में कमी** (Reduction in Tariff and Non-tariff Barriers): विश्व व्यापार संगठन के प्रति वचनबद्धता की पूर्ति के लिए भारत सरकार ने टैरिफ (आयात-कर) को कम किया है, आयातों के लिए उदार-नीति को अपनाया है। *आयातों पर लगे परिमाणात्मक प्रतिबंधों को हटाया गया है। निर्यात-आयात नीति 2004-2009 में आयात पर लगी टैरिफ* व गैर-टैरिफ-बाधाओं को कम किया गया है तथा आयातों को उदार बना दिया गया है।

(2) **पेटेन्ट एक्ट में संशोधन** (Amendment in Patent Act): विश्व व्यापार संगठन का सदस्य होने के कारण भारत को विश्व व्यापार संगठन द्वारा निर्धारित प्रमापों के अनुसार पेटेन्ट एक्ट में आवश्यक संशोधन करने थे। ये संशोधन 1 जनवरी, 2005 तक किए जाने थे। इस वचनबद्धता की पूर्ति के लिए भारत सरकार ने पेटेन्ट एक्ट 2005 में संशोधन कर दिए हैं, तथा विश्व व्यापार संगठन की शर्तों को पूरा कर दिया है।

(3) **स्वे-जेनेरिस प्रणाली** (Sui-Generis System): WTO के अनुसार प्रत्येक देश पर कृषि प्लांटस की प्रजातियों के संबंध में **स्वे-जेनेरिस** (Sui-Generis) संरक्षण प्रदान करने का दायित्व है। भारत सरकार ने स्वे-जेनेरस प्रणाली को लागू करने का निर्णय लिया है। कृषि मंत्रालय द्वारा इस संबंध में एक कानून संसद में पेश किया गया है।

(4) **कॉपीराइट, ट्रेडमार्क तथा औद्योगिक डिज़ाइन** (Copyright, Trademarks and Industrial Design): WTO समझौतों के पालन हेतु भारत ने कॉपीराइट एक्ट 1957 का तथा ट्रेड व मर्केन्डाइज़ मार्क एक्ट, 1958 (Trade and Merchandise Marks Act, 1958) *का संशोधन 1999 में किया गया है। औद्योगिक डिज़ाइनों को संरक्षण देने के लिए एक कानून* बनाया गया है।

(5) **भौगोलिक निर्देशन** (Geographic Indication): भौगोलिक निर्देशन से अभिप्राय किसी उत्पाद के निर्माण स्थान के बारे में सही जानकारी देने से है। वर्ष 2005 में हुये WTO के छठे सम्मेलन में भारत के भौगोलिक निर्देशन के अन्तर्गत बासमती चावल, दार्जिलिंग चाय तथा 9 अन्य उत्पादों का दावा प्रस्तुत किया है। WTO ने सदस्य देशों को यह निर्देश दिया है कि वे अपने-अपने

देश में भौगोलिक-निर्देशन से संबंधित आवश्यक कानून बनायें जिससे उत्पाद पर गलत भौगोलिक स्थान लिखने की कुप्रथा पर रोक लग सके। जैसे- कुछ घरेलू निर्माता अपने उत्पाद पर 'Made in U.S.A.', 'Made in Japan' लिखकर उपभोक्ता को गुमराह करते हैं। इस संबंध में भारत ने दिसम्बर 1999 में भौगोलिक निर्देशन से संबंधित कानून बनाया है।

(6) **व्यापार सम्बन्धी निवेश उपाय** (Trade Related Investment Measures - TRIMs): WTO के ट्रिम्स के प्रावधानों को लागू करते हुए भारत सरकार ने बहुत से क्षेत्रों में 100 प्रतिशत विदेशी समता भागीदारी (100% Equity Participation) की अनुमति दे दी है। ये क्षेत्र इस प्रकार हैं- विज्ञापन, चाय, ऊर्जा, तेल-शोधन (Oil-Refinery), कोयला-प्रोसेसिंग-प्लांट, होटल, बन्दरगाह, हवाई-अड्डे, शहरों का विकास, दवाइयां आदि। इनसे विदेशी पूंजी के अन्तरप्रवाह को बढ़ावा मिला है। भारत में अब विदेशी निवेश को वे सभी सुविधाएं दी जाती हैं जो घरेलू निवेश को उपलब्ध हैं।

(7) **सेवाओं के व्यापार पर सामान्य समझौता** (General Agreement on Trade in Services): GATS के अंतर्गत, भारत सरकार ने विदेशी सेवा प्रदान करने वाले उपक्रमों को भारत में सेवाएं प्रदान करने की अनुमति दे दी है।

■ 10. WTO के मंत्रिस्तरीय सम्मेलन (Ministerial Conferences of WTO)

क्रम	अवधि (Period)	स्थान (Venue)	कार्य प्रणाली
1. प्रथम सम्मेलन	9 से 13 दिसम्बर, 1996	सिंगापुर	श्रम मानक निवेश व्यापार में अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा, टेक्सटाइल्स, सूचना तकनीक को शामिल किया गया।
2. दूसरा सम्मेलन	18 से 20 मई, 1998	जेनेवा	भारत द्वारा व्यापारिक गुटों के फैलाव का विरोध व विकासशील देशों के साथ भेदभाव बताया गया है।
3. तीसरा सम्मेलन	30, नवम्बर से 3 दिसम्बर, 1999	सिएटल (अमेरिका)	मानवाधिकार व पर्यावरण संरक्षण की अनदेखी का आरोप, श्रम मानक व गैर-व्यापारिक मदों के शामिल करने का विरोध
4. चौथा सम्मेलन	9, नवम्बर से 14 दिसम्बर, 2001	दोहा (कतर)	विकासशील देशों के विकास प्राथमिकताएं व्यापार, श्रम जैसे भिन्न मुद्दों को शामिल करने के साथ ही भारत के नेतृत्व में विकासशील देशों के हितों के लिए कार्य योजना पर सहमति तथा पर्यावरण बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली निवेश की बहुपक्षीय व्यवस्था, प्रतिस्पर्धा आदि पर असहमति।
5. पांचवां सम्मेलन	10, सितम्बर से 14 सितम्बर, 2003	कानकुन (मैक्सिको)	निवेश पर वार्तालाप, विकास प्रक्रिया के लिए विकसित देश, विकासशील देशों के लिए जो बहुपक्षीय व्यापार वार्ता (Multilateral Trade Negotiations) कर रहे हैं, उनके लाभों व हानियों की समीक्षा करना, निवेश पर बहुपक्षीय ढांचा, व्यापार तथा निवेश से संबंधित मुद्दे, खेती/कृषि व्यापार उदारीकरण, बाजार पहुंच (Market Access) के लिए विकासशील देशों द्वारा आयात कर कम करना, तथा कृषि से संबंधित अन्य मुद्दे।

			यह सम्मेलन बुरी तरह असफल व ध्वस्त (Collapse) हुआ। इसकी असफलता के पीछे दो प्रमुख दिग्गजों (Major Actors) अमेरिका और यूरोपीय संघ तथा विकासशील देशों की अधिक संख्या के बीच अविश्वास (Distrust) और दूसरी ओर प्रत्येक सदस्य द्वारा जिम्मेवारी को त्यागना (Abdication of Responsibility) था।
6. छठा सम्मेलन	13 दिसम्बर से 18 दिसम्बर 2005	हांगकांग (चीन)	* दोहा वर्क प्रोग्राम को पूर्णत: निष्पादित करने और वर्ष 2006 में वार्ताओं को समाप्त करने का संकल्प * 30 अप्रैल 2006 तक तथा कृषि और कृषि भिन्न बाजार पहुँच के सम्बन्ध में तौर-तरीके स्थापित करना। * वर्ष 2013 तक कृषि को निर्यात सब्सडियां समाप्त करना। * दूसरे दौर से सम्बन्धित सेवा प्रस्तावों को 31 जुलाई, 2006 तक प्रस्तुत करना। * सभी अल्पविकसित देशों के उत्पादों की विकसित देशों में शुल्क रहित, कोटामुक्त बाजार पहुँच। * कपास के सम्बन्ध में, विकसित देशों द्वारा वर्ष 2006 में निर्यात सब्सडियों को समाप्त कर दिया जाए।

■ 11. WTO के लिए वर्तमान मुद्दे *(The Present Issues for WTO)*

पुराने मुद्दों के साथ-साथ, WTO को कई नए मुद्दों का भी सामना करना है, इनमें से कुछ बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं। WTO द्वारा प्रकाश में लाए गए कुछ ऐसे प्रमुख मुद्दे हैं जो विश्व व्यापार की संरचना एवं भारत सहित विकासशील देशों के आर्थिक विकास के प्रतिमान (Pattern) को प्रभावित कर सकते हैं। इसके साथ लाखों लोगों का भविष्य जुड़ा हुआ है। भारत भी इससे अछूता नहीं रह सकता। नई संस्था के रूप में WTO के पास कानूनी अधिकार हैं और नई व्यापारिक व्यवस्था के नियमों एवं अनुशासन पद्धति को लागू करने का WTO सामर्थ्य रखता है। WTO द्वारा निर्मित प्रावधानों को भारत यदि स्वीकार न करता, तब भारत शेष विश्व से, विशेषकर अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में, अलग-थलग हो जाता।

■ तथ्य और मुद्दे (Facts and Issues)

(i) खेती व्यापार सुधार के लिए संयुक्त योजना (Joint Plan for Farm Trade Reform): यूरोपीय संघ (EU) तथा अमेरिका (US) उस खेती व्यापार सुधार की संयुक्त योजना के लिए राजी हो गए हैं जो कठिन वैश्वीय व्यापार वार्ताओं (Negotiations) में एक नई जान फूंक सकती है। यह योजना कृषि व्यापार **के तीन प्रमुख क्षेत्रों** को लेती है, वे हैं घरेलू समर्थन (Domestic Support), निर्यात अनुदान (Export Subsidies) और बाजार पहुँच (Market Access)। EU तथा US सबसे अधिक अनुदान (Subsidies) करने वाले हैं- वार्ताओं में यह सब से अधिक विवादग्रस्त मुद्दा है। अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में समान शर्तों पर प्रतिस्पर्द्धा करने में विकासशील देशों के मार्ग में यह एक बड़ी बाधा है।

(ii) कम कीमत औषधियों पर लेन-देन (Deal on Low-priced Drugs): WTO ने एक संधि पर हस्ताक्षर किए थे जिसके अन्तर्गत निर्धन देशों को यह अनुमति दी गई थी कि वे देश जो दवाइयों का निर्माण नहीं कर सकते वे अन्तर्राष्ट्रीय पेटेन्ट को निरस्त (Override) कर सकते हैं और एड्स, मलेरिया तथा टी.बी. जैसी भयंकर बीमारियों को खत्म करने के लिए कम-कीमत पर जैनरिक दवाइयों का आयात कर सकते हैं।

(iii) WTO समझौता योजना पर मतभेद उत्पन्न होना (Differences Emerge over WTO Compromise Plan): विश्व व्यापार को स्वतन्त्र करने तथा व्यापार वार्ता (Trade Negotiation) में बाधा को तोड़ने के लिए WTO के सदस्य देशों ने समझौता योजना पर जेनेवा में अपना मतभेद व विचार व्यक्त किया। समझौता योजना खेती, औद्योगिक उत्पादों तथा सेवाओं जैसे

क्षेत्रों पर अनुदान (Subsidy) तथा टैरिफ में कटौती के अन्तर को कम करने का प्रयास करती है। इस संदर्भ में चयन (Choice) स्पष्ट है कि या तो सदस्य देश बहुस्तरीय व्यापार व्यवस्था तथा विश्व अर्थव्यवस्था को मजबूत करना जारी रखें या सदस्य देश भूल व संघर्ष करें (Flounder) तथा वर्तमान अनिश्चितताओं को बढाएं।

(iv) व्यापार के उचित नियम (Fair Rules of Trade): सभी विकासशील देशों को व्यापार के उचित व निष्पक्ष पक्ष पर जोर देना चाहिए। EU तथा US की सब्सिडी तथा निर्यात साख की कटौती पर सदा विवाद रहा है। वे इस विवाद को दूर कर सकते थे और एक उस संयुक्त प्रस्ताव के साथ आ सकते थे जिससे उनके आपसी हित सुरक्षित बने रहते। विकासशील देशों ने उनके प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया। क्योंकि उनको विश्वास है कि सभी सदस्य देशों को सभी सब्सिडियों तथा समर्थन (Support) से बचने की आवश्यकता है। इन देशों का कहना है Amber Box, Green Box, Blue Box या Development Box की कोई आवश्यकता नहीं है। यह कदम विकासशील देशों के हित में ही है और इससे स्वतन्त्र तथा उचित व्यापार को प्रोत्साहन मिलेगा।

(v) निर्धन किसानों की दुर्दशा (Plight of Poor Farmers): भारत ने WTO मंत्रिस्तरीय बैठक में जोरदार तर्क दिया था कि निर्धन किसानों की दुर्दशा का प्रत्यक्ष संबंध उस आर्थिक सहायता (Subsidy) से है जो औद्योगिक देश अपने किसानों को देते हैं। विकसित देश में कृषि को संरक्षण विनिर्मित वस्तु (Manufactured Good) की तुलना में चार से सात गुणा अधिक है। इससे उच्च-लागत धनी देशों में अत्यधिक उत्पादन हुआ है, इसके फलस्वरूप विकासशील देशों को अपनी वस्तुओं के लिए अधिक प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ा है।

(vi) एकाकी WTO व्यवस्था (Single WTO System): US एकाकी WTO व्यवस्था चाहता है। US ने कानकुन एजेण्डा (Cancun Agenda) में विकसित तथा विकासशील देशों की अलग-अलग जरूरतों को देखते हुए द्वि-पक्षीय व्यवस्था (Two-tier System) का विरोध किया है। US चाहता है कि विश्व व्यापार निकाय द्वि-पक्षीय व्यवस्था में न जाए।

(vii) प्रसिद्ध खाद्य पदार्थ (Well-known Foods): EU 41 प्रसिद्ध खाद्य पदार्थों की सूची के लिए संरक्षण चाहता है, जिसके लिए वह भावी WTO सम्मेलन में वैश्वीय व्यापार-नाम संरक्षण (Global Trade-name Protection) की मांग करेगा। इस सूची में 22 प्रकार की शराब और स्पिरिट तथा 19 प्रकार के अन्य खाद्य पदार्थ हैं जो मौलिक रूप से EU देशों में उत्पादित किए जाते हैं।

(viii) निर्णायक मुद्दों पर कोई समझौता नहीं (No Agreement on Critical Issues): व्यापार तथा कृषि मन्त्रियों ने उस बैठक को खत्म तथा आच्छादित (Wrap up) किया जिसमें खेती सब्सिडी तथा अन्य गहन मुद्दों के लिए पाए जाने वाले व्यापक मतभेदों को कम करने का प्रयास नहीं किया गया। सदस्य देश केवल खेती पर ही विभाजित एवं अलोचशील नहीं रहे, बल्कि इस बात पर भी विभाजित रहे कि कृषि पदार्थों की अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में आनेवाली बाधाओं को कैसे कम किया जाए। US तथा आस्ट्रेलिया जैसे निर्यातक देश खेती सब्सिडी तथा आयात टैरिफ में बड़ी कटौती चाहते हैं। EU तथा जापान जैसे आयातक देश बहुत कम कटौती देना चाहते हैं क्योंकि वे अपने घरेलू बाजार को संरक्षण देना चाहते हैं।

(ix) सिंगापुर के मुद्दे (Singapore Issues): WTO महत्त्वपूर्ण समूह बैठक (Core Group Meeting) सिंगापुर मुद्दों पर ध्यान केन्द्रित करेगी। सिंगापुर मुद्दे हैं- व्यापार तथा निवेश, व्यापार तथा प्रतिस्पर्धा नीति, व्यापार सरलीकरण (Facilitation) और सरकारी खरीद में पारदर्शिता (Transparency)। सिंगापुर के सभी मुद्दों पर भारत बहुपक्षीय समझौते का विरोध करता रहा है। US चाहता था कि सभी मुद्दों को दोबारा से खोला जाए क्योंकि उसके अनुसार निवेश तथा प्रतिस्पर्धा नीति पर सभी सदस्य देश बहुपक्षीय समझौते पर वार्तालाप करने के लिए तैयार नहीं हो सकते।

■ निष्कर्ष (Conclusion)

WTO के विभिन्न मुद्दों और उनका विकासशील देशों पर पड़ने वाले प्रभाव का विश्लेषण करने के बाद यह निष्कर्ष आसानी से निकाला जा सकता है कि भारत सहित सभी विकासशील देशों का, दीर्घकाल में, WTO के कूटनीतिक प्रावधानों के प्रयोग से विकसित देशों द्वारा शोषण किए जाने की बहुत अधिक संभावना नजर आती है। वर्तमान परिस्थितियाँ यह माँग करती हैं कि भारत को सभी विकासशील देशों के साथ मिलकर ऐसी रणनीति सोचनी होगी कि जिससे ये सभी देश इस शोषण से अपने आपको बचा सकें। इसके लिए

आवश्यक है कि देश के अनुसंधानकर्ता, बुद्धिजीवी तथा आयोजकों के ज्ञान के स्तर में वृद्धि की जाए और उनमें अनुसंधान जागरूकता पैदा की जाए। वैश्वीय व्यापार वार्ता (Global Trade Negotiation) के लिए आवश्यक है कि सरकार अपनी आधारिक संरचना को मजबूत करे। समय की पुकार यह भी कहती है कि सरकार इस कार्य में अपने आपको पूरी तरह से ग्रस्त (Involve) करे कि जिससे WTO से संबंधित व्यापक नीति मुद्दे देश के लिए लाभकारी सिद्ध हो सकें। यह उम्मीद करना फिजूल है कि WTO से आनेवाले वर्षों में देश की अर्थव्यवस्था में सुधार होगा और विश्व व्यापार में सहभागिता बढ़ेगी। वस्तुस्थिति यह कहती है कि भारत सहित सभी विकासशील देशों को एक जुट होकर ऐसी रणनीति सोचनी होगी जिससे कि विकसित देश उन पर हावी न हो सकें और उनको कोई क्षति न पहुंचा सकें।

प्रश्न (QUESTIONS)

I. वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

सभी प्रश्न अनिवार्य हैं (Attempt all the Questions)

1. विश्व व्यापार संगठन (WTO) कब प्रचलन में आया (2 जनवरी, 1994; 1 जनवरी, 1995)
2. WTO का उद्देश्य है कि विश्व व्यापार को इस प्रकार से प्रोत्साहित किया जाए कि इससे लाभ हो (सभी देशों को, कुछ देशों को)
3. आलोचकों का यह विचार है कि WTO के प्रावधानों पर समझौतों से लाभ होगा (विकसित देशों को, विकासशील देशों को)
4. आलोचकों का विचार है कि WTO समझौतों की समाप्ति के बाद भारत में कृषि क्षेत्र के लिए आर्थिक सहायता (घटेगी, बढ़ेगी)
5. TRIPS के लागू होने से भारत में दवाइयों की कीमतों में वृद्धि होगी (तेजी से, धीरे से)
6. GATTS के फलस्वरूप भारत में सेवा क्षेत्र (प्रतिकूल रूप से प्रभावित होगा, प्रतिकूल रूप से प्रभावित नहीं होगा)
7. WTO के सदस्य होने के नाते भारत के लिए कौन-से समझौते में प्रवेश संभव होगा (बहुपक्षीय व्यापार समझौता, द्विपक्षीय व्यापार समझौता)
8. WTO का चौथा मंत्रिस्तरीय सम्मेलन दोहा में कब हुआ था? (नवम्बर, 2001 में, नवम्बर 2000 में)
9. WTO का तीसरा मंत्रिस्तरीय सम्मेलन कहां हुआ था? (सिएटल में, सिंगापुर में)
10. WTO का पांचवां मंत्रिस्तरीय सम्मेलन कहां हुआ था? (कानकुन में, न्यूयार्क में) (K.U. 2005)
11. विश्व व्यापार संगठन (WTO) कब प्रचलन में आया (1991, 1995)

उत्तर (Answer): (1) 1 जनवरी, 1995, (2) सभी देशों को, (3) विकसित देशों को, (4) घटेगी, (5) तेजी से, (6) प्रतिकूल रूप से प्रभावित होगा, (7) बहुपक्षीय व्यापार समझौता, (8) नवम्बर 2001 में, (9) सिएटल में, (10) कानकुन में, (11) 1995।

II. लघु/परिभाषा रूपी प्रश्न (Short/Definitional Type Questions)

1. WTO कब अस्तित्व में आया?
2. GATT तथा WTO में दो अन्तर बतलाएं। (K.U. 2005)
3. WTO के उद्देश्य लिखिए। (K.U. 2009)
4. WTO के दो कार्य बतलाएं।
5. विवाद निपटारा से क्या अभिप्राय है?
6. भारत को WTO से मिलने वाले दो लाभ बतलाएं।
7. WTO से भारत को उठाने वाली दो हानियां बतलाएं।
8. WTO का तीसरा मंत्रिस्तरीय सम्मेलन कहां हुआ था?
9. WTO का चौथा मंत्रिस्तरीय सम्मेलन कहां हुआ था?

10. क्या किसान WTO से लाभान्वित हुए हैं?

■ III. निबन्ध रूपी प्रश्न (Essay Type Questions)

1. What is meant by World Trade Organisation? Discuss its objectives and functions.
   विश्व व्यापार संगठन से क्या अभिप्राय है? इसके उद्देश्य तथा कार्यों की व्याख्या करें।
2. What is meant by World Trade Organisation? Why is it established? How will you justify the membership of it for India?
   विश्व व्यापार संगठन से आप क्या समझते हैं? इसका निर्माण किस उद्देश्य से हुआ? भारत के लिये इसकी सदस्यता को आप कैसे उचित ठहराएंगे?
3. What do you understand by WTO? Discuss its implications for developing countries with special reference to India.
   विश्व व्यापार संगठन से आप क्या समझते हैं? भारत के विशेष संदर्भ में इसके विकासशील देशों के लिए निहितार्थ की व्याख्या करें।
4. Critically examine the relevance of World Trade Organisation (W.T.O.) for Indian Economy.
   भारतीय अर्थव्यवस्था के लिये विश्व व्यापार संगठन (WTO) की उपयोगिता का अलोचनात्मक मूल्यांकन करें।
5. Discuss the present issues before the WTO.
   विश्व व्यापार संगठन (WTO) के आगे अब वर्तमान मुद्दों की व्याख्या करें।
6. What is the difference between GATT and WTO? Discuss the Structure of WTO. Justify its membership for India.
   GATT तथा WTO में क्या अंतर है? WTO के ढाँचे की व्याख्या कीजिए। भारत के लिए इसकी सदस्यता को कैसे उचित ठहराएंगे? (K.U. 2008)

26

भारत के विदेशी व्यापार में 1991 से परिवर्तन

(CHANGES IN INDIA'S FOREIGN TRADE SINCE 1991)

■ 1. विदेशी व्यापार का महत्त्व (The Importance of Foreign Trade)

प्रत्येक देश की अर्थव्यवस्था में विदेशी व्यापार के परिमाण, रचना तथा दिशा का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। **रोबर्टसन** के अनुसार, **"विदेशी व्यापार आर्थिक विकास का इंजन है।"** (Foreign Trade is an engine of economic growth. **– Robertson**) विदेशी व्यापार के कारण एक देश अपने प्राकृतिक साधनों का उचित उपयोग कर सकता है तथा अपन उत्पादन का निर्यात कर सकता है। विदेशों से तकनीकी प्राप्त कर सकता है। प्राकृतिक संकट के समय अनाज तथा अन्य वस्तुएं प्राप्त कर सकता है। विदेशी व्यापार के द्वारा औद्योगिकीकरण के लिये आवश्यक पूंजी, मशीनें तथा कच्चा माल प्राप्त किया जा सकता है। विदेशी व्यापार के उचित नियन्त्रण एवम् संचालन द्वारा रोज़गार, उत्पादन, कीमत, औद्योगिकीकरण तथा देश के आर्थिक विकास पर उचित प्रभाव डाला जा सकता है। विदेशी व्यापार द्वारा ही दूसरे देशों से आर्थिक विकास के लिये आवश्यक सहायता तथा अन्य उपकरण प्राप्त किये जा सकते हैं। यही कारण है कि भारत के योजना आयोग ने पंचवर्षीय योजनाओं में विदेशी व्यापार के विकास को बहुत अधिक महत्त्व दिया है।

■ 2. भारत का विदेशी व्यापार (Foreign Trade of India)

भारत सदियों से अनेक देशों से अनेक वस्तुओं का विदेशी व्यापार करता रहा है। भारत अनेक देशों से बहुत-सी वस्तुएं तथा सेवाएं मंगवाता अर्थात् **आयात** (Imports) करता है तथा बहुत-सी वस्तुएं तथा सेवाएं विभिन्न देशों को भेजता है अर्थात् **निर्यात** (Export) करता है।

समय के साथ-साथ भारत के विदेशी व्यापार का परिमाण बढ़ता जा रहा है। उसकी रचना विविधतापूर्ण हो गई है तथा दिशा में परिवर्तन हो रहा है। इस अध्याय में हम भारत के विदेशी व्यापार का अध्ययन निम्नलिखित भागों में सन् 1990 से करेंगे:

(1) **विदेशी व्यापार का परिमाण** (Volume of foreign Trade)

(2) **विदेशी व्यापार की रचना** (Composition of Foreign Trade)

(3) **विदेशी व्यापार की दिशा** (Directions of Foreign Trade)

(4) **तत्कालीन व्यापार नीति** (Recent Trade Policy)

■ विदेशी व्यापार का परिमाण (Volume of Foreign Trade)

विदेशी व्यापार के परिमाण से अभिप्राय आयात तथा निर्यात के मूल्य का कुल जोड़ है। सन् 1990 से अब तक की अवधि में इसमें काफी वृद्धि हुई है। सन् 1990 में भारत के विदेशी व्यापार का परिमाण 75,751 करोड़ रुपये था तथा 2009 में 15,89,540 करोड़ रुपये हो गया अर्थात् 18 वर्षों की अवधि (1991-2009) में विदेशी व्यापार के परिमाण (Volume) में लगभग 21 गुणा वृद्धि हुई है। इस अवधि में आयात 43,198 करोड़ रुपये से बढ़कर 10,03,947 करोड़ रुपये तथा निर्यात 32,553 करोड़ रुपये से बढ़कर 5,85,593 करोड़ रुपये के हो गये। तुलनात्मक सुविधा के लिए हम भारत के विदेशी व्यापार के परिमाण का अध्ययन दो भागों में करेंगे।

(1) आर्थिक सुधारों के आरम्भ अर्थात् सन् 1991 में विदेशी व्यापार का परिमाण (Volume of Foreign Trade on The Eve of Economic Reforms i.e. during 1991).

(2) आर्थिक सुधारों के बाद विदेशी व्यापार का परिमाण (Volume of Foreign Trade after Economic Reforms)

1991 में जब आर्थिक सुधार किये गये तथा इसके पश्चात् 2008-09 तक की अवधि अर्थात् आठवीं से दसवीं योजना की अवधि में विदेशी व्यापार के परिमाण (Volume) में जो परिवर्तन हुए हैं वे निम्नलिखित तालिका से ज्ञात हो जाते हैं:

तालिका 1. विदेशी व्यापार का परिमाण (Volume of Foreign Trade) (Rs. Crore)

अवधि (Period) (1)	आयात (Imports) (2)	निर्यात (Exports) (3)	व्यापार की मात्रा (Volume of Trade) (4) (2) + (3)
(i) आर्थिक सुधारों के समय - 1991 (At the Time of Economic Reforms - 1991)	43,198	32,553	75,751
(ii) आर्थिक सुधारों के बाद - 1992-2004 (After Economic Reforms - 1992-2004)	21,68,176	18,21,789	39,89,965
(iii) 2002-2003	2,97,206	2,55,137	5,52,343
(iv) 2003-2004	3,59,108	2,93,367	6,52,475
(v) 2004-05	5,01,065	3,75,340	8,76,405
(vi) 2005-06	6,60,409	4,56,418	11,16,827
(vii) 2006-07	8,40,506	5,71,779	14,12,285
(viii) 2007-08	6,93,445	4,54,997	11,48,442
(ix) 2008-09 (April to Dec.)	10,03,947	5,85,593	15,89,540

(Source : Economic Survey 2008, Statistical Outline of India-2008 and RBI Bulletin March 2009)

उपरोक्त तालिका से ज्ञात होता है कि (1) भारत का विदेशी व्यापार जो आर्थिक सुधारों की अवधि के समय सन् 1991 में 75,751 करोड़ रुपये था, वह वर्ष 2008-09 में अर्थात् सुधारों के 18 वर्ष बाद 15,89,540 करोड़ रुपये हो गया। इस प्रकार आर्थिक सुधारों के बाद सन् 2009 में विदेशी व्यापार में लगभग 21 गुना की वृद्धि हुई। (2) आर्थिक सुधारों के समय 1991 में निर्यात तथा आयात का कुल मूल्य क्रमश: 32,553 करोड़ रुपये तथा 43,198 करोड़ रुपये था परन्तु आर्थिक सुधारों के पश्चात् सन् 2008-09 में निर्यात बढ़कर 5,85,593 करोड़ रुपये तथा आयात बढ़कर 10,03,947 करोड़ रुपये हो गये। इस प्रकार वर्ष 1991 से अब तक की अवधि में निर्यात में 18 गुना की वृद्धि हुई तथा आयात में 23 गुना वृद्धि हुई। यह सरकार की उदारीकरण नीति तथा निर्यात प्रोत्साहन का परिणाम है। (3) आर्थिक सुधारों के पश्चात् 14 वर्षों की अवधि 1991-2009 तक व्यापार का परिमाण 15,89,540 करोड़ हो गया। इस प्रकार विदेशी व्यापार के परिमाण में कई गुना वृद्धि हुई। (4) आर्थिक सुधारों के आरम्भ में अर्थात् वर्ष 1991 में निर्यात की वृद्धि दर 26.5 प्रतिशत तथा आयात की वृद्धि दर 16.6 प्रतिशत प्रतिवर्ष थी। परन्तु आर्थिक सुधारों के पश्चात् 2008-09 में आयात की वृद्धि दर 38.3 प्रतिशत तथा निर्यात की वृद्धि दर 28.7 प्रतिशत हो गई। (5) उपरोक्त विवरण से सिद्ध होता है कि आर्थिक सुधारों के पश्चात् सन् 1991 की तुलना में विदेशी व्यापार के परिमाण अर्थात् आयात तथा निर्यात दोनों के मूल्य में काफी वृद्धि हुई है। इसका मुख्य कारण सरकार की उदारवादी आयात नीति, निर्यात प्रोत्साहन नीति तथा विश्व व्यापार संगठन (WTO) की सदस्यता थी।

■ भारत के विदेशी व्यापार की रचना (Composition of India's Foreign Trade)

विदेशी व्यापार की रचना का अर्थ है निर्यात तथा आयात की जाने वाली वस्तुओं तथा सेवाओं के प्रकार। 1991 के पश्चात् भारत के विदेशी व्यापार की रचना में कई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। भारत के निर्यात तथा आयात अधिक विविधतापूर्ण (Diversified) हो गये हैं। सन् 1991 के पश्चात् भारत के निर्यात व्यापार में परम्परागत वस्तुओं जैसे चाय, जूट, काफी, खनिज पदार्थों का प्रतिशत भाग कम हो गया है। इसके विपरीत रसायन, चमड़े, जवाहरात, इंजीनियरिंग वस्तुओं तथा कम्प्यूटर हार्डवेयर और सॉफ्टवेयर का प्रतिशत भाग काफी बढ़ गया है। इसी प्रकार आयात व्यापार में अनाज के स्थान पर पेट्रोल, मशीनरी, औद्योगिक कच्चे माल के मूल्य में वृद्धि हुई है।

सन् 1990 से अब तक भारत के विदेशी व्यापार की रचना अर्थात् प्रमुख आयातों और निर्यातों का अध्ययन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है:

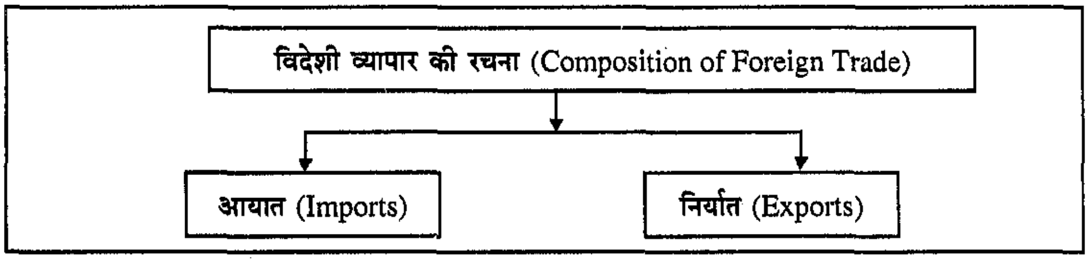

■ भारत के प्रमुख आयात (Chief Imports of India)

भारत के आयातों का वर्गीकरण मुख्य रूप से तीन भागों में किया जाता है। इनका मूल्य तथा कुल आयात में प्रतिशत निम्नलिखित तालिका से ज्ञात किया जा सकता है:

तालिका 2. मुख्य आयात तथा उनका प्रतिशत भाग (Principal Imports and their Percentage Share)

(करोड़ रू०)

वस्तुएं (Commodity)	1990-91		2006-07	
	आयात (Imports) (Rs. Crore)	कुल आयातों का प्रतिशत (Percentage of Total Imports)	आयात (Imports) (Rs. Crore)	कुल आयातों का प्रतिशत (Percentage of Total Imports)
1. Food Products and Allied Products	182	3.3	5,996	2.9
2. Raw Materials (Fuel) and Intermediate manufactures and others	**NA**	81.5	7,05,881	71.7
3. Capital Goods	10,466	15.21	1,29,631	15.4
Total Imports	43,198	100	8,40,506	100

(Source : Economic Survey, 2008)

उपरोक्त तालिका से ज्ञात होता है कि भारत के कुल आयात का 71.7 प्रतिशत भाग कच्चे माल तथा मध्यवर्ती तैयार माल अर्थात् पेट्रोल, काजू, कपास, ऊन, खाद, जवाहरात के पत्थरों आदि का है। भारत मुख्य रूप से निम्नलिखित वस्तुएं दूसरे देशों से मंगवाता है:

(1) मशीनरी (Machinery): भारत के औद्योगिकीकरण की आवश्यकताओं के कारण सबसे अधिक आयात मशीनों का किया जाता है। इन मशीनों का अमेरिका, इंग्लैंड, जर्मनी, जापान, रूस तथा पूर्वी यूरोप से आयात किया जाता है। सन् 1990-91 में 5,942 करोड़ रुपये की मशीनों का आयात किया गया परन्तु 2008-09 में 66,459 करोड़ रुपये की मशीनों का आयात किया गया।

(2) लोहा और इस्पात (Iron and Steel): भारत अभी तक लोहे एवं इस्पात के उत्पादन में आत्मनिर्भर नहीं हुआ है। अत: प्रतिवर्ष काफी इस्पात विदेशों से मंगवाना पड़ता है। यह अधिकतर जर्मनी, अमेरिका, इंग्लैंड, इटली तथा फ्रांस से मंगवाया जाता है। सन् 1990-91 में 2,113 करोड़ रुपये के लोहा तथा इस्पात का आयात किया गया परन्तु 2008-09 में 3,00,791 करोड़ रुपये का लोहा तथा इस्पात बाहर से मंगवाया गया।

(3) लौह-हीन धातुएँ तथा धातुओं का सामान (Non-Ferrous Metals and Metal Products): लौह-हीन धातुएँ जैसे जस्ता तांबा, टीन तथा इन धातुओं द्वारा निर्मित पदार्थ हमें दूसरे देशों से मंगवाने पड़ते हैं। ये धातुएं मलाया, ब्राजील, अमेरिका आदि देशों से मंगाई जाती हैं। सन् 1990-91 में 1,102 करोड़ रुपये का लौह-हीन वस्तुओं का आयात किया गया परन्तु 2008-09 में 1,04,155 करोड़ रुपये की लौह-हीन वस्तुएं मंगाई गई। भारत में अब इनका उत्पादन बढ़ गया है।

(4) पेट्रोल तथा पेट्रोल उत्पादन (Petroleum and Petroleum Products): भारत अपनी मांग का 35 प्रतिशत पेट्रोल विदेशों से मंगवाता है। यह पेट्रोल ईरान, कुवैत, ईराक तथा सउदी अरब से आता है। सन् 1990-91 में केवल 10,816 करोड़ रुपये के पेट्रोलियम का आयात किया गया। परन्तु 2008-09 में 3,20,025 करोड़ रुपये का पेट्रोल तथा अन्य पेट्रोल उत्पादन मंगवाया गया। बम्बई के समुद्र से पेट्रोल निकालने के कारण अब हमें बाहर से पेट्रोल का कम आयात करना पड़ता है। इस समय भी कुल निर्यात का 19 प्रतिशत पेट्रोल के आयात पर खर्च किया जाता है। 2007 में यह प्रतिशत लगभग 1.4 था।

(5) यातायात के साधन (Transport Equipment): देश के आर्थिक विकास के लिये यातायात के साधनों की बहुत आवश्यकता है। इसके लिये मोटरें, समुद्री जहाज, हवाई जहाज आदि दूसरे सामान विदेशों से मंगवाने पड़ते हैं। यातायात का सामान अधिकतर जर्मनी, इटली, जापान, अमेरिका तथा ब्रिटेन से आयात किया जाता है। सन् 1990-91 में 1,670 करोड़ रुपये के मूल्य का यातायात का सामान आयात किया गया। परन्तु 2008-09 में 21,583 करोड़ रुपये का यातायात का सामान विदेशों से आयात किया गया।

(6) रासायनिक खाद (Chemical Fertilizers): भारत में कृषि उत्पादन को विकसित करने के लिये खाद की बहुत आवश्यकता है। अत: रासायनिक खाद काफी मात्रा में आयात की जा रही है। यह खाद अमेरिका, रूस, E.E.C. के देशों से विशेष रूप से आयात की जाती है। सन् 1990-91 में 1,766 करोड़ रुपये के मूल्य की रासायनिक खाद का आयात किया गया परन्तु 2008-09 में 49,706 करोड़ रुपए की खाद का आयात किया गया।

(7) खाद्यान्न (Foodgrains): विभाजन के बाद 1980 से पहले खाद्यान्नों की देश में बहुत कमी हो गई थी। इस कमी को आयात द्वारा पूरा किया जाता था। खाद्यान्न अमेरिका, आस्ट्रेलिया, कनाडा, बर्मा तथा अर्जेन्टाइना से मंगवाए जाते हैं। सन् 1990-91 में 182 करोड़ रुपये के खाद्यान्न आयात किये गये। परन्तु हरित क्रान्ति के कारण खाद्यान्न के आयात बहुत कम हो गये। 2008-2009 में केवल 119 करोड़ रुपये के खाद्यान्न विदेशों से आयात किये गये।

(8) काजू (Cashewnuts): भारत में विदेशों से कच्चा काजू आयात किया गया है। इसे तैयार करके पुन: निर्यात कर दिया जाता है। वर्ष 1990-91 में केवल 134 करोड़ रुपये के काजू आयात किये गये। 2008-09 में काजू के आयात बढ़ कर 2,073 करोड़ रुपये के हो गये।

(9) कागज (Paper): भारत, स्वीडन, चेकोस्लोवाकिया आदि कई देशों से कागज का भी आयात करता है। 2008-09 में विदेशों से 5,822 करोड़ रुपये का कागज तथा कागज का तैयार माल आयात किया गया जबकि 1990-91 में केवल 456 करोड़ रुपये का कागज विदेशों से आयात किया गया था।

(10) रसायन (Chemicals): भारत में विदेशों से कई प्रकार के रसायन, दवाइयाँ, रंगने का सामान आदि मंगवाए जाते हैं। सन् 1990-91 में 2,289 करोड़ रुपये के रसायनों तथा 468 करोड़ रुपये की दवाइयों का आयात किया गया। परन्तु 2008-09 में 6,415 करोड़ रुपये के रसायनों तथा 5,376 करोड़ रुपये की दवाइयों का आयात किया गया।

(11) खाद्य तेल (Edible Oils): भारत में पिछले कुछ वर्षों में खाने के तेलों तथा तिलहन के आयात काफी बढ़ गये हैं। सन् 1990-91 में केवल 326 करोड़ रुपये के तेलों का आयात किया गया था। परन्तु 2008-09 में इनके आयात 9,344 करोड़ रुपये के हो गये। *तेलों का आयात अधिकतर यू॰ एस॰ ए॰, कनाडा आदि से किया जाता है।*

(12) हीरे-जवाहरात (Precious Stones): भारत में हीरे-जवाहरात के आयात पहले से काफी बढ़ गये हैं। इन्हें तराश कर दोबारा निर्यात कर दिया जाता है। ये अधिकतर बेल्जियम, दक्षिण अफ्रीका, अमेरिका आदि देशों से आते हैं। सन् 1990-91 में केवल 3,738 करोड़ रुपये के मूल्य के बिना तराशे हीरे जवाहरात आयात किये गये परन्तु 2008-09 में 23,621 करोड़ रुपये के हीरे जवाहरात आयात किये गये।

(13) प्लास्टिक (Plastic): भारत में प्लास्टिक के आयात भी काफी बढ़ गये हैं। प्लास्टिक अधिकतर यू॰ एस॰ ए॰, यू॰ के, जापान आदि देशों से मंगवाया जाता है। 1990-91 में केवल 1,095 करोड़ रुपये के प्लास्टिक का सामान आयात किया गया था। परन्तु 2008-09 में 12,305 करोड़ रुपये के प्लास्टिक का आयात किया गया।

■ मुख्य निर्यात (Main Exports)

स्वतन्त्रता के पश्चात् देश के निर्यात बढ़ाने के विशेष प्रयत्न किये गये हैं। सन् 1990-91 में केवल 32,553 करोड़ रुपये के मूल्य के निर्यात किये गये परन्तु 2008-09 में यह बढ़कर 5,85,593 करोड़ रुपये के हो गये। भारत के निर्यातों का पांच भागों में वर्गीकरण किया जाता है। *इनका कुल मूल्य तथा कुल निर्यात में प्रतिशत भाग तालिका 3. से स्पष्ट हो जाता है:*

तालिका 3. भारत के मुख्य निर्यात तथा उनका प्रतिशत भाग
(India's Principal Exports and their Percentage Share)

Commodity	1990-91		2006-2007	
	(Rs. Crores)	Percentage Share in Total Exports	(Rs. Crores)	Percentage Share in Total Exports
(1) Agricultural and Allied Products	6,317	19.4	58,959	10.3
(2) Ores &Minerals	1,497	4.6	27,311	4.8
(3) Manufactured Goods	23,736	72.9	3,92,447	68.6
(4) Mineral Fuels and other	948	2.9	85,542	15.0
(5) Others & Unclassified items	55	0.2	–	1.3
Total Exports	32,553	100.0	5,71,779	100.0

(Source: Statistical Outline of India and Economic Survey 2008)

तालिका 3 से ज्ञात होता है कि 1990-91 में भारत का कृषि पदार्थों के निर्यात में 19.4 प्रतिशत भाग था परन्तु अब यह कम होकर 2006-07 में 10.3 प्रतिशत रह गया। वर्ष 1990-91 में खनिज पदार्थों का कुल निर्यात में भाग 4.6 प्रतिशत था परन्तु अब यह बढ़कर 4.8 प्रतिशत रह गया। वर्ष 1990-91 में कुल निर्यात में तैयार माल का भाग 72.9 प्रतिशत था अब यह कम होकर 68.6 प्रतिशत हो गया। खनिज तेलों एवं अन्य का कुल निर्यात में भाग 2.9 प्रतिशत से बढ़कर 15.0 प्रतिशत हो गया। भारत के कुछ प्रमुख निर्यात इस प्रकार हैं:

(1) पटसन का सामान (Jute Products): भारत के निर्यातों में पटसन के सामान का स्थान सबसे पहला था। परन्तु 1990-91 में 298 करोड़ रुपये के जूट के समान का निर्यात किया गया यह भारत के लिये डालर कमाने का प्रमुख साधन था। पटसन की बनी वस्तुएं अधिकतर अमेरिका, अर्जेन्टीना आस्ट्रेलिया, रूस, ब्रिटेन तथा कनाडा को जाती है। 2008-09 में 1,027 करोड़ रुपये का पटसन का सामान निर्यात किया गया। पटसन के निर्यात कम होने का मुख्य कारण एक तो बंगला देश, थाईलैण्ड आदि देशों से प्रतियोगिता तथा दूसरा पटसन के सामान के स्थान पर अन्य वस्तुओं का प्रयोग किया जाना है।

(2) चाय (Tea): संसार में चाय का सबसे अधिक निर्यात भारत से किया जाता है। सन् 1990-91 में 1,070 करोड़ रुपये की चाय का निर्यात किया गया। परन्तु 2008-09 में 1,783 करोड़ रुपये की चाय विदेशों को भेजी गई है। चाय के प्रमुख ग्राहक ब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, मिस्र, ईराक तथा आस्ट्रेलिया है। आजकल रूस को भी काफी चाय भेजी जाती है। भारत से सर्वाधिक चाय ब्रिटेन को भेजी जाती है।

(3) सिले-सिलाए कपड़े (Readymade Garments):भारत से सिले-सिलाए कपड़ों (Cotton Apparel) का निर्यात बढ़ता जा रहा है। सन् 1990-91 में केवल 4,012 करोड़ रुपये के सिले-सिलाये कपड़े विदेशों को निर्यात किये गये थे। जबकि 2008-09 में 28,921 करोड़ रुपये के सिले-सिलाये कपड़े निर्यात किये गये। कपड़े के प्रमुख ग्राहक आस्ट्रेलिया, पूर्वी अफ्रीका, श्रीलंका, मलाया, बर्मा, सूडान, इण्डोनेशिया तथा यूरोपियन समुदाय के देश हैं।

(4) कच्ची धातुएं (Metallic Ores): भारत से कच्ची धातुएँ जैसे मैंगनीज़, अभ्रक तथा लोहा विदेशों को भेजा जाता है। ये धातुएं अमेरिका तथा जापान आदि देशों को भेजी जाती हैं। सन् 1990-91 में केवल 35 करोड़ रुपये के मूल्य के अभ्रक तथा 303 करोड़ रुपये के लोहे का निर्यात किया गया परन्तु 2008-09 में कुल मिलाकर 12,797 करोड़ रुपये मूल्य का लोहा तथा 77 करोड़ का अभ्रक विदेशों को भेजा गया।

(5) मसाले (Spices): भारत से कई प्रकार के मसाले जैसे काली मिर्च आदि का निर्यात किया जाता है। यह निर्यात इंग्लैंड, जर्मनी, इटली, फ्रांस, ईरान, सऊदी अरब, अमेरिका आदि देशों को किया जाता है। सन् 1990-91 में केवल 239 करोड़ रुपये के मसाले निर्यात किये गये परन्तु 2008-09 में 4,311 करोड़ रुपये के मसाले विदेशों को भेजे गये।

(6) चमड़ा तथा चमड़े का सामान (Leather and Leather Products): भारत से चमड़ा, जूते तथा चमड़े का दूसरा सामान विदेशों को भेजा जाता है। इसके मुख्य ग्राहक इंग्लैंड, संयुक्त राज्य अमेरिका, फ्रांस, जर्मनी व रूस आदि देश हैं। 2008-09 में 11,115 करोड़ रुपए के मूल्य का चमड़े का सामान विदेशों को भेजा गया। जबकि 1990-91 में केवल 2,600 करोड़ रुपये का चमड़े का सामान विदेशों को भेजा गया।

(7) खल (Oil Cakes): भारत से खल भी काफी मात्रा में निर्यात की जाती है। इसके मुख्य ग्राहक जापान, नीदरलैंड तथा ब्रिटेन आदि देश हैं। 2006-07 में 5,504 करोड़ रुपये की खल का निर्यात किया गया। जबकि 1990-91 में 609 करोड़ रुपये की खल का निर्यात किया गया था। खल के निर्यात में होने वाली वृद्धि वास्तव में मूल्य के बढ़ जाने के कारण है।

(8) तम्बाकू (Tobacco): भारत से तम्बाकू भी काफी निर्यात होता है। भारत से तम्बाकू मुख्य रूप से इंग्लैंड, जापान, रूस तथा नेपाल को निर्यात किया जाता है। 1990-91 में भारत से 871 लाख किलोग्राम तम्बाकू जिसकी कीमत 263 करोड़ रुपये थी, निर्यात किया गया। 2008-09 में तम्बाकू के निर्यात का मूल्य 2,231 करोड़ रुपये हो गया।

(9) कॉफी (Coffee): भारत से कॉफी का निर्यात बढ़ता जा रहा है। भारत से कॉफी यू॰ एस॰ ए॰, इटली तथा हंगरी आदि देशों को भेजी जाती है। 2008-09 में 1,632 करोड़ रुपये की कॉफी का निर्यात किया गया। जबकि 1990-91 में केवल 252 करोड़ रुपये की कॉफी का निर्यात किया गया था।

(10) हीरे-जवाहरात (Gems and Jewellery): भारत से किये जाने वाले निर्यातों में सबसे अधिक वृद्धि हीरे-जवाहरात के निर्यात में हुई है। भारत इनका कच्चा माल विदेशों से मंगवाता है तथा इन्हें तैयार करके विदेशों को ही निर्यात कर देता है। इसका कारण यह है कि भारत में श्रम बहुत सस्ता है। वर्ष 1990-91 में केवल 5,247 करोड़ रुपये के हीरे-जवाहरात निर्यात किये गये। भारत से हांगकांग, यू॰ एस॰ ए॰, बेल्जियम आदि देशों को कई प्रकार के जवाहरात निर्यात किये जाते हैं। वर्ष 2008-09 में 63,312 करोड़ रुपये के हीरे-जवाहरात निर्यात किये गये।

(11) काजू (Cashew Kernels): काजू के निर्यात से भारत को काफी लाभ प्राप्त होता है। भारत से काजू, रूस, अमेरिका तथा जापान आदि देशों को भेजे जाते हैं। सन् 1990-91 में 447 करोड़ रुपये के काजू निर्यात किये गये। 2008-09 में 2,121 करोड़ रुपये के काजू निर्यात किये गये।

(12) इन्जीनियरिंग का सामान (Engineering Goods): भारत से इन्जीनियरिंग का सामान श्रीलंका, सऊदी अरब, मिश्र, बर्मा, मलेशिया को भेजा जाता है। वर्ष 1990-91 में केवल 3,872 करोड़ रुपये का इन्जीनियरिंग का सामान विदेशों को निर्यात किया गया। परन्तु 2008-09 में 1,40,115 करोड़ रुपये का सामान निर्यात किया गया।

(13) हस्तकला (Handicrafts): भारत के कुटीर उद्योगों द्वारा निर्मित हस्तकला का सामान जैसे-हाथी दांत की वस्तुएं विदेशों को निर्यात की जाती हैं। ये वस्तुएं अमेरिका, जर्मनी, सऊदी अरब तथा मध्य पूर्व के देशों में भी जाती हैं। सन् 1990-91 में 6,167 करोड़ रुपये मूल्य का हस्तकला का सामान निर्यात किया गया। जबकि 2008-09 में 940 करोड़ रुपये के मूल्य का हस्तकला का सामान निर्यात किया गया।

(14) कम्प्यूटर तथा सॉफ्टवेयर (Computer and Software): भारत से 1991 के बाद से कम्प्यूटर हार्डवेयर तथा सॉफ्टवेयर के निर्यात काफी किये जाने लगे। ये निर्यात अमेरिका, जर्मनी, यू. के, जापान, कनाडा, सिंगापुर, जैसे विकसित देशों तथा कई अल्पविकसित देशों जैसे सऊदी अरब, कुवैत, श्रीलंका आदि को किये गये। 1990-91 के 256 करोड़ रुपये की तुलना में 2006-07 में 1,41,800 करोड़ रुपये के निर्यात किये गये। भारत के निर्यात व्यापार में इन निर्यातों का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है।

■ 3. भारत के विदेशी व्यापार की रचना में 1991 के बाद के परिवर्तन
(Change in the Composition of Foreign Trade of India after 1991)

सन् 1991 के पश्चात् भारत के निर्यात तथा आयातों की रचना में निम्नलिखित परिवर्तन हुए हैं:

■ (1) निर्यात व्यापार में परिवर्तन (Change in Exports)

सन् 1991 से भारत के निर्यात व्यापार की रचना में होने वाले महत्त्वपूर्ण परिवर्तन अग्रलिखित तालिका 4 से ज्ञात हो जाते हैं:

तालिका 4. भारत के निर्यातों की रचना में परिवर्तन (Change in Composition of India's Exports)

(करोड़ रुपये)

वस्तु (Commodity)	1991	2008-09
1. कृषि पदार्थ (Agricultural Products)		
(i) चाय (Tea)	1,070	1,783
(ii) तैयार खाद्य (संसाधित खाद्य) पदार्थ (Processed Food)	213	N.A.
(iii) कॉफी (Coffee)	252	1,632
(iv) चावल (Rice)	462	7,701
(v) मछली (Fish)	960	N.A.
(vi) फल, सब्जी तथा दालें (Fruits, Vegetables and Pulses)	216	N.A.
2. तैयार माल (Manufactured Goods)		
(i) चीनी (Sugar)	38	4,875
(ii) कपड़ा तथा सूत (Cotton Cloth and Yarn)	2,100	13,420
(iii) सिले-सिलाये कपड़े (Readymade Garments)	4,012	28,921
(iv) जूट का सामान (Jute)	298	1,027
(v) हस्तकला (Handicrafts)	6,167	940
(vi) हीरे- जवाहरात (Gems and Jewellery)	5,247	63,312
(vii) इन्जीनियरिंग की वस्तुएँ (Engineering Goods)	3,872	1,40,115
(viii) काजू (Kernels)	447	2,121
(ix) चमड़ा तथा चमड़े का सामान (Leather and Leather Products)	2,600	11,115
(x) रसायन (Chemicals)	2,111	46,965
3. नई अर्थव्यवस्था (New Economy)		
कम्प्यूटर सॉफ्टवेयर (Computer Software)	256	N.A.

(Source : Economic Survey, Statistical Outline of India 2007-08 and RBI Bulletin March 2009))

उपरोक्त तालिका से भारत के निर्यातों की रचना में होने वाले निम्नलिखित परिवर्तन स्पष्ट हो जाते हैं:

(1) कृषि पदार्थों के निर्यातों के प्रतिशत में कमी (Decline in Percentage of Exports of Agricultural Products): स्वतन्त्रता के पश्चात कृषि पदार्थों के निर्यातों का कुल निर्यातों में प्रतिशत भाग कम होता जा रहा है। उदाहरण के लिये 1990-91 में कृषि तथा सम्बन्धित पदार्थों के निर्यातों का कुल निर्यात में 21 प्रतिशत भाग था परन्तु 2006-07 में यह कम होकर 10.3 प्रतिशत रह गया। इसका मुख्य कारण यह है कि देश की जनसंख्या में बहुत अधिक वृद्धि हो जाने के कारण कृषि पदार्थों की घरेलू मांग काफी अधिक बढ़ गई है। इसके फलस्वरूप कृषि पदार्थ निर्यात के लिये उपलब्ध नहीं हो पाते।

(2) परम्परागत वस्तुओं के निर्यातों के प्रतिशत में कमी (Decline in Percentage of Exports of Conventional Items): भारत अधिकतर परम्परागत वस्तुओं जैसे-चाय, जूट, खाद्यान्न आदि कृषि पदार्थों तथा खनिज पदार्थों का निर्यात करता था। 1990-91 में इन परम्परागत वस्तुओं का कुल निर्यात में 31 प्रतिशत भाग था। परन्तु 2006-07 में इनका भाग कम

होकर केवल 13 प्रतिशत रह गया। इसका मुख्य कारण इन पदार्थों की घरेलू मांग में वृद्धि हो जाने के कारण निर्यात के लिये कम मात्रा का उपलब्ध होना है। देश के औद्योगिकीकरण में वृद्धि हो जाने के कारण कच्चे माल की देश में ही खपत बढ़ गई है।

(3) तैयार माल के निर्यातों में प्रतिशत वृद्धि (Increase in Percentage of Exports of Manufactured Goods): स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत के निर्यातों में तैयार माल के प्रतिशत में काफी अधिक वृद्धि हुई है। उदाहरण के लिये 1990-91 में भारत के कुल निर्यातों में तैयार माल का भाग 72.9 प्रतिशत था परन्तु 2006-07 में यह बढ़कर 68.6 प्रतिशत हो गया।

(4) जवाहरात तथा सिले-सिलाये कपड़ों के निर्यात का बढ़ता हुआ महत्त्व (Increasing Importance of Exports of Gems and Readymade Garments): भारत के कुल निर्यात में जहां पहले जूट तथा चाय का सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान था वहां अब उनका स्थान जवाहरात तथा सिले-सिलाये कपड़ों के निर्यात ने ले लिया है। भारत के कुल निर्यात में जवाहरात का स्थान दूसरा तथा सिले-सिलाये कपड़ों का तीसरा स्थान है। 2006-07 में जवाहरात तथा सिले-सिलाए कपड़ों का प्रतिशत क्रमशः 12.6 प्रतिशत तथा 8.3 प्रतिशत था।

(5) कृषि निर्यात की संरचना में परिवर्तन (Change in Composition of Agricultural Exports): कृषि निर्यातों की संरचना में काफी परिवर्तन आया है। 1990-91 में कॉफी, तम्बाकू तथा मछलियों के निर्यात क्रमशः 252 करोड़ रु॰, 263 करोड़ रु॰ तथा 960 करोड़ रु॰ थे। परन्तु 2006-07 में इनके निर्यात् बढ़कर क्रमशः 1,969 करोड़ रु॰, 1,685 करोड़ रु॰ तथा 8,001 करोड़ रु॰ हो गये। इस प्रकार मछलियों तथा उनसे बने पदार्थों के निर्यात में बहुत अधिक वृद्धि हुई। 1990-91 में चावल का निर्यात 462 करोड़ रुपये था परन्तु 2006-07 में 6,108 करोड़ रुपये मूल्य के चावल का निर्यात किया गया। यह वास्तव में **नीली क्रान्ति** तथा **हरित क्रान्ति** का परिणाम है। जूट के निर्यातों में कोई विशेष वृद्धि नहीं हुई। 1990-91 में केवल 213 करोड़ रुपये के संसाधित खाद्य पदार्थों (Processed Food) के निर्यात किये गये। ये 2006-07 में बढ़कर 1,836 करोड़ रुपये के हो गये। इस प्रकार भारत 1990-91 में केवल 216 करोड़ रुपये के फल तथा सब्जियों का निर्यात करता था। परन्तु आर्थिक सुधारों के पश्चात् 2006-07 में इनके निर्यात बढ़कर 4,383 करोड़ रुपये के हो गये।

(6) इन्जीनियरिंग के सामान, हस्तकला तथा चमड़े के सामान के निर्यातों में वृद्धि (Increase in Engineering Goods, Handicraft and Leather Products): भारत के निर्यातों में इन्जीनियरिंग के सामान, हस्तकला तथा चमड़े के सामान का महत्त्व काफी बढ़ गया है। 1990-91 में इन्जीनिरिंग के सामान, हस्तकला तथा चमड़े के सामान के निर्यातों का मूल्य क्रमशः 3,872 करोड़ रु॰, 6,167 करोड़ रु॰ तथा 2600 करोड़ रु॰ था। 2008-09 में इनके निर्यात बढ़कर क्रमशः 1,40,115 करोड़ रु॰, 940 करोड़ रु॰ तथा 11,115 करोड़ रु॰ हो गये।

(7) कम्प्यूटर हार्डवेयर तथा सॉफ्टवेयर के निर्यात (Exports of Computer Hardware and Software): आर्थिक सुधारों के पश्चात् संसार में भारत का कम्प्यूटर हार्डवेयर तथा सॉफ्टवेयर के निर्यात में महत्वपूर्ण स्थान हो गया है। 1980 में कम्प्यूटर हार्डवेयर तथा सॉफ्टरेयर का भारत से निर्यात नहीं किया जाता था परन्तु 2006-07 में लगभग 1,41,800 करोड़ रुपये के निर्यात किये गये। इस प्रकार **भारत के कुल निर्यात में इसका प्रथम स्थान है।**

(8) सेवा क्षेत्र का बढ़ता हुआ महत्त्व (Increasing Importance of Service Sector): सन् 1980 तक भारत के निर्यातों में केवल प्राथमिक या माध्यमिक क्षेत्र (Primary and Secondary Sectors) का ही महत्त्व था। सेवा क्षेत्र का महत्व बहुत ही कम था परन्तु 1991 के पश्चात् इस क्षेत्र के निर्यात में काफी वृद्धि हुई है। इसके भविष्य में और अधिक बढ़ाने की आशा है। उदाहरण के लिए **सूचना प्रौद्योगिकी** (Information Technology) के निर्यात 2006-07 में 7857 करोड़ रुपये के किये गये। सेवाओं के निर्यातों के निरंतर ऊँची वृद्धि के साथ, पिछले वर्ष (2006-07) इनका निर्यात मूल्य 76.2 बिलियन डॉलर था जिसमें 2006-07 में 32% संवृद्धि शामिल है। यह वृद्धि विशेष रूप से सॉफ्टवेयर सेवाओं, व्यापार सेवाओं, वित्तीय सेवाओं तथा संचार सेवाओं में हुई है। इन सेवाओं की वृद्धि 2005-06 तथा 2006-07 में क्रमशः 37.5 प्रतिशत तथा 36.7 प्रतिशत थीं।

(2) आयात व्यापार की रचना में परिवर्तन (Change in the Composition of Imports)

सन् 1990 से भारत के आयात व्यापार में काफी परिवर्तन हुआ है। सन् 1990 के पश्चात् भारत में अनाज, जूट, कपास आदि के आयात काफी कम हो गये। इसके विपरीत पेट्रोलियम, बिना तराशे जवाहरात, मशीनरी, रासायनिक खाद, खाने के तेल, कागज तथा कागज बोर्ड, ट्रांसपोर्ट के यन्त्रों के आयात काफी बढ़ गये हैं। नई आयात नीति में लगभग सभी वस्तुओं के आयात से सभी प्रकार की मात्रात्मक बाधायें (Quantitative Restrictions) हटा दी गई हैं। इसलिये उपभोक्ता वस्तुओं (Consumer goods) के आयात काफी बढ़ गये हैं। सन् 1990 के पश्चात् की अवधि में भारत के आयातों की रचना में काफी परिवर्तन हुये हैं।

तालिका 5. भारत के आयातों की रचना में परिवर्तन (Change in the Composition of India's Imports)

(करोड़ रुपये)

वस्तु (Commodity)	1991	2008-09
(1) अनाज (Cereals)	182	3,717
(2) जूट (Raw Jute)	20	N.A
(3) कपास (Cotton)	1	N.A
(4) खाने के तेल (Edible Oils)	326	9,340
(5) रासायनिक खाद (Fertilizer)	1,766	49,706
(6) लोहा तथा इस्पात (Iron & Steel)	2,113	3,079
(7) कागज तथा कागज बोर्ड (Paper and Paper Board)	456	5,822
(8) बिना तराशे जवाहरात (Unworked Precious Stones)	3,738	23,621
(9) मशीनरी (Machinery)	5,942	66,459
(10) ट्रांसपोर्ट इक्यूपमेन्ट (Transport Equipment)	1,670	21,583
(11) पेट्रोल और पेट्रोलियम पदार्थ	10,816	3,20,025

(Source : Economic Survey 2007-08 and RBI Bulletin March 2009)

सन् 1991 के पश्चात् भारत के आयात अधिक विविधतापूर्ण हो गये। भारत में अनाज के आयात कम हो गये परन्तु पेट्रोलियम, बिना तराशे हुये जवाहरात, रसायन, मशीनरी, प्लास्टिक, कागज आदि के आयात काफी बढ़ गये। उपरोक्त तालिका से ज्ञात होता है कि सन् 1991 के पश्चात् भारत के आयात व्यापार में निम्नलिखित परिवर्तन हुये हैं:

(1) अनाज के आयात में कमी (Decline in the Imports of Cereals): सन् 1991 में अनाज के आयात का मूल्य केवल 182 करोड़ रुपये था जबकि 1981 में 100 करोड़ रुपये के मूल्य के अनाज के आयात किये गये। सन् 1991 के पश्चात् अनाज के आयात 2008-09 में 3,717 करोड़ रुपये के किये गये। इस प्रकार अनाज के आयातों का मूल्य कुल आयातों में नहीं के बराबर था। इसका मुख्य कारण यह है कि हरित क्रान्ति के फलस्वरूप देश अनाज के उत्पादन में आत्मनिर्भर ही नहीं बल्कि निर्यातक भी बन गया है।

(2) कृषि जनित कच्चे माल के आयातों में वृद्धि (Increase in Agricultural Raw Materials): सन् 1991 के पश्चात् कृषि जनित कच्चे माल जैसे जूट, कपास आदि के आयातों में वृद्धि हुई है। उदाहरण के लिये कच्चे जूट के आयात जो 1991 में केवल 20 करोड़ रुपये मूल्य के किये गये वे 2006-07 में बढ़ कर 115 करोड़ रुपये के हो गये। इसका मुख्य कारण यह था कि जूट पैदा करने वाला भाग बंग्लादेश में चला गया जबकि जूट के अधिकतर कारखाने भारत में रह गये। कपास के आयात 1991 में केवल 1 करोड़ रुपये थे वे 2006-07 में बढ़कर 663 करोड़ रुपये के हो गये। इसका मुख्य कारण भारत में बढ़िया किस्म की कपास का मांग की तुलना

में कम उत्पादन होना था। भारत में कच्चे काजू के आयात भी काफी बढ़ गये हैं। सन् 1991 में केवल 134 करोड़ रुपये के कच्चे काजू आयात किये गये परन्तु सन् 2006-07 में 1,821 करोड़ रुपये के कच्चे काजू आयात किये गये। इनको संसाधित (Processed) करके इसका निर्यात कर दिया जाता है। 1991 से इसके निर्यात भी बढ़ कर 447 करोड़ रुपये से 2,508 करोड़ रुपये हो गये। सन् 1991 के पश्चात् रबड़ के आयातों में काफी वृद्धि हुई है। 1991 में केवल 226 करोड़ रुपये के रबड़ का आयात किया था। सन् 2006-07 में रबड़ के आयात बढ़ कर 2,845 करोड़ रुपये हो गये।

(3) खाने के तेल के आयातों में वृद्धि (Increase in import of Edible oil): खाने के तेलों जैसे गोले का तेल के आयातों में 1960 के पश्चात् बहुत अधिक वृद्धि हुई है। सन् 1991 में 326 करोड़ रुपये के खाने के तेल आयात किये गये तथा 2008-09 में इनके आयात बढ़ कर 9,340 करोड़ रुपये के हो गये। इसके दो प्रमुख कारण हैं एक तो भारत में अधिक जनसंख्या होने के कारण खाने के तेलों की माँग पूर्ति से अधिक है तथा दूसरे WTO के प्रावधान के अनुसार सरकार को इनके आयात पर से मात्रात्मक प्रतिबन्ध (Quantitative Restriction) खत्म करने पड़े हैं।

(4) पेट्रोलियम का आयात में प्रथम स्थान (Petroleum enjoys first place in Imports): भारत के आयातों में पेट्रोलियम का प्रथम स्थान है। सन् 1980-81 में 5,264 करोड़ रुपये के पेट्रोलियम का आयात किया गया था। 1990-91 में इनके आयात बढ़ कर 10816 करोड़ रुपये हो गये। 2008-09 में पेट्रोलियम के आयातों के मूल्य में बहुत अधिक वृद्धि हुई। इनके आयात बढ़ कर 3,20,025 करोड़ रुपये हो गये। इसके दो मुख्य कारण हैं। एक तो पेट्रोलियम की कीमत में वृद्धि तथा दूसरा भारत के बढ़ते उद्योग तथा यातायात के लिये पेट्रोलियम की मांग में वृद्धि।

(5) बिना तराशे जवाहरात का आयात में दूसरा स्थान (Precious stones enjoys second place in India's Imports): भारत के आयात व्यापार में बिना कटे हुये जवाहरात का स्थान अब दूसरा हो गया है। सन् 1980 में केवल 417 करोड़ रुपये के बिना कटे हुये जवाहरात अर्थात् जवाहरात उद्योग का कच्चा माल आयात किया था। परन्तु 1991 में इनके आयात का मूल्य बढ़कर 3,738 करोड़ रुपये हो गया। सन् 2008 में इनके आयातों में बहुत अधिक वृद्धि हुई। इनका मूल्य बढ़ कर 23,621 करोड़ रुपये हो गया। इसके कई कारण हैं- एक तो भारत में सस्ता तथा प्रशिक्षित श्रम उपलब्ध है, दूसरा सरकार की उदारवादी नीति के कारण इनके आयातों को प्रोत्साहन मिल गया। तीसरा इनके द्वारा तैयार किये गये माल के निर्यात बहुत अधिक बढ़ गये हैं।

(6) पूंजीगत पदार्थों के आयात में वृद्धि (Increase in Import of Capital Goods): भारत के औद्योगिक विकास के फलस्वरूप पूंजीगत पदार्थों जैसे मशीनरी, बिजली के यन्त्र, विनिर्मित धातुयें (Manufactures of Metals) यातायात का सामान आदि के आयात में काफी वृद्धि हुई है। 1991 में मशीनरी तथा बिजली के सामान के आयात 1,702 करोड़ रुपये तथा ट्रांसपोर्ट यन्त्रों के आयात 1,670 करोड़ रुपये थे। सन् 2008-09 में इनके आयातों में बहुत अधिक वृद्धि हुई। मशीनरी तथा बिजली के सामान के आयात बढ़ कर 66,459 करोड़ रुपये के हो गये। इस वर्ष 21,583 करोड़ रुपये के यातायात के यन्त्रों के आयात किये गये। इसके कई कारण हैं एक तो देश का उद्योगीकरण, दूसरे सरकार की उदारवादी नीति, तीसरे बहुराष्ट्रीय संस्थाओं के महत्त्व में वृद्धि तथा चौथे अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं से इनके आयात के लिये अधिक धन की प्राप्ति।

(7) रासायनिक खाद के आयात में वृद्धि (Increase in import of Fertilizers): भारत में हरित क्रान्ति के कारण रासायनिक खाद की मांग में काफी वृद्धि हो गई है। 1981 में 818 करोड़ रुपये की रासायनिक खाद का आयात किया गया परन्तु 1991 में इनके आयात बढ़ कर दुगने अर्थात् 1766 करोड़ रुपये के हो गये। 2008 में इनके आयातों में आठ गुनी वृद्धि हुई अर्थात् इनके आयात बढ़ कर 49,706 करोड़ रुपये के हो गये।

(8) गैर-परम्परागत वस्तुओं के आयात में वृद्धि (Increase in the import of Non-traditional commodities): भारत में 1991 से कई नई वस्तुओं जैसे प्लास्टिक, कागज, गन्ने तथा रसायनों के आयात में काफी वृद्धि हुई है। सन् 1991 में प्लास्टिक, कागज तथा रसायन के आयात क्रमश: 1,095 करोड़ रु. 456 करोड़ रुपये तथा 2,289 करोड़ रुपये के किये गये सन् 2008-09 में इनके आयात बढ़ कर क्रमश: 12,305 करोड़ रुपये, 5,822 करोड़ रुपये तथा 6,415 करोड़ रुपये के हो गये।

■ (3) भारत के विदेशी व्यापार की दिशा (Direction of India's Foreign Trade)

भारत के निर्यात व्यापार की दिशा से उन देशों का ज्ञान होता है जिन्हें भारतीय वस्तुओं तथा सेवाओं का निर्यात किया जाता है तथा जिनसे भारत विभिन्न वस्तुओं तथा सेवाओं का आयात करता है। तालिका 6 द्वारा भारत के विदेशी व्यापार की दिशा का ज्ञान हो जाता है।

तालिका 6. व्यापार की दिशा (Direction of Trade)

कुल मात्रा प्रतिशत में (Percentage of Total Volume)

Country	Exports	Imports	Exports	Imports
	1990-91		2006-07	
I. Organisation of Economic Cooperation and Development Countries (O.E.C.D.)	**53.5**	**54.0**	**24.5**	**29.0**
II. OPEC	**5.6**	**16.3**	**18.2**	**26.9**
III. Eastern Europe	**17.9**	**7.8**	**0.1**	**1.8**
IV. Developing Countries of which	**16.8**	**18.4**	**55.4**	**14.2**
(i) Asia	14.3	14.0	49.8	9.5
(ii) Africa	2.1	2.2	2.2	1.5
(iii) Latin America	0.4	2.3	3.4	3.2
V. Others	**6.2**	**3.5**	**1.8**	**29.1**

(Source: Economic Survey, and Statistical Outline of India 2007-08)

उपरोक्त तालिका से ज्ञात होता है कि:

(1) आर्थिक सहयोग एवं विकास संगठन: OECD देशों अर्थात् (i) E.U. (Europeon Union): यू॰के॰, जर्मनी, इटली, फ्रांस, लक्जमबर्ग नीदरलैन्ड, आयरलैंड, बेल्जियम, डेनमार्क (ii) उत्तरी अमेरिका (यू॰ एस॰ ए॰ तथा कनाडा), (iii) Oceania अर्थात् आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, जापान) आदि विकसित देशों से भारत का व्यापार बढ़ता जा रहा है। सन् 1991 में इन देशों को किया जाने वाला निर्यात कुल निर्यात का 53.5 प्रतिशत था जो 2006-07 में घटकर 24.5 प्रतिशत हो गया तथा आयात 54.0 प्रतिशत से घटकर 32.7 प्रतिशत हो गया। इन देशों में से निर्यात व्यापार में EU देशों का भाग 27.5 प्रतिशत से घटकर 22.9 प्रतिशत हो गया तथा आयात व्यापार में 17.9 प्रतिशत से बढ़कर 18.3 प्रतिशत हो गया। इसी प्रकार उत्तरी अमेरिका का निर्यात व्यापार में भाग 15.6 प्रतिशत से कम होकर 3.4 प्रतिशत हो गया परन्तु आयात में भाग 2006-07 में 13.4 प्रतिशत से कम होकर 3.2 प्रतिशत रह गया।

(2) तेल निर्यात संगठन (O.P.E.C.—Organisation of Petroleum Exporting Countries): सऊदी अरब, ईरान, इराक, कुवैत का भारत के निर्यात व्यापार में 1990-91 में 5.6 प्रतिशत भाग था। यह 2006-07 में बढ़कर 18.2 प्रतिशत रह गया। इसी प्रकार इस अवधि में आयात व्यापार में इन देशों का भाग 16.3 प्रतिशत से बढ़कर 26.9 प्रतिशत रह गया।

(3) पूर्वी यूरोप (Eastern Europe): पूर्वी यूरोप के देशों जैसे रूस, पोलैंड, हंगरी, रूमानिया, चेकोस्लोवाकिया आदि के साथ होने वाले विदेशी व्यापार का कुल व्यापार में प्रतिशत काफी कम हो गया है। 1990-91 में इन देशों का निर्यात व्यापार में भाग

17.9 प्रतिशत था। यह 2006-07 में कम होकर केवल 0.1 प्रतिशत रह गया। इसी प्रकार आयात व्यापार का भाग 7.8 से कम होकर केवल 1.8 रह गया। इस प्रकार **रूस के विघटन** के बाद इन देशों से होने वाले विदेशी व्यापार में काफी कमी आई है।

(4) विकासशील देशों (Developing Countries) से भारत का विदेशी व्यापार बढ़ रहा है। सन् 1990-91 में इन देशों का भारत के कुल निर्यातों में भाग 17.1 प्रतिशत था यह बढ़कर 2006-07 में 55.4 प्रतिशत हो गया। इसी प्रकार आयात व्यापार में भाग 18.4 प्रतिशत से कम होकर 14.2 प्रतिशत हो गया। अफ्रीका के साथ किये जाने वाले निर्यातों के प्रतिशत में कमी आई है परन्तु लैटिन अमरीका के साथ बढ़ गये।

भारत के निर्यात व्यापार में यूरोपियन यूनियन (E.U.) का प्रथम स्थान है तथा यू० एस० ए० का दूसरा स्थान है।

महत्त्वपूर्ण देशों से भारत के विदेशी व्यापार की दिशा के मूल्य तथा प्रतिशत चित्र निम्नलिखित तालिका द्वारा स्पष्ट हो जाते हैं:

तालिका 7. मुख्य देशों से भारत के विदेशी व्यापार की दिशा

(Direction of India's Foreign Trade to Important Countries)

(करोड़ रुपये)

Country	1990-91 Exports Value (Rs. Crore)	1990-91 Exports Percentage Share	1990-91 Imports Value (Rs. Crore)	1990-91 Imports Percentage Share	2008-09 Exports Value (Rs. Crore)	2008-09 Exports Percentage Share	2008-09 Imports Value (Rs. Crore)	2008-09 Imports Percentage Share
U.S.A.	4,797	14.7	5,245	12.1	63,792	14.9	52,295	6.6
U.K.	2,128	6.5	2,894	6.7	18,903	4.4	15,856	2.2
Germany	2,549	7.8	3,473	8.0	17,240	3.2	31,361	6.7
Japan	3,039	9.3	3,245	7.5	8,985	2.2	33,305	2.4
Iran	141	0.4	1,018	2.4	4,852	1.2	43,872	4.0
Kuwait	74	0.2	363	0.8	2,220	0.5	35,616	3.1
Russia	5,255	16.1	2,548	5.9	3,405	0.7	13,911	1.1

(Source : Statistical Outline of India, Economic Survey 2007-08 and RBI Bulletin March 2009)

उपरोक्त तालिका से ज्ञात होता है कि 1990-91 भारत के कुल निर्यात में U.S.A. का भाग 14.7 प्रतिशत तथा आयातों में 12.1 प्रतिशत था जबकि सन् 2008-09 में भारत के निर्यात व्यापार में यू. एस. ए. का भाग बढ़कर 14.9 प्रतिशत हो गया परन्तु आयात में कम होकर केवल 6.6 प्रतिशत हो गया। सन् 1990-91 में भारत के निर्यात व्यापार में यू. के. का भाग 6.5 तथा आयातों में 6.7 प्रतिशत था। परन्तु 2008-09 में भारत के निर्यातों में यू. के. का भाग 4.4 प्रतिशत हो गया तथा आयात व्यापार में यह 2.2 प्रतिशत हो गया। इस अवधि में भारत द्वारा यू. के. को किये जाने वाले निर्यातों का मूल्य बढ़कर 2,128 करोड़ रुपये से 2008-09 में 18,903 करोड़ रुपये हो गया। इसी प्रकार आयातों का मूल्य बढ़कर 2,894 करोड़ से 15,856 करोड़ रुपये हो गया। जर्मनी को निर्यातों तथा आयातों में काफी वृद्धि हुई है। 1990-91 में जर्मनी को किये गये निर्यातों का मूल्य 2,549 करोड़ रुपये था जो भारत के कुल निर्यात का 7.8 प्रतिशत था परन्तु 2008-09 में जर्मनी को किये गये निर्यातों का मूल्य बढ़ कर 17,240 करोड़ रुपये हो गये। परन्तु कुल

निर्यातों में उनका भाग कम होकर 3.4 प्रतिशत हो गया। सन् 1990-91 में जर्मनी से किये गये आयात 3,473 करोड़ रुपये के थे 2008-09 में बढ़ कर 31,361 करोड़ रुपये हो गये। इस प्रकार निर्यातों में जितना परिवर्तन हुआ है उतना तुलनात्मक आयातों में नहीं हुआ। जापान को 1990-91 में यू. के., जर्मनी से अधिक निर्यात अर्थात् 3,039 करोड़ रुपये के किये गये परन्तु सन् 2007-08 में जापान को किये जाने वाले निर्यात बढ़ कर 8,985 करोड़ रुपये के हो गये। इस अवधि में जापान से किये जाने वाले आयात 3,245 करोड़ रुपये से बढ़ कर 33,305 करोड़ रुपये के हो गये।

इस प्रकार वर्तमान समय में जापान को किये गये निर्यात तथा उससे किये जाने वाले आयात का मूल्य लगभग बराबर है। ईरान तथा इराक से अधिकतर केवल पेट्रोल आयात किया जाता है तथा इन देशों को कई वस्तुओं के निर्यात किये जाते हैं। सन् 1990 में ईरान को किया गया निर्यात कुल निर्यात का 0.4 प्रतिशत था। ये 2008-09 में बढ़ कर कुल निर्यात का 1.2 प्रतिशत हो गया। इसी प्रकार कुवैत से किये गये आयात 1990 में कुल आयात का 0.8 प्रतिशत थे जो 2008-09 में बढ़कर कुल आयात का 3.1 प्रतिशत हो गया। सन् 1990 में रूस को 5,255 करोड़ रुपये के अर्थात् सभी महत्वपूर्ण देशों से अधिक निर्यात किये गये थे जो कुल निर्यात के 16.1 प्रतिशत थे परन्तु 2008-09 में वर्तमान रूस को किये गये निर्यात कुल निर्यात के केवल 0.7 प्रतिशत हो गये। इसी प्रकार 1990 में रूस से किये गये आयात भारत के कुल आयात के 5.9 प्रतिशत थे जो कम होकर सन् 2008-09 में केवल 1.1 प्रतिशत रह गये।

■ 4. सन् 1991 के पश्चात् भारत के विदेशी व्यापार के परिमाण, रचना तथा दिशा की विशेषताएं (Features of Volume, Composition and Direction of India's Foreign Trade after 1991)

सन् 1991 के पश्चात् भारत के विदेशी व्यापार के परिमाण, रचना तथा दिशा की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं:

(1) कुल राष्ट्रीय आय का बढ़ता हुआ प्रतिशत (Increasing Share of Gross National Income): भारत के विदेशी व्यापार का कुल राष्ट्रीय आय में काफी महत्त्व है। 1990-91 में भारत का विदेशी व्यापार (आयात + निर्यात) शुद्ध राष्ट्रीय आय का 17 प्रतिशत था, 2006-07 में यह बढ़ कर शुद्ध राष्ट्रीय आय का 25 प्रतिशत हो गया है 2006-07 में GDP के प्रतिशत के रूप में निर्यात तथा आयात क्रमश: 14.0 प्रतिशत तथा 21 प्रतिशत थे।

(2) संसार के विदेशी व्यापार में घटता हुआ भाग (Less Percentage of World Trade): संसार के विदेशी व्यापार में भारत के विदेशी व्यापार का भाग घटता जा रहा है। 1950-51 में संसार के कुल आयात व्यापार में भारत का भाग 1.8 प्रतिशत था तथा निर्यात व्यापार में 2 प्रतिशत था। सन् 2006-07 में आयात व्यापार में भारत का भाग कम होकर 0.89 प्रतिशत तथा निर्यात व्यापार में 1.0 प्रतिशत हो गया है।

(3) समुद्री व्यापार (Oceanic Trade): भारत का अधिकांश व्यापार समुद्री मार्ग से होता है। भारत के पड़ोसी देशों जैसे नेपाल, अफगानिस्तान, बर्मा, श्रीलंका आदि से व्यापारिक सम्बन्ध काफी कम है। इसलिये भारत का 68 प्रतिशत विदेशी व्यापार समुद्री व्यापार है। इन देशों का निर्यात व्यापार में भाग 21.8 प्रतिशत तथा आयात व्यापार में 19.1 प्रतिशत था।

(4) कुछ बन्दरगाहों पर निर्भर (Dependence on a Few Ports): भारत का विदेशी व्यापार विशेष रूप से मुम्बई, कोलकाता और चेन्नई के बन्दरगाहों द्वारा होता है। इसके फलस्वरूप इन बन्दरगाहों पर काफी दबाव रहता है। अब भारत सरकार ने कांडला, कोचीन, विशाखापट्टनम आदि बन्दरगाहों का विकास किया है।

(5) व्यापार के परिमाण तथा मूल्य में वृद्धि (Increase in Volume and Value of Trade): 1990-91 के बाद भारत के विदेशी व्यापार का परिमाण तथा मूल्य बढ़ गये हैं। भारत अब पहले से कई गुणा अधिक मात्रा तथा मूल्य की वस्तुओं का आयात तथा निर्यात करता है। 1990-91 में कुल विदेशी व्यापार 75,751 करोड़ रु॰ का था। 2008-09 में यह बढ़कर 15,89,540 करोड़ रुपये का हो गया। इस वर्ष 5,85,593 करोड़ रुपये के मूल्य का निर्यात 10,03,947 करोड़ रुपये का आयात किया गया।

(6) निर्यात व्यापार के स्वरूप में परिवर्तन (Change in the Composition of Exports): स्वतन्त्रता के बाद भारत के निर्यात व्यापार के स्वरूप में भी परिवर्तन आया है। स्वतन्त्रता से पूर्व भारत कृषि वस्तुओं तथा कच्चा माल जैसे पटसन, कपास, चाय, तिलहन, चमड़ा, अनाज, काजू तथा खनिज पदार्थों का निर्यात करता था। बहुत सा तैयार माल भी निर्यात किया जाता था। अब भारत

तैयार माल जैसे मशीनें, सिले-सिलाये कपड़े, हीरे-जवाहरात, चाय , जूट का तैयार सामान, काजू, इलेक्ट्रॉनिक्स के समान आदि का भी निर्यात काफी मात्रा में करने लगा है। अब सबसे अधिक निर्यात कम्प्यूटर हार्डवेयर तथा सॉफ्टवेयर के किये गये।

(7) आयात व्यापार के स्वरूप में परिवर्तन (Change in the Composition of Imports): स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत के आयात व्यापार के स्वरूप में भी परिवर्तन हुआ है। स्वतन्त्रता से पहले भारत अधिकतर उपभोग वस्तुओ जैसे दवाइयां, कपड़ा, मोटर गाड़ियां, बिजली का सामान, लोहा, इस्पात आदि का आयात करता था। परन्तु अब पेट्रोल, मशीनें, रसायन, खाद, तिलहन, कच्चे माल, इस्पात, तेल आदि का आयात अधिक मात्रा में किया जाता है।

(8) विदेशी व्यापार की दिशा (Direction of Foreign Trade): किसी देश के विदेशी व्यापार की दिशा से हमारा अभिप्राय उन देशों से होता है जिनके साथ व्यापार किया जाता है। विदेशी व्यापार की दिशा में निम्नलिखित मुख्य परिवर्तन हुए हैं:

सन् 1990 में भारत के निर्यात व्यापार में सबसे अधिक भाग पूर्वी यूरोप अर्थात् रुमानिया, पूर्वी जर्मनी तथा रूस आदि देशों का था। सन् 1990 में भारत के आयात व्यापार में सबसे अधिक भाग अर्थात् 16.3 प्रतिशत भाग तेल निर्यातक देशों (OPEC) जैसे ईरान, इराक, सउदी अरब, कुवैत आदि का था। परन्तु सन् 2008-09 में भारत के विदेशी व्यापार में सबसे अधिक भाग यूरोपियन यूनियन (E.U.) देशों जैसे जर्मनी, बेल्जियम, फ्रांस, यू. के. आदि तथा विकासशील देशों का था।

(9) व्यापार शेष में निरन्तर बढ़ता घाटा (Mounting Deficit in Balance of Trade): सन् 1950-51 से व्यापार शेष (1972-73 तथा 1976-77 को छोड़कर) सदा घाटे वाला रहा है। व्यापार का घाटा वर्ष-प्रतिवर्ष बढ़ रहा है। 1950-51 में व्यापार का घाटा 2 करोड़ रुपये था, जो 1990-91 में बढ़कर 16,933 करोड़ रुपये का हो गया। उदारीकरण (Liberalisation) के बाद यह और तेजी से बढ़ा है, 1999-2000 में यह बढ़कर 77,359 करोड़ रुपये हो गया। इस घाटे के बढ़ने का कारण **आयात मूल्यों में तेज वृद्धि और निर्यात मूल्यों में धीमी वृद्धि था।** वर्ष 2008-09 में यह व्यापार घाटा 4,18,354 करोड़ रुपये था।

(10) वैश्वीकरण की ओर प्रवृत्ति (Trend Towards Globalisation): भारत के विदेशी व्यापार की वर्तमान प्रवृत्ति इसका वैश्वीकरण और विविधीकरण (Diversification) है। भारत का विदेशी व्यापार अब कुछ वस्तुओं या कुछ देशों तक ही सीमित नहीं है। भारत वर्तमान में लगभग 190 देशों को 7,500 वस्तुओं का निर्यात करता है और 140 देशों से लगभग 6,000 वस्तुओं (की मदों) का आयात करता है। यह भारत के विदेशी व्यापार की परिवर्तनशील प्रवृत्ति को प्रकट करता है।

(11) सार्वजनिक क्षेत्र की बदलती भूमिका (The Changing Role of Public Sector): 1991 के बाद भारत के विदेशी व्यापार में सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका में परिवर्तन आया है। इस अवधि से पहले राज्य व्यापार निगम (STC), खनन और खनिज विकास निगम (MMDC), हस्तकला निर्यात निगम, SAIL, HMT, BHEL आदि की भारत के विदेशी व्यापार में अहम भूमिका थी। उदारीकरण की नीति अपनाने के बाद इन सभी सार्वजनिक उद्यमों का महत्त्व घट गया है।

■ 5. भारत में व्यापार सुधार या व्यापार नीति में नवीनतम परिवर्तन (Trade Reforms in India Or Recent Trade Policy Changes)

भारत की व्यापार नीति जो आर्थिक सुधारों से पहले मुख्य रूप से **आयात प्रतिस्थापन** (Import Substitution) की रूढ़िवादी और जटिल नीति थी वह 1991 के आर्थिक सुधारों के पश्चात् एक उदारवादी, सरल और प्रगतिशील नीति हो गई है जिसका मुख्य लक्ष्य निर्यात प्रोत्साहन (Export Encouragement) है। पिछले दशक से किये जाने वाले व्यापार नीतिगत सुधारों (Trade Policy Reforms) का उद्देश्य निर्यात तीव्र वृद्धि के लिये उपयुक्त वातावरण तैयार करना, संसार के निर्यातों में भारत के भाग को बढ़ाना तथा निर्यातों को आर्थिक विकास की ऊंची दर का ईंजन बनाना है। इन सुधारों का ध्यान (Focus) **उदारीकरण** (Liberalisation), **खुलापन** (Openness), **पारदर्शिता** (Transparency) तथा **वैश्वीकरण** (Globalisation) पर है। नवीनतम व्यापार नीति का मुख्य जोर निर्यात प्रोत्साहन कार्यक्रम, मात्रात्मक प्रतिबन्धों से दूरी तथा विश्व बाजार की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये भारतीय उद्योगों की प्रतियोगिता शक्ति का बढ़ाने पर है। वर्तमान व्यापार नीति में आवश्यक परिवर्तनों के फलस्वरूप निर्यात उत्पादन आधार को मजबूती प्रदान की गई है, प्रक्रियात्मक कमियों (Procedural Irritants) को दूर किया गया है, आगतों

(Input) आदि को सुविधात्मक बनाया गया है, तकनीक को आधुनिक बनाया गया है तथा प्रतियोगिता में सुधार किया गया है। **भारत की व्यापार नीति में निम्नलिखित नवीनतम परिवर्तन (Recent Changes)** या **व्यापार सुधार** (Trade Reforms) हुए हैं:

(1) उदारवादी (Liberal): भारत काफी समय से अन्तरमुखी आयात प्रतिस्थापन (Inward looking import substitution policy) का अनुसरण करता रहा था। **आयात प्रतिस्थापन** का अर्थ है कि **विदेशों से आयात की जाने वाली किसी भी वस्तु का कुल या आंशिक रूप से देश के कच्चे माल तथा तकनीक द्वारा उत्पादित उसी प्रकार के कार्य करने वाली वस्तु द्वारा प्रतिस्थान किया जाये** (Import substitution means total or partial replacement of an imported product of the same functional requirement mainly from indigenous material and know-how.) इस नीति के अन्तर्गत आयातों पर बहुत अधिक प्रतिबन्ध लगा दिये गये थे तथा कई वस्तुओं के आयात देश में नहीं किये जा सकते थे। परन्तु नई व्यापार नीति अधिक **उदारवादी** (Liberal) है इसके अनुसार आयातों पर से **मात्रात्मक प्रतिबन्ध** (Quantitative restriction) पूरी तरह हटा लिये गये हैं। नई नीति के अनुसार कुछ संवेदनशील वस्तुओं को छोड़ कर देश में लगभग सभी वस्तुओं के आयात स्वतन्त्रतापूर्वक किये जा सकते हैं। उनके लिये अब पहले की तरह कोई आयात लाइसेन्स लेने की आवश्यकता नहीं है। अतएव वर्तमान नीति मुख्य रूप से **आयात उदारवादी** नीति है।

(2) दीर्घकालीन (Long Term): भारत की व्यापार नीति अल्पकालीन थी। 1992 से पहले एक या तीन वर्ष के लिये व्यापार नीति का निर्माण किया जाता था। अतएव व्यापार नीति **अल्पकालीन** (Short Period) थी। परन्तु अब व्यापार नीति **दीर्घकालीन** (Long-Period) है। यह पाँच वर्ष की अवधि के लिये बनाई जाती है। 1992 में सबसे पहले आठवीं योजना की अवधि के लिये एक पंचवर्षीय योजना 1992-97 के लिये बनाई गई थी। नौवीं योजना की अवधि 1997-2002 के लिये दूसरी तथा दसवीं योजना की अवधि 2002-2007 के लिये तीसरी पंचवर्षीय दीर्घकालीन व्यापार नीति बनाई गई। इसके फलस्वरूप **आयात-निर्यात** नीति में एक समन्वय बना रहता है। वर्तमान नीति 2002 से 2007 की अवधि में लागू होगी। अतएव इस नीति की अवधि **दसवीं पंचवर्षीय योजना** (Tenth Five Year Plan) है। UPA सरकार की नई विदेशी व्यापार नीति (2004-09) दसवीं तथा ग्यारहवीं दोनों योजनाओं से जुड़ी हुई है। इस प्रकार की निर्यात-आयात नीति का पँचवर्षीय योजनाओं से पूर्ण समन्वय है। सरकार दीर्घकालीन नीति के अतिरिक्त वार्षिक व्यापार नीति भी घोषित करती है।

(3) लोचशील (Flexible): भारत की वर्तमान व्यापार नीति लोचशील (Flexible) है। पंचवर्षीय नीति होने का यह अर्थ नहीं है कि नीति की पंचवर्षीय अवधि में कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता। वास्तव में इस नीति की प्रतिवर्ष समीक्षा की जाती है। उसमें, समय-समय पर आवश्यक परिवर्तन किये जाते रहते हैं। वर्तमान नीति के दीर्घकालीन होने का यह अर्थ नहीं है कि वह एक कठोर नीति (Rigid) है तथा उसमें कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता। वास्तव में वर्तमान व्यापार नीति एक लोचशील नीति है। इसमें विदेशी व्यापार में अन्तर्राष्ट्रीय तथा राष्ट्रीय परिदृश्य के अनुसार समय-समय पर आवश्यक परिवर्तन किये जाते रहे हैं। इसलिये प्रतिवर्ष व्यापार मन्त्री द्वारा आवश्यक परिवर्तन घोषित किये जाते हैं। उदाहरण के लिये 2001 की नीति में 742 वस्तुओं को आयात प्रतिबन्धों से मुक्त किया गया जबकि 2002 की नीति में कुछ संवेदनशील वस्तुओं को छोड़कर सभी वस्तुओं के आयात पर से मात्रात्मक प्रतिबन्ध हटा लिये गये हैं। दीर्घकालीन नीति का अभिप्राय तो केवल यह है कि व्यापार के मुख्य दिशा-निर्देश तथा उद्देश्य निर्धारित कर दिये जाये जैसे व्यापार नीति उदारवादी होगी या अनुदारवादी। यह मुख्य रूप में आयात प्रतिस्थापन की नीति होगी या निर्यात प्रोत्साहन की नीति होगी।

(4) निर्यात प्रोत्साहन (Export Promotion): भारत की वर्तमान नीति में आयात प्रतिस्थापन के स्थान पर निर्यात प्रोत्साहन को मुख्य रूप से महत्त्व दिया गया है। निर्यात प्रोत्साहन (Export Promotion) से अभिप्राय यह है कि देश के निर्यातों को प्रोत्साहन देने के लिये निर्यातकर्ताओं को आवश्यक सुविधायें देकर प्रोत्साहित किया जा सकता है। नई नीति का उद्देश्य दसवीं योजना की अवधि में संसार के निर्यात में भारत के भाग को 0.60 से बढ़ाकर 1 प्रतिशत करना है। नवीनतम व्यापार नीति में निर्यात प्रोत्साहन के लिये मुख्य रूप से अग्रलिखित प्रावधान किये गये हैं:

कुछ संवेदनशील वस्तुओं को छोड़कर निर्यात पर से **मात्रात्मक प्रतिबन्ध** (Quantitative Restriction) पूरी तरह हटा लिए गए हैं। कृषि एवं कृषि आधारित निर्यातों को प्रोत्साहित करने के लिए **32 कृषि निर्यात क्षेत्र** (Agro-Export Zones) स्थापित किए गए हैं। कृषि निर्यातों का विविधीकरण करने के लिए फलों, सब्जियों, फूलों एवं डेयरी उत्पादों के निर्यात के लिए **परिवहन सहायता** (Transport Subsidy) दी जाएगी। खादी, ग्राम उद्योग निगम (KVIC) के अन्तर्गत आने वाले कुटीर उद्योगों के निर्यातों को प्रोत्साहित करने के लिए **बाजार प्रवेश प्रेरणा** (Market Access Initiative) के अन्तर्गत 5 करोड़ रुपये के कोष की व्यवस्था की गई है। नई नीति ने कुटीर उद्योग तथा हस्तशिल्प के निर्यातों को प्रोत्साहित करने के लिए विशेष सुविधाएँ दी है। हस्तशिल्प क्षेत्र के उद्योग अपने उत्पादनों की वेबसाइट बनाने के लिए MAI कोष से सहायता प्राप्त कर सकेंगे। नई नीति में कुटीर हस्तशिल्प तथा लघु उद्योग क्षेत्र को विशेष महत्त्व दिया गया है। इससे ग्रामीण इलाकों में रहने वाले अधिक कामगारों को लाभ मिलेगा।

उपरोक्त उपायों के अतिरिक्त नवीनतम व्यापार नीति का उद्देश्य देश के निर्यातकों को विशेष सुविधायें देना है।

(5) सीमा शुल्कों में कमी (Reduction in Custom Duties): विदेशी व्यापार की नवीनतम नीति का एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन सीमा शुल्क (Custom Duties) में की जाने वाली कमी है। निर्यात-आयात नीति के उदारीकरण के अनुसार **सीमा-शुल्क** (Custom Duties) को क्रमबद्ध तरीके से कम कर दिया गया। अनुमान है कि भारत के आयात शुल्कों (Import Tarriffs) 1991 में लगे लगभग 90 प्रतिशत से घटाकर वर्ष 2003-04 में 31 प्रतिशत रह गये। आयात शुल्कों में भारी कमी के बावजूद शुल्कों का आम स्तर अब भी ऊँचा है। विकासशील देशों में भारत एकमात्र ऐसा देश था जिसमें सबसे अधिक सीमाशुल्क लागू थे। परन्तु नवीनतम व्यापार नीति में अधिकतम तथा औसत दोनों काफी कम कर दिये गये हैं। अब औसत वसूली दर (Average Collection Rate) **20 प्रतिशत** रह गई है।

(6) विशेष आर्थिक क्षेत्रों की स्थापना (Establishment of Special Economic Zones): नवीनतम व्यापार नीति में एक मुख्य परिवर्तन यह किया गया है कि निर्यातों को अधिक प्रतियोगी बनाने के लिये चीन की तरह **विशेष आर्थिक जोन** (Special Economic Zones) स्थापित किये गये हैं। इन जोनों से स्थापित कारखानों को हर प्रकार के दायित्व से मुक्त रखा जाता है।

यहाँ की इकाइयों के संचालन में पूरी छूट दी जाती है। उन्हें न केवल निःशुल्क भारी मशीनरी के आयात की छूट होगी, बल्कि वे कच्चा माल भी निःशुल्क आयात कर सकेंगी। यहां स्थापित इकाइयां **टर्मिनल उत्पाद शुल्क** का भुगतान किये बिना घरेलू टैरिफ एरिया में काम करती रहें। यहां की इकाइयों को आपसी व्यापार या बिक्री के लिये भी पूर्व अनुमति की आवश्यकता नहीं होती। **इन जोनों को देश के निर्यात-आयात क्षेत्र से बाहर समझा जाता है।** (They shall be treated as being outside the customs territory of the country.) निर्यात के लिये उत्पादन को बन्दरगाह ले जाने पर भी कोई पाबन्दी नहीं होती। इन जोनों में विदेशी स्वामित्व वाली कम्पनियां भी स्थापित की जा सकती हैं।

इन क्षेत्रों में स्थापित उद्योगों की आयकर, उत्पादन कर तथा सीमा शुल्क में छूट दी जाती है। जिससे वे अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रतियोगी बन सकें।

इन क्षेत्रों में पहली बार बैंकों को **विदेशी कारोबार शाखाएं** (Overseas Banking Units - OBU) खोलने की इजाजत दी गई है। ये वास्तव में भारत में स्थित विदेशी बैंकों की शाखाएं हैं। भारतीय बैंक भी ये शाखाएं खोल सकेंगे। इन शाखाओं पर साख नियंत्रण के प्रावधान लागू नहीं होते। विशेष आर्थिक क्षेत्रों में तीन साल से कम अवधि के लिए **विदेशी वाणिज्यिक ऋणों** (External Commercial Borrowings) की अनुमति दी जाती है। इसके फलस्वरूप इन क्षेत्रों की इकाइयों को कार्यशील पूंजी के लिए अन्तर्राष्ट्रीय ब्याज दर पर ऋण मिल जाते हैं।

(7) निर्यात कार्य-विधि सरलीकरण (Export Procedural Simplification) भारत की व्यापार नीति पहले काफी जटिल थी परन्तु नवीनतम व्यापार नीति ने विदेशी व्यापार की प्रक्रिया को काफी सरल बना दिया है। (i) निर्यात-आयात प्रक्रिया के सरलीकरण तथा पारदर्शिता के लिये **लाइसेंस आवेदन की इलेक्ट्रोनिक आवंटन प्रणाली** (Electronic Filling of Licence Applications) अब सभी बन्दरगाहों पर लागू की गई हैं। इस प्रणाली के अन्तर्गत **निर्यातकों** (Exporters) को अब सरकारी दफ्तरों के चक्कर नहीं लगाने पड़ते। निर्यात संबंधी लाइसेंस लेने के लिए वे **कम्प्यूटरों के द्वारा** e-Commerce प्रणाली का प्रयोग कर सकते

हैं। वे लाइसेंस के लिये आवेदन कम्प्यूटरों द्वारा भेजते हैं तथा इससे संबंधित सभी औपचारिकताओं को कम्प्यूटरों द्वारा ही पूरा करते हैं। इसके फलस्वरूप उन्हें **आवेदन के 24 घण्टे के अन्दर ही लाइसेंस प्राप्त हो जाते हैं। इससे धन तथा समय दोनों की ही बचत होती है।** ट्रेडिंग हाउस सर्टिफिकेट देने का कार्य **क्षेत्रीय लाइसेंसिंग अधिकारी** (Regional Licencing Authority) को सौंप दिया गया है। उन सभी निर्यातकों को ग्रीन चैनल सुविधा दी जाती है जिनके पास ग्रीन कार्ड होते हैं। अब **स्वैच्छिक घोषणा** (Voluntary Declaration) के आधार पर शुल्क लिया जाता है। **विदेश व्यापार महानिदेशालय** (Directorate General of Foreign Trade) को अधिक कार्यकुशल तथा पारदर्शी बनाया जायेगा। इसके लिये सभी विभागों का कम्प्यूटरीकरण किया जा रहा है।

नई निर्यात-आयात नीति (2002-2007) में कार्यविधि को काफी सरल बना दिया गया है। इस संबंध में कस्टम तथा बैंकों से संबंधित कार्यों को विशेष रूप से सरल बनाया गया है। **विदेशी व्यापार के डायरेक्टर जनरल** (Director General of Foreign Trade) तथा कस्टम की सुविधा के लिए आयातों का **8 डिजिट में वर्गीकरण** (Eight Digits Classification) कर दिया गया है। कारोबार लागत कम करने के लिए निर्यात प्रक्रिया को सरल बनाया गया है। निर्यात दस्तावेजों के लिए प्रत्यक्ष समझौता वार्ता की स्वीकृति दी जाएगी। इसके फलस्वरूप निर्यातकर्ताओं के लिए बैंक कमीशन की बचत हो सकेगी। निर्यातों से प्राप्त होने वाली विदेशी मुद्रा की अवधि को 180 दिन से बढ़ाकर 360 दिन कर दिया गया है। नई निर्यात-आयात नीति (2004-09) ने भी नियमों तथा प्रक्रियाओं को अधिक युक्तिसंगत और सरल बना दिया है।

(8) राज्य सरकारों का सहयोग (Cooperation of State Governments): नवीनतम व्यापार नीति में देश के निर्यातों को बढ़ाने के लिये राज्य सरकारों का सहयोग प्राप्त किया गया है। अभी तक राज्य सरकारें निर्यातों को प्रोत्साहित करने की प्रक्रिया में शामिल नहीं होती थीं। बल्कि कई बार उनकी राजकोषीय नीतियां निर्यातों की प्रगति में बाधा बन जाती थी परन्तु अब निर्यात प्रोत्साहन प्रक्रिया में राज्यों की भागीदारी का अध्याय शुरू हो गया है।

(9) प्रत्यक्ष वित्तीय सहायता का अभाव (No Direct Financial Support): नवीनतम विदेशी व्यापार नीति में निर्यात-आयात नीतियों के लिये प्रत्यक्ष वित्तीय सहायता की कोई व्यवस्था नहीं है जबकि पहले यह सहायता दी जाती थी। नवीनतम नीति में विदेशी बाजारों में भारतीय निर्यात के लिये वातावरण अनुकूल बनाया गया है। विश्व स्तर की अद्योसंरचना (World class infrastructure) उपलब्ध कराई गई है। लेनदेन की लागत (Transaction Costs) कम की गई है।

(10) निर्यात बाजार का विविधीकरण (Diversification of Export Markets): भारत की वर्तमान विदेशी व्यापार नीति में निर्यात के लिये नये बाजार में प्रवेश के लिये निरंतर प्रयास किये जा रहे हैं। पिछले वर्षों में लैटिन अमेरिका के देशों में अधिक प्रवेश की नीति अपनाई गई। नवीनतम नीति में अफ्रीका पर ध्यान केन्द्रित किया गया है। आरम्भ में अधिकतम मांग की सम्भावनाओं वाले सात देशों पर जोर दिया जा रहा है। ये हैं नाईजीरिया, दक्षिण अफ्रीका, मारीशस, केन्या, ईथोपिया, तंजानिया और घाना।

नई विदेशी व्यापार नीति (2004-09) भारत के विदेशी व्यापार के संपूर्ण विकास के समन्वित दृष्टिकोण को ध्यान में रखती है और इस क्षेत्र के विकास के लिए एक मार्ग तैयार करती है। वर्ष 2009 तक विश्वीय बिक्री योग्य वस्तु व्यापार के भारतीय भाग को दुगना करना इस नीति का प्रमुख उद्देश्य है और व्यापार नीति का प्रयोग इस उद्देश्य से करना है कि यह आर्थिक विकास का एक प्रभावी संयंत्र बन सके, जिसमें रोजगार प्रजनन पर मुख्य बल दिया गया हो।

इस व्यापार नीति (2004-09) ने कुछ दबाव वाले क्षेत्रों (Thrust Sectors) की पहचान कर ली है, जिनमें कि निर्यात प्रोत्साहन तथा रोजगार प्रजनन की संभावनाएं हैं। ये दबाव या धक्के वाले क्षेत्र हैं कृषि हैण्डलूम और हैंडीक्राफ्ट, हीरे और जवाहरात तथा चमड़ा और जूते।

संक्षेप में, वर्तमान विदेशी व्यापार नीति एक उदारवादी, प्रगतिशील, कम सीमाशुल्क तथा निर्यात प्रोत्साहन वाली नीति है।

■ 6. निर्यात-आयात नीति 2002-2007 (Export-Import Policy- 2002-2007)

भारत सरकार के वाणिज्य एवं उद्योगमंत्री ने निर्यात आयात नीति की घोषणा 31 मार्च, 2002 को की है। यह नीति 5 वर्षों की अवधि अर्थात् 2002-2007 के लिए लागू की गई है। इस प्रकार नई नीति दसवीं योजना की पूरी अवधि में लागू हुई। नई नीति की मुख्य विशेषता यह थी कि इसने देश की निर्यात-आयात नीति के आयात उदारीकरण पक्ष के स्थान पर निर्यात-प्रोत्साहन को सर्वाधिक महत्व दिया। इस नीति ने राष्ट्रीय सुरक्षा संबंधी कुछ मुद्दों को छोड़कर प्राय: सभी वस्तुओं के निर्यात पर **मात्रात्मक प्रतिबन्ध** समाप्त कर दिए। भारत सरकार ने नई नीति में अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगी बाजार में भारतीय निर्यातकर्त्ताओं को अधिक प्रतियोगी बनाने के उद्देश्य से कई महत्त्वपूर्ण सुविधाएं एवं रियायतें दी। यह नीति उस परिप्रेक्ष्य में जारी की गई जिसमें निर्यात की वृद्धि दर बहुत ही अधिक निराशाजनक अर्थात् केवल 1.6% रही। अतएव निर्यात दर में वृद्धि करना भारतीय अर्थव्यवस्था की अनिवार्यता था।

■ 7. विदेशी व्यापार (निर्यात-आयात) नीति-2004-09

(Foreign Trade (Export-Import) Policy 2004-09)

यू.पी.ए. सरकार ने 31 अगस्त, 2004 को वर्ष 2004-09 की अवधि हेतु एक नई व्यापार नीति की भी घोषणा की जो विदेश व्यापार नीति की अब तक की **एक्जिम नीति** (Exim-policy) की विषय सूची का स्थान लेगी। अगले पांच वर्षों में, निर्यात के विस्तार की संभावनाओं और रोजगार सृजन की संभाव्यता वाले क्षेत्रों पर ध्यान केन्द्रित करते हुए **वैश्विक पण्य व्यापार** (Global Merchandise Trade) में भारत के हिस्से को दुगुना करने की एक जोरदार निर्यातोन्मुखी रणनीति इस नीति की एक मुख्य घोषणा है। आशा है कि इन उपायों से अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिस्पर्द्धा बढ़ेगी और भारतीय निर्यातकों की स्वीकार्यता में और वृद्धि लाने में मदद मिलेगी।

■ विदेशी व्यापार नीति 2004-09 की विशेषताएं (Features of Foreign Trade Policy- 2004-09)

■ 7.1 उद्देश्य और रणनीति (Objectives and Strategy)

नई **विदेश व्यापार नीति** (FTP) में भारत के विदेशी व्यापार के **समग्र विकास** (Overall Development) का समेकित रूप से पर्यावलोकन किया गया है और इसे क्षेत्र के विकास के लिए अनिवार्य रूप से एक दिशा-निर्देश प्रदान किया गया है। यह दो **मुख्य उद्देश्य** (Major Objectives) के मद्देनजर तैयार की गई है:

वर्ष 2009 तक वैश्विक पण्य व्यापार (Global Merchndise Trade) में भारत के हिस्से को दुगुना करना और रोजगार सृजन पर जोर देते हुए व्यापार नीति को आर्थिक विकास के एक कारगर साधन के रूप में प्रयोग करना। इन उद्देश्यों को प्राप्त करने की मुख्य रणनीतियों में अन्य बातों के साथ-साथ

(i) **नियंत्रणों से मुक्त करना और विश्वास तथा पारदर्शिता का वातावरण सृजित करना;**

(ii) **प्रक्रियाओं का सरलीकरण** और **लेन-देन की लागतों को कम करना;**

(iii) निर्यात उत्पादों के लिए प्रयोग में लाने जाने वाले निवेश-साधनों पर सभी तरह के करों के प्रभाव को कम करना;

(iv) विनिर्माण, व्यापार और सेवाओं के क्षेत्र में एक वैश्विक केन्द्र के रूप में भारत के विकास को सहज बनाने, रोजगार के अतिरिक्त अवसरों का सृजन करने के लिए विशेष संकेन्द्रण वाले क्षेत्रों की विशेषरूप से अर्द्ध-शहरी और ग्रामीण इलाकों में, पहचान करना और उन्हें विकसित करना;

(v) भारतीय अर्थव्यवस्था के प्रौद्योगिकीय और संरचनात्मक उन्नयन को विशेष रूप से पूंजीगत वस्तुओं और उपकरणों के आयात के जरिए, सरल बनाना;

(vi) व्युत्क्रमित शुल्क तंत्र से बचना (Avoiduing Invested Duty Structure) और यह सुनिश्चित करना की व्यापारिक समझौते में घरेलू क्षेत्रों को कोई नुकसान नहीं होगा;

(vii) अन्तर्राष्ट्रीय मानकों के प्रति विदेश व्यापार की सम्पूर्ण शृंखला से संबंधित आधारढांचा नेटवर्क को उन्नत बनाना;

(viii) व्यापार मण्डल की भूमिका को पुनर्निधारित करते हुए तथा इसमें व्यापार नीति विशेषज्ञों को शामिल करते हुए इसकी पुन:स्थापना करना और निर्यात संबंधी रणनीति में प्रमुख भूमिका निभाने के लिए भारतीय दूतावासों को सक्रिय करना, शामिल है।

■ 7.2 विशेष रूप से ध्यान केन्द्रित किए जाने वाले उपाय (Special Focus Initiatives)

एफ टी पी 2004 ने कतिपय ऐसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों (Thrust Sectors) का पता लगाया है जहां निर्यात विस्तार और रोजगार सृजन की संभावनाएं हैं। ये महत्वपूर्ण क्षेत्र हैं: कृषि, हस्तशिल्प तथा हथकरघा, रत्न और जवाहरात तथा चमड़ा एवं फुटवेयर क्षेत्र। इन महत्वपूर्ण क्षेत्रों के लिए किए गए विशेष नीतिगत उपायों में,

(i) **कृषि क्षेत्र** (Agriculture Sector) के लिए फल, सब्जियों, फूलों, छोटे-छोटे वन उत्पादों तथा उनके मूल्य वर्द्धित उत्पादों के निर्यातों में तेजी लाने के लिए **विशेष कृषि उपज योजना** नामक एक नई योजना शुरू करना शामिल है। इस योजना के तहत, इन उत्पादों के निर्यातों को निवेश साधनों और अन्य वस्तुओं का आयात करने के लिए शुल्क मुक्त ऋण की पात्रता के लिए योग्य ठहराया गया है। कृषि क्षेत्र के लिए अन्य घटकों में, निर्यात संवर्धन पूंजीगत वस्तु (EPCG) योजना के तहत पूंजीगत वस्तुओं का शुल्क मुक्त आयात करना, कृषि निर्यात क्षेत्र (AEZ) में कहीं से भी कृषि के लिए (EPCG) के तहत आयातित पूंजीगत वस्तुओं की संस्थापना की अनुमति देना, कृषि निर्यात क्षेत्रों के विकास के लिए निर्यात हेतु बुनियादी सुविधा के विकास हेतु राज्यों को दी गई सहायता की धनराशि का उपयोग करना, बीजों, कंदों (बल्बों), ट्यूबरों और रोपण सामग्री के आयात का उदारीकरण, औषधीय पौधों और जड़ी-बूटी संबंधी उत्पादों के निर्यात को बढ़ावा देने के लिए पौधे के अंशों, व्युत्पन्नों और अर्क के निर्यात का उदारीकरण करना शामिल है।

(ii) **हथकरघा और हस्तशिल्प क्षेत्रों** (Handlooms and Handicrafts Sectors) के लिए जिन उपायों पर विशेष रूप से ध्यान केन्द्रित किया गया है वे हैं: हथकरघा और हस्तशिल्प के लिए उपकरणों (ट्रिमिंग) और अलंकरणों के शुल्क मुक्त आयात में वृद्धि करने, नमूनों को प्रतिकारी शुल्क (CVD) से छूट प्रदान करने, छोटे निर्माताओं के लिए उपकरणों (ट्रिमिंग), अलंकरणों और नमूनों का आयात करने के लिए हस्तशिल्प निर्यात संवर्धन परिषद को प्राधिकृत करने और एक नए हस्तशिल्प विशेष आर्थिक क्षेत्र की स्थापना करने की सुविधाएँ प्रदान करना।

(iii) **रत्न एवं जवाहरात क्षेत्र** (Gems and Jewellery Sector) के तहत की गई प्रमुख नीतिगत घोषणा में से शामिल हैं: स्वर्ण एवं प्लैटिनम से भिन्न धातुओं की उपभोज्य वस्तुओं के निर्यात के पोत पर्यन्त नि:शुल्क मूल्य के 2 प्रतिशत तक के शुल्क मुक्त आयात की मंजूरी देना; अस्वीकृत जवाहरातों के निर्यातों के पोत पर्यन्त नि:शुल्क मूल्य के 2 प्रतिशत तक अनुमेय शुल्क मुक्त पुनर्आयात की पात्रता; एक लाख तक के जवाहरातों के वाणिज्यिक नमूनों के शुल्क मुक्त आयात में वृद्धि और संपूर्ति योजना के तहत 18 कैरट और इससे ऊपर के स्वर्ण के आयात की मंजूरी देना।

(iv) **चमड़ा और फुटवेयर क्षेत्र** (Leather and Footwear Sector) में विशिष्ट नीतिगत उपाय मुख्यत: निवेश साधनों और संयंत्रों एवं मशीनों पर सीमाशुल्क लगाने के प्रसंगों में कमी करने के रूप में है। इस क्षेत्र के लिए प्रमुख नीतिगत घोषणाओं में ये शामिल हैं: उपकरणों (ट्रिमिंग), अलंकरणों और चमड़ा उद्योग के लिए फुटवेयर घटकों के निर्यातों के पोत पर्यन्त नि:शुल्क मूल्य के 3 प्रतिशत तक शुल्क आयात और चमड़ा क्षेत्र के लिए विनिर्दिष्ट मदों का निर्यातों के पोत पर्यन्त नि:शुल्क मूल्य के 5 प्रतिशत तक शुल्क मुक्त आयात की पात्रता की सीमा बढ़ाना; चमड़ा उद्योग के एफ्लुएंट ट्रीटमेंट प्लांटों के लिए मशीनों एवं उपकरणों के आयात को सीमा शुल्क से छूट देना; और अनुपयुक्त सामग्रियों (जैसे कि कच्ची खाल, चमड़ा और गीला नीला चमड़ा) के पुनर्निर्यात की अनुमति देना। उपर्युक्त महत्वपूर्ण क्षेत्रों में नामित **'टाऊंस ऑफ एक्सपोट एक्सीलेंस'** (Towns of Export Excellence) की प्रारम्भिक सीमा भी 1,000 करोड़ रुपये से घटाकर 250 करोड़ रुपये कर दी गई है।

■ 7.3 नई निर्यात संवर्धन योजनाएं (New Export Promotion Schemes)

निर्यातों की वृद्धि में तेजी लाने के लिए **'टारगेट प्लस'** (Target Plus) नामक एक नई योजना शुरू की गई है। **इस योजना के तहत, निर्यातों में भारी वृद्धि लाने वाले निर्यातक वृद्धिशील निर्यातों जो निर्यात के लिए सामान्य रूप से निर्धारित वास्तविक**

लक्ष्य से काफी अधिक हों, के आधार पर शुल्क मुक्त क्रेडिट के लिए पात्र हैं 20 प्रतिशत से अधिक, 25 प्रतिशत और 100 प्रतिशत की अतिरिक्त वृद्धि के लिए शुल्क मुक्त क्रेडिट (Free Credit) **वृद्धिशील निर्यातों** (Incremental Exports) के पोत पर्यन्त नि:शुल्क मूल्य का क्रमश: 5 प्रतिशत, 10 प्रतिशत और 15 प्रतिशत हैं।

फलों, सब्जियों, फूलों, छोटे-छोटे वन उत्पादों और उनके मूल्य वर्द्धित उत्पादों के निर्यातों में बढ़ोतरी करने के लिए **विशेष कृषि उपज योजना नामक एक दूसरी नई योजना शुरू की गई है।** इन उत्पादों का निर्यात, निर्यातों के पोत पर्यंत नि:शुल्क मूल्य के 5 प्रतिशत के समकक्ष शुल्क मुक्त क्रेडिट पात्रता के योग्य बनाता है। पात्रता निर्मक्त रूप से हस्तांतरणीय (Entitlement is freely transferable) है और इसका कई तरह के निवेश साधनों और वस्तुओं के आयात के लिए प्रयोग किया जा सकता है। एक शक्तिशाली और विशिष्ट किस्म की **'सर्वड फ्रॉम इण्डिया'** (Served from India) ब्रांड जिसे तत्काल मान्यता दी गई है और पूरे विश्व में सम्मान प्राप्त हुआ है, का सृजन करने के लिए सेवाओं की निर्यात संवृद्धि में तेजी लाने हेतु सेवाओं के लिए शुल्क मुक्त निर्यात क्रेडिट (DFEC) की पूर्व योजना में पुन: सुधार करके 'सर्वड फ्राम इण्डिया' नामक एक नई योजना के रूप में स्थापित किया गया है।

पृथक-पृथक सेवा प्रदाता (Individual Service Providers) जो कम-से-कम 5 लाख रुपये की विदेशी मुद्रा अर्जित करते हैं और **अन्य सेवा प्रदाता** (Other Service Providers) जो कम-से-कम 10 लाख रुपये की विदेशी मुद्रा अर्जित करते हैं उनके द्वारा अर्जित विदेशी मुद्रा के 10 प्रतिशत की शुल्क मुक्त हकदारी के पात्र हैं।

एकल रेस्तरां (Stand-alone Restourents) के मामले में हकदारी 20 प्रतिशत है जबकि होटलों के मामले में यह 5 प्रतिशत है। होटल और रेस्तरां अपनी शुल्क मुक्त हकदारी का प्रयोग खाद्य मदों और अल्कोहल युक्त पेय पदार्थों के लिए कर सकते हैं।

भारत को एक वैश्विक व्यापार केन्द्र बनाने के लिए, **'फ्री ट्रेड एण्ड वेयर हाऊसिंग जोन'** (Free Trade and Ware-housing Zone - FTWZ) की स्थापना हेतु एक नई योजना शुरू की गई है जो परिवर्तनीय मुद्राओं में व्यापारिक लेन-देन करने की स्वतंत्रता से वस्तुओं और सेवाओं के आयात और निर्यात को सुविधाजनक बनाने के लिए व्यापार से सम्बद्ध आधार ढांचे का सृजन करेगी। इन क्षेत्रों की स्थापना और विकास हेतु 100 प्रतिशत तक विदेशी प्रत्यक्ष निवेशों के लिए अनुमति देने के अलावा प्रत्येक क्षेत्र का न्यूनतम परिव्यय 100 करोड़ रुपये होगा और इसके अधीन पांच लाख वर्ग मीटर का निर्मित क्षेत्र होगा। **एफ टी डब्ल्यु जेड** (FTWZ) के यूनिट एस ई जेट यूनिटों पर लागू अन्य सभी लाभों के पात्र हैं।

■ 7.4 वर्तमान योजनाओं का सरलीकरण/यौक्तिकीकरण/संशोधन
(Simplification/Rationalization/Modifications of Ongoing Schemes)

निर्यात दायित्व (Export Obligation) को पूरा करने के लिए **अतिरिक्त नम्यता** (Additional Flexibility) प्रदान करने, प्रौद्योगिकी उन्नयन को सरल बनाने और उसके लिए प्रोत्साहन प्रदान करने, समूह विशेष की कम्पनियों और संबंधित होटलों को पूंजीगत वस्तुओं के अन्तरण की स्वीकृति देने, केन्द्रीय उत्पाद शुल्क से प्रमाण-पत्र की आवश्यकता को हटाने (सेवा क्षेत्र में चल पूंजीगत वस्तुओं के मामले में) और विनिर्दिष्ट परियोजनाओं की, उन्हें स्वीकृत **रियायती शुल्क** (Concenssional Duty) पर आधारित उनके निर्यात दायित्वों का परिकलन करते हुए क्षमता बढ़ाने के जरिए **ई पी सी जी योजना** (EPCG Scheme) में आगे और सुधार किया गया है। अवधि संबंधी किसी प्रतिबंध के बिना पुरानी पूंजीगत वस्तुओं के आयात की मंजूरी दी गई है और भारत में पुन: स्थापित किए जाने वाले संयंत्र एवं मशीनरी का न्यूनतम हासिल मूल्य 50 करोड़ रुपये से घटाकर 25 करोड़ रुपये कर दिया गया।

इस नई नीति में, **पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस मंत्रालय द्वारा प्राधिकृत विपणन एजेंसियों** (Authorised Market Agencies) को ईंधन के संबंध में **शुल्क मुक्त संपूर्ति प्रमाण-पत्र** (Duty Free Replenishment Certificate - DFRC) योजना के तहत आयत की हकदारी के अन्तरण की अनुमति दी गई है जिससे अलग-अलग निर्यातकों द्वारा ऐसे आयातों को आऊटसोर्सिंग करने में आसानी हो।

शुल्क पात्रता पासबुक (Dutry Entitlement Pass Book - DEPB) योजना तब तक जारी रहेगी जब तक कि इसे निर्यातकों के परामर्श से तैयार की गई एक नई योजना से प्रतिस्थापित नहीं किया जाता।

निर्यातोन्मुख इकाइयों (Export Oriented Units - EOU) को अतिरिक्त लाभ प्रदान किए गए हैं जैसे कि उनके द्वारा निर्यात की गई वस्तुओं और सेवाओं के समानुपात में सेवा कर से छूट, निर्यातों से हुई शत-प्रतिशत आमदनी को **निर्यात अर्जक विदेशी मुद्रा** (Export Earners Foreign Currency - EEFC) खातों में बनाए रखने की अनुमति, **DTA इकाइयो** को जिन्हें **EOU/इलेक्ट्रानिक हार्डवेयर टेक्नोलोजी पार्क (EHT)।**

साफ्टवेयर टेक्नोलोजी पार्क (STP)/बायो-टेक्नोलोजी पार्क (BTP) इकाइयों में परिवर्तित किया जाता है, संयंत्र एवं मशीनरी पर आय कर लाभ प्रदान करना, स्वत: प्रमाणन आधार पर पूंजीगत वस्तुओं के आयात की अनुमति और लागत बीमा भाड़ा मूल्य अथवा आयात की मात्रा के 2 प्रतिशत तक बची हुई सामग्री तथा वस्त्रों का केवल लेन-देन के मूल्य पर शुल्क की अदायगी करके निपटान करने (कपड़ा एवं वस्त्र विनिर्माण क्षेत्र में EOU के लिए) की अनुमति देना।

ब्रास, हार्डवेयर तथा हाथ से बने आभूषणों का लेन-देन करने वाले EOU के लिए न्यूनतम निवेश मानदण्ड भी समाप्त कर दिया गया है (यह सुविधा हस्तशिल्प, कृषि, पुष्प कृषि, मत्स्यपालन, पशु पालन, सूचना प्रौद्योगिकी और सेवाओं के लिए पहले से मौजूद है)। FTP ने शत-प्रतिशत EOU की सभी सुविधाएं प्रदान करते हुए BTP की स्थापना का प्रस्ताव दिया है।

FTP 2004 ने सितारा (स्टार) निर्यात गृहों (Star Export Houses) के रूप में पदधारियों का वर्गीकरण की एक नई युक्तिसंगत योजना शुरू की है जिसमें निर्यात निष्पादन की निर्धारित सीमा (चालू वर्ष और गत तीन वर्षों के दौरान) 15 करोड़ रुपये (एक सितारा निर्यात गृह के लिए) से 5000 करोड़ रुपये (पांच सितारा निर्यात गृह के लिए) होगी। इस नई योजना से ऐसे बहुत से छोटे निर्यातकों को महत्व प्राप्त होगा जो अब तक उपेक्षित थे। ऐसे सितारा निर्यात गृहों से कई तरह की सुविधाएं प्राप्त होंगी जैसे कि शीघ्र निपटान की प्रक्रियाएं, बैंक गारण्टी प्रस्तुत करने में छूट, टारगेट प्लस योजना के तहत शामिल किए जाने की पात्रता आदि।

■ 7.5 नियमों और प्रक्रियाओं का सरलीकरण तथा संस्थागत उपाय

(Simplification of Rules and Procedures and Institutional Meaaures)

नियमों और प्रक्रियाओं को और अधिक युक्तिसंगत/सरल बनाने के लिए घोषित नीतिगत उपायों में,

(i) 5 करोड़ रुपये की **न्यूनतम आमदनी** और अच्छे ट्रैक रिकार्ड वाले निर्यातकों को किसी भी स्कीम में बैंक गारण्टी प्रस्तुत करने से छूट,

(ii) सभी वस्तुओं और सेवाओं के निर्यात के लिए सेवा कर से छूट,

(iii) विभिन्न योजनाओं के तहत जारी किए जाने वाले सभी लाइसेंसों/हकदारियों की वैधता को एक समान रूप से 24 महीने के लिए बढ़ाना,

(iv) भरे जाने वाली विवरणियों और फार्मों की संख्या में कमी करना,

(v) क्षेत्रीय और प्रादेशिक कार्यालयों को अधिक शक्तियां प्रदान करना और **इलेक्ट्रानिक आंकड़ा अंतरापृष्ठ** (Electronic Data Interface -EDI) को समयबद्ध रूप से लागू करना शामिल है।

FTP 2004 में प्रस्तावित **संस्थागत** उपायों में व्यापार मंडल में सुधार करते हुए (i) उसे पुन: स्थापित करना, (ii) प्रमुख बाजारों में मुख्य सेवाओं के लिए अवसरों की व्यवस्था करने के लिए एकमात्र सेवा निर्यात संवर्धन परिषद की स्थापना करना और
(iii) राज्य तथा जिला स्तर के कस्बों में व्यवसायिक गृह आधारित सेवा प्रदताओं के उपयोग हेतु साधारण सुविधा केन्द्रों की स्थापना करना शामिल हैं।

दिल्ली में **प्रगति मैदान को एक विश्व स्तरीय काम्पलैक्स में बदलने का प्रस्ताव है।** जिसमें कला से पूर्ण पर्यावरण की दृष्टि से नियंत्रित दर्शकों के अनुरूप प्रदर्शनी स्थलों और बाजारों की व्यवस्था की जाएगी। **FTP 2004 ने निर्यात संवर्धन परिषद** (Export Promotion Councils) **की सिफारिश पर पात्र निर्यातकों** (Deserving Exporters) **के लिए व्यापार से संबंधित मामलों के संबंध में विविध खर्चों की लागतों** (Cost of Legal Expenses) **को पूरा करने के लिए प्रावधान करने का भी प्रस्ताव किया है।**

■ 8. नई वार्षिक विदेश व्यापार नीति - 2006-07
(New Annual Foreign Trade Policy - 2006-07)

वाणिज्य मन्त्री **श्री कमल नाथ** ने **वर्ष 2006-07** के लिए नई विदेशी व्यापार नीति की घोषणा 7 अप्रैल, 2006 को की। वाणिज्य मन्त्री ने कहा कि निर्यात क्षेत्र में **रोजगार की अपार संभावनाएं** हैं और इस समय इस क्षेत्र में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष कुल 1.60 करोड़ रोजगार उपलब्ध है। उन्होंने वार्षिक विदेश व्यापार नीति 'Towards Employment Oriented export Strategies' को ज़ारी किया, जिसमें निष्कर्ष निकाला गया है कि 2010 तक भारत का निर्यात 16.50 करोड़ डालर तक पहुँच जाएगा, जिससे करीब 2.1 करोड़ नए रोजगार सृजित होंगे। सरकार ने वर्ष 2006-07 में निर्यात बढ़ाने पर विशेष जोर दिया है और इसके लिए कई प्रकार के प्रोत्साहन दिए हैं। देश का निर्यात पहली बार 100 अरब डालर के पार चला गया है।

विदेश व्यापार नीति में लगातार तेजी से बढ़ रहे निर्यात क्षेत्र को और मज़बूत बनाने के लिए कई महत्त्वपूर्ण पहल की घोषणा की है। विदेश व्यापार नीति के इस पूरक दस्तावेज में **रत्न एवं आभूषण क्षेत्र के निर्यात** के लिए विशेष कदम उठाए गए हैं और **बेशकीमती रत्नों के आयात के नियमों को सरल बनाने** पर जोर दिया गया। **सेवा निर्यात** को बढ़ावा देने पर भी खास बल दिया गया है। **टार्गेट प्लस योजना खत्म कर दी गई है** और इसकी जगह **उत्पाद विशेष** और **बाज़ार विशेष** के लिए दो नई योजनाएं घोषित की गई हैं। वाणिज्य मन्त्री ने बताया कि 2005-06 में निर्यात 101 अरब डालर के बराबर रहा जो इससे पिछले वर्ष से 25 प्रतिशत अधिक है। **नए साल में निर्यात का लक्ष्य** 120 अरब डालर रखा गया है।

नई वार्षिक विदेश व्यापार नीति की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं:

■ 8.1 निर्यात: रोजगार सृजन का अहम क्षेत्र बना
(Export: Main Sector for Employment Generation)

निर्यात क्षेत्र देश की अर्थव्यवस्था में रोजगार सृजन के महत्वपूर्ण स्रोत के रूप में लगातार उभर रहा है और इसमें सालाना करीब 15 लाख अतिरिक्त रोजगार के अवसर बन रहे हैं। केंद्रीय वाणिज्य मंत्री कमलनाथ द्वारा जारी विकासशील देशों के लिए अनुसंधान एवं सूचना प्रणाली (IRS) की रिपोर्ट के अनुसार भारत में निर्यात क्षेत्र में वर्ष 2004-05 के दौरान प्रत्यक्ष रूप से 14.85 लाख रोजगार का सृजन हुआ। उन्होंने बताया कि निर्यात क्षेत्र में इस समय लगभग एक करोड़ 60 लाख लोगों को रोजगार मिला हुआ है। श्री कमलनाथ ने इस रिपोर्ट पर टिप्पणी करते हुए कहा कि रोजगार सृजन संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन सरकार के राष्ट्रीय न्यूनतम सांझा कार्यक्रम की प्राथमिकताओं में सबसे उपर है।

उन्होंने कहा कि सचेत बहुमुखी प्रयासों से ही देश के लाखों बेरोजगार युवाओं के लिए रोजगार की चुनौती का सामना किया जा सकता है। निर्यातोन्मुखी उत्पादन क्षेत्र में रोजगार की अपार संभावनाएं हैं। रिपोर्ट के अनुसार, निर्यात क्षेत्र में प्रत्यक्ष रूप से इस समय करीब 90 लाख लोगों को रोजगार मिला हुआ है। इसके अलावा करीब 70 लाख लोगों को अप्रत्यक्ष रूप से रोजगार मिला है। वर्ष 2009 तक निर्यात क्षेत्र में प्रत्यक्ष रूप से 80 लाख नई नौकरियों के सृजन की उम्मीद की जा रही है। वर्ष 2009-10 तक देश का निर्यात 150 अरब डालर तक करने के लक्ष्य का जिक्र करते हुए रिपोर्ट में कहा गया है कि इस लक्ष्य को पाने के दौरान इस क्षेत्र में एक अरब 36 लाख नई नौकरियों का सृजन होगा। इसमें करीब 81 नौकरियां प्रत्यक्ष रूप से एवं 55 लाख अप्रत्यक्ष रूप से सृजित होंगी। रिपोर्ट के अनुसार अगर भारत श्रमसाध्य वस्तुओं के निर्यात में अवसरों का लाभ उठा सकें तो उसका निर्यात 2009-10 में 165 अरब डालर के स्तर पर पहुँच सकता है।

निर्यात संबंधी उद्योगों में उपलब्ध रोजगार

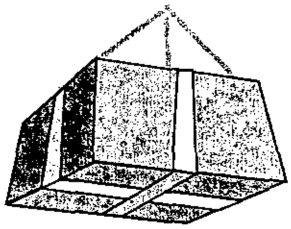

	भारत का निर्यात (अरब डॉलर में)	प्रत्यक्ष रोजगार	अप्रत्यक्ष रोजगार
2001-02	43.83	59.20	48.28
2002-03	53.32	71.67	59.29
2003-04	62.99	75.22	58.70
2004-05	79.63	90.06	69.66
2009-10	150.00#	171.60	124.30
2009-10	165.00*	214.50	155.98

सामान्य व्यापार की हालत में रोजगार की संख्या *काफी अच्छे व्यापार की स्थिति में रोजगार की संख्या (लाख में)

(Source: Research and Information System for Developing Countries)

■ 8.2. रत्न व आभूषण के निर्यात में वृद्धि के लिए विशेष कदम (Special Steps to Increase the Export of Gems and Jewellery)

नई व्यापार नीति में कहा गया है कि भारत रत्न एवं आभूषणों के निर्यात को बढ़ावा देने के लिए बेशकीमती रत्नों के आयात नियम को सरल बनाएगा। केंद्रीय वाणिज्य एवं उद्योग मंत्री कमलनाथ ने अपनी नई विदेश व्यापर नीति में रत्न एवं आभूषण क्षेत्र के निर्यात को बढ़ाने के लिए कीमती धातुओं की कतरन और उपयोग हो चुके आभूषणों के आयात की अनुमति के साथ-साथ निर्यात की मूल्यवर्धन शर्त 7 प्रतिशत से घटा कर 4.5 करने जैसे विशेष कदमों की घोषणा की। उन्होंने कहा कि मुंबई को रत्न एवं आभूषणों के व्यापार के क्षेत्र में दुबई एवं तेल अबीब (Tel Aviv) का मुकाबला करना होगा। उन्होंने कहा कि वह रत्न एवं आभूषणों की ऐसी कई बगैर उपयोग में लाई गई निर्माण इकाइयां हैं जिनका फिर से उद्धार करने की जरूरत है। वाणिज्य मंत्री ने कहा कि बेशकीमती रत्नों के आयात नियम को सरल बनाया जाएगा।

उन्होंने यह भी कहा कि कर लाभ केवल इनपुट (Input) को दिया जाएगा न कि परिष्कृत आभूषण उत्पाद को। उन्होंने कहा कि अक्सर निर्यातक विदेशी बाजार में कई कारणों से आभूषणों के अनबिके रह जाने की समस्या का सामना करना पड़ता है। इस समस्या से निजात पाने के लिए अब निर्यातकों की खेप के आधार पर आभूषणों के निर्यात की अनुमति होगी। छटे और पॉलिश किए हुए रत्नों को अंतर्राष्ट्रीय बाजार में अच्छी कीमत मिलती है। इसके लिए रत्न एवं आभूषण निर्यातकों को अब 120 दिनों के भीतर इस तरह की वस्तुओं को दोबारा आयात करने की अनुमति होगी। श्री कमलनाथ ने कहा कि पिछले कुछ वर्षों के दौरान अंतर्राष्ट्रीय बाजार में सोने और चांदी की कीमतों में आई उछाल से सोने एवं चांदी के आभूषणों के निर्यात पर लागू वर्तमान मूल्यवर्धन शर्त बेमानी हो गई है इसलिए इसे सात से घटा कर 4.5 प्रतिशत कर दिया गया है।

■ 8.3 तेल का आयात बिल (Import Bill of Oil)

भारत का तेल आयात बिल उच्च वैश्विक तेल कीमतों के कारण 2005-06 में 48 प्रतिशत उछलकर 43 अरब डालर तक जा पहुँचा। वाणिज्य एवं उद्योग मंत्री कमलनाथ ने यह जानकारी दी।

नई वार्षिक विदेश व्यापार नीति की घोषणा के अवसर पर वाणिज्य मंत्री ने कहा कि भारत कच्चे तेल की अपनी जरूरतों के 73 प्रतिशत तक का आयात करता है और एल पी जी (LPG) जैसे पेट्रोलियम उत्पादों को विदेशों से सोर्स करता है। उन्होंने कहा कि हमारा आयात 32 प्रतिशत बढ़ा है एवं 140 अरब डालर का है लेकिन तेल आयात बिल 43 अरब डालर तक पहुँच गया है। 2004-05 में

भारत का तेल आयात बिल 29 अरब डालर के करीब था जिसमें से 25 अरब डालर केवल कच्चे तेल के आयात पर ही खर्च किया गया था।

■ 8.4 सेवा निर्यात को बढ़ावा देने पर बल (Emphasis to Increase Service Export)

सरकार ने नई विदेश व्यापार नीति में **सर्वड फ्राम इंडिया** (Served From India) के तहत कुछ नई सुविधाएं जोड़कर सेवा निर्यात को बढ़ाने के उपाय घोषित किए हैं। वाणिज्य एवं उद्योग मंत्री कमलनाथ ने अपनी विदेश व्यापार नीति की घोषणा के दौरान बताया कि सेवा निर्यात भारत के सकल घरेलू उत्पाद (GDP) में 52 प्रतिशत का योगदान देता है और देश के शहरी क्षेत्र के पढ़े-लिखे बेरोजगारों को बड़ी संख्या में रोजगार प्रदान करता है।

उन्होंने कहा कि ऐसा सेवा निर्यात जिसका भुगतान भारतीय रुपए में होता है लेकिन जिसके लिए रिजर्व बैंक से विदेशी मुद्रा में भुगतान मान लिया जाता है, ऐसे निर्यात को भी सर्वड फ्राम इंडिया योजना का लाभ दिया जाएगा। इसके अलावा, अंतर्राष्ट्रीय क्रेडिट कार्ड तथा रिजर्व बैंक द्वारा शुरू की गई अन्य सुविधाएं जो कि सेवा उपलब्ध कराने वालों को दी गई है, उन्हें भी सर्वड फ्राम इंडिया योजना के तहत पात्रता में शामिल किया जाएगा।

जहां तक केवल रेस्तरां का मामला है उन्हें अब माल लदान निर्यात मूल्य का 10 प्रतिशत की दर से सर्वड फार्म इंडिया योजना का लाभ उपलब्ध होगा जबकि इससे पहले यह 20 प्रतिशत तक मिलता था।

■ 8.5 नई वार्षिक विदेश व्यापार नीति 2006-07 की प्रमुख बातें (Highlights of New Foreign Trade Policy 2006-07)

1. वर्ष 2005-06 के दौरान निर्यात 101 अरब डॉलर और आयात 140 अरब डॉलर की ऊंचाई पर।
2. वर्ष 2006-07 के दौरान 120 अरब डॉलर निर्यात का लक्ष्य।
3. टार्गेट प्लस योजना समाप्त कर दी गई है।
4. फोकस प्रोडक्ट और फोकस मार्केट नामक नई योजनाएं।
5. एक्सपोर्ट प्रोमोशन क्रेडिट गारंटी योजना को लचीला बनाया है।
6. आभूषण और जवाहरात का निर्यात बढ़ाने के लिए बहुमूल्य धातुओं और रत्न का आयात आसान बनाया गया है।
7. अंतर्राष्ट्रीय उड़ानों में खानपान, ईंधन आदि की आपूर्ति को निर्यात में गिना जाएगा।
8. भारतीय करेंसी में सेवा क्षेत्र के निर्यात को सर्वड फ्राम इंडिया स्कीम के लाभ दिए जाएंगे।
9. विशेष कृषि उपज योजना का विस्तार ग्रामीण और कुटीर उद्योगों तक कर दिया है।
10. जीन परिशोधित बीज के आयात पर सरकार स्पष्ट दिशानिर्देश जारी करेगी।
11. आटो कंपोनेंट बनाने वालों की विदेशी घड़ी के आयात में रियायत दी गई है।

■ 9. नई विदेशी व्यापार नीति (2004-2009) का मूल्यांकन (Evaluation of New Foreign Trade Policy 2004-2009)

नई विदेशी व्यापार नीति का मुख्य उद्देश्य विश्व व्यापार में भारत का प्रतिशत हिस्सा दुगुना करना है। वर्ष 2003-04 में हिस्सा 0.8 प्रतिशत था। इसे 2008-2009 में बढ़ाकर 1.6 प्रतिशत करने का लक्ष्य है। वर्ष 2006 में भारत का विश्व निर्यातों में हिस्सा बढ़कर 1.0 प्रतिशत हो गया है। भारत के निर्यात व आयात तेजी से बढ़ रहे हैं। इसके लिए कुछ नई निर्यात-संवर्धन योजनाएँ शुरू की गई हैं। नई नीति के मुख्य गुण निम्नलिखित हैं:

(1) व्यापक (Comprehensive): इस निर्यात-आयात नीति का क्षेत्र बहुत व्यापक है। यह सभी क्षेत्रों जैसे कृषि, कुटीर उद्योग, हस्तशिल्प तथा लघु उद्योग क्षेत्रों आदि सभी पर लागू होती है। इस प्रकार इस नीति के फलस्वरूप ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाली जनसंख्या लाभान्वित होगी व शहरी क्षेत्रों में रह रहे बहुत से लोगों को इससे लाभ होगा।

(2) आर्थिक संवृद्धि को बढ़ावा देने का साधन (Means to Boost Economic Growth): नई विदेशी व्यापार नीति में विदेशी व्यापार को आर्थिक संवृद्धि को बढ़ावा देने का एक संयंत्र माना गया है। इस नीति का मुख्य उद्देश्य केवल विदेशी मुद्रा अर्जित करना ही नहीं है, बल्कि इसके साथ-साथ आर्थिक विकास के लिए आवश्यक आयातों को सुविधाजनक बनाना भी इसका उद्देश्य है। वर्ष 2004-05 में भारत के विदेशी व्यापार में 24.2 प्रतिशत की दर से वृद्धि हुई। वर्ष 2005-06 में यह वृद्धि दर 31.2 प्रतिशत थी।

(3) रोजगार-प्रेरक (Employment Generation): नई नीति में कृषि, हस्तकला, हथकरघा, रत्नाभूषण, चमड़ा व जूता उद्योग क्षेत्रों को बढ़ावा देकर रोजगार के अवसरों में वृद्धि करने की योजना बनाई गई है। उत्पाद विशेष योजना कुछ उत्पादों जैसे मछली, चमड़े का सामान, खेल का सामान, हथ-करघा, हस्तकला, आतिश-बाजी आदि के निर्यात को बढ़ावा देगी। ये सभी उत्पाद श्रम-प्रधान तरीके से बनाये जाते हैं। पिछले 3 वर्षों में निर्यातों में होने वाली वृद्धि से 75 लाख रोजगार के अवसर उत्पन्न हुए हैं।

(4) उत्कृष्ट निर्यात के शहर (Towns of Export Excellence): उत्कृष्ट निर्यात के शहरों के लिए निर्यात की राशि को 1000 करोड़ से कम करके 250 करोड़ कर दिया गया है। इससे अधिक शहरों को यह दर्जा मिल गया है। अब इन शहरों को भी उत्कृष्ट निर्यात शहरों को दी जाने वाली सुविधाएं प्राप्त हो पायेंगी।

(5) वस्तुओं के निर्यात में वृद्धि (Increase in Merchandise Exports): नई निर्यात-आयात नीति में भारत के निर्यातों को बढ़ावा मिला है। वर्ष 2005-06 में भारत से वस्तुओं का निर्यात 100 बिलियन डॉलर से भी अधिक था तथा वर्ष 2006-07 के अंत में यह बढ़कर 125 बिलयन डॉलर हो गया है। पिछले पाँच वर्षों (2002-03 से 2006-07) में भारत के वस्तुओं के निर्यात में 22 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से वृद्धि हुई है।

(6) सेवाओं का निर्यात (Export of Services): सेवा-निर्यात-संवर्धन-काउंसिल (Service-Export Promotion Council) तथा 'Served from India' ब्रांड विकसित करने से सेवा-क्षेत्र को लाभ होगा। वर्ष 2005 में भारत की सेवाओं का निर्यात्, कुल विश्व की सेवाओं के निर्यात का 2.3 प्रतिशत हो गया है। सेवाओं के निर्यात में भारत विश्व का ग्यारहवां बड़ा निर्यातक देश बन गया है। पिछले 5 वर्षों में सेवाओं के निर्यात में 28 प्रतिशत की दर से वृद्धि हुई है।

(7) मुक्त-व्यापार और वेयर-हाऊसिंग क्षेत्रों की स्थापना (Setting up of Free Trade and Warehousing Zones): इन क्षेत्रों की स्थापना से भारत का विश्व-व्यापार में हिस्सा बढ़ेगा तथा भारत एक विश्व-व्यापार केन्द्र बन पायेगा।

(8) पुराने पूंजीगत सामान का आयात (Import of Second-hand Capital Goods): पुराने पूंजीगत सामान के आयात पर आयु-प्रतिबंधों को हटाये जाने से बहुत-सी घरेलू कम्पनियों को लाभ होगा।

(9) विशेष आर्थिक क्षेत्रों की स्थापना (Setting up of Special Economic Zones): विशेष आर्थिक क्षेत्रों की स्थापना से भारत के निर्यातों को बढ़ावा मिलेगा। वर्ष 2005 में विशेष आर्थिक क्षेत्र अधिनियम पारित किया गया है। यह अधिनियम निर्यातकों को कर में छूट व अन्य सुविधाएं उपलब्ध करवाएगा।

(10) कार्यविधियों का सरलीकरण (Procedural Simplification): 5 करोड़ रुपये से अधिक निर्यात करने वाले निर्यातकों को बैंक-गारंटी प्रावधानों से मुक्त कर-दिया गया है। विदेशी-व्यापार में प्रयोग होने वाले फार्मों की संख्या को कम किया गया है तथा इन्हें सरल बनाया गया है। विदेशी-व्यापार से जुड़े विवादों का शीघ्र निपटारा करने के लिए शिकायत-निवारण फोरम (Grievance-Redressal Forum) की स्थापना की गई है। इन सभी से निर्यातकों व आयातकों को लाभ होगा।

(11) लघु, कुटीर व हस्तकला उद्योगों को प्रोत्साहन (Boost for Small, Cottage and Handicraft Industries): निर्यात-आयात नीति में लघु, कुटीर, हथकरघा व हस्तकला उद्योगों को विभिन्न रियायतें दी गई हैं।

(12) कृषि क्षेत्र को प्रोत्साहन (Boost for Agriculture Sector): कृषि-निर्यातों को बढ़ावा देने के लिए 'विशेष कृषि उपज एवं ग्राम उद्योग योजना' की शुरुआत की गई है। इससे कृषकों को निर्यात बढ़ाने में सहायता मिलेगी। इससे ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसरों में वृद्धि होगी। इसके अलावा पिछली निर्यात-आयात नीति में स्थापित कृषि-निर्यात क्षेत्रों (Agri-Export Zones) को सुदृढ़ बनाया जायेगा। इससे कृषि निर्यात में वृद्धि होगी।

(13) निर्यातों में अधिक वृद्धि दर के लिए अधिक प्रेरणाएं (More Incentives for Higher Growth Rate in Exports): नई 'Target Plus' योजना में, निर्यातों में वृद्धि दर के आधार पर बढ़ती दरों से रियायतें दी गई हैं, अर्थात् निर्यातों में अधिक वृद्धि दर पर अधिक रियायतें व निर्यातों में कम वृद्धि दर पर कम रियायतें दी गई हैं। इससे निर्यातकों को अपने निर्यातों को अधिक दर से बढ़ाने के लिए प्रोत्साहन मिलेगा और वे अधिक रियायतें लेने के लिए निर्यातों को अधिक दर से बढ़ाने का प्रयत्न करेंगे।

(14) निर्यातों का विविधीकरण (Diversification of Exports): नयी योजनाएं- विशेष उत्पाद योजना व विशेष बाज़ार योजना, भारत के निर्यातों में विविधीकरण लाएंगी। अब बहुत से नये उत्पादों को नये बाज़ारों में निर्यात किया जायेगा।

(15) आसान आयात (Liberal Imports): पूंजीगत सामान, कच्चे माल तथा तकनीक के आयात को सरल बनाया गया है। इससे घरेलू क्षेत्र की कार्यक्षमता में सुधार होगा।

(16) रत्नाभूषण उद्योग को बढ़ावा (Boost to Gem and Jewellery Industry): इस निर्यात-आयात नीति में **रत्नाभूषण उद्योग को बढ़ावा** दिया गया है। इससे कलाकारों को रोजगार के नए अवसर प्राप्त होंगे।

(17) नये बाजार में निर्यात को बढ़ावा देना (Promoting Exports to New Markets): भारतीय उत्पादों के विदेशों में विपणन हेतु तथा नये बाजारों की खोज करने के लिए भारतीय दूतावासों (Embassies) को निर्देश दिए गए हैं। इसके लिए विदेशों में **'व्यावसायिक केन्द्रों'** की स्थापना की गई है। इससे भारतीय उत्पादों को विदेशों में विपणन करने में सहायता मिलेगी।

(18) आय कर में रियायतें व सेवा-कर में छूट से निर्यात-प्रेरक-इकाइयों को लाभ होगा।

(19) बायोटेक पार्कों की स्थापना से बायोटेक क्षेत्र को बढ़ावा मिलेगा।

यद्यपि नई निर्यात-आयात नीति के विभिन्न लाभ हैं, तथापि **इसमें निम्न कमियां भी हैं**:

(1) कुछ क्षेत्रों में निर्यात प्रेरक योजनाओं व कर में रियायतों की आवश्यकता ही नहीं हैं। ये योजनाएं व रियायतें सरकार द्वारा उस समय दी गई थी, जब देश विदेशी मुद्रा की कमी के संकट से गुजर रहा था। परन्तु ये योजनाएं व रियायतें, निर्यातकों व कुछ राजनीतिज्ञों के दबाव के कारण अभी भी दी जा रही हैं। इससे सरकार पर अनावश्यक आर्थिक भार पड़ता है।

(2) भारत का घरेलू क्षेत्र अभी भी बहुत कमजोर है। अत: स्वतंत्र व्यापार नीति से घरेलू क्षेत्र को नुकसान पहुंचता है, क्योंकि यह क्षेत्र अभी विदेशों से स्वतंत्र प्रतिस्पर्धा का सामना करने में पूरी तरह समर्थ नहीं है।

(3) निर्मित उत्पादों (Manufactured Goods) के निर्यात संवर्धन पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया है।

(4) नई निर्यात-आयात नीति बहुत जटिल है, क्योंकि इसमें विभिन्न उत्पादों के लिए आयात-करों की विभिन्न दरें हैं। ऐसे में निर्यात-आयात कार्य में जटिलताएं बढ़ती हैं व लालफीताशाही (Red-tapism) में वृद्धि होती है।

नई विदेशी व्यापार नीति की विभिन्न आलोचनाओं के बावजूद यह नीति अधिक व्यापक, दूरदर्शी तथा निर्यातकों के लिए लाभप्रद है। इससे अर्थव्यवस्था में उत्पादन बढ़ेगा, रोजगार के अवसरों में वृद्धि होगी तथा आर्थिक विकास को बढ़ावा मिलेगा।

■ 10. 2004-09 की विदेशी व्यापार नीति में वर्ष 2007-08 का वार्षिक घोषणा पत्र (Annual Supplement for the Year 2007-08 to the Foreign Trade Policy 2004-09)

- 2007-08 के लिए वस्तुओं के निर्यात का लक्ष्य 160 बिलियन डॉलर तथा वर्ष 2008-09 के लिए 200 बिलियन डॉलर का लक्ष्य रखा गया है।
- निर्यातों पर लगने वाले सेवा-कर को समाप्त कर दिया गया है।
- व्यापारिक बैंकों को यह निर्देश दिए गए कि वे अपनी कुल साख का कम से कम 15 प्रतिशत निर्यात प्रेरक उद्योगों को उपलब्ध करवाएं।
- रिजर्व बैंक इस बात का ध्यान रखे कि व्यापारिक बैंकों द्वारा निर्यातकों को दी गई साख का लगभग 50 प्रतिशत हिस्सा छोटे व मध्यम स्तर के उपक्रमों को प्राप्त हो।

- निर्यातों को बढ़ावा देने के लिए विशेष आर्थिक क्षेत्रों (SEZs) को बढ़ावा दिया जाएगा।
- विशेष कृषि और ग्राम उद्योग योजना के क्षेत्र को बढ़ाया गया तथा इसमें कृषि आधारित उद्योगों के उत्पादों जैसे नारियल तेल, सोयाबीन तेल, आलू के चिप्स, आटा आदि के निर्यातों को भी शामिल किया जाएगा। इसके अंतर्गत जंगलों से मिलने वाले उत्पादों (Forest Products) को भी शामिल किया गया है।
- एग्रो-प्रोसेसिंग (Agro-Processing) उद्योग को विशेष रियायतें दी गई हैं।
- उच्च तकनीकी उत्पादों के निर्यातों को बढ़ावा देने के लिए विशेष सुविधाएं दी गई हैं।
- निर्यात संवर्द्धन पूंजीगत वस्तुओं (Export Promotion Capital Goods) संबंधी योजना को संशोधित करके इसे अधिक पारदर्शी व लागू करने में आसान बनाया गया है।
- शुल्क आर्हता पास बुक (Duty Entitlement Pass book) योजना को मार्च, 2008 तक के लिए बढ़ा दिया गया है। 1 अप्रैल, 2008 से इसके स्थान पर नयी योजना बनाई जाएगी।
- अति लघु तथा कुटीर उद्योगों को अपनी निर्यात अनिवार्यता (Export Obligations) को पूरा करने के लिए 12 वर्ष तक की अवधि दे दी गई है। इससे पहले यह अवधि 8 वर्ष तक की थी।
- उत्पाद विशेष योजना के कार्यक्षेत्र को बढ़ाया गया है तथा कृषि-निर्यातों को बढ़ावा देने के लिए कृषि उत्पादों को इस योजना में शामिल किया गया है।
- बाजार विशेष योजना के क्षेत्र को बढ़ाकर इसमें 16 नये देशों को शामिल कर दिया गया है।
- हथकरघा व हस्तकला क्षेत्र तथा रत्नाभूषण उद्योग के लिए मशीनरी व संयंत्रों के आयात को कर मुक्त किया गया है।
- कर मुक्त सेम्पलों के आयात की सीमा को बढ़ाकर 75,000 रुपये किया गया है।
- जिन निर्यातकों को देय कर की वापसी मिलनी है, उन्हें समय पर कर वापसी के प्रयत्न किए जाएंगे।
- विदेशी व्यापार में प्रयोग किए जाने वाले फार्मों तथा तरीकों को सरल बनाया जाएगा।

■ 11. भारत की अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार संबंधी समस्याएं

(Problems of India's International Trade)

भारत की अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार संबंधी मुख्य समस्याएं निम्नलिखित हैं:

(1) भुगतान शेष की समस्या (Problem of Balance of Payment): भारत की अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से संबंधित एक मुख्य समस्या भुगतान शेष का प्रतिकूल हो जाना है। इसका कारण यह है कि हमारे आयात, निर्यातों की तुलना में अधिक हैं। इसलिये हमारा भुगतान सन्तुलन प्रतिकूल हो जाता है। प्रतिकूल भुगतान शेष की दशा में हमें अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं से ऋण लेना पड़ता है। इन विदेशी ऋणों पर ब्याज देना पड़ता है। इस तरह हमारा विदेशी ऋणों व ब्याज का भार बढ़ जाता है।

(2) व्यापार की शर्तों संबंधी समस्या (Problem Related to Terms of Trade): किसी देश के आयात और निर्यात में जिस दर पर विनिमय होता है उसे व्यापार की शर्तें (Terms of Trade) कहते हैं। भारत के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की एक अन्य समस्या व्यापार की शर्तों का प्रतिकूल होना है। हमारे व्यापार की शर्तों के प्रतिकूल (Unfavourable) रहने के कारण हमारी आय का काफी भाग धनी देशों में जाता रहता है। इसका भारत के विकास पर काफी बुरा प्रभाव पड़ता है।

(3) प्राथमिक उत्पादों के निर्यात में कम वृद्धि (Less Growth in Exports of Primary Products): प्राथमिक पदार्थों का अर्थ कृषि-क्षेत्र के उत्पादों से है जैसे चाय, कॉफी, रबड़ आदि। भारत के अधिकतर निर्यात प्राथमिक पदार्थों के हैं। परन्तु निम्न कारणों से हमारे प्राथमिक पदार्थों का निर्यात बढ़ नहीं पा रहा। इससे हमारा व्यापार-शेष (Balance of Trade) प्रतिकूल होता जा रहा है और भारत विदेशी ऋणों के जाल में फंसता जा रहा है।

(i) प्राथमिक उत्पादों की मांग की आय लोच बहुत कम होती है। इसका अभिप्राय है कि उपभोक्ताओं की आय में एक निश्चित वृद्धि से उनकी मांग में बहुत ही कम वृद्धि होगी। अत: प्राथमिक उत्पादों की मांग में वृद्धि होने की बहुत ही कम सम्भावना है, जैसे - खाद्यान्नों (Foodgrains), चीनी, चाय, कॉफी आदि।

(ii) विकसित देशों में जनसंख्या वृद्धि दर बहुत ही कम है। इसलिये विकसित देशों में प्राथमिक वस्तुओं की मांग बढ़ने की सम्भावना भी कम है।

(iii) कृषि पदार्थों की मांग पर **कृत्रिम प्रतिस्थापन वस्तुओं** (Synthetic Substitutes) की उपलब्धता का भी प्रभाव पड़ता है। कई कृषि पदार्थों जैसे कपास, रबड़, जूट आदि के कृत्रिम प्रतिस्थापन उपलब्ध हैं। इनके फलस्वरूप प्राकृतिक वस्तुओं की मांग कम होती है तथा इनकी कीमतें नहीं बढ़ने पातीं।

(4) पुरानी व पिछड़ी तकनीक (Backward Technology): भारत में, विकसित देशों की तुलना में पुरानी और पिछड़ी तकनीक का प्रयोग किया जाता है। पुरानी तकनीक से बनाये उत्पाद घटिया किस्म के होते हैं। यही नहीं उनकी उत्पादन-लागत भी अधिक होती है। अतः भारत के उत्पाद अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में विकसित देशों के उत्पादों की बराबरी नहीं कर सकते। इससे भारत के निर्यातों पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

(5) आवश्यक आयात (Essential Imports): भारत प्राय: आवश्यक पदार्थों जैसे- पेट्रोलियम-उत्पाद, मशीनरी, तकनीक, खादें, दवाइयां आदि का आयात करता है। इनके आयात को कम नहीं किया जा सकता। अत: इन आवश्यक आयातों का भुगतान करने के लिये भारत को महंगे विदेशी ऋणों पर निर्भर होना पड़ता है।

(6) राशिपातन (Dumping): कुछ देश जैसे चीन अपने उत्पादों को भारत में बड़े ही कम मूल्य पर बेचते हैं। इसका मुख्य उद्देश्य भारत के घरेलू उद्योगों को नुकसान पहुंचाना है।

(7) उपभोक्ता उत्पादों की अधिक मांग (More Demand of Consumption Goods): भारत की जनसंख्या बहुत तेजी से बढ़ रही है। इसके कारण भारत में उपभोक्ता वस्तुओं की मांग बहुत तेजी से बढ़ रही है। इससे भारत को अधिक आयात करने पड़ते हैं। इसके अतिरिक्त जनसंख्या-विस्फोट से उपभोक्ता-वस्तुएं अपने देश में ही लग जाती हैं और निर्यात करने के लिये बड़ी ही कम मात्रा बचती है। इससे निर्यात कम हो जाते हैं। अत: जनसंख्या-विस्फोट के कारण, उपभोक्ता वस्तुओं का आयात बढ़ जाता है, निर्यात कम हो जाता है जिसका व्यापार-शेष (Balance of Trade) पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

(8) पिछड़ा औद्योगिक-ढांचा (Backward Industrial Structure): भारत का औद्योगिक ढांचा विकसित देशों की तुलना में काफी पिछड़ा हुआ है। इस पिछड़े औद्योगिक ढांचे के कारण हैं- पूंजी की कमी, पुरानी तकनीक, कुशल उद्यमियों की कमी आदि। भारत में पूंजीगत सामान बनाने वाले उद्योग (Capital Goods Industries) बहुत कम हैं। परिणामस्वरूप भारत में औद्योगिकीकरण के लिये मूलभूत सुविधाओं (Basic Requisites) का अभाव पाया जाता है। इससे हमारे उद्योग पिछड़ जाते हैं। पिछड़े उद्योगों के कारण, भारत से निर्मित और अर्ध-निर्मित वस्तुओं का निर्यात कम होता है।

(9) पिछड़ा सेवा-क्षेत्र एवं अद्योसंरचना (Backward Tertiary Sector and Infrastructure): भारत में सेवा क्षेत्र जैसे व्यापार, बैंकिंग, बीमा और अद्योसंरचना, विकसित देशों की तुलना में काफी पिछड़ा हुआ है। यह भारत के विकास में बहुत बड़ी बाधा है। पिछड़े सेवा क्षेत्र और पिछड़े अद्योसंरचना से औद्योगिकीकरण पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। इस कारण से हमारे औद्योगिक-उत्पाद अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में विदेशी उत्पादों की बराबरी नहीं कर सकते। अत: पिछड़ा सेवा क्षेत्र और पिछड़ी अद्योसंरचना भारत के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में रुकावट है।

(10) विदेशी-प्रतिस्पर्द्धा (Foreign Competition): भारत के निर्यात उत्पाद, अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में अधिक प्रतिस्पर्द्धा का सामना कर रहे हैं। वैश्वीकरण के कारण अब अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पहले से बहुत बढ़ गया है। इससे अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में प्रतिस्पर्द्धा का स्तर बढ़ गया है। उदाहरण के लिये- भारत मुख्यतः जूट, चाय, कपड़े का निर्यात करता है। परन्तु अब इन उत्पादों में विदेशी-प्रतिस्पर्द्धा बढ़ गई है। अब जूट के निर्यात में बंगल ण हमारा प्रतियोगी बन गया है। श्रीलंका और इण्डोनेशिया चाय उद्योग में तथा कोरिया और चीन कपड़ा-उद्योग में भारत के प्रतियोगी हैं। से हमारे निर्यातों पर बुरा प्रभाव पड़ा है।

(11) कच्चे तेल की कीमतों में वृद्धि (Increase in the Price of Crude Oil): भारत कच्चे तेल का आयात करता है। पेट्रोलियम उत्पादों की कीमत में बहुत अधिक वृद्धि होने से भारत बुरी तरह से प्रभावित हुआ है। इससे हमारा कुल आयात बिल काफी बढ़ गया। पेट्रोलियम उत्पादों की कीमत बढ़ने से हमारे घरेलू उद्योगों तथा निर्यात प्रेरक उद्योगों (Export-Oriented Units) पर बुरा प्रभाव पड़ा और भारत का व्यापार शेष प्रतिकूल हो गया।

(12) ऊंचा मूल्य-स्तर (High Price Level): पिछड़ी हुई तकनीक के कारण, भारत के उत्पादों की लागत, विकसित देशों की तुलना में काफी अधिक है। अत: भारत में मूल्य स्तर ऊंचे हैं। भारत के उत्पाद महंगे होने के कारण विकसित देशों के उत्पादों की बराबरी नहीं कर सकते।

(13) अन्य समस्याएं (Other Problems):

(a) घटिया किस्म (Poor Quality): भारत के उत्पादों की क्वालिटी, विकसित देशों के उत्पादों की तुलना में घटिया है।

(b) सीमित-बाजार (Limited Market): भारत के उत्पाद बहुत ही कम देशों में बिकते हैं। इससे भारत के निर्यात बढ़ नहीं पाते जबकि विकसित देशों के उत्पाद बहुत ज्यादा देशों में बिकते हैं।

(c) प्रचार की कमी (Lack of Publicity) अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में भारत के उत्पादों का अधिक प्रचार नहीं होता। इससे विदेशों में भारत के उत्पादों की मांग नहीं बढ़ती, इससे हमारे निर्यात नहीं बढ़ते ।

(d) गलत-व्यापार-व्यवहार (Unfair-Trade Practices): कई बार भारत के निर्यातक अल्पकालीन लाभ कमाने के लिए गलत-व्यापार व्यवहारों में लग जाते हैं। वे दिखाये गये सैम्पल (Sample) के अनुसार माल नहीं भेजते। इससे विदेशी आयातकों का विश्वास उठ जाता है।

■ 12. वर्तमान विश्वीय मंदी के समय में भारत का विदेशी व्यापार

(India's Foreign Trade in times of Current Global Slowndown)

विश्वीय वित्तीय संकट, जो सितंबर 2008 में विस्फोटित हुआ था, ने सम्पूर्ण विश्व में मंदी की स्थिति पैदा कर दी। इससे भारतीय अर्थव्यवस्था भी अछूती नहीं रह सकी। यह यू.एस.ए. में वित्तीय संकट के रूप में शुरू हुई और उससे कई प्रमुख बैंक फेल हो गए, विश्वीय अन्तर-बैंक साख बाज़ार प्रभावित हुआ, स्टॉक और वस्तुओं में विश्वास उठ गया, बेरोज़गारी बढ़ गई और सामान्य उपभोग एवं निवेश माँग पूरे विश्व में प्रभावित हुई। भारत जैसी उभरती अर्थव्यवस्थाओं को अपने निर्यात बाज़ार में गिरावट का सामना करना पड़ रहा है।

■ 12.1 निर्यात (Exports)

भारत का निर्यात प्रतिपादन अप्रैल-जुलाई के दौरान प्रभावोत्पादक था और अप्रैल-दिसंबर 2008 में भी उचित थे, परंतु विश्वीय मंदी के कारण 2008-09 के अंतिम तीन वर्षों में इनके गिरने की संभावना व्यक्त की गई है। भारत के निर्यातों के कम होने के पीछे कारण मुख्य रूप से यह दिया जा रहा है कि यू.एस.ए., यूरोप और जापान में मंदी आने के फलस्वरूप विश्वीय माँग कम हो गई है और विश्वीय कीमतों में गिरावट से भारतीय निर्यातों से निम्न प्राप्ति की अपेक्षा की जा रही है। **World Bank Report, Global Economic 2009** के अनुसार विश्वीय GDP वृद्धि दर 2009 में 2.5 प्रतिशत से घटकर 0.9 प्रतिशत हो जाएगी। विकासशील देशों में यह विकास दर ऋणात्मक (Negative) होने की संभावना है।

विश्व बैंक ने यह भी चित्रित किया है कि वर्ष 2009 में विश्व व्यापार 2.1 प्रतिशत घट जाएगा। सन् 1982 के बाद यह पहला अवसर है जबकि विश्व व्यापार सिकुड़ेगा। भारत सहित विश्व के सभी देश विश्वीय मंदी से प्रभावित होंगे और फलस्वरूप निर्यातों में पतन होगा। चूंकि यह संकट जल्दी टलने वाला नहीं है, इसलिए हीरे-जवाहरात, कपड़ा, चाय, तैयार कपड़ों, चमड़ा पदार्थ, मशीनरी और संयंत्रों, कृषि पदार्थों, कच्चा लोहा, पेट्रोलियम पदार्थों आदि निर्यात दबाव में बनें रहेंगे। इस अन्धकारमय स्थिति में, भारतीय निर्यातकों को गिरते रूपए के मूल्य से बचतें प्राप्त होने की संभावना है (भारत रूपए-डॉलर का विनिमय मूल्य जो जनवरी 2008 में 39.37 रु. था वह जनवरी 2009 में 48.78 रु. हो गया, यह गिरावट 23.90 प्रतिशत है)। इससे निर्यातकों को अपने निर्यातों से ऊँची मुद्रा प्राप्ति (Higher Rupee Realisation) हो सकेगी।

■ 12.2 गिरते निर्यातों को रोकने के लिए किए गए उपाय
(Measures Taken to Arrest Declining Exports)

दिसंबर 2008 और जनवरी 2009 के बीच सरकार ने निम्नलिखित उपायों की घोषणा की थी:

(i) कपड़ा, चमड़ा, हीरे-जवाहरात आदि के लिए श्रम गहन निर्यातों के लिए जहाज़ लदान से पहले और बाद (Pre and Post Shipment) पर 2 प्रतिशत का ब्याज अनुदान।

(ii) सीमा कर, उत्पादन कर/केंद्रीय बिक्री की पूर्ण वापसी को सुनिश्चित करने के लिए 1,100 करोड़ रु. के अतिरिक्त कोषों का प्रावधान करना।

(iii) निर्यात प्रोत्साहन योजनाओं के लिए अतिरिक्त 350 करोड़ रु. का आवंटन।

(iv) उत्पाद सेवाओं पर सेवा कर का वापस करना (Refund)।

(v) कच्चे लोहे पर निर्यात कर के मूल्य के अनुसार 8 प्रतिशत को हटाना।

(vi) भारतीय निर्यात-आयात बैंक द्वारा जहाज़ लदान से पहले और बाद के लिए 5,000 करोड़ रुपए का प्रावधान।

■ 12.3 आयात (Imports)

पिछले वर्ष की तुलना में अप्रैल-दिसंबर 2008 में आयातों में 31.5 प्रतिशत की वृद्धि हुई, इसका मुख्य कारण तेल-आयात बिल का बढ़ना और गैर-तेल आयातों में तीव्र वृद्धि था। पेट्रोल पदार्थों के अतिरिक्त 2008-09 के पूर्व आधे में उर्वरकों का आयात बहुत अधिक बढ़ा। इसका मुख्य कारण कीमतों का ऊँचा होना था। परंतु विश्वीय वस्तु कीमतों के गिरने, आर्थिक उपभोग और निवेश माँग के कम होने के फलस्वरूप अक्तूबर 2008 से आयातों में थोड़ी कमी आई है। नवंबर 2008 में यह कमी वर्ष-प्रति-वर्ष 6 प्रतिशत थी। तेल और गैर-तेल आयातों में भी थोड़ी कमी आई है।

■ 12.4 व्यापार घाटे का बदतर होना (Trade Deficit Worsens)

भारत का व्यापार घाटा अप्रैल-दिसंबर 2008 में 93.8 बिलियन यू.एस. डॉलर था (लगभग 4691 बिलियन रूपए), यदि पिछले वर्ष से इसकी तुलना की जाए तो यह गहन वृद्धि 59.1 प्रतिशत थी। पिछले वर्ष इसी अवधि में यह घाटा 59 बिलियन डॉलर (लगभग 2950 बिलियन रुपए) था। 2008-09 के पहले आधे में घाटे के बढ़ने का कारण था तेल कीमतों में वृद्धि का अधिक होना। वर्ष 2008-09 के दौरान प्रधानमंत्री के 'Economic Advisory Council' के अनुसार भारत के व्यापार घाटे का 121 बिलियन डॉलर (लगभग 6060 बिलियन रुपए) होने का अनुमान है, यह वृद्धि पिछले वर्ष की तुलना में 34.1 प्रतिशत अधिक होगी।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि यू.एस. अर्थव्यवस्था में शुरू हुए इस संकट का संपूर्ण विश्व पर प्रभाव पड़ा है और भारतीय अर्थव्यवस्था भी इससे प्रभावित हुई है, परंतु इसका प्रभाव विकसित विश्वीय अर्थव्यवस्थाओं की तुलना में भारतीय अर्थव्यवस्था पर अपेक्षाकृत कम रहा है। इसका प्रभाव अक्तूबर 2008 के बाद एकदम अधिक स्पष्ट था। भारत के विदेशी व्यापार, विशेष रूप से इसके निर्यातों पर प्रत्यक्ष प्रभाव अधिक था।

निर्यात संकुचन (Export Contraction)

2 मई, 2009 को **'Hindustan Times'** में छपी एक रिपोर्ट के अनुसार, मार्च 2009 तक देश के निर्यातों का संकुचन 33.3 प्रतिशत हो चुका है। इस प्रकार 2008-09 में पूरे वर्ष में निर्यातों में वृद्धि केवल 3.4 प्रतिशत हुई है – यह पिछले 7 वर्षों में न्यूनतम है।

मार्च 2009 में कुल निर्यात 11.5 बिलियन डॉलर – 168.7 बिलियन डॉलर 31 मार्च, 2009 तक – वित्तीय वर्ष 2009 के लिए, सरकार लक्ष्य $200 बिलियन करना था, इसमें 15.7 प्रतिशत की कमी आई है। हीरे जवाहरात, जेवर, कपड़े और हस्तकला क्षेत्र इस मंदी से विशेष रूप से प्रभावित हुए है।

(a) **निर्यात संकुचन का अर्थ क्या है?** इससे अभिप्राय विश्वीय माँग के कम होने से है, चूंकि हमारे निर्यात विश्व व्यापार से जुड़े हैं। इस बिन्दु पर अब क्रेता नहीं हैं। यदि क्रेता नहीं हैं तो हम अपने उत्पाद कैसे बेच सकेंगे।

(b) **निर्यात में पुनरुत्थान कब संभव है?** यह संकुचन अगले 6 महीनों तक जारी रहेगा, क्योंकि IMF की रिपोर्ट के अनुसार विश्व व्यापार अभी 11 प्रतिशत और सिकुड़ेगा।

(c) **सरकार क्या कर रही है?** आने वाली नई सरकार को ऐसी नई विदेशी व्यापार नीति घोषित करनी होगी जो नए बाज़ारों के खोज के लिए विशेष उपाय सुझाएगी और निर्यातकों को राहत देगी।

(d) **निर्यातक क्या कर सकते है?** वे US तथा EU के लिए उत्पादन में विविधता ला सकते हैं और दक्षिण अफ्रीका, जापान, चीन और ब्राज़ील में बाज़ारों की खोज कर सकते हैं।

(e) **आयातों में गिरावट क्यों?** इसका एक प्रमुख कारण पेट्रोल की कीमतों का काफी मात्रा में कम हो जाना है, परंतु घरेलू माँग में कमी आई है।

चूंकि भारत के आर्थिक उत्पाद में निर्यातों का भाग केवल 15 प्रतिशत है, इसलिए GDP संवृद्धि दर पर कुल मिला कर प्रभाव 1 प्रतिशत बिन्दु से कम होगा।

निर्यात क्षेत्र के आर्थिक भाग में जो कमी है, वह राजनीतिक उपायों द्वारा पूरी की जा सकती है - यह क्षेत्र श्रम गहन क्षेत्र है जिसमें 1500 लाख श्रमिक काम कर रहे हैं, इस विश्व मन्दी से उन्हें अपना रोज़गार समाप्त होता नज़र आ रहा है, अतएव आने वाली नई सरकार के लिए एक आर्थिक मुद्दा होगाः **अधिक रोज़गार अवसरों का सृजन (Job creation)**।

प्रश्न (QUESTIONS)

I. वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

सभी प्रश्न अनिवार्य हैं। (Attempt all the questions)

1. निर्यात तथा आयात की जाने वाली वस्तुओं तथा सेवाओं के प्रकार को कहा जाता है (विदेशी व्यापार की रचना, विदेशी व्यापार की मात्रा)
2. आर्थिक सुधारों के समावेश के बाद भारत के व्यापार के परिमाण में हुई है काफी (वृद्धि, कमी)
3. स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से कृषि पदार्थों के निर्यातों के प्रतिशत में हो रही है (कमी, वृद्धि)
4. 1990-91 के बाद से परंपरागत वस्तुओं के निर्यातों में हो रही है (कमी, वृद्धि)
5. भारत के आयातों में बिना तराशे हुए जवाहरातों का स्थान अब हो गया है (दूसरा, चौथा)

6. भारत के विदेशी व्यापार में सबसे अधिक भाग है (OECD का, OPEC का)
7. विश्व व्यापार में भारत के विदेशी व्यापार का भाग (घट रहा है, बढ़ रहा है)
8. भारत के निर्यातों में आजकल प्रमुख स्थान है (साफ्टवेयर का, जवाहरात का) (K.U. 2007)
9. भारत के आयातों में आजकल प्रमुख स्थान है (पेट्रोल का, मशीनरी का)
10. नई व्यापार नीति है उदारवाद तथा (निर्यात-परक, आयात-परक)
11. विकासशील देशों के साथ भारत का विदेशी व्यापार (बढ़ रहा है, घट रहा है)
12. अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की अदृश्य मदें को कहा जाता है। (वस्तुएँ, सेवाएँ) (M.D.U. 2009)

उत्तर (Answers): (1) विदेशी व्यापार की रचना, (2) वृद्धि, (3) कमी, (4) कमी, (5) दूसरा, (6) OECD का, (7) घट रहा है, (8) साफ्टवेयर का, (9) पेट्रोल का, (10) निर्यात-परक, (11) बढ़ रहा है, (11) सेवाएँ।

■ II. लघु/परिभाषा रूपी प्रश्न (Short/Definitional Type Questions)

1. व्यापार के परिमाण से क्या अभिप्राय है?
2. विदेशी व्यापार की रचना से क्या अभिप्राय है?
3. भारत के पांच मुख्य आयात बतलाएं।
4. भारत के पांच मुख्य निर्यात बतलाएं।
5. कुल आयातों में कौन-सी मदें द्वितीय तथा तृतीय स्थान रखती हैं?
6. आयातों में कौन सी मदें प्रथम तथा द्वितीय स्थान रखती हैं?
7. उन गैर-परंपरावादी वस्तुओं के नाम बतलाएं जिनके आयात में वृद्धि हुई है?
8. विदेशी व्यापार की दिशा से आपका क्या अभिप्राय है?
9. OECD से संबंधित विकसित देशों के साथ भारत के विदेशी व्यापार की क्या स्थिति है?
10. पूर्वी यूरोप के देशों के साथ भारत के विदेशी व्यापार के प्रतिशत भाग की क्या स्थिति है?
11. निर्यात प्रोत्साहन से क्या अभिप्राय है?
12. भारत के विदेशी व्यापार की दो विशेषताएं बताइए। (M.D.U. 2008)

■ III. निबन्ध रूपी प्रश्न (Essay Type Questions)

1. Discuss briefly the features of India's Foreign Trade with reference to volume, composition and direction.

   भारत के विदेशी व्यापार की विशेषताओं का संक्षेप में इसके परिमाण, रचना तथा दिशा के संदर्भ में वर्णन कीजिए।
2. What are the principal changes that have come about in the composition and direction of India's Foreign Trade since1991? Also suggest measures for improving balance of payments in India.

   1991 से भारत के विदेशी व्यापार की संरचना तथा दिशा में क्या मुख्य-मुख्य परिवर्तन हुए हैं? भुगतान शेष सुधारने के उपाय दीजिए। (K.U. 2007)
3. What are the present direction, composition and volume of Foreign Trade in India?

   भारत में विदेशी व्यापार की वर्तमान दिशा, संरचना तथा परिमाण क्या हैं?
4. Briefly describe the changes in the pattern of India's exports and imports since 1991.

   1991 के पश्चात् भारत के निर्यात तथा आयात की संरचना में होने वाले परिवर्तनों का वर्णन करें। (K.U. 2006)

अथवा

Write a note on the changing pattern of India's Foreign Trade.

भारत के विदेशी व्यापार की बदलती हुई प्रवृत्ति पर एक टिप्पणी लिखिये।

5. Discuss changes in the composition and direction of India's foreign trade since 1991.

   1991 से भारत के विदेशी व्यापार की रचना तथा दिशा में आए हुए परिवर्तनों का वर्णन कीजिए। (K.U. 2009)

6. Discuss the main changes of recent trade policy of India.
   भारत की तत्कालीन व्यापार नीति के मुख्य परिवर्तनों का वर्णन करें।
7. What are the main features of India's recent trade Policy or Trade Reforms?
   भारत की तत्कालीन व्यापार नीति या व्यापार सुधारों की मुख्य विशेषतायें क्या हैं?
8. Explain New Export-Import Policy (2004-09) of India.
   भारत की नई आयात-निर्यात नीति (2004-09) का वर्णन करें।
9. Give a brief description of the Annual Foreign Trade Policy - 2006-07.
   वार्षिक विदेशी व्यापार नीति - 2006-07 का संक्षिप्त विवरण दें।
10. Explain the changes in value, volume, composition and direction of India's foreign trade since 1991.
    1991 के पश्चात् भारत के विदेशी व्यापार के मूल्य, आकार, संरचना तथा दिशा की व्याख्या करें।
    (M.D.U. 2008)
11. Give a brief description of the impact of Current global slowdown on India's foreign trade.
    वर्तमान विश्वीय मन्दी के भारत के विदेश व्यापार पर पड़ने वाले प्रभाव का संक्षिप्त विवरण दें।

27

भारत में भुगतान शेष की समस्या

(PROBLEM OF BALANCE OF PAYMENTS IN INDIA)

■ 1. भुगतान सन्तुलन/शेष के अर्थ (Meaning of Balance of Payments)

भारत के विदेशी व्यापार की एक मुख्य समस्या व्यापार शेष तथा भुगतान शेष की समस्या है। विदेशी व्यापार वह व्यापार है जो दो या दो से अधिक देशों के बीच होता है। भारत और अमेरिका के बीच होने वाले व्यापार को विदेशी व्यापार कहा जाता है। भारत से अमेरिका को जो सामान भेजा जायेगा उसे भारत के निर्यात (Export) कहा जाएगा। इसके विपरीत भारत, अमेरिका से जो सामान मंगवायेगा उसे भारत के आयात (Import) कहा जायेगा। **वस्तुओं के निर्यात तथा आयात के अन्तर को व्यापार शेष** (Balance of Trade) **कहा जाता है। इसके विपरीत सभी प्रकार के अर्थात् वस्तुएं, सेवायें, पूंजी प्रवाह के निर्यातों तथा आयातों के अन्तर को भुगतान शेष या शेष** (Balance of Payments) **कहा जाता है।**

भुगतान शेष विषय का सम्बन्ध किसी देश विशेष द्वारा संसार के अन्य देशों के साथ किये गये आर्थिक लेन-देन या व्यवहारों के लेखांकन से है।

किन्डलबर्गर के शब्दों में, **"एक देश का भुगतान शेष उस देश के निवासियों तथा विदेशियों में किये गये सभी आर्थिक सौदों जिनका सम्बन्ध वस्तुओं, सेवाओं तथा पूंजी प्रवाह से हैं, का क्रमबद्ध लेखा है।"** (The balance of payment of a country is a systematic record of all economic transactions concerning goods, services and capital flow between its residents and residents of foreign countries. – **Kindleberger**)

किसी देश को प्राय: तीन प्रकार की मदों में दूसरे देशों से व्यवहार करना पड़ता है। यह हैं:

(1) दृश्य मदें (Visible Items): इसमें समस्त प्रकार की भौतिक वस्तुयें, जिनका आयात-निर्यात होता है शामिल की जाती हैं। इन्हें दृश्य मदें इसलिए कहा जाता है क्योंकि इनका बन्दरगाहों पर रिकार्ड रखा जाता है।

(2) अदृश्य मदें (Invisible Items): इसमें उन समस्त सेवाओं इत्यादि को शामिल किया जाता है जिनका आयात-निर्यात दृश्य नहीं होता इनमें बैंकिंग, बीमा, यात्रायें, यातायात तथा परिवहन, निवेश, आय, दान व उपहार आदि शामिल होते हैं।

(3) पूंजी अन्तरण (Capital Transfers) मदें: इस मद का सम्बन्ध पूंजी के लेन-देन से होता है।

भुगतान शेष के दो खाते होते हैं: **(1) चालू खाता** (Current Account): चालू खाते में **(i) वस्तुओं अर्थात् व्यापार की दृश्य मदों (Visible Items) के निर्यात तथा आयात के अन्तर को शामिल किया जाता है तथा (ii) सेवाओं जैसे बीमा, बैंकिंग** आदि अर्थात् अदृश्य मदों (Invisible items) के निर्यात तथा आयात के अन्तर शामिल किये जाते हैं। **(2) पूंजीगत खाता** (Capital Account); इसके अन्तर्गत पूंजीगत भुगतानों तथा प्राप्तियों को शामिल किया जाता है। **भुगतान शेष के अनुकूल या प्रतिकूल होने से हमारा अभिप्राय चालू खाते के अनुकूल या प्रतिकूल होने से है।** व्यापार शेष (Balance of Trade) में केवल वस्तुओं अर्थात् दृश्य मदों के आयात तथा निर्यात के अन्तर को शामिल किया जाता है। भुगतान शेष के घाटे से अभिप्राय है कि भारत के दृश्य और अदृश्य आयात अधिक हैं तथा उनकी तुलना में दृश्य और अदृश्य निर्यात कम हैं। भुगतान शेष अनुकूल (Favourable) होने

का अर्थ है कि भारत का विदेशी व्यापार लाभ का है अर्थात् भारत के दृश्य और अदृश्य निर्यात अधिक हैं तथा उनकी तुलना में दृश्य और अदृश्य आयात कम हैं।

संक्षेप में,

भुगतान शेष या सन्तुलन = (वस्तुओं + सेवाओं + पूंजी प्रवाह का निर्यात) – (वस्तुओं + सेवाओं + पूंजी प्रवाह का आयात)

(i) अनुकूल या अधिक भुगतान शेष या सन्तुलन = निर्यात > आयात (निर्यात आयात से अधिक है।)

(ii) प्रतिकूल या घाटे का भुगतान सन्तुलन = आयात > निर्यात (आयात निर्यात से अधिक है।)

■ 2. भुगतान सन्तुलन/शेष की प्रवृत्तियाँ (Trends of Balance of Payments)

स्वतन्त्रता के बाद से ही भारत का भुगतान सन्तुलन प्रतिकूल होने लगा। दूसरे महायुद्ध के दौरान में भारत का भुगतान सन्तुलन **अनुकूल** (Favourable) रहा है। युद्ध काल में भारत ने मित्र देशों को काफी मात्रा में निर्यात किये तथा आयात बहुत कम किये। इंग्लैंड पर स्टर्लिंग के रूप में भारत का 1,733 करोड़ रुपये का कर्ज़ा चढ़ गया परन्तु विभाजन के तुरन्त बाद भारत के निर्यातों की अपेक्षा आयात काफी बढ़ गये। भारत के भुगतान सन्तुलन का अध्ययन निम्नलिखित भागों में किया जा सकता है:

(1) योजना पूर्व काल (Pre-Planning Period): यह समय चार वर्षों अर्थात् 1947 से 1951 तक का है। इस अवधि में भुगतान शेष के चालू खाते का कुल घाटा 240 करोड़ रुपये का था। इस घाटे के प्रमुख कारण थे, युद्ध के कारण दबी हुई मांग का दबाव तथा विभाजन के कारण पटसन, कपास एवं अनाज का आयात। 1949 में रुपये का अवमूल्यन किया गया। परन्तु स्थिति में कोई सुधार न हुआ। 1950 में कोरियाई युद्ध आरम्भ होने के कारण भुगतान शेष **अनुकूल** (Favourable) हो गया।

(2) प्रथम योजना (First Plan 1951-1956): इस योजना की अवधि में भुगतान शेष के चालू खाते का घाटा केवल 42 करोड़ रुपये का हुआ। योजना के प्रथम वर्ष में आयात बढ़ जाने के कारण 163 करोड़ रुपये का घाटा हुआ परन्तु बाद में देश में अनाज का उत्पादन बढ़ जाने के कारण भुगतान सन्तुलन **अनुकूल** (Favourable) हो गया। इसलिये योजना की अवधि में कुल घाटा कम हो कर केवल 42 करोड़ रुपये शेष रह गया।

(3) दूसरी योजना (Second Plan 1956-61): इस योजना की अवधि में भुगतान शेष का घाटा बढ़ कर 1,725 करोड़ रुपये हो गया। इसका मुख्य कारण मशीनें, कच्चा माल तथा अनाज का आयात अधिक होना था।

(4) तीसरी योजना (Third Plan 1961-65): इस योजना के दौरान भुगतान शेष का घाटा बढ़ कर 1,951 करोड़ रुपये का हो गया। इसका मुख्य कारण अनाज की कमी तथा चीन और पाकिस्तान के आक्रमण के फलस्वरूप युद्ध-सामग्री का अधिक आयात होना था।

(5) तीन एक वर्षीय योजनाएं (Three One-Year Plans 1966-69): इन योजनाओं की अवधि में भुगतान शेष के चालू खाते का घाटा बढ़ कर 2,015 करोड़ रुपये हो गया। इसका मुख्य कारण अकाल की स्थिति होने के फलस्वरूप अनाज के आयात में होने वाली वृद्धि था। इस अवधि में विदेशी ऋणों पर भी काफी ब्याज देना पड़ा था।

(6) चौथी योजना (Fourth Plan 1969-74): इस योजना में भुगतान शेष का लाभ 100 करोड़ रुपये का था। स्वतन्त्रता के पश्चात् पहली बार भुगतान सन्तुलन अनुकूल हुआ था। इसके कई कारण थे जैसे: (1) निर्यात बढ़ने तथा आयात पहले की तुलना में कम होने के कारण व्यापार शेष का घाटा कम हो गया। (2) अदृश्य मदों से होने वाली प्राप्तियों में काफी वृद्धि हुई है। वर्ष 1973-74 में यू॰ एस॰ ए॰ से P.L. 480 के अन्तर्गत 1,654 करोड़ रुपये प्राप्त हुए। इसके फलस्वरूप भी शुद्ध प्राप्तियां बढ़ गईं।

(7) पांचवी योजना (Fifth Plan 1974-78): पांचवी योजना की चार वर्षों की अवधि में भुगतान शेष का लाभ बढ़ कर 3,082 करोड़ रुपये हो गया। इसके मुख्य कारण इस प्रकार हैं (1) निर्यात बढ़ने तथा आयात पर प्रतिबंध लगाने के कारण व्यापार शेष का घाटा पहले की तुलना में कम हो गया। 1976-77 में व्यापार शेष लाभ का था। (2) स्मगलिंग पर रोक लगने, पर्यटकों के अधिक आने, विदेशों में रहने वाले भारतीयों द्वारा अधिक धन भेजने के कारण अदृश्य मदों से होने वाली प्राप्तियां उनके ऊपर किए गए खर्चों से बढ़ गई। इसके फलस्वरूप भारत का भुगतान शेष लाभ का अर्थात् अनुकूल हो गया।

(8) छठी योजना (Sixth Plan 1980-85): छठी योजना की अवधि में भुगतान शेष फिर घाटे का अर्थात् प्रतिकूल हो गया। छठी योजना की अवधि में 11,384 करोड़ का घाटा हुआ। प्रतिवर्ष औसत घाटा 2,277 करोड़ रुपये का था।

(9) सातवीं योजना (Seventh Plan 1985-90): सातवीं योजना की अवधि में चालू भुगतान सन्तुलन का घाटा 38,313 करोड़ रुपये का था। सातवीं योजना में भुगतान सन्तुलन के घाटे में वृद्धि होने का मुख्य कारण विदेशों से आने वाले अदृश्य भुगतानों का कम होना था। **गल्फ युद्ध** (Gulf War) के कारण पेट्रोल की कीमतें बढ़ जाने तथा अन्य कारणों से व्यापार शेष का घाटा काफी बढ़ गया। इसके फलस्वरूप भुगतान शेष का घाटा भी बढ़ गया।

(10) आठवीं योजना (Eighth Plan 1992-97): भारत की आठवीं योजना 1990 में आरम्भ होनी थी परन्तु यह योजना 1992 में आरम्भ की गई। इस योजना के पूर्व के दो वर्षों अर्थात् 1990-91 तथा 1991-92 में भुगतान शेष के चालू खाते के घाटे में बहुत अधिक वृद्धि हुई। 1990-91 में चालू खाते का घाटा सबसे अधिक अर्थात् 17,368 करोड़ रु० था। देश के **विदेशी विनिमय कोष** (Foreign Exchange Reserves) कम होकर केवल 4,388 करोड़ रुपये के रह गये। इस स्थिति को ही **विदेशी विनिमय संकट** (Foreign Exchange Crisis) की अवस्था कहा जाता है। सन् 1991-92 में चालू खाते का घाटा कम होकर 2,237 करोड़ रुपये हो गया। इसका मुख्य कारण पूंजीगत वस्तुओं के आयात में होने वाली भारी कमी थी। 1992-93 में चालू खाते का घाटा बढ़कर 12,764 करोड़ रुपये हो गया। 1993-94 के चालू खाते का घाटा कम होकर 3,636 करोड़ रुपये रह गया। इसका मुख्य कारण निर्यातों में होने वाली 30 प्रतिशत की वृद्धि थी। इस वर्ष आयातों में केवल 15 प्रतिशत की वृद्धि हुई। 1994-95 में चालू खाते का घाटा बढ़कर 10,583 करोड़ रुपये हो गया। इसका कारण यह था कि आयातों में 23 प्रतिशत की वृद्धि तथा निर्यातों में केवल 18 प्रतिशत की वृद्धि हुई। 1995-96 में भुगतान सन्तुलन का घाटा बढ़कर 19,607 करोड़ रुपये हो गया। इसका मुख्य कारण था आयातों में होने वाली 36 प्रतिशत की वृद्धि। जबकि निर्यातों में केवल 28.6 प्रतिशत की वृद्धि हुई। भुगतान सन्तुलन के घाटे के बढ़ने के कई कारण थे। (i) पूंजीगत वस्तुओं के आयात में 34 प्रतिशत की वृद्धि (ii) निर्यात वस्तुओं के उत्पादन के लिये आवश्यक कच्चे माल के आयात में 22 प्रतिशत की वृद्धि (iii) पेट्रोल के आयात में 27 प्रतिशत की वृद्धि तथा (iv) रुपये की विदेशी विनिमय दर में होने वाली कमी की सम्भावना के कारण आयातों में अधिक वृद्धि। 1996-97 में भुगतान शेष का घाटा कम होकर 13,242 करोड़ रुपये हो गया। इसका कारण था कि आयात में केवल 5 प्रतिशत की वृद्धि हुई जबकि निर्यात में 4 प्रतिशत की वृद्धि हुई। आठवीं योजना में पांच वर्षों में औसत घाटा 11,966 करोड़ रुपए था।

(11) नौवीं योजना (Ninth Plan 1997-2002): नौवीं योजना के पहले वर्ष 1997-98 में भुगतान शेष का घाटा बढ़ कर 16,654 करोड़ रुपये हो गया तथा अन्तिम वर्ष अर्थात् 2001-2002 में 56,593 करोड़ रुपये का प्रतिकूल हो गया। इसका मुख्य कारण निर्यात की दर का कम होना था।

(12) दसवीं योजना (Tenth Plan 2002-2007): दसवीं योजना के प्रथम वर्ष (2002-2003) तथा द्वितीय वर्ष (2003-04) में भुगतान शेष का घाटा बढ़कर क्रमश: 82,037 तथा 1,43,993 करोड़ रुपए हो गया और तीसरे वर्ष (2004-05) में

यह 1,15,907 करोड़ रुपए था तथा चौथे वर्ष (2005-06) तथा पाँचवें वर्ष (2006-07) में यह घाटा क्रमश: 65,896 करोड़ रु. तथा 1,63,634 करोड़ रु. था। इसका मुख्य कारण आयातों में होने वाली वृद्धि थी।

(13) ग्यारहवीं योजना (Eleventh Plan 2007-2012): योजना के प्रथम वर्ष (2007) में भुगतान शेष का घाटा 1,02,811 करोड़ रु. और दूसरे वर्ष (2008) में यह 88,894 करोड़ रु. था।

संक्षेप में, योजनाओं की अब तक की अवधि में भुगतान शेष के चालू खाते का घाटा निम्नलिखित तालिका द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है:

तालिका 1. भारत का भुगतान शेष (India's Balance of Payments) (Current Account)

Period	Balance of Payments Rs. (Crores)
First Plan (1951-56)	– 42
Second Plan (1956-61)	– 1,725
Third Plan (1961-66)	– 1,951
Annual Plan (1966-69)	– 2,015
Fourth Plan (1969-74)	+100 (Favourable)
Fifth Plan (1974-1978)	+3,082 (Favourable)
Sixth Plan (1980-85)	–11,384
Seventh Plan (1985-90)	– 38,313
1990-91	– 4,471
Eighth Plan (1992-97)	– 11,966
Ninth Plan (1997-2002)	–56,593
Tenth Plan (2002-2007) First Year of the Plan	– 82,037
Second Year of the Plan (2003-04)	– 1,43,993
Third Year of the Plan (2004-05)	– 1,15,907
Fourth Year of the Plan (2005-06)	– 65,896
Fifth Year of the Plan (2006-07)	– 1,63,634
Eleventh Plan	
First Year (Oct.-Dec. 2007)	– 1,02,811
Second Year (Jan.-March 2008)	– 88,894

(Source : Reserve Bank of India Bulletin, March 2009 and Economic Survey 2007-08)

■ 3. प्रतिकूल भुगतान शेष के कारण (Causes of Unfavourable Balance of Payments)

भारत के भुगतान शेष के प्रतिकूल होने के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं:

(1) मशीनों का आयात (Import of Machinery): स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत में मशीनों का आयात दो कारणों से बढ़ गया (i) द्वितीय महायुद्ध में कारखानों से अधिक काम लिया गया। इससे उनकी मशीनें घिस गईं तथा पुरानी पड़ गई। इनको बदलने के लिए विदेशों से काफी मूल्य की नई मशीनें मंगवानी पड़ी। (ii) पंचवर्षीय योजनाओं के कारण देश के औद्योगिकीकरण के लिये भी बहुत अधिक मूल्य की मशीनों के आयात ने भारत के भुगतान शेष को प्रतिकूल कर दिया।

(2) युद्ध सामग्री का आयात (Imports of War Equipments): भारत को चीन तथा पाकिस्तान से रक्षा करने के लिये विदेशों से अधिक मूल्य की युद्ध सामग्री मंगवानी पड़ी। इनके आयात ने भी भुगतान शेष को असन्तुलित बना दिया।

(3) उपभोक्ता वस्तुओं की अधिक मांग (More Demand of Consumption Goods): युद्ध के बाद न केवल विदेशी बल्कि भारतीय वस्तुओं की मांग भी बढ़ गई है। पहले तिलहन, चाय, कच्चा लोहा अधिक मात्रा में निर्यात किये जाते थे परन्तु अब इनका उपयोग देश के अन्दर ही बढ़ गया है। अत: इनका निर्यात कम होने लगा है।

(4) मूल्य असन्तुलन (Price Disequilibrium): **राजकोषीय आयोग** (Fiscal Commission) की रिपोर्ट के अनुसार 1945 के बाद से वस्तुओं के घरेलू दामों और विदेशी व्यापार में भेजी जाने वाली वस्तुओं के दामों में अन्तर हो गया है। युद्ध बन्द हो जाने के कारण मुद्रा प्रसार बढ़ गया। अनाज के दाम बढ़ने के कारण दूसरी वस्तुओं के दाम बढ़े। इसके कारण आयात बढ़े तथा निर्यात कम हो गए।

(5) विदेशों में दूतावास (Embassies): भारत को स्वतन्त्रता के बाद विदेशों से सम्बन्ध स्थापित करने के लिये बहुत से दूतावास विदेशों में खोलने पड़े। इन पर काफी खर्च करना पड़ता है। इसके फलस्वरूप भी भुगतान शेष प्रतिकूल हो गया।

(6) विदेशी प्रतियोगिता (Foreign Competition): भारत मुख्य रूप से पटसन, चाय तथा कपड़े का निर्यात करता है, परन्तु अब इन वस्तुओं में विदेशी प्रतियोगिता बढ़ने लगी है, जैसे जूट में बंगलादेश से तथा चाय में श्रीलंका और इन्डोनेशिया से और कपड़े के निर्यात में कोरिया तथा चीन से, इसके कारण भारत के निर्यात कम हो गए।

(7) पेट्रोल की कीमतों में वृद्धि (Increase in the Price of Petrol): पिछले कई वर्षों से पेट्रोल की कीमतों में वृद्धि होने के कारण भी आयात का मूल्य बहुत बढ़ गया है। सन् 1973 में पेट्रोल की कीमत 2 डालर प्रति बैरल थी अब यह बढ़ कर 50 डालर प्रति बैरल हो गई है। इसके फलस्वरूप पेट्रोल का आयात का मूल्य बहुत बढ़ गया। 1970-71 में केवल 136 करोड़ रुपये का पेट्रोल आयात किया गया। परन्तु 1990-91 में यह बढ़ कर 10,816 करोड़ रुपये तथा 2004-2005 में पेट्रोल का आयात बढ़कर 1,34,094 करोड़ रुपये हो गया। कुल निर्यात का 19 प्रतिशत भाग पेट्रोल के आयात पर खर्च किया जाता है। सन् 1991 में **गल्फ युद्ध** (Gulf War) के कारण भी पेट्रोल की कीमतों में काफी वृद्धि हुई है।

(8) विदेशी ऋणों पर ब्याज का भुगतान (Payments of Interest on Foreign Debt): भारत ने विदेशों से मार्च 2007, तक लगभग 7,40,999 करोड़ रुपये के ऋण लिये हुए हैं। यह GDP का 18 प्रतिशत है। इन ऋणों पर 2006-07 में कुल राशि का लगभग 10.2 प्रतिशत ऋण सेवा भुगतान विदेशों को दिया गया है। इसके फलस्वरूप भी भुगतान शेष असन्तुलित हो गया है।

(9) निर्यात में आयात की तुलना में कम वृद्धि (Less Growth of Exports than imports): सन् 1976 तक देश के निर्यात में आयात की तुलना में कम वृद्धि हुई है इसके फलस्वरूप भुगतान शेष का असन्तुलन बढ़ गया। चौथी तथा पांचवी योजना में यह

सन्तुलन में रहा परन्तु छठी योजना में असन्तुलन और अधिक बढ़ गया। सातवीं योजना में 86,934 करोड़ रुपये के निर्यात तथा 1,25,649 करोड़ रुपये के आयात किए गये। इस प्रकार व्यापार शेष का घाटा 38,715 करोड़ रुपये था। यह घाटा 2006-07 में 2,68,727 करोड़ रुपये का हो गया। इस कारणवश भी भुगतान शेष प्रतिकूल हो गया है।

(10) खाड़ी युद्ध (Gulf War): सन् 1991 में होने वाले गल्फ युद्ध (इराक तथा अन्य देशों में होने वाला युद्ध) का भी भारत के भुगतान सन्तुलन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। एक ओर तो पेट्रोल की कीमत बढ़ गई तथा दूसरी ओर गल्फ क्षेत्र जैसे कुवैत, इराक आदि में काम करने वाले भारतीयों द्वारा भारत को भेजी जाने वाली विदेशी मुद्रा बन्द हो गई। इसके फलस्वरूप आयात महंगे हो गये तथा विदेशों से आने वाला धन बन्द हो गया।

(11) सोवियत संघ का विघटन (Disintegration of U.S.S.R.): भारत का काफी व्यापार सोवियत संघ के साथ होता है। सोवियत संघ के विघटन का देश के निर्यातों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है।

ऊपर लिखे कारणों के अतिरिक्त भुगतान शेष के प्रतिकूल होने के कई और कारण हैं जैसे-भारतीय माल के स्तर का नीचा होना, उनका मूल्य अधिक होना तथा भारतीय व्यापारियों के अनुचित व्यवहार के कारण निर्यातों में बाधाएं, उत्पादन लागतों के अधिक होने के कारण निर्यातों पर बुरे प्रभाव, स्वतन्त्रता के बाद ब्याज के रूप में काफी मात्रा में विदेशी मुद्रा का भुगतान करना आदि।

■ 4. भुगतान शेष के असन्तुलन को ठीक करने के उपाय
(Measures to Correct Disequilibrium in the Balance of Payments)

भुगतान शेष में असन्तुलन होने का मुख्य कारण निर्यात की अपेक्षा आयात का अधिक होना है। इसलिये भुगतान शेष के असन्तुलन को ठीक करने के लिये दो उपाय किये जाने चाहिएं। भुगतान शेष को अनुकूल बनाने के लिये **निर्यात बढ़ाने** (Export Promotion) तथा **आयात कम किये** जाने चाहिएं। **आयात प्रतिस्थापन** (Import Substitution) किया जाना चाहिए। भुगतान शेष के असन्तुलन को ठीक करने के लिये निम्नलिखित उपाय अपनाये जाने चाहिएं:

(1) निर्यातों को प्रोत्साहन (Promotion of Exports): भुगतान शेष के प्रतिकूल होने पर निर्यातों को बढ़ाना सर्वोत्तम उपाय है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये निर्यातों पर से सभी कर हटा देने चाहिएं, निर्यात उद्योगों को कच्चे माल तथा यातायात की सुविधाएं कम लागत पर प्रदान की जानी चाहिएं ताकि निर्यात वस्तुओं की क़ीमतें कम हों। इसके अतिरिक्त इन उद्योगों को बैंकिंग तथा साख की अधिक सुविधाएं तथा **वित्तीय सहायता** (Subsidies) दी जानी चाहिए। वस्तुओं के निर्यात को बढ़ावा देने के लिये विदेशी बाजारों में प्रचार किया जाना चाहिए तथा विदेशियों की रुचि के अनुसार वस्तुओं का निर्माण किया जाना चाहिए।

(2) उत्पादन में वृद्धि (Increase in Production): देश के आयात कम करने तथा निर्यात बढ़ाने के लिये यह आवश्यक है कि देश में कृषि उद्योगों और खानों का उत्पादन बढ़ाया जाए। भारत के निर्यात में जूट के सामान, चाय तथा कॉफी का बहुत महत्त्व है। देश की पंचवर्षीय योजनाओं में इन तीनों के उत्पादन में वृद्धि करने के बहुत अधिक प्रयत्न किये गये हैं इनका उत्पादन और अधिक बढ़ाया जाना चाहिये। कई नई वस्तुओं का निर्यात किया जा रहा है जैसे मशीनें, बिजली के पंखे, साइकिलें, सिले-सिलाए कपड़े, हौजरी का सामान, हस्तशिल्प, चमड़े का सामान जवाहरात आदि। निर्यात उद्योगों को अन्तर्राष्ट्रीय मूल्यों पर कच्चे माल की उपलब्धि कराई जानी चाहिए। देश में सीमेन्ट, खाद, लोहे इस्पात, चीनी आदि की उत्पादन क्षमता का पूर्ण उपयोग किया जाना चाहिए।

(3) व्यापार समझौते (Trade Agreements): विदेशों में व्यापार बढ़ाने के लिये हमारी सरकार दूसरे देशों की सरकारों से कई समझौते करती है। व्यापार बढ़ाने के लिये विदेशों के कई व्यापारिक प्रतिनिधि मण्डल भारत आते रहते हैं। भारत ने कई देशों जैसे बंग्लादेश, बुल्गारिया, जर्मनी, मिस्र, फ्रांस, चेकोस्लोवाकिया, कोरिया, इराक, ईरान आदि के साथ व्यापारिक समझौते किये हैं। 15 अप्रैल, 1994 को भारत ने भी 125 देशों के साथ गैट (GATT) समझौते पर हस्ताक्षर कर दिये। इसके फलस्वरूप इन देशों से गैट के

प्रावधान के अनुसार भारत के व्यापारिक समझौते हो गये हैं तथा भारत **विश्व व्यापार संगठन** (World Trade Organisation) का सदस्य हो गया है।

(4) विदेशी निवेश को प्रोत्साहन (Encouragement to Foreign Investment): भुगतान शेष की प्रतिकूलता को दूर करने का यह भी महत्त्वपूर्ण उपाय है। इसके अन्तर्गत विदेशी उद्योगपतियों तथा **बहुराष्ट्रीय निगमों** (Multinational Corporations) को भारत में पूंजी लगाने के लिये प्रोत्साहित किया जाता है। विदेशी पूंजी को आकर्षित करने के लिये विशेष सुविधाएं प्रदान की जाती है। इससे निर्यात वस्तुओं का उत्पादन बढ़ता है और इस प्रकार निर्यातों को प्रोत्साहन मिलता है। परन्तु यह सावधानी रखनी चाहिए कि विदेशी पूंजीपति देश की अर्थव्यवस्था पर अपना प्रभुत्त्व न जमा लें।

(5) विदेशी पर्यटकों को आकर्षित करना (Attraction to Foreign Tourists): विदेशी पर्यटकों को आकर्षित करने के लिये देश में विभिन्न प्रदेशों में **आकर्षक पिकनिक स्थानों** (Attractive Picnic Spots) का निर्माण करना चाहिए। सरकार इस प्रकार के स्थानों को विकसित करने में पर्याप्त धन राशि खर्च करती है। इसके अतिरिक्त विदेशी पर्यटकों को यातायात तथा अन्य सुविधाएं प्रदान की जानी चाहिये। इन विदेशी पर्यटकों से पर्याप्त मात्रा में विदेशी मुद्रा प्राप्त हो सकती है।

(6) भारतीय मुद्रा का अवमूल्यन (Devaluation of Indian Currency): अवमूल्यन का अर्थ है किसी देश की मुद्रा का मूल्य दूसरे देशों की मुद्रा की अपेक्षा कम हो जाना। किसी मुद्रा के अवमूल्यन की आवश्यकता मुख्य रूप से उस समय होती है जब देश के आयात, निर्यात से अधिक होने लगते हैं। अवमूल्यन के कारण आयात महंगा हो जाता है तथा निर्यात सस्ता हो जाता है। भारत में पहली बार अवमूल्यन 1949 में किया गया। 6 जून, 1966 को भारतीय रुपये का फिर से अवमूल्यन कर दिया गया। इस बार रुपये का 35.5 प्रतिशत अवमूल्यन किया गया। रुपये का मूल्य कम होकर 0.11849 ग्रेन सोना या 13.3 सेन्ट्स रह गया। जुलाई, 1991 में रुपये का तीसरी बार 20 प्रतिशत अवमूल्यन किया गया है।

(7) मुद्रा विस्फीति या कीमतों में कमी (Deflation): इसका अभिप्राय यह है कि देश में उत्पादित वस्तुओं की कीमतों को कम किया जाए। इसके फलस्वरूप देश के द्वारा की जाने वाली निर्यात वस्तुएँ विदेशियों को सस्ती प्राप्त हो सकेंगी। इसके कारण देश के निर्यात बढ़ेंगे। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये सरकार मुद्रा तथा साख का संकुचन करती है, ब्याज की दर में वृद्धि करती है, लोगों को अधिक बचत के लिये प्रेरित करती है तथा उपभोग कम करने का प्रयत्न करती है। इनके साथ ही अधिक प्रत्यक्ष कर लगा कर लोगों की **खर्च योग्य आय** (Disposable Income) में भी कमी की जाती है। आय में कमी होने के दो प्रभाव होते हैं- एक तो देश में उत्पादित वस्तुओं की मांग कम हो जाती है तथा दूसरे विदेशों से आयात की जाने वाली वस्तुओं की मांग भी कम होती है। इसके फलस्वरूप देश के उत्पादन की अधिक मात्रा निर्यात के लिये उपलब्ध होती है तथा आयात कम किये जाते है। मुद्रा विस्फीति के कारण भुगतान शेष के असन्तुलन को ठीक करने में सफलता मिलती है।

(8) आयातों पर रोक (Restrictions on Imports): भुगतान शेष को सुधारने का दूसरा महत्त्वपूर्ण उपाय आयातों पर रोक लगाना है। आयातों को कम करने के लिये निम्नलिखित ढंग अपनाये जा सकते हैं: (i) विलासितापूर्ण वस्तुओं के आयातों पर प्रतिबन्ध लगाना। (ii) आयात की जाने वाली वस्तुओं का देश में ही उत्पादन करने का प्रयत्न करना। (iii) अति आवश्यक वस्तुओं के आयात के लिये लाइसेंस देना। (iv) विभिन्न वस्तुओं के आयात का कोटा निर्धारित करना। (v) नये आयात कर लगाना तथा पुराने करों में वृद्धि करना। (vi) स्वदेशी वस्तुओं के उपभोग की भावना जागृत करना (vii) **आयातित** (Imported) वस्तुओं के लिये कम साख सुविधाएं प्रदान करना इत्यादि।

(9) आयात प्रतिस्थापन (Import Substitution): भुगतान शेष के घाटे को पूरा करने के लिये आयात प्रतिस्थापन का बहुत महत्त्व है। **''आयात प्रतिस्थापन का अर्थ है आयात की जाने वाली किसी वस्तु का कुल या आंशिक रूप से देश के कच्चे माल तथा तकनीक द्वारा उत्पादित उसी प्रकार के कार्य करने वाली वस्तु द्वारा प्रतिस्थापन करना।''** (Import Substitution means total or partial replacement of an imported product of the same functional requirement mainly from indigenous material and know how.) इसका मुख्य उद्देश्य आयात को कम करना है। उदाहरण के लिये स्वतन्त्रता से पहले साइकिलें, सिलाई की मशीनें, बिजली के पंखे आयात किये जाते थे। परन्तु अब इनका देश में ही उत्पादन होने लगा है। इसी प्रकार बिजली उद्योग के लिये आयात किये गये तांबे के तार के स्थान पर देश में बने एल्यूमिनियम के तार का प्रयोग किया जाने लगा है।

(10) विदेशी मुद्रा के भंडार (Foreign Exchange Reserves): रिजर्व बैंक अपने पास विदेशी मुद्रा के भण्डार रखता है। इनका प्रयोग भुगतान सन्तुलन के घाटे को पूरा करने के लिये किया जाता है। भारत के लिये विदेशी मुद्रा के भण्डार का सुरक्षित स्तर इसकी तीन महीनों की विदेशी मुद्रा आवश्यकतायें माना जाता है। भारत में 1989 में विदेशी मुद्रा के भण्डार इतने कम हो गये थे कि देश को विदेशी मुद्रा का भुगतान करने के लिये अपना सोना बैंक ऑफ इंग्लैण्ड के पास गिरवी रखना पड़ा था। 1991 में भारत के भण्डार केवल 4,388 करोड़ रुपये के रह गये थे वे केवल दो सप्ताह के आयात के लिये पर्याप्त थे। परन्तु 1991 से जो नई आर्थिक नीति अपनाई गई है तथा कई अन्य कारणों से विदेशी मुद्रा के भण्डार अब काफी बढ़ गये हैं। 2006-07 में विदेशी मुद्रा के भण्डार बढ़कर 8,68,222 करोड़ रुपये के हो गये थे।

(11) विदेशी सहायता (Foreign Assistance): भुगतान शेष को ठीक रखने में विदेशी सहायता का काफी योगदान रहा है। विदेशी सहायता से अभिप्राय है विदेशों से प्राप्त **(i) ऋण** (Loans) तथा **(ii) अनुदान** (Grants)। विदेशी ऋण, विदेशी सरकारों, अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं जैसे मुद्रा कोष तथा विदेशी बैंकों से व्यापारिक ऋणों के रूप में प्राप्त हो सकते हैं। इन्हें ब्याज के साथ वापिस करना पड़ता है। इसके विपरीत अनुदान विदेशी सरकार तथा अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं से प्राप्त होते हैं इन्हें वापिस नहीं करना पड़ता।

सन् 2006-07 में 31,790 करोड़ रुपये की विदेशी सहायता अधिकृत (Authorised) की गई। इसमें से 19,419 करोड़ रुपये की विदेशी सहायता प्रयुक्त (Utilised) की गई। इस प्रकार कुल अधिकृत विदेशी सहायता का केवल 72 प्रतिशत उपयोग में *लाया गया। अधिकृत सहायता का 90 प्रतिशत ऋणों के रूप में तथा 10 प्रतिशत अनुदान के रूप में प्राप्त हुआ है।*

संक्षेप में, निर्यात बढ़ाकर तथा आयात कम करके भुगतान शेष के घाटे को कम किया जा सकता है। भारत सरकार ने निर्यात प्रोत्साहन तथा आयात प्रतिस्थापन के लिए कई उपाय किए हैं।

■ 5. निर्यात प्रोत्साहन- विस्तृत अध्ययन (Export Promotion - A Detailed Study)

भारत में विदेशी व्यापार को अनुकूल बनाने के लिये निर्यात में वृद्धि की जानी आवश्यक है। भारत के भूतपूर्व विदेश व्यापार मन्त्री ***श्री एल० एन० मिश्र*** के अनुसार, ***''निर्यात आर्थिक संवृद्धि एवं विकास की जीवन रेखा तथा प्रेरणा शक्ति है।''*** (Exports are life line and motive power for economic growth and development.– **L.N. Mishra**)। **निर्यात प्रोत्साहन या संवर्धन** (Export Promotion) **से अभिप्राय उन नीतियों तथा उपायों से है जिनके द्वारा किसी देश के निर्यात में अधिकतम वृद्धि हो सकती है।** इसके लिये ऐसी नीति की आवश्यकता है जिसके द्वारा निर्यात के बाजार तथा वस्तुओं का विस्तार किया जा सके। निर्यात संवर्धन के लिये निर्यातकर्ताओं को कई प्रकार की प्रेरणा दी जाती है, जैसे - (1) इन्हें नकद सहायता (Cash Subsidy) दी जाती है। (2) बैंकों द्वारा कम ब्याज पर ऋण दिये जाते हैं। (3) निर्यात के बदले में कुछ पूंजीगत तथा अन्य आवश्यक मशीनों व कच्चे माल को आयात करने की अनुमति दी जाती है। (4) निर्यात के लिये भेजे जाने वाले माल के यातायात के लिये किराए में छूट दी

जाती है। (5) निर्यात करने वाली संस्थाओं को आयकर में छूट दी जाती है। भारत सरकार ने सन् 1992 में दीर्घकालीन विस्तृत निर्यात नीति का निर्माण किया है। इसका उद्देश्य देश के निर्यातों का तीव्र गति से विकास करना है।

■ 5.1 निर्यात प्रोत्साहन के उपाय (Measures for Export Promotion)

भारत सरकार ने निर्यात को बढ़ावा देने के लिये निम्नलिखित कदम उठाए हैं:

(1) समितियां (Committees): निर्यात में वृद्धि करने के सम्बन्ध में कई समितियां नियुक्त की गई हैं, जैसे **गोरेवाला कमेटी 1950, सूजा कमेटी 1957, तथा मुदालियर कमेटी, आयात-निर्यात नीति समिति 1962, एलेग्जेण्डर कमेटी 1979** (Alexander Committee 1979), **टंडन समिति** 1980 तथा **आबिद हुसैन कमेटी 1984** (Abid Hussain Committee 1984) तथा **रंग राजन कमेटी 1991** (Rangrajan Committee 1991)। इन समितियों ने देश के निर्यात बढ़ाने के लिये कई सुझाव दिये हैं। जैसे, देश के निर्यात बढ़ाने के लिये विशेष वातावरण तैयार किया जाना चाहिए, निर्यातकर्ताओं को आर्थिक सहायता दी जानी चाहिए, करों में तथा रेल भाड़े की छूट दी जानी चाहिए।

(2) उत्पादन में वृद्धि (Increase in Production): निर्यात बढ़ाने के लिये यह आवश्यक है कि देश में कृषि, उद्योगों और खनिज पदार्थों का उत्पादन बढ़ाया जाए। भारत के निर्यात में जूट का सामान, चाय तथा सूती कपड़े का काफी महत्व है। देश की पंचवर्षीय योजनाओं में इन तीनों के उत्पादन में वृद्धि करने के बहुत प्रयत्न किये गये हैं। कई नई वस्तुओं का निर्यात किया जा रहा है, जैसे मशीनें, जवाहरात, बिजली के पंखे, साइकिलें, हौजरी का सामान, लोहा और हस्तशिल्प तथा सिले-सिलाये कपड़े। निर्यात उद्योगों को अन्तर्राष्ट्रीय मूल्यों पर कच्चे माल की उपलब्ध कराई जाती है। देश में सीमेन्ट, खाद, लोहे तथा इस्पात, चीनी आदि उद्योगों की उत्पादन क्षमता का पूर्ण उपयोग किया जाना चाहिये।

(3) निर्यात वृद्धि के लिये संस्थाएं (Institutions for Export Promotion): सरकार ने निर्यात को प्रोत्साहन देने के लिये कई संस्थाओं का निर्माण किया है। जैसे (i)**निर्यात विकास परिषदें** (Export Promotion Councils) विभिन्न वस्तुओं के निर्यात को प्रोत्साहन देने के लिये 19 निर्यात समितियां बनाई गई हैं, (ii) **व्यापार विकास अॅथारिटी** (Trade Development Authority) की स्थापना 1970 में की गई थी। इसका उद्देश्य लघु तथा मध्यम स्तर के उद्यमियों को संगठित करना तथा उनकी निर्यात क्षमता में वृद्धि करना है। अब इसका पुनर्गठन किया जा रहा है। (iii) **व्यापार की केन्द्रीय सलाहकार समिति** (Central Advisory Council on Trade): इस समिति की स्थापना 15 फरवरी, 1978 में की गई थी। इसका कार्य सरकार को आयात तथा निर्यात के सम्बन्ध में सलाह देना तथा निर्यात उत्पादन का विस्तार करना है। (iv) **निर्यात संगठनों का फेडरेशन** (Federation of Indian Export Organisations): यह फेडरेशन देश के विभिन्न संगठनों के कार्यों को समन्वित करता है। इस संगठन के साथ कार्य करने वाली सलाहकार फर्मों को सरकार वित्तीय सहायता देती है। (v) **निर्यात निरीक्षक सलाहकार समिति** (Export Inspection Advisory Council) बनाई गई है। इसका काम निर्यात की जाने वाली वस्तुओं की किस्म (Quality) की जांच करना है। (vi) **निर्यात साख और गारन्टी निगम** (Export Credit and Guarantee Corporation) की स्थापना निर्यात जोखिम बीमा निगम (Export Risk Insurance Corporation) के स्थान पर हुई है। इसका काम निर्यात व्यापार के लिये साख का प्रबन्ध करना है। (vii) **भारतीय पैकिंग संस्थान** (Indian Institute of Packing): यह संस्था निर्यात वस्तुओं के पैकिंग के सम्बन्ध में सुझाव देती है। (viii) **वस्तु मण्डल** (Commodity Boards): सरकार ने पांच वस्तुओं जैसे चाय, इलायची, रबड़, नारियल की जटा एवम् रेशम के उत्पादन तथा निर्यात के विकास के लिये वस्तु मण्डल स्थापित किये हैं। (ix) निर्यात के सम्बन्ध में तुरन्त निर्णय के लिये विदेशी

व्यापार की वित्त सम्बन्धी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये एक **निर्यात-आयात बैंक** (Export-Import Bank) स्थापित किया गया है। (x) **निर्यात बढ़ाने के सम्बन्ध में सुझाव देने के लिये एक बोर्ड ऑफ ट्रेड** (Board of Trade) की स्थापना की गई है।

(4) निर्यात वस्तुओं का प्रचार (Publicity of Export Goods): विदेशों में भारतीय वस्तुओं के प्रचार के लिये सरकार ने **भारतीय व्यापार मेला अॅथारिटी** (Trade Fair Authority of India) की स्थापना की है। इस संस्था ने 1977 में अपना कार्य आरम्भ किया था। यह संस्था **अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार मेलों** (International Trade Fairs) का आयोजन करती है जिनमें विभिन्न देश भाग लेते हैं। मुम्बई में **भारतीय मेलों तथा प्रदर्शनी समिति** (Indian Council of Trade and Exhibition) बनाई गई है। विदेशों के महत्त्वपूर्ण नगरों में केन्द्र तथा शो रूम खोले गये हैं।

(5) विदेशी व्यापार का प्रशिक्षण *(Training in Foreign Trade)*: विदेशी व्यापार के सम्बन्ध में शिक्षा देने के लिये **भारतीय विदेशी व्यापार संस्था** (Indian Institution of Foreign Tarde) की स्थापना की गई। विदेशों को भेजे जाने वाले सामान की पैकिंग के प्रशिक्षण के लिये **भारतीय पैकिंग संस्थान** (Indian Institute of Packing) की स्थापना 1967 में की गई।

(6) गैट समझौता (GATT Agreement): भारत ने 1994 में गैट (GATT) समझौते पर हस्ताक्षर करके गैट के सभी 125 सदस्य देशों से व्यापारिक समझौता कर लिया है। अब इसका नाम **विश्व व्यापार संगठन** (World Trade Organisation) हो गया है। विश्व व्यापार संगठन (WTO) ने GATT का स्थान ले लिया है और अब यह अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की एक स्थायी संस्था है।

(7) निर्यात घराने (Export Houses): निर्यात से जुड़े व्यापारिक संस्थानों को उनके कारोबार के आधार पर निम्नलिखित घरानों के रूप में श्रेणीबद्ध किया है: (1) **निर्यात घराने** (Export Houses): उन संस्थाओं को निर्यात हाउस माना जाएगा जिनका पिछले लाइसेन्स वर्ष में किये गये निर्यात का औसत मूल्य 15 करोड़ रुपये था। (2) **व्यापार घराने** (Trade Houses): उन संस्थानों को माना जायेगा जिनके निर्यात का औसत वार्षिक मूल्य 75 करोड़ रुपये है। (3) **अग्रणी व्यापार घराने** (Super Trading Houses): उन संस्थानों को माना जायेगा जिनके वार्षिक औसत निर्यात 375 करोड़ के थे। (4) **शीर्ष व्यापार घराने** (Super Star Trading Houses): उन घरानों को माना जायेगा जिनका वार्षिक निर्यात मूल्य 1,125 करोड़ रुपये के हैं इन घरानों को निर्यात बढ़ाने के लिए कई प्रकार की सुविधाएं दी जायेंगी।

(8) सरकार द्वारा किए गए निर्यात (Government Exports): सरकार ने विदेशी व्यापार करने के लिये कई संस्थाएं बनाई हैं, जैसे **(i) राजकीय व्यापार निगम** (State Trading Corporation)- यह संस्था 1956 में स्थापित की गई थी। **(ii) खनिज तथा धातु व्यापार निगम** (Minerals and Metals Trading Corporation): यह संस्था 1963 में खनिज पदार्थों तथा धातुओं के निर्यात के लिये स्थापित की गई है। ***(iii) हस्तकला एवं हस्तकरघा निगम*** *(Handicrafts and Handloom Corporation)*: इस निगम की स्थापना हस्तकला तथा हस्तकरघा के कपड़े के निर्यात के लिये की गई है। **(iv) काजू निगम** (Cashew Corporation): इस संस्था की स्थापना काजू के निर्यात के लिये की गई है। **(v) छोटे यन्त्रों के निर्यात के लिये प्रोजेक्ट्स एन्ड इक्विपमेन्ट्स निगम** (Projects and Equipments Corporation) की स्थापना की गई है। **(vi) राज्य निर्यात निगम** (State Export Corporation): लगभग प्रत्येक राज्य में निर्यात बढ़ाने के लिए राज्य निर्यात निगम स्थापित किए गये हैं। ***(vii) स्टील ऑथॉरिटी ऑफ इन्डिया लि०*** *ने लोहे तथा इस्पात के निर्यात के लिये स्टील बैंक की स्थापना की है।* ***(viii) अभ्रक*** **व्यापार निगम** (Mica Trading Corporation) की स्थापना 1974 में की गई है। इसका कार्य केवल अभ्रक निर्यात करना है। **(ix) निर्यात प्रोसेसिंग क्षेत्र** (Export Processing Zone): देश के विभिन्न भागों में सात निर्यात प्रोसेसिंग क्षेत्र स्थापित किये गये हैं। ये

क्षेत्र कान्डला, सांताक्रुज, फाल्टा, नोएडा, कोचीन, चेन्नई तथा विशाखापट्टनम में स्थित हैं। इनका सारा उत्पादन निर्यात किया जाता है। इन्हें कई प्रकार की सुविधाएं दी गई हैं, जिससे ये विदेशी बाजार में प्रतियोगिता कर सकें।

(9) निर्यात उद्योगों में निवेश को प्रोत्साहन (Inducement of Investment in Export Industries): भारत सरकार ने 1972 की निर्यात नीति में निर्यात उद्योगों को प्रोत्साहन देने का निश्चय किया था। इस कार्य के लिये **व्यापार विकास प्राधिकरण** (Trade Development Authority) की नियुक्ति की गई है। उन विदेशी फर्मों को भारत में उद्योग लगाने की पूरी स्वतन्त्रता दी जाती है जो अपना सारा उत्पादन निर्यात करती हैं।

(10) भारतीय मुद्रा का अवमूल्यन (Devaluation of Indian Currency): अवमूल्यन का अर्थ है कि किसी देश की मुद्रा का मूल्य दूसरे देशों की मुद्रा के मूल्य की अपेक्षा कम हो जाना। किसी मुद्रा के अवमूल्यन की आवश्यकता, मुख्य रूप से उस समय होती है जब देश के आयात, निर्यात से अधिक होने लगते हैं तो अवमूल्यन के कारण आयात महंगा हो जाता है तथा निर्यात सस्ता हो जाता है। भारत में पहली बार अवमूल्यन 1949 में किया गया। 6 जून 1966, को भारतीय रुपये का फिर से अवमूल्यन कर दिया गया। इस बार रुपये का 35.5 प्रतिशत अवमूल्यन किया गया। रुपये का मूल्य कम होकर 0.11849 ग्रेन सोना या 13.3 सेन्ट्स रह गया। जुलाई 1991 में तीसरी बार 20 प्रतिशत अवमूल्यन किया गया है।

(11) निर्यात वित्त (Export Finance): रिजर्व बैंक, व्यापारिक बैंक, निर्यात साख तथा गारन्टी निगम तथा भारतीय औद्योगिक विकास बैंक निर्यात व्यापार को कई प्रकार की सुविधाएं प्रदान करते हैं। निर्यातकर्ता को माल का निर्यात करने के तुरन्त बाद लगभग 90 प्रतिशत मूल्य बैंकों से उधार मिल जाता है। सरकार ने केवल निर्यात व्यापार को साख सुविधाएं देने के लिये जनवरी 1982 में **निर्यात-आयात बैंक** (Export-Import Bank) स्थापित किया था। निर्यात उद्योगों के आधुनिकीकरण के लिये विदेशी मुद्रा व्यवस्था करने के उद्देश्य से एक **तकनीकी विकास कोष** (Technical Development Fund) की स्थापना की गई है। अधिक निर्यात संभावना वाले उद्योगों जैसे इंजीनियरिंग, इलैक्ट्रानिक्स आदि उद्योगों की **उत्पादकता** में वृद्धि करने के लिए धन की व्यवस्था करने के लिए **उत्पादकता कोष** (Productivity Fund) की स्थापना की गई है।

(12) व्यापारिक प्रतिनिधि (Trade Representatives): सरकार ने अपने दूतावासों में व्यापारिक प्रतिनिधियों की नियुक्ति की है। इनका कार्य उन देशों में सर्वेक्षण करके यह पता लगाना है कि भारत की किन वस्तुओं की मांग हो सकती है। सन् 1982 में यूरोप के देशों में निर्यात बढ़ाने के लिये **इकोनॉमिक मिशन ऑफ इण्डिया** (Economic Mission of India) की स्थापना की गई थी।

(13) राजकोषीय उपाय (Fiscal Measures): सरकार ने निर्यात प्रोत्साहन के लिए निम्नलिखित राजकोषीय उपाय किए हैं: (i) निर्यात वस्तुओं पर उत्पादन शुल्क (Excise) तथा अन्य अप्रत्यक्ष कर एक निश्चित दर पर वापिस (Duty Drawback) किये जाते हैं। (ii) **नकद सहायता योजना** (Cash Compensatory Scheme) **के अन्तर्गत निर्यात उत्पादन के लिए आयात किये जाने वाले माल पर नकद सहायता** दी जाती है। यह सहायता आयातित माल पर लगाये जाने वाले अप्रत्यक्ष करों के लिए छूट (Rebate) के रूप में दी जाती है। (iii) निर्यात से प्राप्त आय पर **आयकर** नहीं लगाया जाता। (iv) निर्यात उत्पादन के लिए आवश्यक कच्चे माल, मशीनरी आदि पर रियायती दरों पर कर लगाये जाते हैं। (v) आयात पुन: पूर्ति योजना (Import Replenishment Scheme) के अन्तर्गत निर्यातकों को कच्चे माल के आयात के लिए विदेशी मुद्रा उपलब्ध कराई जाती है।

(14) निर्यात जोन की स्थापना (Setting up of Export Zones): निर्यात को प्रोत्साहन देने के लिए सरकार ने एक तो देश के कई स्थानों जैसे मुम्बई, कांडला, नोएडा, फालटा, कोचीन आदि में **निर्यात प्रोसेसिंग मण्डल** (Export Processing Zone) स्थापित किए हैं। इन मंडलों (Zones) में स्थापित कारखाने संसार के किसी भी देश से विदेशी व्यापार कर सकते हैं। उन पर

पांच वर्ष तक कोई कर नहीं लगता। दूसरे, ऐसे कारखानों की स्थापना को प्रोत्साहित किया गया है जो अपना सारा उत्पादन निर्यात करते हैं, इन्हें भारी रियायतें दी जाती हैं। सरकार ने उन उद्योगों की पहचान की है जिसकी उत्पादन के निर्यात की भारी सम्भावनाएं हैं। इनके विकास के लिए विशेष योजनाएं बनाई गई हैं।

(15) विनिमय दर परिवर्तनशीलता (Exchange Rate Convertibility): वर्ष 1993-94 के प्रारम्भ में चालू खाते की परिवर्तनशीलता के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए **विनिमय दर एकरूप** (Unifications of Exchange Rate) बना दी गई तथा व्यापार खाते पर लेन-देन को मुद्रा नियंत्रण से मुक्त कर दिया गया। **चालू खाते की परिवर्तनशीलता से अभिप्राय है विदेशी व्यापार सम्बन्धी लेन-देनों के लिए विदेशी मुद्रा खरीदने तथा बेचने की स्वतंत्रता।** भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा अगस्त 1994 को निर्यातकों के विदेशी खाते से सम्बन्धित भुगतानों पर एक सीमा तक छूट दी गई है। इसका अभिप्राय यह है कि निर्यातक एक सीमा तक निर्यातों से प्राप्त विदेशी मुद्रा को बाजार दर पर बेचने के लिये स्वतन्त्र हैं। इसके फलस्वरूप उनके लाभ में वृद्धि होने की सम्भावना है।

■ निष्कर्ष (Conclusion)

निर्यात प्रोत्साहन के लिये सरकार द्वारा दी गई सुविधाओं को निम्नलिखित भागों में बांटा जा सकता है: (1) निर्यातकों को आयकर से छूट (2) मुख्य कच्चे माल की अन्तर्राष्ट्रीय कीमतों पर पूर्ति, (3) निर्यात करों की समाप्ति (4) उत्पादन करों की वापसी (Duty withdrawals through Banks) (5) साख सम्बन्धी सुविधाएं (6) विदेशी व्यापार के लिये विदेशी मुद्रा की उपलब्धि (7) निर्यात करने वाले कारखानों के लिये औद्योगिक लाइसेंस के नियमों की छूट, (8) किस्तों पर किये जाने वाले निर्यातों के सम्बन्ध में सुविधाएं (9) निर्यातकर्ता विदेशों से अर्जित विदेशी मुद्रा को बाजार कीमत पर बेच सकेंगे। इससे उन्हें काफी लाभ होगा।

■ 6. भुगतान शेष पर रंगराजन कमेटी की रिपोर्ट

(Report of Rangarajan Committee on Balance of Payments)

भारत सरकार ने रिजर्व बैंक के तत्कालीन गवर्नर **डा०सी०रंगराजन** की अध्यक्षता में भुगतान शेष के सम्बन्ध में सुझाव देने के लिये एक कमेटी की नियुक्ति की थी। इस कमेटी ने अपनी अन्तिम रिपोर्ट अप्रैल 1993 में प्रस्तुत की थी। इस समिति ने भारत के भुगतान शेष के विभिन्न पहलुओं से सम्बन्धित निम्नलिखित सिफारिशें की हैं:

(1) विनिमय दर का एकीकरण (Unification of Exchange Rate): इस समिति ने यह सिफारिश की थी कि एक वास्तविक विनिमय दर की स्थिति प्राप्त करने के लिये विनिमय दरों का सभी उद्देश्यों के लिये एकीकरण कर दिया जाये। यह **पूर्ण परिवर्तनियता** (Full Convertibility) की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम होगा। सरकार ने इस सिफारिश को मानते हुये 1 मार्च, 1993 से **एकीकृत विनिमय दर प्रणाली को** (Unified Exchange Rate System) लागू कर दिया है।

(2) विदेशी विनिमय की आरक्षित निधि का लक्ष्य (Reserve Traget of Foreign Exchange): रंगराजन समिति ने यह सिफारिश भी की थी कि आयतों और अन्य भुगतानों का पूर्वानुमान लगा कर तीन माह के समय के उपयोग की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुये समय-समय पर विदेशी विनिमय की **आरक्षित निधि के लक्ष्य** (Reserve Target) तय करते रहने चाहिये। आरक्षित निधि को न्यूनतम स्तर से नीचे नहीं आने दिया जाना चाहिये।

(3) स्वर्ण का विदेशी मुद्रा में परिवर्तन का विकल्प (Option of Converting Gold into Foreign Currency): इस समिति ने यह सिफारिश भी की है कि स्वर्ण को विदेशी मुद्रा में बदलने सम्बन्धी भारतीय रिज़र्व बैंक के विकल्प की निरन्तर **समीक्षा** (Review) की जानी चाहिये। इसके साथ ही इस समिति ने यह सिफारिश भी की थी कि आकस्मिक खर्चों की पूर्ति के लिये **अल्प सूचना** (Short Notice) पर विदेशी मुद्रा में बदलने के लिये स्वर्ण का कुछ हिस्सा अलग रखा जाना चाहिये।

(4) विदेशी सहायता (External Assistance): इस समिति ने यह सिफारिश की थी कि विदेशी सहायता का 100 प्रतिशत ही राज्यों को सभी क्षेत्रों के लिये दे दिया जाना चाहिये।

(5) व्यापारिक ऋण (Commercial Borrowings): व्यापारिक ऋणों के सम्बन्ध में इस समिति ने यह सिफारिश की थी कि पांच वर्ष से कम अवधि के व्यापारिक ऋणों को प्रोत्साहित नहीं किया जाना चाहिये। विदेशी ऋणों के लिये **सार्वजनिक गारन्टी** (Public Guarantee) बहुत सोच समझ कर दी जानी चाहिये। समिति ने सुझाव दिया कि विदेशी व्यापारिक ऋणों के वितरण की वार्षिक सीमा 250 करोड़ डालर निर्धारित की जाये। इस समिति का यह भी निष्कर्ष था कि भारत में **ऋण प्रबन्धन** (Debt Management) के लिये **ऋण इक्विटी परिवर्तन** (Debt Equity Conversion) का विकल्प कोई विकल्प नहीं है। समिति ने सिफारिश की थी कि प्रयोग के तौर पर **स्वर्ण बांड** जारी किये जा सकते हैं। सरकार ने 1993-94 के बजट में **स्वर्ण बांड** (Gold Bonds) जारी किये थे।

(6) अनिवासी भारतीय उधारों की परिवर्तनीयता (Convertibility of Non-Resident Indian's Borrowing): अनिवासी भारतीय उधारों की परिवर्तनीयता और लागत कम किये जाने के लिये समिति ने सिफारिश की, कि **विदेशी मुद्रा अनिवासी** खाता जमा राशियों (Foreign Currency Non-Resident Deposits-FCNRD) के मामले में न्यूनतम परिपक्वता अवधि (Maturity Period) एक वर्ष होनी चाहिए। अन्तर्राष्ट्रीय ब्याज दरों तथा विदेशी मुद्रा अनिवासी खाता दरों के बीच के अन्तर को धीरे-धीरे कम किया जाना चाहिये। यह समिति इस बात के पक्ष में भी थी कि **मध्यावधि निवेशों** (Medium Term Investments) को प्रोत्साहित करने के लिये **अनिवासी भारतीय बाण्डों** (Non-Resident Indian Bonds) के बाजार विकसित करने चाहिये।

(7) अल्पकालीन ऋण सम्बन्धी नीति (Short Term Loan Policy): समिति का यह मानना था कि अल्पकालीन विदेशी ऋणों की अनुमति केवल व्यापार के लिये ही दी जानी चाहिये। अल्पकालीन विदेशी ऋणों के लिये एक **नियन्त्रण प्रणाली** (Monitoring System) स्थापित की जाये ताकि किसी समय निवेश पर बकाया अल्पावधि ऋण की मात्रा का पता लगाया जा सके।

(8) राष्ट्रीय निवेश कानून (National Investment Law): विदेशी निवेश को प्रोत्साहित करने के लिये समिति इस बात के पक्ष में थी कि लाभांश के देश से बाहर जाने, विदेशी **अनिवेश** (Disinvestment), तथा विदेशी नागरिकों को रोजगार देने से सम्बन्धित मौजूदा नीति और प्रथाओं को कानूनी रूप देने के लिये एक **राष्ट्रीय निवेश कानून** (National Investment Law) बनाया जाये।

(9) मध्यावधि नीति (Medium Term Policy): मध्यावधि के लिये समिति का यह मानना था कि निर्यात में न्यूनतम 15 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि डालरों के रूप में सुनिश्चित किये जाने का लक्ष्य प्राप्त किया जाना चाहिये। इसके अतिरिक्त समिति का विचार था कि सकल देशी उत्पाद (Gross Domestic Product) का 1.6 प्रतिशत **चालू खाता घाटा** (Current Account Deficit) शुद्ध पूंजी प्राप्तियों के एक उचित स्तर के माध्यम से बनाये रखा जा सकता है।

परिशिष्ट (Appendix I)

■ विशेष आर्थिक क्षेत्र (Special Economic Zones)

भारत एशिया का पहला देश है जिसने निर्यात संवर्धन में निर्यात संसाधन क्षेत्र (ईपीजेड) की महत्ता को स्वीकार किया और कांडला में पहला ईपीजेड 1965 में स्थापित किया। उसके बाद सात और क्षेत्र स्थापित किए गए। लेकिन ये क्षेत्र नियंत्रण और अनुमति के बारे में बहुलता, विश्व स्तरीय ढाँचे की गैर मौजूदगी और अस्थायी वित्तीय व्यवस्था के कारण निर्यात संवर्धन के प्रभावी माध्यम नहीं बन

सके। ईपीजेड की खामियों को दूर करते हुए, कुछ नई बातें जोड़ते हुए अप्रैल 2000 में विशेष आर्थिक क्षेत्र (एसईजेड) नीति की घोषणा की गई। इसका उद्देश्य अच्छी ढांचागत सुविधाओं और केंद्र तथा राज्य दोनों स्तर पर आकर्षक वित्तीय पैकेज, न्यूनतम संभव नियमों की मदद से विशेष आर्थिक क्षेत्र (एसईजेड) को आर्थिक विकास का इंजिन बनाना है। एसईजेड योजना की विशेषताएं इस प्रकार हैं:

* एक निर्दिष्ट शुल्क मुक्त क्षेत्र जिसे व्यापार संचालन तथा शुल्क एवं तटकर के लिए विदेशी क्षेत्र माना जाएगा।
* आयात के लिए लाइसेंस की आवश्यकता नहीं।
* विनिर्माण या सेवा गतिविधियों की अनुमति।
* एसईजेड इकाइयां तीन वर्ष के भीतर विदेशी मुद्रा की कमाई में शुद्ध लाभ अर्जित करने लगेंगी।
* पूरे शुल्क के साथ घरेलू बाजार में बिक्री तथा आयात नीति लागू।
* उप अनुबंध की पूर्ण स्वतंत्रता।
* कस्टम द्वारा आयात और निर्यात माल की नियमित जांच नहीं।

विशेष आर्थिक क्षेत्र (एसईजेड) की व्यवस्था स्थायी बनाने के लिए और अधिकतम आर्थिक गतिविधियों के संचालन से रोजगार के अवसर पैदा करने के उद्देश्य से विशेष आर्थिक क्षेत्र अधिनियम बनाया गया। एसईजेड अधिनियम 2005 और एसईजेड नियम 10 फरवरी, 2006 से प्रभावी हुए। एसईजेड इकाइयों को अधिनियम के तहत विदेशी निवेश सहित निवेश बढ़ाने के लिए दी गई सुविधाओं में शुल्क मुक्त निर्यात, विकास के लिए घरेलू बाजार वस्तुओं की खरीद, एसईजेड इकाइयों का संचालन और रख रखाव, एसईजेड इकाइयों को निर्यात आय पर पहले पांच वर्ष आयकर अधिनियम की धारा 10एए के तहत पूरी कर छूट, उसके बाद पांच वर्ष तक 50 प्रतिशत छूट और बाद के पांच वर्षों में लाभ पर 50 प्रतिशत छूट, केंद्रीय बिक्री कर, सेवा कर से छूट और इकाइयों की स्थापना में एकल खिड़की अनुमति की व्यवस्था शामिल है।

कांडला और सूरत (गुजरात), सांताक्रुज (महाराष्ट्र), कोच्चि (केरल), चेन्नई (तमिलनाडु), विशाखापट्टनम (आंध्र प्रदेश), फाल्टा (पश्चिम बंगाल) और नोएडा (उत्तर प्रदेश) स्थित सभी आठ निर्यात संसाधन क्षेत्रों को विशेष आर्थिक क्षेत्र में बदल दिया गया है। इसके अतिरिक्त 20 और एसईजेड काम करने लगे हैं जिसमें से 8 से निर्यात शुरू हो चुका है। एसईजेड अधिनियम के तहत निजी/संयुक्त क्षेत्र या राज्य सरकारों और उसकी एजेंसियों द्वारा शुरू किए जाने वाले 105 विशेष आर्थिक क्षेत्रों के लिए औपचारिक स्वीकृति दी जा चुकी है। इनमें 10 स्वीकृतियां भी शामिल हैं जिनके लिए अधिसूचना जारी की जा चुकी है। अन्य क्षेत्र अमल के विभिन्न चरणों में हैं।

वर्तमान में एसईजेड में 1,277 इकाइयां काम कर रही हैं जिनमें 2 लाख लोगों को (इनमें लगभग 40 प्रतिशत महिलाएं हैं) रोजगार मिला है। एसईजेड से 2005-06 से 22,840 करोड़ रुपए मूल्य का निर्यात हुआ, जो पिछले वर्ष की तुलना में 32 प्रतिशत अधिक है। वर्ष 2006-07 में निर्यात में पिछले वर्ष की तुलना में 52 प्रतिशत की वृद्धि हुई और वह 34,615 करोड़ रुपये मूल्य का हुआ। वर्ष 2007-08 में एसईजेड द्वारा किए जाने वाले निर्यातों का अनुमान बढ़कर 67,088 करोड़ रुपये होने का है।

प्रश्न (QUESTIONS)

■ I. वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

सभी प्रश्न अनिवार्य हैं (Attempt all the Questions)

1. किसी देश द्वारा संसार के अन्य देशों के साथ किए गए आर्थिक लेन-देन के लेखांकन को कहा जाता है (भुगतान शेष, व्यापार शेष)
2. जब दृश्य तथा अदृश्य निर्यात दृश्य तथा अदृश्य आयातों से कम होते हैं तब भुगतान शेष होता है (प्रतिकूल, अनुकूल)
3. प्रथम योजना के आरम्भ से लेकर नौवीं योजना के अन्त तक भुगतान शेष प्रतिकूल था केवल चौथी योजना तथा पांचवीं योजना में (अनुकूल था, प्रतिकूल था)
4. विदेशी प्रतियोगिता ने प्रतिकूल रूप से प्रभावित किया है हमारे (निर्यातों को, आयातों को)
5. विदेशी ऋणों पर विदेशी मुद्रा में ही दिया जाने वाला ब्याज जिम्मेवार है (प्रतिकूल भुगतान शेष के, अनुकूल भुगतान शेष के)
6. प्रतिकूल भुगतान शेष को सही करने के लिए सबसे उत्तम उपाय है (निर्यातों को प्रोत्साहन, आयातों को प्रोत्साहन)
7. प्रतिकूल भुगतान शेष को सही करने के लिए विदेशी विनिमय कोष निभाते हैं (अहम भूमिका, नाममात्र भूमिका)
8. नई निर्यात-आयत नीति है (विकास परक, विकास परक नहीं)
9. भारत का भुगतान शेष मुख्यतया रहा है (प्रतिकूल, अनुकूल)

उत्तर (Answer): (1) भुगतान शेष, (2) प्रतिकूल, (3) अनुकूल था, (4) निर्यातों को, (5) प्रतिकूल भुगतान संतुलन के, (6) निर्यातों को प्रोत्साहन, (7) अहम भूमिका, (8) विकास परक, (9) प्रतिकूल।

■ II. लघु/परिभाषा रूपी प्रश्न (Short/Definition Type Questions)

1. भुगतान शेष की अदृश्य मदें कौन-सी हैं?
2. कौन-सी योजना में भुगतान शेष अनुकूल रहा?
3. किस वर्ष में देश में विदेशी विनिमय संकट गंभीर रहा?
4. प्रतिकूल भुगतान शेष के दो कारण बतलाएं।
5. भारत के प्रतिकूल भुगतान शेष को ठीक करने के दो उपाय बतालाएं।
6. आयात प्रतिस्थापन से क्या अभिप्राय है?
7. नई निर्यात-आयात नीति का समावेश कब किया गया था और इसकी अवधि क्या है?
8. नई निर्यात-आयात नीति तकनीकी प्रेरक है?
9. विशेष आर्थिक क्षेत्र पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखें।

■ III. निवन्ध रूपी प्रश्न (Essay Type Questions)

1. What is meant by balance of payments? What are the causes of adverse Balance of Payments of India? How is it corrected? (K.U. 2005)
   भुगतान शेष से क्या अभिप्राय है? प्रतिकूल भुगतान शेष के कारण क्या हैं? इसे कैसे ठीक किया जाता है?

2. Why is it that India's Balance of Payments shows regularly mounting deficit? Examine the measures taken by the government to solve the problem.
   भारत के भुगतान शेष में निरन्तर घाटा क्यों हो रहा है? सरकार द्वारा इस समस्या के समाधान के लिये उठाए गये कदमों की विवेचना करें।
3. Describe the main causes of adverse balance of payments.
   भुगतान शेष के प्रतिकूल होने के मुख्य कारणों का वर्णन कीजिए।
4. Discuss the trend of balance of payment of India since independence.
   स्वतन्त्रता से अब तक भारत के भुगतान शेष की प्रवृत्तियां बताइये।
5. What is Export Promotion? What measures have been adopted by the government of India to promote exports?
   निर्यात प्रोत्साहन से क्या अभिप्राय है? इस सम्बन्ध में भारत सरकार ने निर्यात बढ़ाने की दृष्टि से कौन-से उपाय अपनाए हैं?
6. Suggest measures for improving balance of payments in India.
   भारत में भुगतान शेष को सुधारने के लिए उपाय बताइए। (K.U. 2007)

MAHARISHI DAYANAND UNIVERSITY, ROHTAK

ECONOMICS

B.A. Part-III Examination

Development and Environmental Economics and International Trade

Paper : III

2008

Time : Three hours] **[Maximum Marks:90**

Note: Attempt ***five*** *questions in all. Questions No* ***1*** *is compulsory and remaining* ***four*** *questions are to be attempted by selecting one question from each Unit. Each question carries 18 marks.*

Section 'A'

1. (a) Answer the following in **one** word/sentence: 10×1=10

(i) Who construct Human Development Index of many countries?

(ii) Write the formulae of per capita money income.

(iii) Who has criticised the theory of balance growth?

(iv) Define stimulants.

(v) Define Externalities.

(vi) What is the basis of comparative cost theory?

(vii) What is Dual Economy?

(viii) When was IBRD (International Bank for Reconstruction and Development) established?

(ix) What do you mean by SDR_s?

(x) How are the terms of trade determined?

(b) Attempt any **four** of the following parts: 2 × 4 = 8

(i) Draw the diagram of critical Minimum Effort thesis.

(ii) Explain the two causes of vicious circle of poverty.

(iii) Write two causes of Disequilibrium in the Balance of Payment.

(iv) Write the two main features of India's foreign trade.

(v) Two difference between balanced and unbalanced growth theory.

(vi) Write the two objectives of IMF (International Monetary Fund).

UNIT – I

2. Differentiate between Economic development and Economic growth. Discuss various methods of measuring economic development. 4, 14

3. Explain Leibenstein's Critical minimum efforts thesis about economic development. Also discuss its limitations. 14, 4

UNIT – II

4. What do you mean by Market failure? Discuss remedial measures for the solution of the problem of market failures. 9+9

5. Highlight features and importance of Sustainable development. Also discuss indicators of sustainable development. 9+9

UNIT – III

6. Define gains from International trade. Discuss theories of measurement of gains from trade. 4, 14

7. Evaluate Heckscher-Ohlin theory of International trade. 18

UNIT – IV

8. What is the difference between GATT and WTO? Discuss structure of WTO. Justify its membership for India. 4+5+9

9. Define Foreign trade multiplier. Explain its working. 18

KURUKSHETRA UNIVERSITY, KURUKSHETRA

ECONOMICS

B.A.- III

2008

Time: Three Hours] [Maximum Marks: 90

Note: Attempt ***five*** *questions in all. Q.No.* ***1*** *is compulsory. Remaining* ***four*** *questions are to be attempted, by selecting* ***one*** *question from each unit. All questions carry equal marks.*

(Compulsory Question)

1. (A) Fill in the blanks:

(i) Disguised unemployment is a situation where .... persons are engaged in an activity than actually required. (more, less)

(ii) Hirschman propounded the theory of .... growth. (balanced, unbalanced)

(iii) Lithosphere is .... component. (abiotic, biotic)

(iv) In India the Environment (Protection) Act was passed in .... (1986, 1996)

(v) Public goods are .... (exclusive, non-exclusive)

(vi) The famous book 'Principles of Political Economy and Taxation' is written by .... (David Ricardo, Ohlin)

(vii) The international trade occurs when there is .... difference in costs. (equal, absolute)

(viii) .... means deliberate reduction by the government in the value of its national currency in terms of gold or other foreign currencies. (depreciation, devaluation)

(ix) World Bank was established in .... (1945, 1955)

(x) If the rate of growth of population is higher than the rate of growth of national income, per capita income is likely to .... (fall, rise)

$1 \times 10 = 10$

(B) Answer in brief any **four** of the following:

(i) What is the difference between Balance of payments and Balance of trade?

(ii) Define SDRs (Special Drawing Rights)

(iii) Define Dumping.

(iv) Define Pollution and state its various types.

(v) Discuss supply side of vicious circle of poverty. $2 \times 4 = 8$

UNIT - I

2. What do you mean by vicious circle of Poverty? Explain its solution. 18

3. Explain Leeibensteen's critical minimum effort theory about economic development. 18

UNIT - II

4. What is meant by Public good? How do you regard environment as a public good? 18

5. What is Sustainable Development? Explain the conditions of Sustainable Development. 18

UNIT - III

6. Explain the modern theory of International Trade. 18

7. Explain the effect of International Trade on Economic development. 18

UNIT - IV

8. Explain the changes in value, volume, composition and direction of India's foreign trade since 1991. 18

9. Explain the concept of foreign trade multiplier. 18

MAHARISHI DAYANAND UNIVERSITY, ROHTAK

ECONOMICS

(Development and Environmental Economics and International Trade)

Paper – III

B.A. (Part-III) Examination, April–2009

Time Allowed: 3 Hours] **[Max. Marks : 90**

Note: *Attempt **five** questions in all. Question No. **1** is compulsory and remaining four questions are to be attempted by selecting **one** question from each unit. Each question carries 18 marks.*

---

1. (A) Fill in the blanks: 1×5=5

   (i) The word economic growth is normally used for .... countries.

   Developed/underdeveloped

   (ii) Balance of payments can be improved by ....

   Devaluation/Demonetisation

   (iii) International trade leads to political ....

   Slavery/Freedom

   (iv) International Monetary fund was established in ....

   1945/1969

   (v) Economic planning was first of all started in ....

   America/Russia/India

   (B) Answer the following in one word/sentence. 1×5=5

   (i) Exchange control,

   (ii) Infant mortality rate,

   (iii) Write full form of IBRD,

   (iv) Invisible items of International trade.

   (v) Who has propounded modern theory of International trade?

(C) Explain in brief any **four** of the following: 2×4=8

(i) Sustainable Development,

(ii) Physical quality of life,

(iii) Stimulants,

(iv) Terms of Trade,

(v) Decline in Bio-diversity.

UNIT - I

2. Differentiate between economic development and economic growth. Write the determinants of economic development. 18

3. Explain in brief Lewis Model. Evaluate the Model in the context of underdeveloped countries. 18

UNIT - II

4. Analyse the mutual relationship between population and environment. Discuss with special reference to India. 18

5. Explain various types of pollution. Explain in brief the measures for their solution. 18

UNIT - III

6. Differentiate between inter-regional and international trade. Write the advantages and disadvantages of international trade. 18

7. Explain the theories for the measurement of gains from international trade. 18

UNIT - IV

8. Explain balance of payments. Write the measures for correcting adverse balance of payments. 18

9. Write the objectives of International monetary fund. How far has it succeeded in achieving its aims ? 18

KURUKSHETRA UNIVERSITY, KURUKSHETRA

ECONOMICS

B.A. 3^{rd} Year

2009

Time Allowed: 3 Hours] **[Max. Marks: 90**

Note: *Attempt* ***five*** *questions in all. Question no.* ***one*** *is compulsory. Remaining* ***Four*** *questions are to be attempted by selecting* ***one*** *question from each unit. All questions carry equal marks.*

---

1. (A) Fill in the blanks:

   (i) "A country is poor because it is poor." Who said these words. (Nurkse, Samuelson)

   (ii) Animals are ____________ components. (Abiotic, Biotic)

   (iii) ____________ is the process of determining prices of commodities with the help of the forces of demand and supply without external interference. (Market failure, Market mechanism)

   (iv) ____________ goods are non-rival and non-exclusive. (Private, Public)

   (v) Trade between Karnataka and Gujarat is called ____________ trade. (internal, international)

   (vi) Heckscher-Ohlin Theory assumes that factor endowments in two-countries are ____________ (similar, different)

   (vii) Balance of ____________ includes imports and exports of visible items only. (trade, payments)

   (viii) The relationship between export multiplier and marginal propensity to import is ____________. (inverse, proportional)

   (ix) World Bank was established in ____________. (1945, 1954)

   (x) The critical minimum effort thesis was propounded by ____________. (Leibenstein, Nurkse)

   1×10=10

PART – B

(B) Answer in brief any **four** of the following:

   (i) What is the difference between real per capita income and monetary per capita income?

   (ii) Explain spillover benefits.

   (iii) What do you mean by sustainable development?

(iv) Write objectives of WTO.

(v) What is the difference between devaluation and depreciation? 2×4=8

UNIT – I

2. Critically evaluate the theory of unbalanced growth.

3. How unlimited supply of labour can become a source of economic development?

UNIT – II

4. Discuss various legislative measures taken by Indian government related to environment.

5. 'There is two-way relationship between population and environment' discuss the statement.

UNIT – III

6. Discuss Classical and Modern theories of gains from Trade.

7. "Trade is an engine of growth". Discuss the statement.

UNIT – IV

8. Discuss changes in the composition and direction of India's Foreign Trade since 1991.

9. Explain the main features of IMF. What contribution it has made in the development of India?